श्री चन्द्रशेखर सिंह सामन्त कृत

सिद्धान्त दर्पण

(भूमिका, मूल तथा हिन्दी अनुवाद सहित)

भाग १

अनुवादक

अरुण कुमार उपाध्याय

नाग प्रकाशक

सिद्धान्त दर्पण दो प्रकार से उपयोगी है। इसमें पाठ्यपुस्तक की तरह अब तक के सभी ज्योतिष ग्रन्थों का संकलन है तथा विवादित मतों का समाधान है। अतः एक ही ग्रन्थ पढ़ने से सभी ग्रन्थों के पढ़ने का लाभ होगा। दूसरा लाभ यह है कि इसके लेखक श्रीचन्द्र शेखर सामन्त ने यद्यपि सभी गणनाओं की व्याख्या नहीं की है पर उनमें संशोधन की विधि बतायी हैं। इसके अतिरिक्त चन्द्र गति में उन्होंने जो संशोधन किया है वह शुद्धता में आधुनिक गणित के समकक्ष है।

हिन्दी अनुवाद का उद्देश्य- सिद्धान्त दर्पण- उड़िया लिपि के संस्कृत श्लोकों में होने के कारण अभी तक इस ग्रन्थ के बारे में प्रायः कोई नहीं जानता है। उड़ीसा में भी इसे समझने वाले कोई नहीं हैं। हिन्दी अनुवाद से इसका आधा उद्देश्य पूर्ण होगा। मूल ग्रन्थ में क्या था, इसकी जानकारी होगी तथा पूरे भारत में इसका प्रचार होगा। इसी के साथ प्रो. योगेश चन्द्र राय की अंग्रेजी भूमिका भी दी जा रही है क्योंकि आधुनिक ज्योतिष पर इस ग्रन्थ में जो तर्क हैं उनकी बातचीत के ही आधार पर हैं। ग्रन्थ में प्रयुक्त गणितीय शब्दों के अर्थ अलग दिये हैं।

१. नाम - अरुण कुमार उपाध्याय, पिता श्री चन्द्रशेखर उपाध्याय तथा माता श्रीमती जगतारिणी देवी (दोनों का जन्म १९०५ में) की कनिष्ट सन्तान।

२. जन्म - ३०/३१-८-१९५२ ईस्वीय सन् ठीक अर्धरात्रि अर्थात विक्रम सम्वत् २००९ भाद्रशुक्ल एकादशी, जन्म स्थान - आरा, जिला भोजपुर (बिहार) अक्षांश २५°३६' उत्तर, देशान्तर- ८४°४२' पूर्व।

३. शिक्षा - १९६१ में रेलवे स्कूल जमालपुर (मुंगेर) बिहार में कक्षा ६ से विद्यालय शिक्षा आरम्भ।

१९६३ से १९६६ तक उच्च विद्यालय शिक्षा तेनु अज (विक्रम गजं) रोहतास जिला में। इस अवधि में स्वाध्यायी छात्र के रूप में कामेश्वर सिंह संस्कृत विश्वविद्यालय से प्रथमा और मध्यमा परीक्षा। पिता द्वारा संस्कृत और ज्योतिष का शिक्षण।

पटना विश्वविद्यालय की जातिवादी राजनीति के कारण भौतिक विज्ञान अध्ययन में बाधा, अतः १९७४ में भारतीय वन सेवा, पंजाब संवर्ग में योगदान, पर अध्ययन का निश्चय और दृढ़।

१९७६ में भारतीय पुलिस सेवा, उड़ीसा संवर्ग में प्रवेश। १९८१ में भुवनेश्वर निवास में चार मास तक गणित का स्वाध्याय एवं उत्कल विश्वविद्यालय से गणित स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण। अभी कटक में पदस्थापित।

४. ग्रन्थ की प्रेरणा तथा समर्पण - गणित के अध्ययन क्रम में ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त का अध्ययन। १९९१ के बाद अकर्मिक पदों पर रहते समय सिद्धान्त दर्पण का अनुवाद एवं वैज्ञानिक व्याख्या। परिवार परम्परा में संस्कृत एवं संस्कृति की ज्योति प्रज्वलित रखने की प्रेरणा पिता और गुरु श्री चन्द्रशेखर उपाध्याय से मिली, जिनकी अपूर्ण इच्छा की पूर्ति के रुप में यह व्याख्या लिखी गयी। अतः उन्हीं को समर्पित।

श्री चन्द्रशेखर सिंह सामन्त कृत

सिद्धान्त दर्पण

(भूमिका, मूल तथा हिन्दी अनुवाद सहित)

भाग १

अनुवादक

अरुण कुमार उपाध्याय
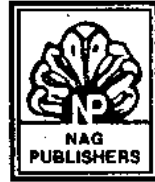
नाग प्रकाशक

११ ए/यू. ए. जवाहर नगर,
दिल्ली-११०००७ (भारत)

भूमिका

उद्देश्य-ज्योतिष को वेद का नेत्र कहा गया है । इसके बिना वेदों और प्राचीन शास्त्र का काल नहीं जाना जा सकता है । बिना काल जाने उनकी चर्चा समयानुकूल नहीं हो पायेगी अतः उसे समझना असम्भव है ।

भारतीय इतिहास की विडम्बना यह है कि वर्तमान स्वीकृत इतिहास सिर्फ भारत विरोधियों द्वारा लिखा गया है जिनका पिछले एक हजार वर्ष से एकमात्र उद्देश्य भारत को पराधीन बनाये रखना था । अतः उन्होंने यथा सम्भव भारतीय सभ्यता का आरम्भ सिकन्दर के आक्रमण काल से दिखाने की कोशिश की । इस खींचातानी में यह प्रयत्न हुआ कि वेद पुराण आदि मिस्र या ग्रीक सभ्यता की देन है, अतः उनका वास्तविक स्वरूप नहीं समझा जा सका । चीन कभी पराधीन नहीं हुआ अतः उनके इतिहास का काल क्रम ठीक है । फलतः भारत में स्वीकृत बुद्ध के जन्म समय से प्रायः ६०० वर्ष पहले वहाँ बौद्ध विहार बन चुके थे । इस प्रकार भ्रष्ट काल क्रम का कोई भी निष्कर्ष सही नहीं हो सकता ।

दूसरा भ्रम यह है कि मेगास्थनीज मौर्य राजधानी पाटलिपुत्र में आया था जिसके बाद ही इतिहास लेखन आरम्भ हुआ । पर मेगास्थनीज ने 'पलिबोथ्रा' की जो स्थिति दी है वह दिल्ली और मथुरा के बीच यमुना किनारे का एक नगर था सम्भवत प्रभद्रक गण) । अतः बिना काल मान तथा भूगोल जाने इतिहास लिखने की चेष्टा हुयी है वह अनधिकार एवं पागलपन मात्र है ।

खेद यह है कि आज भी किसी तथा कथित इतिहासकार ने वेद पुराण तो दूर, विक्रम और शक सम्वत् जानने की कोशिश नहीं की है । उनके अनुसार या तो ये सम्वत् बिना किसी राजाज्ञा के प्रचारित हो गये, या उन राजाओं ने अपने बदले किसी पूर्ववर्त्ती राजा का सम्मान बढ़ाने की कोशिश की । पर देखने में आता है कि किसी वर्ष जन्माष्टमी या होली की छुट्टी कब होगी वह भी सरकारी आदेश से ही निर्धारित हो सकता है । पर २००० वर्ष तक जारी कैलेण्डर के लिये सरकारी आदेश की जरूरत नहीं पड़ी । पुरानी जगहों का नया नाम देकर लोग पूर्वजों के काम से अपना नाम करने की कोशिश करते हैं, पर इतिहासकारों का मत है कि भारत में लोगों ने अपने परिश्रम से पूर्वजों की कीर्ति बढ़ाने की कोशिश की ।

विक्रम पूर्व की घटनायें कलि सम्वत् में लिखी गयी हैं । कलि आरम्भ से पहले की घटनायें सिर्फ ग्रह स्थिति द्वारा सूचित की गयी हैं । अतः भारतीय इतिहास की घटनाओं का समय जानने के लिए यह जरूरी है कि कलि आरम्भ की गणना समझी जाय, न कि उसे बिना समझे काल्पनिक कहा जाय । ग्रह स्थिति की गणना विधि जानने से किसी समय को सूचित किया जा सकता है जबकि प्रचलित कैलेण्डर

२०००-२५०० वर्षों से ज्यादा नहीं चलते हैं । इस उद्देश्य से भारतीय ज्योतिष की सम्पूर्ण जानकारी का संग्रह आवश्यक है ।

सिद्धान्त दर्पण क्यों ? भारत में आर्यभट्ट से ज्योतिष का आरम्भ माना जाता है । वस्तुतः पुस्तक से पता चलता है कि वह ज्योतिष अध्ययन के पतन का आरम्भ है । ज्योतिष अध्ययन सदा से खर्चीला है । बिना तात्कालिक लाभ का है अतः राज कोष से ही इसका खर्च चल सकता है । जैसे वर्तमान युग में केवल अमेरिका की सरकारी संस्था 'नासा' ही इसमें खोज कर रही है । इस प्रकार भारत या विश्व के सबसे बड़े और धनी राज्य मगध की राजधानी में ही 'खगोल' अध्ययन के लिये वेधशाला उपलब्ध थी, जहाँ उस काल में आर्य भट्ट आचार्य थे । उस नगर का नाम पुष्पपुर या कुसुमपुर था, जिसका वर्तमान फारसी रूपान्तर फुलवारी शरीफ है । 'खगोल' वेधशाला का स्थान अभी भी खगोल गांव कहा जाता है जो उसी के निकट है । हूण आक्रमण में वेधशाला, पुस्तकालय आदि नष्ट होने पर आर्यभट्ट ने वहां के संचित ज्ञान को केवल स्मरण रखने के लिये सूत्ररूप में लिखा है । यह स्कूल या कालेज की पाठ्यपुस्तक नहीं है; जिसमें रेखाचित्रों तथा गणित विधियों से विज्ञान पढ़ाया जा सकता है । उन्होंने स्वयं लिखा है—

आर्य भटस्त्विह निगदति सत्यम्
कुसुमपुरे भ्यर्चितं ज्ञानम्

अर्थात् आर्यभट्ट कुसुमपुर में अर्चित ज्ञान कह रहे हैं । इसके बाद वाराहमिहिर तथा भास्कर आदि सभी ने पुराने अर्चित ज्ञान को ही लिखा है । किसी ने यह नहीं समझाया कि ग्रह गति के मान सम्बन्धी संख्याओं का स्रोत क्या है ।

इस सम्बन्ध में सिद्धान्त दर्पण दो प्रकार से उपयोगी है । इसमें पाठ्यपुस्तक की तरह अब तक के सभी ज्योतिष ग्रन्थों का संकलन है तथा विवादित मतों का समाधान है । अतः एक ही ग्रन्थ पढ़ने से सभी ग्रन्थों के पढ़ने का लाभ होगा । दूसरा लाभ यह है कि इसके लेखक श्रीचन्द्र शेखर सामन्त ने यद्यपि सभी गणनाओं की व्याख्या नहीं की है पर उनमें संशोधन की विधि बतायी हैं । इसके अतिरिक्त चन्द्र गति में उन्होंने जो संशोधन किया है वह शुद्धता में आधुनिक गणित के समकक्ष है ।

भारतीय परम्परा के गणितज्ञों में चन्द्रशेखर तथा बाल गंगाधर तिलक को अन्तिम माना जा सकता है । तिलक ने आधुनिक गणित तथा अंग्रेजी का भी अध्ययन किया था । पर चन्द्रशेखर इनसे अनभिज्ञ थे । कटक के प्रोफेसर योगेश चन्द्र राय ने उन्हें आधुनिक गणित के आधार पर समझाने का प्रयत्न किया कि पृथ्वी सूर्य केन्द्रित कक्षा में है । भारतीय ज्योतिष में इसके दो मत हैं । पृथ्वी गति शील होने के कारण इसे 'जगत' कहा गया है । पर चन्द्र शेखर ने इसे 'स्थिरा' मानकर

इसके पक्ष में तर्क दिये हैं । यद्यपि उनका मत सही नहीं था पर उनके तर्कों का उत्तर १८९९ ई. में जब किताब प्रकाशित हुयी थी, आधुनिक ज्योतिष में नहीं था । उनका एक तर्क था कि यदि सभी तारा सूर्य के समान प्रकाश मान हैं तथा सभी दिशा में समान रूप से फैले है, तो रात्रि कैसे होती है । इसे आल्बर विरोधाभास कहा जाता है । इसका उत्तर १९३० में मिला जब ब्रह्माण्ड के फैलने का पता चला, जिसके कारण दूरवर्त्ती सूर्यों का कम प्रकाश आता है । ब्रह्माण्ड शब्द का अर्थ भी फैलने या बढ़ने वाला है, अत श्री नार्लीकर इसे भारतीय मत मानते हैं । यह एक चमत्कार है कि चन्द्रशेखर ने उस समय के गलत उत्तरों का सही खण्डन किया है । उनका दूसरा तर्क यह था कि यदि सभी ग्रह अपनी कक्षा पर भ्रमण करते हैं तो बड़े ग्रह गुरू का तेज भ्रमण क्यों होता है । तथा चन्द्र का अक्ष भ्रमण क्यों नहीं होता (उसका एक ही हिस्सा पृथ्वी से दीखता है) । इन दोनों प्रश्नों का उत्तर अभी भी ज्ञात नहीं है । अत चन्द्रशेखर ने गलत मान्यता रखकर भी तर्क सही दिये थे । यहां यह द्रष्टव्य है कि सभी गतियां सापेक्ष हैं, सूर्य स्थिर नहीं है । सूर्य को स्थिर केन्द्र मानकर गणना करने से सिर्फ गणित क्रिया में सरलता होती है । पर पृथ्वी को स्थिर मानने से भी गणना में कोई सैद्धान्तिक भूल नहीं होती ।

हिन्दी अनुवाद का उद्देश्य- सिद्धान्त दर्पण- उड़िया लिपि के संस्कृत श्लोकों में होने के कारण अभी तक इस ग्रन्थ के बारे में प्राय: कोई नहीं जानता है । उड़ीसा में भी इसे समझने वाले कोई नहीं हैं । हिन्दी अनुवाद से इसका आधा उद्देश्य पूर्ण होगा । मूल ग्रन्थ में क्या था, इसकी जानकारी होगी तथा पूरे भारत में इसका प्रचार होगा । इसी के साथ प्रो. योगेश चन्द्र राय की अंग्रेजी भूमिका भी दी जा रही है क्योंकि आधुनिक ज्योतिष पर इस ग्रन्थ में जो तर्क हैं उनकी बातचीत के ही आधार पर हैं । ग्रन्थ में प्रयुक्त गणितीय शब्दों के अर्थ अलग दिये हैं ।

आधुनिक व्याख्या - वर्तमन गणित संकेतों द्वारा अंग्रेजी में जा रहा है । अतः इसके दूसरे खण्ड में अंग्रेजी अर्थ तथा आधुनिक गणित द्वारा इसके सूत्रों का प्रमाण दिया जायेगा । खेद है कि किसी भारतीय विश्वविद्यालय में आधुनिक गणित ज्योतिष की पढ़ाई नहीं हो रही है ।अत प्राय ५० पृष्ठों में आधुनिक गणित के आधार पर भारतीय ज्योतिष का सारांश लिख रहा हूँ जो प्राय पूर्ण हो चुका है । इसे मैट्रिक तक गणित पढ़ा हुआ कोई भी व्यक्ति समझ सकता है ।

मेरी भगवान से प्रार्थना है कि ज्योतिष शिक्षा के लिये श्रीचन्द्रशेखर का स्वप्न इस ग्रन्थ के माध्यम से पूर्ण हो । मेरा स्वार्थ है कि इतिहासकार भारतीय कालमान तथा भूगोल समझें ।

अरुण कुमार उपाध्याय

२३.९.९५

महालया

गणित क्रिया शब्द

१. योग- मूल शब्द रूप-

(१) अस्, सम् उपसर्ग के साथ)- मिलाना या जोना- समस्त, समास, समासित

(२) इ-सम्बन्धित करना, मिलाना या जोड़ना, अनु उपसर्ग-अन्वित
उप- उपेत
सम- समन्वित, समवेत, समेत
सह-सहित

(३) कल् - जोड़ना, एकत्र करना-सम् उपसर्ग -संकलन, संकलित

(४) क्षिप् (फेंकना या जोड़ना), क्षिप, क्षिप्त, क्षिप्तम्, क्षिप्त्वा, क्षिपेत्, क्षिप्यते, क्षिप्यन्ते, क्षेप, क्षेप्यम्, क्षेप्या, परिक्षिप्य, परिक्षिप्यन्ते, प्रक्षिपेत्, प्रक्षिप्त प्रक्षिप्य, प्रक्षिप्यते, प्रक्षिप्यन्ते, प्रक्षेप, विनिक्षिपेत् संक्षेप ।

(५) चि - (बढ़ना)-उपचय, उपचित, उपचीयन्ते, उपचीयमान

(६) दा (देना)- दात्वा, दातव्य, दीयते, दीयन्ते, देय, देया

(७) पिण्ड (मिलाना)-पिण्डित, संपिण्ड्य

(८) प्रे (जोड़ना, जुड़ना, मिलना या मिलाना) - सम्पर्क

(९) मिश्रड़ मिलाना, जोड़ना) मिश्रित, सम्मिश्र

(१०) वृध् (बढ़ना) वर्धते, विवर्धते, वृद्धि

(११) यु (एक करना, जोड़ना या मिलाना)-युत, युति, संयुत, संयुति

(१२) युज् (जोड़ना)- नियोज्य, युक्त युक्ति, युक्त्या, योग, योजयितव्यम्, योजयेत्, योजिता योज्यम्, योज्य, योज्यते योज्यन्ते, योज्य विनियोज्य, संयुक्त, संयोग संयोजित संयोज्य, संयोज्यमान

(१३) अन्य शब्द - अधिक, आढ्या (विहीना का विपरीत) एकीकृत, कल्प (योग), धन (योग), उदय (योग) ।

२. घटाव -

(१) अस् (फेंकना, छोड़ना)- अपास्य

(२) इ (छोड़ना-अपाय)

(३) ऊन (कम करना)-ऊन, ऊनकम्

(४) ऋ (छोड़ना)- ऋण

(५) क्षि (नष्ट होना, कम होना) क्षय

(६) ग्रह (छीनना)- प्र गृ ह्य

(७) चि (कम करना)- अपचय, अपचयात्मक, अवचीयते, अपचीयन्ते

(८) त्यज (छोड़ना)- त्यक्त्वा, त्यजेत्, त्यज्यन्ते

(९) नि (लेना)- अपनयन, अपनयेत, अपनीते, अपनीय, अपनीयते अपनीयन्ते, समपनीय

(१०) पत् (गिरना)- निपातित, निपात्य, पतित, पातयित्वा, पातित, पात्यते

(११) युज (जोड़ना) वियोग, वियुक्ति

(१२) रह् (छोड़ना)-रहित विरहित

(१३) वृ (खोलना)- विवर, विवरकम्

(१४) वृज (बाहर करना) वर्जित, विवर्जित

(१५) शिष् (बाकी रखना) अवशिष्ट, अवशेष, विशिष्ट, विशिष्यते, विशेष, विशेषण, विशेषित, विशेष्यते, शिष्ट, शिष्यते, शेष शेषयेत्।

(१६) शुध् (धोना, साफ करना)- परिशुद्ध, परिशोध्य, प्रविशुद्ध, प्रविशोधयेत्, प्रविशोध्य, विशुद्ध, विशोधयेत्, विशोध्यन्ते, विशोध्या, शुद्धम्, शुद्ध, शुद्धि, शुद्धे, शुद्धयति, शुद्धयन्ति, शुद्धध्यन्ते, शुद्धेयेत्, शोधित, शोधनम् शोधनीयम्, शोधयित्वा, शोधयेत, शोध्यम् शोध्य, शोध्यते शोध्या, संशुद्धि, संशुद्धि

(१७) श्लिष् अलग करना)- अविशिष्ट, विशिष्ट, विश्लेष, विश्लेषित

(१८) हा (घटाना, कम करना)- परिहीन, विहीन, हित्वा, हीन

(१९) ह्रस् (कम होना)- ह्रास

(२०) अन्य शब्द-अग्र (शेष), अन्तर

३. गुणा -

(१) अस् (दुहराना,) अभ्यस्त, अभ्यस्य, समभ्यस्त, समभ्यस्य

(२) क्षुद् (कुचलना, मारना) क्षुण्ण, संक्षुण्ण

(३) गुण् (गुणा करना)- गुण, गुणक, गुणकार, गुणना, गुणयित्वा, गुणयेत्,

गुणित, गुण्या, गुण्यते, गुण्या, गुण्यात्, संगुण, संगुणय्य, संगुणा, संगुणित, संगुणा, संगुण्य

(४) ताड् (पीटना)- अभिताड़ित, ताड़ित

(५) वृत् (बार बार करना) उद् वर्त ना

(६) हन् (वध करना, मारना), अभिनिघ्न, अभिहत, अभिहत्य, आहत, आहत्य, आहन्यात्, घात, घ्न, निघ्न, निहत, निहत्य, प्रणिघ्न, प्रणिहत्य, विसंहति, संहति, संहत्य, संहन्यात्, समाहत, हत, हतम्, कृत्वा, इतहित्वा।

४. भाग -

(१) खण्ड (तोड़ना) खण्ड्यात्

(२) छिद् (काटना, तोड़कर अलग करना, बांटना) -छित्वा, छिद्यते, छिन्द्यात् छेद, छेद्य, संछेद

(३) भज् (बांटनां, भाग करना)- प्रविभजेत्, भक्त, भक्ते, भक्तव्या, भक्त्वा, भजन, भजित, भजेत्, भाग, भागहार, भागे हृते, भाजयेत, भाजित भाज्यम, भाज्य, भाज्या विभक्त, विभजेत्, विभजेत, विभज्य विभज्यते विभाजित विभाजयेत्

(४) भञ्ज् (फाड़ना, टुकड़ों में तोड़ना)- भंक्त्वा

(५) वृत् (अपने साथ)- अपवर्तन

(६) हृ (छीनना, बांटना)- अपहृत, आहरेत्, उद्धृत, उपाहर, विहृत, संहृतम्, संहृत, संहृता, समद्धृत, हरतु, हरेत, हर्तव्या हृत, हृति, हृते, हृत्वा, ह्रियते, ह्रियमाण

५. वर्ग-कृति, याव, वर्ग, वर्गितम्, वर्गणा

६. वर्गमूल-द्विगतमूल, पद, मूल, वर्गमूल

७. घन-धन, त्रिगत, वृन्द, सदृश, त्र्याभ्यास

८. घनमूल-घनमूल, त्रिगतमूल

आत्मा के पर्याय-रूप

२. द्वि - जोड़ा के पर्यायवाची-युग्म, द्वितय, यमल, यम, उभ जोड़ा । अश्विनी कुमार (२) के पर्यायवाची-अश्विन, दस । आंख (२) के पर्यायवाची शब्द-अक्षि, ईक्षण, दृक्, चक्षु, दृक्, नेत्र, नयन, चक्षुष, लोचन, विलोचन । हाथ के पर्यायवाची- बाहु, भुज, पंख या पक्ष (शुक्ल और कृष्ण)-पक्ष

३. (त्रि) गुण (सत्व, रज और तम) के पर्यायवाची- गुण । राम (परशुराम, रामचन्द्र और बलराम)-राम । अग्नि (दावाग्नि, जठराग्नि, बड़वाग्नि) अग्नि, ज्वलन, वह्नि, दहन, ऋतुभुक् पावक, हुताशन, शिखि, अनल । अन्य-त्रि, त्रितय

४. चतुर, तुरीय (चेतना की चतुर्थ अवस्था-सुषुप्ति, जाग्रत, स्वप्न, समाधि), चातुर्य
वेद (ऋक्, साम, यजुर, अथर्व) के अर्थ में -वेद । कृत (सत्ययुग जिसमें धर्म के ४ चरण थे), निगम, श्रुति । समुद्र (जल, लवण, क्षीर और श्वेत) के अर्थ में-अब्धि, पायोधि अम्भोधि, कूपार, वारिधि, रत्नाकर रत्नभण्(ार), अम्भोनिधि, समुद्र अम्बुनिधि, उदधि, अहम्बुधि, पयोधि, अर्णव सागर, अम्बुराशि सिन्धु, वार्द्धव

५. (पञ्च)- अर्थ (शब्द के पांच प्रकार के अर्थ होते हैं, संपत्ति पांच प्रकार की है) के पर्याय अर्थ । इन्द्रिय (पांच कर्म या ज्ञान की इन्द्रियाँ) अर्थ में - इन्द्रिय, विषय । बाण (कामदेव के पंचबाण) अरविन्द, अशोक, आम्र, नवमल्लिका, नीलोत्पल) के पर्यायवाची-शर, बाण, मार्गण, इषु, अक्ष, आशु, आशुग, विशिख, शिलीमुख, पृषत्क, सायक, पत्रिण । तन्मात्रा (५ तन्मात्राए, या ५ मूल स्वरमात्राए-अ,इ,उ,ऋ, लृ)-अर्थ में- तत् (३ अध्याय ।५४ श्लोक)

६. षड़, रस (६ रस भोजन के तिक्त, मधुर, लवण, काषाय, समअम्ल) । अंग (५ कर्मेन्द्रिय और मन), ऋतु (ग्रीष्म, वर्षा, हेमन्त, शिशिर, शरत् वसन्त) तर्क (षड् दर्शन)

७. सप्त । घोड़ों के अर्थ में (सूर्यकिरण के सात रंग सूर्यरथ के सात घोड़ों के समान हैं)- वाजि, अश्व, हय, तुरंग । मुनि (सप्तर्षि)-मुनि दिति । स्वर (संगीत के सात स्वर-षड्ज, ऋषम, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद), सर । पर्वत (भारत के सप्त पर्वत)-महीध्र, महीधर, भूमिधर,

सिद्धान्त दर्पण में प्रयुक्त अंकों के पर्याय शब्द

अंकों को शब्द में लिखने के अतिरिक्त गणित ज्योतिष में उन्हें दो और प्रकार से व्यक्त किया जाता है। सूर्य सिद्धान्त, सिद्धान्त शिरोमणि तथा ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त में किसी अंक के लिए वैसे अर्थ के शब्द का प्रयोग हुआ है जिनकी गिनती उतनी होती है। आर्य भट्ट ने अक्षरों की स्थान संख्या के अनुसार उनका अंकीय मान दिया है, दशमलव पद्धति में उनका स्थान दिखाने के लिए उनके साथ उपयुक्त स्वर वर्ण लगाये हैं।आर्य भट्ट की तरह 'कटपयादि' विधि केरल में प्रचलित है जिसमें 'कट' से आरम्भ (आदि) कर क वर्ग और च वर्ग के अक्षरों का अर्थ से ० तक है। इसी प्रकार 'ट' आदि ट वर्ग, त वर्ग का १-१० अर्थ है। प वर्ग का अर्थ १-५ य से ह तक १-८ हैं।

शब्द पर्याय द्वारा संख्या लिखने पर शब्दों का क्रम बायें से दाहिने होता है पर उनके द्वारा निर्दिष्ट अक्षरों का क्रम दाहिने से बायें होता है। (इकाई से आरम्भ) होता है। 'कट पयादि' अक्षरों का क्रम दाहिने से बायें होता है। आर्य भट्ट में सिर्फ सार्थक अंक (शून्य नहीं) लिखे जाते हैं जिनके साथ लगे स्वर के अनुसार उनका दशमलव पद्धति में स्थान निश्चित होता है।

शब्दों की तालिका इस प्रकार है-

० (शून्य)- आकाश तथा उसके पर्याय खाली स्थान में कुछ नहीं या शून्य होता है)-ख, अभ्र, नभ, गगन, अम्बर, वियद्, व्योम आदि ईश्वर अनन्त या पूर्ण अर्थ)-पूर्ण, अनन्त, विष्णुपद वामन के पद द्वारा नापा था, या विष्णु अर्थात् सूर्य का मार्ग), पुष्कर

१/४ - पाद, अंघ्रि
सपाद या साघ्रिं +१/४, आप्त, आ्य आदि उपसर्ग और प्रत्यय भी लगते है)
व्यघ्रिं -१/४ (ऊन, हीन आदि प्रत्यय भी लगते हैं।

१/२ अर्द्ध, दल (इसे जोड़ने के अर्थ में स, प्राप्त और आय् शब्द लगते हैं, घटाने के अर्थ में ऊन, हीन आदि लगते हैं।

१. एक - पृथ्वी के पर्याय वाची शब्द-भुव, भू, क्षिति, कु, धरणी, स्थिरा, वसुधा, भूमि, क्ष्मा, वसुन्धरा, महीधरा। चन्द्रमा के पर्याय वाची-चन्द्र, शीतग, क्षपेश, इन्दु, अब्ज, विधु, सुधांशु, शशधर, शशि, शीतकर, शीतभानु, सितांशु, निशानाथ, सितभानु, रजनीश

भूभृत्, कुभृत क्ष्माभूत्, गिरि, ग्रौ, मग, अग, अद्रि, इभ, शैल, पर्वत, वाद्धर्वग, शिखरि ।

८. अष्ट, हाथी अर्थ में (आठ दिग्गज आठ दिशाओं को धारण किये हुए है)- स्तम्भे रमा, दन्ति, द्रिप, गज, मतंगज, कुञ्जरु द्विरद । सर्प अर्थ में (आठ दिशाओं के सर्प)- नाग, भुजंग, फणभृत, व्याल, अहि, सर्प । वसु (आठ वसु थे)-उनमें एक के अवतार भीष्म थे । रूसी भाषा में यह शब्द अभी तक व्यवहार होता है)

९. नव, अंक (१ से ९ तक अंक होते है), रन्ध्र छिद्र-(शरीर में छिद्र हैं- दो आंख, दो कान, दो नाक, मुंह, मलद्वार, मूत्रद्वार) गो, नन्द नन्द (नवीं निधि या सम्पत्ति है)

१० दिशा (दस दिशायें, चार दिशा, चार कोण, ऊपर नीचे), अर्थ में- दिश आशा ३ ।५० तथा २ ।३ में), दिक्, काष्ठा, २ ।२ तथा ३ ।४९ में), हरित ३ ।२३ में ।

११. ११ रुद्र प्रसिद्ध हैं अतः शिव के पर्याय वाची शब्द-रुद्र, गिरिश ईश, शिव, भव, हर, ईश्वर, शंकर, पिनाकी

१२. अदिति के १२ पुत्र आदित्य (सबसे छोटे वामन या उपेन्द्र थे) । आदित्य का अर्थ सूर्य भी होता है अत: सूर्य के पर्याय वाची शब्द-अर्क, आदित्य, सहस्रांशु, सूर्य, रवि, प्रभाकर, तपन

१३. विश्व

१४. ब्रह्मा के एक दिन में १४ मनु या इन्द्र होते हैं अत: उनके पर्यायवाची शब्द-मनु, इन्द्र, शक्र, त्वाष्ट्र

१५. तिथि (एक पक्ष में १५ तिथि होती है ।)

१६. भूप (आठ लोक पाल और आठ दिकपाल-पृथ्वी या भू के १६ पालने वाले है) नृप (भूप का पर्याय) अष्टि (आठ आठ)

१७. घन (कम्पास द्वारा वृत्त के भीतर सबसे ज्यादा इतनी भुजाओं का समक्षेत्र बन सकता है), अत्यष्टि (अष्टि या १६ से ज्यादा)

१८. धृति

१९. अतिधृति

२०. नख

२१. वैश्व (६ ।६२)

२२. आकृति, वैष्णव (६ ।६२), विष्णु

२३. धनि (७ ।८९)- धनिष्ठा नक्षत्र अश्विनी से २३ वां है ।

२४. सिद्ध, जिन, प्रचेतस् (२४ जैन तीर्थकर, २४ प्रचेता के पुत्र थे)

२५. तत्व (महत्तत्व, तन्मात्रा, इन्द्रिय और पंचभूत कुल २५ है)

२७. भ (२७ नक्षत्र है)

३२. दन्त, रद (दांत ३२ है)

३३ देवताओं के अर्थ में (देवता ३३ या ३३ कोटि है)- सुर, निर्जर, देव, गीर्वाणा

४९. मरुत् (४९ पवन है)

Introduction[1]

In his Brihat Samhita, Varaha-mihira enumerates the requisite qualifications of an astronomer. According to him, an astronmer should be able to explain the differences in the various Siddhantas, to demonstrate with the help of instruments the moment of the Sun's turning to the north or to the south, and of his entering the prime vertical and the meridian, and to make calculation agree with observation.

Unfortunately, the true science of astronomy has been ousted by the pseudo-science of astrology, whose votaries are to be found in almost every town

---

1. Tycho Brahe (1546-1601 A.D.), a Dane, born at Knudsthrop, near the Baltic, three years after Copernicus (1473-1543 A.D.) teminated his career. The fame of Tycho has been obscured by his rejection of the Copernican doctrine, and the construction of a system of his own, combining the elements of the Ptolemaic and Copernican theories. He maintained the earth to be the immovable centre of the universe, but supposed the planets to revolve round the Sun, and to be carried with their centre in revolution round the earth. Samanta Chandrasekhar, contrary to Tycho's university education royal favour, was conserevative and well versed in Hindu - Astronomy by the study of Siddhantas without any royal patronage and was far from modern education even in 19th century i.e. 300 years ,after Tycho. But strangely enough Chandrasekhar adopts the planets' orbit as conceived by Tycho, who was usually deemed discreditable in those days for his hypothesis. Despite this late Prof. Jogesh Ch. Roy, an admirer of Chandrasekhar, however finds pleasure in comparing with Tycho.

and village of India at the present day. No doubt, there are men who have committed to memory some stray couplets from Siddhantạs, and can perhaps compute an almanac with the aid of tables. But, as Bhaskara has well said, an astronomer without a knowledge of spherics is what food is without clarified butter, a monarchy without its monarch, and an assembly without a speaker.

Astronomy as a science is not cultivated by those whose business it should be to do so. They would rather learn to read the thoughts of simple persons and pretend to predict future events, than dive into the mysteries of Kalpas and Yugas, for less observe the heavens. Those that have a desire to study the science have no means of doing it, while those that have the means have no desire to watch the movements of the planets. Our students of the English colleges are busy in cramming the answers to expected questions and our university men are too busy to have leisure to think about the revival of the indigenous sciences and arts of the country. It is not strange therefore that the mathematical science of astronomy has been relegated to the halfread, illiterate, fortune-tellers who are not ashamed to assume the title of mathematician. For, the name mathematician (गणक) has been degarded to mean only an astrologer.

In this state of indigenous sciences, it is singular to find a man born and brought up in the recesses of the hills of Orissa, far removed from all educational activity and the influence of imported western civilization, silently trading his way into such a difficult science as mathematics. It is a unique experience in the department of national development to find a man really striving after

knowledge for its own sake, under difficulties whose magnitude is no less startling than the boldness of his attempt.

This is my apology for bringing before the public, a Sanskrit work written entirely in the way of our ancient Siddhantas and never meant to see the light. It is the life-long labour of Chandrasekhara Simha Samanta of Orissa, written in a language which few men care to study in these days of English education.

Modern Europe boasts of discoveries, one of which alone would have been the glory of the past. The science of astronomy has been developed to so great an extent as to shed a lustre on the bright records of original and patient researches in the domain of Physical Science. The telesçope, the spectroscope, and last but not the least, the art of photography, have gone hand in hand in the service of dillgent workers. In these days of "scopes" and "meters", it may be thought useless to put forward the poor work of a Hindu whose education is in no way superior to that of an astronomer of pre-telescopic Europe. And there are men, too, who have thought that much nonsense has already been written about him.

Let them but calmly take stock of the present state of Hindu astronomy. Let them find out a couple of mathematicians, brought up wholly in sanskrit studies, who can intelligently attack the intricate calculations of a solar eclipse. Nor is there any noticeable endeavour to revive the science. What with natural apathy, and what with want of encouragement by endowments, no addition to the stock of the world's knowledge has been made by my countrymen for many a long year. If in these

circumstances something, however poor, is laid before us, something, however crude, is evolved from within, we should rejoice over it.

Whatever may be thought of the merits of the work, I regard it as a misfortune that the author has not found a man to introduce his work, better qualified than myself, whose daily avocations run in a different groove. For my part, I shall deem my efforts amply rewarded, if my countrymen, to whom original researches are as yet a thing of the future, find in the life and doings of my author a living example of what patient inquiry after truth and diligent struggle after knowledge can achieve. But I caution them again against high hopes. To apperciate the man, one must compare his work with others produced under similar conditions. It will be unfair to expect anything new in the work which will be useful to those who have studied European Science. Let me therefore briefly recount a few bright names from the annals of our ancient astronomy that the present work may be taken and its true worth.

Not to dive into the antiquity of Hindu astronomy, which is as old as the Vedas and regarding which abler men have measured swords, let me begin the story from the point where we tread on the firm ground of history. It begins with *Aryabhatta* of *Kusumapura* (Pataliputtra), the Andubarius of the Greeks, the *Arjabhara* of the Arabs, and the Indian founder of the theory of the earth's daily rotation. He was born in the Saka year 398 (A.D.476) and wrote his famous work at the age of twenty-three. It was he in whose work we find, as far as our present knowledge goes the first successful attempt to solve indeterminate equations

of the first degree. He enjoyed a wide reputation which can only be explained by supposing that he was an original observe and made improvements upon older astronomy.

Hindu astronomy was then passing through the state of childhood, and a few years later, we find *Varaha-mihira* of *Avanti* (Ujjayini), adoring the court of Vikramaditya the Great, about whom many a tale of adventure and narrow escape from death has been recounted. Varaha's encyclopaedic knowledge made him famous. But he is remembered more as a compiler than as an original worker. His astronomical compilation, named Panchasiddha-ntika was written about the Saka year 427 (505 A.D.)

Next, the name of *Brahmagupta*, son of Jishnu, introduces an important chapter in the history of Sanskrit astronomy. He wrote his work, Brahmasphuta-siddhanta in Saka 550 (628 A.D.) at the age of thirty, somewhere near Rewa. He was a practical astronomer, and made several corrections in the older astronomy. Indeed, the form in which we find Hindu astronomy at the present day, dates from him. He was a consummate algebraist, from whom the Arabs got their knowledge of the science. An indeterminate equation of the second degree, of which he gives solution, was a prize problem in Europe as late as the 17th century.

But the fame of *Bhaskar* born in the Saka year 1036 (1114 A.D.), near the Sahyadri (Western Ghats), threw all his predecessors into the shade. He is a glory to us, a wonder among Europeans. His great work Siddhanta-Siromani, is one of the standard treaties of the present day. He appears to have made use of the Differential Calculus.

With the death of Bhaskara, the living breath of mathematical science parted from India. Repeated invasions by a barbarous nation poured forth an abundance of calamities and in the troubled times the sacred muse of learning fled and hid herself among a herd of commentators in the Deccan. In the dark ages that followed, amidst the petty dissensions of a host of semi-indepndent States, we find intellectual effort at a stand-still; men were content to chew the cud of what their predecessors had thought and done. At last, one name of this period is worth mentioning. This is *Ganesa* of Nandigrama who wrote his Graha-laghava in Saka 1442 (1520 A.D.), a work which has been employed as an easy hand-book of astronomy in some parts of the country. Arab influence and, latterly, the contact with Europeans did not benefit the science much. It was during the reign of Jayasimha of Jayapura so late as the 17th century, that the Arabic Almagest and Euclid were translated into Sanskrit, and it was he at whose instance five observatories were built at various places in Northern India.

The long chain of astronomers was snapped asunder for a period of at least four hundred years. No doubt, there were astronomers, as there are now, and some of them may have for a time enjoyed a reputation, however local in character. But they have hardly left any permanent mark on the progress of the science.

Will it be estimating this work too highly if we regard Chandrasekhara as forming a link in the long chain ? Be that as it may, it is a most gratifying thing that Chandrasekhara has not laboured in vain. His work has already exercised an influence upon Hindu astronomy, and hence upon Hindu society.

I say upon Hindu society, to which a correct knowledge of the ever-changing positions of the heavenly bodies is neither a matter for the inquisitive, nor one which may be safely let alone. For, Hindu life is nothing if not a routine of religious practices, due observance of which necessitates a knowledge of the positions of the planets and the stars. Indeed, a correct almanac is an indispensable equipment of every Hindu household. All religious observances and rites are regulated by the almanac, and some of these require very accurate determinations. For instance, a Hindu must know the exact moment when a particular position ends and another begins.

It has, however, been observed that no two current almanacs agree in their computations. A fierce controversy is going on between the conservatives and the liberals in Hindu India about the correction of almanacs, and therefore about the data of the Siddhantas. The orthodox of the Hindu community refuse to believe in the existence of errors that have crept into the figures of the old Siddhantas in course of time. To use the foreign Nautical Almanac to regulate the religious observances is out of the question. Any correction, if necessary, must come from within, from a Hindu uninfluenced by foreign education. It is not for Europe, with all her brilliant scientific discoveries and wonderful inventions of labour-saving machinery, to take the place of the old Rishis, whose hallowed names are associated with every department of useful knowledge. Europe may be our guide in matters temporal, but must not dictate a work in matters spiritual. Materially, a Hindu is

hardly of old days, though spiritually, I believe, he is still the same.

The value of the Siddhanta-darpana, the work of an orthodox Hindu, showing errors in our current almanacs, cannot thus be over-rated. Here is a man who has practically tested the elements hitherto followed, and found reasons for correction. And he has authority for doing so from the honoured Rishis, who have given their sanction to the adoption of such corrections as may be necessary for the purpose of making calculation agree with observation.

The influence which Chandrasekhar's work has already exerted upon society is not inconsiderable. Some twenty-three years ago a meeting of learned Panditas and Hindu astronomers was called at Puri to select an almanac according to which the numerous daily rites of worship were to be conducted in the temple. The meeting decided in favour of the almanac computed after this work. One of the Chandrasekhar's pupils has been computing an almanac every year, which is used not only at Puri but throughout the greater part of Orissa. Another pupil of his publishes a Bengali almanac which has a by no means insignificant sale. Thus Chandrasekhara has already gained a foot-hold in Hindu society and has inaugurated silently but effecually an advance upon the current almanacs. At any rate, he has silenced all opponents, and has made the question of correction possible in the near future.

To fully apperciate him, it is necessary to say a few words on his early life and education. Some four years ago, I first made his acquaintance, and from conversation with him on astronomical

subjects, I was surprised to find in him a man of genius and extraordinary merit. Since then I have looked into his work, Siddhanta-darpana, written on palm leaves in Oriya character, the result of his life-long labour in the field of astronomical research. Two years ago[1] he was honoured by Government with the title of Mahamahopadhyaya, a title hitherto enjoyed only by Brahman versed in Sanskrit lore. Chandrasekhara however, is not a Brahman but a Kshattriya by caste.

He was born in the Saka-year 1757 (1835 A.D.)[2] in the small village of Khandapara, some 50 or 60 miles West of Katak, amidst the hills and jungles for which Western Orissa is famous. It is the chief town of the Raja of Khandapara - one of the tributary chiefs of Orissa. Chandrasekhara belongs to the Raj family, the present Raja, Natabara Mardaraj, Bhramaravara Ray being a son of Chandrasekhara's eldest cousin. The full name of the author is Chandrasekhara Simha Samanta Harichandana Mahapatra. Harichandana and Mahapatara are mere titles bestowed by the Raja of Puri, whose influence upon the destinies of the Rajas of Orissa is still as unbounded as was that of the Pope of Rome on the vassals of medieval Europe. He is styled Samanta as befits a member of the Raj family. In Orissa, however he is best

---

1. The sanad conferring the Mahamahopadhyaya to Samanta Chandrasekhar bears the date 3rd June, 1893. Hence this portion was written by late Prof. Jogesh Ch. Ray in the year 1895 and the article was complete and printed finally in the year 1899.
2. Prof. Jogesh Ch. Roy has simply added 78 to the Saka era 1757 to get the A.D. But actually the date of birth when calculated comes to be 11th January, 1836 A.D.

known by the familar name of Pathani Saanta (corrupted from Pathan and Samanta), a nickname given him by his parents on account of their first two children having died in infancy.

At an early age Chandrasekhara received instruction in Sanskrit. For sometime he studied Sanskrit Grammar, Smritis and Puranas, logic and medicine, and read all the important Kavyas in the original. His education has thus been varied and many sided. But it has stood him in much better stead than the modern elaborately arranged curriculum of the English schools, through which he would have been thrust, had he lived nearer a town.

At the age of ten, one of his uncles[1] taught him a title of astrology. He shewed the young Chandrasekhar some of the stars a satisfy his curiosity so natural in young children and thus gradually initiated him into the mysteries of astrology. At this age, his extraordinary desire to test for himself the position of the stars as they changed night after night was predominant. The determination of lagnas is a very frequent necessity in horoscopy; and the varying position of the planets among the stars, without a knowledge of which astrological predictions could not be made, led him to watch their movements. This idle curiosity exhibited in star-gazing developed into the habit, of a really fruitful study of astronomy. There was, however, no teacher who could instruct him in the science, and he was quite ignorant of any language save Sanskrit and his mother-tongue

1. It was his father but not uncle according to the biographer Pt. Chandrasekhar Mishra of Khandapara.

Oriya. He found, however, a few Sanskrit Siddhantas in the family library, and applied himself diligently to master them with the help of commentaries.

At the age of fifteen, when he came to learn the meaning of lagna and the rules for calculating ephemerides of planets, he was surprised to find that neither did the stars apear on the horizon at the right moment, nor could the planets be seen in their right places. Again and again, he measured with a graduated rod the relative distances of the heavenly bodies in the vain hope of finding an agreement between calculation and observation, and, again and agian his hopes were dashed to the ground. Was it possible that the rules and the figures of the famous Siddhantas were not accurate enough, or was it possible that he had made errors in his daily observations? Correct observation was the only test to settle the question. There were no mathematical instrument-makers to supply him with the requisite instruments. The old Siddhantas give brief instructions for constructing them, and he had no other alternative than to make for himself, a few primitive instruments for measuring time and angular distance.

Some of my readers may be desirous of knowing something of his observatory. It was the clear, blue vault of the heavens that was his observatory; and its equipment consisted of an armillary sphere and a vertical wheel as substitutes for modern transit and alta-azimuth, and the time-honoured clepsydra took the place of the sidereal clock. Of course, the all-useful gnomon found a place in the observatory, and I am informed, he had also a self-revolving instrument

made of the pericarps of the Bottle-Gourd (Lagenaria Vulgaris) with water and mercury. But it was more of the nature of a curiosity than of much practical use. The instrument, of which he made constant use, was one devised by himself. This, which he is fond of calling his Manayantra (measuring instrument), may be properly called a tangent-staff, it consists of a thin rod of wood, twenty-four digits long, at one end of which is fixed another rod at right angles in the form of a T. The cross-piece is notched and also pierced with holes at distance equal to the tangents of the angles formed at the free extremity of the other rod. Of course, such a rude instrument did not admit of being so divided as to enable him to measure a degree with any accuracy.

But it is a real pleasure to see him handling his Manayantra with a precision marvellous to behold. Constant practice has given him such facility with it, that he would not care to have recourse to his other instruments although better suited for measurement of vertical angles. Indeed, in most cases, mere inspection is often sufficient to enable him to hit the angle to the nearest degree.

One instance of the perfection he has attained by practice came before us when I saw him for the first time. Some of my friends doubted his pretensions to practical astronomy, and were desirous of testing his knowledge. One evening when Mars and Venus were about 6° apart in the western sky, he was requested to show, if he could, with the help of any improvised instrument the actual distance between the planets. After a moment's pause, he made his manyantra out of a stick 42 digits long, attaching a crosspiece of 4-1/2

digits to one end. The trigonometrical functions of sines and cosines were all committed to his memory. The necessary calculations were mentally made, and his instrument was ready in a few minutes.

On this occasion, he saw a telescope for the first time. He had heard of its wonderful powers, but had no idea of its performances. He requested me to show him the planets through one. Unfortunately, I had with me then a telescope no bigger than a refractor of 3-1/2" diameter. This was adjusted for him with a power of 80. The keen delight with which he looked at the varied and picturesque appearance of the moon, absorbing him for sometime can better be imagined than described. When the novelty of the aspect had abated a little, he wanted to know the magnifying power. He was told to find it out for himself, if he could. The question is itself puzzing, and I did not expect any answer. But he startled me by saying that the instrument magnified about one hundred diameters. He had measured the enlarged image of the moon as seen through the telescope and had compared it with the appearant to diameter well-known to him.

The planet jupiter was next shown through the telescope. I should rather say that he directed the instrument to the planet and saw it himself. The apparent motion of the planet quickened by about a hundred times through the instrument, was followed by him for sometime till he could see the belts and the satellites to his heart's content. It was at this moment that he gave vent to his bitter regret that he had not the advantage of such instruments in his younger days.

Next morning we had a talk about *tithis*. I said

that the almanac-makers of Bengal would not be believe in any variation in accepted duration of the tithis. Hearing this, he was silent for a minute or two, as if he doubted the fact. Being pressed for his opinion, he quoted a line from his work, meaning that arguments can never defeat the results of direct observation.

He had read in a vernacular text book that the sun sometimes exhibited dark spots on his radiant orb, and was anxious to see if it was really so. I asked him to accept the fact as true; but he said he would not believe it unless he saw spots with his own eyes. To this I retorted by asking if he had ever believed in the existence of the seven atmospehrs of the Siddhantas. His reply was that the statement was to be taken at what it was worth, and he had no opinion of his own to give. The minimum sun-spot period had been passing; but a few that he saw made him reflect upon them a long while.

None can read his life without gaining a fresh insight into the marvellous thoroughness with which our ancestors devoted themselves to their studies, our universitymen being only surface-deep in subjects more than one. The living breath of science has departed from India with the departure of men whom Chandrasekhara had made his ideal. He is an adherent of truth obtained by direct observation, and with all his respect for the ancients, would not hesitate to denounce a Sastric authority, if a proof to the contrary were obtained. Were he placed in a well-equipped observatory of modern days, I doubt not he would enrich science with his assiduous labour and valuable observations.

Unaided and surrounded, as he was by practical difficulties, what patient labour he must have undergone in his early days to observe and workout practically the astronimical elements of the planets. What numberless observations must he have made to test every figure used in the Siddhantas, in order to see if it remained true or not. Night after night passed away in the all-absorbing business of star-measurement. An eclipse of the sun or of the moon was an event in his life never to be forgotten.

Thus it was that his early days passed. To the uninitiated, his was frivolous work fit for children in want of better employment. Those who cared to understand his business failed to appreciate it. What if the planets moved out of their path ? Besides, was it not the work of professional astrologers ? And was it not unbecoming one in his position ? He began to be called by the people Raj-Jyotishi as a sort of nickname. The Raja of the State considered himself degrated by the profession of his uncle, and could never countenance his pursuits. Thus his relations with the Raja have become far from cordial, and the later has been unable to appreciate the utility of his work.

At the age of twenty-three, Chandrasekhar began to note down systematically the results of his observations and three years later the idea of embodying them in a work flashed into his mind. By this time, his mastery over Sanskrit had become so complete that he could compose elegant verses in it impromptu. Indeed, the composition of his work had begun in his mind long before it was written on palm-leaf. In this way, between observation and measurement and composition his days were divided. He was increasantly engaged

with his work for the full period of six years, and the first copy was not ready before he was thirty.

This constant strain upon his body which had never been strong began to undermine his system. He contracted a disease which has been his constant companion. Besides, the privations he had to bear, consequent upon his scrupulous adherence to the Sastric injunctions of strict vegetarianism, proved too much for his naturally weak system. Dyspepsia with its attendant colic has impaired his health. At times it becomes so painful that he is compelled to break off conversation and roll down on the ground till the attack is over. Full meals, frugal as they are, he has not enjoyed for the last thirty years, and has seldom permitted himself the indulgence of even half meals twice a day. The study of astronomy has been a passion with him, and any medicine you may prescribe for him, must neither contain any forbidden ingredient, nor, what is more important, interfere with his daily work. Even in his present invalid stale he would willingly sit up a whole night if it were for anything connected with his favourite subject. When he came here to receive the title of honour conferred upon him, he could not be persuaded to stay a single day after the Durbar, as an eclipse of the Sun was to occur a few days later. And how could he stay away from his observatory, and allow such a momentous event to pass by unnoticed ?

His naive simplicity and unassuming manners have rather been a drawback than an advantage to him. The common people, who do not understand the difference between astrology and astronomy, pester him so much with questions on their destiny, that it is only his amiable disposition that makes

him endure the constant infliction. Even those who might be expected to know better will not scruple to ply him with absurd questions and waste the few moments left to him between the beginning of one series of daily devotions and the end of another.

If he is a practical mathematician, no one is so unpractical in worldly matters as he is. Simple as a child, he depends upon his servants for his guidance. Neither is he well off, in the sense of possessing a competency in life; and, related as he is to a Raja, he is unable to make both ends meet. A retinue of attendant hereditarily maintained in his family has to be supported in the usual manner. The small income of Rs.500 a year from a few small villages, and a quantity of food grains from his tenants, are hardly sufficient in these days of high prices. Poverty has pinched him in his old age and has compelled him to incur a large debt.

The general public does not care to know his incomings and outgoings, his privations and star-gazings. "What has he done after all ?" - asks the impatient critic. To him, I would say, is it not enough to find in this man a true lover of science who regardless of other peoples unfavourable opinion of his work their taunts and dissusions, has devoted his whole life to the one pursuit of knowledge; who has shown the way to original research amidst difficulties serious enough to dishearten men in better circumstances who has employed his time usefully, instead of frittering it away like the usual run of men of his rank, on a work which guides the daily routine of millions of his countrymen ?

I do not pretend to express any opinion on the literary merits of his work but it appears to me that

the metrical composition alone, apart from its value as a contribution to Hindu astronomy is such as to entitle him to a high place among the writers of Sanskrit verse of the present day. It contains, as he tells us at the end of the work, 2,500 slokas of various poetical metres. Of these 2,284 verses have been composed by him and the remaining 216 quoted from the old Siddhantas. Of the latter, the Surya-Siddhanta and the Siddhanta-Siromani have been very largely drawn upon. Indeed, as Bhaskara has Brahmagupta for his guide, when writing his Siromani, Chandrasekhara has, in the main, followed in the footsteps of Bhaskara.

But Chandrasekhara has not been a blind follower of his master. The elements of the planets, given by Bhaskara, have not been accepted by his disciple, and for the simple reason, that they are not correct for the present day. Bhaskara's elements are not accurate, though there is no reason for doubting the accuracy of his observations. This fact is, he had to depend upon his predecessors - probably Brahmagupta was his main guide - for the positions of the planets and was thus led to erroneous results.

Chandrasekhara had the advantage of Bhaskara's observations. The latter has, of course, nowhere recorded his observations. But given his date and his elements, it is easy to find the positions of the planets as he must have observed them. For the elements if employed to calculate the positions of the planets after a long interval, may lead us to wrong results; but, it employed for places nearer his time, will be in accordance with his observations. Thus, furnished with one set of position at a given date, Chandrasekhara himself supplied the other

set required, and the result obtained is what Chandrasekhara has given us in the present work. For easy reference, the sidereal periods as he ascertained them, are given below side by side with those of European astronomy, the Surya-Siddhanta and the Siddhanta-Siromani. It is not my object to criticise how far the constant employed in these two Siddhantas were true when they were observed, though it will be clear from the comparison that they are certainly erroneous for the present time. It is easy to follow when someone has led the way; but it needed the art of a rural Pandit, guiltless of western "fire" to prove their incorrectness and to pave the way for further progress in this department. (See table 1)

It will be seen from the above that Chandrasekhara has practically assumed the sidereal periods of the Sun and the Moon, as given in the Surya-Siddhanta, but has materially advanced upon it as regards the periods of the other planets. Having regard to the comparatively slow motion of Jupiter and of Saturn, and the nature of the instruments used, it would have been a surprise if closer approximation to their true periods were made.

Let us now compare the mean inclinations of the orbits of the planets to the ecliptic.(See Table 2)

On account of the difference in the planetary theories and in the method of calculation between modern astronomy and our Siddhantas, the eccentricities of the planetary orbits cannot be compared with advantage. But as they made no difference in the case of the Sun and the Moon, their greatest equations are given here for comparison. (See Table 3)

(TABLE I)
SIDERAL PERIODS IN MEAN SOLAR DAYS

European Planets Astronomy (1)		Surya Siddhanta + Difference (2)			Siddhanta-Siromani+Difference (3)			Siddhanta Darpana+Difference (4)		
Sun	365.25637	365.25875	+	.00238	365.25843	+	.00206	365.25875	+	.00238
Moon	27.32166	27.32167	+	.00001	27.32114	-	00052	27.32167	+	.00001
Mars	686.9794	686.9975	+	.0181	686.9979	+	.0185	686.9857	+	.0063
Mercury	87.9692	87.9285	-	.0107	87.9699	+	.0007	87.9701	+	.0009
Jupiter	4332.5848	4332.3206	-	.2642	4332.2408	-	.3440	4333.6278	+	.0430
Venus	224.7007	224.6985	-	.0022	224.9679	-	.0028	224.7023	+	.0016
Saturn	10759.2197	10765.7730	+	6.5533	10765.8152	+	6.5955	10759.7605	+	.5408

TABLE 2

		Eng.Ast.			Surya S.		Siromani		Darpana	
Mercury*	...	7°	0′	8"	5°	55′	6°	55′	7°	2′
Venus*	...	3	53	35	2	46	3	6	3	23
Mars	...	1	51	2	1	30	1	50	1	51
Jupiter	...	1	18	41	1	0	1	16	1	18
Saturn	...	2	29	40	2	0	2	40	2	29
Moon	...	5	8	48	4	30	4	30	5	9
Obliquity of the Ecliptic	...		23	27	24	0	24	0	23	30

The inclination given in the Siddhantas is reduced to the geocentric system. The general reader may be reminded *that the inclinations are all subject to variation* and that the old Siddhanta values were not so far wide of the truth as they appear from the table.

TABLE 3

		English Astronomy			Surya-Siddhanta**			Siddhanta Darpana**		
Sun	...	1°	55′	19"	2°	10′	31"	1	55′	33"
Moon	...	6	3	41	5	2	46	5	1	10

** According to Siromoni, the Sun's equation is the same as is shown under Surya-Siddhanta and the Moon's equation is slightly less.

It will be needless to compare the rates of motion of the nodes and apsides. It is possible for modern European astronomy, with instruments enabling it with ease to measure the three thousand and six hundredth part of a degree and with its engines of higher methematics to handle intricate problems, unheard of before, to deduce the elements of orbits from a very few observations made at no distant dates. But it requires the lapse of years - nay centuries - to do the same with primitive instruments and equally primitive mathematics. The motions of the nodes and apsides are so slow that Bhaskara despaired of ever measuring them. Chandrashekhara was equally in despair in these cases. But as the positions of the Moon's nodes and perigee are often required, and their motions comparatively rapid, I quote their side-real period in mean solar days.

	Eng. Ast.	Surya S.	Siromani	Darpana
Node	6798.279	6794.395	6792.254	6792.644
Perigee	3232.575	3232.094	3232.734	3232.657

The reader will notice that Chandrasekhara has devised a correction to be applied to the Mandochcha of the planets, Mercury, Mars and Saturn. He has called it Parochcha and the greatest amounts are 11′ 20′, 7° 30′ and 5° for the three planets respectively (Siddhanta Darpan V.76).

It is, however, in computing the Moon's place that Chandrasekhara has discovered some original correction, - original in the sense of their having been unknown to the ancient astronomers of our country. It is curious to note that they failed to discover the perturbation, known as *Evection* which is said to have been detected by Hipparchus about

150 years B.C. It is an irregularity which may put the Moon forward or backward over a degree. Pandit Sudhakar Dwivedi informs us in his excellent manual, called Ganaka-Tarangini, that Munjala (A.D.933) had something like "evecation' in his karana named Laghumanasa. He appears to have been the oldest Hindu astronomer who detected the irregularity, through curiously enough, his successors including Bhaskara left it unnoticed.

The next large irregularity of the Moon, called *"variation,"* has a period of one month, and a maximum of 39′31″. This inequality does not affect the time of an eclipse, and the fact sufficiently explains its absence in Sanskrit Siddhantas.[1] It is said to have been detected by an Arbian astronomer, Aboul Wefa about the year 975 A.D., and re-discovered by Tycho Brahe in the 16th century. The last large inequality of the Moon's place is called *"annual equation,"* and has the maximum amount of 11′9″. This was also discovered by Tycho Brahe.

It is singular that Chandrasekhara is the only Indian astronomer who has detected all the three important irregularities of the Moon. As has been said before, he did not know English and had not means of knowing of the existence of the irregularities from any foreign source; and the methods of applying the corrections together with discrepancies between his values and those of Europe leave no doubt in our mind that he must be credited with their discovery. He has named the

---

1. From Dwivedi's Ganaka-tarangini, it appears that Nityananda in 1639 A.D. used a correction called Pakshika. But it is not clear from the name alone, if it had any connection with "variation".

inequalities, *Tungantara*, *Pakshika* and *Digamsa*, with the maximum amounts of 2°40′, 38′12″, and 12′ respectively (S.D.VI.7).

For those who may be inclined to compare his corrections, his method of applying them is briefly described here. After the equation of centre (maximum amount 5° 1′ 10″) has been applied to the mean Moon, call the result Ist Moon M_1 Then add to, or subtract from it, according as the anomaly happens to be within the first six or the second six signs.

$$\frac{160' \times \text{Sin}[A - (0+3)]}{R} \times \frac{\text{Sin}(M_1 - 0)}{R} \times \frac{\text{Ist Moon motion}}{\text{mean motion}}$$

where A stands for the Moon's apogee, and 0 for the true Sun. The two signs (±) are to be taken in the case of the light and dark halves of each lunar month respectively. The result obtained is called the 2nd Moon, M_2.

To apply the Pakshika correction, take

$\frac{M_2 - 0}{3} = a + \frac{b}{3}$ (say). Subtract $\frac{b}{3}$ from 3 (Signs)

and take the less of two quantities, a and

$(3 - \frac{b}{3})$ and say, it is y. Then $\frac{\sin 2y}{90}$ is the

corection required. It should be noted that the denominator (90) is not constant, but can be obtained. The correction is to be added to, or substracted from the 2nd Moon, as the latter lies within the first or the second quadrature. Call the Moon thus corrected, the third Moon, M_3-

Now, take 1/10 of the Sun's equation and mutiply by the first Moon's motion, dividing by its mean motion. Add the result to the 3rd Moon, when the Sun's equation is subtractive, and subtract from it when the Sun's equation is additive. After this, the other corrections (such as Bhujantara), common to all the planets, are to be applied before the Moon's place becomes apparent.[1]

On a cursory view, the amount of Tungantara inequality appears double of that of evection. But if we take the Moon's greatest equation of centre into account, the apparent discrepancy vanishes. For, the amount of the greatest equation of the Moon is 6° 18′, and the maximum evection 1° 20′ making the total of 7°38′. Chandrasekhara has 5°1′ as the greatest equation and 2° 40′ as the greatest Tungantara, making the total of 7° 41′. The other inequalities discovered by Chandrasekhara are about the same as those in use in English astronomy.

The astronomical constants adopted by our India astronomers open up a large field for enquiry. It is not my purpose to discuss their bearings upon the antiquity of Indian astronomy. But I cannot but remark that it is often reiterated in season and out of season than substantiated, that the Indian astronomers borrowed largely from Greek astronomy. As far as I am aware, this assertion is based upon (1) the identity of certain Sanskrit and Greek astronomical terms, (2) the fact of Garga praising the Yavanas for their proficiency in

1. It should be noted here that the last-named inequality (Digamsa) is also applied to the Moon's node in the above-mentioned manner (S.D.VIII,33).

astronomy, and (3) the presence in Sanskrit of certain astronomical treatises words admittedly of foreign origin. This is not the place to discuss the subject throughly. But as far as my knowledge goes, these arguments, when weighed against others, are not at all convincing.

The presence of Greek terms in Sanskrit is certainly a strong presumption in favour of the theory. But when the uses of the terms are taken into consideration, it is found that with the possible exception to the word "Kendra'[1] meaning "anomaly", all the rest properly belong to astrology. Of course, when once the terms had been introduced into Sanskrit, our astronomers did not hesitate to use them freely in astronomy, side by side with pure Sanskrit terms. The passage where Garga extolled the Yavanas does not occur in an astronomical work, but in a Samhita which was rather a work on astrology than astronomy. Nor can we logically infer from the passage that the Yavanas were proficient in astronomy rather than in astrology, or that the Hindus borrowed the knowledge from them. The name Yavanacharya occurs only in connection with Samhita. Next the presence of Romaka[2] and Paulisa Siddhantas among others of purely Indian origin proves nothing beyond the bare fact of their presence and I do not see how it can be taken to imply that the Hindus had not obtained the constants of their Siddhantas

1. See, however Bhaskara's derivation of the word in his Siromani.
2. The Romaka-Siddhanta of Varaha-mihita is in no way superior to his Saura-Siddhanta, as was remarked by himself.

by independent observation. On the contrary, the fact of their retaining the foreign name (at least the name Romaka), shows that the foreign Siddhantas were distinct from what were Indian, and there is no proof that the Romaka or any other foreign Siddhanta was ever in use in this country, superseding the purely Indian productions. To give an analogy, a Sanskrit translation of the British Pharmacopoeia will no more prove the absence of Charaka than an English translation of the later will prove the absence of the former. All that we can logically infer is that there was intimate intercourse between the Hindus and the Yavanas, a fact otherwise known from political history. The Hindus may have been indirectly influenced by the teachings of the Yavanas. But it must be admitted that the Yavanas may have been also influenced by their presence among the Hindus.

We can safely go so far, omitting all sorts of possibilities and vague conjectures. Having regard to our ignorance of the state of astronomy and its gradual development in India anterior to Aryabhatta, and our equal ignorance of the source of the knowledge credited to Hiparchus, it is hazardous to speak of the indebtedness of the one nation to the other. If the Hindus learnt the science of astronomy from the Yavanas, how is it that the constants of sanskrit astronomy are so different from those of Ptolemy ? How is it that the early Hindu writers were unacquainted with such useful as well as remarkable facts as the precesion of the equinoxes, or the evection inequality of the Moon ? On the contrary, the constants ought to have been identical, not only becaus they are believed to have a common origin, but also because they represent

facts, as true for India as for Egypt or Greece. When one learns a science from another, it is natural to expect to find him copying not only the theory but also the practice, write or wrong. Dr. Thibaut repeats the suggestion made by Biot, that the early Hindus learnt their astronomical theories probably from Greek astrologers, and, the Doctor adds, also from almanac-makers, whose knowledge was as limited as that of there proto-types in the present day.[1] This is certainly an ingenious hypothesis; but as has been already remarked having regard to our ignorance respecting the growth and development of the science in India as well as in Egypt, we cannot but regard the hypothesis as not proven. I am inclined to believe that our knowledge of the source of Hindu astronomy has not advanced beyond the point where Colebrooke found it. All that can be safely asserted is what the illustrious oriental scholar said, that "the Hindus have certainly received and welcomed communications from other rations on topics of astrology and we add, that their indebtedness to Greece for the knowledge of scientific astronomy is still an open question.[2]

But this a digression. We have said that Chandrasekhara had made a real advance upon existing Hindu astronomy. But the best test of a theory lies in facts. For the reason given below, it is not easy, however, to satisfy oneself whether his

---

1. *See,* Introduction to Pancha-Siddhantika by Dr. Thibaut and Mm. Suddhakara Dwivedi.
2. It is much to be desired that some competent scholar would collect the arguments for and against the theory of indebtedness, and let us know how far, and in what-direction, Greek influence on Hindu astronomy extended.

ephemeris is correct, and how much confidence may be placed in it. For rough comparison, the places of the planets computed by him are shown below, toegther with their places, first according to the British Nautical almanac, and next according to a widely circulated Bengali almanac said to have been computed after the Surya-Sidhanta. The correction for precession in the places given in the Bengali almanac has been made by adding 20°54′ to them in accordance with the almanac. Besides these, I append ephemeris for two other days from the Nautical almanac and the Siddhanta-Darpana.

For various reasons, neither Chandrasekhara's, nor for that matter - any other Hindu almanac can coincide with the Nautical almanac. Neglecting minor corrections unknown in our almanacs, there is the determination of the exact amount of precession, without which no comparison is possible with European almanacs. To avoid it, the relative distance of the planets may be taken. It will be seen that while the Bengali almanac may be in error by as much as 4°, the error in the ephemeris by the Siddhanta-Darpana is limited to half-a-degree. The reader will, however, remember that a Hindu astromoner depends upon unaided vision, and is satisfied if the longitudes are correct to a half degree. Accepting this as our standard, the ephemerides by the Siddhanta-Darpana compare favourably with those of the N.A., while the greater discrepancies in the Bengali almanac conclusively prove how urgent has been the question of the revision of our existing almanacs in the light of observations now made. (See Table)

LONGITUDES OF PLANETS OF THE 31ST JANUARY 1893 (KATAK, 6 p.m.)

	Nautical Almanac (1)	Siddhanta-Darpana From Fixed Aries (2)	Siddhanta-Darpana From Vernal Equinox (3)	Bengali Almanac From Fixed Aries (4)	Bengali Almanac From Vernal Equinox (5)	Dec. by N.A. (6)	Dec. by S.D. (7)
Sun ...	10° 11° 54′	9° 19° 31′	10° 11° 56′	9° 19° 40′	10° 10° 34′	17° 14′ S	17° 15′ S
Moon ...	4 4 24	3 12 16	4 4 41	3 12 1	4 2 55	24 1 N	24 15 N
Mars ...	0 22 48	0 0 7	0 22 22	11 29 43	0 20 37	9 14 S	2 7 S
Mercury ...	10 0 33	9 8 23	10 0 58	9 12 16	10 3 10	21 45 S	21 15 S
Jupiter ...	0 19 27	11 26 43	0 19 8	11 27 6	0 18 0	6 32 N	6 50 N
Venus ...	9 19 19	8 26 48	9 19 12	8 27 46	9 18 40	22 7 S	22 1 S
Saturn ...	6 12 43	5 20 38	6 13 3	5 22 14	6 13 8	2 41 S	3 0 S

	20th February 1894 (Katak, 6 p.m.) N.A.	20th February 1894 (Katak, 6 p.m.) S.D.	Ist March 1894 (Katak, 6 p.m.) N.A.	Ist March 1894 (Katak, 6 p.m.) S.D.
Sun ...	11 2° 8′	11° 2° 9′	11° 11° 10′	11° 11° 11′
Moon ...	0 21 40	0 21 46	4 27 7	4 27 4
Mars ...	1 6 5	1 5 30	1 12 3	1 11 27
Mercury ...	11 5 14	11 4 57	11 22 14	11 22 39
Jupiter ...	0 22 58	0 22 34	0 24 46	0 24 21
Venus ...	10 14 16	10 12 42	10 25 28	10 25 25
Saturn ...	6 12 1	6 12 23	6 11 13	6 11 56

* It may be mentioned here that Ayanamsa on that day according to Chandrasekhara's Siddhanta Darpana was 22° 25′, while Lahiri's Ayanamsa as accepted by Govt. of India now, was 22° 21′41″ - EDITOR.

But before any reformation is attempted, an exact determination of the amount of precession becomes a question of paramount importance. The reader is a awre that in the Hindu system, the longitudes of celestial bodies are measured from a fixed point - say a star - in the ecliptic, instead of from the movable vernal equinox as is the practice in Europe. The question has therefore the same bearing upon our calculations, as the position of the so called First Point of Aries upon those of the Nautical almanac.

Unfortunately, all attempts to solve the question have been practically fruitless. The reader will hence understand the chaos into which our almanacs have sunk. The gravity of the situation, and the difficulty of escaping from it, demand a fuller discussion than our space would permit. But then this alone can give us an opportunity of ascertaining Chandrasekhara's success in this direction.

Promising, then, that we measure longitudes of planets from a fixed point in the ecliptic, the question resolves itself into a determination of the point. In other words, what is that point, or what is its longitude from the vernal equinoctical point ? Whatever and wherever that point may be, it is the starting point of our zodiac, and its longitude is known as ayanamsa, which literally means amount of solstices. For, we do not speak of the precession of the equinoxes as often as we do of the precession of the solstices. Hence, the ayana-chalanam of Sanskrit astronomy is equivalent to the precession of the equinoxes. To avoid ambiguity we shall use the term ayanamsa rather than the amount of precession.

The exact amount of the ayanamsa may be apparently determined in different ways. 1. The Siddhantas furnish a rule for computing it, which is in principle the same as the method of finding the longitude of a star at any given date by applying the amount of precession to its longitude at some other date. 2. Defining the initial with the help of other data, such as the recorded longitudes of stars, its present longitude from the equinoctial point may be ascertained. 3. Knowing the exact year when the initial point was fixed, its present longitude (ayanamsa) may be calculated from the known rate of precession. But it so happens that the results obtained by these three methods do not agree.

To begin with the **first method**, it will be seen that the different Siddhantas do not agree, either in the nature of precessional movement, or in its annual rate. According to some, the equinoxes have an oscillatory motion, turning to the right and to the left of the initial point within certain limits, and extending over a large interval of time; while others maintain their continuous motion backwards. Colebrooke compared the views of the libration and revolution theorists, and gave the rate of precession accordign to each. They are as follows:-

Liberation Theory	**Annual Rate**
Surya-Siddhanta	54″
Soma[1] Siddhanta	54″
Sakalya Siddhanta	54″
Laghu-Vasishtha Siddhanta	54″
Parasara-Siddhanta	52″.35

1. Ranganatha, in his commentary to the Surya-Siddhanta, quotes Soma-Siddhanta in support of the reading.

Liberation Theory	Annual Rate
Aryashta Satika	
(quoted by Munisvara)	46″.25
Manjula (quoted by Bhaskara)[1]	59″.9
Bhasvati	60″
Grahalaghava	60″

The derangement of the equinox from the intial point is 27° on either side according to the Surya-Siddhanta, and this limit was probably accepted by other libration theorists. Aryashta-Satika, however, gives the limit of 24° instead of 27′ (Colebrooke).

We are not concerned here with the theories or the limits of libration. Surya-Siddhanta and the works based upon it, are now almost universally adopted throughout India for computing an almanac, though in some places Grahalaghava occupies the field. Now from the first, we find the ayanamsa for the first day of Saka 1816[2] (13th April 1894) was 20° 55′, and from the second, 22°50′ for the same day. These amounts represent the minimum and maximum ayanamsa obtained from Siddhanta rules.

Both the Surya-Siddhanta and Siddhanta-

---

1. Bhaskara did not believe in the liberation theory. For, as has been shown by Chandrasekhara (VI.100), he has directed us always to add the ayanamsa and never to subtract it.
2. In common parlanac, we speak of the year being Saka 1816, though in reality we ought to say the first day of Saka 1817. The facts herein discussed were collected sometime ago, and as it immaterial which year is taken for illustration, they are not altered to suit the current year.

Siromani, the standard Siddhantas at present in use, give a rule to test the amount of ayanamsa by observation. It consists in subtracting from 12 signs the longitude of the Sun computed after the Siddhantas for the moment when the Sun crosses the vernal equinoctial point. Thus, on the 13th April 1894, the Sun's longitude for Greenwich mean noon was 23°32'7", while an almanac gives us 1°21'25" as the Sun's longitude for the same instant, making the ayanamsa 22°10'37". It will be seen therefore that not withstanding the higher precessional rate of the Surya-Siddhanta, the calculated amount becomes less than the actual by nearly 1°16', while the Grahalaghava makes it greater by about 39".

To come to the **second method**, viz. to find the true longitude of the initial point as defined by stars. All the modern Siddhantas agree in the statement that the longitudes of all heavenly bodies are to be measured from the Star Revati situated on the ecliptic. The star has been identified with Picicum. Now, this is a star of the fifth magnitude and is barely visible to the naked eye. The question is, why was this particular star out of the many situated on the ecliptic, - some of which are larger, - chosen for marking the beginning of the zodiac? The answer has been - and there is no doubt about the accuracy of the answer - that the vernal equinox happened near the star when the present system of astronomical measurement came into vogue.

So far it is plant sailing. For, we can easily find the longitude of the star from the vernal equinoctial point and at once get the required ayanamsa. From the Right Ascension and Declination of the star, § Piscium, on the 13th April, 1894, we get 18°23'49"

as its longitude.[1] This is however, less than the amount obtained above. It is clear therefore that either the star Revati is not § Piscium, or it did not mark the initial point. No doubt exists about the identity of the star, neither can we suppose all the Siddhantas false in their assertion.

The latitudes and longitudes of thirty-four others stars are given in the Surya-Siddhanta. They were not measured in the usual way. But from the express instructions as to the method of measurement adopted, we understand that the so-called long tudes, Dhurvas, are the longitude of the Right Ascensions of the stars supposing them to be on the ecliptic, and that the latitudes (Vikshepas) are the distances, north or south, of the stars from the ecliptic, measured along the declination circles passing through the stars. Now, taking only the 27 stars of the zodiac, and comparing their reduced Dhruvas with their present longitude, we find ourselves confronted with a curious result.[2] The difference between the recorded and the present longitudes is not the same for every star. Indeed, it varies from about 18° to 24°.

Omitting Visakha, of which I am not certain, the mean difference of the longitudes of the stars of the first half of the zodiac, i.e. from Asvini to Chitra is 21°, while that of the stars of the second half amounts to 19° only. So, while the mean

1. The modern Surya-Siddhanta gives 359°50′ as the longitude of the star Revati. This would make the present ayanamsa greater by 10′ only.
2. I understand that Prof. Whitney has discussed the point, and regret that I have no access to his edition of the Surya-Siddhanta at present.

precession for all is about 20°, that for Asvini (*ά Arietes*) and Uttara-bhadrapada (*άAndromeda*), the two stars on either side of Revati, is about 24′ each. The question becomes more perplexing when remember that Bhaskara, who certainly made a few corrections, has given in most cases the same longitudes as we have in the current Surya-Siddhanta.

Our identfication of some of the stars may be doubtful.[1] But taking all the star-longitudes into consideration, we are forced to admit that somehow or other there were errors of observation. Possibly, these errors were partly due to the rude means of observation, increasing the errors with the increase of the zenith distance of the stars, and partly to azimuth errors. One or all of the explanations must be accepted as true, as we cannot suppose that any one having the slightest pretension to practical astronomy, however rough the instrument might be, could make such gross errors in the simple measurements required. To take the mean of the star-longitudes for a solution of our problem is, therefore, a wrong procedure, in as much as, we are entirely in the dark as to the weight to be attached to the determinations. We shall however, make use of them in another way later on.

We now proceed to consider the **third method**, which consists in analysing the dates in which there was no ayanamsa. For this purpose, we require not only the dates but also the rates of precession

---

1. Thus, if Asvini be identified with *β Arietes* and Uttarabhadrapada with *γ Pegasi*, the amount of percession deducted from them becomes nearly equal and agrees with that obtained from Magha.

assigned by the astronomers. We have already seen the various rates assigned by them. As the Surya-Siddhanta's rate of 54 seconds per year is a close approximation to the rate known at present, let us take this first for consdieration.

Apparently, the rate of 54 seconds is hihger by nearly 4 seconds than the actual. I say apparently for the rate makes the ayanamsa less, instead of increasing it in the proporiton of about 50 to 54. It must be therefore really lower than the true rate. To explain the anomaly we have to consider the Siddhanta year. The length of the sidereal year - the year used by us instead of the tropical year in use in Europe - is 365.25875 mean solar days according to the Surya-Siddhanta, and is thus greater than the true length by 0.00238 days. Now, taking the Sun's daily motion at 59'8", we find that during the excess the Sun moves to the East through a distance of 8".44 nearly. But the equinoctial point moves to the West. It is therefore clear that the precessional rate assigned by the Surya-Siddhanta is practically 54"-8°.44, or 45".56 per year. It is for this reason that the ayanamsa, calculated from the Siddhanta, apparently higher rate, becomes less than the amount observed. Hence if we accept the Siddhanta's length of the year, we should make the annual precessional rate 50" 24+8" 44 or 58".68. It is remarkable that the rate of 45".56 per year is almost equal to the precessional rate in Right Asscension. Whether the Siddhanta writer meant the rate to be what we find, I cannot say, though there are certain reason favourable to our conjecture. The point may be illustrated by taking other Siddhantas. Bhaskara's year consists of 365.25843 days, and is therefore longer by 0.00206

days. Hence, accepting Bhaskara's year, we should have 50° 24+7".31 or 57",55 as the precessional rate. Bhaskara does not state in his Siromani any rate deduced by him, but evidently supports Munjala's rate of 59".9. Moreover, his adoption of the rate of 60" a year in his Karana-kutuhala leaves no doubt in our mind as to the rate he used.

Similarly, Ganesa, author of Grahalaghava, makes the year of 365.25856 mean solar days, which is thus longer by 0.00219 days. He ought to have therefore made the precessional rate 50".24+7".86 or 58".10 instead of 60" as he has done.

Chandrasekhara accepts the length of the year of the Surya-Siddhanta, and gives 57".615 as the precessional rate (S.D.VI.75). This is just less than the rate we have assumed above by 58".68-57". 62 or 1"06. I was surprised to find this close approximation, and could not but ask him the data from which he derived the rate. In reply, he said that finding the Surya-Siddhanta and the Siromani make the ayanamsa either shorter or longer than that observed, he was for some time in a fix about the rate to be followed. Fortunately, while he was studying Jata-karma-paddhati with the help of the commentary called Jatakalankara written by Suryadeva some 800 years ago, he accidentally found a passage in which the commentator recorded the ayanamsa as it was observed by him on a particular day of a particular year. This find itself is not less valuable than Chandrasekhara's rate. He gives however, 22°26' as the ayanamsa for the year we have taken for discussion.

Munjala appears to be the earliest writer who has given the date of the year of no ayanmsa, as well as the rate of precession observed by him. He

wrote his work in Saka 854,[1] and the precessional rate assigned is 59".9 in a year. We also learn from Dwivedi's Ganaka-tarangini that according to Munjala, Saka 434 was without ayanamsa. Now from 434 to 854 Saka, there were 420 years, during which at the rate of 59".9 per year, the ayanamsa had amounted to 6°59'18". However erroneous the rate given by Munjala may be it will not be wrong if we take 6°59'18" (say 7') as the ayanamsa in Saka 854. We know, however, that the rate of precession could not have been greater than 58".68 per year. Accordingly, the ayanamsa obtained above carries us back through 429 years from Saka 854, the date of Mujala's work. In other words, we find that according to Munjala's data Saka 425 was the year of no ayanamsa at the latest. From the ayanamsa obtained from Munjala and that observed in Saka 1816, we note that the rate of precession amounts to 56".8 in a year.

The next work we take is Bhasvati by Satananda,[2] which is still regard as an authority for the calculation of eclipses. He wrote his work in Saka 1021, and according to him the rate of precession is 60" per year. We also know that he regarded the Saka year 450 as the year without ayanamsa. Now, calculating the amount of

---

1. The date 584 in the Ganaka-tarangini seems to be a misprint, though it occurs thoughout the short notice of Munjala, excepting the passage wher Pandit Dwivedi quotes from Munjala, makign the date 854 Saka, adopted above.
2. Satananda was born in Orissa in Saka 990 (i.e., 1068 A.D.) and wrote the Bhasvati in Puri in Saka 1021 (i.e., 1099 A.D.) by adopting centmal system. Hence his name was Satananda as it was a pleasure to him to use centinals.

ayanamsa in Saka 1021 in the above manner, we find that it was 9°31′ in that year. From this, calculating backwards at 58″.68 a year, we come to Saka 437 as the year of no ayanamsa. We also note that the rate of precession reduced from the ayanamsa in 1021, amounts to 57″.295 per year.

In his Karana-kutuhala, Bhaskara has roughly given 11° as ayanamsa about Saka 1105. From this at the rate of 60″ in a year, the rate assumed by him, we are taken back to Saka 555, and, at the rate of 57″.55 which we have found before, to Saka 423. We also note that adopting his observation, the rate amounts to 56″.624 per year.

To take another example, we mention Ganesa who wrote his Grahalaghava in Saka 1442. According to him the rate of precession is 60″ in a year, and Saka 444 was without ayanamsa. These premises lead us to infer that ayanamsa amounted to 16°38′ in Saka 1442, which at the rate of 58″.1 carries us back to Saka 412, a-date which is the earliest of all that we have hitherto obtained. But, considering that the amount of ayanamsa reduced, compared to the present amount, makes the rate at low as 53″.4, we are lead to infer that his data were wrong. It is to be observed, however, that the rate of 58″.68 if adotped makes Saka 422 as the year without ayanamsa.[1]

We may almost guess the data from which Ganesa derived his rate. It is likely he accepted 11° as the amount of ayanamsa in 1105, as recorded by

---

1. An error in observing ayanamsa is not uncommon. One instance of it is furnished by Mahadeva who recorded 13°45′ as the amount of ayanamsa in Saka 1238 (Dwivedi's G.T.), thus making the rate since then 52″.5 in a year.

Bhaskara. From this he might have obtained the Saka year 444 as the starting year, and also the rate of 60 seconds a year, making the amount 16°37′ in Saka 1442.

It remains to notice the data 421 Saka given by some minor authors. This is obviously based upon the Surya-Siddhanta's with its annual rate of 54, making 20°55′ as the amount of present ayanamsa.

Chandrasekhara has not recorded the data which furnished him the rate, knowing howerver, his ayanamsa and rate, and calculating backwards, we arrive at Saka 415.

So far we have obtained the following figures:

	Sakabda	Rate per year
Munjala	425	56″.828
Satananda	437	57.295
Bhaskara	423	56.624
Chandrasekhar	415	57.61
Mean	425	57.09

Having regard to the nature of the data ve cannot expect a closer approximation than that shown above. We may therefore fairly take the mean of the dates, as well as the rates. On account of obvious inaccuracy in the data of Ganesa the date and rate obtained from him cannot be rightly included. Neither will his date, if corrected increase the weight to be attached to the mean to be calculated from the above figures. We might, however, include the data 421 Saka given by certain weriters. Indeed, it will be seen that dates of the starting years are of two classes; one somewhere near 450 Saka, and the other, 421 Saka. But the

dates of the former class may be reduced to those of the latter class. It will be further observed that Munjala, the earliest writer of the set, makes the closest approximation to the mean, Satananda seems to have committed an error seeing that he assigns Saka 450 as the starting year. Madhava Misra, a commentator of his, makes the same remark and suggests that the Saka year 421 ought-to be taken incalculations.[1]

From what has been described above the Saka year 421 or 427 appears to mark the beginning of the fixed zodiac. It is difficult to prefer one to the other. The Saka year 421 is equivalent to the year 3600 of the Kali yuga, and the fact of its being so, goes in its favour. Besides, it is the year in which Aryabhtta composed his work, a work which enjoyed a wide reputation. Lalla, whose Tantra Bhaskara condescended to criticised adopted the year 421 Saka, and the writer of modern Surya-Siddhanta evidently held the same view while writing the ayanamsa rule.

On the other hand, the great popularity of Varaha-mihira leads us to suppose that the present system of the zodiac had its beginning in Saka 427, and I belive all the anomalies noticed before may be better explained by accepting the year. We have an authority for our view in the pancha-siddhantika itself. The often-quoted verse in which Varaha-

---

1. The copy from which the remarks are made was printed in Benares in Samvat 1942. It is full of mistakes, but the sense is clear. It is curious to note that Satananda, while basing his work on the Surya-Siddhanta, gives a higher rate than what is given by the latter Madhava Misra tries to justify this rate by altering the rule.

mihira distinctly mentions the fact that in his time the summer solstice took place at the beginning of Cancer is a complete answer to the question we have been discussing.

Dr. Thibaut, the learned editor of the Panchasidhantika, however, finds difficulty in accepting Saka 427, as the date of the composition of the work. As far as I can gather from his introduction to the work, his main objection lies in a statement of Amraja, quoted by Bhau-Daji, that "Varaha-mihira Acharya went to heaven in the 509th year of the Saka kala, i.e. A.D. 587". For if Varaha be supposed to have written the work in Saka 427, he must have lived to the good old age of eighty-two years after the composition; and supposing him to have written it at the age of twenty-years, he must have seen 102 summers.

Seeing that Varaha lived long enough to write a very large number of works, there is nothing in the statement intrinsically impossible. On the other hand, if the Saka year were not the epoch of his Karana, he defeated his own purpose. In deed, the idea of a Karana-writer using a date borrowed from some older Siddhanta, as has been supposed in this case, and thus representing a time other than that for which the work is written, is to say the least, self-contradictory. Then again as has been pointed out by Pandit Dwivedi, there is absolutely no proof of the validity of Amraja's assertion. Dr. Thibaut admits that if Saka 427 be taken as the epoch of Varaha's work, several facts, not otherwise explainable, become easy of explanation. All those considerations, together with tradition about Varaha's time point to the conclusion we have already arrived at by discussing ayanamsa.

Assuming then, that the zodiac at present in use was fixed in Saka 427, let us explain a few facts connected with it. First of all, we find that in 1389 years, which have elapsed since the date general precession has amounted to 19°-23′-7″; while, had the Surya-Siddhanta's year been in use throughout the Sun must have been in error by 3°-15′-30″, thus making the ayanamsa 22°-38′-37″ in Saka 1816 last. The amount, however, differs from the observed by 28′,- a quantity too large to be neglected. On the other hand, if Ganesa's length of the year be taken, the error in the Sun amounts to 2°-9′-54″, making the ayanamsa actually less by nearly 38′. It is remarkable that the length of the year assumed by Bhaskara makes the total 22°-12′21″, nearly the same as is observed.[1]

From the observed ayanamsa and the fact of its commencement in Saka 427, the precessional rate becomes 57″.45. This is lower than that obtained by us from the Surya-Sidhanta's year, but nearly the same as we obtained from Siromani's year. This discrepancy between the rate calculated from Surya-Siddhant and that found above can be explained by supposing that the Surya-Siddhanta's year may not have been in use throughout the large interval of 1389 years, and that the rate of precession is not known so acurately as may be sufficient for the great length of time. The fact of Varaha's Surya-Siddhanta giving a slightly shorter year (as shown

---

1. The formula 50-2411 t+0001134 t^2 is adopted for calculating the general precession. See Chauvenet's Astronomy. The precession constant appears to be a little too large, as is remarked by the author. A calculation made from Bessel's constant allowing for its variation, renders the general precession nearly 1′ less.

by Dr. Thibaut), makes no sensible difference in the result. Be the explanation what it may, it is to be observed that Chandrasekhara gives 22°-26′ as the observed ayanamsa, which is 15′ greater than what we have assumed. This fact shows that somehow or other, the length of the year in use was slightly less than what we find it in the modern Surya-Siddhanta.

At any rate, the vernal equinox in Revati did not mark the beginning of the existing zodiac. Ranganatha, a commentator of Surya-Siddhanta, supports us by saying that the equinox fell somewhere near Revati. For, the equinox fell on the star in Saka 498, and during the period since elapsed, the Sun has moved through an excess of 3°-5′-29″, thus making the ayanamsa 21°-29′-18″. Even the Siddhanta's position of the star leaves a difference of half a degree. So we must suppose that the star Revati was nearly a degree to the East of the initial point when the zodiac happened to commence its existing fixity.

If any use is to be made of the recorded Dhruvas of the stars, it appears to me to be the most reasonable course to select those stars which are situated near the ecliptic. For, as has been already pointed out, the errors of observation by means of rude appliances will increase with star-latitudes. Accordingly, the following twelve stars situated within five degrees on either side of the ecliptic are given below for composition.

Stars	Longitude in Saka 1816	Reduced longitude	Difference
Krittika (23 Tauri)	58°-14′	38°-52′	19°-22′
Rohini	68°-17′	47°-56′	20°-23′
Pushya (*δCancri)*	127°-21′	106°-0′	21°-21′
Magha	148°-21′	129°-0′	19°-21′
Chitra[1]	202°-22′	181°-23′	21°-9′
Visakha[2]			
Anuradha	241°-45′	224°-31′	17°-14′
Jyeshtha	248°-17′	230°-41′	17°-36′
Purvashadha	273°-6′	254°-30′	18°-36′
Uttarashadha	278°-43′	260°-18′	18°-25′
Satatara	340°-05′	319°-41′	20°-24′
Revati	373°-34′	359°-50′	18°-34′

The mean of the differences is 19°-18′ carrying us back to about 433 Saka. If it were possible to hit upon the stars that were taken as fundamental stars for the measurement of the Dhruvas, we could have arrived at the correct result. We might fairly take the star Magha as one of them, since it is a star of the first magnitude, situated on the ecliptic, and otherwise important in Sanskrit astronomy. It would be seen from the precession of the star that the Saka year 430 is reached.

As has been already pointed out, an allowance must be made in the amount of precession deduced from the recorded Dhruvas of stars. Still, the mean general precession furnishes approximately the date of their measurement. Dr. Thibaut has employed the method to determine the "beginning of the scientific period of Hindu astronomy". From Prof. Whitney's discussion of the star-longitudes given in

1. Bhaskar's Dhruva of the star is assumed.
2. I am not certain of Visakha. If it be identified with *α* Libra the difference amounts to 22°-46′.

the modern Surya-Siddhanta Dr. Thibaut places the period somewhere in the fifth century A.D. It is, however, strange that he has omitted to discuss the bearing of the Dhruvas of the seven stars he has found in the old Surya-Siddhanta. Omitting Aslesha which I cannot identify with certainty, the mean general precession of the remaining six amounts to about 24°. This implies, then, that astronomy as a science began to be cultivated in India in the second century A.D. at the latest.

We have already dwelt rather too long on the determination of the starting point. But considering the importance of the question in settling one of the fundamental preliminaries to any possible revision of on current almanacs, a word or two more on the subject may be excused.

Chandrasekhara gives two methods for determining the starting point. One is based upon a verse of the modern Surya-Siddhanta, which he takes to mean that the declination-circle passing through the pole-star marks the junction between Aries and Pisces (XII.61). He further cites his authority for thus interpreting the verse from Brahma-Jamala.

I am inclined to believe that he is mistaken in thus interpreting the sloka of the Surya-Siddhanta, though I have not seen Brahma-jamala, nor have I an opportunity of doing so now. Taking, however, the rule for granted it will be seen that the Dhruva of the star was 21°-42′ in Saka 1816. But from the annual variation in the star's R.A. the change in its Dhruva is nearly 3-3/4 minutes in a year. This fact alone demolishes Chandrasekhar's view.

The other method suggested is an inverse

application of the Sun's place, calculated after the Surya-Siddhanta (S.D.VI.89). Assuming his calculated place to be correct, it is easy to find the beginning of the starting point of measurement. In the absence of a better method, this remains the only feasible course of procedure, and it is by this method that we have got the present ayanamsa.

It will be noticed (S.D.XII.10) that Chandrasekhara gives 5°N. as the polar latitude of Revati. The fact is, he has given up the Revati of our ancient astronomy for the simple reason that the Siddhanta Revati is hardly recognisable, and therefore practically useless. His Revati is not ζ (zeta) but η (eta) Piscium. How far this innovation will be acceptable to the public, remains to be seen.

Instances of giving old names to new stars are not rare, and this appears to be one of the main difficulties in identifying stars of different Siddhantas. For example, the star Pushya of Varaha-mihira's Surya-Siddhanta must have been a different star from the one receiving the same name in the current Surya-Siddhanta. For Pushya of old appears to have been Proesepe of the Greeks, while modern Pushya is δ Cancri.

It may be useful to knwo the stars to which Chandrasekhara applies the Siddhanta names. For this purpose I got a chart of the stars made by him from which the following list is prepared.

1.	Asvini	$\acute{\alpha}$ Arietes
2.	Bharani	41 Arietes
3.	Krittika	Tauri (Pleides)
4.	Rohini	$\acute{\alpha}$ Tauri (Aldebaran)
5.	Mrigasira	λ Orionis

6. Ardra — α Orionis
7. Punarvasu — Geminorum
8. Pushya — Proesepe (in Cancer)
9. Aslesha — - Hydrae
10. Magha — Leonis (Regulus)
11. Purvaphalguni — δ Leonis
12. Uttaraphalguni — Leonis
13. Hasta — δ Corvi
14. Chitra — α Virginis (Spica)
15. Svati — α Bootis (Arcturus)
16. Visakha — α Libra
17. Anuradha — δ Scorpionis
18. Jyeshtha — α Scorpionis (Antares)
19. Mula — γ Scorpionis
20. Purvashadha — δ Sagittarii
21. Uttarashadha — Sagittarii
    Abhijit — Lyri (vega)
22. Sravana — γ Aquiloe (Altair)
23. Dhanishtha — β Delphinii
24. Satataraka — λ Aquarii
25. Purvabhadrapada — β Pegasi
26. Uttarabhadrapada — α Andromeda
27. Revati — ξ Piscium
    Agni — β Tauri

Brahmahridaya — Aurigae (Capella)
Prajapati — Aurigade
Ilvaka — Orion's belt
Lubdhaka — Sirius 8
Agastya — Canopus 9

Kratu	Ursa majoris
Pulaha	Ditto
Pulastya	Ditto
Atri	Ditto
Angira	Ditto
Vasishtha	Ditto
Marichi	Ditto
Apayavasu	5°N. of Spica; 5th mag.
Apamvatsa	6°N. of Apaya; 5th mag.

The polar longitude and latitude of Chandraskhara's Revati , as given in the work, are slightly incorrect. In a letter to me, he gave 359°10′ and 5°30′N. as the corrected longitude and latitude. Accordingly, the precession of the star amounted to 22°20′-41″ in Saka 1816. These correction were thought necessary by him in order that the observed ayanamsa might agree with the precession of the star as he ascertained it. But we cannot but admit that he has confounded ayanamsa (or sun-precession) with star-precession.[1] For, it is obvious the amount of ayanamsa we observe by the Sun affects only the Sun's place in finding moment of his crossing the equinoctial points, while the general precession of the stars remains unaffected by the slight increase assumed in the length of the year. But credit must be given him for his conssitency in the view, however wrong it may be in the light of the facts disclosed.

Another important improvement made by

1. An instance of an error of this kind is currnt in our Bengali almanacs in which the equinoxes are puttwo days later on account of the ayanamsa being taken at 20°55′.

Chandrasekhara is in the Sun's parallax. The history of his attempts at determining it is no less interesting than the results he actually obtained. The ancient astronomers of India were satisfied with taking for the parallax of each planet, 1/5th part of its mean daily motion. Accordingly, the Sun's horizontal parallax was considered to be 3'56", and that of the Moon 52' 42". With rough instruments at their disposal, the ancient observers could not but assign wrong values. But awkwardly enough, the parallaxes of the Sun and Moon come into every prediction of their eclipses. So while modern astronomy increases the distance of the Sun to something like 400 times the distance of the Moon, our ancient astronomers placed him no farther than 14 times this distance. Chandrasekhara has removed him to a distance of about 154 times the mean distance of the Moon.

Chandrasekhara told me that before he got the parallax, he had passed many an unhappy day. He was then very young, but was anxious to know the Sun's distance. He could not even imagined how the distance could ever be known. The ancient works were dogmatic in their assertions, and did not say a word about the method employed. By his failure in approaching the problem, he became disheartened. One day thus dejected in mind, while he was coming home, he noticed an image of the Sun projected through a narrow aperture in a fence of palm leaves close to his house. This phenomenon well known to every tyro in physical science made him reflect, and he thought that he had got a solution of his problem. Could he but get the Sun's real diameter. This similar triangles on the two sides of the aperture, with their bases formed by the Sun

and his image, would enable him to find the distance. He hastened home, but before he looked into any work for the Sun's true diameter, he saw his error. For, was he not assuming the thing he wanted to find out? And his exultation was followed by despair.

At ths stage the problem rested for several years, till he became acquainted with rules for calculating eclipses. He found that the parallax of the Sun assumed in the Siddhantas was too large to make predictions of eclipses correct. The anular and total eclipses, together with those in which the Moon just grazes the shadow, were his landmarks in the determination of the problem. He was for sometime in a sea of doubt. Perhaps the Siddhantas were wrong in the mater of parallax, as in many other matters. Perhaps his observations were not made with that degree of accuracy which was demanded by such problems.

These questions were never out of his mind a single day through a long year. An accident favoured him. He was reading the Atharvan Upanishad, and was surprised to find that the Sun's diameter was not 6500 yojanas as given in the Surya-Siddhanta, but 72000 yojanas. This gave him a fresh basis for calculation, and he was satisfied that this diameter did not shift his landmarks to any extent which he could detect. This gave 22″ for the Sun's horizontal parallax, and with careful calculation that of the Moon was found to be 56′28″. Repeated observations left no doubt in his mind about the correctness of his figures. Besides, here was an authority from Sruti itself.[1] Taking 72000

---

1. Lastely he learnt that European astronomers find the

yojanas for the true diameter of the Sun, the distance of the Sun from the earth was found to be between 105 and 106 times the Sun's diameter. In other words, the distance of the Sun and the Moon are 9510 and 61 radii of the earth respectively (VIII.12, 13, & XIX.49).

The introduction is brought to a close with another topic well-known even to the boys of our elementary schools. It is about the movement of the earth, which Chandrasekhara does not admit. It is curious no doubt to hear a man given to astronomy, maintaining with all seriousness an idea which mankind has learnt to repudiate since the days of Copernicus. And there are men who, talking glibly of the earth's movements, thought that his calculations could not possibly come out right from such wrong fundamental premises. It is needless to argue the matter with those whose rudimentary knoweldge of mathematics did not enable them to understand relative motion and I would not have introduced the topic, had it not been made the sole criterion of the merits of this work.

To such critics, I would suggest that centuries elapsed during which our forefathers and the forefathers of Europeans did nto even dream of the possibility of this firm and fixed earth's spinnign

---

Sun's horizontal parallax to be aobut 8" and that of the Moon 56'40". But he has found no reasons for correcting his figures. He says, the difference between the parallaxes of the Sun and the Moon amounts to 56'32" according to European astronomy, while he finds 56'6" giving results agreeing with observation. Now, if the difference were changed by 26", an annular eclipse would be changed in to a partial, a partial into an annular and a total into a "touching" one.

like a top round its axis, far less of its rushing onwards with headlong speed. Chandrasekhara had not the advantage of our modern schools, and has not imbibed the spirit of taking such things on trust. His is a work of unaided effort, and it would be surprising if he, along with the schoolboy, talked of the movements of the earth. On the contrary, a miserable Odia translation of a Bengali compilation from English popular astronomy made him a confirmed believer in the stationary condition of the earth. The arguments put forth in the book to estabish the movements of the earth may be sufficient to satisfy those who do not try to realize the matter, but unfortunately were not convincing to a man who struggled hard to reconcile the new idea in all its bearings with his own observations.

Indeed, the translation and another of like nature were the only sources from which Chandrasekhara learnt something of western knowledge. They may have so far influenced him as to modify his ideas about physical astronomy, vague indications of which will be seen in certain passages of this work,[1] but had hardly any effect upon his as regard mathematical astronomy. The reader will find him doubtfully speaking of the satellites of some of the planets, of the proportion of land and water on the globe, and the latitudes of one hundred and eight places derived from modern Odia maps and other sources. In these he sees no reason for disbelieving what is actually observed. But where are the observed proofs of the movements of the earth ?

---

1. *See* V, 79 for possible satellites, XI.40 for phases of planets; XVII. for force of gravitation, & c.

To controvert the theory of the movements, he has divided his arguments to the contrary into three classes. The movements are opposed to Sastric authority, to common sense, and to logical reasoning. To do him justice, I believe he would not hesitate a moment to modify his views, could he get the modern theory in all its details. He has thus rendered a service to us by compelling us to think. The same service was rendered by the heroic John Hampden who a few years ago essayed to prove that the world, instead of being a globe, was in reality as flat as a table. There is a tendency on the part of mankind when it has established any doctrine, to assume that it cannot possibly be disputed and so in time we even forget the arguments by which the truth was established. There is thus a need for these exceptional and more or less original heretics who challenge our accepted doctrines.

But the peculiarity of his theory is that though the earth occupies the centre of the universe, the planets do not revolve round it. They revolve round the Sun, and the Sun taking all the planets along with it revovles round the earth (V.6). The Moon is of course a satellite of the earth, and makes no difference in the old and new astronomy. But where could he get the theory of the planets describing ovals round the Sun ? It is not imported from the West, but is a direct corollary from the elements of the planets themselves. For if we plot the calculated places of a planet with respect to the Sun, the former will be found to describe something like an oval round the latter.

Indeed, I believe that this view of the star system was held by our ancient astronomers. We

cannot suppose that they could be so ignorant as not to see this simple deduction. The late Pandit Bapudeva Sastri gave other arguments in support of this doctrine of the ancient astronomers (See his pamphlet Bhubhrama-Vichara), though I am inlcined to think that the Sastri went rather too far in drawing the inference that our astronomers supposed the earth to be a planet of the Sun.

This system, formulated a new by our author, forcibly reminds one of Tycho Brahe, and bearing in mind Chandrasekhara's life, we may regard him as the veritable Tycho of India. Like Tycho our author belongs to a noble family, which had for a series of years claimed independence. Tycho's early education was in Latin, and what Latin is to Europe, Sanskrit is to India. Young Chandrasekhara was early acquainted with the sacred lore of Sanskrit. His knowledge was so far advanced as to enable him to compose verses in it, as Tycho could in Latin. Tycho had been destined ot lead a soldier's life, but his uncle who adopted him made him study law. While he was so engaged, his attention was first drawn to astronomy by the prediction of a solar eclipse in 1560 A.D. Like him Chandrasekhara received his education from his, uncle, and the same search after the unknown led our Indian Tycho to penetrate the mysterious destinies of men with the help of astrology. It is said that all sciences had their origin in wonder, and it is preeminently true of astronomy. Nothing but star-gazing could have excited the simple yet noble utterances of the Vedic Rishis, and star-gazing has given birth to a Hipparchus and a Galileo, and may we add, to the Tycho of Europe and the Tycho of India ? The European Tycho had Copernicus before him and

the long ascendancy of the Almagest was fast coming to a close. Chandrasekhara's Almagest was Surya-Siddhanta, and his Copernicus was Bhaskara. Both Tycho and Chandrasekhara detected at an early age discrepancies between observation and calculation. Tycho held and Chandrasekhara still holds the same views about the solar system. The Copernican theory was before Tycho, and Chandrasekhara knew the theory of Aryabhatta, and we may add, heard not only of the diurnal rotation of the earth propounded by the renowned Aryabhatta, but of the annual revolution of the earth round the Sun from modern Geography. But both declined to accept the new theory on almost precisely the same grounds. Tycho rejected the Copernican theory chiefly for two reasons. "One reason," says Professor Young, was that it was unfavourably regarded by the clergy, and he was a good churchman. The other was the scientific objection that if the earth moved round the Sun, the fixed stars all ought to appear to move in a corresponding manner each star describing annually an oval in the heavens of the same apparent dimensions as the earth's orbit itself, seen from the star. Technically speaking, they ought to have an annual parallax."[1] Chandrasekhara is equally

---

1. The fact that the stars should have parallaxes if the earth revoired around the Sun was known at a very early date. Tycho Brahe observed them in order to discover whether they were sensibly fixed in the sky or not. So far his observations went they did not change their positions during the year. He inferred from this that the earth remained fixed and that the Sun moved. His error was due to the fact that his observatons were not sufficiently accurate to show the slight displacement which the stars

supersitious wit Tycho, a staunch Hindu to the backbone. How can he disbelieve the Sastras ? And, besides, "the stars do not shift their places according to the seasons of the year."[1]

The parallel drawn between Tycho and Chandrasekhara is close so far. But it fails when we remember that Tycho had the benefit of a university education, of the patronage of kings, and what is more important, that he had instruments as delicate as he could desire. Chandrasekhara has spent his life among his native hills, has seldom been five miles away from his little village and did not receive any encouragement from anybody in respect of his work. Tycho had the friendship of Frederick II of Denmark who gave him an estate in Norway; "a pension of £400 a year for life, a site for a large observatory, and 20,000 to build it with," and philosophers and statesmen and kings came to visit his observatory and dined at his table.

And what did our Indian Tycho receive ? He

---

have. His observations were made shortly before the invention of the telescope and he could not measure the minute angles through which the stars were displaced. In fact, there distances are so great and the parallactic displacements are so small that the 19th century was well advanced before astronomers succeeded in finding any stars with measurable parallaxes.

1. Many of his arguments are dircted against a misconception of the new theory. For instance, he argues that if the earth be rolling like a wheel, then it ought to move only 12,000 Krosa per day; for that is the length of the earth's circumference. But you say, its daily motion is 8,00,000 Krosa. A stone whirled round has always the same face turned towards us; how can there be an alternation of day and night by the rotation of the earth, and so on.

met with sneers from his equals in position, because he shook off the aristocratic prejudice against star-gazers and fortune-tellers. He had no one to encourage him in his pursuit, and no notice was taken of his work. Our Government could only confer upon him an empty title which he had never coveted. Geniuses are liek declicate plants, never plentiful anywehre and depend upon tender care for growth and development and fertility. Let me therefore hope that the past neglect of his countrymen may yet be compensated, and that better days may yet dawn upon our old and crippled observe of heavenly bodies.

Jogesh Chandra Roy[1]

1. The above article reproduced is the introduction written in Feb' 1899 at Katak (presently Cuttack) by Late Professor Jogesh Chandra Roy to the book 'Siddhanta-darpana' of Samanta Chandrasekhara, published for the first time in devanagari script.

विषय सूची

विषय | **श्लोक स०** | **पृष्ठ स०**

श्री कृष्णाय नमः

अविघ्न मस्तु

सिद्धान्त दर्पणः

मध्यमाधिकारः

प्रथमः प्रकाशः

काल वर्णनम्

श्री भूमाधव चक्र चक्र्यवनिभृत्तद्राभिरभ्युज्ञवलं
श्री कण्ठ प्रमुखाखिला मरशिखा जुष्टांघ्रि पीठोपलम्
श्री नीलाचल मौलि मण्डल महा नीलाय मानं महः
श्री भूमाधरितस्मरं भवतु नः प्रत्यूह हत्युद्यतम् । १ ।

श्री नीलाचल के शिखर भूषण अति नील तेज के युक्त श्री जगन्नाथ हमारे सभी विघ्न नष्ट करने के लिए सदा उद्यत रहें । श्री जगन्नाथ के साथ श्री (लक्ष्मी), भू (पृथ्वी), माधव (दुर्गामाधव) चक्र (सुदर्शन चक्र), चक्री (नारायण), बलभद्र (अवनिभृत) सुभद्रा-इन सात देवताओं का तेज सम्मिलित है । इन्हें महादेव (श्रीकण्ठ) के साथ आकर देवता गण पत्थर के रत्न पीठ पर सिर लगाते हैं । १ ।

गांगेय द्युति भंगदांग लतया श्री राधयालिं गितम्
विद्युत्सांगिघना घना घनाप घन रुक् प्रेमामृतै का श्रयम् ।
सत्संवित्सुखम क्षर क्षरपरं पूर्णाति पूर्णोत्तमम्
श्रीकृष्णाख्य मुपास्महे सुरुचिरं वेदान्तं वेद्यं महः । २ ।

स्वर्ण तेज को भी लज्जित करती हुई श्री राधा की अंगलता के आलिंगन से (कृष्ण का) श्याम रूप काले मेघ की बिजली के समान शोभित होता है, उस प्रेम रूपी अमृत का ही एक आश्रय है । यह तेज सत् चित् आनन्द रूप, पंचभूतों से परे (क्षरपरं) अविनाशी, स्वयं पूर्ण होने के कारण अतुलनीय है । २ ।

जयति जगती भर्तुर्धामाद्भुतं परमाणुतां
ययुरपि जगत्कोषा यल्लोम जाल विलावलौ
यदनिलजल ज्योतिः क्षौणीपराणु गृहोदर-
स्फुर दपि सुरागणैः क्रीड़न्निजैरवतारकैः । ३ ।

जगत् के पालक अद्भुत, तेज के परमेश्वर की जय हो, जो परम सूक्ष्म होते हुए भी रोम-रोम में ब्रह्माण्ड धारण किये हुए हैं । जिन के विराट स्वरूप में पृथ्वी (मिट्टी) आग, जल, आकाश, पवन पञ्चभूत, सूक्ष्म रूप से फैले हुए हैं, वही परमात्मा उन्हीं पञ्चभूतों के भीतर देह धारण कर प्रकट होते हैं (अवतार लेते हैं) इन अवतारों की (क्रीड़ाओं) की देवगण भी गणना नहीं कर पाते ।

श्री भास्कर प्रभृति खेचर चक्रवालं
नत्वा गुरुम् स्वपितरौ तदनुग्रहाढ्यः
गूढ़ोऽप्य गाढ़ गणक प्रति पत्तयेऽहं
सिद्धान्त दर्पण इति प्रथयामि शास्त्रम् । ४ ।

सूर्यादि ग्रह, अपने गुरु और माता-पिता को प्रणाम कर उनके आशीर्वाद से मैं सिद्धान्त दर्पण नामक शास्त्र लिखता हूं जिससे कठिन ज्योतिष शास्त्र को अल्प बुद्धि गणक भी समझ सकें ।

ग्रन्थेऽस्मिन्नधिकार पञ्चकमहं वक्ष्यामि मध्यस्फुट
त्रिप्रश्नातति गोल काल सहितं सांगं स्ववक्रोद्गतैः ।
वाग्यैः क्वापि दिवाकरांश गतितैर्गन्थान्तरोत्थापितै-
रैकार्थ्यात् क्वचिदन्विते सुवितते बोधाय बालावतेः । ५ ।

इस ग्रन्थ में पांच अधिकार (प्रधान अध्याय) हैं - १. मध्य, २. स्फुट, ३. त्रिप्रश्न, ४. विवेचन सहित गोल, तथा ५. काल । ये सभी विभिन्न अध्यायों में विभक्त हैं । इसमें अपनी रचना, सूर्य सिद्धान्त तथा अन्य ग्रन्थों से उद्धृत श्लोक भी हैं । एक ही अर्थ के अन्य ग्रन्थ के श्लोकों से बच्चे भी (ज्योतिष न जानने वाले भी) सहज ही समझ सकते हैं । इस कारण ग्रन्थ विस्तृत हो गया है । ५ ।

नास्ते काला वयव कलना यत्र दृक् शास्त्र सिद्धा
श्रौत स्मार्त व्यवहृतिरपि छिद्यते यत्र धर्म्मया ।
तस्मा देषा कृतिरनुतववागस्तुवा प्रस्तु तार्था
ग्राह्या दक्षै ग्रहण भगणा द्यत्र संलक्ष्य साक्षात् । ६ ।

यदि काल के अवयव (लिप्ता, दण्ड, दिन, मास, वर्ष आदि) की गणना प्रत्यक्ष नहीं जाय तो वैदिक और स्मार्त कर्म धर्म का फल नहीं देते हैं । अतः विद्वानों द्वारा इस ग्रन्थ की परीक्षा की जाय कि इसकी गणना अनुसार ग्रहण और भगण आदि दिखते हैं या नहीं, तब इसे स्वीकार करें । ६ ।

प्राक् सिद्धान्त प्रसिद्धा रवि शशि भगणा घस्त्र मासाब्द संख्या
भूगोल व्यास जीवोपकरण सहिताः सर्वदा सन्ति सत्याः ।
किन्त्वन्येषां ग्रहाणामिह भगण गणस्योच्च पातेषु कक्षा-
बिम्बादीनां विसम्वादत इतिरजनैः कल्प्यते ग्रन्थ जातम् । ७ ।

रवि और चन्द्र के भगण, दिन, मास और वर्ष की संख्या (एक कल्प में) पृथ्वी, उसका व्यास, ज्या तथा कोटिज्या आदि क्रमशः मान्य हैं, अतः ये सब प्राचीन ग्रन्थों के अनुसार ही लिखी गयी हैं । किन्तु अन्य ग्रहों के भगण, उच्च, पात, शर, कक्षा और बिम्ब आदि का मान समय के साथ बदलते रहते है अतः नये ग्रन्थ लिखे जाते हैं ।

कल्प, वर्ष, मास, दिन आदि की परिभाषा सूर्य और चन्द्रमा की गति के

अनुसार है, अतः दोनों का परस्पर सम्बन्ध अपरिवर्तित है। वर्ष का कुछ भी मान हो उसमें पृथ्वी सूर्य का एक चक्कर लगायेगी, या एक दिन में पृथ्वी का अपने अक्ष पर एक चक्र होगा। पृथ्वी की गति सूक्ष्म ज्ञात होने पर वर्ष और दिन भी ज्यादा शुद्ध रूप में ज्ञात होंगे पर उनका परस्पर सम्बन्ध वहीं रहेगा। अन्य ग्रहों की गति उपकरणों की सूक्ष्मता के अनुसार कम या ज्यादा शुद्ध देखीं जती है या गणित की नयी विधि के अनुसार ज्यादा शुद्ध गणना हो पाती है।

तत्तद् ग्रन्थेषु यस्मिन् न भवति सुमहत्तारतम्यं ग्रहादे-
दृक् सम्वादात् सतथ्यो बहुतरतमतः कथ्यते ऽसावतथ्यः।
पूर्वाचार्यैस्तदस्मद् ग्रथनमथि चिरस्थायि दृक् सिद्ध भावा -
दव्यर्थ भव्य सेव्यं भवतु हि भवितो भावि भूतानभिज्ञाः। ८।

पूर्व आचार्यों ने भी कहा है कि नये ग्रन्थों द्वारा साधित ग्रह और उनके देखे गये स्थान में बहुत कम अन्तर हो तो उन ग्रन्थों को उपयुक्त समझा जाता है। किन्तु ज्यादा भेद होने पर उसे बेकार माना जाता है। इस ग्रन्थ द्वारा सिद्ध ग्रह उसी स्थान में दिखायी देते हैं। अतः मेरा विश्वास है विद्वान् इसे परीक्षा कर ग्रहण करेंगे और यहां बहुत काल तक उपयोगी रहेगा।

यदैवदृक् गोचरतां यदेति तदा तदेवाद्रियते हि शास्त्रम्
सद्वासना वार्तिक एवमाह पश्यत् जनानल्प मतीन् नृसिंहः। ९।

(भास्कर विरचित सिद्धान्त शिरोमणि) की 'वासना वार्तिक' नामक टीका में (ज्योतिर्वित्) नृसिंह ने कहा है कि सामान्य लोगों की बुद्धि कम हैं, अतः जो शास्त्र प्रत्यक्ष होता है उसी की संसार में प्रतिष्ठा होती है।

शास्त्रे कृते यदि जगद् व्यवहार हेतौ
गम्भीरता भवति तन्निखिल प्रवृत्तिः।
न स्यादलोऽत्र गणिते सुगमाभिधेये
शब्दस्य पाटव मनादरणीय मेव। १०।

यदि लोक व्यवहार के लिये शास्त्र लिखना है तो उसमें शब्द और अर्थ की) गम्भीरतां होने से लोगों की रुचि नहीं होगी। अतः उसमें शब्द प्रयोग की कुशलता के बदले गणित का सरल वर्णन जरूरी है।

स्कन्ध त्रयस्य मध्ये गणित स्कन्धो विचित्र एवादौ।
होरा जातक वेदीयमृते कृत्येषु संशेते। ११।

गणित, फलित और मुहूर्त-इन तीन स्कन्धों में ज्योतिष शास्त्र विभक्त है। इसमें गणित का स्थान प्रथम है, क्योंकि इसके बिना फलित और मुहूर्त के काम में सन्देह होता है।

श्री भास्करोक्त पाटी विमलास्ते तन्मयापि सा नोक्ता
ग्रह गणितारम्भोयं भूयाद् भव्याय भूतानाम्। १२।

श्री भास्कराचार्य ने पाटी गणित (लीलावती) सम्पूर्ण शुद्ध लिखा है अतः उसे बिना दुहराये मैं ग्रह गणित का आरम्भ करता हूँ जिससे प्राणियों का कल्याण हो । १२ ।

सिद्धान्त दर्पणेऽस्मिन् सलोचना तां प्रतर्पणे निपुणाः ।
क्वापि क्वापि विशेषम् पश्यते गणितागम ग्रामात् । १३ ।

विद्वान् लोगों की तृप्ति के लिए सिद्धान्त दर्पण में विशेष बाते हैं जो अन्य सिद्धान्त ग्रन्थों में नहीं है। उसे कृपा देखें ।

श्रुतिर्यज्ञ कर्म प्रवृत्तैव यज्ञ-
क्रियाः काल मासाद्य वैशद्यमापुः
इतः शास्त्रतः कालबोधो यतोऽङ्गे
श्रुते ज्योतिषं प्रोक्तमस्मान् मुनीन्द्रैः । १४ ।

वेद द्वारा लोग यज्ञकर्म में प्रवृत्त होते हैं । यज्ञ कर्म ठीक समय (मुहूर्त) में ही फल दायक होते हैं । उस मुहूर्त का ज्ञान ज्योतिष शास्त्र द्वारा ही होता है अतः मुनि लोग ज्योतिष को वेद का अंग कहते हैं ।

आम्नायाख्यपुंसः समजनि नयनं ज्योतिषं शब्द शास्त्रं
वक्त्रं श्रोत्रं निरुक्तं क्रमत इह भुजा नासिके कल्पशिक्षे ।
छन्दः पद्वन्द्वमस्माद् गुरुतर मखिलादंगतो वेदचक्षु
ज्योतिः शास्त्रं समस्तांगभृदपि न यतः कर्मठो नष्टदृष्टिः । १५ ।

वेदरूपी पुरुष के छः अंग हैं-(१) ज्योतिष आंख हैं, (२) व्याकरण रूपी मुंह, (३) निरुक्त , कान, (४) कल्पशास्त्र, हाथ, (५) शिक्षाशास्त्र, नाक और (६) छन्द, दोनों पैर । सबअंग होने पर भी बिना आख लोग काम नहीं कर सकते अतः ज्योतिष वेद का प्रधान अंग है ।

ज्योतिः सन्दर्भ सर्वङ्कष विषयदमति जातक प्रश्न यात्रा
तत्वज्ञ प्राज्ञ गोष्ठी प्रकट गुण घटोऽप्यस्तु लोकस्तुताज्ञः ।
अन्धा सिद्धान्त बोद्धधा न यदि स पुरुषः शोभते नो भतेजः
पुञ्ज व्याप्तापि लुप्तामृत किरणरुचिर्दर्श जातेव रात्रिः । १६ ।

सम्पूर्ण ज्योतिष शार्त्र में निष्णात होकर एवं जातक, प्रश्न, यात्रा आदि तत्व जान कर विद्वान् मण्डली में ज्योतिषी प्रतिष्ठित हो सकता है, लेकिन यदि वह गणित रूपी चक्षु से हीन है तो वह चन्द्रमाहीन रात्रि के समान शोभा हीन हो जाता है । यद्यपि उसमें नक्षत्रों का प्रकाश रहता है ।

यत्र त्रुट्यादि कालः प्रलयचरमकः खेचराणां प्रचारः
प्रश्नाचैवोत्तराणि द्विविधगणितमध्यु द्भवो भूतराशेः ।

स्थानं भूभग्रहादे ग्रहण खगयुति ज्या धनुष्कर्मयन्त्र-
क्षेत्रायं गद्यते सद्गणक गणवरै रेष सिद्धान्त उक्तः । १७ ।

श्रेष्ठ ज्योतिषी सिद्धान्त उसे कहते हैं जिस ग्रन्थ में त्रुटि से लेकर प्रलय पर्यन्त समय की चर्चा है, जिमें ग्रह गति, प्रश्न, और उनका उत्तर है, जिसमें (पाटी और बीज) दो प्रकार का गणित हो, जिसमें सृष्टि चर्चा, पृथ्वी नक्षत्र आदि की कक्षा, ग्रहण और ग्रह योग कीआलोचना और ज्या, धनु आदि यन्त्र और क्षेत्रफल आदि की चर्चा हो ।

श्रेष्ठं सर्वश्रुतानां श्रुत मिति कृतिभि र्ज्योतिषं तत्र सारः
सिद्धान्तस्तत्र गोल स्तदवगति कृतो वर्त्तते यत्र मर्त्यः ।
विद्वत्पूज्यः सदेशः सकल कलुषहृद् धर्म शर्माश्रयः स्याद् -
यत्रास्ते नैष तस्मिन् पशु चरित परे पाप जो यन्प्रतापः । १८ ।

शास्त्रज्ञ धार्मिक लोग कहते हैं-सभी शास्त्रों में ज्योतिष श्रेष्ठ हैं । ज्योतिष में सिद्धान्त और सिद्धान्त में भी गोल श्रेष्ठ हैं । जहां गोल जानने वाले विद्वान् रहते हैं उस देश की विद्वान् पूजा करते हैं, वहां पापनहीं रहता, धर्म और सुख उस देश में आश्रय लेते हैं । जहाँ गोलज्ञ विद्वानों का अभाव वहां पशुप्रवृत्ति (आहार, निद्रा, भय और मैथुन) बढ़ जाते हैं । अतः पाप जनित कुप्रभाव उस देश को नष्ट कर देते हैं ।

यशश्च तुर्वर्ग फलप्रदं श्रुतं पवित्रमेतत्पठनीय मेवतत्
अहर्पति प्राह रह स्यनित्यतः प्रदेयमेतत्प्रवणाय साधवे । १९ ।

यह शास्त्र यश और चतुर्वर्ग फल (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) देता है, पवित्र और पठनीय भी है अतः सूर्य ने (सूर्यांश पुरुष ने मया सुर को सूर्य सिद्धान्त का उपदेश दिया था) इस शास्त्र को गोपनीय कहा जिसे केवल सज्जन और विनयी पुरुष ही पढ़े ।

पूर्वार्द्धे कालमहर्गण भगण खग ज्यादि विस्पष्टतेषु
त्रिप्रश्न प्रग्रहोडु ग्रहसमिदुदयास्तेन्दु श्रृंगातिपातान् ।
अन्त्वे भागेऽनुपयोगोत्तर विविध मत व्यक्ति सृष्टयन्तगोल
क्ष्मा कक्षा यन्त्र वर्षा च्युतुनुति कुतुका न्यत्र पश्यन्तु सन्तः । २० ।

इस ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में काल परिमाण, अहर्गण, भगण, ग्रह आनयन ज्या कोटिज्या आदि, स्पष्ट, शर, त्रिप्रश्न, ग्रहण, ग्रहयुति, नक्षत्र, युति, उदय और अस्त, चन्द्र श्रृंगोन्नति और अति पात है ।

उत्तरार्द्ध में प्रश्न, उत्तर, नानामत चर्चा, सृष्टि और उसका लय, गोल, पृथ्वी, कक्षा, यन्त्र, देश-विदेश, जगन्नाथ स्तुति और कौतुक पंजिका की आलोचना है । इसे सज्जन लोग देखें ।

यत्तेज क्षुब्धमाया जनित महदहंकार तन्मात्र भूतोद्
भूताण्डाधीश नाभ्युद्भव भुवन मयाऽम्भोजगर्भात्स्वयं भू ।
भूत्वा भूतेर्भूतानि त्रिभुवन भवनान्या रचक्ष्या स्वधाम्नि
ध्यायं ध्यायं यमास्ते स जयति परम ब्रह्मधामादि देवः । २१ ।

जिसके तेज से क्षुब्ध हो प्रकृति ने महत्तत्व को जन्म दिया, महत्तत्व से अंहकार और उससे पांच तन्मात्रा, पांच, महाभूत (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश), एकादश इन्द्रियां (पांच, कर्मेन्द्रियां, पांच ज्ञानेन्द्रियां और मन) होते हैं, उस ब्राह्माण्ड के स्वामी के नाभि कमल से उत्पन्न स्वयंभू ब्रह्मा पंचभूतो के संयोग से तीन भुवनों की रचना करते हैं, और अपने धाम में रह जिसका ध्यान करते हैं, वह आदि परम ब्रह्म हमारा पालन करें ।

स्रष्टा सृष्टा भचक्रं ध्रुव युगल युतं सग्रहं सन्नियुक्तं
नित्यभ्रान्तावनान्तो भुवि भवि कवि कर्माद्यभिद्व्यक्ति हेतोः ।
भ्रान्ते भानां गणेतत् प्रभृति चलतरे पश्चिमाशाभिमुख्यं
प्राचीं नीचोच्चवृत्तैर्व्रजति खगततिः, स्वल्पगत्यैव तस्मात् । २२ ।।

सृष्टि रचते के बाद ब्रह्म ने दो ध्रुवों के साथ ग्रहनक्षत्र चक्र को संयुक्त कर ध्रुवों के चारों तरफ पूर्व से पश्चिम की तरफ घुमा दिया । यह भ्रम्यमाण काल चक्र ही व्यक्तियों के पूर्व कर्म का सूचक है (सभी घटनाओं का कारण) और अनन्त आकाश में यह भगोल घूम रहा है । यह गोल पश्चिम से पूर्व ग्रह अपनी अपनी अल्प गति से नीच-उच्च वृत्तों में घूम रहे हैं ।

कालाख्यस्य विभोरिदं भगवतो नित्यस्य रूपान्तरं ।
ज्योतिश्चक्रमिति वृवन्त्यवयवा सृष्ट्या दयोऽस्येत्यपि ।
विद्वांसोऽद्य मया तदाद्य विवृतिस्तेनात्र सम्पाद्यते
पद्यैर्हृद्यतरैरवद्य रहितैः सद्योऽभिवेद्यार्थकैः । २३ ।

भगवान् कालरूप, नित्य और विभु (रचयिता) है । ज्योतिश्चक्र (पूर्वश्लोक) भगवान् का ही रूप है । त्रुटि आदि (काल के मान) इसी काल के अवयव है, ऐसा विद्वानों का मत है । अत मैं काल चर्चा से ग्रन्थ का आरम्भ करता हूं, जिसे विद्वान् लोग समझ कर स्वीकार एवं प्रशंसा करेंगे ।

यो भूतसंहारक एष कालः कालोऽपरः स्यात्कलनात्मकश्च ।
सस्थूल भावादय सूक्ष्म भावान्मूर्त्तोऽप्यमूर्त्तो द्विविधः प्रदिष्टः । २४ ।

काल के दो अर्थ हैं-एक पंचभूतों का संहार करने वाला और एक काल जिसे मापा जाता है । मापे जाने वाले (कलनात्मक) काल के दो रूप हैं । स्थूल काल को मूर्त्त (जिसे अनुभव किया जा सके) और सूक्ष्म काल को अमूर्त (इन्द्रियों द्वारा अनुभव न हो सके इतना छोटा) कहते हैं ।

प्राणादिकोऽसौ व्यवहार योग्यो मूर्त्तोनतद् योगयतया स्थितोयः
त्रुट्यादि कोऽमूर्त्त इतीरितोऽयं शीघ्रेरितात्यन्त सताग्र सूच्या । २५ ।

काल के प्राण आदि रूप मूर्त हैं । अत दैनन्दिन व्यवहार में आते हैं । जिस काल को व्यवहार में नहीं लाया जाय वह त्रुटि आदि-अमूर्त काल हैं ।

स्या द्यावतोद्यन्नलिनीदलस्य वेधस्त्रुटिः सैव शतेन (१००) तासाम् ।
एको लवस्तत्पर नामकोऽसौ त्रिंश (३०) ल्लवैरेक निमेष भक्तः । २६ ।

एक कोमल कमल पत्र को तेज छुरी से काटने में जितना समय लगता है उसे त्रुटि कहते हैं । १०० त्रुटि को एक लव या तत्पर कहते हैं। एक निमेष ३० लवों में विभक्त है (निमेष = पलक झपकाना)

तैरुच्यतेऽष्टोदश (१८) भिश्च काष्ठा
सार्द्धान्विता स्याद् गुरुवर्ण कालः ।
तैः खेन्दुभिः (१०) प्राण उदीरि तस्तद्-
युग्मं (२) कला तत्त्रितयं (३) विनाड़ी । २७ ।

१८ निमेष की एक काष्ठा और २७ निमेष एक गुरु वर्ण उच्चारण का समय है । १० गुरु वर्ण को एक प्राण कहते हैं । २ प्राण की एक कला और ३ कला की १ विनाड़ी या पल होती है ।

पलं च सा दिक् (१०) गुणिता क्षणः स्यात्
तै षड्भि (६) रेका घटिका च नाड़ी
दण्डश्चसा तद्वितयं (२), मुहूर्तो
ऽहोरात्र आर्क्षः खगुणै (३०) र्मुहूर्तैः । २८ ।

१० पल या विघटी का एक क्षण, ६ क्षण का १ घटी का दण्ड, २ दण्ड का एक मुहूर्त्त तथा ३० मुहूर्त्त का १ नाक्षत्र दिन होता है ।

अह्नश्च रात्रेश्च शरेन्दु (१२) भागः सूक्ष्मो मुहूर्त्तः सदसत्फलार्ह
स्थूलस्त्वहोरात्र खराम (३०) भाग ऋक्षभ्रमोत्यं दिनमार्क्ष माहुः । २९ ।

दिन के या रात के १५ वें भाग को सूक्ष्म मुहूर्त कहते हैं । जिसमें अच्छे या बुरे फल का विचार होता है । अहोरात्रि (दिन और रात) के १/३० भाग को स्थूल मुहूर्त कहते हैं । एक नक्षत्र जिस स्थान पर दिखता है, उसके बाद फिर उसी स्थान पर वापस आने के समय को नाक्षत्र दिन करते हैं ।

तैरार्क्षमासः खगुणैः (३०) खरांशु पश्चाद् भ्रमैः सावन मास उक्तः ।
तद् वत् खरामै (३०) स्तिथिभिस्तु चन्द्र, सौरोरवेः, संक्रमण प्रमेयः । ३० ।

३० नाक्षत्र दिन का एक नाक्षत्र मास होता है । सूर्योदय से अगले सूर्योदय का समय सावन दिन तथा ३० सावन दिन का मास होता है । इसी प्रकार चान्द्रमास (अवामास्या से अवामास्या जब पूरा चन्द्र अन्धकार में हो) भी ३०

चन्द्रतिथि में विभक्त है। एक संक्रान्ति सेअगली संक्रान्ति तक का सनय सौरमास कहलाता है।

तद्विएवस्तरो ऽप्युत्तर भाग वाच्योऽर्क (१२) संरूयैः स्तपनस्य मासैः।
स्यात्सौर संवत्सर एष दिव्यं दिनं तथा दानुज मित्यवेतः। ३१।

इन नाक्षत्र, सावन, तिथि, सौर आदि मास का विस्तृत विवरण ग्रन्थ के उत्तरार्द्ध में है। १२ सौर मास का एक सौर वर्ष तथा एक सौर वर्ष का एक दिव्य या आसुर दिन होता है।

देवासुराणां दिन रात्रि भोगो विपर्यये णार्क गति प्रभेदात्
तेषान्तु षष्ठ् युत्तरयात्रिशत्या (३६०) दिव्यं भवेदासुर मेव वर्षम्। ३२।

सूर्य की उत्तर और दक्षिण गति के कारण देवता असुरों का अहोरात्र होता है। (सूर्य ६ मास उत्तरी गोलार्द्ध में रहने पर उत्तर ध्रुव में दिन एवं दक्षिणी ध्रुव में रात होती है। जिसे देवताओं का दिन और असुरों की रात कहते हैं)। ३६० दिव्य या असुर दिनों का १ दिव्य या असुर वर्ष होता है।

एतै र्युगं द्वादशभिः सहस्रै (१२,०००)-
श्चतुर्यु गञ्चेत्यपि तन्निरुक्त म्
तदेव खाभ्राभ्रखदन्तवेदै- (४३,२०,०००)
र्दिवाकराब्दै र्युगमस्य पादाः।

(ख =०, अभ्र =०, अभ =०, ख =०, दन्त =३२, वेद =४ इस प्रकार दाहिने से इन अंकों को लिखने से ४३,२०,००० बनता है।

१२,००० दिव्य वर्ष
या १ महायुग का चतुर्युग
४३.२०.००० सौर वर्ष

कृतादयो धर्मपद क्रमेण चत्वार, एते युगसंज्ञकाश्च।
महायुगा भ्रेन्दु (१०) लवश्चतु (४) स्त्रि (३)
द्वै (२) कै (१) र्हतः सत्यमुखां भ्रिमानं। ३४।

महायुग के १० भाग कर क्रम से ४,३,२, और १ का गुणा करने पर (धर्म के पदों के अनुसार) सत्य, द्वापर और कलियुग आते हैं।

आद्यन्त सन्ध्या सहितं किलोक्तं संन्ध्या युगानां स्वरसां (६) श एव।
तदर्धमादौ दलमन्त्य भागे मध्येतु शुद्धो युग भक्ति कालः। ३५।

प्रति युग का १/६ अंश आदि और अन्त की सन्ध्या होती है। इसका आधा (१/१२) आदि संध्या और इतना ही अन्त सन्ध्या है (दोनों सन्ध्या (१/६ भाग) निकालने पर शुद्ध युग बचता है।

मन्वन्तरं चन्द्र महीध्र (७१) संख्यैर्महायुगै सत्ययुगप्रमाणः (१७,२८,०००)
सन्धिस्तदन्ते जलसम्प्लवाख्यः सर्वादिमः स्यात् खलुसन्धिरेकः । ३६ ।

७१ महायुग के एक मन्वन्तर होता है । प्रत्येक मन्वन्तर के अन्त में सत्ययुग के बराबर एक सन्धि होती है । जल प्रलय के बाद जब जन सृष्टि का प्रारम्भ होता है तो पहले मन्वन्तर के पहले भी एक सन्धि (सत्ययुग के बराबर) होती है ।

शरेन्दु (१५) भिः सन्धिभिरन्वितैस्तैर्मन्वन्तरैः स्यादशभिः चतुर्भिः (१४)
दिनं विधेः कल्प इति श्रुतं तद् युगैः सहस्रेण मितं निशापि । ३७ ।

१५ सन्धियों से विभक्त १४ मन्वन्तरों का ब्रह्म का एक दिन होता है जिसे कल्प कहते हैं । इसमें १००० (महायुग या) युग (१४ मन्वन्तर x७१ युग + १५ सत्य युग x ४/१० युग) होते हैं । इतने ही (१००० युग) समय की ब्रह्मा की रात्रि होती है ।

तावत्प्रमाकल्पयुगं द्युरात्रिमित्थं समाना शतमायुरस्य ।
परामहाकल्प इतीरितं तत् परार्द्ध माद्यं किल नाम पाद्मयम् । ३८ ।

इस प्रकार दो कल्पों का ब्रह्मा का अहोरात्र, इस अहोरात्र का जो वर्ष होगा (३६०x२ कल्प) वैसे १०० वर्ष की ब्रह्मा की आयु है जिसे महाकल्प या परा कहते हैं । पहले परार्द्ध (५० ब्रह्मवर्ष) का नाम पाद् म्य था ।

वराहमद्ध्र्वन्त्व परम्पराया वदन्त्यदः कल्पयुगञ्च विज्ञाः ।
अजादिगत्वात्समयस्य नाहं जाने व्यतीताः कत लोकनाथाः । ३९ ।

दूसरे परार्द्ध का नाम वराह है । काल अनादि है अतः कितने ब्रह्म बीत चुके यह नहीं कहा जा सकता ।

प्रवर्त्तमानस्यविधेरिदानीं व्यतीतमर्धं परमायुषोऽस्य
अत्रा दिमे शेष दलस्य घस्रे ससन्धयः षण्मनवोऽव्यतीताः । ४० ।

वर्तमान ब्रह्मा के परार्द्ध का प्रथम दिन चल रहा है जिससे सन्धि सहित ६ मनु बीत चुके ।

स्वायम्भुवः प्राङ् मनुराविरासीत् स्वारोचिषश्चोत्तम तामसौ च
सरैवताख्य, खलु चाक्षुषोऽनु वैवस्वतः सप्तम एष आस्ते । ४१ ।

क्रमानुसार ६ मनु बीते हैं । स्वायम्भुव, स्वारोचिषु उत्तम , तामस, रैवत और चाक्षुष । सप्तम मनु का नाम वैवस्तत है ।

अस्यान्तरे यातवती युगानां सप्ताधिकाविंशति (२७) रन्यतश्च ।
युगाद् गतः सत्य मुखा त्रिपादाः कलेः खसप्तांक महार्णवाब्दाः(४९७०)।४२।

सप्तम मनु में २७ महायुग बीते तथा २८ वें महायुग में सत्य, त्रेता और द्वापर

बीत चुके। कलियुग में ४९७० वर्ष बीत चुके (ग्रन्थारम्भ के समय)।

खाद्र्यंकं नागाब्धि नवाक्षि सप्त नवेन्दवो
(१९७२९४८९७०) ब्रह्म दिनादितोऽमी।
याताः स्युरेतत् गणितोक्ति काले ख
खाभ्रखाभ्राभ्रकृताब्धिचन्द्रै। ४३। (१४४००००००)।

इन सबको जोड़ने से ब्रह्म के दिना रम्भ से ग्रन्थ आरम्भ तक १९७२९४८९७० वर्ष बीत चुके। १४,४०,००० द्वारा

कल्पाब्दसंख्या विहृता भवन्ति।
दण्डादयोऽण्डाधिपधस्र भुक्ताः। (१३।४२।३।४३।२७)।
कल्पाब्द, कार्यं त्विपदेव नैभ्यः
प्रयोजनं खेचर वासराब्दे। ४४।

कल्पाब्द संख्या में भाग देने से ब्रह्मा के वर्तमान दिन के दण्ड आदि निकलेंगे (इनका मान १३।४२।३।४३।२७। है) कल्प वर्ष का इतना ही प्रयोजन है, उसका ग्रह दिन आदि निकालने में कोई उपयोग नहीं है।

उत्पद्य विष्णोः सृजतो दिनादौ ग्रहर्क्ष गोलादिक मब्जयोनेः।
त्रयं युगानां चरणत्रयञ्च सार्ध यतः कल्पमुखादयासीत्। ४५।

नारायण से उत्पन्न होकर ब्रह्मा ने अपने दिन के प्रारम्भ से ग्रह, नक्षत्र, गोल, भूगोल, देव और दैत्य आदि की रचना शुरू की। इसमें उन्हें तीन महायुग, तीन युग चरण (सत्य त्रेता तथा द्वापर), चौथे युगचरण (कलि) का आधा समय लगा।

तत्खाभ्र खाब्ध्यं ग ख सप्त चन्द्रै (१७०६४०००)
रब्दैरवेः कल्प समा विहीनाः।
सृष्टयब्द्काः खाद्रिनवाब्धि नाग-
नागाथबाणां कभुव (१९५५८८४९७०) स्त्विदानीम्। ४६।

सौर वर्षों में सृष्टि रचना का समय १,७०,६४,००० हुआ। इन्हें कल्पवर्ष में घटाने से सृष्टि गताब्द १९५५८८४९७० हुआ।

कले किल प्रान्त दल प्रवेशे लंकार्ध रात्रे विधिरर्क वारात्।
प्रवर्तयामास खगभ्रमादि प्रमाणितं चैत्र सितादि कालम्। ४७।

(सृष्टि होने पर) कलियुग के शेषार्द्ध आरम्भ होने के समय लंका की आधी रात को ग्रह नक्षत्र मण्डल को घुमा दिया उस दिन को रविवार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा कहा गया।

तदादितः खेचरचक्र पर्या (यः) समं समाप्ता निशि तावति क्षणे
पुनः परे द्युर्गत सम्भवक्षणे तथा प्रवृत्तास्तत एव मन्वहम्। ४८।

इस प्रकार ग्रह नक्षत्र की गति आरम्भ होने पर, ब्रह्मा का दिन समाप्त होते

ही (ठीक एक कल्प या १००० महायुग के बाद) सभी ग्रह नक्षत्र वहीं पहुंच जाते हैं जहां से गति आरम्भ हुयी थी । फिर वैसी ही गति आरम्भ हो जाती है ।

इति द्विशो ब्रह्मदिने ग्रहभ्रम प्रपूर्यते तन्निधनेन तत्क्षयः
इदं मतं मेयदुदीरितं बुधैग्रहक्षयः प्रत्यहमेव कैश्चनः । ४९ ।

इस प्रकार ब्रह्मा के अहोरात्र में दो बार ग्रहों का भगणपूर्ण होता है । ब्रह्मा के विनाश के साथ ही पूरे ज्योतिश्चक्र का नाश हो जाता है । (१०० वर्ष ब्रह्मा के या ७२,००० कल्प के उतने ही पूर्ण भगणों के बाद)

स्वयम्भुवा सार्धमदर्शनं भुवो भवेदितीदं न विचार चारु मे
भुवा समं प्राकृतिके लये क्षयो मयोच्यते भग्रह लोक रक्षिणाम् । ५० ।

कई पण्डितों का मत है कि ब्रह्मा के दिन आरम्भ से ग्रहों का आरम्भ और दिन अन्त से ग्रहों का नाश होता है। सिर्फ पृथ्वी का अन्त ब्रह्मा के नाश के बाद होता है। मुझे यह मत ठीक नहीं लगता, कि प्रतिदिन ग्रहों का नाश होता है । फिर भी पृथ्वी नष्ट नहीं होगी)

इदं महायास विसृष्ट मन्य था कथं दिनान्ते विनिहन्तुमुद्यत्तः ।
विधिग्रहर्क्षामरणोर्भुवः स्थितौ किमस्ति मानं हि वृहद् भसंहृतौ । ५१ ।

प्राकृतिक लय के समय ही पृथ्वी सहित सभी ग्रह नक्षत्र नष्ट होते हैं । यह मेरा मत है । क्योंकि (ब्रह्म) दिन समाप्त होने पर सिर्फ छोटी पृथ्वी बची रहे और बड़े बड़े ग्रह नक्षत्र नष्ट हो जायं इसका कोई उपयुक्त कारण नहीं है ।

यथा तथा वा भवतु प्रयोजनं न तद्विरोधत् गदितं प्रसंगतः ।
अमुष्य कल्पस्य दिनैर्ग्रहादिकं महात्मभिः साधयितुं हि युज्यते । ५२ ।

सिर्फ प्रसंग वश इसकी चर्चा हुई, (इसका ग्रह साधन में कोई उपयोग नहीं है) । ग्रह साधन के लिए वर्तमान कल्प के दिनों की ही गणना की जाती है । (बाकी कल्पों के बारे में कुछ भी मत हो, ग्रह साधन में अन्तर नहीं पड़ता । (विरोधी मत भास्कराचार्य का है) ।

प्रकृतमनुसरामः सामरस्याच्च्छुतस्य
भ्रमति सततमश्विन्यादि पौष्णान्ति वर्गे ।
य इह खचर भोगः पूर्ण आलोक्यतेऽसौ
भगण इति निरुक्तः पर्ययः चक्र संज्ञाः । ५३ ।

शास्त्र हमेशा अपने उद्देश्य का ही वर्णन करते हैं अतः प्रसंग में आये विषय को छोड़ मूल विषय की आलोचना आरम्भ होती है । कोई ग्रह कान्ति वृत्त के अश्विनी से आरम्भ कर रेवती तक गति होने पर उस ग्रह का एक वृत्त पूरा होता है । इस एक बार पूर्णवृत्त गति को भगण कहते हैं । जिसके अन्य नाम पर्याय और चक्र हैं ।

अर्का (१२) शो भगणस्य राशिगृह भक्षेत्रर्क्षनामास्य तु ।
त्रिशां (३०) शोऽपि लवांश भाग उदितस्तत्षष्ठि (६०) भागः कला ।
लिप्ता तत् खरशांश (६०) कस्तु विकला तत्तत्खषड् (६०)
भागकै गत्यर्थं कथिताः पराद्यवयवाः प्राक् सूरिभिर्भूरिशः । ५४ ।

भगण (वृत्त) के १/१२ भाग को राशि कहते हैं । राशि, गृह, भ, क्षेत्र, ऋक्ष आदि इसी के नाम हैं । राशि का १/३० भाग अंश है । लव और भाग अंश के अन्य नाम है । अंश के १/६० भाग को कला या लिप्ता कहते हैं । कला के १/६० भाग को विकला या विलिप्ता कहते हैं । विकला के १/६० भाग और उसके भी १/१६० भाग को परा, विपरा आदि कहते हैं । प्राचीन आचार्यों ने ये सब नाम ग्रह गति के वर्णन में प्रयोग किये हैं ।

यः पूर्वत्र परार्द्ध के स्मवसति श्री माधवा रूयां दधद्-
गुप्तः कृप्त महेन्द्र नीलतनरुक, नीलाचला ग्रस्थले ।
द्वैतीयीक परार्ध केऽधम जनानुद्धर्तु कामः स्फुटं ।
धत्ते दारव धाम मामवतुमा कान्तः स सन्तायतः । ५५ ।

प्रथम (पाद् म्य नामक) पप्रार्ध में महेन्द्र नील कान्ति वाले नीलगिरि के शिखर पर श्री नीलमाधव के नाम से जो वास करते थे, वही द्वितीय परार्द्ध (वाराह) में पतितों के उद्धार के लिए दारु ब्रह्म रूप में प्रकट हो वहीं रहते हैं, वह लक्ष्मीकान्त श्री जगन्नाथ मेरा कष्ट दूर करें ।

इत्युत्कलोज्वल नृपाल कुल प्रसूत-
श्रीचन्द्रशेखर कृतौ गणितेऽक्षिसिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
शुद्धोऽगमत्समयभाक् प्रथमः प्रकाशः । ५६ ।

उड़ीसा के उज्वल राजकुल में जन्मे श्री चन्द्र शेखर के दृक् सिद्ध गणित ग्रन्थ सिद्धान्त दर्पण को बच्चे भी समझ सकते हैं । उसका प्रथम प्रकाश समाप्त हुआ ।

द्वितीयः प्रकाशः

भगण आदि का वर्णन

सूर्यज्ञा स्फुजितां पुरोगतिमता कोटिघ्न दन्ताब्धयः (४,३२, ००,०००)
कल्पेस्युर्भगणाः शनिज्य कुभुवां ते चैव शीघ्रोच्चजाः ।
खाभ्राभ्रांगसुराग्नि मार्गण गिरि ग्रावेषवः (५७,७५,३३,३६, ०००) शीतगो
रादित्य क्षितिभू नगाष्ट रसगो दृक् बाहवो (२९,९६,८७,११,१२) भूभुवः । १ ।

एक कल्प में सूर्य के पश्चिम से पूर्व के भगण ४,३२,००,००, ००० हैं ।

(कोटि =१ करोड़, दन्त =३२, अब्धयः = ४ समुद्र) यही भगण बुध और शुक्र के (अस्फुजित) के हैं । मंगल, गुरु और शनि के शीघ्रोच्च यही है ।

चन्द्र (शीतगः) के एक कल्प के भगण ५७, ७५, ३३, ३.३, ३६,००० है । (ख =०, अभ्र =०, अंग =७, सुर =३३, अग्नि =३, मार्गण (बाण) =५, गिरि =७, ग्रौ =७, इषवः (बाण) = ५) ।

मंगल के एक कल्प के भगण २, २९, ६८, ७१, ११२ है ।

(आदित्य =१२, क्षिति, भू =१, नग =७, अष्ट =८, रस =६, गो (इन्द्रिय) =९ दृक् (आंख), बाहवो (बाहु) =२) ।

क्विन्द्राद्यंग नवांग राम नववाज्यब्जा (१७,९३,६९,६७,१४१) ज्ञशीघ्रोच्चजा
बाणाभ्रेक्षण बाणबाण धरणी वेदर्तु रामाः (३६,४१,५५,२०५) गुरोः
षष्ट्यष्टा द्रिशराक्षि दृक् भुजनभः शैला (७,०२,२२,५७,८६०) भृगोः शीघ्रजा ।
भूपाद्र्यं क कृतांग षट्क मनवः (१४,६६,४९,७१६) सौरेर्मताः वर्यया: । २ ।

बुध (अज्ञ) के शीघ्रोच्च का कल्प भगण (१७,९३,६९,६७,१४१) है । (कु (पृथ्वी) = १ख इन्द्र = १४ प्रति मन्वन्तर) अद्रि (पर्वत) = ७, अंग = ६, नव = ९, राम =३, वाजि (अश्व) = ७ सूर्य रश्मि) अब्ज चन्द्र = १, गुरु का कल्प भगण (३६, ४१, ५५, २०५) हैं ।

शुक्र शीघ्रोच्च का कल्प भगण (७, ०२, २२, ५७, ८६०) हैं । शनि का कल्प भगण (१४, ६६, ४९, ७१६) है ।

सूर्यात्पूर्वग मन्दतुंग भगणाः पाथोधिरामाग्नयः (३३४)
शून्यऽम्भोधि नवाद्रि रुद्र भुजग स्तम्बेरमाम्भोधय, (४८,८१,१७,९४० ।
पूर्णेन्दुज्वलनाः (३१०) खचन्द्रनिगमा (४१०) बाणाभ्रनागा (८०५) कुभृत्
पञ्चेषु प्रमिताः । (५५७) खसप्तय (७०) इति ज्ञेया पदच्छेदतः । ३ ।

पूर्व से पश्चिम की तरफ सूर्य के मन्दोच्च के कल्प भगण ३३४ हैं । चन्द्रमन्दोच्च के कल्प भगण (४८, ८१, १७, ९४०) हैं । मंगल मन्दोच्च का (३१०) बुध मन्दोच्च (४१०), गुरु मन्दोच्च (८०५), शुक्र मन्दोच्च (५५७) तथा शनि मन्दोच्च (७०) है ।

चन्द्रात् पश्चिम गामि पात भगणा रामाग्नि शून्याष्टगो
चक्षुः पक्ष गुणेक्षणानि (२३,२२,९८,०३३) फणभृत् नन्देक्षणानि (२९८) क्रमात्
पक्षाक्षाक्षमिताः (२२२) खचन्द्र वसुधा (११०) बाणाब्धि नन्दाः (९४५) शरा
कूपारेषव (५४५) ईरिता न तु रवेः पातः कदाचिद्भवेत् । ४ ।

(सूर्य क्रान्ति वृत्त में रहने के कारण उसके कक्षा पात का भगण नहीं है ।) चन्द्र कक्षापात का कल्प भगण (२३,२२,९८,०३३) मंगल का (२९८) बुध का (२२२), गुरु का (९४५) शुक्र का (११०) तथा शनि का ५४५ है ।

भचक्र पश्चाद् भ्रम सम्मितार्क्ष घस्रा विधातु र्दिवसे भवन्ति
खशून्य शून्याष्ट भुजाष्टशैल रामाक्षि पक्षाष्ट शरेन्दु संख्याः
(१५,८२,२३,७८,२८,०००) । ५ ।

एक नक्षत्र के प्रथम उदय से अगले उदय के समय को नाक्षत्र दिन कहते हैं । एक कल्प में (१५,८२,२३,७८,२८,०००) नाक्षत्र दिन होते हैं ।

विवर्जिता यद्भगणैर्भवेयुस्ततद्ग्रह क्षौणि दिनानि तानि
दिवाकरोयैर्भगणैर्विहीना श्चान्द्रा भवन्त्येषधिनाथ मासाः । ६ ।

ग्रह के प्रथम उदय से द्वितीय उदय तक समय को उस ग्रह का सावन दिन कहते हैं । नाक्षत्र दिन संख्या से ग्रह भगण संख्या घटाने से ग्रह सावन दिन संख्या मिलती है । चन्द्र भगण से सूर्य भगण घटाने पर चान्द्र मास संख्या मिलती है ।

सूर्यस्यमासैः परिवर्जितास्ते कल्पेधिमासाः स्यु रथेन्दु मासाः
खराम (३०) निघ्नाः विधुवासरास्ते तिथिक्षयाः सावन वासरोनाः । ७ ।

कल्प की चान्द्र मास संख्या से सूर्य मास संख्या (सूर्य भगण x १२) घटाने से कल्प की अधिमास संख्या (चन्द्र भगण-सूर्य भगण x १३) आती है । कल्प के चान्द्र मास संख्या को ३० से गुणा कर (चान्द्र तिथि) उससे सावन दिन घटाने पर कल्प का तिथि क्षय होता है ।

मासारवेः कोटिहताः कृताष्ट चन्द्रेषवः (५१,८४,००,००,०००)
कैरव बान्धवस्य ।
खखाभ्रषड् वह्नि गुणाग्निराम पाथोधिरामेन्द्रिय
(५३,४३,३३,६,०००) सम्मिताःस्युः । ८ ।

एक कल्प में सौर मास संख्या (५१,८४,००,००, ०००)
एक कल्प में चान्द्र मास संख्या (५३,४३,३३,३६,०००)

पूर्णपूर्ण गगनांग निर्ज्जर त्र्यंक बाणविधवो (१,५९,३३,३६,०००) ऽधिमासकाः ।
खाभ्र खाभ्र ख ख खाभ्र दृक् शरार्थेन्द्रियेन्दब
(१५,५५,२०,००,००,०००) इहार्कवाशराः । ९ ।

एक कल्प में अधिमास संख्या (१,५९, ३३,३६,०००)
एक कल्प में सौर दिन संख्या (१५,५५,२०,००,००, ०००)

दन्त्यनन्त ख ख खाग्नि खाष्टयो वासरा, शशभृतो युताहताः
(१६,०३,००,००,८०,०००)
शून्य शून्य गगनाष्ट दृक् द्विपाद्रीन्दु गोनग
नगाशुगेन्दवः (१५,७७,९१,७८,२८,०००) (१०)

भानु पश्चिम परिभ्रमोन्मिताः सावनाः कुदिवसा अमीमताः ।
अम्बराम्बर खदृक् शराकृति व्याल खेन्द्रिय यमा
(२५,०८, २२, ५२,०००) स्तिथिक्षयाः । ११ ।

एक कल्प में चान्द्रदिन संख्या (१६,०३,००,००,८०,०००)
,, (रवि) सावन दिन संख्या (१५,७७,९१,७८,२८,०००)
,, क्षयतिथि संख्या (२५,०८,२२,५२,०००)

तुंगखेट भगणान्तरैर्मता मन्द केन्द्र चलकेन्द्र पर्ययाः ।
पूर्ति मेति न युगे यतो ऽखिलः पर्ययस्तदिह कल्प ईरितः । १२ ।

ग्रह और उसके उच्च के बीच चापीय (कोण) अन्तर को केन्द्र कहते हैं शीघ्र उच्च से दूरी को शीघ्र केन्द्र तथा मन्द उच्च से मन्द केन्द्र कहा जाता है । उच्च भगण और ग्रह भगण का अन्तर केन्द्र भगण हुआ । ग्रहों के उच्च और पात आदि के भगण युग में पूर्ण नहीं हो पाते हैं, अतः उनके कल्प भगण कहे जाते हैं (कल्प या १००० युग में ये भगण पूर्ण होते हैं ।)

द्राक् चलाशु चपलादि नामभिः शीघ्र तुंग उदितो महात्मभिः ।
उच्च मन्द मृदुनामभिस्तथा वर्ततेऽत्र मृदुतुंग पर्ययाः । १३ ।

द्राक् चल, आशु तथा चपल आदि शीघ्रोच्च के पर्याय हैं । मृदु, उच्च, मन्द आदि मन्दोच्च के पर्याय हैं ।

खपूर्ण पूर्ण रस चन्द्र बाहवे (२१६,०००)
स्तर्क वाजि नवचन्द्र बाहवो (२१,९७६)
शून्य बाहु गुण चन्द्र बाहवो (२१,३२०)
रन्ध्र पञ्चरस चन्द्र बाहवोः (२१,६५९) । १४ ।

भार्क चन्द्र कु दिना सवः क्रमादेत एव हि भवन्ति मध्यमाः ।
किन्तुषष्टि घटिकात्म सावनै र्वासरै र्व्यवहरन्ति जन्तवः । १५ ।

२१,६०० असु = १ मध्यम नाक्षत्र दिन
२१,९७६ असु = १ ,, सौर दिन
२१,३२० असु = १ ,, चान्द्र दिन
२१, ६५९ असु = १ ,, सावन दिन

इनमें साधारण सावन दिन का ही लोक व्यवहार होता है। जिसके १/६० भाग को घटिका या दण्ड कहते हैं।

स्वस्व पर्ययकलाः कुवासरै भाजिताः स्वगतयः कलादयः
एवमात्म भगणाप्त घस्रतः स्वस्व पर्यय दिनादयः फलम्। १६।

ग्रह के कल्प भगण कला को सावनदिन से भाग देने पर ग्रह की दैनिक कला आदि गति आती है। कल्प सावन दिन संख्या में ग्रह की भगण संख्या से भाग देने पर ग्रह के एक भगण की पूर्त्ति का समय निकलता है।

स्व स्व षष्टि लवकैः समन्विताः सुरिभिर्दिन घटी पलादयः
कल्पिताः समय सूक्ष्मताप्तये राशिभाग कलिकादि वद् बहु। १७।

वृत्त के राशि, अंश के जिस प्रकार (१/६०) द्वारा भाग कला आदि विभाग हैं, विद्वान् उसी प्रकार एक दिन के भीतर ६०, ६० भाग कर दण्ड, पल, विपल आदि सूक्ष्म समय विभाग करते हैं।

सूर्य पर्यय दिनादयः क्रमात् मार्गणांग दहनाः (३६५) शरेन्दवः (१५)
भूगुणाः(३१) क्षितिगुणा (३१) श्रुतुर्भुजाः (२४) संक्रमार्थमनुवर्ष मीरिताः।१८।

सूर्य के एक पूर्ण भगण के दिन आदि हैं-३६५।३१।३१।२४।

राशि भुक्ति दिवसादयो गुरो र्मध्यमस्य कुरसागनयः (३६१) शराः (५)
भानि (२७) गुणभूमि (१३) सम्मिता जैव वत्सर कृते मयोदिताः। १९।

मध्यम गुरु को एक राशि भोग करने में दिन ३६१।५।२७।२७।१३ लगते हैं। जिसे गुरु वर्ष कहा जाता है।

लिख्यन्ते क्षिति सावनैक दिवसे तद् भुक्तयो मध्यमा
लिप्ताद्या दशधा यदा हत दिनै रायान्ति मध्य ग्रहाः।

भानो रंक शरा (५९) गजा (८) दश (१०) दिशः
(१०) सिद्धाः (२४) सहस्रांशव (१२)
स्त्रिंशत् (३०) वारिधयो (४) वियद् विधुमिता (१०)
रत्नाकराः (४) कीर्तिताः। २०।

सूर्य की दैनिक मध्यम गति- ५९।८।१०।१०।२४।१२।३०।४।१०।४ (कलादि)

चन्द्रस्याभ्रनवाद्रयः (७९०) कृतगुणा (३४) द्व्यर्था (५२)
स्त्रयो (३) ऽङ्कोब्धयो (४९)
नागा (८) द्वे (२) रसभूमयश्च (१६) हरित (१०)
चन्द्रेन्दु संख्या (११) क्रमात्।
भौमस्येन्दु गुणा (३१) रसेक्षणमिता (२६) त्रिंशत् (३०)

षड् (६) द्रयब्धयः (४७) । श्रुत्यम्भो निधयो (४४)
रदा (३२) नवकृता (४९) रामाः (३) समुद्रा (४) मताः । २१ ।

चन्द्र की दैनिक मध्यम गति- ७९०।३४।५२।३।८।२।१६।०।२१। कला मंगल की दैनिक मध्य गति- ३१।२६।३०।६।४७।४४।३२।४९।३।४ कला हैं ।

ज्ञस्यार्थाब्धिभुजा (२४५) रदा (३२) रसभुवो (१६)
ऽश्वाः (७) सप्तचन्द्रा (१७) घना (१७)
गोऽर्थो (५९) वह्नि कृता (४३) दृगम्बुनिधयो (४२)
वेदाब्धयो (४४) द्राग् गतिः ।
वेदा (४) नन्दशराः (५९) शराः (५) स्वरगुणा (३७)
खं (०) षड् गुणाः (३६) क्वब्धयः (४१)
क्ष्माभृत् क्ष्मा (१७) वसुधा (१) सुधांशु विशिखा (५१)
वाचस्पति प्राग् गतिः । २२ ।

बुध शीघ्रोच्च की दैनिक गति- २४५।३२।१६।७।१७।१७।५९।४३।४२।४४। गुरु की दैनिक गति- ४।५९।५।३७।०।४१।१७।१।५१।

शौक्री षण्णवति (९६) ईयाः (७) स्वरगुणाः (३७)
सप्ताब्धयो (४७) श्वेषवः । (५७)
खार्था (५०) नन्दगुणा (३९) रदा (३२)
विधुगुणा (३१) बाणाऽग्नयो (३५) द्राग्गतिः ।
मन्दस्य द्वय (२) मभ्र (०) मंगनयना (२६) न्यर्थेषव (५५) श्चक्षुषी (२)
रामार्थाः (५३) क्षिति बाहवश्च (२१)
नयने (२) वेदाः (४) समुद्रेषवः (५४) । २३ ।

शुक्र शीघ्रोच्च की दैनिक मध्यगति-९६।७।३७।४७।५७।५०।३९।३२।३१।३५। शनि की दैनिक मध्यम गति -२।०।२६।५५।२।५३।२१।२।४।५४

चन्द्रोच्चस्य रसाः (६) खवाब्धय (४०)
उदध्यर्थाः (५४) कुरामा (३१) नभो (०)
वेदाम्भोनिधयः (४४) शरा (५) भुजशराः
(५२) पञ्चाब्धयो (४५) ऽङ्काग्नयः (३९)
तत्पातस्य गुणा (३) दिशः (१०) स्वरकृताः
(४७) पूर्णाब्धयो (४०) ऽभ्राब्धयः (४०)
षट्पक्षा (२६) गिरिशाश्च (११) मार्गणदृशो
(२५) विश्वे (१३) खरामा (३०) इति । २४ ।

चन्द्रउच्च की दैनिक मध्यम गति - ६।४०।५४।३१।०।४४।५।५२।४५।३९ ।
चन्द्रपात की दैनिक मध्यमगति - ३।१०।४७।४०।४०।२६।११।२५।१३।३०

भ्राम्य द्धाति यदीय भास्वर वपुर्विभ्रद् भचक्र प्रभां
भिन्दः भीमतमः सुदर्शन मिति रूयातं क्षयान्तं क्षितौ ।
भक्तानां भवभीत सम्भव भिदे भूभार भूतच्छिदे
धाम्ने श्याम धराधराधिपतये कस्मै चिदस्मै नगः । २५ ।

मैं नीलाचल वासी जगन्नाथ को भक्तिभाव से प्रणाम करता हूँ जो आकाश के क्रान्तिवृत्त रुपी सुदर्शन चक्र द्वारा अन्धकार दूर करते हैं । तथा प्रलय काल में पृथ्वी काल में पृथ्वी के भार भूत प्राणियों का संहार करते हैं ।

इत्युत्कलोज्वल नृपाल कुलप्रसूत
श्री चन्द्रशेखर कृतौ गणितेऽक्षिसिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
यातो द्वितीय इहसद् भगणः प्रकाशः । २६ ।

इस प्रकार उड़ीसा विख्यात राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्रशेखर कृत दृक् गणित सिद्ध बालकों के लिए सरल सिद्धान्त दर्पण में भगण वर्णन रूप द्वितीय प्रकाश समाप्त हुआ ।

तृतीयः प्रकाश

ग्रहानयन वर्णनम्

अथाभिवाञ्छितेवर्षे मासे पक्षे तथा वपि ।
तापनैन्दव मानोत्थ सावना हर्गण क्रमात् । १ ।

किसी वर्ष के इष्ट (इच्छित्) मास, पक्ष या तिथि में ग्रह (ग्रह की राशि आदि) जानने के लिए पहले कल्प से (सृष्टि से) आरम्भ कर इष्ट दिन तक (सावन) अहर्गण (दिन समूह) निकालते हैं । इसके लिए सौर और चान्द्र मास दोनों का उपयोग होता है ।

मध्य ग्रहाद्यमाने तु स्थाप येत्कल्प वक्त्रतः ।
अतीतानां षण् मनूनां सन्धि सप्तक संयुतान् । २ ।

मध्य ग्रह आदि लाने के लिए बीते हुए ६ मनु और ७ मनु संधि लें ।

अब्दान् वैवस्वत मनोः शैल बाहु (२७) मितैर्युगैः
कृताद्यंघ्रि त्रययुतैः कल्यतीताब्द कैः समम् । ३ ।

सातवें वैवस्वत मनु में बीते २७ महायुग, ३ पाद युग (सत्य, त्रेता और द्वापर) और कलियुग के बीच चुके और सौर वर्ष ले ।

सर्वगेकत्र संयोज्य सृष्टि कालं त्यजेत्ततः
खा भ्रखाम्बुधि षट् पूर्ण शैलेन्दु (१,७०,६४,०००) प्रमिताब्दकम् । ४ ।

इन सबको जोड़कर उसमें सृष्टि काल (१,७०,६४,००० वर्ष) घटायें ।

ततः शेषान् गतार्काब्दान् हत्वा द्वादशभिः पुनः ।
चैत्र शुक्लादिभिर्यातै र्मासैः संयोज्यतान् पृथक् । ५ ।

शेष सौर वर्षों को १२ से गुणा कर (सौर मास करें) उसमें चैत्र शुक्ल से बीते हुए मास में संख्या जोड़े ।

निवेश्य गुणयित्वाध पंक्ति कल्पाधिमासकैः
विभज्य कल्प सप्ताश्व मासै र्लब्धाधि मासकान् । ६ ।

इसे (सौर मासों को) दो जगह रख, एक स्थान पर कल्प अधिमास (१,५९,३३,६,०००) से गुणा करें और गुणनफल में कल्प के सूर्य (सप्ताश्व) मास (५१,८४,००,००,०००) से भाग दें । भागफल बीते हुए अधिमास हुआ ।

उर्ध्वे संयोजये देव चान्द्र मासा भवन्ति ते ।
त्रिंशत् (३०) घ्ना गततिथ्याध्या द्विष्टा कल्पति थिक्षयैः ।

इस (अधिमास) को ऊपर के (सौर मास) में जोड़ने से चान्द्र मास (कल्पारम्भ से) निकलेगा । इसमें ३० से गुणा कर गततिथि (वर्तमान मास की) जोड़े । एक

स्थान में कल्प तिथि क्षय (२५ ,०८,२२,५२,०००) से गुणा करें ।

हताः कल्पेन्दु घस्राप्ता लब्धावमविवर्जिताः ।
भवन्ति रविवारादि रवि मध्यम सावनाः । ८ ।

गुणनफल को कल्प तिथि (१६,०३,००,००,८०,०००) से भाग देने से इष्ट काल तक तिथिक्षय निकलता है । इसे पहले स्थान की तिथियों से घटाने पर सावन दिन संख्या (रविवार से आरम्भ) निकलती है । (सात से भाग देने पर शेष को रविवार आदि से गिनने पर वार निकलता है) ।

वासराः कुदिनाख्यास्ते गतालंकार्धरात्रतः ।
अत्राधिमासावमयोः शेष द्युघटिकादिकम् । ९ ।

यह वार सृष्टि आरम्भ में लंका की अर्धरात्रि से आरम्भ हुआ था । यहां अधिमास लाने के लिए (केवल लब्धि का प्रयोग हुआ था) शेष (दिन घटी आदि) को

न गृह्य तेऽधिमासस्तु शुद्धेः पूर्वं गतोयदि
तदाशेषांक भूयस्त्वादेकं लब्धेषु योजयेत् । १० ।

नहीं लिया गया था । शेष यदि भाजक के प्रायः समान हो या निकट अतीत में ही एक अधिमास हुआ है तो लब्धि में एक जोड़कर कर शुद्ध अधिमास संख्या ज्ञात करें ।

शुद्धौ सत्यां यदागामी शेषाल्पत्वात्ततस्त्यजे त्
तथा ह्नां वार वैषम्ये सैक व्येकत्वमिष्यते । ११ ।

यदि जल्द ही अधिमास आने वाला है या अधिमास शेष बहुत कम है तो शुद्र अधिमास के लिए एक घटायें । इसी प्रकार अहर्गण से वार निकालने में भी एक का अन्तर पड़ सकता है ।

रवीन्दुस्पष्ट मानेन ग्राह्ययोस्तिथि मासयो
स्यात्सिद्धौ मध्य मानेन क्वचिदेकाधिकोनता । १२ ।

तिथि या मास में एक अन्तर होने का कारण है कि वर्तमान तिथि , मास ग्रह की स्पष्ट गति (जो घटती बढ़ती है) के आधार पर हैं लेकिन गणना के लिए एक कल्प में (सूर्य चन्द्र की) मध्यमगति का व्यवहार होता है ।

अथानीतैर्दिनैः साध्या दिन मासाब्द पालकाः
निर्गतोऽहर्गणः सैकः सप्त भक्तोऽवशेषकः । १३ ।

अहर्गण में (वर्तमान दिन के लिए) १ जोडकर ७ का भाग देने से शेष के अनुसार रविवार (१) आदि दिन आते हैं । (० शेष शनिवार) ठीक वार नहीं आने पर शुद्ध अहर्गण के लिए १ जोड़ना या घटाना होगा ।

वासराधिपतिः सूर्यान्निः शेषत्वेतु सप्तम
खाऽन्याप्तो (३०) द्यु गणो लब्धं द्वि (२) निघ्नं रूप (१) संयुतम् । १४ ।

अहर्गण को ३० से भाग देकर लब्धि को २ से गुणा करें । उसमें १ जोड़कर ७ से भाग दें । भाग शेष से रवि आदि वार की गणना होगी । यह वार अधिपति ही मास का अधिपति होगा ।

सप्तभिः क्षयितं शेषो मासेषो ऽवार्त्तमानकः ।
खराम (३०) शेषास्तद् भुक्त घस्रा भोग्या स्तदोऽपरे । १५ ।

अहर्गण को ३० से भाग देने पर शेष चलित मास का गत दिन (३०) से इसको घटाने पर इस मास का भोग्य या बाकी दिन मिलेगा ।

दिनौघः खरसाग्न्याप्त (३६०) स्त्रिघ्न (३) श्चन्द्र (१) युतो नगैः (७)
हतः शेषः स्ववर्षेशो गतैष्या हानि पूर्ववत् । १६ ।

अहर्गण को ३६० से भाग देकर ३ से गुणा करे और १ जोड़े । फल को ७ से भाग देने पर शेष द्वारा रवि आदि वार मिलेगा, जो इस वर्ष का अधिपति है । ३६० से भाग देने पर प्राप्त शेष चलित वर्ष का भुक्त दिन है अर्थात् इतना दिन पूर्व वर्ष समाप्त हुआ था ।

प्रत्यब्दम् प्रतिमासञ्च स्ववारे तत् प्रवर्तनम् ।
शतानन्दादिभिः प्रोक्ता भिन्नोयः पालकाधिपः । १७ ।

मास के प्रथम दिन का अधिपति उस मास का अधिपति तथा वर्ष के प्रथम दिन का अधिपति उस वर्ष का अधिपति होता है । शतानन्द और उनके अनुयायियों का भिन्न मत है ।

स सौराब्दाधियो ज्ञेयो मेष संक्रान्ति वार पात् ।
वार प्रवृत्ति समया देष्यात् संक्रान्ति नाड़िका । १८ ।

उनके अनुसार मेष संक्रान्ति, जिस वार को पड़े उसी वार का अधिपति वर्ष का अधिपति होता है । (इसके लिए) मेष संक्रान्ति समय को अगले वार आरम्भ होने के समय से घटाये (दण्ड आदि) ।

प्रोझ्य शेषः कृत (४) गुणः स्त्रि (३) धाऽधो ऽधोऽ रधोक्रमात् ।
सप्ताग्न्या (३७) प्त युतो ऽष्टा (८) प्त संयुक्त स्तद्दिनादिकम् । १९ ।

शेष को तीन स्थानों में रखकर तृतीय स्थान में ३७ से भाग देकर उसे द्वितीय स्थान में जोड़े, योग में ८ से भाग देकर भागफल को प्रथम स्थान से दण्डादि में जोड़े । योगफल दिन संख्या होगी । (जितना दण्ड उतना दिन) ।

सपालयतिं मेषादेत स्तत्पर खेचरः ।
स्वार्थशोनेन्दु शैलाशि दिनानि प्रति पालकः । २० ।

इतने दिन इस वर्ष का पति (मेष संक्रांति वार का पति) शासन करेगा वर्ष

दिन में इतना दिन घटाने के बाद बाकी दिनों में संक्रान्ति के अगले दिन का ग्रह शासन करेगा । इस मत से वर्षधिपति अधिक से अधिक २७१ दिन (२७० दिन ४८ दण्ड) शासन कर सकता है ।

अतीतोऽहर्गणः स्व स्व भगणैर्गुणितोहृतः
कल्प भूदिवसैर्मध्यो भगणादि ग्रहो भवेत् । २१ ।

इष्ट दिन का ग्रह आदि के लिए अहर्गण में ग्रह के कल्प भगण से गुणा कर कल्प सावन दिन से भाग दें । (कल्प सावन दिन १५,७७,९१,७८,२८,०००) भागफल गत भगण संख्या होगी ।

शेषाः सूर्यैः (१२) खरामैश्च (३०) षष्ट्या (६०) षष्ट्या (६०) पुनः पुनः
गुणिताः कुदिनाप्ताः स्युर्भांश लिप्ता विलिप्ति काः । २२ ।

शेष में १२ से गुण कर कल्प सावन दिन से भाग देने पर राशि, फिर क्रम से सेष में ३०,६०,६० से गुणा कर कल्प सावन दिन से भाग देने पर अंश, लिप्ता, विलिप्ता आती है ।

सूर्य सिद्धान्ते-एवं स्वशीघ्र मन्दोच्चाये प्रोक्ताः पूर्वयायिनः ।
विलोम गतयः पातास्तद् वच्चक्राद् विशोधिताः । इति ॥ २३ ।

(सूर्य सिद्धान्त से उद्धृत)- इसी प्रकार इष्ट दिन का शीघ्रोच्च, मन्दोच्च, पात निकलेगा । लेकिन पात की गति विपरीत दिशा में होने के कारण उसकी राशि आदि को चक्र (१२) राशि से घटा देते हैं ।

गुरोस्तु भगणायाता स्त्रि (३) युता द्वादशा (१२) हताः
गत राशि युतास्तत्र राशि द्वय युता पुनः । २४ ।

इस रीति से गुरु का भगण आने पर उसमें ३ जोड़े । योगफल को १२ से गुणा कर गत राशि तथा २ राशि और जोड़े ।

षष्ट्या (६०) हृताश्च शेषाद्वा गताः स्युः प्रभवादयः ।
सैकाश्चेद् वर्तमानाब्दो गतैष्यां शादयस्ततः । २५ ।

योगफल का ६० से भाग देने पर शेष में १ जोड़े । इससे प्रभव से आरम्भ कर गुरु वर्ष मिलता है ।

अर्कघ्नाः (१२) साभ्रदेवांशा (३३०) भुक्त भोग्य दिनादयः
एवं सृष्ट्या दिवः सिद्धाः सर्वे लंकार्धरात्रि काः । २६ ।

गुरु भगण में राशि के बाद अंश आते हैं और उन्हें १२ से गुणा कर उसमें उनका १/३३० भाग मिलाओ । वह गुरु वर्ष का बीता हुआ दिन होगा । भोग्य दिन भी इसी प्रकार निकलेगा । यह सभी दिन लंका की मध्य रात्रि से आरम्भ होते हैं ।

चैत्रशुक्ला दिचान्द्राब्दो मध्यमस्य वृहस्पतेः
संक्रान्त्या वर्जितः प्रोक्तः स्मृतिज्ञैरधि वत्सरः । २७ ।

मध्य गति का गुरु यदि एक चान्द्र वर्ष (चैत्र शुक्ल से आरम्भ) में यदि एक ही राशि में रहे (दूसरी राशि में न जाये) उस चान्द्र वर्ष को पण्डित अधिवत्सर कहते हैं ।

स्फुटार्क भगणस्यान्तः संक्रमौ तस्य चेद् गुरोः
लुप्त संवत्सरः सोऽयं त्र्यब्दस्पृग् गर्हितः स्मृतः । २८ ।

स्फुट गति से एक सौर वर्ष में (मेष संक्रान्ति से आरम्भ अगली संक्रान्ति तक) यदि वृहस्पति तीन राशियों में जाय उसे लुप्त संवत्सर कहते हैं ।

स्फुटोऽतिचारवान् जीवो नैष्यति प्राग् गृहंयदा
महातिचारस्तत्कालो लुप्त संवत्सरोपमः । २९ ।

किसी सौर वर्ष में यदि गुरु स्फुट गति से अतिचार कर दूसरी राशि में जाय और पुनः उस राशि में वापस न आये उस सौर वर्ष को महाचार काल कहते हैं । यह वर्ष भी लुप्त सम्वत्सर की तरह निन्द्य और अमंगलकारी है ।

युगानि द्वादशत्रस्युः षष्ट्यब्दैः पञ्चभाजितैः ।
लब्धैः सैकैरच्युता दे र्मदानि हृत शेषकाः । ३० ।

६० बार्हस्पत्यवर्ष में १० बार्हस्पत्य युग अर्थात् ५ बार्हस्पत्य वर्ष का एक बार्हस्पत्य युग होता है । चलित बार्हस्पत्य वर्ष संख्या में ५ से भाग देकर लब्धि में १ जोड़ने से अच्युत आदि गुरु युग होते हैं । शेष वर्षों में

वत्सा सम्परीदान्वित् पूर्वा आंगिर साः श्रुताः ।
वह्न्यर्क चन्द्रलोकेश व्योमकेशाधि दैवताः । ३१ ।

क्रम से सम्, परि, इदा, अनु, इत् बार्हस्पत्य वर्ष होते हैं । इनके अब्दिपति क्रमानुसार अग्नि, सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा और शिव हैं ।

लिख्यन्तेऽथ गुरोर्मध्य राशि भोगेन लक्षिताः ।
नामानुरूप फलदाः पूर्वाचार्योक्त वत्सराः । ३२ ।

मध्यम मान के ६० बार्हस्पत्य वर्षों का नाम नीचे दिया जाना है । इन वर्षों का फल उनके नामानुसार होता है । ऐसा प्राचीन आचार्यों का मत है ।

प्रभवो (१) विभवः (२) शुक्ल (३) प्रमदो (४) ऽथ प्रजापतिः ।
(५) आद्योविष्णुयुगे पञ्च सर्वे शुभ फलप्रदाः । ३३ ।

१. प्रभव २. विभव. ३. शुक्ल ४. प्रमद. ५. प्रजापति , ये प्रथम 'विष्णु' युग के पांचों सम्वत्सर शुभ फल देने वाले हैं ।

अंगिराः (६) श्रीमुखो (७) भानु (८) युंवा (९) धाता (१०) द्वितीय के युगे वृहस्पति र्मध्यो न शुभो ऽप्यपरे शुभा । ३४ ।

'द्वितीयक' बार्हस्पत्य युग के पांच सम्वत्सर हैं- ६. अंगिरा ७. श्रीमुख ८. भानु. ९. युवा १०. धाता । इसमें बीच का ८. भानु अशुभ है, बाकी सभी शुभ हैं स।

ईश्वरो (११) बहु धान्यश्च (१२) प्रमदो (१३) विक्रमो
(१४) वृषः (१५) शाक्रे युगे तृतीये च त्रिचतुर्थौ न शोभनौ । ३५ ।

तृतीय बार्हस्पत्य युग 'शाक्र' के सम्वत्सर हैं-११. ईश्वर १२. बहुधान्य १३. प्रमद १४. विक्रम, १५. वृष । इनमें तृतीय और चतुर्थ, प्रमद और विक्रम अशुभ हैं ।

चित्रभानुः (१६) सुभानुश्च (१७) तारणः (१८) पार्थिवो (१९)
व्ययः (२०) चतुर्थो पावकीये च युगे सर्वे न शोभनाः । ३६ ।

चौथे बार्हस्पत्य युग 'पावकीय' के वर्ष हैं-१६ चित्रभानु १७. सुभानु १८. तारण, १९. पार्थिव २०. व्यय । ये सभी अशुभ हैं ।

सर्वजित् (२१) सर्वधारी (२२) च विरोधी (२३) विकृतिः
(२४) खरः (२५) पञ्चमे ऽपि युगे त्वाष्ट्रे प्रथमो द्वौ सुशोभनौ । ३७ ।

पांचवें बार्हस्पत्य युग 'त्वाष्ट्र' के संवत्सर हैं-२१. सर्वजित् २२. सर्वधारी, २३. विरोधी, २४. विकृति, २५. खर । इनमें प्रथम दो शुभ हैं ।

नन्दनो २६. विजय २७. श्चैव जयो २८. मन्मथ २९.
दुर्मुखौ ३०. अहिर्बुध्न्य युगे षष्ठे चान्तिमौ द्वौ न शोभनौ । ३८ ।

अहिर्बुध्न्य नामक छटे युग के सम्वत्सर हैं-२६. नन्दन, २७. विजय २८. जय, २९. मन्मथ, ३९ दुर्मख । इसमें अन्तिम दो अशुभ हैं ।

हेमलम्बी ३१ विलम्बी (३२) च विकारी (३३)
शार्वरिः (३४) प्लवः । (३५)
आदिमौ द्वौ शुभौ स्यातां सप्तमे पैतृके युगे । ३९ ।

सातवें 'पैतृक' नामक वृहस्पति युग के सम्वत्सर हैं । ३१. हेमलम्बी ३२. विलम्बी, ३३. विकारी, ३४. शार्वरि, ३५. प्लव । इसमें पहले दो शुभ हैं ।

शोककृत् (३६) शुभकृत् (३७) क्रोधी (३८) विश्वावसु (३९) परावसु (४०)
अष्टमे तु युगे वैश्वे प्रथमौ द्वौ शुभप्रदौ । ४० ।

आठवें 'वैश्व' युग के वर्ष हैं । ३६. शोककृत् ३७. शुभकृत् ३८. क्रोधी, ३९. विश्वावसु, ४०, परावसु इसमें पहले दो शुभ हैं ।

प्लवङ्गः (४१) कीलकः (४२) सौम्यः (४३)
साधारणो (४४) विरोधकृत् (४५)
चान्द्रे युगे च नवमे त्रि चतुर्थौ शुभप्रदौ । ४१ ।

चान्द्र नामक ९ वें बृहस्पति युग के सम्वत्सर है-४१ प्लवङ्ग ४२. कीलक, ४३, सौम्य, ४४. साधारण, ४५. विरोधकृत् । इसमें तीसरे और चौथे शुभ हैं ।

परिधानी (४६) प्रमाथी (४७) च आनन्दो (४८)
राक्षसो (४९) ऽनलः (५०)
ऐन्द्रानल युगे ऽन्त्यौ च दशमे दुः खदायकौ । ४२ ।

ऐन्द्रानल नमक दशवें वृहस्पति युग के सम्वत्सर हैं - ४६. परिधावी ४७. प्रमाथी, ४८. आनन्द, ४९. राक्षस, ५०, अनल । इसमें अन्तिम दोनों दुःखदायक हैं ।

कपिलः (५१) काल (५२) सिद्धार्थौ (५३)
ततो रौद्रौ (५४) ऽ थदुर्मतिः । (५५)
एकादशाश्विन युगे मध्य एव शुभप्रदः । ४३ ।

आश्विन नामक ११ वें युग के वर्ष हैं-५१. कपिल, ५२. काल, ५३ . सिद्धार्थ, ५४. रौद्र, ५५. दुर्मति । इसमें सिर्फ सिर्द्धार्थ शुभ हैं ।

दुन्दुभि (५६) रुधिरोद्गारी (५७) रक्ताक्ष (५८) क्रोधनः (५९) क्षयः (६०)
कष्टात्कष्टप्रदाः सर्वे भाग्ये द्वादश के युगे । ४४ ।

भाग्य नामक १२ वें युग के वर्ष हैं-५६. दुन्दुभि, ५७ रुधिरोद् गारी, ५८. रक्ताक्ष, ५९, क्रोधन, ६० क्षय । इसके सभी वर्ष महाकष्टप्रद हैं ।

विष्णु (१) वृंहस्पतिः (२) शक्रो (३) वह्नि (४) स्त्वष्टा (५) ततः
परम् अहिर्बुध्न्य (६) श्च पितरो (७) विश्वेदेव (८) निशापतिः (९) । ४५ ।

१. विष्णु, २. वृहस्पति, ३. शक्र, ४. वह्नि, ५. त्वष्टा, ६ अहिर्वुध्न्य ७. पितर, ८. विश्वदेव, ९. निशापति ।

इन्द्राग्नी (१०) चा श्विनीपुत्रौ (११) भग (१२)
श्चेतियुगाधिपाः स्वकाला चार सिद्धेज्य वत्सरा लिखिता अनु । ४६ ।

१०. इन्द्र और अग्नि, ११. अश्विनी कुमार और १२ भग-ये ऊपर लिखे १२ बार्हस्पत्य युगों के अधिपति हैं ।

युगे युगांध्रौ पूर्णत्वाद कैन्दु भगणा वलेः ।
युगतत्पाद दिवसैस्तत्साधन मधीष्यते । ४७ ।

महायुग और पादयुग (सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि) में सूर्य और चन्द्र अपने पूर्णा भगण पूरा करते हैं । अतः इनका मध्यमान युग अर्हगण या पाद युग अहर्गण

से भी निकाला जा सकता है ।

> भंग्यन्तरेण पुनरानयनं दिनानां
> कुर्वे यथावगतिरश्रममस्यनुः स्यात् ।
> गृह्णन्तु नात्र सुधियः पुनरुक्ति दोषं
> श्री हर्ष मुख्य कवि दर्शित एष पन्थाः । ४८ ।

बहुत गणना से बचने के लिए अहर्गण निकालने की सरल विधि भी दी जाती है । जिससे मध्यम ग्रह आसानी से निकल सकते हैं । इसे विद्वज्जन पुनरुक्ति दोष न मानें श्री हर्ष आदि महान कवियों ने भी ऐसा ही किया है ।

> सृष्टयब्दारवि (१२) ताड़िता मधुसिताद्यातीत मासान्विता
> द्विष्ठाः कोटिहताः कृताभ्र कुशरेष्वग्नी षुदन्ता (३२,५३, ५५,१०४) हृताः
> लब्धाढ्याः सगुणा (३०) हृतास्तिथियुताद्वैधाब्ज (१,००,००,००, ०००)
> निघ्नाहृता नागेष्वभ्र शराग्नि पर्वत नवा भ्रांका
> ग्निषड्भिः (६३,९०,९७,३५०,५८)फलैः । ४९ ।

सृष्टि आरम्भ से बीते वर्ष को १२ से गुणा कर उसमें चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से बीचे पूर्ण मास जोड़े । इस फल को दो स्थान में रखकर एक स्थान में (१,००,००,०००) से गुणा कर (३२,५३,५५,१०४) से भाग दें । लब्धि को अन्य स्थान के फल में जोड़े । इसको ३० से गुणा कर अमावस्या के बाद के बीते तिथि जोड़े । इसे दो स्थान में रखकर दूसरे स्थान में (१,००,००,००,०००) से गुणा कर (६३,९०,९७,३५,०५८) से भाग दें और लब्धि को प्रथम स्थान में घटायें । फल लंका की अर्धरात्रि से सृष्टि आरम्भ से बीते अहर्गण हैं ।

> ऊना मध्यम सावना दिन गणा लंकार्ध रात्राद् गता
> भास्वद् वारमुखाः स्युरस्य यदिवा साध्याः कलेर्वक्त्रतः ।
> कार्यौ तत् खचतुष्क हीन गुणकौ हारौ कृताशा शरै (५१०४)-
> रूनौ दक्षिणतोऽष्ट बाण खशरै (५०५८) र्वाराश्च शुक्रादितः । ५० ।

कलियुग आरम्भ से अहर्गण निकालने के लिए भी ठीक इसी प्रकार गणना की जायेगी । (श्लोक ४९) के गुण को के अन्तिम ४ शून्य तथा भाजकों के भी अन्तिम चार अंक अर्थात् क्रमशः ५१०४ तथा ५०५८ निकाल दिये जायेंगे । इस अहर्गण की वार गणना शुक्रवार से होगी क्योंकि कलियुग का पहला दिन शुक्रवार था ।

> स्वीय स्वीय निरुक्त कल्प भगणा रुद्राष्ट चन्द्राहृताः । (१८११)
> खाभ्राभ्राब्धि (४,०००) हृताः फलं भगणतः स्युर्द्वापरान्ता ध्रुवाः
> तद्युक्ताः कलियात सावन दिनै रानीत मध्य ग्रहाः
> पूर्वोक्त क्रमतो भवन्तु भिमते काले ग्रहां शादयः । ५१ ।

ग्रह के कल्प भगण को १८११ से गुणा कर ४००० से भाग देने पर द्वापर युग के अन्त का भगण ध्रुव होगा । कलियुग आदि से इष्ट दिन के अहर्गण द्वारा मध्यम ग्रह निकाल कर द्वापरान्त ध्रुव में जोड़ने से सृष्टि आदि से इष्ट दिन तक का मध्यम ग्रह होगा ।

कुजादि खग पञ्चकार्क मुख मन्दचन्द्रादिणा
तजध्रुव विलिप्तिकाः कलिमुखार्ध रात्रे य था ।
गजांगतिथि वेद दृक् शशधराः (१२४१५६८) (मं) कृताक्षिस्वर
त्रिचन्द्रशशिनः (११३७२४) (बुशी) खदृग् रस भुजाभुजंगा (८२६२०)
(वृ) क्रमात् । ५२ ।

कलि आरम्भ मध्यरात्रि के समय का क्रम सेसे मंगल आदि पांच ग्रहों के स्थान, सूर्य आदि (सात) ग्रहों के मन्दोच्च तथा चन्द्र, आदि (६) ग्रहों के पात सभी विलिप्ता में लिखे जाते हैं । मंगल विलिप्ता (१२४१५६८) बुध शीघ्रोच्च (११३७२४)तथा वृहस्पति (८२६२०) हैं ।

खवेदख मरुभुवो (१४९०४०) (शुशी)ऽब्धि
भुजदिङ् नवेशाश्च (११९१०२४-श) षड् घनाग्नि गज बाहवः ।
(२८३१७६ रवि मन्द) खनृप वेद रामाब्धयः
(४३४१६०- चन्द्र मन्द) ख वेदवसु
षट् शराम्बु निधयः (४५६८४० मंगल मन्द)
खवेदेक्षण त्रिचन्द्र भुजगाः (८१३२४०-बुधमन्द)
खदृग् गगन चन्द्र शून्यर्तवः । (६०१०२०.वृम) । ५३ ।

शुक्रशीघ्रोच्च - १४९०४० शनि ११९१०२४ रवि मन्दोच्च (२८३१७६) चन्द्रमन्दोच्च (४३४१६०), मंगल मन्दोच्च (४५६८४०) बुध मन्दोच्च (८१३२४०) तथा वृहस्पति मन्दोच्च (६०१०२०) विलिप्तायें कलि आरम्भ में थे ।

गजाब्धिशर तत् त्र्युभे (२३५५४८- शुक्रमन्द)
खवसु वाद्धवगांक द्विपा (८९७४८० - शनि मन्द)
द्विपाह्यगकृताक्ष्यगा (७२४७८८- चन्द्रपात)
वसु रदाब्धि पूर्णेन्दवः (१०४३२८) मंगल पात)
द्विपांग ख वसुन्धरा (१०६२७२-बुधपात)
ख रस गोऽर्थ तत्वा (२५५९६०- वृहस्पति पात)न्यथो
नखाभ्रारस गो भुवो (१९६०२०-शुक्र पात)
नख रसेषु दन्ता (३२५६२०-शनि पात) इति । ५४ ।

शुक्रमन्द (२३५५४८), शनिमन्द (८९७४८०) चन्द्रपाद (७२४७८८) मंगल पात (१०४३२८) बुधपात (१०६२७२) वृहस्पति पात (२५५९६०) शुक्रपात (१९६०२०) तथा शनिपात (३२५६२०) विलिप्ता कलि आरम्भ में थे ।

किंवैवं करणाब्दजाः खनग गो वेदो (४९७०) न कल्यब्दतो
दस्राः स्यु विधु वारतो रवि (१२) मितैः खैर्वातदब्दायुताः
क्ष्मार्थेन्द्रिष्विभ सप्त गुण भै (२,७३,७७,८५,१५१) र्भक्ताः फलं वासरा
मेषार्क क्रमण द्वितीय दिनतस्तत्सं क्रमान्ता गताः । ५५ ।

करणाब्द (ग्रन्थ रचना का समय कलि ४९७० या ई १८६८) आरम्भ से ग्रह आदि लाने के लिए करणाब्द से हो अहर्गण निकालना होगा । कलि गत वर्ष की संख्या से ४९७० घटाने से गत करणाब्द होगा । इसके दाहिने १२ शून्य देकर उसमें, २,७३,७७,८५,१५१ से भाग दें । फल सोमवार (संक्रान्ति काश्य दिन सोमवार था) से आरम्भ गत दिन संख्या होगी । स्फुट मेष संक्रान्ति द्वितीय दिन से अहर्गण होगा ।

संक्रान्तेः सविता तृतीय दिवसे मध्योऽधुनैति क्रियं
प्रायेणैतदहस्ततः कृतिमतं पञ्चांग पञ्जीमुखम् ।
तत् पूर्वाहनि याव वासरगणै रानीय मध्य ग्रहा-
नेक द्व्यादिषु पञ्जिका दिन गणे स्वाढ्या स्वभुक्तोः क्रियात् । ५६ ।

साधारणतः स्पष्ट सूर्य मेष राशि से प्रवेश करने के तृतीय दिन मध्यम सूर्य मेष राशि में आता है । अतः स्फुट मेष संक्रमण का तृतीय दिन १ अहर्गण या पञ्चांग का मुख दिन गिना जाता है । अतः मध्यम सूर्य मेष राशि में आने के पूर्व दिन या स्पष्ट सूर्य के मेष संक्रमण के द्वितीय दिन मध्यम ग्रह का साधन किया जाता है । उसमें प्रति दिन की ग्रह गति जोड़ने से अभीष्ट दिन का मध्य ग्रह मिलता है ।

केचित्प्रस्फुट मेष संक्रम दिनं चैत्रादि मन्येतिथिं
मन्यन्ते ऽब्द मुखञ्च देशवशतो भेदेऽपि वर्षेऽ त्र हि
ग्लौवारे प्रतिपद् प्रगे गति निशा शेषे तु मेषे ऽविशत्
सूक्ष्मोऽर्क स्तदिह ध्रुवो ऽरचि दिने मध्यार्क वर्षान्तजे । ५७ ।

कहीं स्फुट सूर्य मेष में प्रवेश करने के लिए और कहीं ही चैत्रशुल्क प्रतिपदा से वर्ष का आरम्भ गिना जाता है, कई पण्डित (चान्द्र और सौर) वर्षों का भेद भी नहीं मानते हैं । मध्यम मान के सौर वर्ष समाप्त होने पर करणाब्द का आरम्भ माना गया है । उस दिन सोमवार चैत्र शुक्ल प्रतिपदा थी तथा स्पष्ट सूर्य उसकी पूर्व रात्रि के अन्तिम समय में मेष में प्रवेश कर चुका था । उस दिन के लिए ग्रहों की मध्य ध्रुवा, उच्च और पात सूक्ष्म रूप से दिया हुआ है ।

कथ्यन्ते करणाब्द पूर्व दिवसे वारे विधोः साधिते ।
लंका र्कोदय कालिकां दिविषदां क्षेत्रांशकादि ध्रुवाः
भूयोऽपि प्रतिपत्तये तनुधियां प्रत्यब्द शुद्धिस्तथः ।
सूर्यारादिक मन्द तुंग निचयस्यारादि पातावलेः । ५८ ।

अब ग्रह, मन्दोच्च, शीघ्रोच्च और पात आदि का मध्य ध्रुव करणाब्द के पूर्व दिन सोमवार लंका के सूर्योदय के समय दिया जाता है । अल्प बुद्धि लोगों के लिए इन की वर्ष शुद्धि भी कही गयी है । जिसके व्यवहार से स्पष्ट ग्रह का साधन हो सकता है ।

रवेः शिवा (११) दन्तिभुजाः (२८) शरेन्दवो (१५)
नभो भुजा (२०) स्तर्क समुद्र सम्मिताः (४६) ।
विधो रनन्तं (०) ज्वलना, (३) ख बाहवो (२०)
नवाक्षि संख्या (२९) ऋतभुक् शरा (५३) मताः । ५९ ।

सूर्य का कारणाब्द ध्रुव रा ११।२८।१५।२०।४६
चन्द्र ,, ,, रा. ०।३।२०।२९।५३

कुजस्य बाणा (५) विधु । (१) रब्धि बाहवो (२४) गिरीन्दवः
(१७) सायक लोचनानि (२५) च ।
ज्ञ शीघ्रं तुंगस्य दिशो (१०) गजेन्दवः । (१८)
कृतेन्दवो (१४) नन्द भुवः (१९) कु बाहवः (२१) । ६० ।

मंगल का करणाब्द ध्रुव रा. ५।१।२६।१७।२५
बुध शीघ्रोच्च का ,, रा. १०।१८।१४।१९।२१

वृहस्पते र्विष्णुपद (०) ञ्च वह्न्यः (३) शराब्धयः (४५) शीतकरः
(१) कुबाहवः (२१) सितांशु तुंगस्य भव (११) गुणेन्दवः.
(१३) कुसागरा (४१) बाहुकृता (४१) भुजेन्दवः (१२) । ६१ ।

वृहस्पति का करणाब्द ध्रुव रा. ०।३।४५।१।२१। शुक्र शीघ्र का करणाब्द ध्रुव रा. ११।१३।४१।४१।१२।

शनेस्तुरंगा (७) धृतयः (१८) प्रभाकरा (१२) ।
नगेन्दवो (१७) वेद विलो चनानि (२४) च
गृहे गृहादे र्विकलान्त मागते
परादिभेदोऽपि बुधै र्न गण्यते । ६२ ।

शनि का करणाब्द ध्रुव रा. ७।१८।१२।१७।२४

ग्रहों का स्थान विकला तक ही निकाला गया है, परा आदि विभागों की विद्वान् लोग आवश्यकता नहीं समझते ।

खेमृदूच्चस्य भुजौ (२) गजेन्दवो (१८)
नगाब्धयो (४७) वेदशरा (५४) नभो (०) ध्रुवः
सितांशु मन्दस्य दिशो (१०) द्वि बाहवः (२२)
कृताग्नयो (३४) नन्दशराः (५९) पयोधयः (४) । ६३ ।

सूर्य के मन्दोच्च का कारणाब्द ध्रुव रा. २।१८।४७।५४।०

चन्द्र ,, ,, ,,रा. १०।२२।३४।५९।४

महीज मन्दस्य कृता (४) हया (७) विधू (१)
भुजाब्धयः (४२) पावक शीतभानवः (१३)
मृदोर्विदः स्यु गिरयो (७) ऽङ्क भूमयः (१६)
पयोधय (४) पूर्णविधू (१०) रसेन्दवः (१६) । ६४ ।

मंगल मन्दोच्च का करणाब्द ध्रव रा. ४।७।१।४२।१३
बुध मन्दोच्च ,, ,, रा. ७।१६।४।१०।१६

सुरेज्य मन्दस्य शरा (५) नगेन्दवो (१७) नगेन्दवो
(१७) विष्णुपदं (०) शरेन्दवः (१५) भृगोमृदूच्चस्य भुजो
(२) शिवोमुखा (५) नवाग्नयः (३९) सर्पगुणाश्च (३८)
गोभुजाः (२) । ६५ ।

गुरु मन्दोच्च का करणाब्द ध्रुव रा ५।१७।१७।०।१५
शुक्र ,, ,, रा. २.५।३९।३८।२९

शनेर्मृदूच्चस्य मता मतंगजा (८)
नवां (९) ङ्क चन्द्रा (१९) श्चतुरब्धयो (४४) दिशः (१०) ।
सुधाकरादेरथ पातज ध्रुवा
भचक्रशुद्धाः करणाब्द वक्त्रजाः । ६६ ।

शनि मन्दोच्च का कारणाब्द ध्रुव रा. ८।९।१९।४४।१०

चन्द्रमा आदि के पात का ध्रुव चक्र शुद्ध कर के करणाब्द के समय दिये हुए हैं। (विलोम गति के कारण १२ राशि से घटाया हुआ है)

हिमांशु पातस्य गुणा (३) महीभुजा (२१)
नगेन्दवो (१९) नाग भुवो (१८) ऽष्ट बाहवः (२८)
कुजन्म पातस्य ख (०) मष्टबाहवः (२८)
सितांशु बाणा (५१) स्त्रिभुजाः (२३) कु सिन्धवः (४१) । ६७ ।

चन्द्र पात का करणाब्द ध्रुव रा. ३।२१।१९।१८।२८
मंगल ,, ,, रा. ०.२८।५१।२३।४१

बुधस्य पातस्य ख (०) मंक बाहवो (२९)
नगेन्दवो (१७) नागभुजा (२८) गजेषवः (५८)
वृहस्पते स्तद् ध्रुव ईक्षणे (२) शिवा (११)
गुणाः (३) पृषक्तेन्दुमिता (१५) नवेषवः (५९) । ६८ ।

बुधपात का करणाब्द ध्रुव रा. ०।२९।१७।२८।५८
गुरुपात ,, ,, रा. २।११।३।१५।५९

सितस्य पातस्य धरा (१) ब्धि बाहवो (२४)
गुणा (३) निशानाथ गुणाश्च (३१) पुष्करम् (०)
शनेर्गुणाः (३) ख (०) त्रिभुवो (१३) ऽद्रिबाहवः
(२७) कृतेक्षणानि (२४) ध्रुव एव पातजः । ६९ ।

शुक्र पात का करणाब्द ध्रुव रा. १।२४।२।३१।०।
शनि ,, ,, रा. ३।०.१३।२७।२४

इतीरिताः खेट तदुच्च पातजध्रुवा कृतैतद् भगणानुपातजाः ।
सुधांशुपातः स्फुट राहुरुच्यते तदीय भार्धं किल केतु रादिभिः । ७० ।

भगण के अनुपात से यह ध्रुव निकाले गये हैं । चन्द्रपात को राहु (उत्तर पात) तथा उससे १८०° पर केतु पात विद्वान् लोग मानते हैं ।

मन्दोच्च पातानयनं दिनेभ्यं पुरोदितं तद् वदिदं समाभ्यः ।
अब्दास्तु तत्तद् भगणै र्विनिघ्ना लक्ष द्वयाप्ता फल मत्र लिप्ताः । ७१ ।

मन्दोच्च और पात अतीत दिवस में लाने की विधि कही जा चुकी है । वर्ष सम्बन्धीय मन्दोच्च और पात निकालने के लिये वर्षा संख्या को कल्पभगण से गुणा कर २,००,००० से भाग दें, लिप्ता आदि में वह गति का मान होगा ।

ध्रुवेषु युक्ता वियुताः क्रमेण स्फुटा ग्रहाणादय एव ते स्युः
किं वा सुखार्थं हरणैः स्वकीयै रानेतु मर्हामृदुतुंग पाताः । ७२ ।

इस फल को करणाब्द ध्रुव में जोड़ने (पात में घटायें) अभीष्ट पात और उच्च आयेगा । इसके बदले अपने अपने अनुपात से भी गति का मान निकाला जा सकता है ।

मृदूच्च पातपर्ययैः ख खाभ्र खाभ्र पक्षका (२,००,०००)
हृताः फलानि हारकाः स्वकाः स्वकाः समात्मकाः । ७३ ।

कल्प भगण संख्या में २,००,००० से भाग देने पर हार आता है, गत वर्ष संख्या से इसे गुणा करने पर कला आदि में इतने वर्ष की गति आती है ।

तदुद्धृताब्द वृन्दत कलादिभिः फलैर्ध्रुवाः
युतो निताः स्फुटाः क्रमान् मृदूच्चपातभादयः । ७४ ।

इस फल को पहले की तरह ध्रुव में जोड़ने (या पात में घटाने से) उच्च ग्रह और पात आयेगा ।

सुराराद्युच्चहारा नवनवकशरा (५९९) बाणवेदर्त्त वो (६४५) ऽष्टा
ष्टाम्नाया (४८८) नागसिद्धा (२४८) नवशरशिखिनः (३५९)
सप्तपञ्चाष्ट पक्षाः (२८५७)
आरादेः पातहाराः क्षितिनगऋतवः (६७१) पक्षषड् वीतिहोत्रा (३६२)

धृत्याष्टक्ष्माश्च (१८१८) पक्ष क्षिति नयन मिताः (२९२)
सप्तषड् वह्न्यः (३६७) स्युः । ७५ ।

इस प्रकार निकाले गये पात हार निम्न लिखित हैं–
रविमन्दोच्चहार ५९९
मंगल ,, ६४५ मंगल पात हार ६७१
बुध ,, ४८८ बुध ,, ३६२
बृहस्पति ,, २४८ वृहस्पति ,, १८१८
शुक्र ,, ३५९ शुक्र ,, २९२
शनि ,, २८५७ शनि ,, ३६७

प्राची प्रतीच्येः कुज सौम्य मन्द मन्दोच्च सञ्चार इहेष्यते यत् ।
तथाज्ञशीघ्रोच्च गतिश्च कार्या तत्संस्कृतः स्पष्ट खगाधिकारे । ७६ ।

मन्दोच्च और शीघ्रोच्च गति प्रायः पश्चिम से पूर्व की तरफ मानी जाती है । लेकिन ग्रन्थ कार के मत से मंगल, बुध और शनि के मन्दोच्च तथा बुध शीघ्रोच्च की गति दोनों दिशाओं में होती है । इसकी चर्चा ग्रह स्फुट करने के योग्य समय की जायेगी ।

प्राच्यं काञ्चन भूधरा सुरपुरी सम्पृक्त सूत्रायितु-
र्दन्तिक्ष्मा (१८४) मित योजनान्त मिलिते व्यक्षोत्तरस्यामपि ।
अब्धेरोधसि सिन्धु सिन्धुर भुजें (२८४) यो योजनै राजते
नित्यं शित्यवनी धरेन्द्र शिखरे तस्मै परस्मै नमः । ७७ ।

पाठान्तर (प्राच्यां काञ्चन भूधरा सुरपुरी सम्पृक्त सूत्रायितु
दन्तिक्ष्मा (१८४) मितयोजनान्त वसते र्व्यक्षोत्तरस्याम् द्यतात्
वेदाहीक्षण (२८४) योजनान्त जयतो देशस्य जिष्णोर्दिशि
भ्राजिष्णुर्विभुरुष्ण धृष्णि जनुषो भीष्मत्व मस्मद् गतिम्)

जो परमात्मा (जगन्नाथ) नीलाचल शिखर पर नित्य विराजमान हैं उनको मेरा प्रणाम । नीलाचल (पुरी) भारतीय माध्यन्दिन रेखा से १८४ योजन पूर्व और विषुव रेखा से २८४ योजन उत्तर समुद्र कूल में है ।

इत्युत्कलोज्वल नृपाल कुल प्रसूत श्री चन्द्रशेखरकृतौ गणितेऽक्षिसिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे यात स्तृतीय मध्य खगः प्रकाशः ।७८।

इस प्रकार उड़ीसा के उत्तम राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्रशेखर द्वारा दृग्गणितैक्य और बालबोध के लिए रचित सिद्धान्त दर्पण में मध्यम ग्रह सम्बन्धी तृतीय अध्याय समाप्त हुआ ।

चतुर्थः प्रकाशः

नानाविध संस्कार वर्णन

अथोच्यते स्वदेशादि संस्कारार्थ समासतः
भूमान मुत्तरे भागे विस्तराद् वक्ष्यते पुनः । १ ।

अब अपने स्थान में मध्य ग्रह संस्कार करने की विधि दी जाती है । (तृतीय अध्याय में लंका के मध्यम ग्रह का साधन था । इस संस्कार के लिए पृथ्वी का परिमाण संक्षेप में कहा जाता है, उत्तरार्द्ध में विस्तार से कहा गया है ।

मध्यव्यासो भुवः खाभ्रभूप (१६००) योजनसम्मितः
भचक्रे कलिकार्द्ध (१०,८००) घ्न स्त्रिज्या (३४३८) ह्रः परिधिर्भवेत् । २ ।

पृथ्वी का मध्यम व्यास (विषुव रेखा पर) १६०० योजन है । इस संख्या को १०८०० (वृत्त ३६०° की कलाओं ३६० x ६० का आधा) से गुणा कर त्रिज्या ३४३८ (१०८०० लम्बी अर्द्ध परिधि की त्रिज्या) से भाग देने पर पृथ्वी की परिधि (५०२६।१० योजन) आती है ।

षष्ठांशाभ्यधि कां गाक्षि गग नाशुग (५०२६।१०) योजनम्
भूमध्य वेष्टनं स्वीयं लम्बज्याघ्नं त्रिजीवया (३४३८) । ३ ।

(पृथ्वी की परिधि) ५०२६। १० योजन हैं । मध्यम भूपरिधि को लम्बज्या (केन्द्र से ज्यार्द्ध की दूरी) से गुणा कर त्रिज्या (३४३८–२१६०० कला वाले वृत्त की त्रिज्या) से भाग देने पर स्पष्ट भूपरिधि मिलती है ।

हृतं स्वदेशवसुधा परिधिः स्फुट मुच्यते ।
किंवार्क (१२) घ्नः सपरिधि र्विषुवत्कर्ण भाजितः । ४ ।

अथवा मध्यम भूपरिधि को १२ से गुणा कर विषुव कर्ण से भाग देने पर भी स्पष्ट भूपरिधि आती है । विषुव दिन मध्याह्न में १२ अंगुल के शंकु की छाया पलभा, शंकु उच्चबिन्दु से उसकी छाया की दूरी विषुव कर्ण या पल कर्ण है ।

लंका रोहित का वन्ती कुरुक्षेत्रादिनीवृतः ।
स्पृष्ट्वा मेरुगतं सूत्रं मध्यरेखोच्यते भुवः । ५ ।

लंका, रोहितक, अवन्ती, कुरुक्षेत्र स्थान आदि होकर जाती हुई दोनों ध्रुवों (मेरु) के बीच का वृत्त (देशान्तर) ही प्रधान माध्यन्दिन रेखा है । (अभी जिस प्रकार ग्रीन विच की माध्यन्दिन रेखा को ०° (प्रधान) माना जाता है, भारत में उज्जैन की रेखा को प्रधान मानते थे । उस रेखा पर विषुव रेखा पर का स्थान लंका कहलाता है ।)

स्वीय देश समानोऽक्षो रेखायां विषयोऽस्तियः ।
तन्निजस्थानयो र्मध्य मानं देशान्तरं मतम् । ६ ।

(स्फुट परिधि पर) समान अक्षांश वाले दो स्थानों के बीच की दूरी (पूर्व से पश्चिम) को देशान्तर कहते हैं ।

तद्योजनैः षष्ठि (६०) हतैः स्फुट भू वेष्टनोद्धृतैः
अथवा विषुवत्कर्ण लिप्तिका भिश्च ताड़ितै । ७ ।

इस देशान्तर योजन को ६० से गुणा कर स्पष्ट भूपरिधि योजन से भाग देने पर, अथवा देशान्तर योजन को पल कर्ण से गुणा कर ....

मनु रामाभ्रषड् (६०३१४) भक्तैः स्युदेशान्तर नाड़िकाः ।
रेखायाः पूर्व देशेषु निशार्द्धो परि योजिताः । ८ ।

...(६०३१४) से भाग देने पर दण्ड आदि देशान्तर समय आता है । रेखा के पूर्व देशों में अपने देश की अर्द्धरात्रि में जोड़ने से....

पश्चिमेषूनिता वारा मासाब्देश प्रवृत्तयः ।
लंकार्ध रात्रतां यत्तत् प्रवृत्तिं सर्वदेशके । ९ ।

या पश्चिम के स्थानों में घटाने से लंका की अर्ध रात्रि का समय आता है क्योंकि दिन, मास और वर्ष आदि का प्रारम्भ लंका की अर्धरात्रि से ही सभी देशों में होता है ।

वदन्ति केचिदा चार्या लंकार्कोदय कालतः
वार प्रवृत्ति मत्रेयं व्यवस्था क्रियते मया । १० ।

कुछ आचार्य लंका के सूर्योदय काल से बार आदि का आरम्भ मानते हैं । सन्देह दूर करने के लिए इस सम्बन्ध में मेरा निर्णय है-

वारे यस्मिन्नुदेत्यर्के स्वदेशे समयात्ततः ।
तदीशितुरहोरात्रे बलाधिकं प्रवर्तते । ११ ।

जहां पर जिस समय सूर्योदय हो वहाँ सूर्योदय से ६० दण्ड तक उसी वाराधिपति का अधिक बल होता है ।

दिवा रात्रौ यथा भागं याम यामार्धजं बलम्
गृह्यते क्वापि देशेषु न तत्सि द्धान्त सम्मतम् । १२ ।

कई देशों में याम और या मार्द्ध का भी बल कहा जाता है । (पर यह फलित का विचार है) । इससे सिद्धान्त का कोई सम्पर्क नहीं है ।

यदाह भास्करः सर्वारम्भो लंकोदयादिति ।
तदुक्ता हर्गणानां हि संख्या सिद्धान्ततः पृथक् । १३ ।

भास्कराचार्य ग्रहगति आदि का आरम्भ लंका के सूर्योदय से मानते हैं अतः उनका अहर्गण अन्य सिद्धान्तों से अलग है ।

भिन्नत्वेऽपि यदीदानीं तदानीता र्यमादय
दृक् सम अभिविष्यं यस्तद्‌ग्रहीष्यत तन्मतम् । १४ ।

इस भिन्न अहर्गण को भी स्वीकार किया जा सकता है । यदि उसके द्वारा साधित ग्रह प्रत्यक्ष वहीं पर दिखाई दे ।

ग्रहाणां स्वस्व गतयो देशान्तर घटी हताः
षष्ट् याप्ता स्तत् फलं प्राच्या मृणं पश्चाद् घनं ग्रहे । १५ ।

लंका अर्ध रात्रि के ग्रह को अपने देश की अर्ध रात्रि का ग्रह बनाने के लिये ग्रह की दैनिक गति को देशान्तर घटी से गुणा कर ६० से भाग देते हैं । तथा लब्धि को जोड़ते (लंका से पश्चिम स्थानों के लिए) या घटाते (पूर्व के स्थानों के लिए) है ।

किं वा तद्गतयः क्षुण्णाः स्वदेशान्तर योजनैः
स्फुट भूमिं परिध्याप्ताः संस्कारा मध्यमेषुताः । १६ ।

अथवा, दैनिक गति को देशान्तर योजन गुणा कर स्फुट भूपरिधि से भाग देने से भी देशान्तर गति आती है । इसी भी पहले के समान जोड़ते या घटाते हैं ।

समये सम्भवेद् यत्र सर्व ग्रस्त विधुग्रहः
तदा संसाधिते तस्मिन् मध्यरेखामधिष्ठिते । १७ ।

(देशान्तर निकालने की विधि)- गणना द्वारा मध्य रेखा के स्थान पर होने वाले किसी पूर्ण ग्रास चन्द्र ग्रहण का साधन करें ।

स्वसमानाक्षके देशे तदुन्मीलन कालतः
एष्यद् गत समालोक्य स्वदेशो न्मीलनं क्रमात् । १८ ।

अपने स्थान में उसी पूर्ण ग्रह का समय देखें । ग्रहण के स्पर्श, पूर्ण ग्रास या उन्मीलन से भी यह विचार हो सकता है ।

प्राक् पश्चिम गतं बुद्ध्वा स्वस्थान मध्य सूत्रतः ।
तयोरन्तर नाड़ीभिर्हन्या भूपरिधिं स्फुटम् । १९।

यदि गणना काल से पहले ग्रहण होता है तो अपना स्थान मध्य रेखा (सूत्र) से पश्चिम है (पीछे होने पर पूर्व) । इन दोनों का अन्तर देशान्तर काल हुआ । इसके दण्ड आदि को स्पष्ट भूपरिधि से गुणाकर-

षष्ठ्या विभज्य लब्धानि योजनान्यव गच्छतु ।
किं वा निमीलनात् साध्यं मानं देशान्तरस्य च । २० ।

(६०) से भाग दे, देशान्तर का योजन आदि आता है । निमीलन काल से भी इसी प्रकार होता है ।

सूर्य सिद्धान्ते-इष्ट नाड़ि हता भुक्तिः षष्ट्या भक्ता कलादिकम् ।
गते शोध्यं युतं गम्ये कृत्वा तात्कलिको भवेत् । इति । २१ ।

(सूर्य सिद्धान्त से उद्धृत) किसी समय का (तात्कालिक) ग्रह लाने के लिए दैनिक ग्रह गति (कालादि) में इष्ट समय (अर्ध रात्रि के बाद उस समय का दण्ड आदि) से गुणा करते हैं । तथा ६० (६० दण्ड का दिन) से भाग देते हैं । लब्ध कला आदि को मध्य रात्रि ग्रह में जोड़ने से इष्ट काल का ग्रह आता है ।

दिनानां गणना यस्मात् सूर्योदय इष्यते
ततस्तात्कालि के ष्वेषु विधेय चर संस्कृति । २२ ।

चर संस्कार -इस प्रकार देशान्तर स्कार करने से लंका का सूर्योदय कालिक ग्रह अपने स्थान के निरक्षोदय (अपनी माध्यन्दिन या देशान्तर रेखा का विषुव वृत्त पर सूर्योदय) काल का ग्रह होगा ।लंका और अपने स्थान के बीच अक्षांश दूरी (उत्तरं दिक्षण दिशा में दूरी) के कारण चर संस्कार की आवश्यकता है (क्योंकि सूर्योदय का समय दूसरा होगा ।

स्फुटार्कापक्रमानिता देश कालोत्थिता स्वकाः ।
चरनाड्यः स्वभुक्तिघ्न्यः षष्ठि भक्ताः फलं ग्रहे । २३ ।

उदय कालिक स्फुट सूर्य की क्रान्ति से चर दण्ड निकाल कर उसे ग्रह की दैनिक गति से गुणा कर ६० से भाग देते हैं ।

धनर्णं क्रमशो भानौ दक्षिणोत्तर गोलगे ।
अस्त कालिंक खेटेषु वैपरीत्येन संस्कृतः । २४ ।

सूर्य दक्षिण-अयन(सायन तुला से मीन) में रहने पर फल (चर संस्कार को जोड़ते हैं, उत्तरायण (मेष से कन्या) में रहने पर उदयकालिक ग्रह से इसे घटाते हैं । अस्तकालिक ग्रह के लिए उल्टा करते हैं (उत्तरायण सूर्य के लिए चर संस्कार जोड़ते हैं । अन्यथा घटाते हैं ।

गताब्दे स्फुट सूर्यस्य यत्रांशे यदभूच्चरम् ।
तत्तत्र वर्तमानाब्दे ग्राह्यां मध्यार्यमादिषु । २५ ।

स्फुट सूर्य पिछले वर्ष अंश में रहने पर जितना चर दण्ड था इस वर्ष मध्यम रवि का उतने ही अंश पर उसी के बराबर चरदण्ड होगा (बहुत कम अन्तर होगा) ।

रविमान्द्यफलव्यक्ष लग्न माना यनांशकैः
वक्षमाणैः क्रिया मन्यां वच्मि मध्य ग्रहोचिताम् । २६ ।

रवि के मन्दफल, निरक्ष लग्नमान और अयनांश आदि द्वारा और एक मध्य ग्रह संस्कार की क्रिया कहता हूँ ।

अर्द्धरात्रान्मध्यभानोः स्फुटार्कस्य निशादलम् ।
भिन्नं यद्युज्यते तस्मात् तद् भुजान्तर संस्कृति । २७ ।

मध्य रवि के अनुसार जब अर्द्ध रात्रि होनी चाहिये, स्फुट (वास्तविक) रवि के अनुसार उससे भिन्न समय में अर्द्ध रात्रि होती है । अतः स्फुट अर्धरात्रि का ग्रह लाने के लिए मध्य और स्फुट रवि के बीच भुजफल संस्कार किया जाता है ।

चलांश संस्कृतादित क्रान्त्यराश्युदयासुभिः
निरक्ष देशजै र्निघ्ना रवि दोः फल लिप्ति काः । २८ ।

अयन संस्कृत (अयनांश जोड़कर) रविं के मन्द भुजफल को रवि की राशि के उदय असु (उस राशि के विषुव रेखा के उदय काल प्राण) से गुणा करें

अष्टादश शतै (१८००) राप्ताः स्व स्व भुक्ति भिराहताः
मध्यार्क सावन दिन प्राणै राप्ता कलादयः । २९ ।

फल लिप्ता को (१८००) से भाग दें । फल को ग्रह की दैनिक गति से गुणा कर मध्यम रवि सावन दिन के असु ((२१,६५९) से भाग दें तो कलादि भुजान्तर संस्कार होगा ।

स्वमृणं सूर्य फलवत् कार्याः सूर्यादि खेचरे ।
शीघ्रेन्दुच्चेषुराहौतु व्यस्ताः संस्कृतयोऽखिलाः । ३० ।

इस भुजान्तर को ग्रह में रवि के मन्दफल की तरह जोड़ते हैं या घटाते हैं । लेकिन शीघ्र फल से भुजान्तर संस्कार करने पर या चन्द्र के मन्दोच्च या राहु के भुजान्तर में उल्टा होगा ।

अल्पान्तरत्वादथवा रवि बाहु फलाहता
भुक्तिर्भचक्र कलिका (२१६००) भक्ता लिप्तादि तत्फलम् । ३१ ।

अथवा, (भुजान्तर करने के लिए) रवि के मन्दभुजफल को ग्रह की दैनिक गति से गुणा कर (२१,६००) से भाग देने से लिप्ता आदि में फल होगा ।

किं वा भक्ताश्चक्रलिप्ता, (२१,६००) गत्याच्छेदस्तु तत्फलम् ।
तेनार्क दोः फलं भक्तं प्राग्व ल्लिप्तादि संस्कृतः । ३२ ।

अथवा (२१,६००) को ग्रह की दैनिक गति से भाग दें, लब्धि से रवि के मन्दभुज फल में भाग दें ।

भुजान्तराक्ष कर्मोक्त मुदयान्तर मुच्यते
क्रान्तिज्यार्क क्वहाल्पत्व भूमौत्थ फल कारणम् । ३३ ।

भुजान्तर संस्कार करने के बाद उदयान्तर की विधि कही जाती है । क्रान्ति वृत्तीय रवि और नाड़ी वृत्तीय (विषुव रेखा) रवि (उभय मध्यम) के बीच अन्तर

के कारण यह संस्कार होता है ।

संस्कृत स्यायनांशाद्यै र्मध्यमस्य विवस्वतः
लग्न भुक्तासवोऽतीत मेषादि प्राण संयुताः । ३४ ।

मध्यम रवि को सायन कर (अयनांश जोड़कर), उसकी राशि के बीते हुए अंशों के निरक्ष देशीय भुक्त असु में मेष से आरम्भ कर पिछली राशियों के असु (प्रत्येक राशि के १८०० असु) मिलायें ।

निरक्ष देशजायेस्तु र्यश्च मध्यम भास्वतः
चलांश संस्कृत स्यैव लिप्तास्तद् विवराहताः । ३५ ।

तब सायन रवि की मेषादि भोग्य निकालेंगे और दोनों फलों का अन्तर करें ।

सूर्यादि मध्य चन्द्रोच्च पात शुक्रज्ञ शीघ्र जा ।
गति लिप्ता हता गोऽर्थे भूप दृग् भिः (२१६५९) कलात्मकम् । ३६ ।

अन्तर को ग्रह की गति लिप्ता से गुणा कर (२१,६५९) से भाग दें- लब्धि उदयान्तर फल होगा ।

फलं तत्सूर्य युग्मैज पदयोः सुमृणं क्रमात्
(पाठान्तर-अत्रतत्सूर्य पदेनायनांश सूर्योव्यज्यतैः)
कार्यं मध्य ग्रहाद्येषु किं वा प्रोक्तं चरादिकम् । ३७ ।

सायन मध्यम रवि सम पद में रहने से उदयान्तर फल ग्रह में जोड़ा जायगा, विषमपाद में रहने पर घटायेंगे । उच्च और पात में इसके विपरीत होगा ।

संस्कार त्रितयंस्पष्ट क्रियानिष्यत्यनन्तरम् ।
कर्तव्यं कृतिभिः स्व स्व स्फुट भुक्ति भिरेवतत् । ३८ ।

(चर, भुजान्तर और उदयान्तर) तीन संस्कार मध्य ग्रह में न कर स्पष्ट ग्रह में भी किये जा सकते हैं ।

तदामध्येषु शीघ्रेषु मन्दोच्चे ऽपि न तत्क्रिया ।
कार्यास्फुट ग्रहेष्वे वयत्तेतैः प्राक् परिष्कृताः । ३९ ।

स्फुट ग्रह में यह संस्कार करने के समय मन्दोच्च चन्द्रोच्च और शीघ्रोच्च में यह संस्कार पुनः नहीं किये जाते क्योंकि स्पष्ट ग्रह करते समय ये संस्कार हो जाते है ।

यद्यर्क दोः फलं लग्न संस्कृतं तर्ह मध्यमात्
चलांश संस्कृतात् सूर्यात् साध्यं तदुदयान्तरम् । ४० ।

भुजान्तर करते समय यदि रवि के मन्दफल का असु लिया जाता है । तो सायन मध्यम रवि से उदयान्तर संस्कार किया जाता है ।

अन्यथा स्फुट मार्तण्डा दयनांश परिष्कृतात्
अभुजान्तर संस्काराद् यत्तत् फल युगं पृथक् । ४१ ।

यदि रवि मन्दफल की कला के बराबर लिया जाय तो भुजान्तर संस्कार रहित रवि (मन्दस्फुट) से उदयान्तर संस्कार तथा भुजान्तर दोनों अलग अलग होंगे ।

भूगोल मध्य परिधिः स्वदे शाक्षकला हतः
भचक्रलिप्ति काप्तः स्याद् व्यक्षात् याम्योत्तरान्तरम् । ४२ ।

मध्य भूपरिधि को अपने स्थान के अक्षांश कला से गुणन कर २१, ६०० कला (वृत्त ३६० की कला) से भाग देने से निरक्ष (विषुव) से उत्तर या दक्षिण अपने स्थान की दूरी आती है । यह दूरी अपने स्थान के याम्योत्तर वृत्त पर होगी ।

प्राज्य श्रमेण यत्कार्या पर्यय ज्यादि मार्जना
कूचना चार्य वत्कुर्यां सूर्याद्य पदका द्यतः । ४३ ।

ग्रह निकालने में बहुत परिश्रम आवश्यक होने के कारण मैं कूचनाचार्य की तरह यहाँ पदक तालिका दे रहा हूँ ।

तत्रादौ मध्यमार्कस्य मेषसंक्रमणादनू ।
एकादि वर्ष संख्योत्थ सावनाहर्गण क्रमात् । ४४ ।

मध्यमसूर्य के मेष संक्रमण से आरम्भ कर एक, दो.... आदि वर्ष पूरे होने तक अहर्गण दिये गये हैं ।

पंक्तिभिः लेखनीयोऽस्य सञ्चयो वारशोधनात्
विषमश्चेन्निरे को वा सै को वा क्रियतामसौ । ४५ ।

जितने वर्षों में अहर्गण की आवश्यक है उतने आवश्यक स्थानों की संख्यायें जोड़कर ७ से भाग दें । शेष द्वारा निर्धारित वार नहीं मिलने पर उसमें एक जोड़ने या घटाने से वार शुद्धि होगी ।

एवमानीय दिवसं पञ्जिका मुख सम्मतम् ।
तत्प्राग् दिने स्वपदकैः कार्या राश्यादि सञ्चयः । ४६ ।

पञ्जिका प्रारम्भ दिवस का अहर्गण लाकर उसके पूर्व दिवस का ग्रह अपनी अपनी सारणी के आवश्यक दिनों के संख्याओं को जोड़कर निकाला जायेगा ।

अत्राधोऽधेः स्थराश्यादि पञ्चकाढ्याः कुवासराः
एकाद्यर्बुद पर्यन्ता, स्थाप्यस्तत् पदकान्ततः । ४७ ।

गतियों का योग राशि से आरम्भ ५ विभागों (परा) तक किया जाता है इस प्रकार १ से १० करोड़ (अर्बुद) अहर्गण तक की गति निकलेगी)

कल्यादि करणाब्दादि ध्रुवाः खेटोच्च पालकाः ।
द्वेधा लेखा गतिच्छेद हार देशक लिप्तिकाः । ४८ ।

(ग्रह, उच्च, पात आदि के पदक लिखने के बाद) ग्रह, उच्च और पात के कलि युगादि या करणाब्द आरम्भ के ध्रुव लिखे जायेंगे। (ग्रह, उच्च और पात की) दैनिक गति भी लिखी जायेगी। भुंजान्तर छेद, मन्दोच्च हार, पातहार और देशान्तर काल लिखी जायेगी।

पदकेषु त्रिसप्तत्या (७३) मूर्ध्वस्तैकादि संख्यया
दिनानां स्व स्व राश्याद्या मिश्रितश्चक्र शेषिताः। ४९।

७३ पदकों में ग्रहों से १,२ आदि क्रम से लिखे गये राशि अंशादि को जोड़ने से फल यदि १२ राशि से अधिक हो तो उसमें १२ राशि (एक चक्र) घटाते हैं।

स्वध्रुवाढ्य मध्य शिघ्रा श्चन्द्रोच्च सहिता ग्रहाः
लंकार्धरात्रे कल्यादेः करणाब्दा दिनोदये। ५०।

ग्रह राशि में ध्रुवांक मिलाने पर भी योग १२ राशि से अधिक होने पर १२ राशि घटना चाहिये। कलि प्रारम्भ से लंका अर्धरात्रि का एवं करणाब्द आरम्भ से करणाब्द के प्रथम दिन सूर्योदय समय के चन्द्रोच्च, मध्यम शीघ्रोच्च आदि रवि आदि ग्रह होंगे।

भवन्ति चन्द्र पातस्य ध्रुवस्त द्युक्ति वर्जितः
योज्यत् तद् ध्रुवे चक्रमधिके फल संचये। ५१।

चन्द्रपात राहु का मध्यमान निकालने के समय राशि आदि में ध्रुव घटाना पड़ेगा, ध्रुव यदि ज्यादा हो तो १२ राशि जोड़ना होगा तब घटायेंगे।

कुत्रचित्पदके नष्टे सन्दिग्धां के मभः सदाम्।
तत्संख्याहर्गणो भुक्ति गुणितस्तत्पदं भवेत्। ५२।

यदि कहीं का पदक नष्ट होता है, उससे १० गुणी संख्या का पदक देखकर १० से भाग दें। (या १० वीं संख्या के पदक में १० से गुणा करें)

एवमानीय रव्यादी स्ततो देशादि संस्कृतिम्।
कृत्वा खण्डफलैः पश्चात् स्फुटीकरण माचरेत्। ५३।

इस प्रकार रवि आदि ग्रह लाकर देशान्तर आदि संस्कार होगा।
उसके बाद दिये गये खण्डफलों की सहायता से ग्रह स्फुट होगा।

लेख्ये स्व स्व प्रकाशेषु निवेश्यं पदकादिकम्।
(अथ पदकानि परिशिष्टे द्रष्ट व्यानि।)
ग्रन्थ यन्त्रालयोत्थेतु सर्वान्तेऽत्र यथाक्रमम्। ५४।

लिखने के समय अपने अपने विभाग में पदक दिये गये हैं लेकिन प्रेस में मुद्रित ग्रन्थ के अन्त में परिशिष्ट में क्रमानुसार दिया गया है।

सिद्धान्त क्रम संसिद्ध स्फुटीकरण लेखनात् ।
अनन्तरं फला न्येषां लेखिष्यन्ते यथाक्रमम् । ५५ ।

सिद्धान्त ग्रन्थ की परम्परा के अनुसार पहले पदक उसके बाद स्फुट ग्रह के लिए खण्डफल लिखे गये हैं ।

इति खग भगणेभ्यः प्राक् फलैः संवद्दभ्यो
ध्रुवगति पद लेखा लेखि सौख्यार्थमेषा
खचर विषम भावे द्रक्षमाणेतु भुक्ति-
र्ध्रुव पदक कृति स्ताद् वक्ष माणोत्तरार्धे । ५६ ।

आसानी से ग्रह स्फुट करने के लिए फल ध्रुव गति आदि उनकी सारणी सहित, १,२,३...दिन क्रम से लिखे गये हैं । पदकों के द्वारा ग्रह स्फुट करने पर यदि उस स्थान में ग्रह प्रत्यक्ष नहीं हो तो ग्रन्थ के उत्तर भाग में दैनिक गति, ध्रुव पदक कृति आदि देखकर उसे शुद्ध करें ।

यत्रोरान्ति चिरन्तनाः सभकलां वेदांगुला ।४।२७ मक्षभां
प्राग् देशान्तर साधितानि विपला न्यब्धि त्रिवेदद्विपान् (८४३४)
तां तान्यष्ट कलोनितां ।४।१९। फणिगुणक्ष्मांकां (९१३८) न्नवास्तदिग्गरौ
राजन् राजतु राज राज सुहृदा गेयौ गिरीशः समे । ५७ ।

पूर्वाचार्यों के मत से अक्षपलभा ४।२७ और देशान्तर विलिप्ता ८४३४ तथा आधुनिक मत से अक्ष पलभा ४।१९ और देशान्तर विलिप्ता ९१३८ पर स्थित नीलाचल पर कुबेर मित्र शिव द्वारा पूजित श्री जगन्नाथ हमारे हृदय में विराजमान हों ।

इत्युत्कलो ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
श्री चन्द्रशेखर कृतौ गणितेऽक्षिसिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
तुर्योययौ (४) सपद संस्कृतिमान प्रकाशः । ५८ ।

इस प्रकार उड़ीसा के उज्वल राजवंश में उत्पन्न श्री चन्द्रशेखर द्वारा गणित और प्रत्यक्ष में समानता तथा बाल बोध के लिए लिखे सिद्धान्त दर्पण का संस्कार तथा पदक युक्त चतुर्थ प्रकाश समाप्त हुआ ।

अथ स्फुटाधिकारः

पञ्चमः प्रकाशः

ग्रह स्फुटी करणम्

अथोच्यते महीनिष्ठ दृष्टि तुल्या स्फुटी कृतिः ।
ग्रहाणां पल दातृत्वं न घटेत यया विना । १ ।

पृथ्वी के किसी स्थान से जिस राशि आदि में ग्रह दिखाई देते हैं, उसी राशि आदि को गणना द्वारा लाने को ग्रह स्फुट करना कहते हैं । जिस स्थान पर ग्रह दिखते हैं, उसी के अनुसार फल देते हैं . अतः ग्रह स्फुट करने की विधि कही जाती है ।

प्रवहाख्ये मरुद् भूमिं परिक्रामति सर्वदा
पश्चिमाभिमुख स्तेना कृष्टो ज्योतिर्गणोऽन्वहम् । २ ।

पृथ्वी के चारों तरफ प्रवह नामक पवन परिक्रमा कर रहा है । जिससे आकर्षित हो ज्योतिर्मण्डल (ग्रह नक्षत्र आदि) -

याति यत्पश्चिमा माशा मुदिता साह्निकी गतिः .
तां भित्वा यद्ग्रहगणः स्व स्व शक्त्यनुसारतः । ३ ।

पूर्व से पश्चिम की तरफ दिन में एक बार पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं । जिसे दैनिक गति कहा जाता है । नक्षत्रों की तुलना में (उनकी और प्रवह गति की विरुद्ध दिशा में) ग्रह गण अपनी अपनी शक्ति के अनुसार -

स्तोकेन याति पूर्वाशां सोक्ता स्वाभाविकी गतिः
शीघ्रमन्द वशाद् भिन्ना दृश्यन्ते स्फुट खेचराः । ४ ।

बहुत कम गित से पश्चिम से पूर्व की तरफ चलते हैं । जिसे उस ग्रह की स्वाभाविक गति कहते हैं । शीघ्र (उच्च) और मन्द (उच्च) के वश होकर स्फुट ग्रह अलग अलग स्थानों में दिखते हैं ।

सूर्य सिद्धान्ते-अदृश्यरूपाः कालस्य मूर्त्तयो भगणाश्रिताः
शीघ्रोमन्दोच्च पाताख्या ग्रहाणां गतिहेतवः । इति । ५ ।

(सूर्य सिद्धान्त से) भगण में स्थित शीघ्रोच्च, मंदोच्च और पात नामक काल की अदृश्य मूर्तियां गृहों की गति के कारण हैं ।

तत्र मध्यम मार्तण्डः परितो मण्डलं भुवः
भ्रमन् तारा खेचराणां कक्षा मध्यस्थ ऊच्यते । ६ ।

मध्यम रवि भगण में पृथ्वी से चारों तरफ नक्षत्र और ग्रहों की कक्षा के मध्य भाग में परिक्रमा करते हैं ।

तं भ्रमन्तो महीजाद्या स्तत्संगेन भुवंपुनः
परिक्रामन्ति यत्तस्मात् स प्रोक्तः सर्वकर्षकः । ७ ।

उसी मध्यम रवि के साथ रहते हुये (रवि की परिक्रमा कक्षा में रह कर) मंगल आदि गृह पुनः पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं । अतः रवि को सबका आकर्षक कहा गया है ।

तथापि कुज जीवार्कि भुक्ति भ्यो महती यतः
तद् गतिः सततंस्तेषां शीघ्र तुंगो निगद्यते । ८ ।

मंगल, बृहस्पति और शनि को दैनिक गति से रवि की दैनिक गति अधिक होती है और सदा वे रवि के आकर्षक में हैं । अत रवि को इन ग्रहों का शीघ्रोच्च कहा जाता है ।

बुध शुक्र स्वभुक्तिभ्या मल्पत्वाद् भास्वतो गतेः
तयोर्मध्य ग्रहो भानुः स्वयं तौ शीघ्र संज्ञ कौ । ९ ।

बुध, शुक्र से रवि की गति अल्प है तथा उनके बीच सदा रवि रहता है । अतः बुध और शुक्र को ही उन ग्रहों का शीघ्रोच्च कहा जाता है ।

बुधशुक्रावनीपुत्र वृहस्पति शनैश्चरकाः
सूर्यात् क्रमेण दूरस्थाः स्व स्व कक्षासु यान्ति यत् । १० ।

सूर्य से क्रमानुसार दूर की कक्षा में बुध, शुक्र, मंगल, वृहस्पति तथा शनि चलते हैं । अतः

विधिना तत् क्रमेणैव यच्चाल्प गतयः कृताः
सुतरामेव दृश्यन्ते तथा भूगोल वासिभिः । ११ ।

पृथ्वी से उनकी गति उसी क्रम से अधिक धीमी दिखती है । (समान गति होने पर भी दूरी के कारण कम दिखती है) ।

चन्द्रस्यत्वर्क वद् भ्रान्ति र्भूमे र्निकट वर्त्तिनः
योजनात्म गतिर्न्यूना महति लिप्तिकात्मका । १२ ।

रवि की भांति चन्द्र की पृथ्वी की अत्यन्त निकट से परिक्रमा कर रहा है अतः चन्द्रमा की योजनात्मक गति सबसे कम होते हुए भी उसकी कलनात्मक गति अधिक होती है ।

भूगोल पेक्षया भानोज्ञ शुक्रौ निकटौ यतः
तस्माच्चक्रान्तवद् दृश्यौ चक्रार्धेऽपि सहामुना । १३ ।

बुध और शुक्र पृथ्वी अपेक्षा रवि के निकटवर्ती हैं । अतः बारह राशि के बाद जिसप्रकार रवि के साथ होते हैं, उसी प्रकार से ६ राशि दूर होने पर भी साथ दिखते हैं ।

कुजेज्य शनयो यस्माद् दूरगा स्तद पेक्षयां
चक्रे स सूर्या दृश्यन्ते चक्रार्धे भिन्न दिश्यतः । १४ ।

रवि से पृथ्वी की तुलना में मंगल, वृहस्पति और शनि अधिक दूर होने के कारण रवि से १२ राशि अन्तर पर रवि से मिले हुए दिखते हैं । तथा ६ राशि अन्तर पर उल्टी दिशा में दिखते हैं ।

सूर्याद् भिन्न दिशोः स्थानं भूतारा ग्रहयोर्यदा
ऋज्वी गतिस्तदा तारा ग्रहस्य प्रेक्षते भुवि । १५ ।

रवि से एक दिशा में पृथ्वी और उसकी विपरीत दिशा में ताराग्रह (मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि) कोई- हो तो उस ग्रह की सरल (मार्गी) गति दिखती है ।

यदै का दिगवस्थानं तयोर्भवति सूर्यतः ।
वक्रा गतिस्तदा तस्य मध्याशु गति भेदजा । १६ ।

यदि रवि से पृथ्वी और कोई तारा ग्रह एक ही दिशा में हो तो शीघ्र और मध्यम गति के अन्तर के कारण उस ग्रह की उल्टी दिशआ में गति (वक्रीगति) दिखती है ।

मन्दापकर्षं हित्वा सदार्कात् समदूरगाः
यान्ति तारा ग्रहाः प्राचीं भचक्र मनुलक्षते । १७ ।

पांच तारा ग्रह हमेशा सूर्य से बराबर दूरी पर रह कर अपने मन्दोच्च और शीघ्रोच्च रवि द्वारा आकर्षित हो उसकी पूर्व दिशा में परिक्रमा करते हैं । लेकिन वे भचक्र में ही घूमते हुए देखे जाते हैं ।

भ चक्र मध्यगा भूमि भौमादिर्मध्यगा रविः ।
भार्क संगत सूत्रं तत् समंचक्रार्धचक्रयोः । १८ ।

पृथ्वी भचक्र (नक्षत्र गोल) के केन्द्र में तथा भौम आदि (पांच तारा ग्रहों) केन्द्र में रवि है, अतः चक्र (१२ राशि) और चक्रार्ध (६ राशि) के बाद रवि और नक्षत्र की गति का सूत्र (पृथ्वी से इनकी दिशा) अभिन्न हो जाती है ।

राशि त्रयान्ते भूसूत्र भार्कगं चक्रितं यतः ।
तभेदः शीघ्रपरिधे रोजयुग्म पदान्तयोः । १९ ।

चक्र और चक्रार्ध से तीन राशि के बाद (ओज अर्थात् विषम पद में) पृथ्वी से नक्षत्र के विषम पदान्त का सूत्र और रवि से उसी पदान्त का सूत्र (रेखा) भिन्न दिशा में होते हैं । अतः युग्म पदान्त और ओज की शीघ्र परिधि अलग होती है ।

क्ष्मार्कान्तर वियन्मानात् ख रसाग्नि (३६०) गुणाधिकः
भाना पन्थाहि दूरस्य स्तस्मिन्नर्क ,पथा हृते । २० ।

पृथ्वी और रवि के अन्तर योजन से पृथ्वी भकक्षा का अन्तर योजन ३६०

गुणा होता है। भकक्षा में रवि कक्षा से भाग देने पर हार (३६०) होगा।

फलं हरण मे तेन भगणांशा (३६०) विभाजिताः।
लब्धोऽशः शीघ्रपरिधे योजयुग्मान्तरं गतः। २१।

इस हार में भगण अंश (३६०) से भाग देने पर जो १ अंश आता है वह विषम (ओज) और युग्म पद का अन्तर है, यही शीघ्र की नीच और उच्च परिधिका अन्तर होगा।

कक्षा कथन कालेऽहं वक्षेपरिधि सम्भवम्।
साक्षादनुभवादत्रा पेक्षा शास्त्रे निवर्तते। २२।

कक्षा के वर्णन में नीच और उच्च परिधि का अन्तर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। अतः इस शास्त्र में अनुमान की आवश्यकता नहीं है।

रव्यादेर्मन्द तुंगादा देवाये सन्ति दूरगाः।
तद् वात रश्मि भिर्नद्धा ग्रहास्तै रपकर्षिताः। २३।

रवि आदि ग्रह मन्दोच्च से दूर हों या निकट, वे अपने मन्दोच्च रूपी देवता (अदृश्य विन्दु) द्वारा पवन रूपक रस्सी (अदृश्य या काल्पनिक दिशा) में आकर्षित होते हैं. अतः (स्पष्ट) ग्रह हमेशा (मध्यम ग्रह से) उच्च की तरफ हटे रहते हैं।

स्वादिङ्मुखं तथा सन्नाः कृष्यन्ते बहुदूरगाः।
स्वल्पत्वान् प्रवहः स्वांशैः पाशरूपैः प्रभञ्जनैः। २४।

अपने अपने उच्चो द्वारा आकर्षित ग्रह भी अपनी अल्प गति के अतिरिक्त प्रवह पवन के पाशरूप आकर्षण में भी घूमते हैं. (पूर्व में पश्चिम की तरफ।)

सूर्य सिद्धान्ते - स्वतुंगाभिमुखानेव प्रेरयत्य निशं दिवि
पूर्वापरापकृष्टास्ते गतिं यान्ति पृथग् विधाम्। २५।

अपने उच्च द्वारा दिन रात आकर्षित हो कभी पूर्व तथा कभी पश्चिम की तरफ हटते हैं।

ग्रहात् प्राग् भगणार्द्धस्थः प्राङ्मुखं कर्षति ग्रहम्
उच्च संज्ञोऽपरार्द्ध स्थ स्तद् वत्पश्चान्मुखं ग्रहम्। २६।

ग्रह से पूर्व वृत्तार्ध में उच्च रहने से उच्च ग्रह को पूर्व की तरफ आकर्षित करता है। पश्चिम वृत्तार्द्ध में उच्च रहने से ग्रह पश्चिम की तरफ आंकर्षित होता है। उच्च वृत्त की परिधि पर होने के कारण वह सभी विन्दुओं से एक ही तरफ है, लेकिन एक वृत्तार्द्ध में वह दिशा पूर्व और दूसरे वृत्तार्ध में पश्चिम कही जाती है।

स्वोच्चा पकृष्टा भगणैः प्राङ् मुखं यान्ति यद् ग्रहाः।
तत्ते सुधन मित्युक्ति मृणं पश्चानु खेषुव। इति। २७।

अपने उच्च से आकृष्ट हो कर जब ग्रह सूर्य दिशा में जाते हैं। वह धन गति

(योग) तथा पश्चिम दिशा की गति ऋणात्मक होती है । (सूर्य सिद्धान्त उद्धरण समाप्त) ।

मन्दस्फुट महान् पाताश्चन्द्रादीन् याम्यसौम्ययोः
विक्षेपन्त्वेषु विक्षेपः स्वक्रान्त्यन्ता कलात्मकः । २८ ।

ग्रह कक्षा क्रान्ति वृत्त से कोण बनाती है, ग्रह बिम्ब से क्रान्ति वृत्त पर लम्ब का मूल ही क्रान्ति पर ग्रह की स्पष्ट स्थिति है । लम्ब की दूरी को शर या विक्षेप कहते हैं । ग्रह कक्षा और क्रान्ति वृत्त जिन दो विन्दुओं पर मिलते हैं । (विक्षेप शून्य होता है) उसे पात कहते हैं । ग्रह कथा का आधा भाग क्रान्तिवृत्त के उत्तर और आधा दक्षिण होता है । अतः पात को उत्तर या दक्षिण विक्षेप का कारण माना जाता है जो मन्दस्फुट ग्रह को उत्तर या दक्षिण की तरफ खींचता है । विक्षेप को कला में नापा जाता है ।

सूर्यसिद्धान्ते-उत्तराभिमुखं पातो विक्षिपत्य परार्द्धगः ।
ग्रहं प्राग् भगणार्धस्थो याम्या यामपकर्षति । इति । २९ ।

ग्रह से पश्चिम (पीछे) १८० (अर्द्धवृत्त) में पात उत्तर की तरफ ग्रह को खींचता है । तथा ग्रह के पूर्व (पहले) १८० कक्षा में पात दक्षिण दिशा में विक्षेप करता है ।

पूर्वा पर गतः पातो बुध भार्गव शीघ्रयोः ।
पूर्ववद् विक्षिपत्येतौ न्यस्ते तच्छक्ति रुष्णगौ । ३० ।

बुध और शुक्र का भगण सूर्य भगण होता है । उनका शीघ्रोच्च ही बुध और शुक्र हैं । अतः उनके पात शीघ्रोच्च से पूर्व १८० के अन्दर हों तो दक्षिण शर, नहीं तो उत्तर शर होता है ।

स्वपात सम खेटस्य पात चक्रार्धगस्य च
विक्षेपो नौजपादान्ते परमोऽसौशराभिधः । ३१ ।

ग्रह और पात के बीच युग्म पादान्तर (एक साथ या १८०° अन्तर होने पर) शर या विक्षेप नहीं होता है (ग्रह क्रान्ति वृत्त पर होता है), ओज (विषम पादान्तर -९०° या २७०° अन्तर) रहने पर शर सर्वाधिक (परम) होता है ।

मध्येषु लिप्ता परमा विधोर्नव ख वह्नयः (३०९)
कुजस्य कुहरा (१११) ज्ञस्य कृतभूपा (१६४) वृहस्पते । ३२ ।

ग्रहों का मध्यम परमशर मान-चन्द्रमा ३०९ लिप्ता
मंगल १११ लिप्ता, बुध १६४ लिप्ता, (वृहस्पति का....)

गजाद्रये (७८)ऽथ शुक्रस्य वसुवेद निशाकराः (१४८)
शने गोमनव (१४९) स्तासां पश्चाद् वक्षे स्फुटीकृतिम् । ३३ ।

वृहस्पति का ७८ लिप्ता, शुक्र का १४८ लिप्ता, तथा शनि का १४९ लिप्ता

है। स्फुट शर लाने का नियम कहा जाता है।

भूलोक लोचन ग्राह्या भुक्तिः स्फुट गतिर्मता
सात्रिधा प्राग् गतिः पश्चाद् गतिः शून्येति भेदतः । ३४ ।

पृथ्वी की सतह से लोगों को ग्रह की जिस प्रकार गति दिखती है उसे स्फुट गति कहते हैं। स्फुट गति तीन प्रकार की है आगे (प्राक् या मार्गी) गति, पीछे (वक्री) गति तथा शून्य गति (गति का अभाव)

प्राग् गतिः पञ्चधा पश्चाद् गतिर्द्वैविध्यमागता
तृतीयैक विधेयत्वा भौमादि गतिरष्टधा । ३५ ।

आगे की गति पांच प्रकार की, पीछे की गति दो प्रकार की तथा शून्य गति एक प्रकार की कुल आठ प्रकार की गति भौम आदि ग्रहों की होती है। (सूर्य चन्द्र की वक्र गति नहीं होती)

सूर्य सिद्धान्ते-वक्रानुवक्रा विकला मन्दा मन्दंतरा समा ।
तथा शीघ्रतरा शीघ्रा कथितैषा स्वनाम भिः । इति । ३६ ।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार इन आठ प्रकार की गतियों के नाम हैं- १. वक्र २. अनुवक्र, ३. विकला, ४ मन्द, ५. मन्दतर, ६. सम, ७. शीघ्र, तथा ८. अतिशीघ्र।

पश्चाद्गति क्षीयमाणा वक्रेति गदिता बुधैः ।
वर्द्धमाना नु वक्रा सा तदन्ताद्येः क्रमेण या । ३७ ।

पीछे की गति समाप्त होते समय कम होने लगती है। उसे वक्र गति कहते हैं। पीछे की गति आरम्भ होने पर बढ़ती है, उसे अनुवक्र गति कहते हैं।

स्तम्भिता सैव विकला कला शून्यत्व हेतुतः
वक्रत्वाप्ति वियोगाभ्यं प्राक् पश्चादन्त्वहं गतः । ३८ ।

वक्रगति आरम्भ होने से पहले तथा समाप्त होने पर ग्रह की गति शून्य होती है, उसकी कोई कला नहीं होने के कारण विकला कहा जाता है।

क्षीयमाणा वर्द्धमाना स्वल्पा मध्यगतेः क्रमात्
उक्ता मन्दतरा मन्दा मध्यतुल्याः गतिः समा । ३९ ।

स्पष्ट गति मध्य गति से कम हो तथा घट रही हो तो उसे मन्दतर गति, बढ़ रही हो तो मन्द गति कहते हैं। स्पष्ट गति मध्यम गति के बराबर हो तो उसे सम गति कहते हैं।

मध्याधिका वर्द्धमाना क्षीयमाणा पुरो गतिः
भवेच्छिघ्रतरा शीघ्रा क्रमतश्चक्र सन्निधौ । ४० ।

स्पष्ट गति मध्यम गति से अधिक हो तथा बढ़ रही तो शीघ्र तर तथा घट रही हो तो शीघ्र गति कहते हैं। ये गतियां सूर्य से १२ राशि दूर रहने पर होती है।

रवीन्दोर्मन्दतुंगोत्था मन्दा मन्दतरा समा ।
शीघ्रा शीघ्रतरा भुक्तिः पूर्ववत् पञ्चधेतिसा । ४१ ।२०

रवि और चन्द्र की मन्दोच्च आकर्षण के कारण मन्द, मन्दतर, सम, शीघ्र और शीघ्रतर ये पांच प्रकार की गतियां होती हैं, जिनका अर्थ पूर्ववत् है ।

सूर्य सिद्धान्ते-तत्तद्गति वशान्नित्यं यथा दृक् तुल्यतां ग्रहाः
प्रयान्ति तत्प्रवक्ष्यामि स्फुटी करण मादरात् । इति । ४२ ।

(सूर्य सिद्धान्त से) इन गतियों के कारण मध्यम ग्रह किस प्रकार देखे हुए स्थान पर पहुंचते हैं (दृक् तुल्यता) उसे गणित द्वारा स्फुट ग्रह करने की विधि आदर सहित बताता हूँ ।

आचार्यत्वं यया याति जगति ज्ञतया जनः
सतां हितायतां वच्मिज्या धनुष्कर्म पद्धतिम् । ४३ ।

अब मै ज्या और चाप गणना की विधि कहता हूँ जो कई विद्याओं में उपयोगी है और जिसे जान कर लोग आचार्य पदवी प्राप्त करते हैं ।

ओत प्रोतै र्यथा वस्त्रं तन्तुभिः सन्ततं तथा
गोलः क्रमोत् क्रम ज्याभिः सन्दृब्धोऽयं समन्ततः । ४४ ।

वस्त्र जिस प्रकार धागे से ओतप्रोत से कर जड़ित होता है। उसी प्रकार गोल भी क्रम ज्या से उसी प्रकार जड़ित होता है (किन्ही दो बिन्दुओं के बीच क्रमज्या हो सकती है । इनकी अगणित संख्या है ।)

ज्यार्द्धाग्रे खेचरा मध्य सूत्रात् तिर्यक् स्थितायतः ।
ज्यार्द्धैः सकल कर्मेषां ज्यार्द्ध ज्येत्यत्र समन्ततः । ४५ ।

कक्षा में मध्य सूत्र (त्रिज्या ०° को) से ग्रह की तिर्यक स्थिति (कोण पर) की ज्या निकालने के लिए मध्य सूत्र से ग्रह का और विपरीत दिशा का उतना ही चाप की ज्या बनाते हैं । ग्रह ज्यार्द्ध के ऊपर होता है । ज्यार्द्ध से ही गणना (सहज में) होती है । अतः उसी को ज्या भी कहते हैं ।

भचक्रे चक्र वालार्द्ध द्वय चापनिभं यतः ।
तद् व्यास रेखा मध्यस्था जीवारूपा तदुच्यते । ४६ ।

भचक्र रूपी वृत्त के दोनों आधे भाग चाप (धनु) की भाँति दीखते हैं । चक्र को दो भाग में बांटने वाली केन्द्र से जाती हुयी रेखा को व्यास कहते हैं ।

त्रयस्त्रयो गृहा ग्राह्या भुजकोटि तयायतः ।
तदो व्यास दलं त्रिज्या परमावृत्त मध्यतः । ४७ ।

तीन राशि (९०°) की ज्या और कोटिज्या का परममान होता है । तीन राशि की ज्या व्यासार्द्ध के समान और केन्द्र से होकर जाती है । तब उसका सबसे

बड़ा मान होता है । कोटि का शून्य मान होता है (केन्द्र से ज्या की दूरी) ।

परिधेः षण्णवत्यंशः समोयस्मा न्मत स्ततः ।
राशि लिप्ता (१८००) ष्टमो भागः (२२५) प्रथमो ज्यार्धं उच्यते । ४८ ।

परिधि का १/९६ भाग सरल रेखा के समान होता है । अतः वह अपने ज्या के बराबर (प्रायः) होगा । इसका कारण राशि लिप्ता (१८००) का १/८ भाग (जो परिधि का १/९६ है) २२५ प्रथम ज्यार्द्ध (या ज्या) के बराबर होता है ।

आद्य खण्डान्तरञ्चैतद् भक्तो ज्या पिण्ड आदिमः
लब्धोनमाद्यं द्वैतीय खण्डान्तर मिदं भवेत् । ४९ ।

पहली ज्या ही प्रथम खण्ड़ान्तर है (०° की ज्या -० है) । द्वितीय खण्डान्तर (पहली ज्या को दूसरी से घटाने पर फल) निकालने के लिए प्रथम खण्ड की ज्या को उसी ज्या (पिण्ड) से भाग देकर लब्धि को ज्या पिण्ड से घटाते हैं । (२२५-२२५/२२५) यह फल (२२४) खण्डान्तर हुआ ।

तद्युक्तं प्रथमज्यार्धं द्वितीय ज्यार्द्ध मुच्यते ।
पुनराद्येन तद् भक्तं शेषः स्वार्द्धाधिको यदि । ५० ।

द्वितीय खण्डान्तर को प्रथम ज्या में जोड़ने से द्वितीय ज्य[illegible] आता है । पुनः इसको प्रथम खण्डान्तर से भाग देते हैं, शेष यदि अपने आधे से अधिक (२२५/२ से अधिक) आता है ।

तल्लोपादेक युग् लब्धं कार्य मर्धोन एवलुक ।
द्वितीय खण्ड विवरं तल्लब्धोन तृतीयकम् । ५१ ।

तो शेष लोप कर देते हैं । (लब्धि में कुछ अन्तर नहीं) इस लब्धि को द्वितीय खण्डान्तर से घटाने पर तृतीय खण्डान्तर आता है ।

तद् युग द्वितीय जीवार्द्धं तृतीय ज्यार्द्ध पिण्डकः
आद्यैनैवं क्रमात् पिण्डान् भक्ता लब्धोनितै र्युतैः । ५२ ।

तृतीय खण्डान्तर को द्वितीय जीवार्द्ध में जोड़ने से तृतीय ज्यार्द्ध का पिण्ड आता है । इस प्रकार क्रम से ज्या पिण्डों को प्रथम पिण्ड से भाग देकर खण्डान्तर से घटाने पर अगला खण्डान्तर आता है, जिसे पिछले पिण्ड में जोड़कर अगला पिण्ड आता है ।

चतुर्विंशति खण्डै स्युः क्रमज्या पिण्ड लिप्तिका
किन्तु ज्यापिण्डतः षष्ठात् सप्तमाद् द्वादशा दपि । ५३ ।

इस प्रकार क्रमानुसार १ से २४ ज्यापिण्ड (लिप्ताओं में) बनेगे किन्तु ज्यापिण्ड निकालते समय ६,७,१२....

एक विंशात् पञ्चद शाद् विंशात्सप्तदशा तथा
हार शेषांक लुक् प्रोक्ता नारदीय स्वयम्भुवा । ५४ ।

१५,१७,२०,२१ वीं ज्या पिण्ड के समय हार शेषाक लुप्त हो जायेगा (लब्धि में शेष आधा से अधिक होने पर एक नहीं जोड़ेगे) क्योंकि ब्रह्मा ने नारद से ऐसा कहा था।

सूर्य सिद्धान्तेतत्वाश्विनो (२२५)ऽङ्
काब्धिकृता (४४९) रूप भूमिधरर्त्तवः (६७१)
खाण्ङ्काष्टौ (८९०) पञ्चशून्येषां (११०५)
बाणरुपगुणेन्दवः (१३१५)। ५५।

(सूर्य सिद्धान्त से उद्धृत क्रम से १,२ री आदि ज्याओं के मान)- पहली ज्या-२२५ लिप्ता, २री ४४९, ३ री-६७१, ४ थी-८९० पांचवी-११०५, छठी (१३१५)

शून्यलोचन पञ्चै का(१५२०) श्छिद्ररूप मुनीन्दवः (१७१९)
वियच्चन्द्रातिधृतयो (१९१०) गुणरन्ध्राम्बराश्विनः (२०९३)। ५६।

७ वीं ज्या (१५२०) ८ वीं ज्या (१७१९), ९ वीं ज्या (१९१०) तथा १० वीं ज्या (२०९३)।

मुनिषड् यम ने त्राणि (२२६७) चन्द्राग्निकृत दस्रकाः (२४३१)
पञ्चाष्ट विषयाक्षोणि (२५८५) कुञ्जराश्विनगाश्विनः (२७२८)। ५७।

११ वां ज्या (२२६७) १२ वीं ज्या (२४३१) १३, वीं ज्या (२५८५)तथा १४ वीं ज्या (२७२८)।

चन्द्रपञ्चाष्टकयमा (२८५९) वस्वद्र्यंक यमास्तथा (२९७८)
कृताष्ट शून्य ज्वलना (३०८४) नगाद्रि शशि वह्नयः (३१७७)। ५८।

१५ वीं ज्या (२८५९), १६ वीं ज्या (२९७८) १७ वीं ज्या (३०८४) १८ वीं ज्या (३१७७)

षट्पञ्चलोचन गुणा (३२५६) श्चन्द्रनेत्राग्नि वह्नयः (३३२१)
यमाद्रिवह्निज्वलना (३३७२) रन्ध्रशून्यार्णवाग्नय (३४०९)। ५९।

१९ वीं ज्या (३२५६), २० वीं ज्या (३३२१) वीं ज्या (३३७२) त्था २२ वीं ज्या (३४०९)

रूपाग्नि सागर गुणा (३४३१) वस्वग्निकृत वह्नयः (३४३८)
उत्क्रमज्या अथोच्यन्ते त्रयोविंशादि खण्डजाः। ६०।

२३ वीं ज्या (३४३१) तथा २४ वीं ज्या (३४३८) लिप्ता होती हैं। अब २३ खण्डों की उत्क्रम ज्या कही जाती है।

प्रोज्योत् क्रमेण व्यासार्द्धा देक द्वित्रादि खण्डजा
जायन्ते चापशिञ्जिन्यो रन्तः शरवद्दूर्द्धतः। ६१।

प्रथम, द्वितीय, तृतीय आदि ज्या को व्यासार्द्ध से घटाने पर २३ वीं आदि उत्क्रम ज्या होगी। दूसरी ज्या घटाने से २२ वीं आदि।

मुनयो (७) रन्ध्रयमला (२९) रसतर्का (६६) मुनीश्वराः (११७)
द्व्यष्टैका (१८२) रूपषड्दस्राः (२६१) सागरार्थ हुताशना, (३५४) । ६२ ।

प्रथम खण्ड की उत्क्रम ज्या (७) लिप्ता, द्वितीय का (२९) तृतीय का (६६) चतुर्थ का (११७), ५ वें का (१८२), ६ठे का (२६१) तथा ७ वें का (३५४) ।

खर्तु वेदा (४६०) नवाद्र्यर्था (५७९)
दिङ्नागा (७१०) स्त्र्यर्थकुञ्जरा (८२३)
नगाम्बर वियच्चन्द्रा (१००७)
रूपभूधर शंकराः (११७१) । ६३ ।

८ वां (४६०), ९ वां ५७९), १० वाँ (७१०, ११ वां (८५३) १२ वां (१००७) तथा १२ वां (११७१)

शरार्णव हुताशैका (१३४५) भुजंगाक्षि शरेन्दवः (१५२८)
नवरूप मही ध्रैका (१७१९) गजैकाङ्कनिशाकराः (१९१८) । ६४ ।

१३ वां (१३४५), १४ वां (१५२८), १५ वां (१७१९) तथा १६ वां (१९१८) ।

गुणाश्विरूप नेत्राणि (२१२३) पावकाग्नि गुणाश्विनः (२३३३)
वस्वर्णवार्थयमला (२५४८) स्तुरङ्गर्तु नगाश्विनः (२७६७) । ६५ ।

१७ वां (२१२३) १८ वां (२३३३),१९ वां (२५४८), २० वां (२७६७)

नवाष्ट नवने त्राणि (२९८९) पावकैक यमाग्नयः(३२१३) ।
अष्टाग्नि सागर गुणा (३४३८) उत्क्रम ज्यार्ध पिण्ड काः । ६६ ।

२१ वां (२९८९) २२ वां (३२१३) तथा २३ वीं उत्क्रम ज्यार्ध के पिण्ड २१ वां (२९८९) (३२१३) तथा २३ वीं उत्क्रमज्यार्द्ध के पिण्ड (३४३८) हैं ।

ग्रहं संशोध्य मन्दोच्चा त्तथा शीघ्राद् विशोध्यते ।
शेषं केन्द्रं पदं तस्मा द्भुजज्या कोटिरेव च । ६७ ।

मन्दोच्च से मध्य ग्रह की राशि घटाने पर मन्द केन्द्र और शीघ्रोच्च से मध्यग्रह घटाने पर शीघ्र केन्द्र आता है । इनकी भुजज्या और कोटिज्या निकाली जाती है ।

गता भुजस्य विषमें गम्यात् कोटि पदे भवेत् ।
युग्मेतु गम्याद् बाहुज्या कोटिज्यातु गता भवेत् । इति । ६८ ।

विषमं पद में गत चाप की भुजज्या तथा भोग्य चाप से कोटिज्या होती है । (युग्म पद में उसका उल्टा अर्थात् भोग्य (गम्य) चाप से भुजज्या तथा गत चाप से कोटिज्या होती है । (सूर्य सिद्धान्त का उद्धरण समाप्त) ।

तस्माद्राशि त्रयदंका भाद्यं बाहुर्यथास्थितम्
त्रिभोर्ध्वं शोधितं षड् भ्यः षड्र्ध्वषड्भिरुज्झितम् । ६९ ।

इसका अर्थ है कि केन्द्र (मन्द या शीघ्र) की राशि तीन (९०°) से कम होने से उसी का भुजचाप की ज्या, ३ राशि में अधिक केन्द्र होने पर ६ राशि घटाने पर जो चाप बाकी रहा उसकी ज्या ही केन्द्र भुजज्या होगी । केन्द्र ६ राशि से अधिक होने पर उससे ६ राशि घटाकर बाकी चाप की ज्या केन्द्र की भुजज्या होगी ।

नवोर्ध्वं चक्रशुद्धं दो स्त्रिभेभ्यः कोटिरुज्झितः ।
शोधकां च्छोध्य मल्पञ्चे भाद्यं भगण युक्ति दा । ७० ।

केन्द्र ९ राशि से अधिक होने पर उसे १२ राशि में घटाकर बाकी से ज्या साधन होता है । भुज की राशि अंश को ३ राशि (९०°) से घटाने पर शेषफल को कोटि कहते हैं । घटने वाली राशि (शोधक) मूल राशि जिससे घटाया जाय (शोध्य) से अधिक हो तो मूल में १२ राशिं (भगण) जोड़ते है ।

सूर्य सिद्धान्ते-लिप्तास्तत्वयमै (२२५) र्भक्ता लब्धं खण्डज्यका गता ।
गत गम्यन्तरा भ्यस्तः शेषस्त त्वाश्विभि (२२५) र्हतः । ७१ ।

जिस चाप (कोण) की ज्या निकालती है । हो उसे (२२५) से भाग देकर लब्धि ज्या खण्ड की संख्या (२४ मे से) होगी । शेष बचा वह अगले ज्या का गत अंश होगा, उसमें वीते हुए ज्यापिण्ड और वर्तमान ज्यापिण्ड के अन्तर से गुणा कर २२५ से भाग देकर लब्धि को पिछले (गत) ज्या पिण्ड में जोड़ने से इष्ट चाप की ज्या निकलती है ।

इष्ट चाप (लिप्ता)/ २२५ = लब्धि (गत ज्या खण्ड की संख्या ± शेष (वर्तमान ज्या खण्ड का भुक्त भाग) शेष x (वर्तमान् ज्यापिण्ड - गत ज्यापिण्ड) /२२५ + गत ज्या पिण्ड = इष्ट चाप का ज्या पिण्ड ।

उदवाप्त फलं योज्यं ज्यापिण्डे गत संज्ञके ।
क्रम ज्यानां विधिरयमुत्क्रमज्यास्वपि स्मृतिः । इति । ७२ ।

उत्क्रमज्या की भी यही विधि होगी । (सूर्य सिद्धान्त ऊद्धरण समाप्त)

ज्यापिण्डतः स्वाभिमतात् प्रोज्भ्योनां खण्ड मौर्विकाम्
शेषं तत्वाश्वि (२२५) गुणितं हृत्वा तद्विवरेण च । ७३ ।

ज्या पिण्ड से चाप लाने के लिए उससे सबसे बड़ा ज्या पिण्ड जो घट सके घटा कर शेष पिण्ड में २२५ से गुणा करते हैं तथा ज्यापिण्ड तथा अगले ज्यापिण्ड के अन्तर में भाग देते हैं ।

फलं तत्वाश्वि गुणया गतज्या खण्ड संख्यया
संयोजयेद्धनुरिदं भुज कोट्या कलात्मकम् । ७४ ।

फल को २२५ से गुणा कर गुणनफल को गत खण्ड की ज्या के चाप (ज्याखण्ड संख्या x २२५) में जोड़ते हैं तो अभीष्ट ज्या आती है ।

इष्ट ज्यापिण्ड-वृहत्तमज्यापिण्ड = शेष (अगले खण्ड का गत अंश)

$$\frac{\text{शेष} \times २२५}{\text{अगले खण्ड ज्या का पिण्ड-गत पिण्ड + गत ज्या खण्ड)}} \times २२५ = \text{इष्ट चाप}$$

त्रिज्या वर्गाद् (११८१४४) भुजज्या वर्ग प्रोज्भ्यवशेषतः
पदं कोटि ज्यका कोटे रवें दोर्ज्या पि साध्यताम्। ७५।

त्रिज्यावर्ग से भुजज्यावर्ग घटाकर शेष का मूल भुजचाप की कोटिज्या होती है। इसी प्रकार कोटिज्या से ज्या निकालते हैं। (रवि और चन्द्र के लिये)
(कोटिज्या^{२} + ज्या^{२} = त्रिज्या^{२})

कुज्ञे शनिमन्दानां प्राक् पश्चात् चलने क्षणात्।
ज्ञ शीघ्रस्याप्ति कृप्तोऽन्यः परोच्चाक्षः सुरोमया। ७६।

मंगल, बुध और शनि का मन्दोच्च और बुध शीघ्रोच्च आगे और पीछे दोनो दिशाओं में गति पर्यवेक्षण से जानकर मैं परोच्च नामक एक अन्य देवता की कल्पना करता हूँ जो इन सबको प्रभावित करता है।

सषड्भः सूर्यमध्यः स्याद् भूमिपुत्र परोच्चकः
ज्ञ परोच्चोः मृदोः शीघ्रः शीघ्रस्यापि मृदूच्चकः। ७७।

मध्यम सूर्य से ६ राशि (१८००) अन्तर पर मंगल का परोच्च तथा बुध मन्दोच्च का परोच्च बुध का शीघ्रोच्च है तथा बुधशीघ्रोच्च का परोच्च बुध का मन्दोच्च है।

धृत्यं (१८) शोनः शनिर्मध्यः स्वमन्दस्य परोच्चकः।
मन्दोच्चादि वदेतेऽपि न दृश्याः कालमूर्तयः। ७८।

मध्यम शनि से १८° कम दूरी पर शनि के मन्दोच्च का परोच्च रहता है। परोच्च भी मन्दोच्च की तरह अदृश्य काल मूर्ति है।

एवमन्ये सूक्ष्मरूपाः सन्त्य संख्या नभश्चराः
तथैवो पग्रहाः सन्ति ग्रहवेष्टन कारिणः। ७९)

इसी प्रकार असंख्य सूक्ष्म रूपी ग्रह आकाश में है, ग्रहों के चारों ओर उपग्रह भी वृत्ता कार में घूमते हैं।

ते सूक्ष्म यन्त्रलक्षत्वात् पूर्व गत्याग्रहाइति।
उन्निता अपि धात्राद्यै रनुक्तात्वादि होज्झिताः। ८०।

इन (सूक्ष्मों ग्रहों, उपग्रहों) की गति सूक्ष्म यन्त्रों से ही देखी जा सकती है। ये भी पश्चिम से पूर्व की तरफ चलते हैं इनका वर्णन ब्रह्म सिद्धान्त सूर्य सिद्धान्त आदि में नहीं रहने के कारण मैं इनका परिचय नहीं दे रहा हूँ।

ज्ञशीघ्रा धृति (१८) भागोन मध्यार्कः स्वमृदूच्चकौ
प्रोज्भ्य शेषात् केन्द्र दोर्ज्या हत्वा खाष्टर्तुभि (६८०) र्विदः। ८१।

बुध के शीघ्रोच्च तथा मन्दोच्च एवं शनि के मन्दोच्च से उनके परोच्च का राशि

घटायें। शेष कीं ज्या निकाल कर (६८०) से गुणा कर

शनेस्त्रिशत्या (३००) थ भजेत् त्रिज्यया (३४३८) जतुलादिगे।
तत्केन्द्रे फललिप्तादि स्वमृणं मन्दतुं गयोः। ८२।

गुणनफल में (बुध और शनि के लिए) ३०० से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग दें। लिप्तादि फल को केन्द्र मेषादि (६ राशि) में होने से उसे मन्दोच्च में जोड़े तथा तुलादि में होने से घटायें।

ज्ञ शीघ्रे तत्फलं वामं कुर्यात्ते स्युस्त्रयः स्फुटाः।
भौमस्य प्रथमे शीघ्र केन्द्रे नक्रादि षट्क गे। ८३।

इसका उल्टा संस्कार (मेषादि राशियों के लिए घटाने तथा तुलादि राशियों के लिए जोड़ने) बुध के शीघ्रोच्च के लिए किया जाता है, इस प्रकार तीन मानों (बुध के मन्द और शीघ्र उच्च तथा शनिका मन्दोच्च) का स्फुट मान आता है।

(मंगल मन्दोच्च का स्फुट निकालने के लिए) मंगल का शीघ्र केन्द्र मकर आदि ६ राशि में रहने से

नैतत्कर्मार्थ कर्क्यादौ तत्रस्यादब्दजं मृदुम्।
तत्परोच्चाद् विशोध्यान्ते तद्ववज्ज्यां खशराब्धिभिः (४५०)। ८४।

स्फुट संस्कार की आवश्यकता नहीं है। शीघ्र केन्द्र कर्क आदि ६ राशियों में रहने पर मन्दोच्च संस्कार इस प्रकार होगा। गत वर्ष जनित मंगल मन्दोच्च को परोच्च से घटाकर केन्द्र (पर) निकालें। पर केन्द्र की ज्या निकालकर उसे ४५० से....

हन्यात् त्रिज्याप्त मस्यादि केन्द्र कोटि-कला हतम्
त्रिभलिप्ता (५,४००) प्तमेतेन संस्कृत स्यान्मृदुः स्फुटः। ८५।

.... गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग दें। फल को प्रथम शीघ्र केन्द्र की कोटि ज्या की कला से गुणा कर ५४०० (तीन राशि की कला) से भाग दें। फल से पहले की तरह केन्द्र के अनुसार प्रथम ६ में कर्क, सिंह कन्या जिसमें संस्कार होता है जोड़ते हैं तथा तुला, वृश्चिक, धनु के लिए घटाते हैं। मन्दोच्च में संस्कार होगा।

तत्कोटि फल मारस्य प्राग्वद्राक् कोटि संस्कृतम्।
मध्यार्क गत्या गुणिताम् शनैः कोटिफलं ततः। ८६।

मन्दोच्च की दैनिक गति मंगल के परोच्च के उसका मन्दोच्च घटाकर (परकेन्द्र) परोच्च की केन्द्र कोटिज्या को ४५० से गुना कर त्रिज्या (३४३८) से भाग दें। यह मंगल का कोटिफल होगा। परकेन्द्र ०° से १८०° होने पर उसे शीघ्र कोटिज्या में जोड़े, १८०° से ३६०° होने पर घटाये। फल को दैनिक मध्यम गति से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने से लब्धि मंगल मन्दोच्च की परोच्च के कारण दैनिक गति होगी।

स्व मध्य गत्याथ विदः शीघ्र गत्या तदाहतम् ।
त्रिज्याप्तानि कलालब्धास्तन्मन्दानां द्युभुक्तयः । ८७ ।

इसी प्रकार शनि का परोच्च और मन्दोच्च का अन्तर निकाल उसकी कोटिज्या को ३०० से गुणा कर (३४३८) से भाग दे शनिका कोटिफल निकालें । इस कोटिफल को शनि की दैनिक मध्यम गति से गुणाकर त्रिज्या ३४३८ से भाग देने से परोच्च संस्कृत शनि मन्दोच्च की दैनिक गति होगी ।

बुध के पर केन्द्र (शीघ्रोच्च के लिए -बुध का शीघ्रोच्च बुध ही है) कोटिज्या को ६८० से गुणाकर ३४३८ भाग देने से बुध (शीघ्रोच्च) का कोटिफल होगा । उसे बुध शीघ्रोच्च की दैनिक मध्यम गति से गुणा कर त्रिज्या ३४३८ से भाग देने से स्पष्ट बुध शीघ्रोच्च की दैनिक मध्यम गति होगी ।

नक्र कर्क्यादि उत्केन्द्र ऋज्यो वक्रा भवन्तिताः
वक्रर्जुज्ञोच्च भुक्त्याप्य हीनातत् द्राग् गतिः स्फुटा । ८८ ।

संस्कृत मन्दोच्च की दैनिक गति परोच्च केन्द्र की स्थिति पर निर्भर है । परोच्च केन्द्र प्रथम और चतुर्थ पाद में रहने से यह गति आगे की तरफ और द्वितीय और तृतीय पाद में रहने से पीछे की तरफ होती है ।

बुध शीघ्रोच्च की दैनिक मध्यम गति में उसमन्दोच्च (संस्कृत) दैनिक गति को पीछे की तरफ होने पर जोड़ते हैं । या आगे की तरफ होने पर घटाते हैं ।

मन्दोच्चा कर्षण फलं यस्य यस्य हि दृश्यते ।
परमं यत्तदभ्यस्ता श्चक्रलिप्ताः (२१,६००) समुद्धृताः । ८९ ।

जिस ग्रह का जितना परम मन्दोच्च का कर्षण फल है उसको वृत्त की कला (२१,६००) से गुणा कर

त्रिज्यया (३४३८) तत्फलं तत्तत् सममन्द परिधिर्भवेत् ।
क्वाप्युनाधिकता यस्मात् फलस्य परिधिस्ततः । ९० ।

त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर ग्रह की मन्द परिधि आती है । परम मन्दफल कम या अधिक होने से मन्द परिधि भी कम या अधिक होगी ।

युग्म पादान्त जाच्छिघ्र परिधेर्विषमान्तजः ।
न्यूनः शनि कुजे ज्याना मधिकः स्यात् सितज्ञयोः । ९१ ।

मंगल, वृहस्पति और शनि की शीघ्र परिधि द्वितीय और चतुर्थ पादान्त में बढ़ जाती है और विषम पादान्त में कम होती है । बुध और शुक्र की शीघ्र परिधि का अन्तर उल्टा होता है । विषम पादान्त में अधिक और युग्म में कम ।

सूर्यसिद्धान्ते-रवि मन्द परिध्यंशा मनवः (१४) शीतगो रदाः । (३२)
युग्मान्ते विषमान्तेतु नख (२०) लिप्तो नितास्तयोः । इति । ९२ ।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार -रवि की मन्द परिधि युग्म पादान्तर में १४ औ ओज (विषम) पदान्तर में (१३।४०) चन्द्र का उसी प्रकार युग्म पदान्तीय मन्द

परिधि (३२) तथा ओज पदान्तीय मन्द परिधि (३१।४०) होगी (विषम पदान्तर में २० लिप्ता कम होगी)।

त्र्यंशोनेन्द्र (१३।४०) लवा भानोर्जिन (२४) लिप्तोनितारदाः (३२)। ३६।
चन्द्रस्य सार्द्ध देत्युक्ताः सत्सिद्धान्त शिरोमणौ। ९३।

भास्कराचार्य के सिद्धान्तशिरोमणि के अनुसार युग्म और ओज सभी पदान्त में रवि और चन्द्र की मन्दपरिधि क्रमशः१३।४० तथा ३१।१६ होगी।

मयातुभेन्दु युत्य र्क चन्द्रान्तर विवेकतः
कथ्यते दृक् समो मन्द परिधि रवि चन्द्रयोः। ९४।

मैंने नक्षत्रों से चन्द्रमा की युति तथा चन्द्रमा और सूर्य का राशि अन्तर देखकर स्वयं सूर्य और चन्द्र की मन्दपरिधि का परिमाण निकाला है।

मन्द केन्द्रो जपादान्ते भानोः षट् कलि कान्विताः।
तदं शा भानव (१२।६) श्चन्द्र स्यार्द्धो ना दशनं (३१।३०) वहः। ९५।

मन्द केन्द्र ओज (विषम) पादान्त में रहने पर सूर्य की मन्द परिधि १२।६ कला तथा चन्द्रमा की ३१।३० कला है।

रवेश्चक्र स्वकेन्द्रस्य रवि ((१२) लिप्तोनिताः (११।५४) स्मृता
चक्रार्द्धे सिद्ध (२४) लिप्ताद्यः (१२।३०) स्फुट तान्यत्र कथ्यते। ९६।

रवि का मन्द केन्द्र चतुर्थ पादान्त में रहने पर मन्दपरिधि (११।५४) तथा द्वितीय पादान्त में (१२।३०) अन्य स्थान में रवि और चन्द्र की मन्द परिधि निकालने का सूत्र कहा जा रहा है।

रस शीघ्र केन्द्र कोटिज्या त्रिज्या (३४३८) प्ता कलिकाफलैः
क्रमान्मकर कर्क्यादौ ही नाढ्या धृति (१८) लिप्तिकाः। ९७।

अन्य स्थान में रवि की मन्द परिधि निकालने के लिये रवि मन्द केन्द्र की कोटिज्या को ६ से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग दें। फल कला आदि में होगा। मन्द केन्द्र प्रथम और चतुर्थ पाद में रहने पर इस कला फल को १८ से घटायेंगे। मन्द केन्द्र द्वितीय और तृतीय पाद में रहने पर इस कलादि को १८ में जोड़ेंगे।

केन्द्र कोटिज्य याभ्यस्तास्त्रिज्या (३४३८) प्ता स्तत् फलैःपुनः।
युतोनः कर्किनक्रादावोजान्त परिधिः (१२।६) स्फुटः। ९८।

दोनों प्रकार के फल को मन्दकेन्द्र कोटिज्या से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग दें। शेष फल कला को मन्द केन्द्र द्वितीय और चतुर्थ पादान्त में रहने पर ओज मन्द परिधि (१२।६) से घटायें। वही उस स्थान की मन्द परिधि होगी। अन्य स्थानों के लिए जोड़ेगे।

एवं सूक्ष्म विधौ कार्यः स्थूलेतु स्वांक (९) भाग युक्।
प्राग्भिरिष्टे पर्व सन्धि मात्रदृक्साम्य लाभतः । ९९ ।

सूक्ष्मगणना के लिए इस प्रकार मन्द परिधि निकाली जाती है। स्थूल गणना के लिए इतनी अधिक गणना नकर पूर्व नियम के अनुसार मन्द परिधि निकाल कर उसमें उसका १/९ भाग जोड़ देते हैं। इसमें सिर्फ पर्व सन्धि (पूर्णिमा या अमावस्या का) दृक् समता होती है।

विधोरुक्तः स (३१।३०) कोटिज्या गुणितै स्त्रिगुणै (३४३८) हृतैः
खगुणैः (३०) कर्कि नक्रादौ कलाभि र्युगवियुक् स्फुटः । १०० ।

चन्द्र मन्दोच्च की कोटिज्या को ३० से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग दें। कलादि फल को चन्द्रमन्द केन्द्र कर्क आदि ६ राशि में रहने पर विषम पदान्तीयमन्द परधि (३१।३०) में जोड़े चन्द्र मन्द केन्द्र मकर आदि ६ राशि में रहने पर इस कलादि फल को उसी (३१।३०) से घटाये। इस प्रकार चन्द्रमा की मन्द परिधि स्फुट होगी।

कुजादग्रंपघ्रप्रमुखांशा गोऽङ्गानि (६९) गिरि वाहवः । (२७)
सार्द्धा ब्धिरामा (३४।३०) स्तपना (१२) ऽ गोऽग्नयः
(३९) परिधेर्मृदो । १०१ ।

मंगल की मन्द परिधि अंशादि			६९
बुध	,,	,,	२७
गुरु	,,	,,	३४।३०
शुक्र	,,	,,	१२
शनि	,,	,,	३९

शैंघ्रा परिधयो भौमाद् युग्मान्तेऽष्टाग्नि बाहवः (२३८) नव विश्वे
(१३९) ख गिरयो (७०) भूषट् पक्षा (२६१) नवाग्नय । १०२ ।

मंगल युग्मपदान्त की शीघ्र परिधि-			२३८	अंश
बुध	,,	,,	१३९	,,
वृहस्पति	,,	,,	७०	,,
शुक्र	,,	,,	२६१	,,
शनि	,,	,,	३९	,,

ओजान्तेऽद्र्यग्नि ने त्राणि (२३७) नभःशक्रा (१४०) नवर्तवः (६९)
द्व्यंग पक्षा (२६२) गजगुण (३८) स्तेषान्तु स्फुटतोच्यते । १०३ ।

ओज पदान्तो में शीघ्र परिधि

मंगल-२३७ अंश, बुध-१४० अंश, वृहस्पति, ६९ अंश शुक्र-२६२ अंश तथा शनि ३८ अंश।

ओज युग्म पदान्तोत्थ परिध्यो र्विवरा (१) हता
भुजज्या त्रिज्यया (३४३८) भक्ता तत्फलं कलिकादिकम् । १०४ ।

स्फुट मन्द और शीघ्र परिधि निकालने की विधि – ओज और युग्म पदान्त की शीघ्र परिधि का अन्तर (१ अंश) की शीघ्र केन्द्र भुजज्या से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर जो फल होगा ।

युग्म पादान्त परिधौ महति प्रोज्झितं ततः ।
अल्प माने धनं तस्मि न्नेवं परिधयः स्फुटाः । १०५ ।

उसे शीघ्र परिधि बढते समय पिछली पदान्त परिधि में जोड़ेगे तथा शीघ्र परिधि घटते समय उससे घटायेंगे ।

दृक् सिद्ध्यै पुनराराशू केन्द्र दोः कलिकाहताः ।
खरामैः (३०) फलयुक् कार्यः कौजाद्राक् परिधि स्फुटः । १०६ ।

इस प्रकार निकाली मंगल की स्फुट शीघ्र परिधि में उसकी शीघ्र केन्द्र भुज कला का १/ ३० भाग मिलाने के मंगल की अति स्फुट शीघ्र परिधि आयेगी ।

तन्मन्द केन्द्र चरण या तैस्याल्प कला गुणः ।
कर्क्या दौ वसुभि (८) र्भागै र्नक्रादौ गुणितोब्धि (४) भिः । १०६ ।

मंगल की मन्द परिधिपादान्त में ६९ अंश होती है । पाद मध्य में साधन करने के लिए मंगल का मन्द केन्द्र निकाल कर गत और भोग्य कला में (पाद आदि और पाद अन्त में) जो कम है कि उसकी क्रमज्या निकालें । मन्द केन्द्र कर्क आदि में होने पर ८ अंश से और मकर आदि में होने से ४ अंश से गुणा कर –

स्यार्द्ध राशि ज्यया (२४३१) भक्त फलै रंशादि भिस्ततः ।
समन्वित स्फुटामन्द परिधिर्गोरसांशकः (६९) । १०८ ।

डेढ़ राशि (४५०) की ज्या (२४३१) से भाग देते हैं । अंशादि फल को ६९ अंश में जोड़ने में इष्ट स्थान की स्फुट मन्दपरिधि निकलती है ।

अथैतत् फलवैषम्य परिहाराय केन्द्र के ।
नागाङ्काष्टाब्धि (४८६८) लिप्तातः खाङ्कार्थेन्दु (१५९०) कलात्म के । १०९ ।

मंगल मन्द केन्द्र (४८६८) से (४८६८ + १५९०) लिप्ता के बीच

भुजेन्द्रतिथिलिप्तातः (१५,१४२) खगोर्थेन्दु कलात्म के ।
परिध्यनादरः किन्तु फलं ग्राह्य त्रिराशिजं (११।२।४७) । ११० ।

या (१५,१४२) लिप्ता से (१५,१४२+१५९०) के बीच में रहने पर उसकी मन्दपरिधि उतनी ही होती है, जितना मन्द केन्द्र तीन राशि (९०) होने पर मन्दफल (११।२।४७) होता है ।

बुधस्यमन्द केन्द्राङ् घ्रिङ् गतैष्याल्प कलाज्यका ।
नवाप्तो लब्धा लिप्तोनः स्यान्मन्द परिधिः स्फुटः (१११)

बुध का मन्द केन्द्र जिस पाद में हो उस पाद की गत और भोग्य कला में जो कम हो उसकी ज्या को ९ से भाग कर लब्धि कला को मन्द परिधि (२७) से घटाने पर बुध की स्फुट मन्द परिधि होगी।

शुक्रस्य मन्द परिधिः केन्द्र दोर्ज्याक्षि (२) घाततः।
त्रिज्या (३४३८) भक्तात् फलांशादि रहित, स्फुट उच्यते। ११२।

शुक्र की मन्द केन्द्र भुजज्या को २ से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर प्राप्त अंश आदि को मन्द परिधि में (१२ अंश) से घटाने पर शुक्र की स्फुट मन्द परिधि होगी।

सूर्य सिद्धान्ते-तद्गुणे भुज कोटिज्ये भगणांश (३६०) विभाजिते।
तद् भुजज्याफल धनुर्मान्द्यं लिप्तादिकं फलम्। इति। ११३।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार संस्कृत मन्द परिधि को मन्द केन्द्र की भुजज्या से और मन्द केन्द्र कोटिज्या से गुणा कर (३६०) से भाग देने पर क्रमशः मन्द भुजफल और मन्द की कोटिफल होता है।

तत्व नेत्रो (२२५) न लिप्तानां समभावात् धनुक्रिया।
नेष्यते बहुतायातु ततस्तत्कर्म युज्यते। ११४।

२२५ कला (३° ४५') चाप में और ज्या में अन्तर नहीं होने से कारण द्वितीय से छोटे चाप की ज्या या ज्या का चाप निकालने की आवश्यकता नहीं है। उससे अधिक होने पर ही ज्या और धनु निकालना, जाहिये।

सूर्य सिद्धान्ते-शैघ्रं कोटिफलं केन्द्रे मकरादौ धनं स्मृतम्
सशोध्यन्तु त्रि जीवा (३४३८) या कर्क्या दौ कोटिजं फलम्। इति। ११५।

श्लोक ११३ के अनुसार शीघ्र कोटिफल निकाल कर शीघ्र केन्द्र मकरादि ६ राशि में रहने पर उसको त्रिज्या (३४३८) में जोड़े अन्य राशियों में त्रिज्या से घटायेंगे।

सैवोक्ता संस्कृत त्रिज्या ज्यारूपं भुजकोटिजम्
फलमत्रैव गृह्येत धनर्ण कृत कर्मणि। ११६।

इस फल का नाम कोटिज भुजफल है और त्रिज्या में जोड़ने घटाने काम में इन्हें ज्या रूप (चाप रूप नहीं) ही देखना चाहिये।

सूर्य सिद्धान्ते-तद् बाहु फलवर्गै ज्यान्मूलं कर्णश्चलाधिपः
त्रिज्याभ्यस्तं भुजफलं चल कर्ण विभाजितम्। ११७।

इन ज्या चाप भुज और कोटि के वर्ग को जोड़कर उसका वर्गमूल निकालने से शीघ्र कर्ण आता है। भुजफल को त्रिज्या (३४३८) से गुणनकर शीघ्र कर्ण से भाग देने पर

लब्धस्य चापं लिप्तादि फलं शैध्य्र मिदं स्मृतम् ।
एतदादौ कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि । ११८ ।

लब्धि लिप्तादि चाप को शीघ्रफल कहते हैं । मंगल आदि पांच ताराग्रहों के प्रथम ओर चतुर्थ संस्कार के काम आता है ।

मान्दं कर्मैं कमर्केन्दौ भौमादीना मथोच्यते
शैघ्रं मान्दं पुनर्मान्दं शौघ्रं चत्वार्य नुक्रमात् । ११९ ।

सूर्य और चन्द्रमा मन्द फल के केवल एक संस्कार से स्पष्ट होते हैं । परन्तु मंगल आदि पांच ताराग्रहों में शीघ्र फल का एक संस्कार करने पर मन्द फल के दो संस्कार करने पड़ते हैं । जिसके पीछे चौथी बार फिर शीघ्र फल का संस्कार करना होता है ।

अजादि केन्द्रे सर्वेषां मान्दे शैघ्रे च कर्मणि ।
धन ग्रहाणां लिप्तादि तुलादावृण मेव च । १२० । इति ।

जब शीघ्र केन्द्र या मन्द केन्द्र ६ राशि से कम होता है । तो शीघ्र फल या मन्द फल धनात्मक होता है इसलिए सब कामों में जोड़ा जाता है । जब केन्द्र ६ राशि से अधिक होता है तब फल घटाया जाता है । (उद्धरण समाप्त)

मध्य शैघ्रं फलार्द्धेन संस्कृतः प्रथमो ग्रहः
तदूनित मृदुत्थेन फलार्द्धेन स संस्कृतम् । १२१ ।

मध्य ग्रह में शीघ्र फल का आधा संस्कार करने से प्रथम ग्रह होता है । प्रथम ग्रह को मन्दोच्च से घटाने पर जो केन्द्र आदि होगा उसके मन्द फल का आधा से प्रथम ग्रह का संस्कार करने पर-

द्वितीय स्तेन संशुद्धान्मन्दात् यत् सकलम् फलम् ।
तत्संस्कृतो मध्यखगो मन्द स्पष्ट स्तृतीयक । १२२ ।

द्वितीय ग्रह होता है । द्वितीय ग्रह को पुनः मन्दोच्च से घटाने पर जो मन्द केन्द्र आता है उसके मन्दफल से द्वितीय ग्रहका संस्कार करने से तृतीय ग्रह आता है ।

तदुनिताच्छीघ्रतुंगात् सकलेन फलेनसः ।
संस्कृतः स्फुरता मेति तूर्य सूर्यादिशासनात् । १२३ ।

तृतीय मन्द स्पष्ट ग्रह को शीघ्रोच्च से घटाने पर जो शीघ्र केन्द्र आता है । उसके शीघ्रफल से तृतीय ग्रह का संस्कार करने पर जो चतुर्थ ग्रह आता है वही वास्तव में स्पष्ट ग्रह है ।

त्रिचतुः फलयोर्घातात् कुजस्यतु कलात्मनोः
दिग् (१०) ध्नान्त्य कर्ण विहतात् फललिप्ता युतोनितः । १२४ ।

उपर्युक्त नियम द्वारा मंगल का तृतीय और चतुर्थ फल की कलाओं का

गुणनकर उसमें १० से गुणा कर उसको अन्तिम कर्ण से घटाने में पर लिप्तादि में फल आता है ।

मन्द केन्द्रे ऽज तौल्यादौ सभवेत् पञ्चम-स्फुटः ।
पुनस्तृतीय केन्द्रेऽस्य कर्क्यादिस्थे तुरीयकम् । १२५ ।

पंचम स्फुट के लिये इस लिप्तादि फल को मन्द केन्द्र मेष आदि ६ राशियों में रहने पर चतुर्थ (स्फुट) ग्रह में जोड़ेगे, अन्य राशियों में मन्द केन्द्र रहने पर घटायेंगे । मंगल का तृतीय मन्द केन्द्र कर्क आदि राशियों में रहने पर -

फलं पञ्चेषु (५५) भक्ताप्तं मन्द कोटिज्यया हतम् ।
तूर्यकर्णहृतं लब्धं तुरीय फल वक्तृजे । १२६ ।

चतुर्थ फल को ५५ से घटाकर फल को मन्द कोटिज्या (तीसरे संस्कार की) से गुणा कर चतुर्थ कर्ण से घटाते हैं ।

पञ्चमे संस्कृतं चेत्स्यात् षष्ठः स्पष्ट तमस्तदा
भवेत् समन्द केन्द्रेतु नक्रादावेव पञ्चमः । १२७ ।

कलादि फल को पंचम ग्रह में संस्कार करने पर षष्ठ स्फुट ग्रह होता है । तीसरे संस्कृत ग्रह का मन्द केन्द्र मकर आदि ६ राशि में रहने पर षष्ठ संस्कार अनावश्यक है । ५ म ग्रह स्पष्ट ग्रह होगा)

परोच्च संस्कृताज् ज्ञस्य शीघ्रन्मध्यस्य शोधनात्
प्राक् फलार्द्धं पृथङ् न्यस्य फले मान्द्यार्द्ध मान्द्यके । १२८ ।

परोच्च संस्कृत बुध के शीघ्रोच्च से मध्यम बुध को घटाने से जो शीघ्र केन्द्र आता है, प्रथम शीघ्र फलार्द्ध को पृथक् रखकर उससे निकले ४ र्थ फलार्द्ध संस्कृत मध्यमबुध से मन्दफल लाकर ।

कृत्वा तृतीय द्विःस्थाप्य मध्य, शैध्यर्द्ध संगुणात्
अन्त्य शैघ्रार्द्ध (६८७) भक्ताप्तफलं त्र्यंशोनितं स्फुटम् । १२९ ।

उसे पुनः दो स्थान पर रखें, द्वितीय स्थान पर उसे शीघ्र फल के आधा से गुणन करें । गुणन फल के अलग रखे शीघ्र फलार्ध से गुणा कर चतुर्थ प्रकार से निकाले गये शीघ्र फलार्ध में भाग दें ।

मध्या तत्संस्कृतात् तुर्यं फलमानीयत द्विधा ।
अधतृतीय कोष्युत्थ फलध्ना त्रिज्य या हतात् । १३० ।

फल का तृतीयाश (१/३) प्रथम स्थान में रखे मन्दफल से अन्तर करने पर स्फुट मन्दफल होता है । इस स्फुट मन्द फल से मध्यम बुध का संस्कार कर उससे पुनः चतुर्थ शीघ्र फल निकाले और दो स्थान में रखे । द्वितीय स्थान के फल के तृतीय संस्कार के कोटिफल (मन्द को टिफत) से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग दें ।

लब्ध मुर्ध्वे धनमृणं क्रमात्कर्कि मृगादिगे ।
मन्द केन्द्र स्फुटं तस्यादथ भुक्तिर्विवच्यते । १३१ ।

• इस लब्धि को तृतीय मन्द केन्द्र में जोड़े या घटायें (मन्द केन्द्र कर्क आदि ६ राशि में रहने पर जोड़े अन्यथा घटायें) बुध के शीघ्र फल से संस्कृत तृतीय मन्द बुध से अतिस्फुट होता है । (सूर्य सिद्धान्त के स्फुट की तुलना में अधिक शुद्ध होता है ।)

पूर्वा पर दिन स्पष्ट ग्रहान्तर कलागतिः
स्फुटेति सम्मता किञ्चित् भेदगापि प्रतिक्षणम् । १३२ ।

अब ग्रहों की गति का विचार किया जाता है । यह गति प्रतिक्षण बदलती है लेकिन दो कमागत दिनों के दो स्फुट ग्रहों के अन्तर को उस दिन की स्फुट गति (उस दिन के लिए मध्यम गति) होती है ।

मन्दोच्च भुक्ति रहिता मध्य भुक्तिग्रहस्यया
मन्द केन्द्र गतिः सेयं मन्द कोटिफल ज्यया । १३३ ।

मन्दोच्च की दैनिक गति को ग्रह की मध्यम गति से घटाने से मन्द केन्द्र की दैनिक गति होती है । मन्द केन्द्र की दैनिक गति को मन्द कोटिफल ज्या से –

गुणिता त्रिज्यया (३४३८)भक्तामन्दस्फुटी फलंभवेत् ।
कर्क्यादि केन्द्र के तेनाष्य मकरादौ च वर्जिता । १३४ ।

गुणनकर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर दैनिक मन्द गति फल होता है । मन्द केन्द्र कर्क आदि ६ राशियों में रहने पर इसे ग्रह की मध्यम गति में जोड़ेगे, मकरादि ६ राशियों में रखने पर घटायेंगे ।

ग्रहस्य मध्यमा भुक्ति र्मन्द स्फुट गतिर्भवेत्
प्रातः सा संस्कृतादीनाता तदहोरात्र इष्यते । १३५ ।

प्राप्त फल ग्रह की मन्दस्फुट गति होता है । सूर्य उदय से अगले दिन सूर्योदय तक (अहोरात्र) में यह ग्रह की मन्दस्फुट गति होगी ।

प्रात रर्कोन शुभ्रांशो स्तिथ्यन्तो यः प्रसाध्यते ।
पुनस्तत्काल चन्द्रस्य गत्या तत्काल जातया । १३६ ।

सूर्योदय के समय स्पष्ट सूर्य और चन्द्र का अन्तर कर तिथि का जो शेषकाल निकलता है उससे तिथ्यन्त काल में चन्द्र की स्पष्ट गति निकाल उससे तिथ्यन्त का पुनः संस्कार करते हैं ।

संस्कार्य स्तत्र शुद्ध्यर्थं गतगम्य फलादयः
श्राद्धादि समय व्याप्ति सन्देह ग्रहणेस्तथा । १३७ ।

इस प्रकार तिथि के आदि और अन्त का संस्कार बहुत शुद्धि के लिए होता है । इसकी आवश्यकता तब है जब श्राद्ध या ग्रहण के समय में सन्देह हो ।

कर्मादि मिष्यतेऽन्यत्र व्यवहारेषु नैवतत् ।
तेषु ग्राह्यं स्फुटार्केन्द्वाः पूर्वापर विनान्तरम् । १३८ ।

अन्य सामान्य व्यवहार के काम के लिए इतना स्पष्ट की आवश्यकता नहीं है । उसके लिए स्फुट रवि तथा चन्द्र की दैनिक गति द्वारा ही सभी कर्म होंगे । यह औदयिक दैनिक गति होगी ।

शीघ्रोच्च भुक्ति र्मध्यो ना शीघ्र केन्द्र गतिर्मता
फलांशान् खांक (९०) भागेभ्यः शैघ्रान् संशोध्य शेषतः । १३९ ।

शीघ्रोच्च गति से ग्रह गति का अन्तर करने पर शीघ्र केन्द्र की गति होती हैं । शीघ्र फल को ९० डिग्री से घटाकर शेष फल से-

क्रमेज्या पिण्ड मानीय तेन द्राक् केन्द्र जा गतिम्
गुणितां चलकर्णाप्तां शीघ्रभुक्ते र्विशोधयेत् । १४० ।

शीघ्रफलकोटिज्या निकेलगी, उसे शीघ्र केन्द्र की दैनिक गति से गुणा कर चल कर्ण (शीघ्र कर्ण) से भाग दें । तथा फल को शीघ्रोच्च गति से घटायें ।

शीघ्र स्फुट गतिः शेषो यदि शुद्धि विलोमतः
सम्भवेदवशिष्टा तद् गति र्वक्रेति कथ्यते । १४१ ।

फल शीघ्र स्फुट गति होगी । यदि उक्त फल शीघ्रोच्च गति से अधिक हो तो शीघ्रोच्च गति से फल को घटायेंगे । शेष वक्रगति होगी ।

एवं मन्दस्फुटा शीघ्र स्फुटा भुक्तिर्द्विधोदिता
स्फुट भुक्ति रथोतारा खेचराणां विविच्यते । १४२ ।

इस प्रकार रवि और चन्द्र को छोड़ अन्य ५ तारा ग्रहों की दो प्रकार की गति है-मन्द स्फुट और शीघ्र स्फुट । रवि और चन्द्र की केवल मन्दस्फुट गति है । अब मंगल आदि तारा ग्रहों की स्फुट गति का विचार किया जाता है ।

शीघ्र स्फुट गतिर्मध्या धिका चेन्मध्य शोधिता
मध्योनाशोधिता मध्य भुक्ति र्यत्स्यात् तदन्तरम् । १४३ ।

शीघ्र स्फुट गति दैनिक मध्य गति से अधिक होने पर, शीघ्र स्फुट गति से दैनिक मध्यम गति घटाते हैं । दैनिक मध्य गति अधिक हो तो उससे शीघ्र स्फुट गति घटाते हैं ।

वक्रामध्यन्विता चापि शैघ्रमध्यान्तरराभियम् ।
तत्स्यादाद्यं गतिफलं तद र्ध्वे नैव मध्यमा । १४४ ।

शीघ्र स्फुट गति वक्र होने पर उसे दैनिक मध्यम गति में जोड़ते हैं । इन तीनों (अन्तर या योग) का नाम आद्यगति फल है जिसका आधा करते हैं ।

शीघ्र स्फुट गते र्मध्या धिकोनत्वे युतोनिता
वक्रत्वेऽप्युनिता तेन ऋज्वी स्यात् प्रथमागतिः । १४५ ।

प्रथम अवस्था (शीघ्र स्फुट गति अधिक) में इसे दैनिक मध्यम गति में जोड़ते हैं। द्वितीय (शीघ्र स्फुट गति कम) और तृतीय (शीघ्र स्फुट गति वक्र) अवस्था में इसे मध्यम गति से घटाते हैं। फल प्रथम गति है।

सम्भवेद् व्यस्त शुद्धि श्चेद् वक्रासा शेष सम्मिता
मन्द कोटि फलघ्नी सा त्रिज्या (३४३९) प्ता तत्फलार्द्धतः । १४६ ।

प्रथम गति ऋजु या वक्र होती है। इसे मन्दकोटिफल से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देकर लब्धि का आधा करते हैं।

युतोना कर्किनक्रादि केन्द्रयोः स्याद्वितीयका ।
कोटिफलघ्नी त्रिज्याप्ता सा तत्पूर्ण फलेन च । १४७ ।

मन्द केन्द्र कर्क आदि ६ राशियों में रहने पर इस आधे को प्रथम गति में जोड़ेगे और मकर आदि ६ राशियों में मन्द केन्द्र रहने पर घटायेंगे। फल द्वितीय गति होगा।

द्वितीय गति को मन्द कोटिफल से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर पूरी लब्धि से

संस्कृता मध्यमा प्राग्वत् तृतीया स्यात् तदुज्झिता
शैघ्रान्त्य केन्द्र भुक्तिः साफल खांका (९०) न्तरज्यया । १४८ ।

मध्यम गति का पहले की तरह संस्कार करने से तृतीय गति आती है। जो शीघ्र केन्द्र की गति है। इसको (तृतीय गति को) फल कोटिज्या (शीघ्र फल कोटिज्या) से गुणा कर

क्षुणा कर्णाप्त हीनाशु भुक्तिः स्फुट गति र्भवेत
वाम शुद्धौ तथा वक्रा स्फुट भुक्तिः तृतीय योः । १४९ ।

शीघ्र कर्ण से भाग देने पर लब्धि को शीघ्रोच्च गति से घटाने पर स्फुट गति होती है। इसमें विपरीत शुद्धि होने पर वक्र गति होगी।

अन्तरं स्याद् गति फलं तुरीयं प्रथमक्रमात्
कदाचित् कतये हौज्झि सौरोक्तं भुक्तिसाधनम् । १५० ।

स्फुटगति और तृतीय गति के अन्तर को चतुर्थ गति कहते हैं। सूर्य सिद्धान्त में गति साधन की विधि प्रायः ठीक नहीं होने के कारण उसे ग्रहण नहीं किया है।

कुजज्ञ शनि मन्दोच्च गतयत्सृजुवक्रितः ।
प्रथमायां द्वितीया यां शोध्यायो ज्याः क्रमेण च । १५१ ।

मंगल, बुध और शनि की मन्दोच्च गति मार्गी होने पर प्रथम गति और द्वितीय गति से यह घठाया जाता है और वक्री होने पर वह जोड़ा जाता है।

ततो द्वित्रिगतीसाध्ये प्राग्वत् कोटिर्फलाहतेः ।
ह्रस्यतुस्पष्ट शीघ्रोच्च भुक्तेर्मध्य तृतीयके। १५२ ।

इन संस्कृत प्रथम और द्वितीय गति से पूर्व नियम के अनुसार मन्द कोटिफल से गुणा कर द्वितीय और तृतीय गति का साधन होगा । नयी द्वितीय और तृतीय गति को स्फुट शीघ्रोच्च गति से घटाने पर प्रथम और चतुर्थ गति का साधन होगा ।

बुध के चतुर्थ गतिफल को दो स्थानों रखकर-

प्रोज्झ्यादि तुर्ये कर्तव्ये तत्र तुर्य गतेः फलम् ।
पृथक् संस्थाप्य तदधो मन्द कोटिफलाहतम् । १५३ ।

एक स्थान पर उसे मन्द कोटि फल से गुणा कर

त्रिज्याप्तं मन्द केन्द्रेऽस्य कर्क्या दौ मकरादिके ।
धनर्ण मुर्ध्वे क्रमशः कृत्वा तद् विस्फुटं भवेत् । १५४ ।

त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर लब्धि को चतुर्थ फल में योग (मन्द केन्द्र कर्क आदि) ६ राशि में रहने पर) या वियोग (मकरादि राशियों में रहने पर) करेंगे । इस प्रकार बुध का विशेष स्फुट गतिफल होगा ।

शीघ्रार्द्ध भुक्तौ वक्रायां यदि मान्द्यार्द्धजं फलम् ।
ऋणं तदातयोर्योगे धनं चेद् वियुते द्वयोः । १५५ ।

शीघ्रार्द्ध गति वक्र होने पर यदि मन्दार्द्ध गति फल ऋण है तो उनको जोड़ेगे । यदि मन्दार्द्ध गति फल धन को हो तो दोनों का अन्तर होगा ।

शेषो द्वितीय भुक्तिः स्याद् वक्रैवा सास्तु संस्कृतेः ।
यत्स्यान्मन्द फलं कर्कि न क्रादोः स्वर्ण मेवतत् । १५६ ।

फल वक्र गति है जिसे द्वितीय गति कहते हैं । इसके बाद जो मन्द गति फल आता है । उसे कर्क आदि ६ राशियों में रहने पर जोड़ते हैं तथा मकरादि ६ राशियों में रहने पर घटाते हैं ।

स्फुरन्ति गत्यानयने बहुधा कल्पना अपि
क्लिष्ट भावादिह व्यक्ता ग्रहसंचार युद्धयोः । १२७ ।

मध्यग्रह को स्फुट करने के लिए अनेक उपाय मेरे मन में आ रहे हैं पर वह अत्यन्त क्लिष्ट होने के कारण यहां नहीं दिया जा रहा है ।

वर्त्तमानैष दिनज स्फुट ग्रह कलान्तरम्
गृह्यतां भुक्ति रित्यर्क चन्द्रयोस्तु विशेषतः । १५८ ।

ग्रह एकराशि से अन्य राशि तथा ग्रह युद्ध होने के समय ग्रह की दैनिक स्पष्ट गति से काम होता है । सिर्फ रवि और चन्द्र के लिये अलग विधि है ।

गुणर्त्तुचन्द्रै (१६३) स्तर्केन्द्रै (१४६) रस सूर्यै (१२६) नगाष्टिभिः । (१६७)
शररुद्रै (११५) श्चतुर्थांशु केन्द्रांशै र्भूसुतादय । १५९ ।

मंगल का १६३) अंश , बुध का (१४६ अंश) गुरु का (१२६ अशं) शुक्र का (१६७ अंश) चतुर्थशीघ्र केन्द्रांश रहने पर-

सूर्य सिद्धान्ते-भवन्ति वक्रिणस्तैः स्वैः स्वैश्चक्राद्विशोधितैः
अवशिष्टांग तुल्यान्त्य केन्द्रैरुज्झ्यन्ति वक्रिताम् । इति । १६० ।

(सूर्य सिद्धान्त के मत से) वक्री होते हैं । ३६० अंश में इस चतुर्थ शीघ्र केन्द्रांश को घटाने पर जो बाकी अंश होता है, उतने अंश पर ग्रह पुनः मार्गी होंगे) ।

व्यवहारे च दृक् सिद्धा वुदयास्त मयो द्विधा
खे चराणां स्थूल सूक्ष्मौ कथ्यते प्रथमाविह । १६१ ।

ग्रहों का उदय और अस्त अंश दो प्रकार का है-व्यावहारिक को स्थूल तथा दृक् सिद्ध को सूक्ष्म कहते हैं ।

प्रतीच्या मन्त्य केन्द्रांशै रस्तं यान्ति कुजादयः
दृक् सुरै (३३२) गोऽर्थ शशि भी (१५९)
रसवेदाग्नि भिः (३४६) क्रमात् । १६२ ।

पश्चिम में अस्त होने के लिए निर्दिष्ट अन्तिम शीघ्र के केन्द्रांश हैं-
मंगल (३३२ अंश) बुध (१५९ अंश) गुरु (३४६ अंश)

कुभृद्घ्नै (१७७) स्त्र्यब्धिगुणैः
(३४३) प्राच्यमुद्यन्ति ते पुनः
द्विघ्नेन्द्रैः (२८) कुनखै (२०१) शक्रै (१४)
र्गुणा ष्ट विधुभि (१८३) र्घनै (१७) । १६३ ।

शुक्र (१७७ अंश) तथा शनि (३४३ अंश) । पूर्व में उदय होने के निर्दिष्ट अन्त्य शीघ्र केन्द्र के अंश हैं- मंगल (२८ अंश) बुध (२०१ अंश) गुरु (१४ अंश), शुक्र (१८३ अंश) तथा शनि (१७ अंश)

प्राच्यमस्तं ज्ञशुक्रौतु दिग्गुणै (३१०) रसनिर्जरैः (३३६)
प्रतीच्य मुदयं यातः खशरै- (५०) कृत बाहुभिः (२४) । १६४ ।

(अन्त्य शीघ्र केन्द्रांशं) बुध का (३१०) अंश तथा शुक्र का (३३६) अंश होने पर इनका पूर्व में अस्त होता है तथा बुध का (५० अंश) और शुक्र का २८ अंश होने पर पश्चिम में उदय होता है ।

रुद्रै (११) रुनोऽधिक श्चन्द्रः सूर्याद्यात्यस्त मुद् गमम् ।
अथस्व मन्द शीघ्राभ्यं पूर्वोक्त क्रमत श्चयुतः । १६५ ।

सूर्य से चन्द्रमा ११ अंश पीछे आने पर अस्त नहीं (दिखता है) होता है तथा उसे उदय होने के लिए सूर्य से ११ अंश आगे जाना पड़ता है । (तब दिखता है) । इसका पिछले (पूर्व और पश्चिम) उदय अस्त से कोई सम्बन्ध नहीं है यह

सूर्य की स्थिति के कारण लोप होता है ।

स्फुट ग्रहो मन्द चलैः फलैर्व्यस्त धनर्णकैः ।
मुहुः सुसंस्कृत स्थैर्यं प्राप्तो मध्य ग्रहो भवेत् । १६६ ।

स्फुट ग्रह से मध्यम ग्रह लाने के लिए उसमें मन्द और शीघ्र फल को विपरीत नियम से संस्कार करते हैं । फिर इस प्रकार मध्य ग्रह आने पर पूर्व क्रम से साधन होगा । दोनों मध्य ग्रहों में कोई अन्तर नहीं रहने पर ही सही मध्यम ग्रह होगा ।

ग्रहस्फुटी करण परिश्रमत्रसन्मनुष्यहृत् प्रभदपदं वदन्ति यत् ।
विलिख्यते मृदुचलखण्डजं फलं मयामलं चपल विवोधदं हि तत् । १६७ ।

ग्रह स्फुट का साधन विधि बहुत कठिन और लम्बा होने के कारण उसमें भूल होने की आशंका रहती है । अतः मैं सरल और जल्द स्फुट विधि के लिए शुद्ध खण्डफलों को लिख रहा हूँ ।

शून्यादिसिद्धा (२४) खण्ड संख्याधोऽधो लिखे न्मान्द्य फलं लवाद्यम् ।
तदन्तरं सर्व खगस्य कोटे फलं कुजादेश्च गते रवीन्द्वोः । १६८ ।

परिशिष्ट में शून्य से आरम्भ कर २४ खण्ड तक मन्द और शीघ्र फलों की तालिका है । इसमें सभी ग्रहों का कोटिफल, मंगल आदि ग्रहों का गतिफल, रविचन्द्र का गतिफल ।

खांद्यष्ट वेदा (४८) वधि खण्ड संख्या तले तथा शैघ्र फलं लवाद्यम् ।
खण्डान्तजं खण्ड फलान्तरोत्थ लिप्तादय स्तच्चल कर्ण लिप्ताः । १६९ ।

४८ खण्ड का शीघ्र फल, खण्ड फलान्तर, शीघ्र कर्ण लिप्ता

पश्चात् फलाद्यस्य विलेखनीया च क्रप्रवेशापगम स्वभागाः ।
द्राक् केन्द्रजाश्चास्त मयोद यांशा कुंजज्ञ देवेज्य सितासिता नाम् । १७० ।

चक्र प्रवेश और क्रान्ति के अंश आदि, उदय और अस्त काल का शीघ्र केन्द्रांश (मंगल, बुध, गुरु, शुक्र शनि के लिए) दिये गये हैं ।

ग्रहोनमन्दोच्च भुजालयांश लिप्ताविलिप्ताः पृथगष्टनिघ्नाः ।
अन्ताद्धृताः खर्तुभि (६०) रभ्रषड्भि (६०) र्वियद् गुणै (३०)
स्तत्फलसंयुताश्च । १७१ ।

मन्द केन्द्र भुजांश कला विकलाआदि को अलग अलग ८, से गुणा कर विकला आदि को ६०, ६० से भाग देकर अंश में जोड़ अंश पर्यन्त आने पर उसमें ३० से भाग देकर–

तद्राशि संख्यात्थफलं गताख्यं भागादयः खण्ड फलान्तरघ्नाः ।
अन्त्याखषड् (६०) भक्त फलस्य मूल भागाः खरामै (३०)
र्विहृता फलंतत् । १७२ ।

राशि होगी । राशि तुल्य फल गत फल होगा । इसके अतिरिक्त जो अंश,

कला, विकला आदि है उनको खण्ड फलान्तर से गुणा कर उसे ६० से भाग देंगे। फल को अंश आदि में मिलाकर उसे ३० से भाग देंगे।

शिष्टाद् विनिघ्नाः फल युग्म तारूयं
मान्द्यफलं प्राग्वदिदं धनर्णम्।
खण्डान्तरघ्नी मृदु केन्द्र भुक्ति स्तत्वाश्विव
(२२५) भक्ता फलमिष्ट भुक्तै। १७३।

शेष को २ से गुणाकर फल को गत मन्दफल खण्ड में जोड़े। यह पूर्वनियम अनुसार योग या वियोग होगा। परिशिष्ट के खण्डफलों से इसी प्रकार ग्रह का अभीष्ट मन्दफल होगा। मन्द केन्द्र गति को खण्ड फलान्तर से गुणाकर २२५ से भाग देने से दो खण्डों के बीच का मन्द फल गतिफल हैं।

स्यात् खण्ड मध्ये ऽथ पुरः परोच्च खण्डोऽत्थ लिप्ता फल मन्तरञ्च।
लेरूयं गतिश्चस्फुट मेव मेतत् स्वर्णं कुजज्ञार्क मृदौज्ञ शीघ्रे। १७४।

परिशिष्ट में २४ खण्ड की सारणी में पहले मंगल, बुध और शनि का परोच्च खण्ड फल लिखा गया है। खण्डफलान्तर और खण्डान्त उच्च गति भी लिखा गया है। इस खण्ड फल से पूर्व नियम अनुसार परोच्च फल निकाल कर उसको मंगल, बुध और शनि के मन्द केन्द्र में और बुध शीघ्रोच्च में जोड़ने या घटाने से (पूर्व नियम अनुसार) परोच्च संस्कृत स्फुट गति होती है।

शीघ्राद् ग्रहोनाद् गृहषट् कमाद्यं केन्द्रं गतं गम्यपथान्त्य षट्कम्।
तद्राशि भागादिक मष्ट निघ्नं प्राग्वद्धृतं राशिमितास्तु खण्डाः। १७५।

शीघ्रखण्ड सारणी में भी १८० डिग्री को ४८ खण्डों में बांटा गया है जो तीन राशि के २४ खण्डों में (३°४५') के बराबर है।

शीघ्रोच्च से ग्रह (मन्द स्फुट) को घटाने से शीघ्र केन्द्र होता है। शीघ्र केन्द्र मेषादि ६ राशियों में होने से गत तथा तुला आदि ६ राशि में होने से उसे घटाने पर गम्य कहलाता है। केन्द्र के राशि भाग आदि को आठ से गुणा कर पूर्ववत् ६० से भाग देने पर खण्ड संख्या आती है।

यातास्तदुत्थं फलं मंशकादेः खण्डान्तरघ्नात् खगुणा (३०) प्रयुक्तम्
वर्द्धिष्य माणे फल एव कार्यं तत्सीय माणे पतितं गतारूयात्। १७६।

गत खण्डों के खण्ड फल (सारणी द्वारा) निकाल कर फल बढ़ने के समय गत और गम्य खण्ड के अन्तर से अवशेष खण्ड को गुणा कर ३० से भाग देंगे और लब्धि को जोड़ेगे फल ह्रास होने के समय अन्तर होगा। यह खण्ड फल ही शीघ्र फल होगा।

स्फुटंफलं शैघ्र्य मिदं धनर्णं केन्द्रस्य पूर्वार्द्ध परार्द्धयोः स्यात्।
शैघ्र्यार्द्ध मान्द्यार्द्ध समग्र मान्द्य शैघ्र्यै फलै प्राग्वदिहं क्रियास्युः। १७७।

प्रथम ६ राशि में शीघ्र केन्द्र होने से यह जोड़ा जायेगा द्वितीय ६ राशि में

घटाया जायेगा । इस प्रकार शीघ्रार्द्ध, मन्दार्द्ध, समग्र मन्द समग्र शीघ्र फल द्वारा संस्कृत होने पर मध्यम ग्रह स्फुट होगा ।

सूर्येन्दु भौम परिधिक्षय वृद्धि भेदान्मान्द्यं
फलं चल फल प्रतिमं विलेख्यम् ।
खण्डैर्गजाब्धि (४८) भिरिदं निज वर्द्धमान
क्षीणत्वतः स्फुटमपि हनवक्रितास्मात् । १७८ ।

रवि, चन्द्र और मंगल की मन्द परिधि वृत्त पाद में पृथक् पृथक् होने से शीघ्र फल की तरह मन्द फल भी ४८ खण्डों में लिखा गया है । गत और एष्य दोनों खण्डों के बीच का फल लाने के लिए पिछले श्लोक की विधि अनुसार कार्य करेंगे । खण्ड बढ़ते समय वह पिछले खण्ड फल में जोड़ा जायेगा । कम होते समय अन्तर होगा । मन्दफल में वक्रगति नहीं होती ।

भौमस्य यन्मृदुफलं परिधिक्रमोत्थं द्वाविंशत
(२२) स्तदिहसप्तसुखण्डकेषु
साध्यं न किन्तु भवन त्रयजं (११।२।४७)
विलेख्यं तत्तक्षयर्द्विविषमत्वनिवृप्ति हेतोः । १७९ ।

मंगल का मन्दफल लाने के लिए २२ और २८ वें खण्ड के बीच गणित करते की जरूरत नहीं है । इन खण्डों में २८ वां खण्डफल ११।२।४७ लेकर कार्य करना है क्योंकि इनमें खण्डफलों का कोई परिवर्तन नहीं होता ।

द्राक् केन्द्र जा खण्ड फलान्तर घ्नी
भुक्ति र्हता तत्वयमैः (२२५) फलस्य
अर्द्धे न युक्तोनित मध्य
भुक्ति र्भवेत् फलाद्या फलवृद्धि हान्योः । १८० ।

शीघ्र केन्द्र गति को खण्ड फल से घटाकर २२५ से भाग दें । शीघ्र फल वृद्धि पाते समय या ह्रास होते समय इस फल के आधे को मध्यगति में जोड़े या घटायें । यह प्रथम गति होगी ।

द्वितीय मन्दोत्थफ लान्तरघ्नी तत्वाश्वि (२२५) हल्ल ब्ध दलोन युक्ता
सा नक्र कर्क्यादिक मन्द केन्द्रे द्वितीय भुक्तिः पुन रेव मेषा । १८१ ।

प्रथम गति को मन्द खण्ड फलान्तर से गुणन कर (प्रथम ग्रह सम्बन्धी), २२५ से भाग दे । लब्धि के आधा को प्रथम गति में योग (मन्द केन्द्र कर्क आदि ६ राशि में) या वियोग (तुला आदि ६ राशि में) करें । फल द्वितीय गति होगी ।

फलान्तरघ्नीषु भुजाक्षि (२२५) भक्ता तल्लब्धहीनान्वित मध्य भुक्तिः
भवेत्तृतीया च तदुज्झिताशु भुक्ति र्भवेत् केन्द्रगतिस्तुरीया । १८५ ।

द्वितीय गति को २ य ग्रह के मन्दखण्ड फलान्तर से गुणा कर २२५ से भाग देकर फल को द्वितीय गति में जोड़े या घटाये (मन्द केन्द्र कर्कादि या तुलादि में

रहने पर) फल तृतीय गति होगी। तृतीय गति को शीघ्रोच्च गति से घटाने पर चतुर्थ शीघ्र केन्द्र गति होगी।

सातुर्य खण्डान्तर संगुणेषु पक्षाक्षि (२२५) ह्रल्लब्ध युतोनिता चेत्
स्फुटा फलार्द्विष ययोः स्व खण्डमध्ये ष्वियं स्यादनृजुः पुरेव। १८३।

४र्थ शीघ्र केन्द्र के ३ य (तृतीय) ग्रह के शीघ्र खण्ड फलान्तर से गुणा कर २२५ से भाग देने कर फल को ३ य गति में जोड़े या घटायें (कर्कादि या मकरादि ६ राशियों) में तो स्पष्ट दैनिक ग्रह गति प्राप्त होगी। फल ऋणात्मक होने से ग्रह गति को वक्री कहा जायेगा।

कुजज्ञ सौरि प्रथम द्वितीय गत्यो धनर्णं क्रमशो विधायः
वक्रर्जु मन्दोच्च गतिं द्वितीय तृतीय भुक्तिः तत एव साध्ये। १८४।

मंगल, बुध और शनि के प्रथम, तृतीय प्रकार की गति में वक्र मन्दोच्च गति को जोड़ा जाता है और मार्गी मन्दोच्च गति को घटा कर केन्द्र गति निकाली जाती है। इससे मन्दगति फल निकाल कर द्वितीय और तृतीय गति का साधन होता है।

मन्दर्जु भुक्तेः प्रथमाल्प काचेत् विलोम शुद्धे रवशेषतः स्यात्।
द्वितीय भुक्तेश्च तथा तृतीय भुक्तेः फलं किन्तु धनर्णवामम्। १८५।

मार्गी मन्दोच्च गति से प्रथम गति कम करने प्रथम गति मन्दोच्च से घटायी जायेगी। शेष से द्वितीय गति साधन तथा इसी प्रकार तृतीय रातिफल साधन होगा। गतिफल का संस्कार विपरीत तरीके से अर्थात् तुलादिकेन्द्र में घटाते हैं।

एवं विधे सम्भवत स्त्रयाणां द्वितीयतात्तिर्यगतो परोच्चात्।
वक्रादिमा मन्द विदोस्त नोश्चेद् वक्रोच्चभुक्तेः पतितावशेषात्। १८६।

इस प्रकार मंगल, बुध और शनि इन तीन ग्रहों की द्वितीय और तृतीय गति निकाली जाती है।

साध्या द्वितीया थ ततोऽधिकाचेत्तयोज्झितां मान्द्यमतो विलोमम्।
वक्रादिभुक्ता वृजु मन्द भुक्ति योंज्या ततो मान्द्य फलंञ्च वाम्यात्। १८७।

बुध और शनि की प्रथम वक्र गति मन्दोच्च गति से कम होने पर इस आद्य गति को बक्र मन्दोच्च गति से घटाकर द्वितीय गति निकाली जाती है। वक्र प्रथम गति वक्र मन्दोच्च गति से अधिक होने पर वक्रमन्दोच्च गति घटाते हैं। शेष मन्द गतिफल को पूर्व नियम के अनुसार विपरीत क्रम से जोड़े या घटायेंगे। (वक्र प्रथम गति में मार्गी मन्दोच्च जोड़कर उससे विपरीत क्रम से जोड़घटाकर मन्दगतिफलं का साधन होगा)।

क्वचित्फलं नष्ट मविस्फुटं चेत्तत्खण्ड संख्यार्थ भुजाक्षि (२२५) निघ्नी
कलात्मकं केन्द्र मतः फलाद्यं दोर्ज्या दिनातीय विलेखनीयम्। १८८।

परिशिष्ट की खण्ड फल सारिणी में यदि किसी स्थान का खण्ड फल मिट गया है या अस्पष्ट है, तो उस खण्ड संख्या को २२५ से गुणा कर कलात्मक केन्द्र निकालते हैं। इस केन्द्र का भुज और उसकी भुजज्या निकाल उस स्थान पर रखते हैं।

स्फुटार्यमस्वान्तर भाग केषुशुक्रेज्य
चन्द्रज्ञय मारकाणाम्।
अस्तं नवा (९) शा (१०) शिव (११)
सूर्य (१२) शक्र (१४) भूपेषु (१६) वक्रस्य भृगोर्नगेषु (७)। १८७।

सूर्य से निकटता के कारण ग्रहों का उदय और अस्त यहां दिया जाता है। शुक्र का (९) वृहस्पति का (१०) चन्द्र का (११) बुध का (१२) शनि का (१४) मंगल का (१६) वक्री शुक्र का (७) अंश।

एतेंऽशकाः खाभ्रगजेन्दु (१८००) निघ्नाः प्राक् सायनार्कोदय मानभक्ताः
पश्चात्सषड् भायन संस्कृतार्क लग्न प्रमाण सुहृताः स्फुटाःस्युः। १९०।

इन अंशों को १८०० से गुणा कर सायन अर्कोदय परिणाम से घटायेंगे। तो क्षेत्रांश होगा (पश्चिम में यह क्षेत्रांश निकालने के लिए उसमें ६ राशि जोड़ेगे। फिर उस सायन रवि में ६ राशि जोड़कर उसका उदयांश निकाल उससे पश्चिम का क्षेत्रांश घटायेंगे।

एतै रवेः प्रागुदयं परास्तं न्यूनाधिकांयान्त कुजेज्य मन्दाः।
व क्रौज्ञ शुक्रावथ ताव वक्रौपूर्वास्त पश्चादुदयौ विधुश्च। १९१।

मंगल, वृहस्पति और शनि के कालांश रवि से कम रहने पर सूर्योदय से पहले वे पूर्व दिशा में उदय होते हैं। कालांश अधिक होने पर ये पश्चिम में अस्त होते हैं। वक्री बुध और शुक्र रवि से यह कालांश कम होने पर पूर्व में अस्त और पूर्व रवि से कालांश अधिक होने पर पश्चिम में उदय होता है।

पूर्वोक्त केन्द्रांश दिने ग्रहार्कान्तरैस्तदंशान्तर लिप्ति का द्याः।
गत्यान्तराप्ताश्च फलं दिवादि स्वर्णं भवेद्वक्रिणिभुक्ति युत्य। १९१।

पूर्वोक्त कालाशो से ग्रह किसी दिन कितने दिनों से अस्त या उदय हुआ है और कितने दिन तक उदय या अस्त होगा यह जानने के लिए ग्रह और रवि का अन्तर निकाल कर उसे उन दोनों के गति अन्तर से भाग देंगे ले अन्तर दिन आयेगा। ग्रह वक्री होने पर दोनों के गति के योग से भाग दिया जायेगा।

ग्रहार्क गत्योस्तनुभूरि भावं ज्ञात्वा ततो भावि गतौ च कालौ।
वक्तव्य तत् खेटयुति प्रकाशादुक्तांश तुल्यत्वम वैतुमिष्टम्। १९३।

अन्तर दिन को इष्ट दिन से घटाने या जोड़ने पर कितने दिनों से उदय अस्त हो रहा है या होगा यह मालूम होगा। ग्रह और रवि गति में कौन कम या ज्यादा है इसका विचार करने से आगामी या गत समय का निर्णय होगा।

इती रितै रस्त मयोद यांशैः सिद्धाः स्वकालाः खलुलेखनीयः
दृक् कर्म सिद्धास्त मयोदयानां सुदुष्करत्वात् व्यवहारि पञ्चयाम् । १९४ ।

व्यावहारिक पञ्चिका में यह उदय और अस्त अंश सन्धि समय लिखना होगा । क्योंकि दृक्कर्म आदि कर यह समय मालूम करना बहुत कठिन है ।

यथात्रलिखितानि खण्डजफलान्तराणि क्रमात्
तथा गति फलान्तरं श्रुतिकलान्तरं साध्यताम् ।
चल श्रुति गति स्फुटी करण मात्मखण्डान्तरै
पुरोदित फलोच्चयानयनवद् विधेयं बुधैः । १९५ ।

जिस प्रकार खण्डफल, खण्ड फलान्तर आदि परिशिष्ट में लिखा हुआ है उसी प्रकार गतिफल का अन्तर और कर्णकला का अन्तर निकालकर भी लिखना होगा । शीघ्र कर्ण, गति, स्फुटीकरण आदि अभीष्ट स्थान से पहले दिये गये फलों से निकलेगा । यह बात आसानी से समझी जा सकती है ।

कार्यः सूर्य निशेषयो प्रतिदिनं विस्पष्ट भावः पुनः
पक्षे पक्ष दले बुधस्य विहितोऽन्त्येषान्तु पक्षान्ततः ।
मध्ये मध्य इह व्रजेद् यदि खगः सद् मर्ष वक्रार्जवा
न्यस्तञ्चाप्युदयं तदेष्ट दिनजः कार्योऽसकृद् भुक्तिभिः । १९६ ।

सूर्य और चन्द्रमा की स्फुटता प्रतिदिन सूर्योदय के समय करनी चाहिये । पक्षान्त (अर्थात् अमा और पूर्णान्त में) सभी ग्रहों की स्फुटता करनी होगी । बुध को पक्षान्त और पक्षार्द्ध में भी स्फुट करना चाहिये । ग्रह वक्र, वक्र से मार्गी होने अथवा राश्यन्तर नक्षत्रान्तर या वक्र सरल गति होते समय या उदय और अस्त होने के समय उसके असकृत् (स्थूल) भाव से स्पष्ट करना चाहिये ।

सञ्चार ध्रुवलिप्तिका भपदका (२००) भाना (८००) गृहाणा (१८००) ञ्च या
स्तत्खेटान्तर लिप्ति का गति कला भक्ता दिनाद्यं फलं
खेटे तद्ध्रुवतः पुरः परगते कालादृत्य स्वं क्रियात्
काले चक्र गतौ धनर्ण मितितत्सञ्चार कालो भवेत् । १९७ ।

एक नक्षत्र पाद में २०० कला या लिप्ता, नक्षत्र में (८००) तथा राशि में (१८००) लिप्ता में होती है । कोई ग्रह किसी नक्षत्र, उसके पाद या राशि में कब जायेगा या कितने दिन से हैं । यह जानने के लिये उस ग्रह की राशि तथा ईष्ट राशि, नक्षत्र या पाद का अन्तर कर उसे ग्रह की स्फुट गति कला से भाग देने से दिन आदि फल आयेगा । यदि नक्षत्र आदि से ग्रह पूर्व में है तो उतने दिन में ग्रह उसमें जायेगा, यदि ग्रह बाद में है तो इतने दिनों से उस नक्षत्र आदि में है । ग्रह वक्र होने पर दिन आदि जोड़ने घटाने की उल्टी क्रिया होगी ।

पक्षान्तद्वय खेचरान्तर कलान्तर स्वद् घस्रसंख्या हता-
स्तत्तद् भुक्ति कला फलं गति युग स्वल्पान्तरत्वे. पुनः ।

भूयस्यन्तर के क्षय द्विवशतो भुक्त्या नुपातोत्थया
खेटर्क्ष ध्रुव जान्तरोद्धृति वशाद् यातैष्य कालेऽसकृत् । १९८ ।

दो क्रमागत पक्षान्तों के समय ग्रह स्फुट के अन्तर को दूसरे पक्ष के गत दिनों से भाग देने पर ग्रह की दैनिक स्पष्ट गति आती है । दो क्रमागत दिनों के स्पष्ट ग्रहों के अन्तर को व्यवहार उपयोगी स्पष्ट गति कहा जाता है । दोनों में बहुत कम अन्तर होता है अतः पक्षान्त दैनिक गति लेने से कोई अन्तर नहीं होता । यदि दोनों प्रकार की दैनिक गतियों में अन्तर हो तो पहले की रीति से स्पष्ट गति निकालते हैं । ग्रह की दो स्पष्ट राशि आदि को अन्तर कर उसकी दैनिक स्पष्ट गति से भाग देने पर फल दिन आदि आता है ।

पक्ष द्वन्द्व जतुर्य केन्द्र विवरात्तद् युक्ति लिप्ता दिनै
रानीया भिर वक्र वक्र विलयो द्यानान्त्य केन्द्र ध्रुवात् ।
पक्षान्त ग्रह तुर्य केन्द्र वियु ताद्याः स्युस्तदन्तंर्गता
लिप्तास्ताविहृताः फलैर्दिन मुखे लैख्यास्त्व वक्रादयः । १९९ ।

प्रति पक्षान्तर में चतुर्थ शीघ्र केन्द्र गणित किया जाता है । ग्रह का मार्गी और उदय होना तथा अस्त केन्द्रांश परिशिष्ट में लिखा गया है यह कहा जा चुका शीघ्र केन्द्र अन्तर को पक्ष के अन्तर से भाग देने से है । पक्ष मध्य में शीघ्र केन्द्र कब किस स्थान में गया यह जानने के लिये, दोनों शीघ्र केन्द्र की दैनिक गति आयेगी । इस गति में पक्षान्त शीघ्र केन्द्र और आपेक्षिक शीघ्र केन्द्र अवस्था के अन्तर से भाग देने पर उसका दिन आदि आयेगा ।

भक्ताश्चक्रकलाः (२१,६००) ख वह्निभि (३०) रथो सप्ताक्षिभि
(२७) र्भानुभि (१२) र्भूभृद् बाहुभि (२७) रम्बरर्त्तुभि (६०)
विरतालब्धाः स्वभागा क्रमात्
तिथ्युक्षैन्दवराशि योग करणानां स्युः पक्षाद्रयः (७२०)
खाभ्राष्टौ (८००) ख खकुञ्जर क्षितिमिताः (१८००)
खाभ्राष्ट (८००) खाङ् गाग्नयः (३६०) । २०० ।

(२१,६००) कला को क्रमानुसार ३०,२७,१२,२७ और ६० से भाग देने पर तिथि, नक्षत्र, राशि, योग तथा करण के भोग का परिणाण आता है । (क्रमशः ७२०, ८००, १८००, ८००, ३६० ।

स्पष्टा र्कोनित विस्फुटे न्दुकलिका भोगेन (७२०) भक्तास्तिथे ।
र्लब्धाःस्युस्थितयोगताः प्रतिपदो दर्शान्त मासादितः ।
लब्धाः पञ्चदशाधिका यदितदा पञ्चेन्दु (१५) शेषाश्चताः
पक्षेश्यामलके स्युरेक सहिताश्चे द्व र्तमानास्तदा । २०१ ।

स्पष्ट चन्द्र की राशि आदि से स्पष्ट सूर्य की राशि आदि घटा कर कला बनाकर ७२० से भाग देने पर गत तिथि की संख्या आयेगी । लब्ध संख्या १५

से अधिक होने पर १५ का अन्तर करेंगे। बाकी संख्या कृष्ण पक्ष के बीते दिनों की संख्या होगी। उसमें १ मिलाने पर वर्तमान तिथि संख्या होगी।

तच्छेषा गतगम्य का विकलिता श्चन्द्रार्क गत्यन्तरे
णाप्ताःस्यु क्रमशो गतैष्य घटिकाः साकं स्वषष्ट्यंशकैः
तिथ्यन्तान्तिक काल चालित विधोस्त त्काल भुक्त्या पुनः
साध्याः संशयितेष्ट कर्मसमयेऽन्यत्रद्व्य हेन्द्वन्तरा। २०२।

वर्तमान तिथि के बारे में दण्ड (गत काल) तथा बाकी (गम्य) दण्ड निकालने के लिए, तिथि निकालने में चन्द्र रवि कलादि अंतर को ७२० से भाग दे अवशेष का विकला बनायेंगे (६० से गुणा कर)। इससे गत काल निकलेगा। गम्यकाल निकालने के लिए ७२० से अवशेष घटाकर उसे विकला बनायेंगे। वर्तमान दिन और आगामी दिन के स्पष्ट रवि और स्पष्ट चन्द्र से उनकी आज की दैनिक गति निकालेंगे, चन्द्र गति तथा रवि गति (दैनिक) के अन्तर से शेष, विकला (या ७२० से अन्तर) में भाग देंगे। फल गत या गम्य तिथि का दण्ड आदि में मान होगा। यह पूर्णठीक नहीं होने पर भी प्रायः ठीक है (एक तिथि की गति के बदले सावन दिन की गति का प्रयोग किया गया है। धर्म आदि कार्यों के लिये परिसूक्ष्म तिथि निकालना हो तो प्रतिदिन अन्तर में रवि और चन्द्र और स्फुट कर उनकी एक तिथि की गति को अन्तर से तिथि स्पष्ट किया जायेगा।

स्पष्टेन्दोः कलिका भभोग (८००) विहृता लब्धश्च दस्रादयः
स्ताराः सुर्विगता गतैष्य कलिकाः षष्ट्याहता भाजिताः।
गत्याचन्द्रमसः फलानि घटिकास्तद् वद् विधो लिप्तिका-
स्तद् भोगाप्त (१८००) गत क्रियादि निलया नाड्योऽन्य भुक्त्या तथा। २०३।

स्फुट चन्द्र की कला आदि को नक्षत्र कला (८००) से भाग देने पर लब्ध अश्विनी आदि नक्षत्र संख्या आयेगी। गत नक्षत्र संख्या लब्धि में १ जोड़ने पर वर्तमान नक्षत्र संख्या आयेगी। अवशेष नक्षत्र का गत अंश और उसे ८०० (भाजक) से घटाने पर गम्य आयेगी। उसने ६० से गुणा कर विकला बनायेंगे तथा चन्द्र दैनिक गति से भाग देने तो तिथि का गत और गम्य दण्ड आदि आयेगा। स्फुट चन्द्र की कला आदि को राशि की भोग कला १८०० से भाग देने पर लब्धि पूर्ण राशि संख्या आयेगी। लब्धि में १ जोड़ने पर वर्तमान राशि संख्या होगी (मेष आदि)। शेष वर्तमान राशि का गत अंश तथा १८०० से उसे घटाने पर भोग्य अंश होगा। गत या भोग्य अंश को ६० से गुणा कर विकला बनायेंगे। और उसे स्पष्ट चन्द्र की दैनिक गति से भाग देंगे तो वर्तमान राशि का गत दण्ड या गम्य दण्ड आदि आयेगा।

स्पष्टेन्द्वर्क युतिस्तु चक्र वियुक्ता चक्रा (२१,६००) धिकाचेद्धता
भुक्त्या योग जया (८००) फलानित इताः शेषागतैष्याः कलाः।
षष्टि घ्ना रवि चन्द्र भुक्तियुति हल्लब्धाश्च नाड् यादयः

शून्यांगाग्नि (३६०) कलायु तार्क वियुताः स्पष्टेन्दु लिप्ताहृताः । २०४ ।

स्फुट चन्द्र और स्फुट रवि को जोड़कर यदि वह १२ राशि से अधिक हो तो उससे १२ राशि घटाकर उसकी कला आदि में योग की भोग्य कला (८००) से भाग देते हैं । लब्धि विष्कुम्भ आदि गतयोग संख्या होगी । लब्धि में १ जोड़ने से वर्तमान संख्या होगी । शेष गतकला तथा भाजक में (८००) में शेष घटाने से पर गम्य कला होगी । गत या गम्य कला में ६० से गुणा कर रवि और चन्द्र गति के योग से भाग देने पर वर्तमान योग के गत और गम्य दण्डादि आयेंगे ।

स्पष्ट रवि की कला में ३६० कला जोड़कर स्फुट चन्द्र की कला से घटायें ।

भुक्तैव करणस्य (३६०) तानि तिथिवत् तन्नाड़िका द्यामताः
सप्तानां ववतः शितः प्रतिपदः प्रान्तार्द्धतः संस्थितः ।
तिथ्यर्द्धेष्वपि कृष्ण भूतदलतः प्रान्तात्सिता देर्दलम्
यावत् शाकुनकं चतुष्पदमथो नागञ्चकिंस्तुघ्नकम् । २०५ ।

शेष में एक करण की भोग्य कला (३६०) से भाग दें । लब्धि को ७ से भाग देने पर शेष गत करण संख्या और शेष में १ जोड़ने पर वर्तमान करण संख्या होगी । करण का आरम्भ शुक्ल प्रतिपदा उत्तरार्द्ध में वव आदि से प्रारम्भ होता है तथा कुल ७ करण बीतने पर पुनः प्रथम आरम्भ होता है । चान्द्रमास के ३० तिथि में ६० करण होते हैं । जिसमें ७ करणों का ८ बार चक्र कृष्ण चतुर्दशी के प्रथमार्द्ध में पूर्ण होता है । (५६ करण) शेष ४ करण कृष्ण चतुर्दशी शेषार्द्ध से शुक्ल प्रतिपदा प्रथमार्द्ध तक स्थिर करण हैं जिनके नाम हैं- शकुनि, नाग, चतुष्पद तथा किंस्तुभ ।

नाड़ी हराद्यदधिकागत गम्यलिप्ता स्तद्
वृद्धि मृच्छति तिथि प्रमुखांगजातम् ।
भोगानिजा विकलिताः स्वघटी हराप्ताः
तत्तत्प्रमाण घटिकादि फलंक्षयादौ । २०६ ।

सूर्योदय के समय वर्तमान तिथि की कुल (गत और गम्य कला = ७२०) यदि चन्द्र और रवि को दैनिक गति के अन्तर से अधिक हो (गति अन्तर ७२० कला से कम हो) । तो तिथि वृद्धि होती है (अर्थात् ६० दण्ड से अधिक होगी) तिथि भोग्य विकला (७२० x ६०) में चन्द्र रवि गति अन्तर (हार) से भाग देने पर तिथि को भोग्य फल घटिकादि में आता है । यह ६० से अधिक पर तिथि वृद्धि, कम होने पर तिथि क्षय होता है ।

मासोऽसंक्रम एन्दवस्तु मलिनः सोऽन्तर्भवेदुत्तरे
संक्रान्ति द्वययुक् क्षयो यदि कदातत् पार्श्वयोर्द्धौ मलौ ।
स्यातां मास चतुष्टयान्तर न योः संसर्पता मादिमः ।
क्षोणोऽहंस्पतिरन्तितो मल इमे त्याज्या विवाहादिषु । २०७ ।

चान्द्र मास (एक अमान्त से अगले अमान्त तक) में रवि संक्रान्ति (रवि एक से दूसरी में जाने से) से शुद्ध चान्द्र मास होता है । रवि संक्रान्ति नहीं होने पर

चान्द्रमास मलमास कहा जाता है । आगामी अमान्त चान्द्रमास के अन्तर्गत माना जाता है । एक चान्द्र मास में दो रवि संक्रान्ति होने से उसे क्षयमास कहते हैं । क्षय मास के पहले और बाद में चार मास के भीतर एक एक मलमास यानी उस वर्ष दो मलमास होता है । पूर्व मलमास संसर्प, क्षयमास को अंहस्पति तथा द्वितीय मलमास को मल कहा गया है । दोनों मल और क्षय मास विवाह आदि शुभ कार्यों के लिए वर्जित हैं ।

> श्रौत स्मार्तक मासि काब्दिक विधौ संसर्पका हस्पती
> शुद्धौनात्र मलिम्लुचः सचमला तीतां ब्दिके गृह्यते ।
> कर्मारम्भ समाप्ति मध्य उपरागादौ तथा दुर्लभे
> योगे चा गति के व्रते जनु रमा श्राद्धेषु पूजादिषु । २०८ ।

वेद और स्मृति विहित यज्ञ आदि कर्म, मासिक और वार्षिक श्राद्ध आदि संसर्प और अंहस्पति इन दो मासों में हो सकता है । लेकिन दूसरे मलमास में नहीं होगा । मृतक के वार्षिक श्राद्ध तथा कर्म के आरम्भ और समाप्ति के बीच आने से उसकी गणना (एक मास के रूप में) में जाती है । मलमास में कर्मारम्भ या समाप्ति नहीं होती, पहले से आरम्भ काम होता है । मलमास में शुभकाम वर्जित होने पर ये काम किये जाते हैं -

ग्रहण काल का स्नान, दान आदि, दुर्लभ योगों का पालन, अगतिक व्रत (काम्य कर्म, अभिषेक आदि, शान्ति और पुष्टि कर्म) जात कर्म, अमाश्राद्ध तथा इन्दु पूजा आदि ।

> प्रायः स्यात् क्षयमासतः पुनरसौ वर्षैः कुवेदेन्दुभिः (१४१)
> किं वा द्वि द्वि कुभिः (१२२) क्वचित् नवकुभि (१९) वर्षै तृतीये मलः
> युग्मस्तेऽर्क मृदौ हि संप्रति तपस्याद्या नवस्युर्मलाः
> क्षीणाउर्जमुखास्त्रयो न तु तपा वृद्धिक्षयावृच्छति । २०९ ।

एक क्षय मास के १९-१४१-१२२ वर्ष के बाद पुनः क्षय मास पड़ता है । मल या अधिमास प्रायः प्रति तृतीय वर्ष में पड़ता है । अभी (ग्रन्थ रचना के समय १८६८ ई.) सूर्य का मन्दोच्च मिथुन में रहने के कारण फाल्गुन से आरम्भ कर ९ मास में मलमास हो सकता है । कार्तिक को आरम्भ कर तीन मास क्षय मास हो सकता है । माघ मास क्षय या अधिमास दोनों हो सकता है । (मन्दोच्च का अन्तर बहुत कम होने के कारण यह अभी भी ठीक है)

> इत्थं तिथ्यादि वयव परिगता पञ्जिका स्थूल संज्ञा
> ग्राह्यावहागमज्ञैः प्रतिरदुदयन नित्य नैमित्तिकेषु ।
> एकादश्यादि पर्व व्रत सुर यजन श्राद्ध देवोत्सवा दौ
> शस्ताविस्तार्य सूक्ता भवतु भू विहिता वृंहता संहितार्थैः । २१० ।

इस प्रकार तिथि नक्षत्र आदि अंगों से युक्त स्थूल पञ्जिका पूरी हुयी जिसे शास्त्रों के विद्वान् ग्रहण कर इसके अनुसार प्रतिवर्ष के नैमित्तिक और नित्य कर्म,

एकादशी आदि पर्व, व्रत होम, श्राद्ध, और दिवसोत्सव आदि करें। यह वृहत्, ज्योतिष संहिता के अनुसार और सुविचारित होने के कारण जग का मंगल करे।

> नित्यनैमित्ति काद्युत्सवार्थोत्सुकः
> पञ्जिकां व्यञ्जन्नर्य माद्युर्जिताम्।
> अञ्जना भा चले भ्राजते यः सदा
> कञ्चनाभं भजे तं भवोद् भञ्जनः। २११।

नित्य नैमित्तिक उत्सव के लिये उत्सुक हो सूर्यादि ग्रह संकलित पञ्जिका रचते हुए मैं पद्मनाभ को भजता हूँ जो अञ्जन की आभा के पर्वत (नीलाचल) पर सदा विराजमान हैं।

> इत्युत्कलो ज्ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
> श्री चन्द्र शेखर कृतौ गणितेऽक्षिसिद्धे
> सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
> स्यात्पञ्चमः स्फुट खगः सफलः प्रकाशः। २१२।

इस प्रकार उड़ीसा के विख्यात् राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्रशेखर का गणित और प्रत्यक्ष में समानता लाने वाला तथा बालको के लिए सुगम सिद्धान्त दर्पण में फल (खण्डफल आदि) सहित ग्रह स्फुट विधि का पंचम अध्याय समाप्त हुआ।

षष्ठः प्रकाशः

सूक्ष्म पञ्जिका क्रान्त्यादि वर्णनम्

उद्वाहोपनय प्रयाण निलयकृत्वादिषु द्राङ् महा-
रम्भोद्दिष्ट फलाप्तये किलमया सूक्ष्मोच्यते पञ्जिका
दृक् सिद्धापम मार्गण ग्रहण युग् योगोदयास्तं महा-
पाताद्यं तिथिभादि कार्य मनया सूक्ष्मार्क चन्द्रोभवम् । १ ।

विवाह, उपनयन, युद्ध, यात्रा, गृहारम्भ, यज्ञ और जात कर्म आदि में अति शीघ्र फल पाने के लिए मैं अब सूक्ष्म पञ्जिका लिखता हूँ । इसकी सहायता से क्रान्ति शर, चन्द्र और सूर्य ग्रहण, ग्रह और नक्षत्र योग, उदय और अस्त, महापात (चन्द्र और सूर्य की समान क्रान्ति) तिथि, नक्षत्र, योग और करण आदि का साधना होगा । पञ्चांग सूक्ष्म रवि और सूक्ष्म चन्द्र द्वारा करना चाहिये ।

वृद्धौ पञ्च (५) तिथेः क्षयेरसमिता (६) नाड्यःपुराणैर्मता
नित्यं यत्परमास्ततो व्यवहृतौ स्थूलेष्यते पञ्जिका
प्रत्यक्षानुभवं न लुम्पति वचो युक्तिर्य तस्तन्मया
तत् साक्षात्करणाय काम्य विधये सूक्ष्मा परातन्यते । २ ।

एक तिथि के प्रायः ६० दण्डों में प्राचीन आचार्य ५ दण्ड तक की वृद्धि और ६ दण्ड तक की कमी (बाण वृद्धि रसक्षयः)- अर्थात् तिथि परिमाण ५४ से ६५ से दण्ड तक मानते थे । इस मान्यता के कारण उनकी पञ्जिका गणना स्थूल होती थी क्योंकि तथि में वास्तविक वृद्धि और क्षय इससे बहुत अधिक होता है । अतः पिछले पञ्चम प्रकाश में प्राचीन मत की स्थूल पञ्जिका रचना के बाद अब सूक्ष्म पञ्जिका की विधि बताता हूँ । इसके नियमों के अनुसार गति आदि की गणना करने से काम्य कर्मों के बाद तिथि आदि वास्तव में प्रत्यक्ष होंगे । प्रत्यक्ष प्रमाण के रहते और तर्क की आवश्यकता नहीं है ।

दृक् तुल्यतां गच्छति पर्व सन्धि र्येनार्क विध्वोः परिधिद्वयेन
तन्मात्र संसिद्ध फलागतांगा सत्पञ्जिका स्थूलतया पुरोक्ता । ३ ।

रवि और चन्द्र की दो मन्दपरिधियों के अनुसार जो अमावस्या और पूर्णिमा आती है अर्थात् केवल मन्दफल संस्कार से स्फुट रवि और चन्द्र को लेकर दगृक् सिद्ध अमावस्या और पूर्णिमा होती है वह पञ्जिका स्थूल रूप से कही जा चुकी है । (५ म प्रकाश में) ।

सूक्ष्मार्क दोः खण्ड फलैस्तु सूक्ष्म कार्याहिमां शोर्बहुभिर्विशेषैः ।
तत्रैष सिद्धः परिधेर भेदात् फलैस्तु दुत्थैः प्रथम ग्रहः स्यात् । ४ ।

पंजिका के पांच अंग (वार, तिथि, नक्षत्र, योग और करण) होने के कारण इसे पञ्चांग कहते हैं, इसके प्रथम अंग (वार) को छोड़ बाकी चार सूर्य और चन्द्र

पर निर्भर हैं। अतः सूर्य और चन्द्र सूक्ष्म होने पर ये भी सूक्ष्म (अति स्फुट) होंगे। रवि और चन्द्र की मन्द परिधि स्थूल और सूक्ष्म दोनों विधियों में समान होने के कारण मन्द फल संस्कृत रवि और चन्द्र को प्रथम ग्रह माना जाता है।

एतस्य सूक्ष्मस्य रवेर्घ्यगत्या बिम्ब प्रमाणं स्थिर पर्व सन्धिः।
छाया भुवस्तद् युगमन्दकर्णः सूर्यग्रहे सिध्यति लम्बनश्च। ५।

इसी प्रथम ग्रह तथा रविस्फुट गति से बिम्बमान स्फुट पर्यन्त काल, भुजमान, रवि और चन्द्र दोनों के मन्द कर्ण और सूर्य उपराग का लम्बन साधन किया जाता है।

तुंगान्तरं पाक्षिक नामधेयं फलं दिगंशाख्य मदस्तुरीयम्।
क्रमेण वक्ष्यामि निरीक्ष्ययत्ना च्चित्रां गतिं रात्रिपते श्चिराय। ६।

चन्द्रगति बहुत विचित्र है, इसके दीर्घ काल निरीक्षण करने पर मैंने मंदफल के अतिरिक्त और तीन फल संस्कार की आवश्यकता समझी है। चारं संस्कारों के नाम हैं-मन्द, तुंगान्तर, पाक्षिक और दिगंश।

अभीष्ट कालोत्थित चन्द्र मन्दात् पक्षे सिते सत्रिभ सूर्य हीनात्।
कृष्णे त्रिभोनार्यमवर्जिताद् यत् केन्द्रं तदीया भुजमौर्विकायाः। ७।

चन्द्र के इष्ट काल के मन्दोच्च से सूक्ष्मरवि और तीन राशि का योग शुक्ल पक्ष में घटाते हैं। कृष्ण पक्ष में स्पष्ट रवि से तीन राशि का अन्तर घटाते हैं। यह तुंगान्तर केन्द्र हुआ। इसकी भुजज्या निकालें।

साभ्रांगभू (१६०) घ्नी त्रिगुणेन (३४३८) भक्ता स्फुटार्क चन्द्रान्तर दो र्गुणघ्नी
त्रिज्योद्धृता लब्धमतः कलाद्यं गत्याविनिघ्नं प्रथम स्फुटे न्दोः। ८।

तुंगान्तर भुजफल को (१६०) से गुणा कर(३४३८) से भाग देकर सूक्ष्म रवि और स्फुट चन्द्र के अन्तर की भुजज्या से गुणा करें और पुनः त्रिज्या से भाग दें। लब्धि कला आदि को प्रथम स्फुट चन्द्र गति से गुणा कर-

तन्मध्यगत्या (७९०।३५) विहृतं फलंस्यां तुंगान्तरं तेन विहीन युक्तः।
पर्यायतः सत्रिभ वित्रिभार्क हीनेन्दु मन्दोच्च भवोक्त केन्द्रे। ९।

मध्य चन्द्र गति (७९०।३४) से भाग दें। लब्धि कलाआदि तुंगान्तर फल होगा। तुंगान्तर केन्द्र मेषादि ६ राशि में रहने पर तुंगान्तर फल को प्रथम स्फुट चन्द्र में जोड़ते हैं, केन्द्र तुला आदि ६ राशि में रहने पर इसे घटाते हैं। इससे द्वितीय स्फुट चन्द्र मिलता है।

(तुलाधराजादिभषट्क निष्ठे प्राक् सिद्ध चन्द्रो भवति द्वितीयः)
तत्सूक्ष्म सूर्यान्तर केन्द्र पादयातैष्यदल्पाः कलिका द्विनिघ्नाः। १०।

द्वितीय स्फुट चन्द्र और सूक्ष्म रवि के अन्तर को केन्द्र मानते हैं। यह केन्द्र वृत्त के जिस पाद में हो उसका गत और गम्य खण्ड निकालें। गत और गम्य खण्ड में जो कम है उसकी कला बनाकर २ से गुणा करें।

मौर्वीकृताहारहृताः फलं स्यात् कलात्मकं पाक्षिक नामधेयम् ।
पक्षार्द्धयोः प्राक् परयो स्तदाद्य हीनस्तृतीयत्व मुपैति सोऽयम् । ११ ।

गुणनफल की ज्या निकाल कर उसे निम्नलिखित हार से भाग देने पर कलादि लब्ध फल को पाक्षिक फल कहा जाता है । पक्ष के पूर्वार्द्ध में चन्द्र रहने पर पाक्षिक फल को द्वितीय स्फुट चन्द्र में जोड़ते हैं । परार्द्ध पक्ष में चन्द्र रहने पर इसे घटाते हैं । तो तृतीय स्फुट चन्द्र होता है ।

सूर्योनित स्वोच्च विधूच्च शेष भुजांश कान्योऽन्य विघात पिण्डात्
खाष्टेन्दु (१८०) भक्ताश्च फलं नवत्या (९०) युक्तं तृतीयाय फलायहारः । १२ ।

पाक्षिक फल का हार निकालने के लिये रवि मन्दोच्च और चन्द्र मन्दोच्च से अलग-अलग सूक्ष्म सूर्य घटाते हैं । दोनों अन्तरों का भुजचाप निकाल कर उनका परस्पर गुणन करते हैं । गुणन फल में (१८०) से भाग देकर लब्धि में ९० जोड़ते हैं जो पाक्षिक फल का हार होता है ।

स्वर्णार्क दोः सूक्ष्मफलं दिगा (१०) प्त माद्येन्दु गत्या हत मध्य भक्तम् ।
तुर्यं फलं स्यात् क्रमतस्तदून युक्तः शशीदृक् सम एष सूक्ष्मः । १३ ।

रवि के सूक्ष्म मन्दफल को १० से भाग देकर स्फुट चन्द्र गति से गुणा करते हैं तथा मध्य चन्द्र गति से भाग देते हैं । इसंसे दिंगश फल मिलता है । रवि मन्दफल धन या ऋण होने पर दिगंश फल को तृतीय स्फुट चन्द्र में जोड़ते या घटाते हैं । इससे चतुर्थ स्फुट चन्द्र होगा जो शुद्ध मान होगा ।

स्थलीषु जंगम्यत एव यद् वद् भुजंग ऋज्वी गति मेव गर्त्ते ।
सदोच्च कर्षातिग एव मिन्दु स्तत्साम्य मागच्छति पर्व सन्धौ ।।१४ ।।

समतल भूमि पर सर्प तरंग की तरह चलता है लेकिन बिल में जाते समय सीधा हो जाता है । इसी प्रकार सिर्फ मन्दोच्च फल के प्रभाव को न मानकर चन्द्रमा अनेक प्रकार की गति करता है, पर पूर्णिमा या अमावस्या (पर्व सन्धि) में गति की विषमता दूर हो जाती है, तथा केवल मन्दफल के अनुसार संस्कार होता है ।

तत्राप्य तुगान्तर पाक्षिके स्थात् सूक्ष्मे दिगंशाख्य फलं यथाहेः ।
मताल्पवक्रा स्वगतिर्विलेऽपि पार्श्वद्वय स्पर्श दृढ़ा दृढ़ीत्वात् ।। १५ ।।

बिल में प्रवेश करते समय पार्श्व के दबाव के कारण सर्प की पार्श्व गति (तरंगाकार) बिल्कुल बन्द हो जाती है । साथ ही उसकी स्वाभाविक सीधी गति में भी अन्तर पड़ता है । इसी प्रकार पर्व सन्धि पर चन्द्रमा का तुगांन्तर और पाक्षिक फल नहीं होता पर सूक्ष्म दिगंश फल का संस्कार होता है (मन्दफल के अतिरिक्त)

भुजान्तराख्यं फलंमर्क सूक्ष्म स्थूलात्मदोः खण्डफलाद्विधेयम् ।
क्रमादणु स्थूल विधौ न तु स्यात् स्फुटीक्रियान्योन्य विपर्य येण ।। १६ ।।

रवि का सूक्ष्म स्फुट निकलने के लिये सूक्ष्म सारणी और स्थूल स्फुट निकालने के लिये स्थूल सारणी का व्यवहार करना चाहिये। इसका उलटा करने से अशुद्धी होगी।

चन्द्र की सूक्ष्म स्फुट गति

तुंगान्तर यत्फल मत्र सिंह त्रिज्या हतं तत्प्रथमेन्दु भान्वेः ।
विश्लेषदोर्ज्याप्तफलं तदीयान्तरोत्थ तदोत्थ कोटी गुण संगुणञ्च ।। १७ ।।

सूक्ष्म तुंगान्तर फल को त्रिज्या (३४३८) से गुणा कर प्रथम स्फुट चन्द्र और सूक्ष्म स्फुट रवि के अन्तर की ज्या से भाग दें। फल को आद्य स्फुट चन्द्र और सूक्ष्म रवि के अन्तर की कोटिज्या से गुणन कर

त्रिज्योद्धृतं तत्पुनरर्क चन्द्रगत्यन्तरघ्नं त्रिगुणाप्त लब्धम् ।
योज्यं तदेव प्रथमेन्दु भुक्ति फलै र्भवेद् भुक्तिफलं द्वितीयम् ।। १८ ।।

त्रिज्या से भाग देंगे। फल को प्रथम स्फुट चन्द्र गतिफल में जोड़ने से द्वितीय गति फल होगा।

तत्संस्कृतं मध्यगतौ पुरोवद् भवे द्वितीया रजनीश भुक्तिः ।
वर्गीकृतं पाक्षिक लिप्तिकायां हारोद् भवस्यान्त्य फलस्य वर्गात् ।। १९ ।।

इस गति फल को चन्द्र मध्यम गति में जोड़ने या घटाने से द्वितीय चन्द्र गति होती है। मन्द केन्द्र कर्क आदि ६ राशि में होने पर जोड़ते हैं, अन्यथा घटाते हैं। कला आदि पाक्षिक फल को वर्ग कर उसे परम पाक्षिक फल के वर्ग से घटायें।

विशोध्य तच्छेष पदं द्वितीय चन्द्रार्क गत्यन्तर संगुणं तत्
गोभूघनाप्त (१७१९) सितरुग् द्वितीय भुक्तौ धनं पक्ष पुरोऽन्तिमाङ्घ्रोः । २० ।

शेष के वर्गमूल को २ य चन्द्र गति और स्फुट रवि गति के अन्तर से गुणा कर त्रिज्यार्द्ध (१७१९) से भाग दें। (फल को चन्द्रमा शुक्ल पक्ष के प्रथमार्द्ध या कृष्ण पक्ष के द्वितीयर्द्ध में रहते पर चन्द्र की द्वितीय गति में जोड़े।

ऋणं पदोर्मध्यम योरितिस्यात् सूक्ष्मान्त्य भुक्तिः शशिन स्तृतीया ।
दिनान्तरेन्द्वन्तर स म्मिता वा तत्सिद्ध तिथ्यादि शुभेषु चिन्त्यम् । २१ ।

चन्द्रमा द्वितीय और तृतीय पाद (शुक्ल पक्ष द्वितीयार्द्ध या कृष्ण पक्ष प्रथमार्द्ध) में रहने पर फल को चन्द्रमा की गति से घटायेंगे। (कुछ लोग पूरे शुक्ल पक्ष के लिए जोड़ते हैं तथा कृष्ण पक्ष के लिए घटाते हैं)। यह तृतीय सूक्ष्म गति (चन्द्रमा की) होगी। दो दिनों के स्फुट चन्द्र के अन्तर से प्राप्त चन्द्र गति भी व्यावहारिक शुभ कार्यों के लिए पर्याप्त सूक्ष्म है और उससे तिथि का विचार हो सकता है।

विष्ट्याद्यनिष्टं यदिहास्ति तत्त्याज्यं पुनः स्थूल मते यदेतत् ।
तच्चापि हेयं बहु सम्मतत्वात् स्थूलेन नित्यव्यवहार सिद्धेः । २२ ।

सूक्ष्म मत से विष्टि आदि अनिष्ट का त्याग किया जाता है। शुभ कर्म में स्थूल मत से भी विष्टि आदि को नहीं लेना उचित है। स्थूल मत सर्वथा हेय नहीं है, नित्य व्यवहार के लिए लोग उसे ही मानते हैं।

व्यर्केन्दु केन्द्रोज समांघ्रि युग्मं पक्षादि मान्त्यर्द्ध युगं प्रमेयम्
पक्षांघ्रयः केन्द्र भषट् कयोः स्युः शराम्बु राशि (४५) प्रमितैश्च भागै। २३।

चन्द्र से रवि घटाने पर जो केन्द्र होता है। वह प्रथम ६ राशि में रहने पर (रवि से चन्द्र मा १८०° तक आगे रहने पर) शुक्ल पक्ष तथा द्वितीय ६ राशि में (१८०°-३६०°) रहने पर कृष्ण पक्ष होता है। प्रथम ३ राशि शुक्ल पक्ष पूर्वार्द्ध, उसके बाद ६ राशि तक शुक्ल पक्ष का उत्तरार्द्ध होता है। कृष्ण पक्ष का पूर्वार्द्ध ६ से ९ राशि तथा उत्तरार्द्ध ९ से १२ राशि होता है। प्रत्येक पक्ष (१८०) के चतुर्थ अंश (४५) को पक्ष चरण (पाद पक्ष) कहा जाता है।

वक्षेऽन्त्य भुक्ति ग्रहणे प्रसिद्धां
ययैव सर्वान्त गतैष्य काले।
चन्द्रः स्फुटः स्यात् स्थिति मर्द्ध कालो
दृक् तुल्यता मेतिययाच सिद्धः। २४।

अब मैं चन्द्र ग्रहण के लिए उपयोगी चन्द्र की गति (ज्यादा सूक्ष्म) कहता हूँ। यह गति निकालने के लिए पर्वान्त (पूर्णिमान और अमान्त) का गत (बीता) और गम्य (बाकी) काल निकालकर उससे चन्द्रमा को स्फुट करते हैं। इस स्फुट गति द्वारा साधित होने पर ग्रहण के स्पर्श, मोक्ष स्थिति आदि समय दृक् सिद्ध होते हैं। (गणना के अनुसार ही दीखते हैं)

न्यस्यद्विधाद्येन्दुगतेः फलं तदन्त्येन
तुंगान्तर केण (१६०) निघ्नम्
परेणतन्मान्द्य फलेन (३०१) भक्तं
गत्याद्ययाघ्नं किलम ध्यया (७९०। ३५)प्तम्। २५।

प्रथम स्फुट चन्द्र के प्रथम गतिफल को दो स्थान में रखकर एक स्थान में उसे कला आदि परम तुंगान्तर फला (१६०) गुणा कर परम चन्द्र मन्दफल कला से भाग दें। अन्य स्थान के प्रथम गति पल को प्रथम स्फुट चन्द्र गति से गुणा कर मध्यगति (७९०।३५) से भाग दें।

फलान्वितं कर्कि मृगादिमन्द केन्द्रे तदा व्योनित मध्य भुक्तिः
द्विधार्क भुक्त्या ऋणितार्द्धहार भक्ताप्त युक् स्यान्त्यगति स्फुटेन्दोः। २६।

दोनों स्थान के फलो को जोड़ दें। चन्द्र मन्द केन्द्र कर्क आदि राशि में रहने पर इस योग फल को चन्द्रमध्यम गति में जोड़ेगे तथा मन्दकेन्द्र मकर आदि ६ राशियों में रहने पर मध्यम गति से घटायेंगे। यह चन्द्र की संस्कृत मध्यगति है।

इसको पुनः दो स्थानों में रखकर एक स्थान में उससे स्फुट रवि गति घटाकर

आधे हार (हार = (चन्द्रमन्दोच्च-सूक्ष्म सूर्य) का भुज चाप x (रवि मन्दोच्च -सूक्ष्म रवि) का भुज चाप - १८० + ९०) से भाग दें। लब्धि को अन्य स्थान की संस्कृत मध्यगति में जोड़े। योग चन्द्रमा की सूक्ष्मतम गति होगी।

एकत्र नित्यान्यपरत्र काम्यान्यवेक्ष कर्तुं यदि पञ्जिका याम्
असम्मतिः स्याज्जगतः प्रयासात् कार्यं तदा सूक्ष्म मतेन सर्वम्। २७।

एक प्रकार के नित्य कर्म के लिए एक पञ्जिका और दूसरे काम्यकर्म के लिए दूसरी पञ्जिका का कोई आदर नहीं करेगा। अतः बहुत परिश्रम होने पर भी सभी प्रकार के कामों में के लिये सूक्ष्म पञ्जिका का व्यवहार ही उचित है। स्थूल की तुलना में सूक्ष्म पञ्जिका अधिक आदरणीय है।

भूगर्भगे कल्पित सूक्ष्मगोले स्वदेश सूत्राकलित प्रदेशे।
कदम्ब गोलांकित भागलिप्ते दृष्टा ग्रहाः स्पष्टतया भचक्रे। २८।

पृथ्वी की सतह पर हमलोग हैं। भूमि के गर्भ के केन्द्र स्थान से अपने स्थान तक के सूत्र (रेखा) को आकाश में बढ़ाने पर वह आकाश गोल में जिस बिन्दु पर मिलता है उसे अपने स्थान का स्वस्तिक (आकाश में ऊंची दिशा में) कहलाता है। इस खस्वस्तिक और क्रांति वृत्त में जिस स्थान पर ग्रह का राशि अंश आदि है (ग्रह के बिम्ब से क्रांति वृत्त पर लम्ब बिन्दु) उस बिन्दु तक जाते हुए जो कदम्ब प्रोत वृत्त (गोलीय रेखा) है, उसी वृत्त पर ग्रह दिखायी पड़ने से गणित गत ग्रह को स्पष्ट कहा जाता है।

प्राग् भिर्मता र्यत् सकल क्रियासु तत्सिद्धये पर्यय बीजक्लृप्ति
पृथक् विधा काल वशादि भिन्नै र्विधीयतेस्वी क्रियते च लोकैः। २९।

प्राचीन आचार्यों के मत से सभी शुभ कार्य इसी स्पष्ट ग्रह के अनुसार होते हैं। यही स्पष्ट ग्रह लाने के लिये ज्योतिषी ग्रह का भगण और बीज कर्म संस्कार आदि करते हैं। उनके परिश्रम के कारण तथा स्पष्ट ग्रह को गणित सिद्ध स्थान पर देख उसे मानते हैं।

कर्मार्हपञ्चाङ्ग समत्व सिद्धौ निशापते रेव महोपयोगात्
दृक् सिद्धयेऽस्य त्रिविधं हि बीजं, तुङ्गान्तराद्याख्यमकल्पि सूक्ष्मम्। ३०।

वैदिक और स्मार्त आदि नित्य और नैमित्तिक कर्म की सिद्धि के ग्रह स्पष्ट को आवश्यकता है। केवल पञ्चाङ्ग शुद्धि के लिए उनकी अपेक्षा, चन्द्र स्पष्ट की आवश्यकता अधिक है। इसके दिये तुंगान्तर, पाक्षिक और दिगन्त आदि बीज संस्कारों की सूक्ष्म कल्पना की गयी है।

तिथावुडौ द्वित्रिपल प्रभेदो वेद्यः परं विश्वसृंजानचान्यैः।
श्रेयात् स तत् शक्र (१४) घटी प्रभेदात् समुद्धरेत् सार मरारतो हि। ३१।

इन तीन सूक्ष्म बीज संस्कारों के बाद भी तिथि तथा नक्षत्र में २-३ पल का

अन्तर (गणना तथा दृष्टि में) पड़ता है, पर बिना संस्कार १४ घटी अन्तर के तुलना में यह श्रेयस्कर है । इस प्रभेद (२-३ पल) को या इसे दूर करने का उपाय ब्रह्मा ही समझ सकते है । कोई भी गणना करने पर कुछ त्रुटि अवश्य होगी ।)

यत्तु स्थिरापृष्ठ निवास भाजां दृक् सूत्रतो लम्बन मृक्ष सक्तात्
नभः सदोयञ्च कदम्ब गोल-सूत्रेण विक्षेपवतोऽयनोत्थम् । ३२ ।

पृथ्वी के गर्भ केन्द्र से ग्रह जिस दिशा में है, पृथ्वी की सतह से देखने पर वह दूसरी दिशा में दीखेगा, दोनों दिशाओं (सूत्रों) का अन्तर (कोणीय) लम्बन कहनाता है । ख स्वस्तिक और क्रान्ति वृत्त के स्पष्ट ग्रह (ग्रहबिम्ब से क्रान्ति वृत्त पर लम्ब बिन्दु) तक के वृहत्वृत्त (कदम्ब प्रोत वृत्त) से ग्रह (बिम्ब) की दूरी को शर या विक्षेप कहते हैं ।

दृक् कर्म साध्यं ध्रुव सूत्र साम्यात् तद् युग्म मर्क ग्रहखेट युत्योः ।
स्यात् केवलं नत्वपरिक्रिया सु खार्द्धेऽयनान्ते स्फुटतावशेषात् । ३३ ।

लम्बन और शर के लिए दृकर्म होता है इसकी आवश्यकता केवल चन्द्र ग्रहण, रविग्रहण और ग्रह युति में है, उसी प्रसंग में इनकी गणना होगी । तिथि नक्षत्र आदि में उनकी आवश्यकता नहीं है ।

वृहत् संहितायाम्वेला हीनो पर्वणि गर्भ विपत्तश्च शस्त्र को पश्च ।
अतिवेले कुसुम फलक्षयो भयं शस्य नाशश्च । ३४ । इति ।

वराह मिहिर की वृहत्संहिता में (गणितागत पर्व या ग्रहण के समय वह पर्व न होने पर हानि के विषय में) लिखा है-गणना द्वारा प्राप्त समय से पूर्व ग्रहण स्पर्श आदि होने से गर्भ नाश और शस्त्र आदि द्वारा युद्ध होता है । निर्दिष्ट समय के बाद पर्व होने से फसल की हानिं, फूल फलों का क्षय तथा प्रजा के लिए भय पैदा होता है ।

गर्ग संहिता याम् - हीनातिरिक्त काले फलमुक्तं पूर्वशास्त्र दृष्टत्वात्
स्फुट गणित वेदः कालः कथञ्चिदपि नान्यथा भवति । ३५ ।

गणित समय के पहले या बाद में ग्रहण आदि पर्व होने से जो फल होगा वह पहले कहा जा चुका है । स्फुट जानने वाले के समय में कभी अन्तर नहीं पड़ता है ।

दृक् समे पर्वणि नृपा निर्वैरा विगत ज्वराः
प्रजाश्च सुखिनः सर्वे भय रोग विवर्जिताः । ३६ । इति ।

गणित के अनुसार समय से सब होने पर राजाओं के शत्रु नष्ट होते हैं तथा कष्ट मुक्त होते हैं । प्रजा भी भय और रोग से मुक्त होकर सुखी होते हैं ।

वशिष्ठ वाक्यम् - यस्मिन् पक्षे यत्र काले येन दृग्गणितैक्यकम्
दृश्यते तेन पक्षेण कुर्यात्ति थ्यादि निर्णयम् । ३७ । इति

वशिष्ठ ने कहा है । (किस ग्रन्थ के अनुसार यह पता नहीं)- जिस मत (पक्ष) के अनुसार करने पर ग्रह उसी स्थान पर दिखते हैं । (अर्थात् दृक् और गणित में समानता होती है ।) उसी के अनुसार तिथि आदि का निर्णय करना चाहिये ।

साकल्यसंहितायाम्संसाध्य स्पष्टतरं बीजं नलिकादि यन्त्रेभ्यः
तत्संस्कृतास्तु सर्वेपक्षाः साम्यं भजन्त्येव । ३८ ।

साकल्य संहिता में लिखा है-नलिका, (गोल और तुरीय) आदि यन्त्रों के द्वारा बीज संस्कार (संशोधन) अति स्पष्ट करना चाहिये । अर्थात् प्रत्यक्ष ग्रहस्थिति देखने पर गणना में जो अन्तर रहता है वह बीज जोड़ या घटाकर दूर करने से ही सभी नियम ठीक होंगे । प्रत्यक्ष की उपेक्षा नहीं हो सकती ।

किं ते नापि सुवर्णेन कर्णधातं करोति यत् ।
तथा कं तेन् शास्त्रेण यन्न प्रत्यक्षतः स्फुटम् । ३९ ।

जिस सोने के गहने से कान कट जाय उसका क्या लाभ ?इसी प्रकार जिस शास्त्र का फल प्रत्यक्ष नहीं हो उसकी क्या जरूरत है ?

कर्मार्ह काले लम्बन प्रतिषेधक बीजोपनय ग्रन्थ वचनं यथा-तिथि आदि लाने के बीज संस्कार में लम्बन का उपयोग नहीं इस सम्बन्ध में ग्रन्थों के वचन हैं-

यदि च लम्बन संस्कृत खेटतस्तिथि मुखा नयनं परिचोद्यते ।
वधिर तर्हि तवश्रुति गोचरं विवथमेव हि लम्बन शासनम् । ४० ।

तिथि आदि निकालने के लिये जो लोग लम्बन संस्कार की बात कहते हैं । वह लम्बन के विषय में नहीं जानते हैं । उनका लम्बन ज्ञान वेकार है उन्हें समझाना वधिर को कहने जैसा है ।

अतः कुमध्याद् गत खार्द्ध सूत्रे दृक् तुल्यता मेति नभश्च रोयः ।
स एव शुद्धः परमार्थतः स्यात् स्फुट स्ततोऽन्ये विहगास्त्व तथ्याः । ४१ ।

भूमि गर्भ केन्द्र से ग्रह का सूत्र भगोल के जिस विन्दु तक जाता है । वहां जो गणितागत ग्रह दिखे वही स्पष्ट है । अन्य ग्रह स्पष्ट नहीं है ।

भूपृष्ठ देशानां भिन्नाः मध्य मेव यतः समम्
तत्तुल्य खेचरानीतं तिथ्यादेववरं ततः । ४२ ।

भूपृष्ट के अलग अलग देशों से देखने पर अलग अलग तिथि आयेगी (ग्रह की भिन्न दिशा के कारण) । अतः तिथि की गणना यदि भू गर्भ केन्द्र से की जाय तो वह सभी स्थानो के लिए एक होने के कारण ज्यादा उपयोगी होगी ।

दृकरणैक्य विहीनाः खेटाः स्थूला न कर्मणामर्हाः ।
अतः इह तदर्हतायै तात्कालिक बीज विस्तरं वक्ष्ये । ४३ ।

दृक् और गणित दोनों के अनुसार एक नहीं होने पर ग्रह का शुभकार्मों में व्यवहार नहीं हो सकता है। अतः गणित की प्रत्यक्ष उपलब्धि के लिए जो बीज कर्म किया जाता है उसका विस्तृत वर्णन करता हूँ।

भास्कराचार्य-लिप्ताविधोरर्कमही (११२)
मिता मे दृग्गोचराः प्रत्यहमीक्षितिस्य।
कदम्बगोला गत सूत्र पाते क्रान्तौ
धनर्णत्वजुषो भमध्यात्। ४४।

भास्कराचार्य (सिद्धान्त शिरोमणि) ने कहा है-मैंने प्रतिदिन चन्द्रमा को देखकर पाया है कि गणित द्वारा निर्दिष्ट स्थान से चन्द्रमा ११२ लिप्ता पूर्व या पीछे तक दीखता है। बीज फल के अधिकतम या न्यूनतम होने के समय यह होता है।

मयाय बीजोपन-ये यदन्ते सूर्योक्त माद्यं परमं रहस्य म्
प्रकाशये गोप्य मपीहवेदं प्रणम्य देवं जगतां हितार्थम्। ४५।

स्वयं सूर्य ने बीज के विषय में (सूर्य सिद्धान्त के) अन्त में कहा है कि, यह परम गोपनीय होने पर भी जगत के हित के लिए देवता और वेद को प्रणाम कर इसकी व्याख्या करता हूँ।

ब्रह्मगुप्त सिद्धान्ते च-ब्रह्मोक्तं ग्रह गणितं महता कालेन यत्खिलीभूतम्
अभिधीयते स्फुटं तज्जिष्णु सुत ब्रह्मगुप्तेन। इति। ४६।

ब्रह्म स्फुट सिद्धान्त में-स्वयं ब्रह्मा द्वारा कहा हुआ ग्रहगणित बहुत समय बीतने पर लुप्त हो गया। अतः विष्णु पुत्र ब्रह्म गुप्त उसको बीज संस्कार आदि द्वारा स्पष्ट कर कहते हैं।

लिप्ता विधोरर्क महीति पद्याद् भमध्यता स्याद् विषुवापयस्य
तदाप्य बीजोपन या नुमेयं विक्षेप मन्त्यं कुवसु द्वि (२८१) लिप्तम्। ४७।

चन्द्र के गणितागत स्थान से (११२) लिप्तातक का अन्तर सम्भवतः विषुव वृत्त के चन्द्र कक्षा की दूरी के कारण है अतः यह चन्द्रमा के परम विक्षेप (२८१) लिप्ता) से सम्बन्धित होना चाहिये।

यतो विधोः सत्रिभ सायनस्य क्रान्ति
ज्यकाखांद्रिगुणेन्दु (१३७०) तुल्या
तद् बाण (२८१) निघ्नी त्रिगुणो (३४३८)
द्धृताप्तं धनर्ण दृक्कर्म भुजेश (११२) लिप्तम्। ४८।

क्योंकि सायन चन्द्र में राशि जोड़ने पर उसकी क्रान्ति ज्या (१३७०) कला है, और (२८१) से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर भी (११२) कला आती है।

आयाति तद्वीक्ष्य तदुक्तमेतत् बोध्यं कदम्ब ध्रुव सूत्रमध्ये
सम्भाव्यते य द्यरिवत् श्रुतोक्ता दृक्कर्म तो भिन्न मितीह बीजम् । ४९ ।

यह फल उतना ही आता है जितना कदम्ब ध्रुव सूत्र तथा गणित ग्रह के बीच दृक्कर्म द्वारा बीज अन्तर पाया गया है ।

तदापमस्थाद्य विधो र्भमध्ये स्यादत्र कुत्राप्युडु चक्रवृत्ते
तुंगान्तरं तत्फल मन्त्यमेव सूर्येन्दु (११२) तद्बीज फलं तदात्वो । ५० ।

भास्कराचार्य ने इसे आयन दृक् कर्म कहा है, अन्य सिद्धान्तों में अन्य प्रकार का आयन कर्म हुआ है । अतः इसे बीज संस्कार कहना उचित होगा । मैंने इसे परम तुंगान्तर फल माना है ।

खाङ्गेन्दु (१६०) लिप्तं चिर
काल तोऽ भूत्तद् वृद्धि ह्रासावुररीक्रियेताम् ।
इत्यादि पूर्वोक्ति भिरेव सिद्धं बीजैः
स्वकालाक्षि समैः स्फुटत्वम् । ५१ ।

(भास्करा चार्य के दृक्कर्म) से लगता है कि तुङ्गान्तर फल का परममान (१६०) लिप्ता बहुत दिनों सेचला आ रहा है । प्राचीन आचार्यों के अनुसार यह घटता बढ़ता है अतः बीज संस्कार द्वारा चन्द्र स्फुट करना चाहिये ।

समाः सहस्रान्तर एष्यकाले प्रोक्त क्रमेण प्रथमस्फुटेन्दोः ।
दृक् चन्द्र तोलप्स्यत एव यावान् भेदः स तद्बीजमितिप्रमेय । ५२ ।

तुंगान्तर फल के परम मान में वृद्धि में ह्रास के लिये बीज संस्कार करने के लिए १ हजार वर्षों के अन्तर पर इस तुंगान्तर मान द्वारा स्फुट ग्रह किया जायेगा । प्रत्यक्ष चन्द्र से उसका जितना अन्तर होगा वही बीज संस्कार होगा ।

षट्षष्ठि (६६) दण्डाभ्यधिका तिथि र्या कृत्स्ना पराह्नद्वयमश्नुतेसा ।
सूक्ष्मैव नान्या तुतथा विधास्यात् षोढ़ाभिदा हिस्मृतिषु-प्रसिद्धा । ५३ ।

स्मृतियों में सूक्ष्म तिथि उसे कहा गया है, जिसमें दो क्रमागत दिनों के अपराह्न सम्मिलित हों । अतः इस प्रकार इस तिथि में ६६ से अधिक दण्ड स्मृति अनुसार होंगे ।

(एक मध्यम सावन दिन में ३० दण्ड हैं जिन्हें ५ अह्न प्रति ६ दण्ड में बांटा गया है-प्रातः, पूर्वाह्न, मध्याह्न , अपराह्न, सायाह्न) अपराह्न से अगले मध्याह्न तक एक दिन रात (६०) दण्ड होगा अगला अपराह्न भी सम्मिलित होने से ६ दण्ड अधिक होगा ।

सायाह्न मात्र स्पृग महि पूर्वे परे दिनार्द्धात् पुरतो गता चेत् ।
तच्छ्राद्ध मुक्तं कुतपे परेद्युः स्मृत्यात्र सूक्ष्मैव मता तिथिः सा । ५४ ।

स्मृति के अनुसार यदि सायाह्न को स्पर्श कर तिथि यदि अगले दिन पूर्वाद्ध

में समाप्त हो जाय तो उस तिथि का श्राद्ध पूर्व दिन नहीं होकर अगले दिन करना पड़ेगा। अगले दिन भी कुतप तक यह श्राद्ध पूरा होना चाहिये।

(कुतप-लेखक ने दिन ३० से दण्ड को १५ भागों में बाटा है। प्रतिभाग दो दण्ड ८ वैं भाग १४-१६ दण्ड को कुतप कहते हैं। एक भाग एक मुहूर्त है)

इस उक्ति के अनुसार भी एक तिथि का मान सायाह्न (६ दण्ड) + रात्रि (३० दण्ड) दिनार्द्ध (१५ दण्ड) = ५१ दण्ड तक होता है।

कुतप (१४-१६ दण्ड) तक भी ५२ दण्ड तक होता है।

यह लेखक ने पहले भी कहा है कि ५१ दण्ड की तिथि होगी।

नोट-प्राचीन आचार्यों के मत बाणवृद्धि रसक्षयः (५४ से ६५ दण्ड की तिथि) के बदले चन्द्र शेखर मत से ५१ से ६६ दण्ड से अधिक तक की तिथि स्मृति प्रमाण से भी सिद्ध है।

यथाह गौतमः- पूर्वाह्हे चेत् प्रतिपदो भूतो सायम मा यदि।
आरम्भ कुतपे श्राद्धं रोहणं न तुलंघयेत्। इति। ५५।

गौतम स्मृति के अनुसार चतुर्दशी के सायाद्ध में अमावस्या आरम्भ होकर यदि अगले दिन प्रतिपदा तिथि के मध्याह्न पूर्व में समाप्त हो जाय तो कुतप मुहूर्त (२ दण्ड) में श्राद्ध आरम्भ अगले रोहण मुहूर्त में समाप्त होना चाहिये। (अमावास्या श्राद्ध)।

सप्तम्या तिथित्रयक्षयघटीर्दृष्टा रसोनाः (६) पुनः
षोढ़ा भेद विरोध शंकि तहृदां मा भूदिहा नादरः
सप्तम्यादिषु (३) पञ्चधान्यतिथिषु द्विःषटसु (१२) षोढेतिचेत्
तात्पर्यं स्मृतिजं विचिन्त्य मिहदृक् सिद्धैर्नका पिक्षतः। ५६।

शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों में सप्तमी, अष्टमी और नवमी इन तीन तिथियों में परम ह्रास ६ दण्ड से कम होता है अतः इन तिथियों के सभी ६ भेद नहीं ५ ही प्रकार के भेद होते हैं, (इनमें ५४ दण्ड से कम की सूक्ष्म तिथि नहीं होती) अन्य १२ तिथियों के ६ प्रकार के भेद होते हैं। स्मृति का इस प्रकार अर्थ मानने पर दृक् सिद्ध गणना में कोई त्रुटि नहीं होगी।

मध्ये पक्ष मिवेन्द्र (१४) संख्य मघटी भेदश्च पक्षान्तयोः
स्याच्चेत् स्थूल तदा ग्रहणयोर्भूरि प्रभेदे क्षणात्।
प्राञ्चोलोकभियापि सूक्ष्म तिथि मन्वेष्टुंव्यधास्यन् श्रमं
सर्वे भेन्दु युते रनादृततया मन्ये तदीक्षां जहुः। ५७।

प्राचीन आचार्य नक्षत्र और उसमें चन्द्र की स्थिति नहीं देखते थे, स्थूल गणना से पक्षमध्य की तिथियों (७ मी, ८ मी) में सूक्ष्म मत की तुलना में १४ दण्ड तक का अन्तर पड़ जाता है। लेकिन पक्षान्त में सूर्य ग्रहण या चन्द्र ग्रहण होने के कारण उसकी सूक्ष्म साधन के लिए उन्होंने बहुत चेष्टा की थी। क्योंकि सामान्य

लोग ग्रहण द्वारा ही ज्योतिष की शुद्धता की परीक्षा करते हैं। और उसमें भूल होने पर ज्योतिषियों को अपमान का भय था।

अथ गर्ग वशिष्ठादि मुनिभिः परिकीर्त्तितम्।
चिन्त्यं यात्रा विवाहादौ सूक्ष्मर्क्षानयनं ब्रुवे। ५८।

यात्रा विवाह और उपनयन आदि शुभ कर्म में विचार्य एवं गर्ग, वशिष्ठ, मुनि आदि द्वारा निर्णित सूक्ष्म नक्षत्र निकालने का नियम कहता हूँ।

चन्द्रस्य मध्यमा भुक्ति (७९०।३४-५२) र्भभोगः सूक्ष्मउच्यते।
सार्द्धभोगानि (११८५।५२।१८) षड्
ब्रह्मराधावित्युत्तराणि च (४,१६,७,११२,२१,२६)। ५९।

चन्द्र की मध्य गति (७९०।३५।५२) को सूक्ष्म नक्षत्र भोग कहते हैं। इसका डेढ़ गुणा (११८५।५२।१८) भुक्ति इन ६ नक्षत्रों की है-- रोहिणी, अनुराधा, पुनर्वासु और ३ उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ और उत्तर भाद्रपद)। ४,१६,७, १२,२१,२६ नक्षत्र)

अर्द्ध भोगानि (३९५।१७।२६) पाशीन्द्रा
हीशयाम्यानिलानि (२४, १८,९,६,२,१५)षट्
शेषपञ्चदशैव (१,३,५,८,१०,१३,१४,१७,१९,२०,
२२,२३,२५,२७) स्युरेक भोगानि भान्यतः। ६०।

भरणी (२) आर्द्रा (६) अश्लेषा (९) स्वाती (१५) ज्येष्ठा (१८) शतभिषा (२४) ६ नक्षत्रों का भोग आधा (३५९।१७।२६) शेष १५ नक्षत्रों का भोग एक (७९०।३४।५२) होता है।

सर्वभोगानि (२१३४५।४१।२५) चक्रस्या (२१,६००)
भिजिभोगेऽवशेशकः (२५४।१८।३५)
वैश्व (२१)वैष्णवयो (२२) र्मध्ये तद् भोगः स्थितिहेतुतः। ६१।

इस २७ नक्षत्रों का कुल भोग (२१३४५।४१।२५) वृत्त की कलाओं (२१,६००) से घटाने पर शेष (२५४।१८।३५) २८ वें अभिजित् नक्षत्र का भोग आता है जो उत्तराषाढ़ (२१) तथा श्रवण (२२) नक्षत्र के बीच आता है।

स्फुटेष्ट खेट लिप्ताभ्यः प्रोज्भ्याश्वि न्यादि भोगकान्
विशुद्ध भोग संख्यानि भानि विद्याद् गतान्यतः। ६२।

स्फुट ग्रह की कला से अश्विनी नक्षत्र से आरम्भ जितने नक्षत्रों की कलाघट सकती है, घटायें। यह नक्षत्र संख्या ही गत नक्षत्र है।

तच्छेषो वर्तमानस्य भोगोऽतिक्रान्त उच्यते।
अशुद्ध भोगात् परितो भोऽयः स्यात् कलिकात्मकः। ६३।

बाकी कला (जिससे पूर्ण नक्षत्र की कला नहीं घट सके) वर्तमान नक्षत्र की

गत (बीती हुयी) कला है । इसे नक्षत्र की योग कला से घटाने पर भोग्य कला होगी ।

गतैष्याः कलिकाः षष्ट्या गुणिताः ग्रह भुक्ति भिः ।
विहृता घटिकाद्याः स्युर्गतैष्याः फल सम्मिताः । ६४ ।

गत और भोग्य कला को अलग अलग ६० से गुणा कर ग्रह की स्फुट गति कला से भाग देने पर वर्तमान नक्षत्र की गत और ऐश्य (भोग्य) दण्ड आदि समय होगा ।

सम सार्द्धार्द्ध भोगानां भानां साभिजितामपि ।
विवाहादिषु गृह्यन्ते पादा भोगानुसारयः । ६५ ।

चन्द्र भुक्ति के समान, डेढ गुना या अर्द्ध भोग कला वाले अभिजित सहित २८ नक्षत्रों की भोग कला में ४ से भाग देने पर उनका एक पाद आता है ।

राश्यन्ते राशि सञ्चारो भान्ते भान्तर सञ्चरः ।
कर्तव्यो नात्र राशीनां नियमो नव भां घ्रजः । ६६ ।

स्थूलनियम के अनुसार एक राशि (१८०० कला) में ९ नक्षत्र पाद (अभिजित् रहित २७ नक्षत्रों के २७ x ४ = १०८ पाद) = १२ x ९) होंगे । अतः १२ राशियों के १०८ नक्षत्र पाद मध्यममान के हैं । सूक्ष्म नियम से राशि का भोग नक्षत्र पाद पूर्ण नहीं करता है ।

यथैव सिंह मधयोः प्रवेशेऽप्येकदास्थिते ।
सूक्ष्म मघा कर्कटान्त्यान् भगानष्टौ भुनक्तिहि । ६७ ।

स्थूल विधि से चौथी राशि कर्क के अन्त तक ४ x ९ = ३६ नक्षत्र पाद या ३६ ÷ ४ = ९ नक्षत्र या अश्लेषा तक नक्षत्र पूर्ण होंगे । अतः ५ वी सिंह राशि तथा १० वें मघा नक्षत्र का आरम्भ एक साथ होना चाहिये । लेकिन सूक्ष्म गणना के अनुसार मघा नक्षत्र सिंह से (८ अंश) पहले कर्क राशि में ही आरम्भ हो जाता है ।

ग्रहाणां गति लिप्ताभि बिम्बव्यास विलिप्तिकाः ।
हृताः संक्रान्ति नाड्यः स्युर्भानोस्ताश्चातिपुण्यदाः । ६८ ।

ग्रहों का केन्द्र बिन्दु किसी राशि के अन्तिम बिन्दु (जो अगली राशि का आरम्भ बिन्दु है) पर पहुंचने के समय को सूक्ष्म संक्रमण काल कहते हैं । पूर्ण संकर्मण समय वह है जब ग्रह का बिम्ब संक्रमण बिन्दु को स्पर्श कर उसे पूर्ण रूप से पार करता है । इसे निकालने के लिए बिम्ब के व्यास विकला में ग्रह की गति कला से भाग देने पर प्राप्त नाड़ी (दण्ड) आदि को संक्रमण समय कहते हैं । इस संक्रमण समय में सूर्य अत्यन्त शुभ फल देता है ।

भवन्ति मिश्र फलदाः स्व संक्रान्ति गता ग्रहाः ।
मण्डलस्यो भय स्थित्वा देवं नक्षत्र सन्धिगाः । ६९ ।

अपनी संक्रान्ति काल में ग्रह दोनों राशियों का (मिश्र) फल देते हैं । इसी प्रकार एक नक्षत्र से दूसरे नक्षत्र में जाते समय भी उनका बिम्ब (मण्डल) जब तक संक्रमण बिन्दु पर रहता है, ग्रह दोनों नक्षत्रों का फल देते हैं ।

विकला विधु बिम्बस्यार्केन्दु भुक्त्यन्तरेण च ।
चन्द्र भुक्त्या च चन्द्रार्क भुक्ति योगेन चैतयोः । ७० ।

चन्द्र बिम्ब की विकला को (१) रविचन्द्र की भुक्ति अन्तर (२) चन्द्र गति (३) चन्द्र और रवि गति योग, और

गत्यन्तरेण च हृता लब्धा दण्डादयः पृथक्
गत्य नक्षत्र योगानां करणानांञ्च सन्धयः । ७१ ।

(४) चन्द्र और रवि की गति का अन्तर-से भाग देने पर क्रमानुसार (१) तिथि (२) नक्षत्र (३) योग और (४) करण सन्धि का समय आता है । (तिथि और उसका आधा करण दोनों की गति एक प्रकार है अतिः सन्धि समय निकालने की विधि एक ही है ।

उत्पद्यन्ते यतोऽनन्ते तुङ्गापक्रम पातजा-
वीथयो मण्डला काराः स्वकक्षासु पृथग् विधाः । ७२ ।

उच्च, क्रान्ति, तथा पात के अपने रास्तों से अनेक वृत्ताकार कक्षायें बनती हैं ।

तद्ग्रहाणां गतिमार्गः शीघ्र मन्दोच्च कर्षजः ।
प्रतिमण्डल नामा स्यात् क्रान्तिजातोऽपमण्डलः । ७३ ।

शीघ्र और मन्दोच्च के आकर्षक की गति से ग्रह का जो मार्ग है उसे प्रतिमण्डल, क्रान्ति की गति का मार्ग अपमण्डल कहलाता है ।

विक्षेपमार्ग, पातोत्थः कथ्यते च विमण्डलः
विषुवन्मण्डला द्यास्तु वक्ष्यन्त्येऽन्यप्रकाशके । ७४ ।

क्रान्ति वृत्त से विक्षेप के कारण पात का मार्ग विमण्डल कहा जाता है । विषुव और अन्य बल के बारे में अगले अध्याय में कहा जायेगा ।

प्रतिलोम गतेः कल्पे क्रान्ति पातस्य पर्ययाः ।
दृक् समाः कल्पिताः खाद्रि चन्द्रा भ्राम्बुधिषण् मिताः (६४०१७०) । ७५ ।

ग्रहों की सामान्य गति की विपरीत दिशा में क्रान्ति पात (क्रान्ति वृत्त और विषुव वृत्त का संपात या मिलन बिन्दु) की गति होती है । एक कल्प में इसके पूर्ण भगण (चक्र) दृक् कर्म (लेखक द्वारा) के अनुसार (६४०१७०) हैं ।

भचक्रं संग्रहं सोच्चं सपातं सकलार्द्ध वगः ।
प्राक् पश्चात् प्रेरयत्येष क्रान्ति मार्गानुसार तः । ७६ ।

यह पात सभी ग्रह नक्षत्र तथा गोल के ऊपर है (क्रान्ति वृत्त तथा विषुव वृत्त के तलों का मिलन बिन्दु इन सबसे अधिक दूरी पर है) यह क्रान्ति वृत्त के तल में इन सभी भचक्रों को पूर्व से पश्चिम की तरफ चलाता है ।

सप्त विंशति भागान्तं प्राचीं मेषादिषट्क भाक् ।
प्रतीची प्रतितौल्यादि भार्द्धगः प्रक्षिपत्ययम् । ७७ ।

यह पात मेष आदि ६ राशियों में रहने पर नत्र और ग्रह आदि को पूर्व की तरफ २७ अंश ले जाता है । तथा तुला आदि राशियों में रहने पर पश्चिम की तरफ २७ अंश ढकेलता है ।

यत्प्रेरणा द्रवि मुखास्तारा-स्व स्वापमस्थिताः ।
विक्षिप्ता इव दृश्यन्ते स्वस्था नाद् याम्य सौम्ययोः । ७८ ।

इस पात के कारण रवि आदि ग्रह तथा अश्विनी आदि नक्षत्र अपनी अपनी क्रान्ति के आगे (शून्य क्रान्ति पर) रहने पर भी दक्षिण या उत्तर की तरफ विक्षिप्त दीखते हैं ।

इष्टैर्दिनै स्तद् भगणा गुणिताः कल्प सावनैः
उद् धृता भगणार्क्षादिः क्रान्तिः पातः स्फुटो भवेत् । ७९ ।

इष्ट दिन का क्रान्ति पात निकालने के लिये क्रान्ति पात के कल्प भगण को अहर्गण से गुणा कर कल्प सावन दिन (१५,७७,९१, ७८,२८,०००) से भाग देते हैं । भगण और राशि आदि क्रान्ति पात आयेगा ।

तद्राश्याद्यं चक्रशुद्धं ग्राह्यं तद् बाहु लिप्तिका
द्विशताप्ताः फलानिस्यु श्चलां शास्तेऽयनांशकाः । ८० ।

इस राशि आदि फल को १२ राशि से घटाकर शेष की भुजकला निकालते हैं । भुजकला को २०० से भाग देने से फल चलांश होगा । चलाशं ही अयनांश है ।

शिष्टाः षष्टि हतास्तेन हारेणा (२००)प्ताः कलादिकाः
साष्टविंशति षष्ट्यंशाः परा नव (९।२८) गति र्दिने । ८१ ।

२०० से भाग देने पर जो शेष बचा उसे ६० से गुणा कर २०० से भाग देने पर कला आदि फल होगा । एक दिन में अयनांश गति ९।२८ परा आदि है ।

करुणाब्द मुखेंऽशाद्या दृग् दृशो (२२) भूः (१) कुसायकाः (५१)
शराब्धयो (४५) द्विवेदाश्च (४२) धनाख्या वृद्धिशालिनः । ८२ ।

करणाब्द आरम्भ (१८६० ई. मकर संक्रान्ति लंकोदय) में अयनांश अंश २२ । १।५१।४५।४२ आदि था ।

तुलाधरादि चक्रार्द्ध स्थिते पातेऽय नांशकाः ।
ऋणा खास्तत्र मेषादि भार्द्धस्थे धन संज्ञकाः । ८३ ।

क्रान्तिपात तुलादि ६ राशि में रहने से अयनांश को ऋण (घटाना) तथा मेषादि ६ राशि में रहने से धन (योग) किया जाता है ।

सूर्य सिद्धान्ते-तत्संस्कृताद् ग्रहात्क्रान्ति छायाचर दलादिकम् ।
स्फुटं दृक् तुल्यतां गच्छे दयने विषुवद्वयम् । इति । ८४ ।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार-अयनांश संस्कृत ग्रह से ही क्रान्ति छाया, चरखण्ड आदि निकाला जाता है । क्रान्ति पात की गति को विषुवक्रान्ति (कर्क संक्रान्ति या उत्तर अयन तथा मकर संक्रान्ति या दक्षिणायन) के समय प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ।

सप्तर्षीणामगस्त्यस्य तथा संयमनी पतेः
तत्तत्पार्श्वस्थ ताराणां क्रान्ति पातो न चालकः । ८५ ।

सप्तर्षि, अगस्त्य और यम तथा इनके अति निकट के तारा गण की क्रान्ति पात के कारण कोई गति नहीं है ।

एतेषां भगणस्थानां स्वस्थानाद् यदि दृश्यते ।
प्राग् गतिश्चलितं चक्रं तत्पश्चादवधारयेत् । ८६ ।

इनकी गति नक्षत्र मण्डल के भीतर पूर्व की तरफ होने से समझना चाहिये कि नक्षत्र चक्र पश्चिम कीतरफ घूम गया है ।

प्रत्यग् गतौ पूर्व चारं क्रान्तिं तदनुसारतः ।
क्रान्ति मार्गात् शरं भानां दिग् भेदं तद् वशाद् बुधः । ८७ ।

सप्तर्षि आदि को पश्चिम गति दीखने का अर्थ है । भचक्रकी पूर्वः गति हुई है । इस धारणा के अनुसार ज्योतिर्विद नक्षत्रों की क्रान्ति वृत्त से शर या उत्तर दक्षिण विक्षेप का निर्णय करते हैं ।

छायार्कात् साधिता दल्पे करणागत भास्वति
तदन्तर मिताभागाः प्राक् चलांशाः प्रकीर्त्तिताः । ८८ ।

छाया द्वारा निकाले गये सूर्य से गणित साधित सूर्य के राशि आदि में जो थोड़ा सा अन्तर रहता है उसे ही अयनांश समझना चाहिये । इस अयनांश की गति भी पूर्व की तरफ है ।

करणा गत चण्डांशो रल्पोच्छायां विवस्वति
प्रत्यक् चलांश विज्ञेया स्तदन्तर मिताः स्फुटाः । ८९ ।

इसके विपरीत यदि गणित द्वारा निकाले सूर्य के अंश से छाया द्वारा निकाले सूर्य का अंश कम है, उनका अन्तर पश्चिम गति वाला अयनांश है ।

किं वायन द्वयेभानो रेक क्रान्ति स्थिति र्यदा ।
तत्काल स्फुट योगार्द्ध मयनान्त गृहादिकम् । ९० ।

कर्क और मकर संक्रान्ति के समय (अर्थात् दोनों अपनों में) जब दोनों समय रवि की क्रान्ति समान होगी, दोनों समय के रवि की राशि आदि का योग कर आधा करने पर अयनांश का परिमाण आयेगा ।

तस्य चायन संक्रान्ते र्न्तरस्था श्चलांशकाः
प्राक् पश्चादयने क्रान्तेर्धनर्णाख्या क्रमादयः । ९१ ।

निरयन कर्क और मकर संक्रान्ति से पहले सायन कर्क और मकर संक्रान्ति दीखने से अयनांश जोड़ा (धन) जायेगा अन्यथा घटाया जायेगा ।

प्राक् पश्चिमायतस्यैव ग्रह सञ्चार वर्त्मनः
पार्श्वयोर्वक्रता नाम क्रान्तिश्चापक्रमोऽपम् । ९२ ।

ग्रह कक्षा और विषुववृत्त दोनों पूर्व पश्चिम दिशा में फैले हैं तथा वे एक दूसरे को आकाश में जहां काटते हैं उससे क्रान्ति होती है । अतः ग्रह से ग्रह कक्षा के दक्षिण या उत्तर विषुववृत्त तक जो अन्तर (ध्रुव प्रोत वृत्त पर) है उसे क्रान्ति कहते हैं । इसका अन्य नाम अपम या अपक्रम भी है ।

खगोले कल्प्यते रेखा क्रान्ति मार्ग भिधा हि या
वैलोम्यात् संस्कृते चक्रे चलांशैरादि मध्ययोः । ९३ ।

आकाश गोल में कल्पित रेखा जिसे क्रान्ति वृत्त या मार्ग कहा जाता है उसमें बारह राशियां हैं । इनमें प्रथम और सप्तम राशि में अयन संस्कार करेंगे ।

सा न भो मध्यगा राशि त्रयान्ते सौम्यगा ततः ।
यावत् सार्द्ध त्रिपक्षांशा (२३।३०) न्नवभान्तेऽपि याम्यगा । ९४ ।

संस्कार के बाद मेष और तुला का जो स्थान होगा उससे ३ राशि पर (कर्क और मकर) क्रान्ति और विषुववृत्त का दो सम्पात होगा । सम्पात से ३ राशि के अन्तर पर क्रान्ति और विषुत वृत्त के बीच सर्वाधिक (परम) दूरी २३°।३०' होगी ।

क्रान्तिज्या परमातस्मात् खाद्रि विश्व (१३७०) कलोच्यते
चलांश संस्कृतानां या ग्रहाणां बाहु मौर्विका । ९५ ।

परम क्रान्ति (२३।३०) की ज्या (१३७०) होगी । चलाश संस्कार करने पर ही ग्रहों का भुजफल और ज्या निकाला जाता है ।

परमापक्रम ज्या (१३७०) घ्नी सोद् धृता त्रिज्यया (३४३८) थवा
शत (१००) घ्नी चन्द्र तत्वा (२५१) प्ता क्रान्ति ज्या साभिधीयते । ९६ ।

स्पष्ट ग्रह में अयनांश जोड़कर उसकी भुजज्या में परम क्रान्ति की ज्या (१३७०) से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देंगें अथवा (१००) से गुणा कर (२५१)से

भाग देंगे। वह स्पट ग्रह की क्रान्ति ज्या होगी।

तद् धनुः क्रान्ति कलिकाःक्रान्ति ज्या वर्ग वर्जितात्
त्रिज्यावर्गात् (१,१८,१९,८४४) पदंद्युज्या स्वाहोरात्रार्द्धकर्णकः। ९७।

क्रान्तिज्या का चाप करने से क्रान्ति कला होगी। त्रिज्या वर्ग से क्रान्तिज्या वर्ग को घटा कर शेष का वर्गमूल लेने पर द्युज्या होगी जो कि अहोरात्र वृत्त का व्यासार्द्ध है।

शतघ्नी खेट कोटिज्या भूतत्वा (१५१) प्ता सुभुक्तिभिः
गुणिता त्रिज्यया (३४३८) भक्ता लब्धाः स्युः क्रान्ति भुक्तयः। ९८।

स्फुट ग्रह की भुज कोटि ज्या को १०० से गुणा कर २५१ से भाग देकर फल को ग्रह की दैनिक गति से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर दैनिक क्रान्ति गति प्राप्त होगी।

अयनांशैः संस्कृतस्य ग्रहस्याद्यन्त भार्द्धयोः।
स्फुट क्रान्ति क्रमाद् गोलौ सौम्ययाम्या भिधौमतौ। ९९।

अयन संस्कृत ग्रह की प्रथम वृत्त पाद में उत्तर की तरफ क्रान्तिं होती है। तथा ३ य पाद में पुनः दक्षिण की तरफ क्रान्ति होगी।

भास्करस्यमते नास्ति प्रत्यक् चलन मायनम्।
ग्रहे तत्संस्कृते रेव धनत्वं वर्णितं यतः। १००।

भास्करा चार्य के मत से अयन की गति पश्चिम दिशा में नहीं होती है है अतः उन्होंने स्पष्ट ग्रह में अयनांश जोड़ने के बारे में ही कहा है।

तथापि ब्रह्म सौरोक्ते र्युक्ते श्चात्र मयादितम्।
प्राक् प्रत्यक् चलनं किन्तु छायार्काद् ज्ञास्यतेऽखिलम्। १०१।

तथापि ब्रह्म (स्फुट) सिद्धान्त तथा सूर्य सिद्धान्त के मत अनुसार मैने अयन की गति पूर्व और पश्चिम दोनों दिशाओं में मानी है। छाया द्वारा रवि साधन करने से सभी अच्छी तरह स्पष्ट होगा।

क्रान्तिज्या विषुवद् भाघ्नी द्वादशाप्ता क्षितिज्य का
त्रिज्या हताद्यु जीवाप्ता चरज्या थ चरासवः। १०२।

क्रान्ति ज्या को (विषुव छाया) पलभा से गुणा कर १२ से भाग देने पर क्षितिज्या होगी। उसे त्रिज्या (३४३८) से गुणा कर द्युज्या से भाग देने पर चरज्या होगी। इससे चरप्राण निकालें।

तद् धनुस्ते रुदक् क्रान्तौ धन हीनौ पृथक् स्थितौ।
सूर्य सिद्धान्ते-स्वाहोरात्र चतुर्भागौ दिन रात्रि दले स्मृते। १०३।

दिन रात्रि के चौथे भाग (१५ दण्ड) उत्तर क्रान्ति रहने पर चरप्राण जोड़ने से

दिनार्द्ध तथा घटाने से रात्रि का अर्द्ध होता है। दक्षिण क्रान्ति रहने पर १५ दण्ड से चर प्राण घटाने पर दिनार्द्ध तथा जोड़ने पर रात्रि अर्द्ध होता है।

याम्यक्रान्तौ विपर्यस्ते द्विगुणे ते दिनक्षपे। इति।
शर युक्तो नित क्रान्त्या भचन्द्रा देरपि स्वके। १०४।

दिनार्द्ध और रात्रि अर्द्ध का दुगुना करने से दिन और रात्रि का मान आता है। सूर्य सिद्धान्त का उद्धरण समाप्त) नक्षत्र, चन्द्र तथा अन्य ग्रहों का भी दिन और रात्रि का मान निकालने के लिए उनके शर को क्रान्ति में जोड़कर (शर और क्रान्ति एक दिशा में रहने पर) या घटा कर स्पष्ट क्रान्ति निकालेंगे तथा पूर्व नियम से कार्य होगा।

सूर्य सिद्धान्ते-विक्षेपापक्रमैकत्वे क्रान्तिर्विक्षेप संयुता।
दिऽभेदेऽन्तरिता स्पष्टा भास्करस्य यथागता। इति। १०५।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार-क्रान्ति में शर जोड़ने में घटाने में स्पष्ट क्रान्ति होती है। शर और क्रान्ति एक दिशा में होने पर जोड़ा जाता है। अलग दिशा में होने पर अन्तर होता है। सूर्य का शर नहीं होने के कारण उसका जोड़ने या घटाने का प्रश्न नहीं होता।

व्यवहृत्यै चरं स्थूलं पलात्मक मदूर्यते।
एक द्वित्रि गृहान्तो त्थं स्वदेशज चरत्रयम्। १०६।

व्यवहार के लिए चर का पलात्मक मान निकालने की स्थूल विधि कही जाती है। एक दो और तीन राशियों के अन्त में उनका अपना अपना चर कला निकालें।

आनीय त्रिभजाच्छोध्यं द्विभजं द्विभजा पुनः
एक राशिज मेवं स्याच्चर खण्ड त्रयं पृथक्। १०७।

३ राशि से २ राशि का चरकला घटाने पर ३ य चर खण्ड, २ राशि से १ राशि का चरकला घटाने पर द्वितीय चरखण्ड, तथा एक राशि की चर कला प्रथम चर खण्ड-इस प्रकार मेष आदि राशियों के तीन चर खण्ड मिलते हैं।

सायनार्कादि दो राशि भाग लिप्ताः पृथक् स्थिताः
एक राशि र्यदिन्यूनास्तदा भागाश्च लिप्ति काः। १०८।

अयन संस्कृत सूर्य आदि ग्रहों के भुज राशि अंश कला अलग अलग कर रखेंगे। यदि यह एक राशि से कम हो तो इसके अंश और कला अलग रखेंगे।

चरेणाद्येन गुणिताः शेषात् षष्ट्याप्त संयुताः।
त्रिंशद् विभाजिता शून्येराशि स्थाने फलान्विताः। १०९।

राशि, अंश और कला को अलग अलग प्रथम चार खण्ड से गुणा कर कला स्थान के फल को ६० से भाग देकर लब्धि को अंश में जोड़ते हैं तथा शेष को

कला रखते हैं । अब अंश में चरखण्ड से गुणा कर उसमें ३० से भाग देते हैं और लब्धि को राशि में जोड़ते हैं । शेष अंश फल होगा ।

तद् बाहुराशि रेकश्च तत्स्थाने प्रथमं चरम् ।
निधायां शादिकं क्षुण्णं द्वितीये न तथाहतम् । ११० ।

भुज में एक राशि होने पर स्थान में प्रथम चरखण्ड को रख अंश आदि द्वितीय चरखण्ड से गुणा कर ३० से भाग देंगे तथा काल को प्रथम चर खण्ड में जोड़ने से स्पष्ट कर होगा ।

फलात्यं प्रथमं स्पष्टं बाहु राशि द्वयं यदि
तत्रादि द्वियुतिः स्थाप्या तृतीय घ्नं लवादिकः । १११ ।

भुज यदि २ राशि है तो प्रथम और द्वितीय चर खण्ड का योग राशि स्थान में रख अंशादि को तृतीय चर खण्ड से गुणा करेंगे ।

त्रिंशदाप्तं युतं प्राग् वत् इत्थं स्याद्विस्फुटं चरम्
प्रत्यंशं तद् विभज्या वा सूर्यस्यै कैक राशि जम् । ११२ ।

फल को ३० से भाग देकर लब्धि को राशि में जोड़ने से स्पष्ट होगा । अथवा रवि का एक एक राशि का चर लेकर प्रति अंश का कितना चर है यह निकालेंगे ।

अथोदयान्तर पलान्यर्कात् सायन संस्कृतेः ।
क्रमाद् वृद्धि क्षयाढ्यानि राश्यर्द्धेषु त्रिषु त्रिषु । ११३ ।

अब सायन सूर्य से उदयान्तर पल (लंका में स्पष्ट सूर्योदय तथा मध्यम सूर्योदय में अन्तर) निकालने की विधि कही जाती है । (क्रान्ति वृत्त की वक्रता के कारण इसे विषुत वृत्त का समय समीकरण कहा जाता है । यह क्रम से तीन राशि अर्द्ध में बढ़ता है उसके बाद तीन राशि अर्द्धतक घटता है ।

सूर्या (१२) नव (९) च वेदाश्च (४) वेदा (४) नव (९)
भानवः (१२) त्रयमाद्यं वर्द्धमानं क्षीयमाणं ततस्तत्रयम् । ११४ ।

क्रान्ति और विषुत वृत्त के प्रथम संम्पात से प्रथम तीन राशि अर्द्ध पर्यन्त उदयान्तर फल में क्रमशः १२,९ और ४ की वृद्धि होती है । तथा चतुर्थ राश्यर्द्ध से प्रथम पाद (९०) अन्त तक उसी क्रम से ह्रास होता है अर्थात् क्रमशः ४,९,१२ की कमी होती है ।

स्व भार्द्ध फल संख्याघ्ना स्तिथ्या (१५) प्तास्तेष्विनांशकाः
फलं प्राक् फलतः स्वर्णं कार्यं वृद्धि क्षय क्रमात् । ११५ ।

जितने राशि अर्द्ध (१५°) पूर्ण हो गये हैं उनका फल निकालते हैं । राशि अर्द्ध के गत अंशों को राशि अर्द्ध फल से गुणा कर १५ से भाग देते हैं । फल को पूर्ण राशि अर्द्ध के फल में जोड़ते हैं (यदि उदयान्तर फल बढ़ रहा है) या घटाते हैं ।

तत्व (२५) संख्यार्क दोः कोटि साम्ये स्यादय सन्धिषु
गोलायन भवेन्नेषां शून्य तास्या श्चतुर्थतः । ११६ ।

जब रवि का भुजांश ४५° (३ x १५° या तृतीय राशि अर्द्ध) हो तो उसका परम उदयान्तर फल २५ पल (१२ + ९ + ४ पल) होता है, उसके बाद पुनः घटने लगता है । रवि के सम दिवस या उससे चौथी राशि (०°, ९०°, १८०°, २७०° भुजांश पर) उदयान्तर पल शून्य होता है ।

तद् घ्नी भुक्ति रहोरात्र पला (३६००) प्राप्त कलादिकम् ।
सायनार्कोजयुग्मांध्र्य कार्यं खेटेष्वृणं धनम् । ११७ ।

उदयान्तर पल को ग्रह की दैनिक गति से गुणा कर एक दिन की पल संख्या (३६००) से भाग देते हैं । फल को मध्यम ग्रह में जोडते हैं (यदि सूर्य का भुजांश सम पद में हो) अन्यथा घटाते हैं । यह लंका का मध्योदय कालिक ग्रह होगा ।

ग्रहस्तिष्ठति यद्राशा वयनांश परिष्कृताः ।
तस्योदयासु गुणिता भुक्तिराशि कलो (१८००) द्द्हृता । ११८ ।

ग्रह की राशि में अयनांश जोड़कर, सायन राशि का उदय असु निकालते हैं । उदय असु को ग्रह की दैनिक गति से गुणा कर राशि की कला संख्या (१८००) से भाग देते हैं ।

तत्फला ढ्या श्चक्र लिप्ताः (२१,६००) स्वाहोरात्रासवोमताः
ग्रहे वक्र गतौ तेन फलेन परिवर्जिताः । ११९ ।

फल को वृत्त ३६०° की कला (२१,६००) में जोड़ते हैं । यदि ग्रह मार्गी हो । वक्री होने पर (२१,६००) से फल को घटाते हैं । फल ग्रह का दिन परिणाम होगा अर्थात् उदय होने के फिर उतने समय बाद उदय होगा ।

स्थूलं तु नाड़िका षष्टिः (६०) सूर्य सावन वासरम्
तत्रांकशर (५९) हीनाः स्युर्ग्रहर्क्षस्व दिनासवः । १२० ।

सूर्य सावन दिन का परिणाम स्थूलतः (प्रायः) ६० दण्ड (नाड़ी) है । उससे ५९ लिप्ता कम एक नाक्षत्र दिन होता है । ग्रह का सावन दिन निकालने की विधि कही जा चुकी है ।

स्थूले दिने चेदुदयाः साध्यास्तात्कालिकाद्रवेः
सूक्ष्मेत्वौदयिकाद् भानो स्तदा तद् भादयः स्फुटाः । १२१ ।

राशि का उदय (जो राशि पूर्व क्षितिज पर आये) लग्न कहलाता है । उदय काल में जो सूर्य का राशि अंश हैं वही लग्न है । उसके बाद रवि गति कला से उत्पन्न असु को ६० दण्ड में जोड़कर सावन अहोरात्र का परिणाम निकालते हैं । इष्ट कालिक रवि से राशि का उदय (लग्न) निकालते हैं ।

क्रान्ति वृत्त द्वादशां शः ख खाष्टेन्दु (१८००) कलोऽ पिसन्
निजाहोरात्र वृत्तस्थो विषुवेऽतीव वक्रितः । १२२ ।

क्रान्ति वृत्त के १२ भाग (राशि) में १८०० कला हैं । यह राशि, कला विषुव के निकट अत्यन्त वक्र (विषुव वृत्त से ज्यादा कोण पर झुके) हैं ।)

ऋजुश्चायनयोरन्ते याति यत्पश्चिमां दिशम्
ततो नैक विद्या भुक्ति र्लग्नानां नाडिका त्मिका । १२३ ।

अयनान्त (विषुव से ९०° पूर्व या पश्चिम) क्रान्ति वृत्त सीधा (विषुव वृत्त के समानान्तर) है । अतः अहोरात्र वृत्त में क्रान्ति वृत्त के विभिन्न खण्डों के उदय का समय (दण्ड आदि) समान नहीं होता है ।

एक राशिर्भयुग्मस्य त्रिभानांज्यापृथक् पृथक् (१७१९।२९७८।३४३८)
कृतीकृता (२९,५४,९६१।८८,६८,४८४।११८,१९,८४४) स्ततः स्वस्व
क्रान्तिज्या (६८५।११८६।१३७०) वर्ग (४,६९, २२५।१४,०६,५९६।९००)
वर्जिताः (२४,८५,७३६।७४,६१,८८८।९९,४२,९४४।१२४) । १२४ ।

तन्मूलानि (१,५७,६३७।२,७३,१३९।३,१५,३१५) त्रिजीवाभि (३४३८) - गुणितानि (५४,२०,४०८।९३,९१,४१३।१,०८,४०,८७३) स्वया स्वमा

द्युवीवया (३३६९।३२२७।३१५३) विभक्तानि तत्फलानां
(१६०९।२१९०।३४३८) धनुं षि च (१६७५।३४७१।५४००) । १२५ ।

क्रान्तिवृत्त की राशियों का उदयमान निकालने के लिए एक राशि (३०°) २ राशि (६०°) तीन राशि (९०°) की अलग अलगज्या निकाल कर उसका वर्ग करें । प्रत्येक राशि की क्रान्तिज्या को निकाल कर उसका वर्ग करें । प्रत्येक राशि की ज्या के वर्ग से क्रान्तिज्या का वर्ग घटाकर अन्तर का वर्गमूल निकालें । इनको त्रिज्या से गुणा कर क्रमानुसार एक राशि, २ राशि, ३ राशि की ज्या से भाग दें । और तीनों फलों का चाप निकालें ।

अधोऽधः प्रविशोध्यानि क्रमव्युत्क्रमतोऽसवः ।
मेष कर्क्यादि लग्नानां भवन्ति व्यक्ष देशजाः । १२६ ।

३ राशि के चाप से २ राशि का चाप घटाने पर तृतीय राशि का तथा २ राशि के चाप से १ राशि का चाप घटाने पर द्वितीय राशि का उदय काल असु (प्राण) में आता है । इस प्रकार प्रथम या १ राशि (मेष) द्वितीय (वृष) और तृतीय (मिथुन) राशि का उदयासु आता है । कर्क आदि ३ राशियों का उदयासु उल्टे क्रम से अर्थात् कर्क क ३ य, सिंह (५) का २ य तथा कन्या (६) का प्रथम राशि का उदयासु होता है ।

यद्वा राशि त्रय द्युज्या (३१५३) त्रिद्व्येक भगुणा क्रमाः ।
स्व स्व द्युज्याहृता लब्ध धनुः प्राणः पृथक् स्थिताः । १२७ ।

दूसरी विधि में परम अल्प द्युज्या (३ राशि ९०° का) (३१५३) को तीन स्थानों पर क्रम से ३,२,१ राशि की ज्या (३४३८।२९७८।१७१९) से गुणा करने पर (१०,८४०,०१४।९३,८९,६३४।५४,२०,००७) आयेगा । इसे क्रम से अपनी अपनी ३,२,१ राशि की द्युज्या (३१५३।३२२७।३३६९) से भाग देने पर जो फल होगा उनका चाप निकालें (५ ,४००।३,४७१।१,६७५) जो क्रम से ३,२,१ राशि का उदयासु है ।

त्रिभासुभ्योद्वि भ प्राणाः शोध्या एक भजास्ततः
भुज त्रिद्व्येक राशीनां भवेयुरुदयासवः । १२८ ।

तीन राशि असु से २ राशि का असु, २ राशि के असुसे १ राशि असु घटाने पर क्रमशः ३ य और द्वितीय राशि का उदयासु मिलेगा । प्रथम राशि का पहले ही ज्ञात है ।

पञ्चाद्रि भूपा (१६७५) स्तर्कांकं घना
(१७९६) नन्दाक्षिगोभुवः (१९२९)
नन्दाक्षिगोभुवो (१९२९) ङ्कांक घनाः (१७९६)
पञ्चाद्रिषड् भुवः (१६७५) । १२९ ।

(१) १६७५, (२) १७९६, (३) १९२९, (४) १९२९, (५) १७९६ तथा (६) १६७५

गदिता उदयप्राणा मेषु तौल्यादि षट्कयो
उदयेऽस्त मये मध्ये समाः स्युः व्यक्ष देश के । १३० ।

क्रम से मेष आदि ६ राशि या तुला आदि ६ राशि के उदय असु (प्राण) हैं । उदय (पूर्वक्षितिज), अस्त (पश्चिम क्षितिज) , दशम (माध्यन्दिनरेखा पर ऊपर की तरफ,) चतुर्थ (नीचे की तरफ) पारं करने भी राशियों को यही समय लगता है ।

स्वदेश लग्न ज्ञानार्थ मधोऽधेः परिशोधनम्
चरासूनां तथा कार्यं ततः स्वचर खण्ड काः । १३१ ।

अपने स्थान पर राशियों का उदय असु निकालने के लिये पूर्वसूत्र के अनुसार उस स्थान के लिये प्रथम तीन राशियों के चर खण्ड निकालते हैं ।

अजादि त्रितयेत्याज्याः कर्क्यादि त्रितयेऽन्विताः ।
तुलादि त्रय एवाढ्या नक्रा दित्रय उज्झिताः । १३२ ।

इन चर खण्डों को क्रम से लंका से प्रथम और अन्तिम तीन राशियों के उदयासुओं से घटाते हैं तथा द्वितीय और तृतीय तीन राशियों के उदयासुओं से घटाते हैं ।

राशीनामुदया एवं स्वचरैः संस्कृताः क्रमात् ।
स्वदेश जाःस्यु सर्वत्र मध्यलग्नाः निरक्षजाः । १३३ ।

विषुवत रेखा के उदय असु या मध्य लग्न (माध्यन्दिन रेखा पर करने का समय) निकालने पर अपने स्थान के चर खण्डों से संस्कार कर अपने स्थान का उदयासु प्रत्येक राशि का निकालते हैं।

यावतोदेति कालेन राशिरेतस्य सप्तमः।
तावदास्तमयं याति स्थूलेयं क्षेत्र कल्पना। १३४।

स्थूल गणना या अनुमान के अनुसार पूर्व में जो राशि उदय होती है उसी समय पश्चिम में उसकी सप्तम राशि अस्त होती है।

होरा दृक् काणयोः कालः पूर्ववत् साध्यते हियः।
राश्यार्द्धत्रिलवक्रान्ति द्युज्याभिः सतु सूक्ष्मकः। १३५।

होरा (राशि का आधा १५ अंश) द्रेकाण (राशि का १/३ अर्थात १० अंश का उदयमान भी राशि के उदयमान की तरह निकाला जायेगा। इसके लिए प्रति राशि अर्द्ध या १/३ राशि की क्रान्ति द्युज्या निकालनी होगी अतः यह गणना राशि उदय से अधिक सूक्ष्म होगी।

चलांश संस्कृतः सूर्यो वर्तते यत्र मन्दिरे।
तद् भोग्यां शादयो निघ्नस्तल्लग्न प्रमिता सुभिः। १३६।

औदयिक स्फुट रवि का अयनांश संस्कार करें। वह जिस राशि में है इसका भुक्तांश और भोग्यांश निकालें। भोग्यांश को उस राशि के उदय मान से गुणा कर।

खरामै (३०) र्विहता लब्धाः प्रश्नाख्यास्तेऽसवोमताः।
इष्ट कालासुतः शोध्या स्ततस्तदपरोदयाः। १३७।

३० से भाग देने पर भोग्य असु (या प्रश्न असु) आते हैं। इसको सूर्योदय के बाद इष्ट काल से घटाते हैं। शेष से उसके बाद की राशियों के उदय काल क्रमानुसार घटाते हैं।

शोध्यास्त्वशुद्ध लग्नस्य भुक्त प्राणाः खवह्निभिः (३०)
क्षुण्णा अशुद्ध मानाप्ता भागाद्या गता भान्विताः। १३८।

अन्तिम शेष (जिससे अगली राशि का पूर्ण उदय मान न घट सके) को ३० से गुणा कर उस राशि से उदय मान से भाग देने पर इस राशि का अंश आदि आयेगा। इसमें गत राशि संख्या मिलायेंगे। तो सायन लग्न आयेगा।

संस्कृता वैपरीत्येन चलांशैर्भवति स्फुटः
लग्नः स्वदेश संसिद्धौराशि भाग कलादिभिः। १३९।

सायन लग्न में अयनांश का स्फुट से विपरीत संस्कार करेंगे। (स्फुटराशि में यदि जोड़ा था इससे घटायेंगे।) शेष अपने स्थान के इष्ट समय के लग्न का

राशि अंश कलादि होगा।

इष्ट कालासवोऽल्पाश्चेत् प्रश्नतस्त्रिंशदाहताः
लग्नाप्ता सायनार्काढ्या व्यायनाः स्यात्तनुः स्फुटाः। १४०।

भोग्य असु से इष्ट काल कम होने से उसी भोग्य असु को ३० से गुणा कर सायन स्फुट सूर्य के उदय असु से भाग देने पर जो अंश आदि आयेगा उसे सायन स्फुट रवि में जोड़कर उससे अयनांश घटाने पर स्फुट लग्न आयेगा।

चलांश संस्कृत स्पष्ट लग्न भुक्तांश लिप्तिकाः।
तन्मान घ्नाः खरामाप्ताः स्थाप्या भुक्तासवस्ततः। १४१।

अयनांश संस्कृत लग्न के भुक्त अंश आदि को उसी राशि के उदय मान से गुणा कर ३० से भाग देने से भुक्त असु होगा।

अधोऽधो लग्नमानाढ्याः सायनार्कस्य भोग्यकैः।
लग्नासुभिर्युवास्ते स्यु रिष्ट कालासवस्तनोः। १४२।

इसमें सायन सूर्य (उदय काल के) के बाद लग्न तक की पूर्ण राशियों का उदय असु जोड़ेगे। सायन सूर्य का भोग्य असु भी इससे जोड़ेगे। प्राप्त असु सूर्योदय के बाद का इष्ट काल होगा जिस समय वह लग्न उदय होगा।

दशम लग्न का नियम

मध्य लग्नोऽपि संसाध्यो निरक्षोदयजासुभिः।
स्वदिनार्द्धान्नित प्राणाः प्राच्याञ्चेत् चण्ड दीधितेः। १४३।

निरक्ष (विषुव स्थान) में राशियों के उदय मान से ही मध्य लग्न का भी साधन किया जाता है। दिनार्द्ध के पहले रवि जितने समय पूर्व में रहता है (दिनार्द्ध समय इष्ट काल) उसे पूर्व नत काल कहते हैं।

चलांशैः संस्कृतस्यैव भुक्त राश्यंशजा सवः
व्यक्ष देश भवा येस्युर्नता सुभ्यो विवर्जिताः। १४४।

पूर्वनत काल (असु में) से सायन रवि जिस राशि में हो उस राशि का विषुव स्थानीय उदयमान अनुसार भुक्त नत असु (राशि के भुक्त अंशों से) घटायेंगे।

ततो येराशयोऽधोऽध स्तत्प्राणाः प्रति लोमतः
शोध्या स्त्वशुद्धा असव स्त्रिंशद् घ्नाः पूर्व लग्नजैः। १४५।

अवशेष से उसके पूर्व राशियों के उदय असु उल्टे क्रम से घटायेंगे। शेष जो असु होगा (जिस से पूर्व राशि का उदय असु नहीं घटे) उससे ३० से गुणा कर।

प्राणै र्हताः फलांशाद्यं शोधितं त्रिंशदं शतः
यत्स्याद् गृहादिकं तच्च व्युत्क्रमाच्चल भागकैः। १४६।

अशुद्ध राशि (अपूर्व राशि) के उदय असु से भाग देने पर अंशादि फल होगा उसे ३० से घटायेंगे। अभुक्त राशि के पहले की राशि में शेष जोड़कर सायन मध्य लग्न होगा। उसमें विपरीत भाव से अयन संस्कार करने से

संस्कृतं मध्य लग्नः स्यान्मध्य भं खार्क इत्यपि
यदि पश्चान्नतः कालस्तदा सायन भास्वतः। १४७।

स्पष्ट मध्य लग्न होगा। इसे दशम लग्न या मध्यार्क भी कहते हैं। नतकाल पश्चिम होने पर (दिनार्द्ध के बाद जितना समय बीत चुका है वह पश्चिम नत है) नत काल से सायन रवि की राशि का

भोग्य भांश निरक्षासु नूर्ध्व मध्य भजानसुन्
प्रोज्झ्या शुद्धनत प्राणान् हत्वा गगन वह्निभिः (३०)। १४८।

विषुव मान से भोग्य काल घटायेंगे। फिर क्रम से अगली राशियों का विषुव उदयमान घटायेंगे। अशुद्ध राशि के शेष (जिससे उस राशि का उदय मान नहीं घंटे) को राशि के उदयासु से भाग दे ३० से गुणा करेंगे।

हत्वा तल्लग्न प्राणैर्लब्धां साध्यं भ पूर्वकम्।
विलोम संस्कृतं चेत्स्या च्चलांशै र्मध्यभं हितत्। १४९।

फल में पूर्ण भुक्त राशियां जोड़ कर उससे अयनांश घटाने से मध्य लग्न आयेगा।

प्राक् पश्चात् सायनार्कोत्थ भुक्त भोग्य सुतोयदि
अल्पानता सवस्तत्ते त्रिंशद्घ्ना स्तद् भजासुभिः। १५०।

पूर्व या पश्चिम नत निकालते समय यदि नत काल सायन रवि के भुक्तया भोग्य असु से कम हो तो उसे ३० से गुणा कर उसी राशि के उदया सु से भाग देते हैं।

उद्धृता लब्ध भागाद्यैः प्राक् पश्चान्नतयोरविः।
हीन युङ् मध्य लग्नः स्याद् दिनार्द्धे स्फुट एव सः। १५१।

लब्धि अंश आदि को पूर्व नत में रवि से घटायेंगे और पश्चिम नत में जोड़ने से मध्य लग्न होगा। दिनार्द्ध के समय स्फुट सायन रवि ही मध्य लग्न होगा।

इष्टैष्यो दय जान्तरासु गुणिताः प्राच्यश्चलां शादयः।
खाग्न्याप्ताः (३०) फल हीन युक् स्व उदयः स्यादेष्य ऊनेऽधिके।
यातेष्टान्तर निघ्न खाग्नि (३०) विहृत प्रत्यक् भगणैः र्गते।
लग्नेऽल्पेऽधिक ऊनयुक् स्वक इति स्याल्लग्नजातः स्फुटम्। १५२।

राशि का निरयन उदयासु निकालने की प्रणाली-अयनांश पूर्व की तरफ गति होने भचक्र पूर्व की तरफ घूमने) पर इष्ट राशि और उसके बाद की राशि की उदयासु के अन्तर में अयनांश से गुणा कर (३०) से भाग देते हैं। इष्ट राशि, का

उदयाशु बाद की राशि के उदयासु से कम होने पर फल को इष्ट राशि के उदयासु में जोड़ेगे अन्य था अधिक होने पर घटायेंगे ।

अयनांश (भचक्र) पश्चिम की तरफ गति होने के पर उस राशि और उससे पहले की राशि के उदयासु के अन्तर को अयनाश से गुणा कर ३० से भाग देते हैं । फल को इष्ट राशि का उदयासु उसके पहले की राशि के उदयासु से कम होने पर जोड़ेगे अन्यथा घटायेंगे ।

> **पश्चात् प्रागयनांश केषु तनवो व्यक्षे**
> **चरा (१।४।७।१०) द्व्यात्मकाः (३,६,९,१२)**
> **साक्षे मेष घटौ युवत्यनिमिषौ देशे स्थिराः स्युः क्रमात्**
> **इत्थं संस्कृत लग्न मानवशतः स्वाभीष्ट दिष्टे स्फुटी-**
> **कार्याश्चेत्तनवस्तदायन लवैर्नाद्यन्तयोः संस्कृतिः । १५३ ।**

अयन (भचक्र) की पश्चिम की तरफ गति होने पर चर राशि (मेष, कर्क, तुला और मकर) का सायन और निरयन उदय परिमाण विषुव देश में समान हैं । अन्य स्थानों में भी मेष और तुला का सायन और निरयन उदयमान समान है (इनके पूर्व की राशि का उदय मान समान होने के कारण उदयासु का अन्तर नहीं होता) ।

अयन (भचक्र) की पूर्व की तरफ गति होने पर द्वि स्वभाव (मिथुम, कन्या, धन, मीन) राशियों का विषुव पर तथा कन्या और मीन राशियों का अन्य स्थानों में सायन और निरयण उदय मान समान होंगे । (इनके पीछे की राशि का उदयमान समान होने के कारण अन्तर नहीं होता)।

> **रामाःषड् विशिखै (३।५६) कृताः कृतभुजै (४।२४) रर्थाः**
> **स्वरैः (५।७) सायका भूमृद् वह्निभि (५।३७) राशुगाः**
> **कृतगुणै (५।३४) र्बाणाश्च पक्षाक्षिभिः (५।२२)**
> **औड्रे भार्द्धयुगे क्रमोत्क्रम वशात् स्युर्लग्न दण्डाः पलैः**
> **सम्प्रत्यक्षि भुजायनांश कलनात् कथ्यन्त एतेस्फुटाः । १५४ ।**

उत्कल के मध्य में निरयन राशियों का लग्नोदय मान दण्ड और पल में क्रम से इस प्रकार हैं-मेष (३।५६)वृष (४।२४), मिथुन (५।७), कर्क (५।३७)सिंह (५।३४) कन्या (५।२२) उल्टे क्रम से दूसरे चक्रार्द्ध तुला आदि का है । अव २२° अयनाश के अनुसार सायन उदयासु कहे जाते हैं ।

> **वेदाग्रावकुभिः (४।१७) कृतारसशरै (४।५६) र्बाणाश्च**
> **नन्दाक्षिभि (५।२९) र्बाणाबाणगुणैः (५।३५) शराः शर भुजै**
> **(५।२५) रर्थाश्चनेत्राक्षिभिः (५।२२) र्बाणा रूपगणैः (५।३१) शरारस**
> **गुणै (५।३६) रर्थाः पृषत्केन्दुभिः (५।१५) र्वेदाबाणगुणैः (४।३५)**
> **कृताश्च शिखि भी (४।३) रामारसार्थैः (३।५६) क्रियात् । १५५ ।**

सिंह (५।२५) कन्या (५।२२) तुला (५।३१), वृश्चिक (५।३६) धनु (५।१४) मकबर (४।३५) कुम्भ (४।३) तथा मीन (३।४६)।

सर्वत्रायन सिद्ध मध्य तनवो वेदाः कृतार्थैः (४।५४)
शराभूपै (५।१६) स्तेद्विभुजै (५।२२) शराश्च विशिखै
(५।२) वेंदाः कृताम्भोधिभिः (४।४४)
वेदानन्द गुणै (४।३९) स्तुलादिषु पुनर्मेषादिवत् साम्प्रतम्
प्राक् पश्चादयनांश भूरि तनुता मालोच्य साध्या बुधैः । १५६ ।

विषुव स्थान पर राशियों का नियन उदयासु हैं मेष (४।५४)दण्ड , पल, वृष (५।१६) मिथुन (५।२२) कर्क (५।३५) सिंह (४।४४) कन्या (४।३९) । तुला आदि का यही मान उल्टे क्रम से होगा । यह मान २२ अयनांश के लिये हैं । अयनांश बदलने पर इनका मान भी बदलेगा ।

लेख्या गर्ग वशिष्ठ मुख्य गदिता राश्यादितः साधिता
अष्टाविंशति भध्रुवास्तदुपरि स्थूलाश्च लिप्तात्मकाः ।
(नक्षत्र ध्रुव राश्यादयः परिशिष्टे प्रदत्ताः)
सञ्चाराय नभः सदाञ्च पदकैस्त त्क्रान्ति पातोद्भवा
राश्याद्याः सगति ध्रुवै र्गुणनगै (७३) स्तत् सञ्चयः पातवत् । १५७ ।

अठाइस नक्षत्रों का ध्रुव यहां पर महर्षि गर्ग और वशिष्ठ आदि के अनुसार कहा गया है । राशियों का ध्रुव स्पष्ट है । लिप्ता आदि ध्रुव भी स्थूल मान के अनुसार कहे गये हैं । (यह सब परिशिष्ट में दिया गया है) परिशिष्ट में विषुव और क्रान्तिवृत्त पात की गति भी ७३ दिनों के लिए कही गयी है जिससे किसी भी इष्ट दिनों के लिए अयन गति की गणना की जा सकती है ।

लिप्ताद्या क्रान्ति पात स्वगति रिह वियत् (०) खं (०)
कुरामा (३१) द्विरामाः (३२) क्वर्था (५१) बाणाग्नयो
(३५) ऽङ्गया (६) न्यनलशरमिता (५३)
नाग बाण (२८) स्त्रिपक्षाः (२३) कल्याणादौ
तदध्रुवोदृग् गगन नगकलाः (७०२) कारणाब्दागृहाद्या
रामा (३) भूपा (१६) स्त्रिरामाः, (३३) शिखरिजलधयो
(४७) भानि (२७) पूर्णार्णवाश्च (४०) । १५८ ।

विषुव क्रान्ति वृत्त सम्पात की दैनिक गति लिप्तादि ।०।०।३१।३२।५१।३५।६।५३।२८।२३ है । कलियुग के प्रारम्भ दिन स्थिर मेष बिन्दु से क्रान्ति विषुव सम्पात (७०२) लिप्ता (कला) हट गया है । करणाब्द (१८६८) आरम्भ में क्रान्ति पात कामान राशि ३।१६।३३।४७।२७।४० । था ।

साध्या वा मध्यमार्कानुगत कलि समा गोकुषड्यंश भुक्तै-
र्गोभूपक्षे (२१९।१९) र्वियुक्ता द्विरथशत (१००)
हता भूपतत्व (२५१६) प्रहीनाः ।

षष्ठ् याप्तांशाहृतास्ते पुनरुदधिशरै (५४) र्हरतः शेष हीने -

स्तद्युग्मा ल्पाश्चलांशा विषम समफला नुक्रमात् स्वर्ण संज्ञाः । १५९ ।

कलियुग आरम्भ से गतवर्षों के अनुसार अयनांश निकालने के लिए सरल विधि इस प्रकार है । कलियुग वर्ष संख्या (मध्यम सूर्य के अनुसार) में उसका १/६१९ भाग जोड़कर २१९।१९ घटायेंगे । फल में (१००) से गुणा कर (२५१६) से भाग देने पर कलादि आयेगा । उसे (६०) से भाग देने पर अयनांश आयेगा । उसमें हार ५४ घटायेंगे ।

भूयः सायन भानु दो र्जलधिदृक (२४) खण्डोद् भवाः क्रान्तयो
द्युज्यश्चोत्कल मध्यजाः शितिगिरौ सिद्धा श्चरार्द्धासव ।
नैरक्षाउदयासवः क्रियमुखान् संसाध्य लेख्याः शिशो
र्बोधायाप्युदयान्तरा सव इमे स्पष्टाः स्यु रात्मान्तरैः । १६० ।

(क्रान्ति पातस्य पदकानि परिशिष्टे द्रष्टव्यानि)

परिशिष्ट में सायन स्फुट सूर्य की मेषादि तीन राशि के २४ खण्ड की ज्या, क्रान्ति कला, अहोरात्र वृत्त का व्यासार्द्ध, पुरुषोत्तमक्षेत्र का चरखण्ड असु, विषुववृत्त का उदयासु तथा उदयान्तर असु अभिज्ञ (बालकों) के बोध के लिए लिखी गयी है । ज्या खण्ड के बीच के क्रान्ति आदि अनुपात द्वारा आयेगें ।

प्राग्जन्मार्जित चित्र कर्म विसरं संसारिणां प्राणिनां
यः संज्ञापयितं सरोज जनुषा संसृज्य खेटव्रजम्
द्राङ् मन्द प्रवहापमादि विविध भ्रान्तौ नियोज्य स्वयं ।
तन्मुक्त्यै पुरुषोत्तमाख्य मसृजद्धामैत मीशं भजे । १६१ ।

पूर्व जन्म संचित कर्म तथा वर्तमान जन्म में उसका फल जन्म के बाद जानने के लिए जिस प्रभु ने ब्रह्म को ग्रह सृष्टि करने का आदेश दिया था । तथा ब्रह्म पुनः शीघ्र और मन्द, प्रवह, पात आदि सृष्टि कर ग्रह गति को नियमित करते हैं, और जिस प्रभु ने प्राणियों के उद्धार के लिये पुरुषोत्तम क्षेत्र की सृष्टि की है उस नीलाचल वासी जगन्नाथ की मैं वन्दना करता हूं ।

इत्युत्कलो ज्वल नृपाल कुल प्रसूत ।
श्री चन्द्र शेखर कृते गणितेऽक्षिसिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित तालबोधे
षष्ठोऽयमाद्यण्यु रवीन्दुगति प्रकाशः ।

इस प्रकार उड़ीसा के विख्यात राजकुल में उत्पन्न श्रीचन्द्र शेरवर द्वारा दृग्गणितैक्य तथा बालबोध के लिखे सिद्धान्त दर्पण में क्रान्ति, सूक्ष्म रवि और चन्द्र वर्णन युक्त षष्ठ प्रकाश समाप्त हुआ ।

सप्तमः प्रकाशः

त्रिप्रश्नाधिकारः

शंकुच्छायादि वर्णनम्

दिग् देश काल कलानार्थ मथा भिधास्ये
त्रि प्रश्न नामक मकर्कश वाक्य चक्रम्
सर्वोपकारकतया प्रथितं प्रकाशं प्राह्यं
मुदोपकरणारूय मति प्रवीणैः । १ ।

लोगों के आनन्द तथा उपकार के लिए इस त्रिप्रश्न नामक प्रकाश का आरम्भ करता हूं जिससे दिग, स्थान और समय का ज्ञान सरल भाषा में हो ।

दिग (दिशा) का निर्णय

दिक् साधनार्थ मवनौ सुसमी कृतायां
तोयैर्विलिरूय चतुरक्षि (२४) मितांगुलेन
सूत्रेण मण्डल मनुष्य समस्य मध्ये सूर्या
(१२)ङ्गुलं सुसरलं निदधीत शंकुम् । २ ।

दिग (दिशा) का निर्णय करने के लिए किसी स्थान को जल की सतह के समान समतल कर उसे लीप पोंछ कर उस पर २४ अंगुल व्यासार्द्ध का एक वृत्त खींचें । उसके केन्द्र बिन्दु पर १२ अंगुल ऊंचाई का एक शंकु रखें ।

तद् भाग्रमाविशति यत्र यतोनिरेति प्राक्
पश्चिम स्थिति इने किल तत्र विन्दु दत्वा
ततश्च शर बाहु समाङ्गु लेन (२५) सूत्रेण
बिम्ब युगलं विदधीत धीमान् । ३ ।

शंकु की छाया वृत्त की परिधि को दो बार स्पर्श करेगी (जब छाया की लम्बाई २४ अंगुल हो) दोनों बिन्दुओं पर चिन्ह देकर उन्हें एक रेखा से मिलायेंगे तथा उन्हें केन्द्र मानकर २५ अंगुल सूत्र (व्यासार्द्ध) का एक-एक वृत्त शींचेंगी ।

या तत्परस्पर समाक्रममोत्थ रेखा
मत्स्याकृति र्भवति तन्मुख पुच्छ मार्गः ।
चिन्हं भवेद् यम कुबेर दिशोरि होज्झि
प्राग् विन्दु संस्कृत रप क्रम जाल्प भेदात् । ४ ।

दोनों वृत्त एक दूसरे को दो बिन्दुओं पर काटेंगे तथा उनके बीच का क्षेत्र मत्स्य की आकृति का होगा । मत्स्य आकृति के मुख और पुच्छ स्थान पर इन दो बिन्दुओं को मिलाने पर उत्तर दक्षिण रेखा होगी । यह रेखा छाया की अगृगति रेखा (परिधि के दोनों बिन्दुओं की रेखा) पर लम्ब होगी । प्रथम और द्वितीय छाया बिन्दुओं के बीच के थोड़े समय में क्रांति गति बहुत कम होती है अतः उसे छोड़

दिया जाता है ।

याम्योत्तरांक परि यद्वलयद्वयोत्थ मीनेन वासव जलाधिपयो र्दिशौस्तः ।
दिग्द्वय सूत्र कृत वृत्त चतुष्टयोद्य न्मीनै र्भवन्ति विदिशोऽन्तरजाश्चतस्रः । ५ ।

दक्षिणोत्तर दिशा को दोनों दिशा में बढ़ा दिये पर यह वृत्त को परिधि पर उत्तर और दक्षिण बिन्दु पर मिलेगा । केन्द्र बिन्दु से इसके ऊपर लम्ब खींचने पर पूर्व और पश्चिम बिन्दु मिलेगा । पूर्व, पश्चिम, दक्षिण उत्तर दिशा जानने के बाद कोण जानने के लिये दो निकट की दिशाओं के बीच के चाप को दो भाग करेंगे ।

शङ्कुच्छाया कृति युति पदं कर्ण इत्युच्यते तद्
वर्गाच्छं कोः कृति (१४४) विरहिता त्स्युत्पदं भा प्रभायाः
वर्गेणोनात्पदमपि नरः शंकुभे कोटिबाहू
तद् युग्माग्रान्तर मभिहतं कर्ण संज्ञं सुधीरैः । ६ ।

शंकु वर्ग और छाया वर्ग का योग का मूल निकालने से कर्ण होता है । कर्ण वर्ग से शंकु का वर्ग (१४४) घटाकर उसका मूल निकालने से छाया (जिसे कोटि कहते हैं) होती है । कर्ण वर्ग से कोटि वर्ग घटाने पर मूल करने से भुज (शंकु) होता है । भुज और कोटि के अग्र को मिलाने वाली रेखा को कर्ण कहते हैं ।

वर्ग मूल निकालने की विधि-

योग्यं वर्गं चरम विषमा प्रोज्झय मूलं द्विनिघ्नं
कृत्वा हृत्वा समक ममुना तत्पराल्लब्ध वर्गम्
त्यक्ता पंक्तौ द्विगुणित मिदं न्यस्य लब्धं चलन्त्या
पंक्त्या प्राग्वद्भवति हरणे स्यात्पदं ञ्चार्द्ध मस्याः । ७ ।

वर्ग राशि के दाहिने से सम और विषम स्थान पर चिह्न देंगे । अन्तिम विषम राशि से जितनी संख्या का वर्ग घट सकता है, घटायेंगे । इस मूल को एक अलग लाइन में रखेंगे । इसको दो गुणा कर वर्ग की बाकी सम राशि से भाग देंगे । उसके शेष के बाद फिर ऊपर से विषम राशि उतारेंगे । उससे घटाते समय लब्धि का वर्ग घटायेंगे । फिर वर्ग का दो गुणा कर उस पंक्ति में जोड़ेगे । इस प्रकार अन्त में जो पंक्ति होगी उसका आधा उक्त राशि का मूल होगा ।

मूलादल्पः प्रभवति यदा मूल शेष स्त्रिनिघ्नो
लिप्ती भूतो रस (६) हृत सरुपेण (१) मूलेन भक्तः
लब्धा लिप्ता यदि पद समश्चाधिकोऽसौ द्विनिघ्नः
सैकोऽब्धि (४) घ्न त्रियुत पद हृत् स्यात्कलात्मापुरोवत् ।८ ।

(अवयव वाली राशियों -दण्ड लिप्ता या कला विकला आदि का वर्ग मूल) सावयव राशि के प्रथम खण्ड से जितनी वर्ग राशि घट सकती है घटायेंगे । शेष को लिप्ता बनाकर देखें कि वह उक्त वर्ग राशि के मूल से कम है या नहीं । कम होने पर उसको ३ से गुणा करें । उसको मूल के ६ गुणा में एक जोड़कर प्राप्त

संख्या से भाग दें। फल कला आदि होगा।

यदि प्रथम शेष मूल के समान या उससे अधिक हो तो उसे २ से गुणा कर १ दण्ड जोड़े। इसको मूल के ४ गुणा में ३ जोड़ने से प्राप्त संख्या से भाग देने पर कला आदि मूल होगा।

पूर्व मूल और यह मूल मिलकर पूरा मूल होगा। इस प्रकार सभी अवयव का मूल निकाला जायेगा।

आयुर्दाये गुणक कलिका मात्र भेदाज् द्वि सप्त (७२)-
त्यहनां भेदो भवति यदतः सूक्ष्म कर्मात्र कार्यम्
रूपादीनां कुरुत नवभिः फालकै र्घात् मस्मा-
न्मूलं लिप्तादि च बिकलितात् पूर्ववत् शेष कर्मा।९।

इस प्रणाली से आयुर्दाय निकालने के समय (फलित ज्योतिष में भोग्य नक्षत्र काल से १२० वर्ष का अनुपात) गुणन में १ कला का भेद आने पर आयु में ७२ दिन का अन्तर होता है। अतः सावयत राशि का मूल बहुत सावधानी से निकालना चाहिये। (यह स्थूल विधि है, और कुछ अशुद्धि रहती है। जिसे वर्ग निकालकर जांच करना पड़ेगा)

येषां येषां गुणन वशतो मूल मानेतुमिष्टं
ते ते हस्तांगुल मुखमया ज्याकलाद्यात्मकावा
अंका ग्राह्याः कृति पदविधौ रूप लिप्ता विलिप्ता
रूपाद्यं स्याद् विकलित कृते मूलमाप्तं खषड्भिः। (६०)। १०।

तीन तीन अवयव वाली दो राशियों का गुणन ९ स्थानों में होता है, गुणक के प्रत्येक अवयव को ऊपर की तीनों अवयवों के साथ अलग अलग गुणाकर छोटे अवयवों को एक एक स्थान दाहिने कर जोड़ते हैं। इस प्रकार प्रथम से आरम्भ कर पांच अवयव हैं . जिसमें रूप (प्रथम), लिप्ता (६० वां भाग), विलिप्ता (लिप्ता का ६० वाँ भाग) ग्रहण करते हैं। इनका पहले की भांति वर्गमूल निकालते हैं। या सूक्ष्मविधि से रूप, कला, विकला इन तीन राशियों का विकला कर उनका मूल निकालते हैं। मूल में ६० से भांग देने पर कला आदि मूल होगा।

ऋज्वी वृत्ता समपृथुशिखा मध्यमूला नृयष्टि
दीर्घाल्पावां गुलमिति मतो द्वादशांशः किलास्याः
किंवा कालानयन विधये शंकुमात्मांग यष्टि
कृत्वा च्छायां कलयत पुरो वर्तिनीं पाद मध्यात्। ११।

शंकु का वृत्त आधार तथा ऊपर अग्र तक का भाग समतल और शीधा होगा। अग्र और मूल के बीच की दूरी तथा आधार वृत्त की परिधि समान् होगी। शंकु का आकार कुछ भी हो सकता है पर उसकी ऊंचाई के १/१२ भाग को अंगुल कहा जायेगा।

समय निकालने के लिए अपने शरीर को भी शंकुं मानकर छाया के अग्र भाग को निर्दिष्ट स्थान में रखकर पाद मध्य से उनकी दूरी नापी जायेगी।

मृत्पिण्डं वा स्वनयन समोच्चाभ्रके विभ्रदेतद् -
भायां चिह्नं किमपि विदधत स्वांगु लिभ्यांत्यजेत्तम्।
यत्रैवासौ निपतति ततो यावदंकं प्रमातात्
नेत्रोच्चद्वादश लवमितै रंगुलैर्भा मवैतु। १२।

अपनी आंख तक की ऊंचाई का मृत्पिण्ड या स्तम्भ खड़ा कर उसका छायाग्र जहां होगा वहां चिह्न देकर उस स्तम्भ को छाया पर रखेंगे। यह पिण्ड अपनी छाया की दिशा में मूल से जितना दूर पड़ेगा, वहां से बाकी छाया की दूरी मापेंगे। इसके लिए स्तम्भ (नेत्रतक की ऊंचाई) का १/१२ भाग १ अंगुल गिना जायेगा। पिण्ड तथा उसके बाद माप का जोड़ ही छाया का पूरा परिणाम होगा।

छाया यस्मात् दिनकर तनु मध्य विन्दोः सदेष्टा
तद्बिम्बान्ते क्षण भुवि तमोऽभावतः सा न दृश्या।
तस्मात् कर्ण क्षिति विधु भुजां (२११) शेन युक्तैवकार्या
यद् बिम्बार्द्ध शिवभुज (२११) गुण मध्यंकर्णोऽरुणस्य। १३।

यहां जिस छाया से बारे में कहा जा रहा है वह सूर्य बिम्ब केन्द्र से उत्पन्न शंकु की छाया है। लेकिन जो रेखा छायाग्र तथा शंकु अग्र के बीच खींची जायेगी वह सूर्य के केन्द्र बिन्दु से होकर नहीं जाती। क्योंकि सूर्य बिम्ब के केन्द्र के अलावा बाकी भागों की अन्धकार पूर्ण नहीं है। उनसे भी छाया बनती है। अतः सूर्य केन्द्र की छाया की लम्बाई निकालने के लिए शंकु छाया में उसका १/२११ अंश जड़ते हैं। क्योंकि पृथ्वी से सूर्य की दूरी सूर्य व्यासार्द्ध का (२११) गुणा है।

शंकुर्नरः कोटि रूदीरितोऽत्र छाया प्रभाख्या भुजइत्यिभिज्ञैः।
श्रुत्याख्य मेतत् कृति योग मूलं क्षेत्रं निरुक्तं खलु कर्म भूमिः। १४।

शंकु को नरया कोटि भी कहा जाता है। प्रभा और भुज् छाया को कहते हैं। भुजवर्ग और कोटि वर्ग का योग कर उसका मूल होने से कर्ण होता है। इस कोटि, भुज तथा कर्ण से मौलिक (समकोण) त्रिभुज होता है।

प्राक् पश्चात् खार्द्ध गारेखा सममण्डल मुच्यते।
निरक्षोर्द्धगता या सा विषुवन्मण्डला भिधा। १५।

जो वृहत् वृत्त (गोल का सबसे बड़ा वृत्त जिसका केन्द्र गोल का केन्द्र होता है, यह गोल सतह की सरल रेखा है) पूर्व से पश्चिम खस्वस्तिक होकर जाता है उसे पूर्वापर वृत्त कहते हैं। पृथ्वी के विषुव का विस्तार करने पर आकाश विषुव होता है। इसका भी अक्षांश शून्य माना जाता है।

व्यक्षे क्षितिज संलग्नं ध्रुवद्वन्द्वं युतञ्च यत्
वृत्तमुन्मण्डलाख्यं तन्मेरोरुपति संस्थितेः । १६ ।

अपने स्थान के पूर्व, पश्चिम तथा दोनों ध्रव से जाता हुआ वृत्त ही उन्मण्डल है ।

विस्तृतानि निरक्षेतु तनूनि ध्रुव सन्निधौ ।
क्रमाद्युरात्र वृत्तानि, प्राक् परायत भावतः । १७ ।

पृथ्वी विषुव से मेरु (ध्रुव) की तरफ जाने पर अहोरात्र (सूर्य का अहोरात्र) वृत्त क्रमशः छोटा होता जाता है ।

नाड़ी वृत्तं वैषुवतं प्रतिव्यप मुखाश्च ये ।
मण्डलास्तेऽपि लेख्याः स्युर्भूगोले ख इवाखिलाः । १८ ।

बांस या लकड़ी का एक गोल बनाकर उसमें आकाश विषुव, क्रान्तिवृत्त ग्रह विमण्डल (कक्षा) तथा अन्य वृत्तों को उसमें यथा स्थान दिखायेंगें ।

इष्ट प्रसार्द्धजा भा चेत् शंकु मूलादुदक् स्थिता
तदातद् विषवच्छा यान्तर मग्रा भिधीयते । १९ ।

किसी इष्ट दिन के शंकु की मध्याह्न कालीन छाया यदि शंकु मूल से उत्तर की तरफ हो तो उस छाया और उसी स्थान की विषुव छाया के बीच जो अन्तर होगा उसे अग्रा कहते हैं ।

याम्यस्था चेद्युता साग्रा विषुवच्छाय या मता
सम मण्डल गे भानौ पल भै वोत्तराग्रका । २० ।

यदि छाया शंकु मूल से दक्षिण की तरफ हो विषुव छाया से इस का योग करने से उस दिन उस स्थान की अग्रा होगी ।

विषुवद् दिन मध्यस्थ द्युमणेर्गगनार्द्धतः
नति रक्षः पलस्तत्रो न्नतिर्लम्ब इतीर्यते । २१ ।

सम दिवस में सूर्य विषुव के ऊपर रहकर दिन रात करते हैं (विषुव रेखा पर लम्ब होता है) अतः इस दिन मध्यान्ह में सूर्य अपने स्वस्तिक से जितना उत्तर या दक्षिण होता है । वह उस स्थान का पलांश या अक्षांश है ।

ध्रुवस्योन्नति रक्षांशतुल्या लम्ब समानतिः ।
अक्षभा पलभाच्छाया विषुव दिन मध्य जा । २२ ।

पलांश ही सूर्य का विषुवं दिन मध्याह्न के समय नतांश होता हैहै । सूर्य उस समय दिगवलय से जितना ऊपर होता है, वह उन्नतांश होता है । नतांश या पलांश अक्षांश के बराबर तथा उन्नतांश लम्बांश के बराबर होता है ।

सूर्य सिद्धान्ते-शंकुक्षभा हते त्रिज्ये पृथक् कर्ण विभाजिते ।
लम्बाक्षज्ये तयोश्चापौ लम्बाक्षौ दक्षिणौ सदा । इति । २३ ।

१२ अंगुल शंकु तथा पलभा को त्रिज्या (३४३८) से अलग अलग गुणन कर पल कर्ण से भाग देने पर लम्बज्या और अक्षज्या होता है । इनका चाप निकालने पर वह क्रमश लम्बांश और अक्षांश होता है । यह लम्बांश और अक्षांश हमेशा हम लोगों के देश में दक्षिण होता है (भारत विषुव के उत्तर है) ।

स्वदेशाक्ष प्र भा ज्ञान वक्ष्ये सिद्धान्त सम्मतम्
दक्षिणोत्तर रेखा स्थाद् भुजोयः स्व दिनार्द्धजः । २४ ।

पल भा द्वारा क्रान्ति जानना-

अब मैं सिद्धान्त के अनुसार अपने देश (स्थान) का पलभा द्वारा सूर्य की स्पष्ट क्रान्ति निकालने की विधि बताता हूँ। दक्षिणोत्तर रेखा पर मध्यान्ह के समय जो भुज (छाया) होता है ।

तेन संगुणिता त्रिज्या कर्णाप्ता तद् धनुः कलाः
नता मध्याह्न सूर्यस्य भुजे सौम्येतु दक्षिणाः । २५ ।

उसमें त्रिज्या (३४३८) से गुणा कर कर्ण से भाग देकर उसका चाप कला में निकालें । यह मध्यान्ह सूर्य की मध्याह्न कालिक नतांश (खस्वस्तिक से नति कोण) है । यदि छाया अग्र (भुज) विषुव दिन (दिन, रात बराबर हों जब विषुव रेखा पर सूर्य हो) की छाया अग्र से दक्षिण है ।

याम्ये सौम्याः स्युरेताश्च क्रान्ति लिप्ताश्च भास्वतः
दिग्भेदे मिश्रितः साम्ये विश्लिष्टाः साक्षलिप्तिका । २६ ।

तथा याम्य सौम्य (विषुव) छाया उत्तर की है तो विषुव क्रान्ति कला (अंक्षाश) और नतांश कला को जोड़ दें । यह सूर्य की क्रान्ति कला है । जब दोनों विषुव छाया तथा नति छाया एक दिशा में हो तो अन्तर कर क्रान्ति कला निकालें ।

सूर्य सिद्धान्ते-तज्ज्याऽक्षज्याऽथ तद्वर्ग
प्रोज्झय त्रिज्या कृतेः (११८१९८४४) पदम्
लम्बज्याऽक्षगुणोऽर्कघ्नः पलभाप्तोऽवलम्बकः । २७ ।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार पाठान्तर (लम्बज्याप्तोऽक्षभाभवेत्) - पलभा विषुव छाया निकालने के लिए अक्षांश (जो मालूम है) की अक्षा ज्या बनाने, उसके वर्गों को त्रिज्या (३४३८) के वर्ग (११८१९८४४) । से घटाकर उसका वर्गमूल निकाले तो लम्बज्या निकलेगी । (पाठान्तर पलभा से भाग देने पर लम्बज्या निकलेगा) ।

छायार्का नयनं वक्ष्ये स्वदेशे ये पलांशकाः
मध्याह्नार्क नतांशाश्च दिक् समत्वे तदन्तरम् । २८ ।

छाया से सूर्य (स्पष्ट) लाने की विधि कहता हूँ। अपने देश का जो पलांश (विषुव छाया है) उसी दिशा में मध्यान्ह सूर्य की छाया (नतांश) हो तो दोनों (पलांश और नतांश) का अन्तर करते हैं।

दिग् भेदे इत्युति क्रान्तिस्तज्या त्रिगुण (३४३८) ताड़िता
परमापक्रम ज्या (१३७७)प्ता भुजज्यास्या धनुः कलाः । २९ ।

दिशा भिन्न होने पर पलांश, और नतांश को जोड़कर सूर्य कांन्ति निकालेंगे। क्रान्ति की ज्या को त्रिज्या (३४३८) से गुणा कर परम क्रान्ति ज्या (१३७०) से भाग देकर सूर्य का भुजज्या निकालेंगे। भुजज्या का चाप कला में निकालेंगें।

ग्राह्यास्ताः सायने ऽजादौ कर्क्यादौ भार्द्धतश्च्युता
तुलादौ भार्द्ध संयुक्ताश्चक्रादूनां मृगादिके । ३० ।

यह भुजांरा (भुज चाप कला) प्रथम पाद (मेषादि ३ राशि में) रहने पर वही उस समय का सूर्य है। द्वितीय पाद (कर्क आदि ३ राशि) में रहने पर ६ राशि से घटायेंगे, तृतीय पाद (तुला आदि ३ राशि) में रहने पर उसे ६ राशि में जोड़ेगे तथा चतुर्थ पाद (मकर आदि २ राशि में) में रहने पर १२ राशि से घटायेगे।

ततो ऽयनांश लिप्ताद्यै वैंपरीत्येन संस्कृताः
भवन्ति स्व दिनार्द्धार्क भुक्त स्फुट गृहादयः । ३१ ।

इस सायन रवि में विपरीत भाव से अयनांश संस्कार करने से (नक्षत्र का आदि बिन्दु मेष ०° वसन्त क्रान्ति पात से आगे रहने पर अयनांश घटायेंगे) निरयन मेष से स्फुट सूर्य राशि आदि मालूम होगी।

स्फुटार्कोनात् स्वमन्दो च्चात् फलं वामं स्फुटे रवौ
असकृद्धन हीनञ्चेत् स्यान्मध्यार्कः स्थिरत्व भाक् । ३२ ।

इस स्फुट रवि को अपने मन्दोच्च से घटाकर जो मन्द फल होगा उससे विपरीत प्रकार से स्फुट रवि का संस्कार करने पर (मध्य) रवि आयेगा। बार बार क्रिया करने पर मध्य रवि का मान स्थिर (ज्यादा शुद्ध) होगा।

सूर्य सिद्धान्तेः-स्वाक्षार्का पक्रम युतिर्दिक् साम्येऽन्तरमन्यया
स्यु र्नतांशारवेस्तेभ्यः साध्ये दोः कोटि मौर्विके । ३३ । इति

सूर्य सिद्धान्त से-मध्यान्ह काल की छाया और छाया कर्ण जानना (सूर्य की क्रान्ति और अक्षाश से)- अपने स्थान का अक्षांश और मध्याह्न कालिक सूर्य की क्रान्ति एक दिशा में हो तो जोड़ दें। और भिन्न दिशा में हो तो घटायें। यह सूर्य का मध्यान्ह कालिक नतांश होगा। इसकी भुजज्या और कोटिज्या बनायें।

शंकुमानांगुलाभ्यस्ते दोर्ज्या त्रिज्ये यथाक्रमम् ।
कोटिज्यया विभज्याप्तौ छायाकर्णा वहर्दले । ३४ ।

शंकु के अंगुलात्मक मान (१२) को भुज (नतांश की भुजज्या) से गुणा कर

कोटिज्या से भाग देने पर मध्याह्न की छाया तथा शंकु को त्रिज्या से गुणा कर कोटिज्या से भाग देने पर मध्याह्न का छाया कर्ण ज्ञात होगा ।

उन्मण्डलस्य खेटस्य क्रान्त्योरुत्तर याम्ययोः
क्षितिजोर्ध्वाधर स्थानो भवत्युद् वृत्तजोतरः । ३५ ।

उन्मण्डल पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण आकाशीय ध्रुवों से जाता वृहत् वृत्त है जो निरक्ष (विषुव रेखा) पर क्षितिज होता है । उन्मण्डल का उत्तरी भाग उत्तरी गोलार्द्ध (जैसे भारत) के क्षितिज वृत्त के ऊपर रहता है । उन्मण्डल के शंकु (विषुवत वृत्त पर शंकु) दक्षिण क्रान्ति होने पर ऊपरी भाग में रहता है । (ग्रह की स्थिति से उन्मण्डल पर लम्ब की लम्बाई को उन्मण्डल शंकु कहते हैं ।

विषुवद् भापमज्याघ्नी कर्णा प्तोद् वृत्तना भवेत्
त्रिज्योन्मण्डल शंकुघ्नी चरज्या सच यष्टिका । ३६ ।

$$\frac{\text{पलभा} \times \text{क्रान्तिज्या}}{\text{पलकर्ण}} = \text{उन्मण्डल शंकु ।}$$

$$\frac{\text{उन्मण्डल शंकु} \times \text{त्रिज्या}}{\text{चरज्या}} = \text{यष्टि}$$ (भूकेन्द्र से ध्रुव की दिशा में पलभा की लम्बाई)

यष्टि रुद् वृत्त शंक्वाढ्या तदूनोत्तर याम्ययोः
गोलयो क्रमतः शंकुर्भवति स्वदिनार्द्धजः । ३७ ।

उत्तर या दक्षिण गोल में इस यष्टि में उन्मण्डल में जोड़ने या घटाने से मध्याह्न शंकु अपने स्थान का होता है ।

अथवा वक्षमाणान्त्या गुणितोद् वृत्त शंकुना
चरज्याप्ता भवेत् शंकु रुदग् दक्षिण काष्ठयोः । ३८ ।

अथवा अन्त्या (बाद में कही गयी) को उनमण्डल शंकु से गुणा कर चरज्या से भाग देने पर मध्याह्न शंकु का मान निकलता है ।

सूर्य सिद्धान्ते-नतांश भुज् कोटिज्ये दृग्ज्या शंकुज्यके मते ।
क्रान्तिज्या विषुवत् कर्ण हताप्ता शंकुजीवया । इति । ३९ ।

नतांश की ज्या और कोटिज्या को क्रमशः दृग्ज्या तथा शंकुज्या कहते हैं । क्रान्तिज्या को विषुवत छाया कर्ण (पल कर्ण) से गुणा कर शंकु (१२) से भाग देने पर -

अग्रा माध्याह्निकी सैव सौम्य याम्या पमानुगा
स्वेष्ट कर्ण हता मध्यकर्णाप्ता ग्रेष्ट कालिकाः । ४० ।

मध्याह्न अग्रा होती है । क्रान्ति की दिशा के अनुसार यह दक्षिण या उत्तर होती है । (दक्षिण क्रान्ति का दक्षिण के अनुसार मध्यान्ह अग्रा) मध्याग्रा को इष्ट

छाया कर्ण) से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर कर्ण वृत्ताग्रा होती है। (मध्याह्न के अतिरिक्त दूसरे समय की)

किं वा मध्येष्टं कर्णा भ्यां क्रान्तिज्या गुणिता पृथक्।
लम्ब ज्याप्ता च मध्याग्रा स्वेष्टाग्रा भवति क्रमात्। ४१।

अथवा क्रान्ति ज्या को अलग अलग स्थानों पर रख कर त्रिज्या (३४३८) और इष्ट छायाकर्ण से अलग अलग गुणा कर दोनों जगह लम्बज्या से भाग देने पर क्रमशः मध्याग्रा और कर्ण वृत्ताग्रा (इष्ट समयको) होती है।

चलांश संस्कृते भानौ मेषादौ गोल उत्तरः
तुलादौ संस्थिते याम्यः पुरोक्तोऽप्यत्र कार्यतः। ४२।

सायन रवि मेषादि ६ राशियों में रहने पर उत्तर गोल तथा तुला आदि ६ राशि में रहने पर दक्षिण गोल में होता है।

सौम्य गोले यदार्काग्रा विषुवच्छायतोऽधिका
तत्तयोरन्तरं याम्य भुजः स्याच्छंकु मूलतः। ४३।

सूर्य उत्तर गोल में रहने पर कर्ण तृतीय अग्रा यदि विषुवत छाया से अधिक हो तो दोनों का अन्तर दक्षिण बाहु होगा (यह दिनार्द्ध में १२ अंगुल शंकु के मूल के दक्षिण होगा)।

न्यूना चेदन्तरं सौम्या बाहूर्याम्ये तु गोल के
अक्ष प्रभाग्रयो र्योगः सौम्योबाहु र्दिनार्द्धजः। ४४।

उत्तर गोल में सूर्य रहने पर जब कर्ण वृत्तीय अग्रा विषुवत् छाया से कम हो तो इसको पलभा से घटाने पर भुज होगा तथा यह १२ अंगुल शंकु मूल से उत्तर की तरफ होगा। सूर्य दक्षिण गोल में रहने पर पल भा और कर्ण वृत्ताग्रा का हमेशा योग होता है और यह बाहु उत्तर दिशा में होता है। (यह पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध के देशों जैसे भारत के लिए नियम है।

सममण्डल रेखायां यदा विशति शंकुभा
तदा भाकर्ण कालाः स्युः सममण्डलजा इति। ४५।

यदि शंकु छाया सममण्डल रेखा (पूर्वा पर रेखा) पर पड़े तो छाया, छायाकर्ण तथा काल (काल सूचक सूर्य का क्षितिज से उन्नत या उर्ध्वाधर से नत कोण) सभी सममण्डल में होते हैं। इस समय सूर्य की क्रांति अपने स्थान के अक्षांश के बराबर होती है)।

सममण्डल भा न स्या द्रवो दक्षिण गोलगे
अक्षाधिकेऽपमे सौम्ये न स्यात् तत्राल्पके भवेत्। ४६।

सूर्य की उत्तर क्रांति अपने अक्षांश से (पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध के स्थानों जैसे भारत के लिए) अधिक होने पर छाया हमेशा सममण्डल से दक्षिण होती

है । सूर्य की उत्तर क्रांति अक्षांश से कम या सूर्य दक्षिण गोलार्द्ध में रहने पर छाया सममण्डल से उत्तर होती है ।

१. छाया सममण्डल (पूर्व पश्चिम रेखा) पर-सूर्य क्रान्ति अक्षांश के बराबर

२. छाया सममण्डल से दक्षिण-सूर्य क्रांति अक्षांश से अधिक । क्रान्ति और अक्षांश दोनों उत्तर)

३. छाया सम मण्डल से उत्तर-सूर्य दक्षिण अक्षांश ।

लम्बज्या विषुवद् भाघ्नी सौम्य क्रान्ति ज्ययोद् धृता
सममण्डल कर्णः स्यात् किं वाक्षज्यार्क (१२) ताड़िता । ४७ ।

सम मण्डलीय छाया कर्ण निकालने के लिए पलभा में लम्बज़्या से गुणा कर उत्तर क्रान्ति ज्या से भाग देते हैं । अथवा अक्षज्या में १२ से गुंणा कर (अक्षांश की ज्या) - - -

तत्क्रान्ति ज्योद् धृता किं वा दिनार्द्ध श्रवणा हता
अक्षप्रभा दिनार्द्धाग्रा हृता कर्णः स एव हि । ४८ ।

उत्तर क्रान्ति की ज्या से भाग देते हैं । अथवा (सममण्डलीय छाया कर्ण निकालने के लिए) पलभा में दिनार्द्ध (छाया सममण्डल में होने पर यह शंकु के बराबर होगा ।)से गुणा कर दिनार्द्ध कालीन कर्ण-वृत्ताग्रा से भाग देते हैं । (दिनार्द्ध कालीन छाया का अग्र विषुव छाया अग्र से जितना उत्तर या दक्षिण है उसे कर्ण वृत्ताग्रा कहते हैं)

अक्ष कर्ण हृता सौम्य क्रान्ति ज्याक्ष प्रभो द् धृता
सममण्डल शंकुः स्यात् त्रिज्यावर्ग (११८१९८४४) जान्तरात् । ४९ ।

अक्षकर्ण (पल कर्ण) में उत्तर (सांम्य) क्रान्ति की ज्या से गुणा कर पल भा (अक्षप्रभा) से भाग देने पर सममण्डल शंकु आता है । सममण्डल शंकु के वर्ग को त्रिज्या वर्ग (१,१८,१९ ,८४४) से घटा कर

मूलं दृग् ज्या रविघ्ना सा शंकुभक्त भवेद् प्रभा
त्रिज्या सूर्य हतातेन (सममण्डल शंकुना) भक्ता प्रागु दिता श्रुताः ।५० ।

वर्गमूल निकालने पर दृगज्या निकलती है । दृग्ज्या में १२ से गुणा कर (सममण्डल) शंकु से भाग देने पर सममण्डल छाया निकलती हैं । त्रिज्या में १२ से गुणा कर उससे (सममण्डल शंकु से) भाग देने पर सममण्डल कर्ण होता है ।

$$\text{सारांश-सममण्डल छाया कर्ण} = \frac{\text{पलभा x लम्बज्या}}{\text{उत्तर क्रान्ति की ज्या}}$$

$$= \frac{\text{उत्तर अक्षांश की ज्या x १२}}{\text{उत्तर क्रान्ति की ज्या}} \quad = \frac{\text{पल भा x दिनार्द्ध कर्ण}}{\text{दिनार्द्ध कालीन कर्णवृत्ताग्रा}}$$

$$\text{सममण्डल शंकु} = \frac{\text{उत्तर क्रान्ति की ज्या x पल कर्ण}}{\text{पलभा}}$$

$$\text{दृग्ज्या} = \sqrt{\text{त्रिज्या}^{२} - \text{सममण्डल शंकु}^{२}}$$

$$\text{सममण्डल छाया} = \frac{\text{दृग् ज्या x १२}}{\text{सममण्डल शंकु}}$$

$$\text{सममण्डल कर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या x १२}}{\text{सममण्डल शंकु}}$$

सूर्य सिद्धान्ते -स शंकुः स्वाक्ष जीवाघ्नः
परक्रान्ति ज्यया (१३७०) हृतः । इति ।
फलं छायार्क बाहुज्या तद् धनुर्भुज केन्द्रकम् । ५१ ।

$$\frac{\text{सममण्डल शंकु x अक्षांश की ज्या}}{\text{परम क्रान्ति की ज्या (१३७०)}} = \text{सायन रविभुज ज्या}$$

ततः पूर्व वदानेयौ छायार्क स्फुट भास्करौ
अथोच्यते कोण शंकोः सिद्धयेऽग्रज्यकादिकम् । ५२ ।

सायन रवि भुजज्या से पहले की तरह चाय (कोण) निकाल कर स्पष्ट रवि (सायन) निकाला जा सकता है । अब कोण शंकु निकालने के लिए अग्रज्या आदि के बारे में कहा जाता है । (उत्तर दक्षिण से ४५° पूर्व या पश्चिम ४ बिन्दुओं को कोण कहते हैं । कोण वृत्त २ होने पर भी ४ माने जाते हैं ।

सूर्य सिद्धान्ते-स्वक्रान्तिज्या त्रिजीवा (३४३८) घ्नी लम्ब ज्याप्ताग्रमौर्विका
स्वेष्ट कर्णहता भक्ति त्रिज्य याप्रांगुलात्मिका । ५३ । इति ।

$$\text{मध्य अग्रा} = \frac{\text{क्रान्ति ज्या x त्रिज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

$$\text{कर्ण वृत्ताग्रा} = \frac{\text{मध्य अग्रा x इष्ट कर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$$

खमध्यात् कोण रेखास्थ सूर्यात् क्षितिज गामिनी
कोटिज्या कोण शंकुत्वेनोच्यते तद् विलोमगा । ५४ ।

ख मध्य (zenith) से क्षितिज के कोणीय बिन्दुओं के वृत्त (कोण वृत्त) पर जब सूर्य आता है तब सूर्य से क्षितिज वृत्त पर लम्ब को कोण शंकु कहते हैं । उस समय ख स्वस्तिक से रवि तक का कोण वृत्त का अंश सूर्य का नतांश या क्षितिज से रवि तक का वृत्तांश उन्नतांश है । इस उन्नतांश की ज्या या नतांश की कोटिज्या कोण शंकु का मान होता है ।

या विदिक् तत्र या छाया कोण छायेति सा मता
सौम्या पमे स्वाक्ष समे न स्यातां कोण शंकु भे । ५५ ।

सूर्य के विपरीत दिशा में १२ अंगुल शंकु की उस समय (सूर्य के कोणवृत्त

पर रहने के समय) जो छाया हो उसे कोण छाया कहते हैं। अपने (उत्तर) अक्षांश के समान सूर्य की उत्तर क्रांन्ति होने पर कोण शंकु की छाया नहीं होती।

यदि मध्याह्न गो भानु र्दक्षिण स्यां ततस्तदा
कोण शंकु स्तदाग्नेयां नैऋत्यां प्राक् पराह्नयोः । ५६ ।

यदि मध्याह्न सूर्य दक्षिण नत होता है तो पूर्वाह्न कोण शंकु को आग्नेय (पूर्व दक्षिण कोण) तथा अपराह्न कोण शंकु को नैऋत्य (पश्चिम दक्षिण कोण) शंकु कहते हैं।

स न तश्चेदुत्तरस्यां तदेशानमरुद्दिशाः ।
कोण शंकुप्रभाकर्णैः कोणाख्यं साध्यता नतम् । ५७ ।

मध्याह्न सूर्य उत्तर नत होने पर पूर्वाह्न तथा अपराह्न के कोणों को क्रमशः ईशान और वायव्य कोण शंकु कहा जाता है। यह जानने पर कोण वृत्तीय शंकु की छाया और कर्ण की सहायता से कोण वृत्तीय नतांश निकाला जा सकता है।

त्रिज्या वर्गार्द्धतो (५९,०९,९,९२२)ऽग्रज्या वर्गोनात् कृत वज्वभि (१४४)
निघ्ना वर्गदल (७२) युक् पलभा वर्ग भाजितात् । ५८ ।

त्रिज्यावर्ग के आधे से अग्रज्या वर्ग घटा कर शंकु (१२) के वर्ग से गुणा करें तथा फल को शंकु (१२) वर्ग के आधे और पल भा वर्ग के योग से भाग दें।

लब्धं तत्करणी नाम कर्म भूमौ निधायताम्
पुनर ग्रज्य कार्क (१२) घ्न विषुवच्छायताड़िता । ५९ ।

प्राप्त लब्धि (फल) को करणी कहा जाता है। उसे अलग रखें पुनः अग्रज्या को १२ और पल-भा से गुणा कर

द्व्यद्र्याप्ते (७२) द्ये नाक्षभा वर्गे णोद्धताक्ष फलं भवेत्
तद् वर्ग करणी योगात् मूलं अक्षफलो नयुक् । ६० ।

उसे पलभावर्ग और ७२ के भोग से भाग देते हैं। राशि को फल या अक्षफल कहते हैं। अक्षफल का वर्ग करणी में जोड़कर उसका वर्गमूल निकालने पर जो आता है उसे मूल कहते हैं। मूल को अक्षफल में जोड़ते या घटाते हैं।

क्रमतः कोण शंकुः स्यादक्षिणोत्तर गोलयोः
सूर्यसिद्धान्ते-तत्रिज्या वर्ग विश्लेषान्मूलं दृग्ज्या भिधीयते । ६१ ।

यदि कोण शंकु उत्तर या दक्षिण गोल (पूर्वा पर रेखा से) में हो, (सूर्य सिद्धान्त के अनुसार) त्रिज्या वर्ग से कोण शंकु का वर्ग घटाकर वर्गमूल निकालने से दृग्ज्या (कोणशंकुज्या) आती है।

सारांश - करणी $= \dfrac{१२^{२}\,(\text{त्रिज्या}^{२}/२ - \text{अग्रज्या}^{२})}{(१२^{२}/२ + \text{पलभा}^{२})}$

$$\text{अक्षफल या फल} = \frac{\text{अग्रज्या} \times १२ \times \text{पलभा}}{७२ + \text{पलभा}^२}$$

$$\text{मूल} = \sqrt{\text{करणी} + \text{अक्षफल}^२}$$

$$\text{कोण शंकु} = \text{अक्षफल} \pm \text{मूल}$$ (पूर्वा पर रेखा से सूर्य उत्तर होने पर योग नहीं तो घटावे)

स्वशंकुता विभज्याप्ते दृक् त्रिज्ये द्वादश हते
छाया कर्णौ तु कोणेषु यथा स्वं देश कालयोः । इति । ६२ ।

$$\text{कोण छाया} = \frac{\text{दृग् ज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}},$$

$$\text{कोण छाया कर्ण} = \frac{\text{त्रिज्या} \times १२}{\text{कोण शंकु}}$$

(सूर्य सिद्धान्त उद्धरण समाप्त)

संस्कृतस्यायनांशैर्या भास्वतो बाहु मौर्विका
सान्त्वापक्रम जीवा (१३७०) घ्नी लम्बज्याप्तोदयज्यका । ६३ ।

$$\text{औदयिक अग्रा} = \frac{\text{सायन रवि केन्द्रज्या} \times \text{परम क्रान्तिज्या}}{\text{लम्बज्या}}$$

यत्रोदयज्या भूरामसिद्धा (२४३१) स्तत्रायनान्तगः ।
विदिक्षुदयमस्तञ्च यात्यर्को विषुवे पुनः । ६४ ।

समदिवस में जब सायन सूर्य की केन्द्र भुजज्या (२४३१) होती है । (४५° अंश की ज्या = २४३१) तब अयनान्तर में रह कर रवि कोण वृत्त पर उदय (पूर्वाह्न में) तथा अस्त (अपराह्न में) होता है ।

सर्वत्र पूर्वापरयोः समेध्र्वोः परितो भ्रमन्
कोणस्थे प्राङ् नतं यावत् तावत् प्रत्यङ् नतं रवौ । ६५ ।

रवि विषुव में रहने पर मेरु तक सभी स्थानों में पूर्वापर रेखा (या आकाश वृत्त) के समानान्तर रहने के कारण पूर्वाह्न के कोण वृत्त का नतांश जितना होता है उतना ही अपराह्न के कोण वृत्त का नतांश होता है ।

क्रान्तिभा घटि का प्राद्यं सर्वं पूर्वं दिनार्द्ध जात्
भानो संसाध्य तत्काल प्रभवात् पुनरानयेत् । ६६ ।

मध्यह्न के पहले सूर्य से क्रान्ति छाया, समय, अग्र आदि निकालते हैं । दिनार्ध के समय स्थूल तथा क्रम से सूक्ष्म होने से इस प्रकार बार बार निकालने से फल ठीक होता है ।

अभीष्ट कालत श्च्छाया छायातः काल उच्यते
यज्ञाज्जन्मयज्ञादौ सलग्नाः स्युर्ग्रहाः स्फुटाः । ६७ ।

अब समय द्वारा छाया और छाया द्वारा समय निकालने की विधि बतायी जाती है । यह जानने से जन्म और यज्ञ आदि समय के समय लग्न और ग्रह स्फुट किया जा सकता है ।

इष्ट काल नतासुभ्यो डोत्क्रमज्या प्रसाध्यते
सा नतोत्क्रम जीवेति ज्ञेया वासर भागयोः । ६८ ।

इष्ट नतकाल से उत्क्रम ज्या निकालते हैं । नतकाल पूर्वार्द्ध या अपराह्न दिन का कौन सा भाग है, नतांश ३ राशि का उतना ही भाग होगा जिसकी उत्क्रम ज्या निकालते हैं ।

त्रिज्या चरज्या हीनाढ्या दक्षिणोत्तर गोलयो
अन्त्या नतोत् क्रम ज्योना सोन्नतज्या विधीयते । ६९।

उत्तर गोल में त्रिज्या और चरज्या का योग तथा दक्षिण गोल में उन दोनों का अन्तर अन्त्या होती है (पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध के देशों के लिए) अन्त्या से नत उत्क्रमज्या घटाने पर उन्नत ज्या होती है । इस का एक अन्य नाम इष्ट अन्त्या है ।

स्वाहोरात्रार्द्धकर्णेन गुणिता सात्रिजीवया
विभक्ता चेद् भवेच्छेदो लम्बज्याघ्नाः स भाजितः । ७० ।

इष्ट अन्त्या को उस दिन की द्युज्या (अहोरात्र वृत्त का कर्ण अर्थात् त्रिज्या) से गुणा कर त्रिज्या से भाग देने पर छेद या इष्ट हृति होती है । इष्ट हृति (छेद) को लम्बा ज्या से गुणा कर ।

त्रि भज्यया भवेत् शंकुस्तद् वर्ग परि शोधितात्
त्रिज्या वर्गात् पदं दृग्ज्या छाया कर्णे तु पूर्ववत् । ७१ ।

त्रिज्या से भाग देने पर शंकु (महाशंकु) होती है । त्रिज्या वर्ग से शंकु वर्ग घटा कर वर्गमूल निकालने से दृग्ज्या होती है । इस दृग्ज्या से पहले की तरह छाया और कर्ण निकालते हैं ।

सूर्य सिद्धान्ते - अभीष्ट छायया भ्यस्तात्रिज्या तत्कर्ण भाजिता
दृग्ज्या तद् वर्ग संशुद्धात् त्रिज्यावर्गाच्च यत्पदम् । ७२ ।

छाया से समय निकालने की विधि -इष्ट छाया को त्रिज्या (३४३८) से गुणा कर छाया कर्ण से भाग देने पर दृग्ज्या होती है । त्रिज्या वर्ग से दृग्ज्या का वर्ग घटा कर उसका वर्ग मूल निकालते हैं ।

शंकु स त्रिभ जीवाघ्नः स्वलम्बज्याविभाजितः । इति ।
किं वाक्षकर्ण गुणितः सूर्याः (१२) प्तच्छेदं संज्ञकः । ७३ ।

यह (वर्ग मूल) (महा) शंकु होता है । शंकु को त्रिज्या से गुणा कर लम्बज्या से भाग देने पर अथवा पल कर्ण से गुणा कर १२ से भाग देने पर फल हृति (इष्ट

हृति) या छेद होता है ।

सा त्रिज्या घ्नो द्यु जीवाप्त उन्नतज्या तयोनिता
स्वान्त्या नतोत्क्रमज्या स्यात् तस्या पश्चात् नतासवः । ७४ ।

इस हृति को त्रिज्या से गुणा कर द्युज्या से भाग देने पर उन्नतज्या (अन्त्या) होती है । अन्त्या से उत्क्रमज्या घटाने पर नत उत्क्रमज्या होती है । इसको असु बनाते हैं ।

स्व वासर दले प्राणास्तदूनाश्चोन्नतासवः
रसो (६) द् धृता विनाड्य स्युः प्राक् पश्चिम कपालयोः । ७५ ।

इन असुओं में ६ से भाग देने पर विनाड़ी होती है । अपने के पूर्वार्द्ध में होने पर यह गत विनाड़ी तथा अपराह्न में गम्य विनाड़ी होती है ।

प्रदर्श्यते विशेषोऽत्रे यद्यल्पा सप्तविंशते
भवेत् नतोत्क्रम ज्या तदन्त्या वर्गात्परित्यजेत् । ७६ ।

नत उत्क्रमज्या २७ से कम होनें पर अलग विधि है ।
अन्त्या (त्रिज्या + चरज्या) के वर्ग से

उन्नत ज्याकृतिं शेषान्मूलं त्रिज्यान्त्य जीवयो
योगार्द्धेन हतं भज्यादन्त्यया स्युर्नतासवः । ७७ ।

इष्ट अन्त्या (उन्नतज्या) का वर्ग घटाकर शेष का मूल निकालते हैं । मूल को त्रिज्या और अन्त्या के योग से आधे से गुणा कर अन्त्या से भाग देते हैं । फल नतासु हुआ ।

नतोत्क्रमगुण स्त्रिज्याधिक श्चेत् त्रिज्ययोज्झित
शेषात् क्रमगुणात् चापा त्रिज्या चापा (५४००) न्वितोऽ सवः । ७८ ।

नतउत्क्रम ज्या त्रिज्या से अधिक होने पर उससे त्रिज्या घटाकर शेष (क्रमज्या) का चाप निकालेंगे । इसको त्रिज्या चाप (५४०० कला) में जोड़ने पर नत असु होगा ।

एवं न तासव स्त्रिज्या धनुषो (५४००) यदि चाधिकाः ।
तदा तदूनिताः शेषात् क्रमज्या त्रिज्ययान्विता । ७९ ।

नत असु ५४०० असु से अधिक होने पर उससे ५४०० असु घटाकर शेष की क्रमज्या निकालेंगे । उसमें त्रिज्या जोड़ने से नत उत्क्रमज्या होगी ।

स्यान्नतोत्क्रम जीवाथ प्राक् सिद्धा ये नतासवः
स्वाहोरात्रासु गुणिताः सूक्ष्माश्चक्रासुभि (२१६००) र्हताः । ८० ।

नत असु को अपने अहोरात्र (सावन दिन) के असु से गुणा कर चक्र असु (२१६००) से भाग देने पर सूक्ष्म नतासु आता है ।

छायार्क स्या प्यथा प्रातः सममण्डल शंकुतः
वक्षम्या नयनं स्वाग्रा गुणिता लम्बमौर्विका । ८१ ।

अग्रातथा समशंकु से सायन रवि का साधन-अब कर्णवृत्तीय अग्रा तथा समसण्डल शंकु से सायन रवि निकालने की विधि बताता हूँ। इष्ट कर्ण वृत्ताग्रा को लम्ब्रज्या से गुणा कर-

इष्ट कर्णाङ् गुलैर्भक्ता क्रान्तिज्यातो भुजज्य का
ततः प्राग्वत् पदैश्छाया सूर्येऽशै रायनेः स्फुटः । ८२ ।

इष्ट छाया कर्ण (के अंकुल में लम्बाई) से भाग देने पर क्रान्ति ज्या होती है । उसे (त्रिज्या से गुणा कर परमक्रान्ति की ज्या से भाग देकर) पहले की भांति रवि की सायन भुजज्या निकालेंगे । वर्ष की किस तीन राशि में सायन रवि है । इसके आधार पर सायन स्फुट रवि निकालते हैं । (अयनांश का विपरीत संस्कार करने से निरयन स्फुट होता है) ।

त्रिभजीवा (३४३८) र्क (१२) गुणिता समबिम्बश्रवोहृता
सममममण्डल शंकुः स्यात् सोऽभ्यस्तः स्वाक्षंजीवया । ८३ ।

त्रिज्या (३४३८) को १२ से गुणा कर समशंकु के छाया कर्ण से भाग देने पर लब्धि समशंकु होती है । समशंकु को अपने स्थान की अक्षांश ज्या से गुणा कर-

परमापक्रमज्या (१३७०) ঘ্নः फलं भानोर्भुजज्यका
ततः केन्द्रं ततश्छाया रविः प्राग् वदसौ स्फुट । ८४ ।

क्रान्ति की ज्या (१३७०) से भाग देने पर फल सायन रवि की भुजज्या होती हैं । इससे ऊपर की तरह स्फुट रवि निकालते हैं ।

छाया भ्रान्ति पथो निरुप्यत इहं प्राज्ञैः समे भूतले
वृत्ते यत्तलशंकुना न घटते सर्वत्र तत् सर्वता ।
गोले तद् घटना भविष्यति यतस्तन्न स्मिल्पया वक्ष्यते ।
रात्रेः काल इहो च्यते ऽथ भयुतौ वक्तव्य ताराध्रुवैः । ८५ ।

प्राचीन आचार्यों के अनुसार समधरातल पर शंकु का छायाग्र एक वृत्त पथ में गति करता है । यह सब समय तथा सब स्थान पर ठीक नहीं है । शंकु छायाग्र के गतिपथ के बारे में गोलाध्याय में चर्चा होगी । अब रात्रि काल में समय जानने के लिए ग्रह और नक्षत्रों के योग का वर्णन किया जाता है ।

मध्ये व्योम गतैष्य दृक्ष वशतो निश्चित्य मध्यां तनुं-
तां संस्कृत चलांश कै र्गति घटी रानीय रात्र्यर्द्धजात्
सूर्याक्रान्त चलांश संस्कृत गृहाद् भोग्या घटीर्मध्यजा
स्तद् युग्मान्तर भुक्त मध्य भ घटीः संयोज्य सर्वास्ततः । ८६ ।

रात्रि कितनी बीत चुकी तथा कितनी बाकी है यह जानने के लिए ताराध्रुव

योग (बाद में दिया गया है) से आकाश मध्य में गत और गम्य (एष्य) नक्षत्र से मध्य लग्न (१० म लग्न) निकाल कर उसमें अयनांश का संस्कार करें। सायन दशम लग्न के निरक्ष उदयासु द्वारा भुक्त घटी आदि निकालें। रात्र्यर्द्ध कालिक सायन रवि की भोग्य घटी निकाले। इन दोनों (रवि और दशम लग्न में उदित नक्षत्र) के बीच की राशियों की उदय घटी उसमें (रवि की भोज्य घटी) में जोड़ते हैं।

> प्रोज्झ्यार्क द्युदलञ्च शिष्टघटिका रात्रौगताः स्युर्दिन
> स्यार्द्धेनाथ युता भवन्त्युदयतः सूर्यस्य ता निर्गताः
> इत्थं मध्य भ भोग्य काल तपना क्रान्तर्क्ष भुक्तान्तर
> क्षेत्राणाञ्च युतिः दिनार्द्ध रहिता स्यादेष्य कालोनिशः। ८७।

योगफल से रवि का दिनार्द्ध घटाते हैं। शेष फल रात की बीती घटी आदि होगी। योगफल में रवि का दिनार्द्ध जोड़ने से सूर्योदय से रात की इष्ट घटी निकलती है। इस प्रकार मध्य की भोग्य घटी, सूर्य की राशि की घटी और दोनों के बीच की की राशियों की उदय घटी आदि जोड़कर उससे रवि का दिनार्द्ध घटाने से और कितनी रात बाकी है। यह मालूम होगा।

> कालाद् यद्यपि लग्न सिद्धि रुदिता भूयोऽत्र कौतूहलात्
> याम्यो दिग्वलयोर्द्धवगो डुवशतो दृक् दृक् (२२) चलांश स्फुटाः
> ये प्रागुत्कल देशजा निगदिता लग्नात्पदीया न्यहं
> वक्ष्ये भुक्त पलान्यतः प्रमुदिताः स्युर्योग तारा विदः। ८८।

दिन और रात्र के समय से लग्न निकालने की विधि कही जा चुकी है। अब २२ अंश अयनांश के लिए उड़ीसा याम्योत्तर वृत्त पर रात में नक्षत्र देख कर उस समय कौन लग्न स्फुट (दीख) हो रहा है। यह कहा जाता है। यह जानने से प्रत्यक्ष ज्योतिषी (प्रयोग या वेध करने वाले) अत्यन्त प्रसन्न होंगे तथा अनेकों का कौतूहल शान्त होगा।

> यन्नक्षत्र गतार्क वासवदले यः स्याद्विलग्नः स्फुटः
> तस्मिन् भे गगनार्द्धगे सहिभवेत् तत्सप्तमोऽस्तं व्रजेत्।
> विष्णो (२२) खार्द्धगतेऽजलग्न जपलान्यम्भोधिनन्दा (९७) घने
> तस्मात् खाकृतयः (२२०) प्रचेतसि (२४)
> वृषाद् व्योमाष्ट ने त्राणि (२८०) च। ८९।

जिस नक्षत्र में रवि के रहने पर दिनार्द्ध निकाला जाता है। उस दिनार्द्ध के बराबर इष्ट समय (दोपहर को) को नक्षत्र आकाश मध्य (याम्योत्तर) में होता है। उस समय (दिनार्द्ध के समय के) लग्न (उदय लग्न) की सप्तम राशि अस्त लग्न होती है।

श्रवण (२२) से आरम्भ कर जो नक्षत्र याम्योत्तर वृत्त पर आता है। उस समय

किस लग्न का कितना उत्कल (मध्य)में बीतता है यह लिखा जा रहा है।

(२२) श्रवण-मेष ९४ फल, (२३) घनिष्ठा-मेष-२३० पल (२४) शतभिषा वृष- २८० पल

प्राग् भाद्रे (२५) ऽब्धि दृशो (२४) ब्रजन्ति मिथुनात्
तस्माद् अहिर्बुध्न्यभे (२६) वेदाद्रिक्षितयो (१७४)ऽथ
कर्कटतनोः पौष्णे (२७) नवाम्भोधयः। (४९)
अश्विन्या (१) स्वरवासवा (१८७)
श्चयमभे (२) ऽङ्गार्थ श्विनो (२५६) आग्निमे (३)
सिंहा दद्रि रसा (६७) स्वरघना (१७७)
श्चन्द्रो (१) स्त्रियालोचने (२)। ९०।

भाद्र पद- मिथुन १७४ पल (२७) रेवती कर्क ४९ पल (१) अश्विनी कर्क (१८७) पल (२) भरणी-कर्क २५६ पल (३) कृत्तिका सिह ६७ पल (४) रोहिणी-सिंह (१७७) पल (५) मृगशिरा-कन्या २ पल

रौद्रे (६) ऽस्याः करिमार्गणा (५८) अदितिभे (७) द्वे (२)
तौलितोऽस्माद् गुरौ (८) वेदेन्द्रा (१४४) भुजगे (९)
ततोब्धिधृतयः (१८४) पित्र्य (१०) रदाः (३२) कीटतः योना
(११) वद्रि नवेन्दवो (१९७)ऽयमसरे (१२) पञ्चाष्ट पक्षा
(२८५) स्त तो हस्ते (१३) चापत इक्षणार्त्तव
(६२) इभांक क्षेणाय (१९८) स्त्वष्टरि (१४)। ९१।

(६) आर्द्रा-कन्या (५८) पल (७) पुनर्वसु-तुला २ पल (८) पुष्य-तुला १४४ पल (९) अश्लेषा-तुला (१८४) पल (१०) मघाः वृश्चिक-३२ पल (११) पूर्वाफाल्गुनी-वृश्चिक १९७ पल (१२) उत्तरा फाल्गुनी वृश्चिक २८५ पल (१३) हस्त-धनु (६२) चित्रा-धनु पल (१४) १९८ पल

स्वातौ (१५) नक्रत ईक्षणेन्दव (१२) इतः शक्राग्नि (१६) भेऽक्ष्मेश्विला
(१५१) मैत्रे (१७) ऽगांग दृशो (२६६) मघोनि (१८) घटतोऽद्रयंगानि
(६७) मूले (१९) ततः क्ष्माग्न्य क्षीणि (२३१) जले (२०) ऽण्डजात्
खवसवो (८०) वैश्वे (२१) ऽक्षिबाणेन्दवो (१५२) यातानागत
भान्तरात्तनु पल स्वर्णत्वमा लोच्चताम्। ९२।

(१५) स्वाती-मकर १२ पल (१६ विशाखा-मकर १५१ पल (१७) अनुराधा -मकर २६६ पल, (१८) ज्येष्ठा-कुम्भ ६७ पल (१९) मूल-कुम्भ (२३१) पल (२०) पूर्वाषाढ़ (मीन ८० पल (२१) उत्तराषाढ़-मीन ८० पल (२१) उत्तराषाढ़- मीन १५२ पल इन नक्षत्रों के उदय काल के अन्तर से समय निकाला जा सकता है।

सत्सिद्धान्त शिरोमणौ यद वदद् व्युत्पत्तये भास्करः
क्षेत्राणां भुजकोटि कर्ण घटनां नाना विधां सुक्ति भिः

यत् प्रश्नोत्तर विस्तरेण गणितं दिग्देश कालाप्तये
तद् व्याख्या सहितं यतोऽस्ति हि मयातत् प्रोज्झि वाग् गौरवात् । ९३ ।

भास्कराचार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि में इस त्रिप्रश्नाधिकार में बहुत प्रकार से भुज, कोटि, कर्ण द्वारा अनेक प्रकार की घटनाओं का वर्णन किया है तथा प्रश्नोत्तर द्वारा अनेक सन्देहों का निराकरण किया है । यह सब वासना भाष्य सहित सिद्धान्त शिरोमणि में रहने के कारण मैं इस ग्रन्थ में विस्तार भय से पुनः नहीं लिखा रहा हूँ ।

सिद्धान्त्यचयादलम्भि मय कायो यो विशेषो दृशा
तुल्यस्तल्लिखितं मदिष्ट मिहतत् तत्सांगता सिद्धये
सर्वग्रन्थ कृति र्वभूव गणिते गोलान्विते हृद्गते
क्षेत्राणा मुपपत्तयो हि सुलभा स्तत् किं वचो विस्तरैः । ९४ ।

अन्य ग्रन्थों की तुलना में जिन विषयों पर मेरा स्वतन्त्र विचार है । और जिन घटनाओं (ग्रह स्थिति) को मैंने अपनी आंखों से देखा है, इस प्रकार के अनेक विषयों की इस ग्रन्थ में विशेष चर्चा की गयी हैं । हृदय में गोल तथा गणित का दृढ़ ज्ञान होने से ग्रन्थ आसानी से समझा जा सकता है, और गणित आदि नियमों की उपपत्ति (प्रमाण) कठिन नहीं होगी। अतः उपपत्ति आदि लिखकर ग्रन्थ का कलेवर बढ़ाना मैंने आवश्यक नहीं समझा ।

यत्राष्टाब्धि कलाढ्य नन्दकु (१९।४८) लवेरक्षः समक्षीकृतौ
व्यक्षात् सार्ध रसर्क्षे कैः (२७६।३०) ख खं भुजै (२००) र्भूमध्य रेखांकतः
सिद्धं योजनकैः स्वदेश विवरं तत्रासिता दौशल-
ल्लौलेला कमला विलास्यल मलं कुर्यान् मदीयं मनः । ९५ ।

उत्तर अक्षांश (१९।४८) अर्थात् विषुवत् रेखा से (२७६ १/२) योजन उत्तर तथा भारतीय मध्य रेखा से (२००) योजन पूर्व देशान्तर पर स्थित नीलाचल पर्वत (पुरी) में चञ्चल नेत्र और हास्य वाली लक्ष्मी जी के साथ क्रीड़ा करते हुए श्री जगन्नाथ मेरा मनोरथ पूर्ण करें ।

इत्युत्कलो ज्ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
श्री चन्द्र शेखर कृते गणिते ऽक्षि सिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
त्रिप्रश्नवान् मुनिमतः शमितः प्रकाशः । ९६ ।

इस प्रकार उड़ीसा के विख्यात राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्रशेखर द्वारा गणना तथा दृश्य में समता के लिए तथा बालबोध के लिखे सिद्धान्त दर्पण में तीन प्रश्नों के मुनिमत से विचार सहित सातवां प्रकाश समाप्त हुआ है ।

अष्टमः प्रकाशः

चन्द्र ग्रहण वर्णनम्

स्मार्त्ताः सांहितिकाः पुराणनिपुणा स्तन्तेक्षका वैदिकाः
स्नानार्च्चा जाप मोह दान कृतिनां यस्मिन्ननन्तं फलम् ।
प्रा चुर्येश्च महाचमत्कृति करो लोकस्य तिथ्यादिके
विश्वासावह मिन्दु तिग्म महसो र्वक्ष्याम्यहं तं ग्रहम् । १ ।

ग्रहण के समय स्नान, जप होम और दानादि से अनन्त फल होता है। ऐसा वैदिक तान्त्रिक, व पौराणिक, संहिताकार तथा स्मार्त लोगों का मत है। ग्रहण की शुद्धता के कारण लोग चमत्कृत् होते हैं, तथा तिथियों पर विश्वास करते हैं। अतः इसके महत्व के कारण अब मैं ग्रहण (चन्द्र और सूर्य) का वर्णन करता हूँ।

पक्षान्त साधित विपात विधोर्भुजांशा
विश्वा (१३) ल्पका यदितदा ग्रहसम्भवोऽस्य
तस्माद् विधौ शिखितमोन्यतरान्तिकस्थे
चिन्त्यो ग्रहेऽग्निकु (१३) लवा वधि पूर्णिमान्ते । २ ।

पूर्णिमान्त में चन्द्र राहु या चन्द्र केतु का साधन कर चन्द्र से राहु या चन्द्र से केतु का अन्तर करें। इस चन्द्र (अन्तर) का भुजांश १३ से कम होने पर चन्द्र ग्रहण की सम्भावना रहती है। अर्थात् पूर्णिमान्त चन्द्र का राहु या केतु से १३ अंश से कम अन्तर होने पर ही चन्द्रग्रहण हो सकता है।

सूर्य ग्रहोधृति (१८) लवान्त समान्त जेऽज्ञे
ग्रस्तो मतोऽन्तिक वशात् शिखिनाच गुणिते
प्रत्यक् पुरोनत गुणांश (३) युतो न सूक्ष्म ।
दर्शान्त कालिक सुधाकर दिक् शरस्य । ३ ।

इसी प्रकार अमान्त (अमावस्या के अन्त) में चन्द्र और चन्द्रपात का साधन कर चन्द्रमा से पात (राहु या केतु) का अन्तर १८ अंश से कम होने पर सूर्य ग्रहण की सम्भावना रहती है।

(पृथ्वी केन्द्र से) अमान्त निकालते हैं। इस अमान्त काल के चंन्द्रमा की पश्चिम नत नाड़ी का १/३ अमान्त काल से घटाने पर इस संस्कृत दर्शान्त काल में पुनः स्फुट चन्द्र का साधन करते हैं।

तत्काल वित्रिभ तनूनत बाहुजीवा
षष्ठ्यंश कस्य च युते र्वियुते च शेषात्
दिक् साम्य भेद कनुषः क्रमशः स्फुटेषौ
न्यूने कृताग्नित (३४) इन ग्रह सम्भवः स्यात् । ४ ।

पुनः दर्शान्त काल का वित्रिभ (दशम) लग्न निकालते हैं । उसकी नतज्या का १/६० कर इस स्फुट चन्द्र (दर्शान्त काल के) में जोड़ते हैं, जब चन्द्र और नत एक दिशाओं में हो, या भिन्न दिशा में होने पर घटाते हैं । इसका परिमाण भी ३४ से कम होने पर सूर्य ग्रहण की सम्भावना रहती हैं ।

तत्क्वापि याम्यनति भूरितयोत्तरक्षौ
सार्द्धांशके (१।३०)ऽपिस भवेदपि निःशरत्वे
न क्वाप्यथो नयन मण्डलगेऽपवर्ते
स स्याद् विपात शशिदोष्ण नगांश (७) तोऽल्पे । ५ ।

(इति ग्रहण सम्भवः) कभी कभी याम्य नति (याम्योत्तर वृत्त में नति) उत्तर (१° ३०') अंश से कम हो तो सूर्य ग्रहण हो सकता है । जब दृग्वृत्र क्रान्ति वृत्त होता है । तब चन्द्र से उसके पात (राहु या केतु) के अन्तर का भुजांश ७ अंश से कम होने पर भी सूर्य ग्रहण हो सकता है ।

पर्वान्त संस्कृति रवीन्दु शमीकृतीन
भू भा विधू प्रमिति बाणपि धान कालैः
स लम्ब नावति दिग् वलनां गुलाद्यै
शास्त्रान्तरादिह विशेष मवेत सन्तः । ६ ।

अन्य सिद्धान्तो से भिन्न विधि से इस ग्रन्थ में स्फुट अमान्त के लिए लम्बन संस्कार, रवि और चन्द्र का राशि तथा अंशादि समीकरण, सूर्य, चन्द्र और छाया का परिमाण, चन्द्र का ग्रास परिमाण, स्थिति, विमर्द आदि काल, वास्तव स्फुट लम्बन, स्फुट नति, दिगवलन और परिलेख आदि का वर्णन हुआ है । यह उपयोगी होने के कारण इसे विद्वान लोग गलत न समझें ।

राका मयो स्ववसिति प्रभवोच्चमध्ये
सिद्धे विधौ तपन मार्द्ध दिवाकराभ्याम्
न्यूनेऽधिकेऽन्तरपराः प्रथमेन्दु सूर्य
भुक्त्यन्तरे विहृता विघटी फलेन । ७ ।

अमान्त और पूर्णान्त समय निकाल कर उस समय चन्द्र और रवि स्फुट करेंगे (पर्व के कारण चन्द्रमा में केवल मन्द फल संस्कार होगा) चन्द्र राशि से सूर्य राशि का अन्तर (अमान्त में) तथा पूर्णान्त समय में सूर्य राशि में ६ राशि जोड़कर अन्तर निकालेंगे । अन्तर राशि अंश आदि की परा (१/६० विकला) बनाकर उसमें चन्द्र और सूर्य की गति का अन्तर (कला में) से भाग देंगे) फल पल (विघटी) आदि होगा ।

तिथ्यन्त्य आढ्य वियुतः सम पर्वकालः
स्तात्कालिकार्क भदलञ्च रविश्च सूक्ष्मः ।

वेद्वः शशी समकला विवितौ भवेतां
किञ्चोच्यते क्वचन पर्वणि तद्विशेषः । ८ ।

इस चल आदि समय को चन्द्र सूर्य से कम होने पर पर्वान्त समय में जोड़ेगे तथा ६ राशि युक्त रवि से अधिक होने पर घटायेंगे । तब पर्वान्त (दर्शान्त या पूर्णान्त) समय स्फुट होगा । इस समय में पुनः चन्द्र और रवि को स्फुट किया जायेगा तथा फिर उसके अनुसार पर्वान्त रवि चन्द्र स्फुट होगा । बार बार स्फुट करने पर जब चन्द्र और सूर्य की कला (पूर्णिमा में सूर्य में ६ राशि जोड़कर) समान हो जाय तब शुद्ध पर्वान्त निकलेगा । इसके बाद ही ग्रहण के लिए अन्य साधन होगा ।

सूर्यस्य दोर्गति फलो उदयान्तरञ्च
यद्येकदा त्रितयमे तदृणं धनं स्यात् ।
तत्रोदयान्तर भुजान्तर के सुधांशो-
र्भास्वत् गतेः फलयुते विकला स्ततस्ताः । ९ ।

एक ही समय सूर्य का मन्दफल, गतिफल तथा उदयानन्तर फल तीनों घन या ऋण होने पर चन्द्र के उदयान्तर और भुजान्तर फल के योग से सूर्य गति फल की विकला को जोड़ेगे ।

शीतांशुदोः फल कला गुणिता विभक्ता
स्तद् व्यास योजन चयेन (४४४) च पूर्णिमायान्
दर्शेहृतास्तु रवि योजनकै (७२,०००) र्विलिप्ता
लब्धाश्च ताः पुनरिनेन्दु गतान्तराप्ताः । १० ।

इस योगफल को चन्द्रमा के मन्द फल कला से गुणा करेंगे । पूर्णिमा के समय इस गुणन फल में चन्द्रमा के बिम्ब व्यास योजन (४४४) से भाग देंगे । अमावास्था में गुणन फल में रवि बिम्ब व्यास योजन से भाग देकर विकला आदि लब्धि निकालेंगे । इस विकला फल को सूक्ष्म रवि और चन्द्रमा के गति अन्तर से भाग देगें ।

दण्डादि कै रिह फलैः समपर्व युक्ति-
मूनं पुरोदित फल त्रितयर्णतायाम् ।
स्व त्वेमाद् भवति दृक् सममत्रकार्या
सूर्याब्धयोः समकलोकृति रुक्त पूर्वा । ११ ।

लब्धि दण्ड आदि फल को सम पर्व काल होने पर पूर्व काल से घटायेंगे और ऋण होने पर (मन्दफल, उदयान्तर और गतिफल तीनों ऋण होने पर) पर्व काल में जोड़ेगे) इससे दृक् सम पर्व काल होगा । समपर्वकाल और दृक् सम पर्वकाल के अन्तर में सूर्य और चन्द्रमा की गति निकाल कर दृक् सम पर्व काल का रवि और चन्द्र स्फुट होगा ।

द्विसप्तति सहस्र (७२,०००) योजनामितार्क बिम्बायति
महापुरुष वाचयोत्यनुजगा वथर्वा श्रुतिः ।
मथैवदनुसारतो नयनगोचरर्क्ष ग्रह
प्रमाण परिधिग्रहादि क मकश्मलं कल्प्यते । १२ ।

अथर्व वेद में ॐ (महापुरुष) का अर्थ निरूपण के प्रसंग में सूर्य बिम्ब का व्यास (७२,०००) योजन कहा है । इस उक्ति के आधार पर मैने वेध और गणना कर अन्य ग्रहों का बिम्बमान, ग्रहों की परिधि तथा ग्रहण में पृथ्वी और छाया आदि का परिणाम शुद्ध रूप से निकाला है ।

विवस्वद् विस्कम्भद्विरस विधु (१६२) भागः समुदितो
विधोर्बिम्ब व्यासः कृत कृत चतुर्योजन (४४४) मित
भुवं प्राङ् निर्दिष्ट (१६००) स च सवितुरर्थाम्भुधि (४५) लवो
लवो ऽन्तरीक्षे वक्ष्येऽहं श्रवण मथ भानो शशभृतः । १३ ।

चन्द्र व्यास $= \frac{७२,०००}{१६२} =$ ४४४ से कुछ अधिक योजन

पृथ्वी व्यास $= \frac{७२,०००}{४५} =$ १६०० योजन

पृथ्वी का व्यास १६०० योजन प्राचीन ज्योतिषियों ने भी माना है ।
अब मैं इन व्यासों का आकाश में कलात्मक मान कहता हूँ ।

भू मध्यात् स्वदला वधि ग्रह पतेः कर्णाख्य मार्गश्चतु-
र्नन्द द्विद्विपपूर्ण तर्क धरणीभृद् (७६,०८,२९४) योजनो मध्यमः
शीताशोः शर पुष्कर क्षिति घर स्तम्भेरमा म्भोधयो (४८ ,७०५)
मध्यस्य श्रुति योजनान्य पतयोः स्पष्टा भवेन्मन्दजा । १४ ।

पृथ्वी केन्द्र से सूर्य केन्द्र की मध्यम दूरी (७६,०८,२९४) योजन (सूर्य कर्ण), तथा पृथ्वी केन्द्र से चन्द्र केन्द्र की मध्यम दूरी (४८,७०५) योजन (चन्द्र कर्ण) है । इससे मन्द स्पष्ट कर्ण भीनिकाला जा सकता है ।

भास्वन्मण्डल योजनाभि (७२,०००) गुण मुपक्षाक्षि (२२१३) भक्तानिते
दिग्व्यास कला (३२।३२) भवन्ति सवितुर्मध्य निशास्वामि नः ।
तान्येवर्तु (६) पञ्चकरिभि (८५) र्भक्तानि चन्मण्डल-
व्यास स्याथिकला (३१।२०) भवन्ति धरणी छाया कलाश्चन्द्र वत् । १५ ।

सूर्य का मध्य कोणीय बिम्ब $= \frac{७२,०००}{२२१३} =$ ३२।३२।६ कला आदि

चन्द्रमा का मध्यम कोणीय बिम्ब $= \frac{४४४ \times ६}{८५} =$ ३१।२० कला

चन्द्र बिम्ब की कला की तरह भू छाया की बिम्ब कला भी निकलेगी (६।८५)

से गुणा कर) क्यों कि चन्द्र ग्रहण के समय उसकी स्थिति चन्द्र गोल पर होती है।

मन्द कोटि फल युक्त दुनिता
नक्र कर्कि मुखमन्द केन्द्र के।
त्रिज्यका भवति संस्कृता तया
वर्जिता द्विगुणित त्रिमौर्विका (६८७६)। १६।

(सूर्य या चन्द्र का) मन्द केन्द्र मकर आदि ६ राशि में रहने पर त्रिज्या में मन्द कोटिफल जोड़ेगे। तथा कर्क आदि ६ राशि में रहने पर घटायेंगे। प्राप्त फल को त्रिज्या को दो गुणा (६८७६) से घटा कर-

शेष केण बिहृता त्रिभज्यका
वर्गतः (११८,१९,८४४) फल कलात्मकः स्फुटः
मन्दकर्ण इन चन्द्रमाः क्षिते-
र्मध्यतोऽन्य स सदा रवे र्भवेत्। १७।

शेष से त्रिज्या के वर्ग में भाग देंगे। फल लिप्तादि रवि और चन्द्र का स्फुट मन्द कर्ण होगा। इस विधि से यदि मंगल आदि ग्रहों का मन्द कर्ण निकाला जाय तो वह सूर्य केन्द्र से उन ग्रहों की केन्द्रिक दूरी होगी।

मन्द कर्ण हत योजना श्रुतिस्त्रि ज्यया किल हृता भवेद् स्फुटः
मध्य कर्णहत बिम्ब लिप्तिका स्पष्ट कर्ण विहृताः परिस्फुटाः। १८।

कलात्मक स्फुट मन्द कर्ण को मध्य योजन कर्ण से गुणा कर त्रिज्या से भाग देने पर वह योजनात्मक स्फुट मन्दकर्ण होगा। मध्यम बिम्ब कला को मध्य योजन से गुणा कर स्फुट योजन से भाग देने पर स्फुट बिम्ब कला होगी।

सिद्धान्त शिरोमणौ-मन्द श्रुतिर्द्राक् श्रुतिवत् प्रसाध्या
तया त्रिभज्या द्विगुणा विहीना (६८७६) त्रिज्याकृतिः
(१,१८ ,१९,८४४) शेष हृतास्फुटास्या लिप्ता श्रुतिस्तिग्म रुचे र्विधाश्च। १९।

(सिद्धान्त शिरोमणि से उद् धृत) शीघ्र कर्ण की तरह मन्द कर्ण निकालें। त्रिज्या के २ गुणा से उसे घटाकर शेष से त्रिज्या के वर्ग में भाग दें।

कलात्मक फल चन्द्र या सूर्य का मन्द कर्ण होगा। यह भूकेन्द्र से सूर्य या चन्द्र की दूरी का मान है (कला में)।

लिप्ता श्रुतिघ्न स्त्रिगुणेन भक्तः
स्पष्टो भवेद् योजन कर्णएवम्
बिम्ब रवे र्द्वि द्विशरर्तु (६५२२) संख्या
नीन्दोः ख नागाम्बुधि (४८०) योजनानि। इति। २०।

$$\text{स्फुट योजन कर्ण} = \frac{\text{पलात्मक कर्ण x मध्य योजन कर्ण}}{\text{त्रिज्या}}$$

सूर्य बिम्ब (६५२२) योजन तथा चन्द्र बिम्ब (४८०) योजन है (भास्कराचार्य के मत से, इस ग्रन्थ के अनुसार नहीं)

भास्करोक्त मृदु कर्ण साधनं यद्यपि स्फुटतमं तथाप्यहंम्
प्राहकोटिफलं तो भुजान्त बिम्बमध्य समतार्थ मेव हि । २१ ।

भास्करा चार्य मत से भी स्फुट कर्ण का साधन सूक्ष्म मान देता है । तथापि मैंने कोटिफल से स्फुट कर्ण का साधन किया है । क्योंकि मन्दोच्च और स्फुट ग्रह तीन राशि होने पर कोटि और मन्दस्फुट कर्ण समान होते हैं ।

मध्यमार्क शशि बिम्बजाः कलाः
सूक्ष्मतत् प्रथम भुक्ति ताड़िताः ।
मध्यभुक्ति (५९/८-७९०।३५) विहृताः स्वमण्डल
द्वन्द्व विस्तृतिरदः फलानिवा । २२ ।

मध्यम रवि और चन्द्र बिम्ब कला को उनकी दैनिक सूक्ष्मकला से गुणा कर उनकी दैनिक मध्यम गति से भाग देने पर क्रमानुसार रवि और चंन्द्र की स्पष्ट बिम्बकला आयेगी ।

किं वा बिम्बा स्त्रिगुणा (३४३८) गुणिता योजनै स्वैर्मिनानां
स्वश्रुत्याप्ताः स्फुटतरकला भानु भू भा विधुताम्
यद्वा भास्वद् गतिफल ख रुद्रांश युक्तो (११०) नितास्तु
मध्याः (३२।३२) स्पष्टाः स्युरिन कलिकाः कर्कि नक्रादि केन्द्रे । २३ ।

अथवा योजनात्मक बिम्ब व्यास की त्रिज्या से गुणा कर स्पष्ट कर्ण योजना से भाग देने पर रवि, चन्द्र या भू भा (पृथ्वी की छाया) बिम्ब व्यास का कलात्मक स्फुट मान आयेगा ।

सूर्य का कलात्मक स्फुट बिम्ब व्यास

$$= \frac{\text{मध्य बिम्बकलाव्यास + सूर्य गतिफल}}{११०}$$

मध्यकेन्द्र २ य तथा ३ य पाद में रहने पर योग (गतिफल का) या प्रथम और ४र्थ पाद में रहने पर घटाव होगा ।

मध्यं मानं (३१।२०) गद्विफलं कला पञ्चविंशां शकस्य
त्यागाद् योगात् स्फुट विधु मितर्नक्र ककर्यादिके स्यात्
रुद्रा (११) घ्नीवा स्फुट रवि गतिः खाक्षि भक्तार्कमान
सप्तोनेन्दु स्फुट गतिकला स्तत्व (२५) भक्ता स्वमानम् । २४ ।

इसी प्रकार स्पष्ट चन्द्र बिम्ब व्यास की कला

$$= \frac{\text{मध्य चन्द्र व्यास कला} \pm \text{चन्द्रगति फल}}{२५}$$

सूर्य चन्द्र का स्पष्ट बिम्ब कला के लिए एक और सूत्र है-

$$\text{स्पष्ट रवि बिम्ब व्यास कला} = \frac{\text{दैनिक स्पष्ट रवि गति} \times ११}{२२}$$

$$\text{स्पष्ट चन्द्र बिम्ब व्यास कला} = \frac{\text{दैनिक स्पष्ट चन्द्र गति} - ७}{२५}$$

भूव्यास (१६००) निघ्नः स्फुट सूर्य कर्णे
भूव्यास हीनार्क तन (७०,४००) विभक्तः
फलंतदामूल शिखान्त दैर्घ्य सुचो
निभायाः पृथिवी प्रभायाः । २५ ।

पृथ्वी सूच्याकार छाया, की लम्बाई (पृथ्वी केन्द्र से)

$$= \frac{\text{स्पष्ट सूर्य कर्ण} \times \text{भू व्यास}}{\text{सूर्य व्यास} - \text{भूव्यास}}$$

सिद्धान्त शिरोमणौ-भूव्यास हीनं रवि
बिम्ब मिन्दु, कर्णाहतं भास्कर कर्णभक्तन्
भू विस्तृति लब्ध फलेन हीना भवेत्
कुभाविस्तृति रिन्दुमार्गे । २६ । इति

चन्द्र गोल (कक्षा) में भूभाव्यास

$$= \text{भू छाया} - \frac{(\text{रवि व्यास} - \text{भूव्यास})\ \text{चन्द्रव्यास}}{\text{रवि व्यास}}$$

तन्मानलिप्ताः शशिवत् प्रसाध्याः किं
वानागांशः (७) शशि भृद् गतैर्यः
सोऽष्टाद्रि (७८) निघ्नेषुमनु (१४५)
धृतार्क गत्यूनितः स्यात्तमसः प्रमाणाम् । २७ ।

चन्द्रमा की तरह भूछाया व्यास का भी (चन्द्र कला में) कलात्मक मान निकाला जाता है। (क्योंकि चन्द्र कला में ही चन्द्र ग्रहण के समय इसका उपयोग है) ।

भू भाव्यास (चन्द्र कक्षा में) कला

$$= \frac{\text{दैनिक चन्द्र स्पष्ट गति}}{७} - \frac{\text{दैनिक स्पष्ट रवि गति} \times ७८}{१४५}$$

भू भा विधुं चन्द्र इनं विधते यदा तदैव ग्रहणं भयोः स्यात् ।
पाताख्य राहोर्भुज सन्ति कर्षात् तस्या सुर ग्रास इति प्रशस्तिः । २८ ।

पृथ्वी छाया में चन्द्रमा का बिम्ब आने पर चन्द्र ग्रहण तथा चन्द्रबिम्ब द्वारा सूर्य ढंकने के कारण सूर्य ग्रहण होता है । सूर्य, चन्द्र तथा भू भा (पृथ्वी की

छाया) का चन्द्रपात के निकट रहने के समय ही ग्रहण होने के कारण राहु (चन्द्रपात का नाम) असुर द्वारा ग्रास होने की कथा प्रसिद्ध है ।

सिद्धान्तशिरोमणै-दिग्देश काला वरणादि भेदान्नच्छादकोराहुरिति ब्रवन्ति ।
यन्मानितः केवल गोल विज्ञा तत्संहिता वेद पुराण बाह्यम् । २९ ।

सिद्धान्तशिरोमणि में भी भास्कर ने लिखा है कि यदि एक ही राहु द्वारा ग्रास होता तो ग्रहण में दिग् भेद (कभी पूर्व, कभी पश्चिम में), काल भेद (कम या अधिक समय के लिए) तथा ग्रास भेद (पूर्ण या खण्ड ग्रहण) कैसे होता है ? अत रांहु ग्रास द्वारा ग्रहण मानने वाले केवल अपने गोल ज्ञान का अभिमान करते हैं । वस्तुतः वे मूढ और वेद, संहिता तथा पुराण के विरोधी हैं ।

राहुः कुभामण्डलगः शशांकं शशांक गच्छादयतीन बिम्वम्
तमोमयः शम्भुवर प्रदानात् सर्वागमा नाम विरुद्ध मेतत् । इति । ३० ।

राहु अन्धकार (छाया) मय है वह पृथ्वी छाया मण्डल में प्रवेश कर चन्द्रमा को ग्रास करता है । फिर चन्द्र में प्रवेश कर सूर्य को ढंकता है । इस प्रकार ग्रास करने के लिए ही सूर्य ने उसे ऐसा वर दिया है । इस प्रकार का समाधान शास्त्र विरोधी नहीं है। (उद्धरण समाप्त)

प्रभाभुवो भ्राम्यति भानु भार्द्धे तद्
गर्भमभ्रे यदि शुभ्र भानुः
जम्भद् विषद् भिङ् मुख एति वेगात्
तत् तद् ग्रहः सा तप बिम्ब लोपात् । ३१ ।

सूर्य के कारण पृथ्वी की छाया सूर्य से विपरीत दिशा में होती है । यह भी क्रान्तिवृत्त में पूर्व दिशा में घूमती हैं । पूर्णिमान्त में जब चन्द्र भी सूर्य से विपरीत दिशा में (६ राशि अन्तर पर) होता है, तब उसकी गति छाया की गति से अधिक होने के कारण वह छाया में प्रवेश कर उसे पार कर जाता है । छाया में प्रवेश करने पर चन्द्रमा की किरण (प्रकाश) का लोप होता है । इस कारण चन्द्र ग्रहण होता है ।

भू भानु मध्ये यदि शीतभानु र्गच्छन् रविं छादयति प्रतीज्या -
भास्वद् ग्रहस्तद्वितीयस्य पूर्व यानेऽपि शुभ्रांशु गते र्महत्वात् । ३२ ।

अमान्त के समय जब पृथ्वी से चन्द्र और सूर्य एक ही दिशा में (एक राशि में) होते हैं । तब चन्द्रमा पूर्व दिशा में बढ़ते हुए सूर्य को ढंग लेता है । तथा गति अधिक होने के कारण फिर सूर्य बिम्ब से आगे (पूर्व दिशा में) निकल जाता है । सूर्य अत्यन्त प्रकाश मान होने के कारण लोग उसे नहीं देख पाते हैं सूर्य को ढंकते समय प्रकाश हीन चन्द्रमा को ही देखते हैं ।

कुजादि पातेषु यथा तुरीय फलस्य वाच्यो धन हीन भावः
तथा दिगंशाख्य फलेन राहुः सूक्ष्मः स्फुट स्तूर्य शशीव कार्यः । ३३ ।

मंगल आदि तारा ग्रहों के पात में जिस प्रकार चतुर्थफल जोड़ा या घटाया जाता है उसी प्रकार राहु के दिगंश फल को भी जोड़ने या घटाते हैं । दिगंशफल चन्द्रमा में जिस प्रकार संस्कार किया जाता है । उसी प्रकार राहु का दिगंश फल भी निकाला जाता है तथा संस्कार होता है ।

पातोन तात्कालिक चन्द्र दोर्ज्या स्वाष्टाग्नि (३८) भागेन युतार्द्धितात ।
चापीकृता षड् विहृता फलं स्यात् कलादिकं स्पष्ट शरं सुधांशो । ३४ ।

स्फुट पर्वान्त कालिक चन्द्र निकाल कर उससे चन्द्र स्फुट पात घटाते हैं । फल की भुजज्या निकालते हैं । यह विक्षेप केन्द्र ज्या है । इसमें उसका १/३० भाग जोड़ते हैं । फल को आधा कर उसका चाप निकालते हैं । इस चाप को ६ से भाग देने पर चन्द्र का कलादि स्पष्ट शर निकलता है ।

विपातचन्द्रस्य भषट्क आद्ये सौम्ये द्वितीये सच दक्षिणः स्यात् ।
क्षिति प्रभारोपण तो विलोम श्चन्द्र ग्रहे दि्क शर एव वेद्यः । ३५ ।

पात हींन चन्द्र मेष आदि ६ राशि में रहने पर चन्द्र शर उत्तर दिशा में होता है, पात हीन चन्द्र तुलादि ६ राशि में हनि पर चन्द्र शर दक्षिण दिशा में होता है । ग्रहण परिलेख के समय इस शर को भू स्थान में उल्टे तरफ दिया जाता है ।

चापं बिना कोटिफलं तथास्य युत्याहतं पात शशांक गत्योः
त्रिज्याहृतं बाणगति स्फुटा स्यात् तत् संस्कृतेः क्रान्ति गतेः स्फुटत्वम् । ३६ ।

(शर की अन्य विधि) चाप करने के बदले, शर के कोटिफल को चन्द्र और उसके पात की गति योग से गुणा करते हैं । गुणन फल को त्रिज्या से भाग देने पर शर (चन्द्र शर) की स्फुट गति होगी । इस गति में क्रान्ति गति का संस्कार करने से वह स्फुट शर गति होगी ।

लेख्यं विपातेन्दु भुजाब्धि पक्ष (२४)
खण्डै शरांशादि सहान्तरं वा
कोटिफलं तद् गति योग निघ्नान्तरं
गतिस्तत्व यमा (२२५) प्ता मिष्या । ३७ ।

चन्द्र से चन्द्र पात घटाकर उसका भुज निकालेंगे । उस भुजांश से शर आदि निकाला जा सकता है । इसके लिए ९० अंश के वृत्त पाद से ज्या निकालने की तरह २४ ज्या (भुजज्या) कर प्रत्येक खण्ड का शर, शरान्तर, कोटिफल भुजफल आदि निकालना परिशिष्ट के विक्षेप खण्ड में दिया गया है ।

उस विपात भुजांश से शर आदि निकालना सुविधा जनक है । यह सब २२५ कला के अन्तर पर दिया हुआ है ।

यद्वा विपादेन्दु भुजोत्थ लिप्ता नृपां (१६) श हीना गिरिशै (११) र्विभक्ताः ।
फलं शरः पात विहीन चन्द्रः बाहोर्गृहार्द्धा वधि कल्पनीयः । ३८ ।

अथवा चन्द्र से पात घटाकर उसेक भुज की कला बनायेंगे । उसमें उसका १/१६ जोड़कर ११ से भाग देंगे । फल शर होगा । इस प्रकार शर विपात चन्द्र का १५ अंश तक भुजांश होने पर निकाला जा सकता है । भुजाश ज्यादा होने पर इस विधि से भूल होगी ।

छाद्य छादक मान योगय दलतो न्यूनः शर श्छेत्तदा
ग्रासः स्यान्न शरेऽधिके स्फुटतरे तन्मान यो गार्द्धतः ।
प्रोज्झ्ये षष्ठ शंरच शिष्ट कलिकाच्छना भवन्त्येव ता-
श्छायाद्याद्य धिका स्तदैव सकल ग्रासोऽम्बर व्यापकः । ३९ ।

ग्राह्य (छात्र) और ग्राहक (छादक) बिम्ब मान जोड़कर उसके आधा से शर कम होने पर ग्रास होता है । शर इस से ज्यादा होने पर ग्रहण नहीं होता है । बिम्ब योग का आधा से शर घटाने पर जो शेष है वही ग्रास होता है । ग्रास का मान ग्राह्य (छाद्य) से अधिक होने पर पूर्ण ग्रास होता है । ग्रास से ग्राह्य घटाने पर जो बचता है, उतना आकाश का ग्रास होता है ।

स्पर्शश्चन्द्रमसः पुरोदिशि रवेः पश्चाद् मिवोक्षोऽ न्यदिक-
प्रायः स्याच्च निमीलनं हि सकलं ग्राह्या पिधान क्षणः
तत्रोन्मीलन मेव किञ्चि दुदिते स्वच्छादकान्मण्डले
तन्मध्ये दृग्गोचरांशु रुदितो ग्रासो विमर्दाभिधे । ४० ।

चन्द्र ग्रहण का स्पर्श प्रायः पूर्व दिशा में तथा मोक्ष प्रायः पश्चिम दिशा में होता है इस नियम से गणना होती है । लेकिन सूर्यग्रहण प्रायः पश्चिम दिशा में स्पर्श तथा पूर्व दिशा में मोक्ष की गणना की जाती है । पूर्व पश्चिम गणना के बदले कभी कभी दक्षिण उत्तर की भी गणना होती है । अतः पूर्व पश्चिम के साथ प्रायः शब्द का प्रयोग हुआ है ।

जिस समय ग्राहक बिम्ब ग्राह्य बिम्ब को ढंग कर रखता है उसे निमीलन समय कहते हैं । ग्राह्य बिम्ब ग्राहक बिम्ब से बाहर निकलने के समय को उन्मीलन समय कहते हैं । निमीलन से उन्मीलन तक का समय मर्द काल कहते हैं । कोई कोई इसे विमर्द काल भी कहते हैं ।

पर्वान्तः समलिप्ति केन्दु रवि जो भार्द्धे च चक्रे क्रमा
चान्द्रस्य ग्रहणस्य मध्य समय सौरस्य सल्लंबनः
मानैक्यार्द्ध कृतेः स्फुटाशुगकृतिं प्रोज्झ्यावशेषात्पदं
षष्ठ्या सं गुणितं दिनेश शशिनोः सूक्ष्म स्व भुक्त्यन्तरा । ४१ ।

रवि और चन्द्र की राशि, अंश और कला तक समान होने पर जो पर्वान्त निकलता है । उसी को सम पर्वान्त (अमान्त या पूर्णान्त) कहते हैं । इस अवस्था

(समकाल) में चन्द्र और सूर्य का अन्तर ६ राशि होने पर चन्द्र ग्रहण का मध्य काल होता है ।

ग्राह्य और ग्राहक बिम्ब मान को जोड़कर उसके आधे के वर्ग को स्फुट शर के वर्ग से घटाते हैं और शेष का मूल निकालते हैं । उसको ६० से गुणा कर सूक्ष्म चन्द्र और रवि की गति के अन्तर से (भाग देते हैं)

भक्त तत्फल नाड़िकाः सपलका स्थित्यर्द्धजा मध्यमा
ग्राह्य प्रोज्झित मान योग दलत, स्वाध्या वियुक्तादिषोः ।
कृत्य शेषपदात् पुरेवघटिका मध्या विमर्द्धार्द्धजाः
पर्वान्तः स्थिति मर्दखण्ड वियुतस्तद् युक् क्रमा दुत्क्रमात् । ४२ ।

भागफल ग्रहण स्थिति का आधा समय (नाड़ी में) होता है । इसका दो गुणा करने पर ग्रहण का पूर्ण समय आता है ।

इसी प्रकार ग्राह्य और ग्राहक बिम्ब का अन्तर कर उसके आधे के वर्ग को उस समय के शर वर्ग से घटाते हैं । अब शेष का मूल निकाल कर उसमें ६० से गुणा कर उसमें चन्द्र और सूर्य के गति अन्तर से भाग देते हैं । फल विमर्द आधे का घटी आदि होता है । इसको दो में गुणा करने पर मर्द काल आता है ।

समपर्वान्त काल में स्थित्यर्द्ध तथा मर्दार्द्ध काल घंटाने पर क्रमशः स्पर्श और निमीलन का समय आता है ।

मध्ये स्पर्श निमीलने च भवति श्चोन्मीलनो न्मोक्षकौ
तत्तत्कालिक पात सूक्ष्म शशिजे र्बाणैः पुनः साधिताः ।
स्पर्शाद्या असकृत् क्रिया स्थिरतराः स्पष्टास्यु रिन्दो रवे -
स्वेते स्व स्व विलम्बनैः सह परिस्पष्टाः मुहुः संस्कृताः । ४३ ।

समपर्वान्त काल में स्थिति अर्घ तथा मर्दार्ध जोड़ने से मोक्ष तथा उन्मीलन समय आता है । इस मोक्ष तथा उन्मीलन आदि समय में पात और सूक्ष्म चन्द्र साधन कर उससे शर निकाल कर पुनः स्पर्श मोक्ष आदि समय निकालना चाहिये । इस प्रकार ग्रहण का स्थिरतर मान आता है । सूर्यग्रहण में स्फुट स्पर्श आदि काल आने पर उसमें बार बार लम्बन संस्कार कर स्पष्ट समय निकाला जाता है ।

वक्ष्याम्यत्र विशेष मीश (११) गुणितं मध्य ग्रहेषोर्दलम्
सूर्येन्द्वन्त्य गत्यन्तरोद्धतमिषौ स्याद् वर्द्धमाने फलम्
नाड् याद्यं वियुतं युतं त्वितरथा पर्वण्यतः तत् स्फुटं
तुत्कालेन्दु शरा द्य पर्व शरयो रन्तर्विलिप्ता कृते । ४४ ।

बार बार संस्कार की जरूरत नहीं पड़े ऐसी विधि, अब मैं बताता हूँ । समपर्व काल का शर निकाल कर उसके आधे को चन्द्र और रवि को गति के अंतर से भाग दें । लब्धि दण्ड आदि को समपर्व काल शर से घटाते हैं, यदि बढ़ रहा हो, अन्यथा जोड़ते हैं । इससे पर्व स्पष्ट होगा । इस पर्व काल से फिर पात, सूक्ष्म

चन्द्र तथा उससे शर निकालेंगे। इस शर और समपर्वकालिक शर के अन्तर का विकला का वर्गकर

अर्द्धान् मूल मिहादि पर्व शरतः संशोध्य शेषः स्फुटः
स्याद् बाण स्तत आगते स्थिति दले स्यानां समेविस्फुटे
ग्रासो दृक् समता मुपैतित ततः स्पर्शादयःस्युः सकृत्
पश्चाद् या कथमिष्यते धरणीभा सा दृक् समा गृह्यताम्। ४५।

उसका आधा करते हैं और वर्ग मूल निकालते हैं। इस मूल को समपर्व कालीन शर से घटाने पर स्फुट शर होता है। इससे पहले की तरह स्थिति काल निकालते हैं। इस शर से जो ग्रास आदि का समय आता है वह दृक् सिद्ध होता है। इस शर से स्पर्श आदि समय एक ही बार में स्फुट हो जाते हैं। अव जो भूछाया कही जा रही है वह दृक् सिद्ध छाया है। (पहले की भूछाया स्थूल थी।)

अथेष्ठ कालाद् ग्रसनं प्रमाणं ग्रासाद भीष्टात्समयं प्रवक्षे।
पूर्वत्रभागे ग्रहणेष्ट नाड़ी स्थित्यर्द्धतः प्रोज्भ्य ततोऽवशिष्टैः। ४६।

अव इष्ट काल से ग्रास तथा ग्रास को देख कर समय निकालने की विधि कही जाती है। मध्य ग्रहण से पूर्व का समय होने से उसको स्पर्श स्थिति अर्द्ध से घटाते हैं।

दण्डैर्निहन्याद् ग्रहकाल हारं षष्ट्यां भजेत्कोटिकलाविधोः स्युः
भानोर्ग्रहे कोटि कलाश्च मध्य स्थित्यर्द्ध निघ्ना स्फुट लम्बनोत्थैः। ४७।

शेष दण्ड आदि को ग्रहकाल हार (सूर्य ग्रहण में ग्रह काल का हार वर्णित है) से गुणा कर ६० से भाग दें। यह चन्द्र ग्रहण में कोटि कला होगी। सूर्य ग्रहण में इसको पुनः मध्य स्थिति अर्द्ध से गुणा कर स्फुट स्थिति अर्द्ध से भाग देने पर स्फुट कोटि कला आती है।

स्थित्यर्द्धदण्ड़ै र्विहृताः स्फुटाः स्युः तत्काल विक्षेप कला भुजोऽत्रे
दोः कोटि वर्गैक्य पदञ्च कर्णस्तदून मानैक्य दलं पिधानम्। ४८।

उस समय के शर के भुज की कला बनायेंगे। कोटि और भुजकला के वर्ग का योग कर उसका वर्ग मूल निकालें। यह कर्ण होगा। उसे बिम्ब मान योग के आधे से घटाने पर ग्रास मान निकलेगा।

भागे परस्मिन् ग्रहणस्य मोक्ष स्थित्यर्द्धतः स्वेष्ट घटी विशोध्या
शेषो रवीन्दु स्फुट सूक्ष्म भुक्त्यन्त राहतः षष्ठिहृतः सकोटिः। ४९।

मध्य ग्रहण के बाद मोक्ष स्थिति अर्द्ध में यदि इष्ट काल लिया जाय तो मोक्ष स्थिति अर्द्ध से इस इष्ट काल को घटा कर रवि और चन्द्र के सूक्ष्म गति अन्तर से गुणा कर ६० से भाग देने पर कोटि होगा।

तात्कालिकेन्दोः शर एव बाहुः स्पष्टो रवेः कोटिकलाः पुरोवत् ।
ग्रासस्तथायः कलिकात्मकः स्यात् संज्ञायते सद्भि रतोऽ विशेषः । ५० ।

यहां भी इष्ट काल का चन्द्र शर भुज पहले की तरह निकाला जायेगा । उससे रवि की स्पष्ट कोटिकला निकाली जा सकती है । इस भुज कोटि का वर्ग जोड़कर मूल की बिम्बमान योग के आधे से घटाने पर ग्रास का मान होगा । ग्रास मान जानने के बाद ग्रास का अवशेष आसानी से निकाला जा सकता है ।

इष्ट ग्रास से इष्ट काल निकालना

ग्रास्ताः कलामान युतेरथार्द्धात् संशोध्य शेषश्च क्रमाभिदानः
तद् वर्गतः तत्समय स्फुटेषु वर्गो नितान् मूल कलाश्च कोटिः । ५१ ।

स्पर्श और मध्य काल के बीच ग्रास होने पर उसको ग्राह्यहाहक बिम्ब योगार्द्ध से घटाकर शेष उभय केन्द्र का अन्तर कर्ण प्राप्त होगा । इस स्थिति वृत्त के कर्ण (व्यासार्द्ध) के वर्ग से उस समय के स्फुट शर के वर्ग को घटाकर उसका मूल लेने पर कोटिकला होगी ।

सूर्यग्रहे लम्बन संस्कृतेष्ट स्थितत्यर्ध सन्ताड़ित कोटि लिप्ताः ।
मध्य स्थितार्द्धेन हताः स्फुटाः स्युः षष्ट्या हताः कोटि कलारवेन्दोः । ५२ ।

सूर्य ग्रहण में इस कोटि कला को लम्बन संस्कृत स्थित्यर्द्ध से गुणा कर मध्य स्थित्यर्द्ध से भाग देने पर स्पष्ट कोटिकला होगी । कोटिकला को ६० से गुणा कर रवि और चन्द्र के -

भुक्त्यन्तराप्ता फल नाड़िकाभिः स्थित्यर्द्धमूनं सद भीष्ट नाड्यः
विमुच्य माने त्ववशिष्ट लिप्ता अभीप्सित ग्रासतया प्रकल्प्याः । ५३ ।

- गति अन्तर से भाग देने पर फल दण्ड आदि होगा । इस फल को स्पर्श कालिक स्थित्यर्द्ध से घटाने पर वह स्पर्श के बाद इष्ट घटिका समय होगा ।

मोक्ष में अवशिष्ट ग्रास कला को पहले की तरह नाड़ी में बदल कर उसी दण्डादि फल को मोक्षार्द्ध से घटाने पर बाकी काल आयेगा ।

प्राग्वत्तत् स्यादवशिष्ट कालो रविग्रहे स्पार्शिक मौक्षिकेये
स्थित्यर्द्ध के मध्यतयोदितेते कर्मान्तिरं लम्बनजं तयोर्यत् । ५४ ।

स्पर्श और मोक्ष के स्थिति अर्द्ध को सूर्य ग्रहण में मध्य स्थिति अर्द्ध कहा जाता है । क्योंकि इसमें विशेष प्रकार से लम्बन संस्कार किया जाता है । अतः सभी काम मध्य शर से किया जाता है । (फल में बार बार यह प्रक्रिया करने से वास्तव समय आयेगा) ।

अथाभिधास्येऽयनजं पलोद् भवं कलास्वरूपं वलन द्वयो तयोः ।
यतो ग्रह स्पर्श विमोक्ष मध्यजा दिशः स्फुटाः स्युर्नभसः कपालयोः । ५५ ।

अब मैं अयन चलन तथा अक्षांश (रवि तथा चन्द्र का) के कारण रवि और

सूर्य ग्रहण में वलन (संशोधन) कला के बारे में कहता हूँ। इन दोनों प्रभावों के कारण आकाश के पूर्व पश्चिम कपाल (क्षितिज के ऊपर आकाश गोलार्द्ध के याम्योत्तर वृत्त द्वारा दो भाग) में ग्रहण के स्पर्श, मध्य और मोक्ष की दिशा का ज्ञान होता है।

चलांश संस्कार वदर्क चन्द्रयोः स्वकोटि
लिप्ता खमहीन्द्र (१४१०) ताड़िताः।
खखाब्धि बाणै (५४००) र्विहृता स्ततः
फलं कलात्मकं स्याद्वलनं स्वमायनम्। ५६।

चन्द्र ग्रहण में अयन संस्कृत चन्द्र और सूर्य ग्रहण में अयन संस्कृत सूर्य की कोटि कला को परम क्रान्ति (१४१०) से गुणा कर तीन राशि की कला (५४००) से भाग देने प्राप्त फल कला आयन वलन होता है। जिस दिशा (पूर्व या पश्चिम कपाल) में यह ग्रहण होता है। उसी दिशा में यह वलन होता है।

हिमांश भान्वोः स्वदिनार्द्धतोनतं पलात्मकं खांक (९०) हतं दिनार्द्धजै
निजैः पलै र्भाजितमंश कादिकं नतः पुरः पश्चिमजं दिनार्द्धयोः। ५७।

(सूर्य ग्रहण में रवि और चन्द्र समान होने के कारण केवल चन्द्र द्वारा दोनों ग्रहों का आयन वलन निकाला जा सकता है।)

चन्द्र ग्रहण में चन्द्र दिनार्द्ध से नत और सूर्य ग्रहण में सूर्य दिनार्द्ध से नत निकाल कर उसका पल बनायेंगे। उसको ९० से गुणा कर अपने अपने दिनार्द्ध पल से भाग देने पर अंशादि फल आता है। यह पूर्व पश्चिम दिनार्द्ध के अनुसार पूर्व या पश्चिम दिशा में नत होगा।

निजाक्ष भागा गत भाग ताड़िता नवत्य (९०) वाप्ताः फलमेष सम्भवम्
पुरो नतेस्याद् वलनं तदन्तरं गते च पश्चाज्जनितेहि दक्षिणम्। ५८।

इस नत को अपने देश के अक्षांश से गुणा कर ९० से भाग देकर जो फल आयेगा वह पूर्वनत में उत्तर और पश्चिम नत में दक्षिण अक्ष वलन होगा।

तयोः पलोत्थायनयोः समांशयोर्युते वियोगात्तु विभिन्नकोष्ठयोः।
स्वकं भवे दिग्वलनांशकादिकं तदंगुलाज्यं परिलेख इष्यते। ५९।

अक्ष और आयन वलन दोनों एक दिशा में होने पर योग और भिन्न दिशा में होने पर अन्तर किया जाता है। फल चन्द्रग्रहण में चन्द्र का और सूर्य ग्रहण का सूर्य का अंशादि दिग्वलन होगा। यह स्पष्ट वलन हुआ। स्पर्श, मोक्ष, आदि किस दिशा से किस प्रकार होगा। इससे मालूम होगा। इसका अंगुल आदि मान परिलेख में कहा गया है।

सुरोदितं सूर्य दिनं विधूदया स्तयोस्तु मध्ये दिनमस्य सम्मतम्।
दिनान्त सिद्धावयनांश संस्कृतौ विधायभास्वच्छशि नौ तु दृक्षयोः। ६०।

सूर्य का दिन परिणाम कहा जा चुका है। चन्द्रम के उदय के उसके अस्त तक का समय चन्द्र दिन होता है। सूर्य के दिनान्त में रवि और चन्द्रस्फुट कर उसमें अयनांश जोड़ते हैं। रवि और चन्द्र की अपनी अपनी शशि के

रवे भुक्ताः शशिनो गता लवा निजोदयाघ्नाः खगुणे (३०) र्हृता फले
तदन्तरो त्थास्त नवश्चषट् शरा (५६) सवश्च युक्ता घटिका ऽत्रये। ६१।

रवि का भाग्यांश तथा चन्द्रमा भुक्त अंश उन राशियों के उदयासु से गुणा कर ३० से भाग देंगे। जो दो उदयासु आयेंगे उनमे रवि राशि से चन्द्रमा की राशि के बीच की राशियों के उदयासु जोड़ेंगे। योगफल में ५६ असु जोड़कर ३६० से भाग देकर घटिका बनायेंगे।

दिनादिवस्तत्र भवेद् विधूदय पदद्युर कोंदय कालिकौ स्तया
विधाय सूर्यस्य सषड्भ शीतगो समेग्रह भुक्त लवोदयान्तरम्। ६२।

सूर्योदय से इतनी घटिका के बाद चन्द्रमा का उदय होगा। चन्द्र अस्त काल के लिए अगले दिन सूर्योदय के समय रवि और चन्द्र का साधन करेंगे और सायन रवि तथा ६ राशि युक्त सायन चन्द्र के बीच की भुक्तासु का साधन करेंगे।

गृहान्यतायां रविभोग्य चन्द्रमो गतांश कालद्वय योग एन्दवः
इनोदयादस्त मयश्च षट्शराः (५६) सुभिर्वियुग् लम्बन जैः स्फुटः पुनः। ६३

रवि और चन्द्र राशि में रहने पर रवि का भोग्य असु तथा चन्द्र का भुक्त असु जो होगा सूर्योदय के इतने समय के बाद चन्द्रमा का अस्त होगा। इस समय से ५६ असु लम्बन काल घटाने से स्पष्ट समय होगा।

(चन्द्रमा का शर बहुत कम होने पर उदय और अस्त के बीच का काल चन्द्रमा का दिनमान होगा।)

स्वकाल विक्षेपकला पल प्रभांगुलाहताः सूर्यहृताः फलासुभिः
युतोनितः स्यादुदयोऽप्यवागुदक् शरक्रमाद्यस्त मयस्तु होन युक्। ६४।

उदय के समय उदय काल की शर कला तथा अस्त के समय अस्त काल की शरकला को पलभा से गुणा कर १२ से भाग देंगे। फल (कलात्मक) को दक्षिण शर होने पर उदय काल में जोड़ेगे, उत्तर शर होने पर घटायेंगे। अस्तकाल में यह फल उत्तर शर होने पर जोड़ेगे, दक्षिण शर होने पर घटायेंगे। इस प्रकार उदय और अस्त का स्फुट समय होगा।

निशापतेः सूक्ष्मगति निशार्द्धजा कलात्मिका नन्दसुधांशु (१९) भाजिता
फलैः पलैः संकलिता निशामिति र्भवेत् तदीयं दिनमान मेववा। ६५।

अथवा चन्द्रमा की अर्द्ध रात्रि काल की सूक्ष्म गति कला को १९ से भाग देकर पलात्मक फल को रवि के रात्रिमान में जोड़ देने से चन्द्रमा का दिन मान होगा।

याम्यायनान्त हरति ध्रुवतो यदेव
स्थानं दलोन कृत बाहु (२३।३०) तवान्तरस्थम् ।
तत्प्रोदितं ध्रुव कदम्ब इति ग्रहाणां
क्रान्ते स्तदुत्तर दिशो निरचापि चिह्नम् । ६६ ।

उत्तर की ध्रव से दक्षिण अयन को तरफ अयन प्रोत वृत्त (वृहद् वृत्त जो क्रान्ति वृत्त के सबसे दक्षिणी विन्दु तक जाता है) पर (२३° ३०') दक्षिण की तरफ ग्रहों का (क्रान्ति वृत्त जिसमें ग्रह घूमते हैं) ध्रुव कदम्ब होता है । यह क्रान्ति वृत्त का उत्त दिशा में पृष्ठ केन्द्र है ।

तद् व्यस्त दिग् विनिहितो समदिक् कदम्ब
स्तर्क्यः कदम्ब मनुजाद शिखः कलम्बः ।
तत्पार्श्व को ह्यपम सम्मुख एव बिम्ब
प्राग् याति सर्वस्व शशिनेऽविलम्बः । ६७ ।

क्रान्ति वृत्त से उल्टी (दक्षिणी) दिशा में पृष्ठ केन्द्र जो दक्षिणी ध्रुव से अयन प्रोत वृत्त पर उतना (२३° ३०') ही उत्तर है , कलम्ब कहलाता है । इस कदम्ब प्रोत वृत्त पर ही शर होता है । जिसके कारण ग्रह क्रान्ति वृत्त से उत्तर या दक्षिण की तरफ खिसकते हैं । चन्द्र बिम्ब सभी ग्रहों की अपेक्षा तेज गति से जाता है ।

इत्थं सिद्धात् कदम्बात् ध्रुवत उपसरत् सूत्रयो र्बिम्बमध्य-
स्युत स्वीयाग्रयोर्यद् विवर मुडुपते र्मण्डलान्तेऽ स्तितद् घ्नाः ।
भांशा (३६०) स्तद् वेष्ट नाप्ताः फल मिहवलनं ह्यायनं भागरूपं
ग्राह्यं तत्तदिगाख्यं खलु रजनिपतौ सौम्य याम्यायनस्थे । ६८ ।

चन्द्र बिम्ब केन्द्र से ध्रुव से प्रोत और कदम्ब प्रोत वृत्तों पर ध्रुव और कदम्ब की दूरियों का अन्तर (चापीय) को ३६० से गुणा कर चन्द्रबिम्ब की परिधि से भाग देने पर अयन वलन आता है । चन्द्र उत्तर अयन में रहने पर यह उत्तर और दक्षिण अयन में रहने पर दक्षिण वलन होता है ।

पूर्वेक्त मुक्ति रेषा कति चन वलनं प्रोचु राक्षं क्रमज्याः-
साध्यं केऽप्युत्क्रमज्या कलित मिति जगुश्चायनं कोटिमौर्व्याः
नास्माकं उन्नतं यद्धनरिव न मिते नाड़िकाक्रान्ति वृत्ते
तत्कोट्यं शैर्नतांशै र्वलन मयनजं चाक्षजं कर्तुमिष्टम् । ६९ ।

अक्ष वलन का साधन प्राचीन आचार्यों में कुछ (लल्ल और श्रीपति) ने नत की उत्क्रमज्या से तथा अन्य (ब्रह्म गुप्त और भास्कर) ने नत क्रमज्या से किया है । आयन बलन का भी साधन करने की दो विधियां है एक मध्य ग्रह की कोटिज्या से या दूसरी ग्रह की राशि में राशि जोड़कर उसके भुज की उत्क्रम ज्या से । परन्तु मेरी विधि से किसी प्रकार की ज्या की जरूरत नहीं है । क्योंकि नाड़ी वृत्त और क्रान्ति वृत्त चाप के अनुसार नति होती है । अंतः ग्रह के कोटि अंश

और नत अंश द्वारा क्रमश आयन और अक्ष वलन करना चाहिये ।

अष्टादशांगुल गुण प्रमणेन वृत्त द्वन्द्वं
पुरन्दर जलेश दिशोर्विलिख्य
अन्याऽन्य लग्नमनतोन्नत भूप्रदेशे
तत्केन्द्रयोः प्रतिदिशंञ्च दिशैव बिन्दून । ७० ।

परिलेख लिखने के स्थान को समतल (जल के समान) कर उसमें एक वृत्त (१८ अंगुल व्यासार्द्ध का) बना कर वृत्त परिधि में दिशा ज्ञान विधि से दो बिन्दु देते हैं । (पूर्व और पश्चिम) इन बिंदुओं से १८ अंगुल व्यासार्द्ध का परस्पर सटे हुए दो वृत्त खींचते हैं । इन दोनों वृत्तों के प्रति दिशा और कोण का विन्दु देते हैं ।

मध्ये पुरः पर गतां निद धीत रेखां
प्राङ् मण्डलात् नहिरुदग् दिशि चांगुलान्ते
बिन्दूंतथा वरुण दिग्गत मण्डलास्य बाह्येऽ
ङ्गुलान्तरित दक्षिण भाग केऽन्यम् । ७१ ।

दोनों वृत्तों के केन्द्र से होकर पूर्वा पर (पूर्व पश्चिम) रेखा खींचते हैं । पूर्व बिन्दु केन्द्र से खींचे गये वृत्त के उत्तर बिन्दु से और उत्तर एक अंगुल की दूरी पर एक बिन्दु तथा पश्चिमी वृत्त के दक्षिण बिन्दु से १ अंगुल दक्षिण एक बिन्दु देते हैं ।

बाह्यस्थ दक्षिण गविन्दुत एव पश्चाद्
पुरश्चरम बिन्दुग कोटि युग्मम् ।
षष्ठांश संयुत रसाक्षि (१६।१०) मितांगुलेन
सूत्रेण चाप मथ पूर्वग बिम्बमध्ये । ७२ ।

ग्रह बिम्ब पश्चिम कपाल में रहने पर दक्षिण बिन्दु से १६।१० अंगुल व्यासार्द्ध का पश्चिम वृत्त में तथा पूर्व कपाल में रहने पर पूर्व वृत्त के बाहर उत्तर बिन्दु से १६।१० अंगुल का चाप पश्चिम वृत्त में खींचतेहैं ।

तद् वद् वहि र्विलिखतोत्तर बिन्दुतो ऽपि चापं लिखेत्परपुरोगतविन्दुलग्नम्
चापद्वयं भवति सम्मिलितं कपाल-द्वन्द्व स्थिता पम पथप्रतिम द्वयान्तः । ७३।

इन दोनों चापों से पूर्व और पश्चिम कपाल में क्रान्तिवृत्त का आकार बनेगा ।

प्रत्यग् दिशो हरिदिगन्त मथार्क (१२)
संख्येश्चिह्नैः क्रियादिनिलयान्कलयेन्निजांशैः
तत्रार्द्ध खण्डिततनुं शशिनं निवेश्य
तच्छृंगयुग्म परिलग्न गुणेन भूयः । ७४ ।

दोनों चापों के मिलन के जो क्रान्ति वृल बनता है । उसमें पश्चिम से पूर्व १२

भाग कर मेष आदि राशियों का चिन्ह देंगे । क्रान्तिवृत्त से चन्द्र केन्द्र उस राशि में रखकर अर्द्ध खण्डित चन्द्र बिम्ब बनाते हैं । इसके दोनों श्रृंगों को मिलाते हुए एक रेखा खींचते हैं ।

बाह्यास्थ बिन्दु परिवेष्टन कं विदध्यादित्थं
निजापमपथा भिमुखः खगः स्यात्
प्राग् वृत्त केन्द्र यमदि गोत्तर रेखिकाया
पश्चाद् भ्रमं प्रवहजं विषुवंद्दिनोत्थम् । ७५ ।

श्रृंगों को मिलाने वाली रेखा (चन्द्र व्यास) के बराबर व्यास से दोनों बाहरी बिन्दुओं के केन्द्र से वृत्त खींचेगें । इससे चन्द्रमा अपने क्रान्ति मार्ग पर चलता हुआ लगेगा । पूर्व बिन्दु केन्द्र से खींचे गये वृत्त के केन्द्र से जाती दक्षिणोत्तर रेखा पर (याम्योत्तर वृत्त पर)

व्यक्षोत्तरे वसुभुजानल (३२८) योजनस्थे देशेऽगच्छत धनः पथ सम्मुखीनम् ।
तस्मान्नतस्य पलजेवलनेन जीवा ग्राह्यायनोत्थ वलनेऽपिन कोटि जीवा ।७६।

निरक्ष (विषुव रेखा) से ३२८ योजन उत्तर (२३° २७' अक्षांश - कर्क रेखा) के स्थान पर क्रान्ति वृत्त की पूर्व से पश्चिम गति चाप आकार में हीं (विषुव दिन को) दिखाई देगी । यह वास्तव में सीधी रेखा (गोल पर) है जो समतल के चित्र में वक्र दिखायी देती है अतः अक्ष या आयन वलन में ज्या या कोटिज्या की जरूरत नहीं है ।

मध्यसूत्रादुदिग् दक्षिणान्तावधि ज्यात्मकं मानमेवात्र निश्चीयते ।
मध्यसूत्रादवः क्रान्तिमार्गान्तरं क्रान्ति जीवाक्ष जीवातु के न्द्रोद् भवेत् ।७७।

पूर्व पश्चिम वृत्तों की ज्या रूप रेखा, वृत्त की परिधि तथा दोनों ध्रुवों के बीच सभी याम्योत्तर रेखाओं पर लम्ब है । अतः इस रेखा पर पूर्व से पश्चिम (मध्य सूत्र से दूरी से क्रान्ति ज्या का मान होता है (यह अक्षांश वृत्त हुआ) अतः क्रान्ति ज्या पूर्व पश्चिम रेखा (वृत्त केन्द्र से) की दूरी से निकाली जाती है । इसी प्रकार अक्षज्या उत्तर दक्षिण रेखा (देशान्तर रेखा) पर की दूरी से निकाली जाती हैं ।

स्फुरति धरणी भाया बिम्ब बाह्ये समन्ता
द् वलय सदृश मस्या अञ्चलं पञ्च लिप्तम्
तद वतमस संज्ञ्यं तत्कुभाक दिक् (१०) कलाढ्या
मलिनयति सितांशो रन्तम ग्रस्तमूर्त्तेः । ७८ ।

(चन्द्र कक्षा में) पृथ्वी की छाया के चारों ओर ५ कला अवतमस (कम अन्धकार वाली छाया) होती है । इसको जोड़ने पर भूभा (पृथ्वी की छाया) का व्यास १० कला अधिक होता है । १० कलायुक्त भूछाया चन्द्रमा को (ग्रहण के अतिरिक्त)अन्य समय भी ढंकती है (इस समय ग्रहण नहीं दिखता है पर चन्द्रमा का प्रकाश कुछ मन्द होगा)

अथ त्रिभाग स्तमसो विपूर्वतः कुभान्तलग्नोऽपि घनस्तमस्तया
मतस्तदाढ्या क्रियतं तमोमितः पुनर्विधोरन्तर दूरवृत्तिजात् । ७९ ।

पृथ्वी की छाया से लगा अवतमस का १/३ भाग अत्यन्त काला है अतः मुख्य छाया से मिल जाता है । अतः भू छाया बिम्ब में अवतमस का १/३ भाग (अर्थात् १०/३ कला) जोड़कर बिम्ब मान गिना जाता है । चन्द्रमा पृथ्वी से दूर या निकट होने पर भी उस कक्षा में पृथ्वी की छाया में अन्तर होता है ।

तमः क्षयद्वींक्षणतः क्रमेणत द्धनर्णगत्यादिफलाष्ट दो (२८) र्लवः
वियुक्त युक्त स्तमसीति तत् स्फुटं भवेत्ततः स्पष्टतमः शशिग्रहः । ८० ।

भू छाया बिम्ब का परिणाम रवि के पात के निकट रहने पर घटता है और पात से दूर (९०°) जाने पर बढ़ता है । अतः रवि गति फल का १/२८ भाग छाया बिम्ब में घटाया या जोड़ा जाता है (मध्य मान से)

विधोर्मानं तस्मात् शरगुण (३५) हतं विश्व (१३) विहृतं
पुनः सूर्य स्वर्णाभिध गतिफलार्द्धो नित युतम् ।
तमोमानं तत् स्यदिति नयन सिद्धं शशिनिति
प्रभुत्युक्तं पूर्वं मतमिद मुथा देय मखिलात् । ८१ ।

अतः चन्द्र बिम्ब कला को ३५ से गुणा कर १३ से भाग देते हैं । फल में सूर्य गति फल (धन या ऋण) क्रम से घटाते या जोड़ते हैं (उल्टे क्रम से) इससे भूछाया का दृक् सिद्धमान आयेगा) चन्द्र बिम्ब का कला मान निकालने की विधि पहले कही जा चुकी है । यह रीति अत्यन्त उपयोगी और स्मरण करने लायक है ।

कक्षायां शशिन स्तिरोहिततनोःस्याद् गोल केन क्षिते
र्भानो र्यावदनीक्षणं भवति तन्मानं कुभा यद्यपि ।
दृष्टेऽर्कस्य नखां (२०) शकेऽपि परित श्छाया समेवेक्ष्यते
मध्येन्दोः पथि दूर सन्निधि जुषोऽनल्पाल्प सूर्यांशयोः । ८२ ।

पृथ्वी सूर्य के चारों और घूमने के कारण पृथ्वी की छाया घूमती है, चन्द्र कक्षा में इसके मान के अनुसार ही वहां पर के बिम्ब को ढंकता है । अतः चन्द्र कक्षा में ही इसका मान लिया जाता है । सूर्य से दूरी घटने बढ़ने के कारण बिम्ब छाया में १/२० भाग का अंतर आता है । चन्द्रमा की दूरी घटने बढ़ने से भी चन्द्रकक्षा में इस बिम्ब मान में अन्तर आता है । पर यह सूर्य के अन्तर की तुलना में अत्यन्त कम होने के कारण इसकी गणना नहीं होती ।

अत्रायं गणित क्रमः स्वदश भागो (७२००) नार्क
बिम्बः (६४८००) क्षिति व्यासो (१६००) नः

(६३, २००) शशि मध्य कर्ण (४८७०५) गुणितः
(३०७,८१,५६,०००) स्पष्टार्क कर्णोद्धृतः
लब्धो नाक्षिति विस्तृतिः शशभृतः कक्षागतक्ष्माप्रभा
मानं स्या त्रिगुणा (३४३८) हतं स्फुट शशिश्रुत्याप्त मेतत्कलाः । ८३ ।

अब भूभा गणना की विधि दी जाती है । सूर्य बिम्ब व्यास से उसका १/१० घटाकर (७२,०००-७,२०० = ६४,८००) उससे भूव्यास (१६०० घटाते हैं) (६४,८००-१,६०० = ६३,२००) इसको मध्यम चन्द्र कर्ण (४८,७०५) से गुणा कर (३,०७,८१,५६,०००) स्पष्ट सूर्य कर्ण से भाग देते हैं । फल को पृथ्वी व्यास से घटाकर चन्द्र कक्षा में पृथ्वी छाया का बिम्ब मान होगा । इसको त्रिज्या (३४३८) से गुणा कर स्फुट चन्द्र कर्ण से भाग देने पर पृथ्वी छाया बिम्ब (चन्द्र कक्षा में) का कला मान होगा ।

तमो बिम्ब व्यासेऽम्बरकृतः (४०) कलो ने स्फुरतियो-
ऽन्तरे वृत्तः सारः सघनतर उक्तोऽन्धतमसम् ।
शरेऽल्पे तस्यान्तः, प्रविशति यदा शीत किरण
स्तदातिम्लानः स्यान्निविड़ तम घूमा वृत इव । ८४ ।

पृथ्वी का छाया बिम्ब मान निकाल कर उससे ४० कला घटाने पर पृथ्वी छाया का अन्धतमस मान होगा । यह अत्यन्त काला है । शरकला बहुत कम होने पर चन्द्र इस अन्धतमस में प्रवेश कर अविम्लान या अति काला दिखता है ।

ग्रस्तेऽल्पीयसि भाग के सितरुचो वर्णो नभः साम्यभा-
गल्पे धूम निभो दले कवलिते कृष्णोऽर्द्ध भागधिके
रक्त श्याम रुचि र्भवेच्च सकल ग्रासक्षणे पाटलो ।
भू भा मध्यगतस्य पिङ्गल रुचि र्भानोः सदैवासितः । ८५ ।

अति अल्प चन्द्र ग्रहण होने से ग्रस्त आकाश नीला पड़ जाता है । अर्द्ध ग्रहण में काला दिखता है । आधा से अधिक ग्रहण में लाला काला दिखता है । पूर्ण चन्द्र ग्रहण में ग्रस्त अंश पाटल पड़ जाता है । पृथ्वी छाया के बीच में चन्द्र रहने पर उसका रंग पीला हो जाता है । सूर्य ग्रहण में यह सब नहीं होकर हर समय ग्रस्त अंश (चन्द्रमा) काला दिखता है ।

क्षुद्रक्षपाकर त्वनुः क्षयितार्द्ध बिम्बो
भानुर्भवेन्निशित शृंग युगोऽतिनिम्नः
चन्द्रोऽर्द्ध खण्डित तनु स्तमसो महत्वा
दीषद् गभीर इव कुण्ठित श्रृंग युग्मः । ८६ ।

सूर्य बिम्ब की तुलना में चन्द्र बिम्ब हमेशा छोटा होता है । अतः सूर्य ग्रहण के अर्द्धग्रास के समय सूर्य श्रृंग तीक्ष्ण होता है । पर चन्द्र ग्रहण में चन्द्र बिम्ब की तुलना में पृथ्वी छाया का बिम्ब बड़ा होता है । अतः चन्द्र के अर्द्ध ग्रास के समय

श्रृंग मोटा दिखता है। छोटे वृत्त में बड़े वृत्त से काटने के कारण ऐसा होता है।

अकृत कृतक राहुं यस्तमस्त्वात् कुभाख्यं
विशति शशिनितस्मिन् नागमैर्दीक्षितानाम्।
वितरति मन्त्रसिद्धि यश्च सद् वैष्णवानां
सदिशतु कुशलं नः श्याम शैलावनीशः। ८७।

कृष्ण वर्ण होने के कारण पृथ्वी की छाया राहु के समान है जिसमें चन्द्र प्रवेश करने के समय नीलाचल वैष्णवों और तान्त्रिकों को मन्त्र सिद्धि देते हैं, वे हम लोगों का मंगल करें।

इत्युत्कलो ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
श्री चन्द्र शेखर कृते गणितेऽसिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बालबोधे
चन्द्र ग्रहोऽष्टम इतः सुभगः प्रकाशः। ८८।

इस प्रकार उड़ीसा के विख्यात राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्रशेखर द्वारा गणना और फल में समानता तथा बच्चों की शिक्षा के लिए लिखे सिद्धान्त दर्पण में चन्द्र ग्रहण के विस्तृत विवरण सहित आठवां अध्याय समाप्त हुआ।

नवमः प्रकाशः

सूर्य ग्रहण वर्णनम्

पूर्व प्रकाश उदितम् ग्रहणद्वयस्य साधारणं सकल कर्मरवि ग्रहेतु
यल्लम्बनावनतिकर्म ततोऽविशिष्टं मानान्तरञ्चशशिनस्तिदिह प्रवक्षे । १ ।

पिछले प्रकाश में चन्द्र और सूर्य दोनों के ग्रहण की सामान्य चर्चा हुयी है । लेकिन इसके अतिरिक्त सूर्य ग्रहण में लम्बन तथा नत निकालने की आवश्यकता होती है तथा चन्द्र का बिम्बमान भी सूर्य ग्रहण के लिए दूसरा होता है । अतः इन तीन बातों की विशेष व्याख्या इस अध्याय में होगी ।

दर्शान्तगौ समकलौ क्षितिगर्भसूत्र,
स्युतावपि द्युमणि चन्द्रमसौ न पश्येत्
यद्गोल पृष्ठ गतमानव एक सूत्रे,
सार्द्धान्यतोऽवनति लम्बन सम्भवोस्यात् । २ ।

अमान्त में रवि और चन्द्र दोनों की राशि अंश कला आदि समान होने पर भी केवल मध्याह्न समय में एक सीध में दीखते हैं । अन्य समय पृथ्वी केन्द्र तथा पृष्ठ के सूत्र में वे नहीं दीखते हैं । अन्य समय में ऐसा क्यों और कब होता है । यह इस अध्याय में कहा जायेगा । आकाश में मध्य क्षेत्र में सूर्य चन्द्र रहने पर लम्बन और नत (केन्द्र तथा पृष्ठ से दिशा में अन्तर) नहीं होता है ।

सूक्ष्मेन्दु सूर्य जनित स्फुट दर्शनाशो
यस्मिन् सकाल उदितः समपर्व नामा
तत्संस्कृतः स निजलम्बनानाड़िका द्यै
र्भास्वद् ग्रहच्छदन मध्य इहस्फुट स्यात् । ३ ।

रवि और चन्द्र को स्फुट करने पर उससे जो स्फुट दर्शान्त होगा उसी को समपर्व काल कहा जाता है । इस समपर्व काल में लम्बन संस्कार करने पर वह सूर्य ग्रहण में ग्रास मध्यकाल होता है । यही स्फुट अमान्तकाल होता है ।

एकानतिश्चन्द्र मसोऽपिसूर्यात् प्राक् पश्चिमस्ते द्विह लम्बनाख्या
याम्योतरस्थेऽवनितिः स्वमध्य स्थिते सितांशौ न हिते भवेताम् । ४ ।

अमान्त काल में सूर्य से चन्द्र की दिशा में अन्तर होता है उसे ही लम्बन कहते हैं । यह अन्तर (पृष्ठ देश से देखने के कारण) पूर्व पश्चिम दिशा में होने पर लम्बन कहलाता है । दक्षिण उत्तर दिशा में होने पर इसका नाम नत कहलाता है । आकाश मध्य में रविचन्द्र दोनों रहने पर दोनों का केन्द्र से जो सूत्र है उसी पर पृष्ठ देश रहता है अतः लम्बन या नत नहीं होता ।

सलम्बनं वित्रिभ लग्न तुल्ये भवेद् विधौवित्रिभ लग्न जाते
सौम्यापमे स्वाक्ष समान भागश्च सम्भवे ह्यावनति र्हिमांशोः । ५ ।

चन्द्र वित्रिभ (दशम लग्न) समान होने पर स्फुट लम्बन नहीं होता है। वित्रिभ लग्न की उत्तर क्रान्ति देश के अक्षांश के समान होने पर चन्द्र का नत भी नहीं होता।

त्रिभोन लग्नोदगपक्रमेक्षोऽधिके च सौम्यानत रन्यथा सौ
याम्या भवेत् पर्वणि चन्द्र भान्वोः साम्या न्नतो ते रवितः सुसाध्ये। ६।

वित्रिभ (दशम) लग्न की उत्तर क्रान्ति अपने अक्षांश से अधिक होने से चन्द्र की उत्तर नति होती है। वित्रिभ लग्न की उत्तर क्रांति अक्षांश उत्तर से कम हो या दक्षिण क्रान्ति हो तो दक्षिण नति होती है।

अमावास्या में चन्द्र और सूर्य की राशि आदि अवयव समान होने के कारण नति (उत्तर और दक्षिण दिशा) से ही साधन करना सुविधाजनक है।

तात्कालिकार्कात् समपर्वलग्नमानीय तस्मात् सदन त्रयोनात्
क्रान्तिं समानीय निजाक्ष भागैस्तत्याग योगौ पृथगेक दिक्त्वे। ७।

स्फुटाधिकार के नियम से तात्कालिक रवि का साधन कर उससे समपर्व काल का लग्न निकालेंगे। उससे ३ राशि घटाकर (वित्रिभ) लग्न से पुनः क्रान्ति साधन होगा। यह क्रान्ति और अक्षांश भिन्न दिशा में होने से अन्तर और एक दिशा में होने से योग होगा।

कार्यावितस्यु स्त्रिभहीन लग्न नतांशकास्ते नवते र्विशोध्याः
शेषो भवत्युन्नत भाग संह क्रमज्यकास्य स्फुत दृग् गति स्यात्। ८।

फल वित्रिभ लग्न का नतांश होगा (उसको ३ राशि (९०°) से घटाने पर वित्रिभ का उन्नतांश होगा। इस उन्नतांश की क्रमज्या को ही स्फुट दृग् गति कहा जाता है।

विश्वम्भरा गोल दलं रविन्द्वोः कक्षागतं कल्पित मुक्तरीत्या
लिप्तीकृतं चे त्परमे नतीस्त स्तदन्तरं चान्त्य नति र्ग्रहे स्यात्। ९।

सार्द्ध योजन को रवि और चन्द्र कक्षा में मान कर उसकी कला निकालने पर वह कुच्छन्न कला होती है। इतना ही क्रमशः रवि और चन्द्र की परम नति होती है। इन दोनों नतिका अन्तर सूर्यग्रहण में परम नति होती है।

यद् वार्क भुक्तेः कृतभूप (१६४) भागः शक्रांश (१४) ऋक्षे शगतेर्नति
स्यात् परातयो रन्तर जा विलिप्ता श्चन्द्रार्क गत्यान्तर लिप्तिकाप्ताः। १०।

$$\text{सूर्य परम नति} = \frac{\text{सूर्य की दैनिक गति}}{१६४}$$

$$\text{चन्द्र परम नति} = \frac{\text{चन्द्र की दैनिक गति}}{१४}$$

रवि और चन्द्र की परम नति के अन्तर की विकला बनाकर उसमें रवि और

चन्द्र की गति के अन्तर की कला से भाग देने पर दण्ड आदि परम लम्बन होगा।

नाड्यादिलब्धं स्फुट दृग् गतिघ्नं राशित्रयज्या विहृतं फलञ्च
अन्त्यं भवेल्लम्बन नाड़िकाद्यं तत्प्राणतो ज्या पर संज्ञका स्यात्। ११।

दण्ड आदि परम लम्बन को इष्ट काल के वित्रिभ शंकु (दृग् गति) से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर यह लम्बन का अन्त्या होता है। इसका असु बनाकर उस की ज्या को पर कहा जाता है।

शताहता भूप भुजै (२१६) र्विभक्ता सादृग् गतिर्लम्बन कृत्परोवा
त्रिभोनतग्नोष्ण करान्तरोत्था दोर्ज्या परघ्नी त्रिगुणे (३४३८) द्धृताचा। १२।

स्फुट दृग् गति (विचित्र शंकु) को (१००) से गुणा कर (२१६) से भाग देने से भी यही 'पर' आयेगा अब वित्रिभ लग्न तथा रवि की अन्तर ज्या को पर से गुण कर त्रिज्या से भाग देने पर-

स्याल्लम्बन ज्या फल मस्य चापं प्राणात्मकं लम्बन मेतदर्के
त्रिभोन लग्नात् पर पूर्व दिक् स्थे क्रमाद् युतोनं समपर्व काले। १३।

लम्बन ज्या होती है। इसका चाप (असु या प्राण में) स्फुट लम्बन है। वित्रिभ लग्न से सूर्य पश्चिम (कम राशि होने पर लम्बन को समपर्व काल में जोड़कर या सूर्य से पूर्व (वित्रिभ लग्न का राशि अंश सूर्य से कम होने पर) समपर्व काल से उसे घटाकर स्फुट समपर्व काल बनाते हैं।

तत्काल सम्भूत रवि त्रिभोन लग्नो न्नत ज्या पर मौर्विकाभिः
अर्क त्रिभोनान्तरतोऽपि भूयस्तल्लम्बनं पूर्ववदेव साध्यम्। १४।

इस प्रकार स्फुट समपर्व काल से स्फुट रवि और वित्रिभ लग्न निकालते हैं। तथा उसके अन्तर से पुनः पहले की तरह लम्बन का साधन करते हैं।

तत्संस्कृतात् तत्समपर्व कालात् पुनर्नतादौ रवि लम्बनञ्च
स्थिरेऽसकृत्कर्म वशादि हेतत् संस्कार योग्यं स्फुट लम्बनं स्यात्। १५।

इस प्रकार बार बार करने पर दो पर्वकाल के बीच अन्तर नहीं रहने पर वह स्फुट पर्व सम काल होगा। दो लम्बनों के बीच भी अन्तर नहीं रहने पर वह स्फुट लम्बन कहा जायेगा।

वक्ष्ये सकृल्लम्बन कर्मसूक्ष्म लग्नार्क यो रन्तरतः प्रसाध्ये
दोः कोटिजीवे परबाहु जीवान्तरस्य वर्गाद्युत कोटिवर्गात्। १६।

एक बार में सूक्ष्म लम्बन निकालने की विधि अब मैं कहता हूँ। सम पर्व काल के लग्न तथा रवि निकाल कर दोनों के अन्तर की भुजज्या ओर कोटिज्या निकालें।

पूर्व श्रुतिः कोटिगुणा त्परघ्नात् श्रुत्या हृताद्यत्फलमस्य चापः
मध्यो भवेल्लम्बन जासु संघस्थ त्संस्कृता मान्तज दृग् गतिघ्नः । १७ ।

पहले कहे गये परज्या और भुजज्या के अन्तर का वर्ग तथा कोटिज्या का वर्ग जोड़कर उसका वर्ग मूल लेने से कर्ण होगा । कोटिज्या को 'पर' से गुणा कर लम्बन का कर्ण से भाग देने पर मध्यम क असु आता है । इस मध्यम लम्बन में से समपर्व काल का संस्कार कर उसका की दृग् गति से मध्यम लम्बन का गुणा करेंगे । तथा

स आद्यया दृग् गति जीवयाप्तो विस्पष्ट तां गच्छत भास्करोक्त-
किन्त्वेषमध्यादधिको यदिस्यात्तदा स्वमध्यान्तर जा सुवर्गात् । १८ ।

आद्य दृग् गति से भाग देने से स्फुट मध्यम (भास्करोक्त) लम्बन आता है । यह मध्यम लम्बन से अधिक होने पर दोनों के अन्तर असु से वर्ग को-

द्वाभ्या हतान्मध्यम लम्बनाप्तात् फलेन युक्तः करणीय एव
तल्लम्बनं भूयइनेन्दु मध्य गत्यन्तर (७३१) घ्नं प्रथमेन्दु भान्वो । १९ ।

दो से गुणा कर मध्य लम्बन से भाग देकर लब्धि को मध्य स्फुट लम्बन में जोड़ेगे । इस प्रथम और द्वितीय स्फुट लम्बन से किसी को लेकर उसे रवि और चन्द्र की मध्यम गति के अन्तर (७३१) से गुणा कर प्रथम स्फुट चन्द्र तथा रवि के

गत्यन्तरेणोद् धृत्त मेव कार्य द्विधोदितं स्पष्टतमं भवेद्धि ।
परिष्कृतो लम्बन नाड़ि काद्यै दर्शान्त एव स्फुट पर्वनामा । २० ।

गति अन्तर से भाग देंगे । इससे भास्करीय स्फुट लम्बन अति स्फुट होता है । इसी प्रकार स्फुट लम्बन नाड़िका द्वारा पहले की भांति दर्शान्त का संस्कार करने से स्फुटतम पर्वकाल आता है ।

षड् भै (२७६) र्हता लम्बन सिद्ध काल लग्नस्फुटार्कान्तर कोटि जीवा
त्रिज्या हृतं दृग् गति ताड़िताप्ता त्रिभज्य जा लम्बन जा विनाड्यः । २१ ।

(अथवा) स्फुट पर्व काल के स्फुट लग्न और रवि निल कर दोनों के अन्तर की कोटिज्या को (२७६) से दृग् गति से गुणा कर त्रिज्या से भाग देने पर लम्बन की विनाड़ी आती है ।

भवन्तिताः प्राग्व दिनेन्दु मध्य गत्यन्तर (७३१) घ्नाः स्फुटजान्तराप्ताः
काले स्फुटे योग वियोग वाम्यात् परिष्कृताश्चेत्सम पर्वकालः । २२ ।

इस लम्बन विनाड़ी को पहले की तरह रविचन्द्र के गति अन्तर (७३१) से गुणा कर दोनों के स्फुट गति अन्तर से भाग देने पर प्राप्त फल से स्फुट पर्व का विपरीत संस्कार करने से समपर्व काल होगा ।

इत्थं प्रसाध्य ग्रहमध्यकालं चन्द्र ग्रहेया स्थित खण्ड सिद्धयै
अन्त्या स्फुटा चन्द्र गतिः पुरोक्ताः तयाहतं लम्बन नाड़िका द्यम् । २३ ।

इस प्रकार ग्रह मध्यकाल का साधन करने पर चन्द्र ग्रहण स्थित्यर्द्ध जानने के लिए ग्रहण के लिए उपयोगी चन्द्र की अन्तिम स्फुट गति (पहले दिया गया है-षष्ठ अध्याय में) निकाल कर उसमें लम्बन स्फुट घटिका को गुणा करेंगे ।

षष्ट्यास्तमेतत् फलहीन युक् चेत् प्रोक् पर्व जार्कः स्फुट शीतगुःस्यात्
पातो दिगंशाक्ष फलेन सिद्धः कार्यास्तदूनात् शशिनः शरश्च । २४ ।

गुणनफल को ६० से भाग देकर लब्धि को समपर्व काल के सूर्य में जोड़ेगे या घटायेंगे जिस प्रकार लम्बन का करते हैं । चन्द्र पात का दिंगशफल से संस्कार उसे स्फुट चन्द्र से घटाकर शर निकालेंगे ।

आनीय भानो स्फुट पर्व लग्नं त्रिभोन लग्नं तदपक्रमौ च
उदक् शरो ना यमदिक् शराढ्यः स्वदेश जाक्ष स्तुभवेत् शराक्षः । २५ ।

इसके बाद तात्कालिक सूर्य से स्फुट पर्व काल का लग्न और वित्रिभ लग्न निकाल कर उन दोनों की क्रान्ति निकालेंगे । अपने स्थान के अक्षांश में चन्द्र का दक्षिण शर जोड़ने या उत्तर चन्द्र घटाने से शराक्ष होगा ।

तद्वि त्रिभांगा पमयोर्वियोगात् योगात् विभिन्नैकदिशोः क्रमेण
साध्या नतज्यात्रतु सैव मध्या लग्ना पमज्या प्युदयज्यकारुया । २६ ।

शराक्ष और वित्रिभ क्रान्ति एक दिशा में होने पर जोड़कर और भिन्न दिशा में होने से घटाकर नत निकालते हैं । तब चाप की ज्या को नतज्या कहते हैं । इसका अन्य नाम मध्यम लग्न की उत्क्रम ज्या या उदय ज्या भी कहते हैं ।

मध्योदयज्या गुणिता विलग्न द्युज्या हतालब्ध कृतिः समेता
मध्याकृतौ मूल मितो यदाप्तं दृक् क्षेप एष स्वनतानुसारात् । २७ ।

इस मध्य (पिछले वर्णित नत) ज्या को उदयज्या से गुणा कर द्युज्या से भाग देते हैं । लब्धि का वर्ग और मध्यज्या वर्ग जोड़कर मूल लेंने से दृक् क्षेप होता है ।

किंवा त्रिभोनं तनुमेव भानुं प्रकल्प्यतत् क्रान्ति वरेद्युमानम्
संसाध्या तल्लग्न युगान्तरोत्थ कालस्य तद् घस्र दलस्य चान्तः । २८ ।

अथवा वित्रिभ लग्न को रवि मान कर उससे क्रान्ति और चर साधन कर दिनार्द्ध निकालें । इस दिनार्द्ध तथा वित्रिभ लग्न के बीच के असु में समय निकालने पर नतासु होगा ।

ये चासवस्त ज्ञनतोत्क्रमज्या साधान्त्यका तदहितोन्नतज्या
छेदो नरोदृक् गुण एतदंशा नतास्त्रिभोनापमउत्तरोऽक्षात् । २९ ।

इस वित्रिभ नतासु की उत्क्रमज्या (या नतासु की ज्या को अन्त्या से घटाने पर प्राप्त इष्ट अन्त्या) निकालें) इसके बाद सप्तम प्रकाश की विधि से छेद, इष्ट हृति, वित्रिभ शंकु उसकी दृक् ज्या आदि निकालेंगे। दृक् ज्याका चाप वित्रिभ नतांश होगा। वित्रिभ उत्तर क्रान्ति अपने अक्षांश से उत्तर हो

स्याच्चोद् बहुः सौम्य नतांशकास्तेऽन्यथैव याम्याः शरसंस्कृताःस्युः
दिक् साम्य भेदोत्य युति च्छिदाभ्या तज्ज्याच दृक् क्षेप इति द्विधैक्षाः। ३०।

तो नतांश उत्तर है अन्यथा दक्षिण होगा। यह नतांश और चन्द्र शर एक दिशा में होने पर जोड़ा जायेगा नहीं तो अन्तर होगा। फल की ज्या दृक् क्षेप होगा। इस प्रकार दो तरह का दृक् क्षेप है।

पृथक् स्थितश्च प्रथमेन्दु भुक्ति फलेन निघ्नकलिकात्मना सः
त्रिज्याहृतः कर्कि मृगादिमन्द केन्द्रे स्फुटः स्यात् फल युग्वियुक्तः। ३१।

दोनों दृक् क्षेप अलग अलग रखकर उसे कलात्मक चन्द्रगति से गुणा कर त्रिज्या से भाग देकर फलों को जोड़ते हैं (चन्द्र मन्द केन्द्र कर्क आदि ६ राशि में रहने पर) या घटाते (मन्दकेन्द्र मकर आदि ६ राशि में है) इसके दृक् क्षेत्र स्फुट होते हैं।

द्विधोक योरत्र कलाल्पनाने ग्रासेऽष्टि चक्षुः (२८) कलिकाधिके च
दृक् क्षेपयो सूक्ष्मतया द्वितीयो ग्राह्योऽन्यथा स्थूलतया पिवाहाः। ३२।

दो प्रकार का स्फुट दृक् क्षेप में कहा गया है। १ कला से कम और २८ कला से अधिक ग्राहण ग्रह्य में द्वितीय दृक् क्षेप जो वित्रिभ नतांश से संस्कृत है लिया जाता है। १ से २८ कला तक ग्रास रहने पर प्रथम दृक् क्षेप लिया जाता है, जो शराक्ष वित्रिभ क्रान्ति से संस्कृत है।

मध्यार्क चन्द्रान्त्य नतिद्वयस्य (रवि २१।३८, चन्द्र ५६।२८।१३)
दृक् क्षेप निघ्नं विवरं (५६।६।३५) त्रिमौर्व्या (३४३८)
हृतं नतिस्तत्व यमांश (२२५) हीन दृक् क्षेप
भूतर्क (६१) लवं स्फुटा वा। ३३।

मध्यम रवि (३१।३८) और चन्द्र नति (५६।२८।१३) का अन्तर (५६।६।३५)को दृक् क्षेप से गुणा कर त्रिज्या से भाग देने से फल स्फुट नति होता है। अन्य विधि–

$$\text{स्फुट नति} = \frac{\text{दृक् क्षेप} - \dfrac{\text{दृक् क्षेप}}{२२५}}{६१}$$

यह दृक् क्षेप की दिशा में होता है।

एकांशयोश्चन्द्र शरावनत्योर्योगः पुनः भिन्नदिशोवियोगात्
शेषोऽधिकांश स्फुट दृक् शरःस्याद् ग्रासादि बिन्दु ग्रह वद् विचिन्त्यः ।३४।

चन्द्र शर तथा स्फुट न ति का समान दिशा में होने पर योग तथा भिन्न दिशा में होने पर अन्तर करने पर स्फुट शर होता है। जिसका मान अधिक होता है उसी की दिशा में स्फुट होगा। उससे चन्द्र ग्रहण अध्याय में लिखे नियम के अनुसार ग्रास तथा स्थिति अर्द्ध का साधन होगा।

देशेक्वचित्सौम्य शरोधिकै श्चेदक्षा त्तदाक्षं प्रतिशोध्य बाणात्
शेषः शराक्षो भवतीह सौम्यः सौम्येऽपमे वित्रिभजे ततोऽल्पे । ३५ ।

चन्द्र का उत्तर शर अपने स्थान के आक्षांश से अधिक होने पर शर से अक्षांश घटायेंगे। शेष को उत्तर शराक्ष कहा जायेगा। वित्रिभ की उत्तर क्रान्ति इस शराक्ष से कम तथा

स्वाक्षाधिकेऽक्षं परिवर्ज्य तस्माच्छेषा शराक्षाद्य उदंगतः स्यात् ।
सौम्येऽपमे तत्र निपक्षतोऽल्पे तदक्ष लिप्ता विवराच्छराक्षः । ३६ ।

अक्षांश से अधिक रहने पर वित्रिभ की उत्तर क्रान्ति से अक्षांश घटाकर शेष को शराक्ष में जोड़ने से उत्तर नत होता है। वित्रिभ की उत्तर क्रान्ति अक्षांश से कम होने पर अक्षांश से यह क्रान्ति घटाकर शेष से शराक्ष

विशोधितो याम्य नतोऽवशेष सौम्यः शराक्षाद् विवरे विशुद्धे
याम्येऽपमे वित्रिभ लग्न जाते स्वाक्षान्वते सौम्य शराक्षतोऽल्पे । ३७ ।

घटाने से शेष दक्षिण नत होगा। शराक्ष से अन्तर घटाने पर उत्तरनत होगा। वित्रिभ की दक्षिण क्रान्ति में अक्षांश जोड़ने से वह यदि उत्तर शराक्ष से कम हो

शराक्षतः प्रोज्भयतदक्षयोगं लिप्तादिकः साम्य नतोऽवशेष
भागाल्पकाक्षेषु विशेष एष देशेषु दृश्यो हि कुशाग्रधोभिः । ३८ ।

तो क्रान्ति और अक्षांश के योग को शराक्ष से घटाते हैं। शेष कला आदि उत्तर नत होगा। एक अंश से अधिक अक्षांश वाले स्थान से ये सब संस्कार करने के लिए मेरा विद्वानों से अनुरोध है।

अतः शराक्ष प्रति संस्कृतायाः क्रान्तेः सदा वित्रिभ लग्नजायाः ।
नतांश याम्योत्तर तानुसारा दृक् क्षेप मध्या नतयोऽ खिलास्युः । ३९ ।

अतः प्रायः सभी स्थानों में (विषुवत् वृत्त क्षेत्र को छोड़कर) शराक्ष संस्कृत् वित्रिभ क्रान्ति से नतांश साधन होगा। (उत्तर दक्षिण दिशा में) तथा दृक् क्षेप, मध्य तथा नत आदि सभी निकलें।

प्राग् वद्रवेर्मान मथेन्दु मानं साध्यं विधावस्ति क्रियान् विंशेषः ।
सूक्ष्मं तमो मान मतः प्रवक्ष्ये दृक् सिद्धये यद् गदितं न पूर्वे । ४० ।

चन्द्र ग्रहण अध्याय में लिखे गये नियम से रवि और चन्द्र का बिम्ब साधन होगा। इस प्रकार प्राप्त चन्द्र बिम्बमान को सूक्ष्मतम कैसे किया जायेगा इस की विधि बतायी जा रही है। यह पहले किसी आचार्य ने नहीं कहा है।

कर्क्यादि नक्रादिक केन्द्रकोटिफलेन युक्तत्रिगुण (३४३८) स्वघातात्
मूलेन तद् दोः फल वर्गयुक्ताद् द्विघ्न त्रिजीवा (६६८७६) वियुतान शेषः।४१।

चन्द्र का मन्दकेन्द्र कर्क आदि ६ राशि में रहने पर त्रिज्या से उसका कोटिफल घटायेंगे, अन्यथा (मन्द केन्द्र मकर आदि ६ राशि में रहने पर) त्रिज्या और कोटिफल को जोड़ेगे। फल के वर्ग को मन्दभुजफल के वर्ग में जोड़कर उसका मूल त्रिज्या के दो गुणा से घटायेंगे।

यस्तेन भक्ता त्रिगुणस्यवर्गात् फलं
हि लिप्तामय मन्द कर्णः
त्रिज्याघ्न मध्येन्दु कलात्मबिम्ब (१०७७२४)
स्तत्कर्ण भक्तः स्फुटमिन्दु मानम्। ४२।

शेष से त्रिज्या वर्ग में भाग देंगे, फल मन्द कर्ण की लिप्ता होगी। चन्द्र के मध्य बिन्दु कला मान (३१।२०) को त्रिज्या (३४३८) से गुणा कर गुणनफल (१०७७२४) में मन्दकर्ण से भाग देने पर चन्द्र का स्फुट बिम्बमान होगा।

आनीय शंकु स्फुट पर्वकाल सूर्यस्य दृग्ज्याञ्च परेन्दु नत्या (५६।२८)
हीनस्य शंकोः कृतियुक्त दृग् ज्यावर्गात्पदं यत्तमसः सकर्णः। ४३।

स्फुट अमान्त काल निकाल कर उस समय के स्पष्ट रवि से पूर्व नियम के अनुसार शंकु और दृग्ज्या निकालते हैं। चन्द्र का लम्बन (५६।२८) शंकु से घटाते हैं। शेष का वर्ग और दृग्ज्या का वर्ग जोड़कर उसका मूल निकालने से वह तम कर्ण (छाया कर्ण) होगा।

स्फुटेन्दुमान त्रिगुणघ्न मेतत् कर्णोद्धृतं स्यात्तमस प्रमाणम्।
यद्वेन्दु षष्ट्यंश विनिघ्न शंकु त्रिज्याप्तयुक्ते न्दुमितस्तमःस्यात्। ४४।

स्फुट चन्द्र बिम्ब को त्रिज्या से गुणा कर तम कर्ण से भाग देने पर सूर्य ग्रहण में तमोमान या ग्राहक मान होगा। स्फुट चन्द्र बिम्ब मान का १/६० में स्फुट पर्वकाल शंकु से गुणा कर त्रिज्या से भाग दे कर लब्धि को स्फुट चन्द्र बिम्ब मान में जोड़ने से भी मध्य तमोमान होगा।

किंवा दिनस्योन्नत दण्ड संख्या द्विघ्ना विलिप्तास्तमसि प्रदेया।
स्पर्शे विमोक्षे त्विदमेव कर्म कार्यं हि शंकौ सु बहुप्रयासात्। ४५।

शंकु आदि के द्वारा तमो बिम्ब आदि निकालने में बहुत परिश्रम के कारण मैने इसकी एक सरल विधि भी निकाली है। स्फुट पर्वकाल में दिन की उन्नत घटी को २ से गुणा कर उसे विकला मान कर स्फुट चन्द्र बिम्ब की कला आदि

में जोड़ने से तमोमान होगा ।

आद्येन्दु भुक्ते रथ षष्टि भागः शंक्वा हतो व्यास दलेन (३४३८) भक्तः
फलेन चन्द्रान्त्य गतिः समेतार्क भुक्ति हीना ग्रह कालहारः । ४६ ।

प्रथम प्रकार से स्फुट चन्द्र गति के १/६० को स्फुट पर्व कालिक रवि शंकु में गुण कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर प्राप्त लब्धि में स्फुट चन्द्र की अन्त्य गति जोड़ेगे । योगफल को सूर्य गति से घटाने पर शेष ग्रहण कालिक हार होगा ।

यद्वाष्टमांशेन दिनोन्नताक्ष नाड़ी समाभिः कलिका भिराढ्या
अन्त्वेन्दु भुक्ती रवि भुक्ति हीना हृतिर्मदा स्पर्श विमोक्ष कालेः । ४७ ।

दिन के उन्नति काल (घटी आदि) को उसका १/८ भाग कम कर शेष को कला मान कर चन्द्र की अन्त्यगति में जोड़ने से प्राप्तफल में रवि की स्फुट गति घटाने से स्पर्श और मोक्ष काल का हार होगा ।

त्रियेयमिन्दु ग्रहणेनतूक्ता यदेककक्षा स्थ कुभेन्दुमानात्
ग्रासोनभिन्नोऽत्र तुभिन्न कक्षा स्थिते रवीन्दो श्छदनस्य भेदः । ४८ ।

चन्द्रग्रहण में पृथ्वी छाया और चन्द्र बिम्ब एक कक्षा में रहने के कारण ग्रास मान स्थान भेद से भिन्न नहीं होता है । अतः चन्द्र ग्रहण में यह काम नहीं करना पड़ता है । सूर्य ग्रहण में छाद्य सूर्य तथा छादक चन्द्र भिन्न भिन्न कक्षा में होने के कारण स्थान भेद से ग्रास भेद होता है ।

तस्मात् पुरः पश्चिम याम्य सौम्य परस्परात्पान्तर देशकेषु
अत्यन्त सर्वग्रह कंकणा भग्रासा पृथक् सूक्ष्मतथैव साध्याः । ४९ ।

सूर्य ग्रहण में छाद्य और छादक की अलग कक्षा होने के कारण अलग अलग स्थानों में ग्रास भेद होता है । पूर्व पश्चिम या उत्तर दक्षिण थोड़ा अन्तर होने पर भी उनका अल्पग्रास सर्वग्रास और वलयाकार ग्रास अलग अलग साधन करना होगा ।

स्फुटेषु मानैक्य दलस्वकाल हारैर्हिमांशु ग्रहण क्रमेण
स्थित्यर्द्ध मर्दार्द्ध घटी फलानि सकृत् समानीय तदू नयुक्तात् । ५० ।

चन्द्रग्रहण अध्याय के नियमों के अनुसार समपर्वकालिक स्फुट शर, मानैक्यार्द्ध (छाद्य छादक बिम्बों के योग का आधा), ग्रहण काल हार द्वारा पहले स्पर्श, मोक्ष, स्थित्यार्द्ध तथा मर्दार्द्ध घटीफल निकालेंगे । (शर या तुंग से) यह स्पर्श , मोक्ष, स्थित्यर्द्ध और मर्दार्द्ध समपर्व काल से घटाने पर (या जोड़ने पर) सम्मीलन और उन्मीलन समय होगा ।

स्पर्शादिकालान् समपर्व कालात् संस्थाप्यतत्त त्समयोत्थ लग्नैः
त्रिभोन लग्नात् पर पूर्व दिक् कं नतं समालोच्य गति क्रमेण । ५१ ।

इसके बाद तात्कालिक और वित्रिभ लग्न साधकर पूर्व और पश्चिम नत

निकालेंगे, उससे

संसाध्य तत् तत् हरिजानितैः स्तुतैः संस्कृत्यता स्थान तथा विधाय
तत्काल दृक् पेक्ष नतीषु सिद्धैः स्थित्य र्द्धकालैः समपर्वकालात् । ५२ ।

इस स्फुट लम्बन काल में स्पर्श, मोक्ष आदि काल का संस्कार करते हैं । इस प्रकार संस्कार होने पर स्पर्श, आदि काल से फिर उस काल का स्फुट शर और उससे स्थित्यर्द्ध निकाल कर समपर्वकाल का संशोधन करें ।

परिष्कृतातत् हरिजैः पुनः तान् स्पर्शादिका नित्य सकृत् क्रियाभिः
स्थिरं भवेत् स्पर्श विमोक्ष मर्द निमीलनोन्मीलन काल जालम् । ५३ ।

इस समपर्वकाल से पुनः लम्बन निकाल कर स्पर्श आदि समय का पुनः संस्कार करेंगे । इस प्रकार बार बार करने से क्रमानुसार दो स्पर्श या दो मोक्ष कालों में कोई अन्तर नहीं होगा । इस प्रकार स्पर्श, मोक्ष, उन्मीलन निमीलन समय स्पष्ट होगा ।

तत् स्पष्ट पर्वान्तर नाड़िकाद्यं स्थित्यर्द्ध मर्दार्द्ध युगं स्फुटं स्यात्
सकृत् कृति स्पर्श विमोक्ष जे ष्वयाः मध्येषुतः कालज मन्तरंयत् । ५४ ।

इस स्पर्शादि काल और स्फुट पर्व काल के अन्तर से दोनों स्थिति अर्द्ध तथा दोनों मर्द अर्द्ध की स्पष्ट नाड़ी आदि का मान प्राप्त होगा । अथवा एक बार की विधि से स्पर्श और मोक्षकाल का स्फुट शर निकाल कर मध्यम शर से इन दोनों का अन्तर निकालें ।

तस्यानुपातात् शर सिद्धिरस्या स्थित्यर्द्ध के वाप्यसकृदविधेये
आद्य द्वितीय स्थिति खण्ड सिद्ध पर्वोद्भव ल्लम्बन जान्तरस्य । ५५ ।

इसके अनुपात से स्पर्श और मोक्ष काल का शर सिद्ध होता है । एक धनात्मक एक ऋणात्मक अन्तर होता है । उनके योग के आधे के बराबर दोनों अन्तर करने से स्पर्श और मोक्ष काल का शर निकलेगा ।

इस शर से एक बार के नियम से (दूसरा) स्थिति अर्द्ध काल निकालेंगे । उससे स्पर्श, मोक्ष काल तथा तात्कालिक स्फुट शर (मध्यम काल का) का साधन करते हैं । फिर मध्य कालीन स्फुट शर से स्पर्श और मोक्षकाल के शर का अन्तर निकालते हैं ।

तथा नुपातात् समयान्तरोत्थाद् भवे तृतीयादिक लम्बनाप्ति
किं वा व्यसंस्कार भवाल्प भूरि स्थित्यर्द्धयो र्मध्यत एव यत्स्यात् । ५६ ।

इन अन्तरों के अनुपात से (दोनों अन्तरों को उनके योगार्द्ध के बराबर कर) फिर स्पर्श और मोक्षकाल का स्फुट शर (तीसरा) निकालते हैं । पुनः इससे स्थिति अर्द्ध निकालते हैं । यह क्रिया बार बार करने से शर (लम्बन) स्फुट हो जाता है ।

पलान्तरं वर्गित मेतदाप्त मध्य स्थितार्द्धोत्थ पलैः फलेन
युक्तं स्फुटं स्यात् यदि दण्डतोल्पं स्थित्यर्द्धमत्यं शफलाढयमेव । ५७ ।

प्रथम लम्बन संस्कार के बाद स्पर्श और मोक्ष काल की स्थिति अर्द्ध और प्रथम स्थिति अर्द्ध में जो पल आदि अन्तर होगा उनके वर्ग को मध्य स्थिति अर्द्ध से भाग देने पर जो लब्धि होगी उसे स्पर्श और मोक्ष के स्थिति अर्द्ध में जोड़ने से वह स्फुट होता है ।

स्थित्यर्द्ध १ दण्ड से कम होने परही यह क्रिया होती है । और भागफल सदा जोड़ा जाता है । इस स्थिति अर्द्ध से फिर उससे स्पर्श और मोक्ष काल का संस्कार कर उन्हें स्फुट किया जाता है ।

साध्यं ततो लम्बन मेक बारं चेन्मध्यमेन स्थिति खण्डकेन
ऊने युते लम्बन भाजिदर्शे मानै कखण्ढा दधिकः शरःस्यात् । ५८ ।

लम्बन संस्कृत दर्शान्त (अमावास्या) से मध्यम स्थिति घटाने या जोड़ने से जो स्पर्श या मोक्ष काल होता है । उस समय के स्फुट शर यदि मानै क्यार्द्ध (बिम्बमानों के योग का आधा) से अधिक हो-

समोऽपिवा तेन तदात्मबाण मध्यग्रहेष्वन्तर लिप्तिकाभिः
मध्य ग्रह ग्रास कलाघ्न मध्य स्थित्यर्द्ध कालस्य दलं विभक्तम् । ५९ ।

या उसके समान हो तो मध्य स्थिति अर्द्ध को ग्रास कला से गुणा कर उसका आधा करते हैं । उसमें तत्कालिक शर और स्फुट पर्वकालिक शर की अन्तर कला से भाग देते हैं ।

फलं सकृत् कर्मत एव सिद्धं स्थित्यर्द्धकं मौक्षिक मादि मं वा
तत्संस्कृतात् पर्वण एक मेवस्या ल्लम्बनं स्पष्टमतः शरश्च । ६० ।

इससे एक ही बार में स्पर्श और मोक्ष स्थिति अर्द्ध सिद्ध होते हैं । इन दो स्थिति अर्द्ध से संस्कृत स्फुट पर्व काल से एक ही बार में स्पष्ट लम्बन निकलता है । इस लम्बन संस्कृत स्पर्श और मोक्षकाल से स्फुट शर निकलेगा । इस रीति से बार बार लम्बन निकालने की आवश्यकता नहीं है ।

तमोऽधिकं चेत् सदन प्रमाणं ग्रासस्तु यस्य वलयाभिधानः
तस्मिन् स्तमो मादविहीन मान योगार्द्ध वर्गात् शरवर्ग हीनात् । ६१ ।

सूर्य ग्रहण से ग्राह्य बिम्ब का परिमाण तम (ग्राहक बिम्ब) से अधिक होने पर वलय ग्रास होगा । ऐसा होने पर ग्राह्य और ग्राहक मानैक्यार्द्ध (बिम्ब मान योग का आधा) से ग्राहक मान घटाकर अवशेष का वर्ग कर उससे स्फुट शर का वर्ग घटाते हैं ।

मूलं पुरोवद् गुण हार हेतोः पलात्मकः स्याद् वलयार्द्ध काल
तदून युक्तात् समपर्वणः तत् आरम्भ नाशावपि लम्बनाभ्यम् । ६२ ।

अन्तर के मूल के पहले की तरह (चन्द्र ग्रहण अध्याय की विधि से) गुणा और हार के प्रयोग से वलय ग्रास का पल आदि स्थिति अर्द्ध निकालेंगे । इस स्थिति अर्द्ध बल को लम्बन संस्कार कर समपर्व काल से घटाने या जोड़ने पर वलय ग्रास का आरम्भ और शेष काल होगा)

क्वचिद् ग्रहे दण्डपल प्रभेद मालोक्य यं जिष्णु सुतो जगाद
तिथ्यन्त नाड़ी नत बाहु मौर्वैत्याद्यं ससिद्धान्त उदा जहार । ६३ ।

ग्रहण के दण्ड पल गणना से दृष्टि का अन्तर देख कर ब्रह्मगुप्त (जिष्णु गुप्त के पुत्र) ने अपने सिद्धान्त में तिथि के अन्त में नाड़ी, नत के भुज और ज्या आदि के संस्कार कहे हैं ।

यद् भास्करस्तन्नत सिद्ध पर्व न सर्वदा दृक् समतां यदेति
ततोऽधिकं किञ्चिदहं विशेषं ब्रुवे दुरुहे मिहिर ग्रहोऽपि । ६४ ।

भास्कराचार्य ने भी अपने सिद्धान्त शिरोमणि में विधि बतायी है । उससे ग्रहण काल दृक सिद्ध सदा नहीं होता है । अतः मैने सूर्य ग्रहण के कठिन विषय पर उससे अधिक बहुत कुछ कहा है ।

निष्पाद्य सूर्य ग्रह मुक्त रीत्या स्पर्शान्त मध्यस्फुट सायकाय
तेस्व स्वलग्नापम शिञ्जिनीघना स्त्रिज्योद्धृता यष्टयएव लब्धा । ६५ ।

पूर्वोक्त नियम से सूर्य ग्रहण साधन कर स्पर्श मध्य और मोक्ष काल के स्फुट शर को अपने समय के लग्न क्रान्ति ज्या से अलग अलग गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर उस उस समय की यष्टि होती है ।

परीकृतातद् ग्रह कालिहृत्या भक्ताः पलैरैव फलैर्युतोनः
लग्नापमेष्योः पृथगेक दिक्ते क्रमात्रिधोक्तः समपर्वकालः । ६६ ।

इन तीन यष्टि की परा (विकला का १/६०) को स्पर्श आदि ग्रहण काल हार से भाग देकर पल आदि फल निकालेंगे । लग्न क्रान्ति और स्फुट शर भिन्न दिशा में होने पर इस पलात्मक फल को स्पर्शादि काल में जोड़ेगे अन्यथा घटायेंगे । तब वास्तव स्पर्श, मध्य और मोक्षकाल होगा ।

क्रमाल्प कश्चेत् सपुनः पलैस्तैः स्वलम्बनज्या गुणितैः पराप्तैः
युतो निता वित्रिभ लग्न पश्चात् पूर्वस्थितेऽर्क नतु वर्द्धमानः ६७ ।

यह समय पहले के समय से अधिक होने पर वही वास्तविक समय होगा । पूर्वसमय से कम होने पर पुनः उनको अपनी अपनी लम्बन ज्या से गुणा कर पूर्वोक्त पर से भाग देकर पलादि फल निकालेंगे । सूर्य वित्रिभ लग्न के पश्चिम रहने पर स्पर्शादि काल में जोड़ेगे । नहीं तो घटायेंगे ।

स्पर्शादिके संस्कृत पर्वनाम्ना स्थाप्योऽथमध्यो निजलम्बनेन
सुसंस्कृत स्याद् ग्रह मध्यकाल स्तात्कालिक स्फुट दिशा शुगस्य । ६८ ।

इस प्रकार वास्तव में स्पर्श, मध्य और मोक्ष काल आयेगा । मध्यकाल को पुनः स्फुट लम्बन से संस्कृत करने पर ग्रहण का स्फुट मध्यकाल होगा ।

वर्गात्पदं मध्यमयष्टिवर्ग युक्तात् स्वमध्य स्फुट दिक् शरस्यात् ।
स्थित्यर्द्ध मानीयततः स्वलग्न द्युज्याहतं व्यास दलोद्धृतं तत् । ६९ ।

इसके बाद मध्यकालिक स्फुट शर का वर्ग और मध्य यष्टिवर्ग जोड़कर उसका वर्गमूल लेने से वह स्फुट मध्यकालिक शर होगा । इससे पूर्व रीति से स्पर्श और मोक्षकालिक स्थिति अर्द्ध निकालेंगे । उनको अलग अलग स्थान में स्फुट मध्यकालिक लग्न द्युज्या से गुणा कर त्रिज्या से भाग दें ।

स्पर्शान्त बाण द्वितीयैक दिक्त्वे तद् हीनयुक्त संस्कृत पर्वयुग्मम् ।
स्पर्शान्तज कार्य मथान्य दिक्ते स्थित्यर्द्ध योगार्द्ध वियुग् युतं तत् । ७० ।

स्पर्श और मोक्ष का शर एक दिशा में रहने पर स्पर्श संस्कृत पर्व काल से प्रथम फल घटायेंगे और द्वितीय फल को मोक्ष संस्कृत पर्व काल में जोड़ेगे । स्पर्श और मोक्ष शर भिन्न दिशा में होने पर स्पर्श और मोक्ष स्थिति अर्द्ध के योगार्द्ध को स्पर्श और मोक्ष संस्कृत पर्वकाल में क्रमानुसार घटायेंगे, और जोड़ेगे ।

पर्वद्वयं लम्बन संस्कृतं चेत् स्पर्शे विमोक्षे समयः स्फुट स्यात्
स्थित्यर्द्धकेतु ग्रहणार्द्ध लग्न द्युज्याहते त्रिज्यकया विभक्ते । ७१ ।

इन दोनों को पुनः अपने अपने लम्बन से संस्कृत करने पर स्पर्श और मोक्ष काल वास्तव में स्फुट होता है । किन्तु स्थित्यर्द्ध को मध्य ग्रहण काल की द्युज्या से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देना होगा ।

पर्वान्तजं लम्बन मर्कतः स्यात् स्थित्यर्द्ध युग्मो न युतेतु दर्शे
तात्कालिकेन्दो रसकृद् सकृद्वा तल्लम्बने स्पार्शिक मौक्षिकेस्तः । ७२ ।

पर्वान्तकाल का लम्बन तात्कालिक रवि से निकाला जाता है । स्पर्श और मोक्ष काल में तात्कालिक चन्द्र से स्पार्शिक और मौक्षिक लम्बन निकालना चाहिये । यह एक बारम्बार रीति से किया जा सकता है ।

मध्यात् शरात् स्पार्शिक मौक्षिके ष्यो यत्रैक भानो ऽ भ्यधिकस्तथैक
वदामि तत्रापि पुनर्विशेष मसम्भवेऽपि ग्रहणं यतः स्यात् । ३७३ ।

रवि के मध्यकाल शर से स्पार्शिक और मौक्षिक शर में एक अधिक है । और एक बराबर है उसके लिए भी विशेष विधि कहता हूँ । जिसके बिना ग्रहण साधन असम्भव है ।

निष्पाद्य सूर्य ग्रह मुक्त रीत्या स्पर्शान्त मध्य स्फुट सायकायै
ते स्व स्व लग्ना पम संयुतार्क क्रान्ति ज्ययाघ्न त्रिगुणेन भक्ताः । ७४ ।

उपर्युक्त विधि से सूर्य ग्रहण निकाल कर स्पर्श, मध्य और मोक्ष काल के स्फुट शर को अपने अपने समय के लग्न के क्रान्ति ज्या से अलग अलग गुणा

कर त्रिज्या से भाग देते हैं ।

संस्पर्श मोक्षा शुगत दिगैक्य तदन्तरं भिन्न दिशोस्तुमांत्रः ।
शरान्तरं तद् गुणितश्च लब्धाः षट् त्रिंशता (३६) सा इह यष्टि लिप्ताः । ७५ ।

स्पर्श और मोक्ष काल का शर एक दिशा में होने पर इन फलों को अपने अपने शरों से घटायेंगे, भिन्न दिशा में होने पर जोड़ेगे । फल को शरान्तर से गुणा कर ३६ से भाग देने पर यष्टि की लिप्ता होगी ।

ता एव मध्य ग्रहणे स्फुटाः स्युः स्पर्शन्तजा वित्रिभ लग्न भान्वोः
विश्लेष दोः ज्या गुणिता स्त्रिजीवा हृता स्त्रिधा यष्ट य एव मेता । ७६ ।

इनको स्फुट स्पर्श, मध्य और मोक्ष काल के सूर्य से वित्रिभ लग्न के अन्तर की ज्या से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर यष्टि (तीसरी) मिलेगी ।

परीकृतास्तद् ग्रहकाल हृत्या भक्त्या पलै रेव फलै र्युतोन ।
लग्ना पमेष्यो पृथगेक दिक् त्वे कमात्रि धौनं समपर्व कालः । ७७ ।

इन तीन यष्टि की परा कर स्पर्श आदि ग्रहण से भाग देकर पलात्मक फल निकालेंगे । लग्न-क्रान्ति और स्फुट शर भिन्न दिशा में होने पर इसे स्पर्शादि काल में जोड़ेगे, अन्यथा (एक दिशा में होने पर) घटायेंगे ।

स्पर्शादि के संस्कृत पर्व नाम्ना स्थाप्यो ऽथ मध्यो निज लम्बनेन
सुसंस्कृतः स्याद् ग्रहमध्य काल स्तात्कालिक स्पष्ट दिगौसुगस्य । ७८ ।

इस प्रकार वास्तव में स्पर्श, मध्य और मोक्ष काल आयेगा । मध्यकाल को पुनः स्फुट लम्बन में संस्कृत करने पर ग्रहण का स्फुट मध्यकाल होगा ।

वर्गात्पदं मध्यम यष्टि वर्ग युक्तान् स्वमध्य स्फुट दिक् शरस्यात् ।
ग्रासस्ततः स्पष्टतमः स्वमध्य स्थित्यर्द्ध काल स्फुट काल हृत्या । ७९ ।

इसके बाद मध्यकालिक स्फुट शर का वर्ग और मध्य यष्टि वर्ग जोड़कर उसका वर्गमूल लेने से वह स्पष्टतम मध्यकाल का शर होगा । इससे स्पर्श और मोक्ष काल का स्थिति अर्द्ध निकालें ।

प्रसाध्य लग्न द्युगुणघ्न मेतं त्रिज्या हृतं संस्कृत पर्वणोश्च ।
कृतान्तिमाद्योः स्वमृणं ततस्तो मोक्षाद्य कालोनिज लम्बनाभ्याम् । ८० ।

इनको अलग स्फुट मध्यकालिक लग्न द्युज्या से गुणा कर त्रिज्या से भाग दें । प्रथम (स्पर्श काल के) फल को अपने स्पर्श स्थिति (स्फुट) अर्द्ध से घटायेंगे., तथा द्वितीय फल को मोक्ष के स्फुट स्थिति अर्द्ध में जोड़ेगे । इन दोनों को अपने लम्बन से संस्कृत करते हैं ।

मानैक्य खण्डात् त्रिकला धिकेऽकेपि मध्य ग्रहस्पष्ट शरे कदाचित्
लग्नापमार्कापम भूरि भावात् सूर्य ग्रहः स्यात् क्रिययानयैव । ८१ ।

मानैक्यखण्ड (दोनों निम्बकला के योग का आधा) से मध्यग्रह का स्पष्ट शर ३ कला से ज्यादा अधिक हो तो तथा लग्न क्रान्ति से सूर्य क्रान्ति ज्यादा हो तो सूर्य ग्रहण का साधन इसी क्रिया से होता है।

मध्यः शरः स्पर्शज मोक्ष जाभ्या मल्पे सताभ्यामधिक श्चयत्र
तुल्ये भवेद् वा न्यतरेण तत्र नेयं क्रिया किन्तु पुरो दितैव । ८२ ।

मध्य शर यदि स्पर्श और मोक्ष काल दोनों के शर से कम हो, दोनों से अधिक हो या दोनों के बराबर हो तो पहले वाली विधि का ही व्यवहार करना चाहिये।

दृग् गोचरं यद् ग्रहणं द्वयं तद् ग्राह्यं न चा दृश्य मितं क्रियार्हम्
अतो दिने चन्द्र मसो निशायां रवेस्त दिष्टं न हि सम्भवेऽपि । ८३ ।

जो ग्रहण दृग् गोचर (अपने स्थान से दिखता है) उसी को ग्रहण (सूर्य या चन्द्र का) माना गया है। जो नहीं दीखता है उसमें किसी क्रिया (अनुष्ठान) की आवश्यकता नहीं है। अतः दिन का चन्द्र ग्रहण या रात्रि का सूर्य ग्रहण (गणित के अनुसार) होने पर भी वह ग्राह्य नहीं है।

दिने निशायां रवि चन्द्रयो र्ग्रहद्वयस्य भागो यदि दृश्यते ऽ ल्पकः
तदा विधिस्तावद शेष कालके निषेध उक्तो ग्रहणोभिप्तः स्मृतौ । ८४ ।

लेकिन दिन के समय अल्प (आंशिक) दीखता सूर्य ग्रहण तथा रात्रि के समय अल्प दीखता हुआ चन्द्र ग्रहण के समय स्नान दान आदि करणीय तथा पाक आदि कर्म निषिद्ध है। ऐसा स्मृति में कहा है।

अभीष्ट कालाद् ग्रसनं पिधान तो यथैव कालः कलितोऽयनाक्ष के ।
यथोदिते तद् वलने पुरा तथा विधेय मत्रा किल कर्म निर्म्मलम् । ८५ ।

चन्द्र ग्रहण में जिस प्रकार इष्ट काल से ग्रास मान तथा ग्रास मान से इष्ट काल तथा अक्ष और आयन वलन निकाला जाता है। उसी प्रकार सूर्य ग्रहण में भी सब क्रिया होती है।

अन्त्या श्चन्द्र ग्रहे स्युः समय विघटि का पूर्णगोऽ र्था (५९०) विमर्दे
रामाद्र्यक्षोणि (२७३) सूर्य ग्रहण समय जाः अक्षि रामर्त्तवोन्त्याः (६३२) ।
ग्रसेस्युः कंकणाख्ये द्विरद जलधय (४८) स्तद् विमर्देऽ ग्नि पक्षा । (२३)
वृद्धौ ताः सूक्ष्मतिथ्याः शर गगनकृता पादोनसप्तर्त्तवः (४०५) । ८६ ।

चन्द्र ग्रहण की स्थिति सर्वाधिक (५९०) पल। चन्द्र ग्रहण का परम मर्दकाल (२७३) पल। सूर्य ग्रहण की सर्वाधिक स्थिति (६३२) पल। वलय ग्रास की सर्वाधिक स्थिति (४८) पल। वलय ग्रास का सर्वाधिक मर्दकाल (२३) पल।

सूक्ष्मतिथि बढ़बढ़कर ४०५ पल वृद्धि हो सकती है अर्थात् (६० + ६।४५) या ६६।४५ दण्ड हो सकता है।

सिद्धाः सूक्ष्मर्क्ष वृद्धौ शर रस निगमा (४६५) स्तत्
क्षयेऽष्टांगवेद (४६८) योगार्द्धौ पक्षभूपाः (१६२)
क्षयउद धिरसांगानि (६६४) चन्द्रस्यभुक्तेः
सूक्ष्मं स्वर्ण फलं दृक् कृतं नगमूनयो (७७४२)
भांक वेदा (४९२७) विलिप्ता
भानोस्तर्का (१२३) नगेशाः (११७) परमविघटिका
लम्बने ऽ कग्नियः (३१२) स्युः । ८७ ।

नक्षत्र स्थिति काल का परम मान-दण्ड ६७।४५
नक्षत्र स्थिति काल का न्यूनतम मान-दण्ड ५२।१२
योग परम वृद्धि-१६२ पल
योग परम क्षय -६६४ पल
चन्द्र का परम गति फल - धन (+) ७७४२ विकला
चन्द्र का परम गति फल-ऋण (-) ४९२७ विकला
रवि का परम गीत फल-धन (+) १२३ विकला
रवि का परम गति फल - ऋण (-) ११७ विकला
स्फुट लम्बन परम घटी (५।१२)

स्वर्भानुं शुभ्र भानुं विदध दध उपर्युद् भ्रमद् भानु मद् भा
भूतेर्नव्या भ्रमिति भ्रमकर मकरोद् भूमिभागेऽ र्भकाणाम्
भूभृद्भृ भानु भूत्ति प्रभु भगतनु भू भावु का भूति भाजम् ।
भूतालिं यो विदधते भवतुभर्या भेद भिन्नो विभुः सः । ८८ ।

जिस परमेश्वर को लोग पार्वती, सूर्य शिव और गणेश के रूप में पूजा करते हैं । और इस प्रकार उपासक लोगों को जो ऐश्वर्य देते हैं । जो चन्द्र को राहु में बदल कर (सूर्य ग्रहण के समय) सूर्य के ऊपर मेघ खण्ड के समान ढककर पृथ्वी के अल्पज्ञ लोगों से भ्रम में डाल देते हैं । वह परमेश्वर हमारे तापों का नाश करें .

इत्युत्कलोज्वल नृपाल कुल प्रसूत
श्री चन्द्र शेखर कृते गणितेऽक्षि सिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बालबोधे
सूर्य ग्रहे नवम को व्यगमत्प्रकाशः । ८९ ।

इस प्रकार उड़ीसा के विख्यात राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्र शेखर द्वारा गणना और दृष्टि में समानता तथा बालको की शिक्षा के लिए सिद्धान्त दर्पण के नवम प्रकाश में सूर्य ग्रहण का वर्णन समाप्त हुआ ।

दशमः प्रकाशः

परिलेख वर्णनम्

स्पर्शस्य मोक्षस्य च मध्यमस्य काष्ठावग त्यै परिलेख संज्ञम्
वरादम्यथच्छेदक मर्क चन्द्र ग्रहद्वयं येन भवेत्समक्षम् । १ ।

सूर्य और चन्द्र ग्रहण में स्पर्श, मोक्ष तथा मध्यम कब और किस दिशा में होगा, इस संशय को दूर कर चित्र से स्पष्ट करने वाले परिलेख का वर्णन करता है ।

दृशोर्वलम् तिर्यगधः स्थिते स्याद् द्रव्येयथानैव तथोद्धर्व संस्थे
सर्वत्ततश्चन्द्र रवीषुमान साम्येऽपि मध्ये गगनं तनुत्वम् । २ ।

पानी में (या किसी द्रव्य में) तिरछे रखे वस्तु पर दृष्टि का बल होता है । (या दृष्टि का वलन-मुड़ना होता है) वैसा सीधा नीचे की दिशा (उर्ध्व) में नहीं होता है । इसी प्रकार आकाश में सब जगह रवि चन्द्र और उनका शर एक होने पर भी वह मध्य गगन (ऊपर दिशा) में छोटा दिखता है ।

विलोक्यते च क्षितिजं महत्वं प्राक्सु रिभिस्तत्क्रमतोऽ ङ्गुलानि
सिद्धानि तत् तत्कलिका च्छिदाभिस्तन्मान साक्षात्करणाय वंक्ष्ये । ३ ।

पुनः ये सभी (ग्रह बिम्ब) दिग्वलय में रहने पर बड़े दीखते हैं । अतः प्राचीन आचार्य इसे याम्योत्तर वृत्त क्रम में तात्कालिक हर आदि के द्वारा सिद्ध रवि, चन्द्र, भू छाया आदि का (शर) परिमाण जो कहते थे उसकी विशेष व्याख्या करता हूँ ।

विधोरवेश्चोन्नत काल शकु रिन्द्राग्नि दिग् (१०३१४) युग् त्रिगुणेन भक्तः
छेदः कलानामनुनां हृतानां फलानि बिम्बेषु मिताङ्गुलानि । ४ ।

चन्द्र ग्रहण में चन्द्र एवं सूर्य ग्रहण में सूर्य का उन्नत काल शकु निकाल कर (मध्य ग्रहण काल का शंकु) उसमें १०३१४) जोड़ते हैं । योगफल को त्रिज्या से भाग कर फल हार या हर होगा । इस हर से चन्द्र, सूर्य और छाया का बिम्ब तथा शर कला में भाग देने से उनका अंगुल मान होगा ।

त्रिघ्नं दिनार्द्ध निजमुन्न ताष्य दिनार्द्ध भक्तं भवतिच्छिदा वा
किं वा तमः सूर्य शरेन्दु लिप्ता स्त्र्य (३) प्ताः सदास्युश्च तदङ्गुलानि । ५ ।

अथवा चन्द्र वा सूर्य ग्रहण दिन के दिगर्द्ध को ३ से गुणा कर अपने अपने उन्नति काल में योग कर योगफल को दिनार्द्ध से भाग देने पर वही हर होगा । इस हर के बिम्ब, शरकला आदि के भाग देने पर वह अंगुलात्मक हो जाता है ।

अथवा स्थूल विधि से बिम्ब और शरकला को इसे भाग देने से अंगुलात्मक होते हैं ।

सुसाधितायां भुवि विन्दु मेकं दत्वा ततः कर्कटकेन लेख्यम् ।
धृत्यंशं सप्तार्थ (५७।१८) मितांगुलेन वृत्तं स्वसंज्ञं वलनाश्रितं तत् । ६ ।

जल के समान समतल भूमि पर किसी केन्द्र बिन्दु से (५७।१८) अंगुल व्यासार्द्ध के कर्कटक (कम्पास) से एक वृत्त बनायें । इस वृत्त का नाम खगोल वृत्त जिसमें दो वलन (झुकाव) होंगे ।

मानैक्य खण्ड प्रमितेन मध्ये स्पर्शाय मोक्षा य च वृत्त मन्यत् ।
लेख्यं समासोख्य मिदं तदन्त र्ग्राह्यार्द्ध मानेनतदीय बिम्बम् । ७ ।

इस वृत्त के केन्द्र से ही पुनः मानैक्यार्द्ध के बराबर व्यासार्द्ध का एक और वृत्त बनायेंगे जिसका नाम समास वृत्त होगा । उसके केवल ग्राह्य बिम्ब व्यासार्द्ध का ग्राह्य वृत्त बनायें ।

प्रागवद् दिशा साधन मत्र कृत्वा दिक् चिह्न वत् कार्य मिव स्ववृत्तम् ।
प्राक् प्रत्य गङ्काद् वलनं निधेयं तत्रांश संख्याङ्गुलकान् तरेण । ८ ।

त्रिप्रश्नाधिकार की विधि से खगोल वृत्त में और पूर्व और पश्चितम वृत्त के पूर्व और पश्चिम बिन्दु से वलनांश) के बराबर (अंगुल) का न्यास (चाप काटते करते हैं) ।

स्पर्शः विधो रुत्तर याम्य संज्ञं न्यस्यं स्वदिश्येव रवेश्च मोक्षे ।
मोक्षे विधोः स्पर्श इनस्य तच्च व्यस्तं ततः सूत्रमपि प्रसार्यम् । ९ ।

अर्थात् पूर्व बिन्दु से चन्द्रग्रहण के स्पर्श का या सूर्य ग्रहण के मोक्ष काल के वलन को अपनी अपनी दिशा में न्यास करते हैं ।

(उत्तर वलन के लिए उत्तर दिशा में और दक्षिण वलन के लिए दक्षिण दिशा में चाप काटते हैं । चन्द्र ग्रहण का स्पर्श तथा ग्रहण का मोक्ष उनके बिम्ब के पूर्व से होता है) इसी प्रकार पश्चिम विन्दु से ग्रहण के मोक्ष या सूर्य ग्रहण के स्पर्श काल के वलन का अपनी दिशा में न्यास करते हैं ।

आमध्य विन्द्वत्र समास वृत्त मध्येऽपि दिक् सूत्रमितीद मिष्टम् ।
तद् याम्य सौम्या ख्य दिशो प्रसार्यः सूत्रात्तथा ज्याक्रमतः कलम्बं । १० ।

वलन देने के बाद वलन के अग्रविन्दु से केन्द्र बिन्दु तक रेखा खींचेंगे । मानैक्यार्द्ध (समास) वृत्त पर भी ख वृत्त की तरह पूर्व पश्चिम, उत्तर दक्षिण विन्दु न्यास करेंगे । इसमें पूर्व पश्चिम और उत्तर दक्षिण रेखा खींचेगे । उत्तर दिशा में पूर्व या पश्चिम विन्दु को मिलाने वाली रेखा को वलनाग्र रेखा कहते हैं । वृत्त को जिन दो बिन्दुओं पर काटती है वहां से उसका अपनी दिशा में न्यास करेंगे ।

यथा निजाग्रस्य समास वृत्ते स्पर्शा भवेतच्चलना नुसारात् ।
शरः शलाकात्मक एषदेवः शीतद्युतेः स्पर्श निमीलयोः प्राक् । ११ ।

दोनों वलनों के अग्र भाग को मिलाने वाली रेखा समासवृत्त को जिन दो

बिन्दुओं पर काटती है वहां से ज्या के बराबर स्पर्श और मोक्ष काल के शर का न्यास करेंगे । जिससे शर की ज्या समास वृत्त को स्पर्श करे । यह शलाका) चन्द्र ग्रहण के स्पर्श और निमीलन के समय पूर्व तरफ-

पश्चात्तदुन्मीलन मोक्षयोश्च तद् युग्म यो स्तिग्मरुचे र्विलोमः ।
शराग्रतो मध्यम बिन्दु गामि सूत्रं स्पृशेद् ग्राह्य तनुञ्च यत्र । १२ ।

तथा उन्मीलन और मोक्ष के समय पश्चिम की तरफ होती है । सूर्य ग्रहण में यह इसकी उल्टी दिशा में होता है । शराग्र से मध्यम बिन्दु तक रेखा खींचने से वह ग्राह्य बिम्ब परिधि को जहां काटता है

स्पर्शश्च मोक्षश्च भवेदिहैव शरस्तु तत्काल भवः सदेष्टः ।
तात्कालिकं स्याद् वलनं तथैव तस्या नुसारेण शरः प्रसार्यः । १३ ।

वहीं पर वास्तविक स्पर्श और मोक्ष होगा । यहां शर और वलन हमेशा उनके तात्क् लिक मान के अनुसार किय जाता है ।

स सौम्य याम्यायत सिञ्चनीव त्तथापि कोणा भिमुखः क्वचित्स्यात् ।
वदामि मध्य ग्रहयो र्विशेष राहोश्च केतोः स विधस्थ इन्दौ । १४ ।

शर दक्षिण और उत्तर दिशा में होने पर भी कभी कभी आग्नेय आदि कोण की दिशा में होता है ।

अब चन्द्र सूर्य ग्रहण में मध्य ग्रहण की की बात विस्तार से कहता हूँ । चन्द्र ग्रहण के समय चन्द्र राहु या केतु के निकट वर्ती होने पर

पञ्चांगुलान्ते बलनात्
ततोऽन्यत् क्रमादुदग् दक्षिणयो र्निधेयम् ।
विस्पष्ट मेतत् वलनं खवृत्ते प्राच्यां
स्वदिक् स्थंविनिवेश्य तस्मात् । १५ ।

खवृत्त में पूर्व दिग के स्पष्ट वलन अपने दिशा में देना होगा । इस वलन के अग्र भाग से ५ अंगुल के अन्तर से उत्तर और दक्षिण की तरफ और दो चिह्न है । पूर्व सम्पात से उत्तर की तरफ पश्चिम सम्पात में दक्षिण की तरफ) ।

प्रसार्य रेखां किलमद्यविन्दु स्पृशं पराशान्तगतां सितांशोः
ग्रहान्तरर्कस्यतु याम्य सौम्य लग्नापमांशांगुल कान्तर स्थम् । १६ ।

इन दो चिह्न और वृत्त के केन्द्र बिन्दु से होकर व्यास रेखा खींचेगें । सूर्य मध्य ग्रहण के समय पू र्व दिशा में जो वलन लिया गया था उस अग्र भाग से उस समय की लग्न क्रान्ति अंश के बराबर अंगुल अन्तर से

बिन्दुं पुरस्थाद् वलना द्वितीयं रेखा ततो व्यास मितां प्र सार्य ।
तत्पार्श्वगं मण्डल मध्य बिन्दो र्विन्यस्य याम्योदगिषं तदग्रात् । १७ ।

क्रान्ति दिग के अनुसार बिन्दु देकर इस बिन्दु और मध्य बिन्दु के बीच की

रेखा को बढ़ाकर व्यास के रूप में रखेंगे इइस रेखा के ऊपर लम्ब रूप से मध्य ग्रहशर को अपनी दिशा में न्यास करेंगे।

तद् ग्राहकार्द्ध प्रमिते न बिम्बं सूत्रेण लेख्यस्तम इद्यभिज्ञैः
ग्राह्यं तदा च्छादित मत्त यावत्तावान् ग्रहोदृश्यत इन्दु भान्वोः । १८ ।

इस शर के अग्र विन्दु केन्द्र से ग्राहक बिम्ब अर्द्ध व्यास का वृत्त बनायेंगे। यह वृत्त ग्राह्य वृत्त का जो भाग काटेगा उतना ही चन्द्र और सूर्यग्रहण में ग्रास लोगों को दिखायी देगा।

बिन्दुत्रयं स्पर्श विमोक्ष मध्य स्फुटाशुगाग्रेषु निधाय तस्मात
आद्यन्त बिन्द्वन्तर वह्नि (३) भाग सूत्रेण वृत्त त्रितयञ्च कार्यम् । १९ ।

स्पर्श, मध्य और मोक्ष समय का शर निकाल पर परिलेख में अपने स्थान पर रखते हैं। इन तीन बिन्दुओं से एक वृत्त खींचते हैं। यह वृत्त खीचनेके लिये (ज्यामिति की सामान्य विधि) स्पर्श और मोक्ष के बीच की दूरी के १/३ भाग की त्रिज्या से

तदन्तरा यत् पृथु रोम युग्म मुत्पद्यते तन्मुख पुच्छ लग्नम्
सूत्र द्वयं दक्षिण उत्तरे वा भागे त्पमानान्तरके प्रसार्य । २० ।

तीन बिन्दुओं पर एक एक वृत्त खींचेंगे। दो क्रमागत वृत्तों के मिलन के कारण दो तिमि बनेंगे उनके उत्तर दक्षिण बिन्दुओं को मिलाती हुई रेखा को मिलाकर आगे बढ़ायेंगे।

तदग्रयोर्यत्र युति स्ततोऽन्य सूत्रेण बिन्दु त्रितय स्पृशैव
लेख्यं धनु ग्राहक मार्ग एष प्रागन्त्य बिन्दु द्वितीयान्तरास्यात् । २१ ।

दोनों तिमि रेखायें जिस बिन्दु पर मिलेंगी वहां से किसी शराग्र चिह्न के व्यासार्द्ध से एक वृत्त खींचने पर वह तीनों बिन्दुओं से होकर जायेगा। यह चाप ही ग्राहक मार्ग होगा।

प्राङ् मार्ग तो ग्राहक खण्ड तुल्यं दिङ्मध्य विन्दु परि गामि सूत्रम्
प्रसारितङ् ग्राह्य त नो रूपान्तं यत्र स्पृशे त्तत्र निमीलनं स्यात् । २२ ।

इस ग्राहक मार्ग के मध्य बिन्दु से स्पर्श की दिशा में (चन्द्र ग्रहण में पूर्व सूर्य ग्रहण में पश्चिम) ग्राहक वृत्त के दिगबिन्दु और ग्राहक वृत्त के मध्य (केन्द्र बिन्दु से) मिलाकर रेखा खींचेगे। यह रेखा बढ़ाने पर ग्राह्य बिम्ब की निकट (उपान्त) परिधि को जहां स्पर्श करे वह निमीलन बिन्दु होगा।

उन्मीलनं मौक्षिक मार्ग सूत्रा तथा भवेदिष्ट घटीषु लक्ष्यः
ग्रहोयदिस्यातदिह त्रिबिन्दु मार्गो द्विधा मध्यम बिन्दुतः स्यात् ।

इसी प्रकार ग्राहक मार्ग केन्द्र से मध्य ग्राहक वृत्त से दूसरी तरफ से दिग्

बिन्दु तक की रेखा जिस बिन्दु पर ग्राह्य वृत्त की परिधि से मिलती है वह मोक्ष बिन्दु होता है। इष्ट घटी (समय) में ग्रह बिम्ब का कितना ग्रास होगा यह दिखाने के लिये ग्राहक मार्ग का मध्य बिन्दु के दोनों तरफ दो खण्ड मानेंगे। स्पर्श की दिशा में (चन्द्रग्रहण के लिए पूर्व सूर्य के लिए पश्चिम) स्पर्श खण्ड तथा दूसरा मोक्ष खण्ड।

तदंगुलो स्पार्शिक मौक्षिकाख्ये यातैष्य दिच्छा घटिकादि निघ्ने
स्थित्यर्द्ध कालेन निजेन भक्ते फलागुलान्ते पथि बिन्दु मेकम्। २३।

स्पर्श और मोक्षखण्ड की अंगुलों में लम्बाई नापेंगे। अंगुल को इष्ट घटी से गुणा कर स्पार्शिक स्थिति अर्द्ध से भाग देंगे (इष्ट ग्रास स्पर्श के बाद होने से) तथा मोक्ष अंगुल को मोक्ष होने में जितना समय बाकी है उससे गुणा कर मोक्ष स्थिति अर्द्ध से भाग देंगे। जितना स्पर्श बिन्दु से ग्राहक खण्ड पर स्पर्श अंगुल के बराबर दूरी पर या मोक्ष बिन्दु से मोक्ष अंगुल की दूरी पर एक बिन्दु देंगे।

दत्वा तदच्छादक खण्ड तुल्य सूत्रेण वृत्तम् विरचय्य तेन
संछादितं ग्राह्य मभीष्ट काले दृश्यं स्वकालागुलका नुपातात्। २५।

स्पर्श या मोक्ष के अंगुलान्त बिन्दु से ग्राहक बिम्ब के व्यासार्द्ध के बराबर त्रिज्या का वृत्त करेंगे। इस वृत्त द्वारा ग्राह्य बिम्ब का जितना खण्ड ढंगेगा, इष्ट समय में उतना ही ग्रास होगा।

सद्रष्टु भिष्ट ग्रसन स्वरूप मानैक्य खण्डांगुलतो विशोध्य
ग्रासांगुलं स्वेष्ट मितोऽवशिष्टांगुल प्रमाणा सरला शलाका। २६।

ग्राह्य और ग्राहक बिम्ब योगार्द्ध अंगुल से इष्ट ग्रास अंगुल घटायें। शेष अंगुल के बराबर की एक शलाका (Pointer) लें।

ग्राह्यार्द्धतो मार्ग मुखी प्रसार्य स्पर्शे विमोक्षे स्वदिशि क्रमेण।
यत्र स्पृशेद् ग्राहक मार्गमेषा लेख्यं ततो ग्राहक बिम्ब मानम्। २७।

यह शलाका ग्राह्य बिम्ब के केन्द्र से स्पार्शिक इष्ट में मार्ग की दिशा में तथा मौक्षिक इष्ट में मोक्षमार्ग की दिशा में रखेंगे। शलाका ग्राह्यमार्ग को जिस स्थान पर स्पर्श करेगी उस बिन्दु से ग्राहक बिम्बार्द्ध के व्यासार्द्ध का वृत्त खींचेंगी।

ग्राह्य भवेच्छन्न मनेन यावत्तावान् ग्रहे दृक् समता मुपैति।
मानान्तरार्द्धेन मिता शलाका प्रासार्य संस्पर्श दिशीन्दु केन्द्रात्। २८।

यह बिम्ब ग्राह्य बिम्ब को जितना ढंकता है उतना ही इष्ट ग्रास दिखाई देगा। ग्राह्य और ग्राहक बिम्ब का अन्तर कर उसकी आधी लम्बाई की शलाका को चन्द्र ग्रहण में चन्द्र बिम्ब केन्द्र से तथा सूर्य ग्रहण में सूर्य बिम्ब केन्द्र से स्पर्श दिशा में रखेंगे।

यत्र स्पृशेन्मार्ग मियं ततोऽपि लेख्यं तमस्तत् सित भान्तयोगः
निमीलन स्थान मिनस्य च स्यादुन्मीलनं मोक्ष पथोत्थ वृत्तात् । २९ ।

यह शलाका जहा पर ग्राहक मार्ग को स्पर्शकरे उसे केन्द्र करके तमोबिम्ब खींचेगे । वही पर छाया और आलोक को योग (सीमा रेखा या मिलन) होगा । यह ग्राह्य और ग्राहक बिम्ब प्रान्त योग या निमीलन का आरम्भ स्थान होगा । मोक्ष के समय ठीक उसी प्रकार करने से उन्मीलन स्थान होगा ।

मध्य ग्रहे स्पष्टतमेऽथवा या केन्द्र स्पृगुप्त वलनोत्य रेखा
तत्पार्श्व गान्मध्य शराग्र तेऽन्यां तावन्मिता न्यस्य तदग्रयुग्मात् । ३० ।

स्पर्श आदि परिलेख की अन्य विधि-वलनाग्र रेखा के एक तरफ स्थित मध्य शराग्र बिन्दु से पुनः उतनी ही लम्बाई की एक अन्य रेखा खींचकर (वलनाग्र रेखा के समानान्तर) उसके दो अग्र बिन्दुओं से

तत्पार्श्व सिद्धोद गवाक् प्रदेशे साक्षज्यका षष्ठि लवां गुलान्ते
सुधांशु सूर्य ग्रहयोः क्रमेण बिन्दुद्वयं मध्य शराग्रके च । ३१ ।

अपने स्थान की अशांशज्या के १/६० भाग के अंगुल के बराबर चन्द्र ग्रहण में उस रेखा (मध्य शराग्र रेखा) के उत्तर तथा सूर्य ग्रहण में उस रेखा के दक्षिण बिन्दु देंगे ।

दत्वान्य मेतत् त्रय भेदि चापं विलिख्य तस्मिन्निहित स्व मध्यम्
तमः शलाकावलया दिक् लुप्तं चन्द्र ग्रहे पूर्व दिशः प्रचाल्पः । ३२ ।

इन दों बिन्दुओं तथा मध्य शर के अग्रबिन्दु इन तीन बिन्दुओं से जो वृत्त खण्ड बनेगा वही ग्राहक मार्ग होगा । इस मार्ग में ग्राहक केन्द्र रहेगा । इन बिन्दुओं से ग्राह्य ग्राहक व्यासार्द्ध अन्तर के बराबर शलाका (तम शलाका) लेकर वलय आदि बनाने से सभी स्थान स्पष्ट होगा । अर्थात् स्पर्श का मे तम शलाका मध्य बिन्दु से ग्राहक मार्ग को जहां काटे (चन्द्र ग्रह में पूर्व दिशा में) वहाँ ग्राहक बिम्ब लिखेंगे) ।

सूर्य ग्रहे पश्चिम दिक् प्रदेशात् स्पर्शादयो ग्राह्यदिशा सुदृश्याः
नात्रेष्यते स्पार्शिक मौक्षिकेषुर्न वा नदीये वलने प्रयासः । ३३ ।

सूर्य ग्रहण में स्पर्श पश्चिम दिशा की तरफ होगा । इस क्रिया से ग्राह्य की दिशा के अनुसार स्पर्श और निमीतन आदि सहज में देखा जा सकता है । इसमें स्पर्श आदि काल के शर या वलन की आवश्यकता नहीं है ।

किन्त्वत्र सूर्य ग्रहणे गुणा (३)
प्त लिप्तांगु लाये तम आशुगार्काः
तेद्दि स्थिताः शंकुहता खखाब्धि वे दो
(४४००) द्धतालब्धियुता विधेयाः । ३४ ।

इस विधि से सूर्य ग्रहण परिलेख करने के लिए उसके बिम्ब के शर के १/३ भाग को दो स्थान में रखकर एक स्थान में तत्कालीन रवि शकु से गुणा कर (४४००) से भाग दें तथा लब्धि को पहले स्थान में जोड़ दें ।

अथेष्ट काले फलके ग्रहौ ता प्राक् पश्चिम व्यत्य यतो विलिख्य ।
वेला क्रमावान्मुख मुक्त मध्य प्रदर्शनीयौ न मसीव साक्षात् । ३५ ।

अभीष्ट समय में एक फलक में दोनों चन्द्र और सूर्य ग्रहण लिखेंगे । इसमें सिर्फ चन्द्र ग्रहण और सूर्य-ग्रहण के समय स्पर्श आदि की दिशा विपरीत होगी । जैसा ग्रहण हो उसके अनुसार इस फलके द्वारा लोगों को कैसा ग्रहण होगा यह दिखाया जा सकता है ।

यद् व्याहरत् ग्रहण पान् सदसत् फलाय
वर्णान् वराह मिहिरो निज संहितायाम् ।
पर्वाष्य काल भवमाहुरदोऽद् भुतं यत्
प्राच्यो मयौज्झि तदिहानुप योगि भावात् । ३६ ।

वराह मिहिर ने वृहत् सहिता में तथा अन्य प्राचीन आचार्यों ने भी ग्रहण का वर्ण, पर्व तथा फल आदि के बारे में अनेक बातें लिखी हैं । इनका गणित कार्य में कोई उपयोग नहीं होने के कारण ये बातें मैने छोड़ दी है ।

हसन्त मति सुन्दराधर सुवृत्त नेत्र श्रिया
वसन्त शिशु चण्डऋक् शरद खण्ड पाण्डु द्युती
वसन्त मसिता चले विविध देशा लोका कुले
दिशन्त मभयं विभुं भुवन मंगलाक्षं भजे । ३७ ।

जो अत्यन्त सुन्दर अधरों से हंसते है, जिनके पूर्ण गोल नेत्रों की शोभा वसन्त के प्रातः कालीन सूर्य और शरद काल के पूर्ण चन्द्र की उज्जवल ज्योति को परास्त करती है, जो नीला चल में रह कर अनेक देशो से आये लोगों के बीच अभय दान करते हैं । तथा जगत् का मंगल करने के लिए जिनकी दृष्टि है, उन प्रभु जगन्नाथ की वन्दना करता हूँ ।

इत्युत्कलोज्जवल नृपाल कुल प्रसूत
श्री चन्द्र शेखर कृते गणितेऽक्षिसिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बालबोधे
सच्छेद को निरगम द्दशमः प्रकाशः । ३८ ।

इस प्रकार उड़ीसा में विख्यात् राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्रशेखर द्वारा गणना और दर्शन में समानता के लिए तथा बालकों की शिक्षा के लिए लिखे सिद्धान्त दर्पण में परिलेख विषयक दशम प्रकाश समाप्त हुआ ।

एकादशः प्रकाश

ग्रह युति वर्णनम्

स्व स्व कक्षासुचरतां खेचराणां दवीयसाम्
लोकै दृश्यायुति मुच्यते सदसत्फलात् । १ ।

अपनी अपनी कक्षाओं में नक्षत्र मण्डल में चलते हुए ग्रहों का स्थान पृथ्वी से एक दिखायी देता है । इस ग्रह युति या युद्ध तथा उनके अच्छे बुरे फल के बारे में कहा जाता है ।

सूर्य सिद्धान्ते-तारा ग्रहाणामन्योन्यं स्यातां युद्ध समागमौ
समागमः शशांकेन सूर्येणा स्तमयः सहः । इति । २ ।

तारा ग्रह (मंगल आदि ५ ग्रह) जब मिले हुए दीखते हैं तो उस एक साथ आने को ग्रह युति या युद्ध कहते हैं । चन्द्रमा के साथ कोई तारा ग्रह आने पर उसे समागम कहा जाता है । तारा ग्रह सूर्य के साथ रहने् पर वह सूर्य किरण के कारण नहीं दिखता है उसे अस्त मित कहते हैं । इसे उस ग्रह का अस्त होना कहते हैं ।

ग्रहौ समकलौ कृत्वा ध्रुवसूत्र समौ ततः ।
स्वदेशे याम्य सौम्ये स्थौ बिम्बाद्यं साधये ततः । ३ ।

युति हुए दो ग्रहों का राशि अंश और कला (कदम्बप्रोत वृत्तीय) समान कर फिर ध्रुव प्रोत वृत्तीय करेंगे (आयन दृक् कर्म द्वारा) इससे दोनों ग्रहों का बिम्ब शर और लम्बन आदि निकलेगा ।

सूर्य सिद्धान्ते-शीघ्रे मन्दाधिकेऽतीतः संयोगो भवितान्यथा
द्वयोः प्रग्यायिने रेव वक्रिणोस्तु विपर्ययात् । इति । ४ ।

शीघ्र ग्रह मन्द गतिक ग्रह से अधिक (राशि अंश) या पूर्व होने पर दोनों ग्रहों का योग हो चुका है । यदि कम हो तो होने वाला है ऐसा समझा जायेगा । दोनों ग्रह वक्री होने पर यदि शीघ्र गति ग्रह मन्द गति ग्रह सें अधिक है । तो योग होगा यदि कम है तो योग हो चुका है ।

अवक्रादधिके वक्रिण्येष्यो ऽवक्रेऽधिके गतं ।
मन्द शीघ्र गयो स्त वर्क्या वक्र सन्ध्यागतैष्यता । ५ ।

मन्द और शीघ्र गति ग्रह में एक वक्री और दूसरा मार्गी हो तो मार्गी से वक्रीग्रह (मन्द या शीघ्र कोई गति का हो) अधिक होने पर योग होगा किन्तु कम होने पर योग हो चुका है- ऐसा समझा जायोगा ।

सूर्य सिद्धान्ते-ग्रहान्तर कला स्व स्व भुक्ति लिप्ता समाहताः
भुक्त्यन्तरेण विभजे दनुलोम विलोमयोः । ६ ।

जिन दो ग्रहों का योग या युद्ध कब हुआ या होने वाला है, यह जानने के लिए इष्ट काल की ग्रह राशि आदि में अन्तर कर उसकी कला बनायेंगे और अपनी अपनी स्फुट गति कला से अलग अलग भाग करेंगे। दोनों के मार्गी या दोनों के वक्री होने पर उन्हें ग्रहों की गति अन्तर कला से अलग अलग भाग देंगे।

द्वयोर्वक्रिण्यस्थैक स्मिन् भक्तियोगेन ता भजेत्
लब्ध लिप्तादिकं शोध्यं गति देयं भविष्यति। ७।

दो ग्रहों में एक ही वक्री (और दूसरा मार्गी) होने पर उन्हें गति योग से भाग देंगे)। लब्धि लिप्तादि फल को यदि योग हो चुका है, तो ग्रह की राशि आदि से घटायेंगे।

विपर्ययाद् वक्र गत्यो रेकन्मिन्स्तु धनक्षयौ
समलिप्तौ भवेतां तौ ग्रहै र्भगण संश्रितौ। ८।

योग यदि बाद में होने वाला है, तो इस फल को ग्रह की राशि आदि में जोड़ेगे। दोनों ग्रह यदि वक्री हों तो विपरीत संस्कार करेंगे। (अर्थात् योग बीत जाने पर योग तथा योग बाकी रहने पर घटायेंगे)। इस क्रिया से दोनों ग्रह की राशि कला आदि योग के समय समान हो जायेगी।

विवरं तद् वदुद्धृत्य दिनादिफल मिष्यते। इति।
गत गम्यं ततः प्राग् वत् स्यातां सम कलौ स्थितौ। ९।

दोनों ग्रह की अन्तर कला को पहले की तरह गति अन्तर या गति योग से भाग देने पर गत गम्य (क्रमानुसार) दिन आदि फल आयेगा। एक बार इस प्रकार करने से यदि ग्रहों की कला समान नहीं होती है। तो फिर से यह क्रिया करते हैं।

सूर्य सिद्धान्ते-कुजार्कि गुरु पातानां ग्रहवच्छीघ्रजे फलम्।
वामं तृतीयजं मान्द्यं बुद्ध भार्गव पातयोः। १०।

मंगल गुरु और शनि के पातमें उनको स्फुट करते समय चतुर्थ कर्म का शीघ्र फल जिस प्रकार संस्कार होता है उसी प्रकार (धन या ऋण) संस्कार करेंगे। बुध और शुक्र के स्फुट करते समय (३ य कर्म के समय) मन्दफल का संस्कार जैसे करते हैं उसके विपरीत प्रकार से पात में संस्कार करेंगे।

स्वपातो यद् ग्रहा जीवा शीघ्रा भृगुज सौम्ययो। इति।
मध्येषु घ्नान्त्य कर्णाप्त विक्षेपाः स्युः स्फुटाः स्वकाः। ११।

इसके बाद इन ग्रहों की स्फुट राशि से अपना अपना पात घटायेंगे। शेष की ज्या करने से विक्षेप केन्द्र ज्या होगी। बुध और शुक्र को अपने अपने शीघ्रोच्च से घटाकर शेष की ज्या करने से विक्षेप केन्द्र ज्या होगी।

विक्षेप केन्द्रज्या को अपने अपने मध्य विक्षेप से गुणा कर चतुर्थ शीघ्र केन्द्र से भाग देने से स्फुट शर होता है ।

स्थूलोऽयं शर संस्कार सिद्धान्तोक्त रलेखियः
मयोच्यन्ते कुजादीनां दृक् सिद्धयं सूक्ष्म सायकाः । १२ ।

यह शर संस्कार मैंने प्राचीन सिद्धान्त के अनुसार लिखा है जो मेरे अनुसार स्थूल है । अब मेरे वेध से मंगल आदि का सूक्ष्म शर जिस प्रकार दीखता है वह ज्ञात करने की विधि बताता हूँ ।

मध्यार्क स्थान तो मन्द स्फुटानां द्युषदां यतः ।
विक्षेपाः स्यु स्फुटा भूमि गोलतः शीतगोरवि । १३ ।

जिस प्रकार मध्याह्न सूर्य के स्थान (खमध्य) से दूर रहने पर सूर्य और चन्द्र का स्फुट संस्कार होता है (पृथ्वी केन्द्र और भूमि से देखने का अन्तर) उसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी स्फुट शर होता है ।

तन्मध्याः कुजमन्दज्याः शोध्याः स्व स्फुट मन्दतः
ततोऽखिलै र्मान्द्य फलैः प्राग्वत्कार्या युतोनिताः । १४ ।

मध्यम मंगल, गुरु और शनि को अपने अपने स्फुट मन्दोच्च से घटाकर उनका शर के लिए मन्दकेन्द्र आयेगा । इस मन्द केन्द्र की ज्या (अर्थात् मन्दफल)निकाल कर उसे उस मध्यम ग्रह में जोड़ या घटाकर (सम्पूर्ण मन्दफल की तरह) शर के लिए ग्रह का मन्द स्फुट होगा ।

बुधस्य स्फुट शीघ्रोन स्फुट मन्दात् परोच्चजम्
फलं कृत्वोन युक्तेन स्फुटद्वाक् शर शीघ्रकः । १५ ।

बुद्ध मन्दोच्च से शीघ्रोच्च को घटाकर उसका परोच्च (परोच्च केन्द्र फल) निकाल कर धन ऋण क्रम से पुनः शीघ्रोच्च में जोड़ने या घटाने से शर के लिए उपयोगी शीघ्रोच्च होगा । शुक्र के शीघ्रोच्च में शर के लिए और कोई सास्कार की आवश्यकता नहीं है ।

स्यात् सितस्य यथा नीति शर शीघ्रश्चलोच्चकः ।
शरशीघ्राविमावुक्ता मन्द स्पष्ट स्तयश्चते । १६ ।

जिस प्रकार चन्द्रमा का शर के लिए विक्षेप केन्द्र निकाला जाता है । उसी प्रकार बुध शुक्र, का यह शर शीघ्र विक्षेप केन्द्र हुआ) । अन्य तीन ग्रह मंगल आदि का विक्षेप केन्द्र (शर शीघ्र) निकालने के लिए उनके मन्द स्पष्ट केन्द्र का

स्वपातैः शोधिताः चेस्युः पातोन ग्रह संज्ञकाः ।
तद् बाहुः शर सिद्धयर्थः प्रागुक्ता सौम्य याम्यता । १७ ।

अपने अपने पात से घटाते हैं । शर केन्द्र का भुज निकाल कर उससे शर साधन होता है । चन्द्र शर के अध्याय (चन्द्र ग्रहण) में इन शरों के उत्तर दक्षिण

दिशा के बारे में कहा गया है।

कलात्म को मन्द करणः साध्य प्राग् वत् तृतीयकः
तत् त्रिज्यन्तर म भ्यस्तं बिभजा तूर्य कर्णयोः । १८ ।

मंगल आदि ग्रहों का तृतीय मन्द कर्ण पहले दी गयी विधि से निकाल कर त्रिज्या और तृतीय मन्द कर्ण के अन्तर को त्रिज्या और चतुर्थ शीघ्र कर्ण के अन्तर से गुणा करते हैं।

विवरेण त्रिजीवाप्तां क्षेप कर्णान्तरं भवेत्
त्रिज्याधिक्रेन्त्ये श्रवणे यदि त्रिगुणतो (३४३८) धिकः । १९ ।

फल को त्रिज्या से भाग देने पर जो फल आयेगा उसको क्षेप कर्णान्तर कहते हैं। चतुर्थ शीघ्र कर्ण त्रिज्या से अधिक हो-उसी के साथ मन्द कर्ण भी त्रिज्या से अधिक हो तो

मन्द कर्ण स्तदा त्रिज्या क्षेप कर्णान्तरो न्विता
यद्यल्प स्त्रिगुणान मन्द कर्णस्थ त्रिभमौर्विका । २० ।

त्रिज्या से क्षेपकर्णान्तर को घटायेंगे। मन्द कर्ण त्रिज्या से कम होने से त्रिज्या में

क्षेप कर्णान्तराढ्यास्यात् कर्म योग्या शर श्रुतिः
त्रिज्याल्पे तूर्य कर्णेतु मन्द कर्णौ यदाधिंकः । २१ ।

क्षेप कर्णान्तर जोड़ेगे। फल शर कर्ण कहा जाता है। चतुर्थ शीघ्रकर्ण त्रिज्या से कम होने पर जब मन्द कर्ण त्रिज्या से अधिक है-

त्रिगुणात् तत् कुजेज्यार्किक्षेप कर्णान्तरान्विता
त्रिज्या यज्ञशित क्षेप कर्णान्तर समन्विता । २२ ।

तब मंगल, गुरु और शनि का क्षेप कर्णान्तर (त्रिज्या में) जोड़ेगे। बुध और शुक्र का क्षेप कर्णान्तर का योग -

मन्द श्रुति रथोन श्चेत् त्रिज्यातो मन्द कर्णकः
तथा कुजेज्य शौरीणां क्षेप कर्णान्तरोज्झिता । २३ ।

त्रिज्या के बदले मन्द कर्ण में जोड़ेगे। चतुर्थ शीघ्र कर्ण त्रिज्या से कम होने पर यदि मन्द कर्ण भी त्रिज्या से कम हो तो त्रिज्या से मंगल गुरु और शनि का क्षेप कर्णान्तर घटायेंगे।

त्रिज्याज्ञदैत्यगुर्वो स्तु तत्कर्णान्तर वर्जिता
मृदुश्रुति र्भवेत्कर्म योग्य सैव शर श्रुतिः । २४ ।

(चतुर्थ शीघ्र कर्ण और मन्दकर्ण दोनों लिप्ता से कम होने से शुक्र का क्षेप कर्णान्तर उनके मन्द केन्द्र से घटाया जायेगा। इसी प्रकार इन ५ तारा ग्रहों का

सभी स्थिति में शर कर्ण होगा ।

प्राग्वत्पातोन खेटज्या मध्यविक्षेप ताड़िता
शर श्रुति हता लब्धं त्रिज्याघ्नान्तश्रवो हृतम् । २५ ।

पूर्वोक्त विधि से ग्रह से पात को घटाकर विक्षेप केन्द्र ज्या निकालेंगे । उसको मध्यम शर से गुणा कर शर कर्ण से भाग देंगे । लब्धि को त्रिज्या से गुणा कर चतुर्थ शीघ्र कर्ण से भाग देंगे ।

भौमादि स्फुट विक्षेपः स्यात्सूक्ष्मः कलिकात्मकः
भौमज्ञान्य ग्रहाणां वा स्थूलो ग्राह्यो ऽल्प भेदतः । २६ ।

फल मंगल आदि ग्रहों का स्फुट शर (कला में) होगा । आरम्भ में कहा गया स्थूल स्फुट शर भी इस काम में लगाया जा सकता है । क्योंकि कि सूक्ष्म से बहुत कम अन्तर होता है ।

चलांश संस्कृतानां या ग्रहाणां सत्रिवेश्म नाम्
क्रान्तिज्या सा स्फुटेषुघ्नी त द्युज्याप्ताप्त लिप्तिकाः । २७ ।

ग्रह का अयनांश संस्कार कर उसमें ३ राशि (९०) जोड़कर सत्रिभ सायन स्फुट ग्रह होगा । उसकी क्रान्तिज्या को उस ग्रह के स्फुट शर से गुणा कर सत्रिभ सायन ग्रह की द्युज्या से भाग देने पर लिप्ता आदि फल होगा । इसे आयन दृक् कर्म कला कहते हैं ।

धनर्णाख्या स्तदाढ्योनाः क्रमादयन बाणयोः
दिग् भेद साम्य योस्ते स्यु र्ध्रुव सूत्र समाः स्फुटाः । २८ ।

ग्रह का अयन और शर भिन्न दिशा में होने पर आयन दृक् कला को ग्रह में जोड़ते है । एक दिशा में होने पर घटाते है । ऐसा करने से ग्रह स्पष्ट होगा अर्थात् कदम्ब प्रोतीय ग्रह ध्रुव प्रोत वृत्तीय हो जायेगा ।

इदमायन दृक् कर्म तत् परिष्कृतयो र्द्वयोः ।
अन्तरेण पुनः कार्या प्राग् वत् समकलीकृतिः । २९ ।

इस क्रिया को आयन दृक् कर्म कहते हैं । युद्ध होने वाले दोनों ग्रहों का आयन दृक कर्म करने के बाद उनका पुनः अन्तर फल निकालेंगे । और पहले की भांति उनकी कला आदि समान करने की क्रिया करेंगे ।

ततो गतैष्टा दिवसाः साध्यास्तकाल खेटयो-
अकृतायन दृक् कृत्यो विक्षेपायन दृक् क्रिये । ३० ।

इससे गत और एष्य दिन (योग का बीता हुआ दिन या योग होने के पहले का दिन) आदि काल आयेगा । योग के समय उक्त दोनों ग्रहों का शर और आयन दृक् कर्म कर दोनों ग्रहों को कला आदि में समान करते हैं ।

कृत्वाऽसकृत् सम कलौ स्यातां तौ ध्रुव सूत्र गौ
ततो धनर्ण कलिका वर्ग युक्तेषु वर्गतः । ३१ ।

इस प्रकार बार बार करने से दोनों ग्रह राशि गुण कला में समान हो जाते हैं । तब आयन दृक् कर्म कला का वर्ग और शर वर्ग को को जोड़ कर-

पदं स्यात् सूक्ष्म विक्षेप क्रान्ति स्तत् संस्कृता स्फुटा ।
मध्यैव सर्वदा भानो रप मण्डलगस्य सा । ३२ ।

योग का वर्गमूल निकालने से सूक्ष्म शर होता है । सूक्ष्म शर और स्थानीय क्रान्ति एक दिशा में होने पर जोड़ेगे, नहीं तो अन्तर कर ग्रह की स्फुट क्रान्ति निकालेंगे । यह ध्रुव से नाड़ी पर्यन्त ध्रुव प्रोत वृत्त पर अपने खमध्य से चापीय दूरी होगी । सूर्य क्रान्ति वृत्त में रहने के कारण उसकी मध्यम क्रान्ति ही स्फुट क्रान्ति होती है ।

स्फुट क्रान्ते श्चरं स्व स्व दिनार्द्ध चोन्नतं न तम् ।
काल मानीय खगयो र्हन्यात् ख ख कृतेषुभिः । ५४००) । ३३ ।

त्रिप्रश्नाधिकार की विधि से दोनों ग्रहों का स्फुट क्रान्ति से उनका चर, दिनार्द्ध नत तथा उन्नतकाल निकालते हैं । नत और उन्नत काल को ५४०० से गुणा कर

दिनार्द्धेन भजे ल्लब्ध क लानां ज्ये न तोन्नते
स्यातां मध्य स्फुट क्रान्ति सिद्धयो र्यच्चरार्धयोः । ३४ ।

अपने अपने दिनार्द्ध से भाग देने पर क्रमशः नत और उन्नत काल की ज्या आती है । ग्रह की मध्यम और स्फुट क्रान्ति के चर प्रणों के अन्तर की कला को नत ज्या से गुणा कर त्रिज्या से भाग देते हैं ।

सौम्ये क्षेपे हीन युतौ क्रमाद् याम्येयुतो नितौ
कार्यौद् ग्रहौ तद् विवरात् काल यातैष्य संज्ञकम् । ३५ ।

कलात्मक फल को उत्तर शर होने पर दिन के पूर्वार्द्ध में ग्रह से घटायेंगे तथा दिन के परार्द्ध में जोड़ेगे दक्षिण शर होने पर दिन के पूर्वार्द्ध में ग्रह में जोड़ेगे तथा परार्द्ध में घटायेंगे । इस से आक्ष दृक् कर्म संस्कृत ग्रह होगा ।

इस क्रिया के बाद दोनों ग्रहों का अन्तर निकाल कर गत और गम्य काल निकालेंगे ।

ज्ञात्वास्मादाक्ष दृक् कर्म पौनः पन्यादिति स्थिरौ
कृत्वा पश्ये न्निजे देशे याम्य सौम्यान्तरं तयोः । ३७ ।

इस काल से पुनः उक्त रीति से आक्ष दृक् कर्म बार बार करने पर दोनों संस्कारों के बाद ग्रह का स्थिर मान आयेगा । इसके बाद ग्रहों का सम प्रोत वृत्तीय उत्तर दक्षिण अन्तर निकालेंगे ।

कुदाजीनां बिम्ब मानं वृत्ताख्यं भास्वरञ्च तत्
मध्यं स्फुट मिति द्वेधा दृग् बिम्ब मिति पञ्चधा । ३८ ।

मंगल आदि पांच तारा ग्रहों का पांच प्रकार का बिम्ब होता है- मध्य वृत्त बिम्ब, मध्य स्वर बिम्ब, स्फुट वृत्त बिम्ब, स्फुट भास्वर बिम्ब और दृक् तुल्य बिम्ब ।

तें जोमयः सूर्य बिम्बस्तद् प्रभा ग्रहणाद् ग्रहाः
चन्द्रादयो जल मया दृश्यन्ते विविधा जनैः । ३९ ।

सूर्य बिम्ब तेजस्वी है । उससे तेज (प्रकाश) लेकर चन्द्र आदि ग्रह जल के समान विविध प्रकार का प्रकाश देते हैं ।

तारा ग्रहा विदूरत्वा दित्यच्छत्वाद् विधो रपि
चन्द्रवत् श्रृंगशो नात्र लक्ष्यन्ते लोक लोचनैः । ४० ।

मंगल आदि ग्रह भी चन्द्र के समान श्रृंगी होते हैं । (सूर्य से उनके कोण के कारण) लेकिन चन्द्रमा की तुलना में उनकी अधिक दूरी के कारण उनके श्रृंग नहीं दीखते (वे बिन्दु मात्र दीखते हैं) ।

खार्थवेदाः (४५०) म) खरामांकाः (९३०) पूर्णार्थगिरिसिन्धवः (४७५०-गु)
खाभ्रषड् बाहवः (१६०० शु) खाभ्रेषुग्नया (३५०० श) योजनात्मकाः ।४१।

मंगल (४५०) बुध (९३०) गुरु (४७५०) शुक्र (२६००) शनि (३५००)

बिम्बव्यासाः कुजादी नां विश्वाकृति (२२१३) विभाजिताः,
फलं कलादि तन्मानं रविकक्षागतं भवेत् । ४२ ।

यह मंगल आदि पांच ग्रहों के योजनात्मक बिम्ब व्यास हैं । इन्हें २२१३ से भाग देने पर रवि कक्षा में ग्रहों का कलात्मक बिम्ब मान आता है ।

ज्ञ शुक्रयो स्युएवस्या न्मध्य व्यासोऽपरस्यतु ।
त्रयस्य शीघ्र परिधिक्षुण्णं तद् भांश (३६०) भाजितम् । ४३ ।

बुध और शुक्र का जो कलात्मक बिम्ब मान (रविकक्षा में) है वही उनका मध्य वृत्त व्यास हैं । अन्य तीन ग्रह के कलात्मक बिम्ब मान (रवि कक्षा में) का अपनी अपनी शीघ्र परिधि से गुणा कर ३६० से भाग देने पर ।

वृत्त बिम्बं भवेन्मध्यं तद् विलिप्ताः कुजादितः
नागा (८) स्तत्वानि (२५) तत्त्वानि (२५)
पूर्णशैला (७०) दिशा (१०) क्रमात् । ४४ ।

ग्रहों का मध्य बिम्ब होगा । मंगल आदि ग्रहों का विकलात्मक बिम्ब मान इस प्रकार है- मंगल (२५) गुरु (२५), शुक्र (७०) शनि (७०) ।

भौमेज्याक भुवां बिम्बाद् विष्टसूर्य फलस्य या
उत्क्रमज्या तया क्षुण्णा द्विगुणत्रिज्यया (६८७६) ह्रृताः । ४५ ।

भास्वर बिम्ब आदि- अभी मंगल गुरु और शनि का जो बिम्ब व्यास कहा गया उन्हें दो स्थान में रखेंगे । एक स्थान से चौथे शीघ्र फल के निकालने के समय प्राप्त उत्क्रमज्या से गुणा कर त्रिज्या के दो गुणा (६८७६) से भाग दें ।

तत्फलै रुज्झिताः कार्या बुध भार्गव यो स्तु तौ
द्राक् केन्द्रे मकरादिस्थे लिप्ताः शीघ्रफलोत्थिताः । ४६ ।

फल को दूसरे स्थान में रखे बिम्बवव्यास से घटाने पर उस ग्रह का भास्वर बिम्ब होगा)

बुध और शुक्र का शीघ्र केन्द्र मकरादि ६ राशि में रहने पर चतुर्थ फल कला को शीघ्रफल की

कोटि लिप्ताश्च संयोज्य तज्ज्यया त्रिज्यया ज्यया
पुनः कर्कादितत्केन्दे द्राक् फलाढ्य त्रिराशितः । ४७ ।

कोटिकला में जोड़कर योगफल की ज्या अर्थात् स्फुट केन्द्र कोटिज्या को त्रिज्या में जोड़ेगे । पुनः बुध और शुक्र का शीघ्र केन्द्र से शीघ्र केन्द्र में तीन राशि जोड़कर

कोटिराश्यादयः शोध्या शेष दोर्ज्या च यातया ।
बिम्बौ संगुणितौ द्विघ्न त्रिज्या प्तावित पञ्चते । ४८ ।

उसकी कोटि राशि घटायेंगे । शेष की भुजज्या अर्थात् स्पष्ट केन्द्रज्या निकाल कर उनके बिम्ब व्यास से गुणा कर त्रिज्या के दो गुणा (६८७६) से भाग देंगे । (फल इन दोनों ग्रहों का भास्वर बिम्ब होगा) इस प्रकार पांच तारा ग्रहों का

भवन्ति भास्वरा मध्या स्त्रिभाधिक कला वलेः
क्रमज्यात्रिज्यया युक्ता शुक्रज्ञ गुणको भवेत । ४९ ।

मध्यम भास्वर बिम्ब आयेगा । यहां शीघ्र फल कला और कोटि कला का योग तीन राशि से अधिक होने पर उनकी क्रमज्या त्रिज्या में जोड़ने से बुध और शुक्र का गुणक होगा ।

मध्यास्ते द्विविधा बिम्बा स्त्रिज्याघ्ना वृत्त भास्वरा
मन्द श्रुति हृतास्त्रिज्या क्षुण्णा द्राक् कर्णभाजिताः । ५० ।

मध्य वृत्त बिम्ब और मध्यम और भास्वर बिम्ब को अलग अलग रखकर त्रिज्या से गुणा कर अपने अपने शीघ्र से भाग देने पर स्फुट बिम्ब और भास्वर बिम्ब होगा ।

स्फुटा भवन्ति यौ स्पष्ट वृत्त बिम्बौ सितज्ञयौ
तौ चक्रार्द्धे शराल्पे त्वे दृश्यौ भास्वती गर्त वित् । ५१ ।

शीघ्र केन्द्र यदि वुध और शुक्र का सूर्य से ६ राशि के अन्तर पर है अर्थात् वे सूर्य और पृथ्वी के बीच में हैं तो शर (सूर्य से कोणीय अन्तर अर्थात् क्रान्ति वृत्त से दूरी) बहुत कम होने के कारण वह सूर्य बिम्ब से गढ्ढे के समान अर्थात् प्रकाश की तुलना में काला छेद जैसा दीखेगा ।

स्फुट भास्वर बिम्बानां दृग् बिम्ब मथोच्यते
दूरस्थ दीपा इवते स्थूला भान्ति यदीक्षिता । ५२ ।

अब भास्वर बिम्ब का दृश्य परिभाषा कहा जाता है । दूर रखे दीप की तरह भास्वर बिम्ब स्थूल दीखते है ।

दूरे पथेः स्थिति मतां स्व व्यासतिथिदृग् (२१५) गुणात्
ज्योतिषां स्थूलता लोके दृश्यते क्रमवृ द्धितः । ५३ ।

बहुत दूरी पर प्रकाशमान वस्तु होने पर वह अपने वास्तवकि कोणीय व्यास का २१५ गुणा तक लोगों को दीखता है ।

तद् बिम्ब नृम (१६) घातस्य कला देः पदमेव यत् ।
ताराग्रहाणां दृग् बिम्बं स्वं स्वं तद् भवति स्फुटम् । ५४ ।

भास्वर बिम्ब कला को १६ से गुणा कर उसका वर्ग मूल निकालने पर तारा ग्रहों का दृश्य बिम्ब मान होता है ।

भाना स्वतो भास्वरत्वात् समदूर स्थिते-क्षिते-
साम्य सदैव किन्त्वेषां कार्या दृग् बिम्बशालिता । ५५ ।

नक्षत्र (तारा) स्वयं प्रदीप्त हैं । इनकी दूरी पृथ्वी से घटती बढती नहीं है अतः उनके बिम्ब मान में कोई अन्तर नहीं दीखता है तथापि उनका दृश्य बिम्ब परिमाण निकालना चाहिये ।

युद्ध भेदानयो वक्ष्ये ग्रहयोः समलिप्तयो
दृग् बिम्बान्त द्वयस्पर्शे युद्ध मुल्लेखनामकम् । ५६ ।

अब बराबर राशि कला के ग्रहों के युद्ध (समागम) के भेद (प्रकार) कहे जाते हैं । दो ग्रहों का दृग् बिम्ब स्पर्श करने पर उसको उल्लेख युद्ध कहा जाता है ।

बिम्ब वेधे च भेदाख्यं मान योगाल्पकेऽन्तरे ।
तस्यादंशु विमर्दाख्य मप सव्यं ततोऽधिके । ५७ ।

एक ग्रह का बिम्ब दूसरे ग्रह में प्रवेश (वेध) करे तो उस योग को भेद युद्ध कहते हैं । दोनों ग्रहों का याम्य (उत्तर दक्षिण) या सौम्य (पूर्व पश्चिम) अन्तरयदि मानैक्य (बिम्बमान का योग) से कम हो तो वह अंश विमर्द युद्ध है । दोनों ग्रहों की परस्पर दूरी यदि बिम्ब योग से अधिक हो तो अपसव्य कहलाता है ।

अंशा वधि भवत्येन भागाधिक्ये समागमः
सम्भवेत्वपसव्यस्य यद्येकोदीप्तिमान ग्रहः । ५८ ।

जब उनका अन्तर १ अंश (६०) कला तक हो) ग्रह दूरी तथा बिम्ब योग का अन्तर यदि एक अंश से ज्यादा हो तो वह समागम कहलाता है। अपसव्य के समय यदि एक ग्रह दीप्तिमान हो तथा

अन्यो विवर्ण स्तद् युद्धं दीप्तौ द्वौ चेत्समागमः
तत्र द्वौ चेद्रश्मि हीनो कूट युद्धं तं दुच्यते । ५९ ।

दूसरा विवर्ण (क्रान्ति हीन-पृथ्वी और सूर्य के बीच) हो तो उसे युद्ध कहा जाता है । दोनों दीप्ति मान होने से समागम कहलाता है । अपसव्य में दोनों कान्ति हीन होने से कूट यूद्ध कहा जाता है ।

स्थूल बिम्बो जयी खेट स्तुल्य यो रुत्तरस्थितः
जितोऽणुः समयोर्याम्यः, सर्वदा सर्वजिद् भृगुः । ६० ।

अंश कलादि समान दो ग्रहों में उत्तर वाला ग्रह यदि स्थूल बिम्ब वाला हो तो जयी तथा दक्षिण का सूक्ष्म बिम्ब जित कहा जाता है । उत्तर और दक्षिण दोनों बिम्ब बराबर हों तो दक्षिण ग्रह जयी तथा उत्तर का जित होता है । शुक्र (का बिम्ब बड़ा होने के कारण) उत्तर दक्षिण दोनों दिशाओं में जयी होता है ।

सौम्य याम्य स्थितीक्षायै प्रौक्ते दृक् कर्मणी परम् ।
सल्लम्बन नति स्पष्ट खेद्यतः स्याभूतद् युतिः । ६१ ।

दो ग्रहों में कौन उत्तर और कौन दक्षिण है यह जानने के लिए आयन और आक्ष से संस्कार की विधि कही जा चुकी है । ग्रहण के समान योग ज्ञान के लिए भी लम्बन और नत संस्कार आरम्भ से किया जायेगा ।

गण्यतेऽर्द्धांश भेदो ऽपि भौमादीनां बुधैर्नयत्
प्राग्भिस्तेन दिते तेषा मत्यल्पे नत लम्बने । ६२ ।

प्राचीन आचार्य तारा ग्रहों का आधा अंश अर्थात् ३० कला तक अन्तर की गणना नहीं करते थे अतः नत और लम्बन (उस से कम होने के कारण छोड़ देते थे ।

तथापि गणित ज्ञान स्यावश्यकतया मया
परिकल्प्य निगद्येते सद्धियां परितुष्टये । ६३ ।

तथापि गणित ज्ञान के लिए लम्बन और नत संस्कार जानना आवश्यक है अतः बुद्धिमानों के संतोष के लिए मैने इनके बारे में कहा है । (Academic interest)

ग्रहों का नति निकालना-

परमानति रर्कस्य द्विविंशति विलिप्ति का
सैवज्ञशुक्रयोर्मध्य त्रिज्याघ्नी द्राक् श्रवोहृता । ६४ ।

रवि की परमनति कला २२ विकला है, यही बुध और शुक्र की मध्यम नति होती है । बुध और शुक्र की मध्यम नति कला (२२/६०) को त्रिज्या से गुणा कर अन्त्य शीघ्र कर्ण से भाग दिया जायेगा ।

पुनस्तकाल दृक् क्षेप गुणिता त्रिज्ययाहृता
स्फुटा वनतै र्न्येक्ष्यं त्रयाणं सापरार्कजा । ६५ ।

लब्ध फल का पुनः वित्रिभ नतांश (दृक्क्षेप) से गुणा कर त्रिज्या से भाग देने पर बुध और शुक्र की स्पष्ट नति होगी है ।

बाकी तीन ग्रहों (मंगल गुरु और शनि) की नति निकालने से लिए परम रवि नति को

नति स्वद्राक् परिधिभि गुणिता भांश (३६०) भाजिता
त्रिज्याघ्नी तूर्य कर्णाप्ता पुन र्दृक् क्षेप ताडिता । ६६ ।

अपनी शीघ्र परिधि से गुणा कर ३६० से भाग देने पर लब्धि को त्रिज्या से गुणा कर चतुर्थ शीघ्र से भाग देते हैं । प्राप्त फल को पुनः दृक् क्षेप से गुणा कर

त्रिज्याप्ता स्यान्नति स्पष्टा सूर्य ग्रहण वत्तया
संस्कृतो ग्रह विक्षेपः स्फुटः स्यादथ लम्बनम् । ६७ ।

त्रिज्या से भाग देने पर स्पष्ट नति होती है । जिस प्रकार सूर्य ग्रहण के समय किया गया था, स्पष्ट नति द्वारा ग्रह विक्षेप का संस्कार करने पर वह स्फुट शर होता है ।

कथ्यते यत्र खगयोः काल सम कली कृतिः ।
तथा स्वीया पर नति र्दृग्गतिघ्नी त्रिजीवया । ६८ ।

मंगल आदि तारा ग्रहों का लम्बन- लाने के लिये जिस समय दो ग्रहों का राशि अंश और कला आदि समान हों उस समय उनकी परमनति को दृग् गति से गुणा कर त्रिज्या से

भुक्ता वित्रिभ लग्नस्य ग्रहस्यान्तर जीवया
गुणिता त्रिज्यया भक्ता प्राग् प्रत्यक् स्थेनभश्चरे । ६९ ।

भाग देकर लब्धि को वित्रिभ लग्न और ग्रह के अन्तर की ज्या से गुणा कर त्रिज्या से भाग देने से फल (स्फुट) होता है ।

त्रिभोन लग्न तः क्षेप्या शोध्या चेत् स्यात् सलम्बनः
नभश्चर स्तद् विधयो र्ग्रहयोः स्याद् यदन्तरम् । ७० ।

ग्रह वित्रिभ लग्न से पूर्व रहने पर स्फुट लम्बन को ग्रह में योग करेंगे ।

वित्रिभ लग्न से पश्चिम रहने पर ग्रह से स्फुट लम्बन घटायेंगे । लम्बन संस्कार करने के बाद ग्रहों की स्थिति में जो अन्तर आता है (संस्कार के पहले कला समान था)

ततो गतैष्यकालः स्याद् यावान् समकलीकृतौ
गतियोगान्तर वशात् प्राग्वत् लम्बन स्फुटम् । ७१ ।

उससे योग का गत एष्यं काल निकाल कर पुनः समकला करेंगे । इस समकला के समय का स्फुट लम्बन निकाल कर पुनः ग्रह को संस्कृत करेंगे । और फिर उनकी कला समान करेंगे । यह बार बार करने से वास्तवकि युद्ध काल आयेगा ।

दूरत्वात् गति शून्यत्वात् भानाम् अनति भावतः ।
तत्खेट संयुतौ काल खेट गत्या गतः परम् । ७२ ।

ग्रह और नक्षत्र का योग- नक्षत्र पृथ्वी से दूर होने के कारण उनकी गति या नति शून्य (प्रतीत) होती है । अतः उनसे ग्रह का योग केवल ग्रह गति द्वारा ही निकाला जाता है ।

सम्भवे बिम्ब भेदस्यान्योऽन्यं तारा नभः सदाम्
लम्बनावनती साध्ये नान्यत्र क्लिष्ट भावतः । ७३ ।

लम्बन और नति साधन कठिन होने के कारण यह संस्कार केवल ग्रहों के भेद युद्ध (एक बिम्ब में दूसरा बिम्ब आ जाय) के समय किया जाता है । अन्य प्रकार के युद्ध में इतनी सूक्ष्म गणना जरूरी नहीं है ।

ग्रहवत् युति काले तु साध्यो भिन्नैक दिग् गतौ ।
भुक्ति योगान्तरा लाभ्यां स्व स्वमाना नुसारतः । ७४ ।

बुध और शुक्र द्वारा सूर्य का भेद-युद्ध ग्रहण (या ग्रह युदि) के समान विपरीत दिशा में चलते हुए गति से और समान दिशा में चलते ग्रह का गति अन्तर द्वारा अपने अपने बिम्ब परिमाण अनुसार स्पर्श आदि का समय निकालना चाहिये ।

वक्रयो रल्प शरयोः कदाचित् बुध शुक्रयोः
सूर्य मण्डल भेद स्यात् तात्कालिक भुक्ति योगतः । ७५ ।

वक्री बुध और शुक्र का शर बहुत कम होने के समय उनके द्वारा रवि बिम्ब का वेध होता है । यहां स्पर्श आदि समय रवि बुध या रवि शुक्र के गति योग द्वारा निकाला जाता है ।

बिम्ब भेदे ऽपि चैतेषां चन्द्रेण स्यात् समागमः ।
नति लम्बन सिद्धेन स्पर्श मोक्षादि पूर्ववत् । ७६ ।

ताराग्रह और चन्द्र की युति - नति और लम्बन द्वारा स्पष्ट चन्द्र का संस्कार कर उसमें ग्रह बिम्ब द्वारा वेध का स्पर्श आदि समय सूर्य बिम्ब वेध की तरह

निकालते हैं ।

तारा और चन्द्र का समागम गम काल –

सूक्ष्म चन्द्रस्य समता यत्र काल कुजा दिना लम्बनायत
दो चन्द्र मध्यभुक्ति (७९०/३५) र्मनु (१४) द्धृता (५६/२८) । ७७ ।

जिस समय मंगल आदि तारा ग्रहों का चन्द्रमा के साथ राशि अंश और कला समान हो उस समय का लम्बन जानने के लिए चन्द्र की मध्यम गति (७९०/३५) को १४ से भाग देंगे । लब्धि (५६/२८) को

कुजादि पर नत्यूना षष्टिघ्नी विकलान्विता
मध्येन्द्व वक्रतत् खेट गत्यन्तर विभाजिता । ७८ ।

मंगल आदि ग्रहों की परम नति से निकाले परम लम्बन से घटायेंगे । यह चन्द्र और उस ग्रह की नति अन्तर का परम मान होगा ।

परमनति अन्तर को दो स्थानों में रखकर एक स्थान पर ६० से गुणा कर दूसरे स्थान पर की (परमनति) विकला जोड़ेगे । उसमें चन्द्र और मार्गी ग्रह की मध्यम गति अन्तर से भाग देंगे ।

ग्रह वक्रणि मध्ये न्दु तद् गत्यो र्योग भाजिता
लब्ध नाड्यादि तत्काल दृग् गतिघ्नं त्रिभज्यया । ७९ ।

ग्रह वक्री होने पर चन्द्र और वक्री ग्रह की मध्यम गति के योग से भाग देंगे । इस परम लम्बन के नाड़ी आदि फल को उस काल की दृग्गति (वित्रिभ शंकु) से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से

भक्तं तत्प्राण तो जीवा परः स्यात् चन्द्र लग्नयोः
अन्तराद् भुज को टिज्ये साध्ये दोर्ज्या परान्तररात् । ८० ।

भाग देकर लब्ध का असु बनायेंगे । और उसकी ज्या निकालेंगे । इसका नाम पर होगा ।

लग्न और चन्द्र का अन्तर कर उसकी भुजज्या और कोटिज्या निकालेंगे । भुजज्या और 'पर' के अन्तर का

स्वध्नात् कोटि वर्ग युतात् श्रुति मूंलं पराहता
कोटीः श्रुति हता लब्ध धनुः प्राणा हि मध्यमाः । ८१ ।

वर्ग कर उसमें कोटिज्या का वर्ग जोड़कर उसका मूल निकालेंगे । फल छाया कर्ण होगा । कोटिज्या को पर से गुणा कर छाया कर्ण से भाग देने पर फल का चाप मध्यम लम्बन होगा ।

चन्द्र र्जु ग्रहयो र्मध्य गत्यन्तर हताहताः
स्फुट गत्यन्तरेणात्र गतियुत्यान्नृजौ पुनः । ८२ ।

(अत्र स्फुट गति पदेन चन्द्र प्रथम गति गृह्यते, सूर्य ग्रहणे तथोक्तः) इस मध्यम लम्बन को चन्द्र और मार्गी ग्रह के मध्यम गति अन्तर से गुणा कर चन्द्र की स्फुट गति और ग्रह की स्फुट गति अन्तर से भाग देंगे। ग्रह वक्री होने पर मध्यम गति योग से गुणा कर स्फुट गति योग से भाग देंगे।

त्रिभोन लग्न प्राक् प्रत्यक् स्थिते चन्द्रे स्वकालतः
हीना युता स्तु तत्काल दृग् गतिघ्नास्तु आद्यया। ८३।

इस फल को त्रिभोन (तीन राशि घटाकर) लग्न से अधिक चन्द्र रहने पर उसमें घटायेंगे। त्रिभोन लग्न से चन्द्र कम रहने पर उसमें यह फल जोड़ेगे। चन्द्र और त्रिभोन लग्न का समय समान हो जायेगा।

दृग् गत्याप्ताः स्फुटा द्येतैः संस्कृतः समलिप्त योः
चन्द्रान्य ग्रहयोः कालो युति मध्ये स्फुटो भवेत्। ८४।

पुनः उस मध्य लम्बन असु को लम्बन संस्कृत समलिप्तीकरण (वित्रिभ लग्न और चन्द्रमा का) काल के वित्रिभ शंकु से गुणा कर प्रथम वित्रिभ शंकु से भाग देने पर फल स्फुट लम्बन असु होगा। इस असु द्वारा समलिप्ती करण के चन्द्रमा और अन्य ग्रह के समय का संस्कार करने से स्फुट युति मध्यकाल होगा।

तत्काल वित्रिभ तनो दृक् क्षेपः प्राग् वदागतः
स्वविश्वशरः (५१३) भागाढ्य क्ष्मांगा (६१) प्तोऽ वनतिर्विधोः। ८५।

सूर्य ग्रहण की विधि से युति मध्यकाल के वित्रिभ लग्न का दृक्क्षेप निकाल कर उसमें उसका १/५१३ भाग जोड़ते हैं तथा योग को ६१ से भाग देने पर चन्द्र की नति आती है।

वित्रि भयोन लग्नस्य याम्य सौम्य नतिक्रमात्
शराक्षानुसृतेः सिद्धा या नति स्तत् परिष्कृतौ। ८६।

सूर्य ग्रहण विधि से वित्रिभ लग्न की सौम्य याम्य नति क्रम से शर और अक्षांश वलन द्वारा ग्रहों की नति सिद्ध होगी उससे

चन्द्रस्य च कुजादेश्च शरों चे देक दिग् भवो
तदा तद् वियुतेः शेषो दिक् शरश्चन्द्र तो ग्रहौ। ८७।

चन्द्र और भौमादि ग्रहों का शर संस्कार होगा। अर्थात् चन्द्र और उससे युत ग्रह का शर एक दिशा में होने पर उनका अन्तर और भिन्न दिशा में होने पर योग होगा।

याम्य सौम्य स्थिते याम्य सौम्या रुया च्छेदकाय सः
तौ चेद्भिन्न दिशौतत् तत् संयोगादि शरः स्फुटः। ८८।

यह समागम परिलेख के लिए उपयोगी शर होगा। चन्द्र से दक्षिण ग्रह रहने

पर याम्य और चन्द्र से उत्तर ग्रह रहने पर सौम्य शर होगा । परिलेख के लिए स्फुट शर-

तारा ग्रहाणां सर्वेषामध्यस्थच्छादको विधुः ।
प्रवेशस्तत् पुरस्तेषां प्रायः पश्चाद् विनिर्गमः । ८९ ।

मंगल आदि सभी तारा ग्रहों का चन्द्रमाही छादक है क्योंकि वह पृथ्वी से सबसे अधिक निकट है । (चन्द्रमा का अधिक गति से होने के कारण) प्रायः पूर्व दिशा में स्पर्श और पश्चिम दिशा में मोक्ष होगा ।

कृत्वैवायन दृक् कर्म ग्रहाणो नति संस्कृतैः ।
विशिखै र्भयुतिः साध्या तद् ध्रुवेष्वनुसारतः । ९० ।

ग्रहों का आयान दृक् कर्म करने के बाद ही उनके नत द्वारा संस्कृत शर द्वारा अश्विनी आदि नक्षत्रों के ध्रुव और शर आदि के अनुसार भग्रह (नक्षत्र और ग्रह) युति का साधन होगा ।

ख वृत्तान्त समासाख्यं वृत्तं संलिख्य पूर्ववत् ।
तन्मध्येऽत्र विधो र्बिम्बं ख वृत्ते वलनं तथा । ९१ ।

ग्रहण के परिलेख की तरह ख गोल वृत्त में चन्द्र और अन्य ग्रहों का मानैक्य वृत्त खीचेंगे । और उसी केन्द्र से चन्द्रमा का बिम्ब बनायेंगे । ख वृत्त के वलन के लिये -

स्पर्शेस्व दिशि मोक्षेऽन्यदिशिन्यस्यततो गुणः ।
आचन्द्र मध्यं प्रसृतो दिक् सूत्र मिति सम्मितः । ९२ ।

पूर्वविन्दु से अपनी दिशा में स्पार्शिक वलन देकर उसकी विपरीत दिशा में पश्चिम बिन्दु से मौक्षिक वलन होंगे । वलनाग्र से चन्द्र बिम्ब मध्य तक जो रेखा (सूत्र) होगा उसे दिक् सूत्र कहते हैं ।

तत्पार्श्वयोः स्वदिग् बाणः प्रसार्यः स्वेष्ट कालिकः
समासेऽग्र युतिर्यत्त ततः शीतांशु मध्यगम् । ९३ ।

यह दिक् सूत्र मानैक्यार्द्ध वृत्त को जिन दो स्थानों पर काटता है वहां से स्पर्श और मोक्ष कालिक स्फुट शर अपनी अपनी दिशा में (उत्तर या दक्षिण की तरफ) होंगे ।

सूत्रं यत्र स्पृशेत् नेमिं तस्यात्र स्पर्श निर्गमौ
ज्ञेयौ ग्रहाणां भाताञ्च गोल वेदि भिरभ्रमत् । ९४ ।

मानैक्यार्द्ध के शराग्र विन्दुओं से चन्द्र बिम्ब के मध्य तक रेखा चन्द्र बिम्ब परिधि को जिन स्थानों पर काटती है वहीं से ग्रह या नक्षत्र का निर्गम और प्रवेश समझेंगे ।

सूर्य मन्द भुजफल के वृहस्पति, शनि तथा मंगल के उदयास्त कालिक चतुर्थ शीघ्र केन्द्र में जोड़ेगे या घटायेंगे। बुध और शुक्र में यह संस्कार विपरीत क्रम से होगा।

स्फुट केन्द्रे मथो भानो रयनांश परिष्कृतात्।
ग्रहस्योनस्य पूर्वोक्त कालांशार्द्ध विशोध्य च। ५२।

तात्कालिक सायन सूर्य की राशि से ग्रह कम होने पर ग्रह के लिखे गये कालांश के आधा को रवि से घटायेंगे।

अधिकस्य रवौ तस्मिन् यो जयित्वा तदर्द्धकम्।
यतस्याद्राश्यादिक भानौ प्राक्स्थे लग्नं तदेव हि। (५३।

रवि से ग्रह अधिक होने पर ग्रह कालांश का आधा रवि में जोड़ेगे। रवि पूर्व में होने पर वही उस समय का लग्न होगा।

प्रत्यक् स्थेषड् भयुक् कृत्वा तस्माद् वित्रिभतः पुनः।
क्रान्ति मक्षांश संस्कारान्नतांशानुन्नतांश कान्। ५४।

रवि पश्चिम में रहने पर उक्त रवि राशि आदि में ६ राशि जोड़कर उस समय का लग्न आयेगा। लग्न में ३ राशि घटाकर उससे क्रान्ति निकालेंगे। इस क्रान्ति में अक्षांश संस्कार कर उससे नतांश और उन्नतांश निकालेंगे।

आनीयाथ नता नंशान् कृते (४) ष्वे (५) ङ्गा (६) ऽद्रि (७) दन्तिभिः (८)।
क्रमाद् विभज्य शक्रेज्या बुधार्किक्ष्मा भुवार्क ते। ५५।

इस प्रकार शुक्र, गुरु, गुध, शनि और मंगल का नतांश निकाल कर उसमें क्रमानुसार ४,५,६,७ और ८ से भाग देकर

तत्फलाढ्या उन्नतांशा स्तेभ्यः साध्योन्नतज्यका
स्वस्वो दयास्त कालांश स्त्रिज्याघ्ना उन्नत ज्यया। ५६।

फल को उन्नतांश में जोड़कर उसकी ज्या निकालेंगे। इन ताराग्रहों के लिखे गये उदयास्त कालांश को त्रिज्या से गुणा कर उस योग (उन्नतांश के संस्कार के बाद) ज्या से

हता तत्फल मंशाद्यं ग्रहे तदप वृत्तगे।
तत्सूर्येन्तर मेव स्याद् ध्रुवोऽस्तोदपयोर्मतम्। ५७।

भागय देने पर जो अंश आदि फल होगा वह ग्रह का क्रान्ति वृत्तीय मान होगा। इसे रवि से घटाने पर अस्तोदय का ध्रुव होगा।

ध्रुवार्द्ध संस्कृते प्राग् वत् सायनार्के पुरः स्थिते।
शून्ये कादि भगेतेषां क्षेत्रांश उत्कले यथा। ५८।

ग्रह के अस्तोदय ध्रुव का आधा से सायन रवि का संस्कार पहले की तरह

करते हैं। अर्तात् सायन रवि से कम ग्रह का ध्रुव का आधा सायन रवि से घटाया जायेगा। रवि से अधिक ग्रह रहने पर सायन रवि में ध्रुव का आधा जोड़ा जायेगा। यह संस्कृत सायन रवि ०,१,२ आदि जिस राशि में है उसके अनुसार उत्कल में ग्रहों का क्षेत्रांश दिया जा रहा है।

शून्ये भेदश काव्यस्य कलाभिस्त्र्यब्धि भिर्युताः (१०/४३)
एकस्मिन् षड् भुजैः काष्ठा (१०/२६) द्वयेर्नव च भूशरैः (९।५१)। ५९।

शुक्र क्षेत्रांशं संस्कृत सायन रवि १ और १२ राशियों में- १०/२६
(उत्कल) २ और ११ राशियों -९/५१

त्रिष्वङ्का ख भुजे (९/२०। मेंषु चतुर्षु नवचाब्धिभिः(९/ ४०)
पञ्चस्वङ्काश्चषट् स्वङ्काभूवै (९।१) तेपञ्च भादिजाः। ६०।

शुक्रक्षेत्रांश - संस्कृत सायनरवि	३,१० राशि में रहने पर-			९।२०
(उत्कल)	४-९	"		-९।४०
	५-८	"	"	-९।०
	६-७	"	"	- ९।१

व्युत्क्रमात्सप्तभाद्येषु ज्ञेया भानौ तु पश्चिमे
संस्कृते प्राग्वदे तस्मात् सषड् भान्तेंऽशकामतः। ६१।

ऊपर १ से ६ राशियों में जो क्षेत्रांश दिया हुआ है उसके उल्टे क्रम से ७-१२ राशियों में क्षेत्रांश होता है। यह ऊपर के श्लोक अर्थ में लिखा जा चुका है।

रवि पश्चिम में रहने पर उसमें ६ राशि घटाकर उसका पहले के समान ०,१,२ आदि राशि में क्षेत्रांश होगा।

एकैक भध्रुव लवान्तर घ्नैः संस्कृतार्कजैः।
अंशैः खाग्नि (३०) स्पष्टा बह्वल्पा वियुता युताः। ६२।

इसके बाद संस्कृत रवि के अंशादि को ध्रुवांश के अन्तर से गुणा कर ३० से भाग देने पर जो लब्धि होगी उसको क्षेत्रांश अधिक होने पर उसमें जोड़ेगे। और क्षेत्रांश कम होने पर उसमें घटाने से स्पष्ट क्षेत्रांश होगा।

अथ शून्यैक भाद्येषु क्षेत्रांश पूर्ववद् गुरोः
विश्वभै (१३/२७) र्विश्वकेदो र्घ्या (१३/२)
सूर्यारुद्रैः (१२/११) पिनाकिनः। ६३।

इसी प्रकार उत्कल में वृहस्पति का क्षेत्रांश

सायन संस्कृत रवि,	१,१२	राशि में		१३°/२७'
,,	२-११	,,	-	१३°/२'
,,	३-१०	,,	-	१२°/११'

नक्षत्र चन्द्रयोर्युत्यां दृग् गतिः शत ताड़िता
धरित्री त्रिभुजै (२३१) र्भक्ता लम्बनाय परोत्त वेत् । ९५ ।

नक्षत्र और चन्द्र योग में वित्रिभ लग्न के शंकु को (१००) से गुणा कर (२३१) से भाग देने पर स्फुट लम्बन के लिए पर ज्या होती है ।

एवंज्ञ शुक्रयोर्भानौ प्रवेशा पगम क्रमः
सशरोदिक् शरस्तत्रच्छेदके मध्यगो रविः । ९६ ।

चन्द्र और भग्रह के योग की तरह, वक्री बुध और शुक्र की सूर्य मण्डल में पूर्व से प्रवेश और पश्चिम से निर्गम करते है । रवि का शर नहीं रहने के कारण बुध और शुक्र का शर ही युति शर और इस शर का दिग ही शर दिग होगा । परिलेख के समास वृत्त से मध्य में ही रवि बिम्ब होगा ।

तारा ग्रहाणां किरणैः शंकुच्छाया यदि स्फुटा
छायाग्रस्ते तदा दर्शे दृश्यास्ते शंकु मुर्ध्वगाः । ९७ ।

भौमादि तारा ग्रहों की किरण से १२ अंगुल शंकु की छाया नहीं दिखती है । अतः छायाग्र बिन्दु पर दर्पण रख कर शंकु अग्र बिन्दु की तरफ देखने पर छायाग्र बिन्दु का स्थान मालूम होगा । (शंकु अग्र और ग्रह एक स्थान पर दिखेंगे ।

समभूमौ प्रतिष्ठाप्य पञ्च हस्तोच्छितं नरंम् ।
दृढं सममृजुं वृत्तं द्वाद शांगुलान्वितम् । ९८)

समतल भूमि में पांच हाथ ऊंचा एक शंकु खड़ा करेंगे । शंकु के १२ भाग कर प्रत्येक भाग पर चिह्न देंगे । शंकुओं को दृढ़ और सीधा रखकर उसकी सतह वृत्ताकार करेंगे ।

इष्ट कालिक खेटस्य नत का लान्तिजां प्रभाम्
शंकोरानीय तन्मान सूत्रेण परितो लिखेत् । ९९ ।

इष्ट काल ग्रह की नत कला से द्वादशां गुल शंकु की छाया निकाल कर (त्रिप्रश्नाधिकार विधि से) छाया व्यासार्द्ध से शंकु से चारों ओर एक वृत्त खींचेगे ।

तन्मूलाद् वृत्तमत्र प्राक् परयोर्याम्य सौम्य योः
विलिखे केन्द्र संस्पर्श सरलं रेखिका द्वयम् । १०० ।

उस वृत्त में दिक् चिह्न (त्रिप्रश्नाधिकार विधि से) देकर केन्द्र बिन्दुओं से पूर्वा पर और याम्यांत्तर रेखा खीचेंगें ।

ग्रहस्यर्क्षस्य वास्पष्ट क्रान्तिज्या भाश्रयोहता
लम्बज्याप्ता भवेदग्रा स्वेष्टा काले ऽङ्गुलात्मिका । १०१ ।

इसके बाद ग्रह या नक्षत्र के इष्ट काल की स्पष्ट क्रान्ति ज्या निकाल कर उसको छाया कर्ण से गुणा कर लम्ब ज्या से भाग देंगे । लब्धि अंगुलात्मक कर्ण

वृत्ता ग्रा होगी ।

दक्षिणोत्तरयोः क्रान्त्यो स्तद् युतोना पल प्रभा
वियोगा च्छेष दिक् संस्था भुजां गुल संज्ञका । १०२ ।

कर्णवृत्ताग्रा की दिशा दक्षिण क्रान्ति से दक्षिण और उत्तर क्रान्ति में उत्तर होगी । इसमें पल भा घटाने (उत्तर या गौम्य क्रान्ति में) या जोड़ने (याम्य क्रान्ति में) से अंगुलात्मक छायाग्र का भुज होगा ।

दक्षिणोत्तर रेखायां शलाकां भुज सम्मिताम् ।
केन्द्रात् प्रसार्य दिग् भेदात् अग्रे बिन्दुं निधायच । १०३ ।

वृत्त केन्द्र सेदक्षिण उत्तर रेखा पर उल्टी दिशा में छायाग्र भुज के बराबर (शलाका की) दूरी पर चिह्न देंगे । याम्य (यादक्षिण) भुज में उत्तर की तरफ सौम्य भुज में दक्षिण की तरफ ।

भुज वर्गा न भा वर्गोत्तल शंकु र्भवेत् पदम् ।
साकोटि प्राक् कपालस्थे खगेविन्दो परांदिशम् । १०४ ।

छाया वर्ग में भुजवर्ग घटाकर उसका ग्रह लेने से घबराते शंकु होता है । जिसे कोटि भी कहते हैं ।

ग्रह बिम्ब पूर्व काल में रहने पर भुजाग्र बिन्दु से पश्चिम तथा -

प्रत्यक् स्थे प्रतिपूर्वाणां प्रासार्या यत्र सास्पृशत् ।
वृत्तं तत्र प्रभाग्रं स्यात् ततः शंकु शिखावधि । १०५ ।

ग्रह बिम्ब पश्चिम कपाल में रहने पर भुजाग्रबिन्दु से पूर्व मे कोटि देकर देखेंगे कि किस स्थान में यह कोटि छाया वृत्तार्द्ध को छूता है । वह स्पर्श बिन्दु ही शंकु का छायाग्र होगा ।

नलकं कर्णमार्गस्थ न्यस्यास्य शुषिरेण सः ।
भाग्रस्थ मुकुरे खेटे दर्शनीयो विपश्चिता । १०६ ।

इस छायाग्र बिन्दु से छाया कर्ण मार्ग से नली रखकर नीचे की तरफ से या दर्पण रखकर प्रतिबिम्ब में वही ग्रह दीखेगा ।

योग काले ग्रहौद्रष्टुंतद् विक्षेप समान्तरम्
शंकुद्वयं निखायास्य शिखयोः सगता विभौ । १०७ ।

ग्रहयुति के समय में दोनों ग्रहों को देखने के लिए ग्रहों के शर के बराबर अन्तर पर पहले की तरह दो शंकु गाड़कर उसकी शिखा को

छायाग्र लग्न नेत्राय दर्शनीयां सुबुद्धये
द्रष्टव्यानि फलान्यासां संहिता सु युधां बुधैः । १०८ ।

छायाग्र से आख लंगा कर ऊपर की तरफ देखने पर बुद्धिमान लोग आसानी

से दोनों ग्रह देख सकते हैं। विभिन्न प्रकार की ग्रह युति का फल संहिता ग्रन्थों में (जैसे वृहत् संहिता) पण्डित लोग देखें।

भक्ताये वृत्त बिम्बा इह गगन सदा सूक्ष्म बिम्बाश्च भानां
वक्ष्यन्ते तेऽच्छभावानृप (१६) गुण सित रुक् कान्ति जाज्वल्यमानाः
स्वीयेष्वस्तोदयाशेष्व मृतकर सम ज्योति रालोक नायो
च्यन्तेव्यासै श्चतुघ्नै स्तनवइति चतुर्थांश माना स्वतस्तः। १०९।

यहां जिन ग्रहों का वृत्त बिम्ब कहा गया तथा जिन तारा बिम्बों के बारे में बाद में कहा जायेगा वे अति स्पष्ट होने के कारण चन्द्र बिम्ब से १६ गुणा ज्यादा प्रकाश मान दीखते हैं। उदय और अस्त (सूर्य की निकटता के कारण) के समय ग्रह बिम्ब का तेज चन्द्र समान दीखने के कारण उनका बिम्ब ४ गुणा कर के कहा गया है। इस से यह स्पष्ट है कि बिम्ब का चतुर्थांश ही वास्तविक बिम्ब मान है।

दृष्टं शुक्रस्य गाढास्तमयजं मण्डलं चण्ड भानौ
कीटांशे पञ्चविंशे गतवति कलितोऽर्था द्रिगेऽब्ध्य (४९७५) ब्द वृन्दे
भास्वद् विकम्भ दन्तां (३२) शमित इदं खार्थषड् (६५०) योजनंस्य
दित्यन्यज्ज्ञेय मस्मात्रनव इन तनो स्तार का को ग्रहाः स्युः। ११०।

शुक्र के कारण सूर्य ग्रहण निकालने के लिये उसका बिम्ब मान एवं तारा ग्रह व्यवस्था कही जाती है। कलिगत वर्ष ४९७५ में सूर्य वृश्चिक राशि के शुक्रकृत सूर्य ग्रहण हुआ था। उस समय शुक्र बिम्ब सूर्य बिम्ब का १/३२ अंश हुआ था और यह (६५०) योजन के बराबर है। अतः सूर्य से बाकी तारा और जल ग्रहों का बिम्ब बहुत छोटा है यह स्पष्ट भाव से प्रभावित हुआ।

अम्बुदा वलि विड़म्बित तनु श्री रम्बु राशितट विस्फुट धामा
किम्बु पत्तन पतिः पतितानां सम्भ्युदस्यतु तम पटले नः। १११।

नील जलधर के तेज को जो अपने तेज से लज्जित करते हैं, और जो सागर तीर पर वास करते हैं, वही प्रभु जगन्नाथ हमारे जैसे पतितो का अज्ञान अन्धकार दूर करें।

इत्यु त्कलो ज्ञवल नृपाल कुल प्रसूत
श्रीचन्द्र शेखर कृते गणितेऽक्षिसिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बालबोधे
एकादशोऽग्रहयुति प्रययौ प्रकाशः। ११२।

इस प्रकार उड़ीसा के विख्यात राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्र शेखर द्वारा गणना और दृष्टि से समानता तथा छात्रों के पठन के लिये लिखे सिद्धान्त दर्पण में ग्रह युति नामक एकादश अध्याय समाप्त हुआ।

द्वादशः प्रकाश

भ ग्रह योग वर्णनम्

अथ भ ग्रह योगाय भानां वक्ष्ये ध्रुवान् शरान्
संख्याकारान् योगताराः सांगानां बिम्ब विस्तृतो । १ ।

तारा और ग्रह योग जानने के लिये अश्विनी आदि तारागणों का क्रान्ति वृत्तीय ध्रुव राशि आदि, उनका आकार और संख्या, प्रत्येक का योग तारा (प्रशस्त तारा और उनका शर और इस योग तारा का बिम्ब विस्तार इस प्रकार के आरम्भ में कहा जाता है ।

द स्नादीनां ध्रुवांशा स्युर्व्यंध्रि काष्ठाः
(१।९।४५) कुबाहव । (२।२१)
सपादेद्व्यग्नयः (३-३५।१५) सार्द्ध षडवेदाः
(४) ४६।३०) सांघ्रि खर्त्तवः । (५-६०/१५) । २ ।

अश्विनी आदि नक्षत्रों का ध्रुवांश (क्रान्ति वृत्त में मेष 0° से दूरी) इस प्रकार है- १. अश्विनी ९।४५, २. भरणी, २१ ३. कृत्ति का ३५।१५ ४. रोहिणी-४६/३०. ५ भृगशिरा ६०/१५

शरषट् (६-६५) सांध्रि शून्यां काः (७-९०/१५)
कृताशा (८-१०४) वसुखेन्दवः (९-१०८)
रसार्काः (१०-१२६) सार्द्धवह्नीन्द्रा (११-१४३/३०)
राम बाणाहिमांशव (१२-१५३) । ३ ।

६. आर्द्रा (६५), ७. पुनर्वसु (९०।१५) ८. पुष्य (१०४), ९. अश्लेषा (१०८) १०. मघा (१२६), ११. पूर्वाफाल्गुनी (१४३) १२. उत्तराफाल्गुनी (१५३)

शरभूपा (१३-१६५) नवघनाः (१४-१७९) त्रिनन्द सितभानव, (१५-१९३)
नगाभ्रपक्षाः (१६-२०७) सार्द्धाष्टभूभुजां (१७-२१८/३०) रसदृग् दृशः । ४ ।

१३. हस्त (१६५) १४. चित्रा (१७९), १५. स्वाती (१९३), १६. विशाखा, (२०७) १७. अनुराधा (२१८।३०) ।

अर्द्धोना (१८-२२५/३०) रूयंशहीनेन्दुसिद्धः
(१९-२४०।४०) खशरबाहवः (२०-२५०)
अर्द्धयुक् तर्क तत्वानि (२१-२५६/३०)
दलोना द्रीषु बाहवः (१-२५६/३०) । ५ ।

१८. ज्येष्ठा (२२५/३०) १९. मूल (२४०/४०) २०. पूर्वाषाढ़ (२५०) २१. उत्तराषाढ़ (२५६/३०), ०, अभिजित् (२५६ /३०)

त्रिभानि (२२-२७३) सार्द्ध पञ्चाष्ट पक्षा (२३-२८५।३०)
व्याघ्रय ष्टभूगुणः (२४-३१७।४५) दृग् दन्ता (२५-३२२)
दन्ति गीर्वाणाः (२६-३३८) शून्यं (२७-०) साभिजितामिति । ६ ।

२२. श्रवण (२७३) २३. धनिष्ठा (२८५।३०) २४ शतभिष् (३१७।४५) २५. पूर्व भाद्रपद (३२२) २६. उत्तर भाद्रपद (३३८), २७. रेवती (०)

क्रान्त्यन्तादेषामथविक्षेपांशादलाढय
दिश (१-१०।३०) ईशाः (२-११)
सांघ्र्य ब्धयः (३-४।१५) सहार्द्धेन्द्रियाणि
(४-५।३०) सार्द्धानलक्षितयः (५-१३।४०) ।७ ।

नक्षत्र मण्डल के योगतारा का शर या क्रान्ति वृत्त से उत्तर या दक्षिण दिशा में उनकी दूरी कही जाती है ।

१ अश्विनी (उ-१०।३०) २. भरणी (उ-११) ३. कृत्तिका (३-४।१५) ४. रोहिणी (द-५।३७) ५. मृगशिरा (द. १३।३०)

त्र्यंशोन तर्क चन्द्राः (६-१५।४०) सार्द्धरसाः
(७.६।३०) सांघ्रिरूप (८- १।१५) मर्काश्च (९-१२)
रूपदलंनिजषष्ठांशोनित (१०-०।२२) मर्थेन्दवो
(११-१२) विश्वे (१२-१३) । ८ ।

६. आर्द्रा (द-१५।४०) ७. पुनर्व (उ-६।३०) ९ पुष्य उत्तर १।१५) ९. अश्लेषा (द-१२), १०. मघा (उ-०।१२) ११. १२. उत्तरा फाल्गुनी (उ-१३।०)

रुद्राः (१३-११) सरसांशदृशौ (१४-२।१०)
देवा (१५-३३) बाहू (१६-२) भुजौ (१७-२२)
सपादकृता (१८-४।१५) सदलानलरजनीशा (१९-१३।३०)
सार्द्धांगा (२०-६।३०) न्यत्रिभागकृताः (२१.३।४०) । ९ ।

१३. हस्त (द-११।०) चित्रा (द-२।१०) स्वाती (उ.३३।०) १६. विशाखा (द. २।०) १७. अनुराधा (द.२।०) १८. ज्येष्ठा (द. ४।१५) १९.मूल (द-१३।३०), २०. पूर्वाषाढ़ (द.६।३०), २१. उत्तराषाढ़ (द- ३।४०)

द्वाषष्टि (०-६२) रभ्रामा (२२-३०
षट्त्रिंश (२३-३६) च्छितिदीधितेरूयंशः
(२४-०।२०) दन्ता (२५-३२)गजभुज संख्या
(२६-२८) शरा (२७-५।०) इतिशराक्रमाभानाम् । १० ।

०. अभिजित् (उ-६२।०) २२. श्रवण (उ-३०।०,) २३. धनिष्ठा (उ- ३६।०) २४. शतभिष् (द-०।२०) पूर्वभाद्रपद (उ-३२।०) २६. उत्तर भाद्रपद (उ-२८) २७ रेवती (उ.५।०) ।

ब्रह्मात्रयस्य (४।५।६) राधाषटक (१६।१७।१८।१९।२०।२१)
स्वहेः (९) करस्य (१३) चित्राया (१४) वरुणस्य (२४)
च विक्षेपो याम्यः सौम्येऽपरर्क्षाणाम् । ११ ।

निम्नलिखित नक्षत्रों का विक्षेप दक्षिण दिशा में होता है ।

(४,५,६,१६,१७,१८,१९,२०,२१,९,१३,१४,२४)

बाकी नक्षत्रों का विक्षेप उत्तर दिशा में होता है । (यह पहले ही दिखाया जा चुका है ।

रामा (१-३) गुणाः (२-३) षड़ (३ -६)
विषया (४-५) हुताशा (५-३)
रूपं (६-१) शरा (७-५) वह्नय
(८-३) आशुगाश्च (९-५)
बाणा (१०-५) दृशौ (११-२) युग्म
(११-२) मथेन्द्रियाणि (१३-५)
धरा (१४-१) स्थिरा (१५-१) पञ्च
(१६-५) नगाश्च (१७-७) रामाः (१८-३) । १२ ।

१. अश्विनी (३).२. भरणी (३) ३ कृत्तिका (६) ४. रोहिणी (५), ५ मृगशिरा (३) ६. आर्द्रा (१), ७ पुनर्वसु (५) ८ पुष्य (३) अश्लेषा (५), १० मघा (५) ११. पूर्वाफाल्गुनी (२), १२. उत्तराफाल्गुनी (२), १३. हस्त (५) चित्रा (१) १५. स्वाती (१), विशाखा (५) ५ अनुराधा (७) १८. ज्येष्ठा (३)

नन्दाः (१९-९) समुद्राः (२०-४) निगमा (२१-४) गुणाश्च (२-३)
रामा (२२-३) खाभ्र भुवौ (२४- १००) भुजौ (२५-२) च
दृशौ (२६-२) द्विरामा (२७-३२) इति तारकाणा
संख्यादिता राभिजिता क्रमेण । १३ ।

१९. मूल (९) २०. पूर्वाषाढ़ (४) उत्तराषाढ (४) अभिजित् (३) २२. श्रवण (३) २३. धनिष्ठा (५) २४. शतभिष (१००) २५ पूर्वभाद्रपद (२) २६. उत्तरभाद्रपद (२) २७ रेवती (३२) ये विभिन्न नक्षत्रों में ताराओं की संख्या है ।

जीवर्क्ष (८) मध्ये बहुतारकाणां स्थितावपि व्यक्ति तयाविनाद्यैः ।
एकत्वमुक्तं कतिचिद् विभिन्न संख्यानि भानोत्यपरे वदन्ति । १४ ।

८. पुष्य नक्षत्र में अनेक तारा रहने पर भी वे स्पष्ट नहीं दीखने के कारण मेरे मत से एक ही तारा है । कई आचार्य अनेक नक्षत्रों में ताराओं की संख्या भिन्न भिन्न कहते हैं ।

ऋक्ष चयस्याकृतयः प्रत्यय हेतो तथा भिधास्यन्ते ।
तुर गवदन (१) त्रिकोश (२) ज्वलनशिखा (३) सदृक्षास्ताः । १५ ।

अब नक्षत्रों की आकृतिका वर्णन किया जाता है । १. अश्विनी का रूप घोड़े

के मुँह के समान, २. भरणी–त्रिकोण आकार ३ कृत्तिका अग्निशिखा के समान तथा ४. रोहिणी–गाड़ी (शगड़) या बैल गाड़ी के समान ।

मार पाद (५) विद्रूम (६) कार्मुक)७)
कटिनीरजः (८) श्व पुच्छ (९) निभाः
लांगल (१०) भारसमाभे (११) भार (१२)
कराभे (१३) च मुक्ताभा (१४) । १६ ।

५. मृगशिरा –बिल्ली के पैर या मृग के मुख के समान, ६. आर्द्रा मूंगा (मणि) या बूंद की तरह ७. पुनर्वासु का आकार धनुष के समान ८. पुष्य का आकार खल्ली (Chalk) के टुकड़े या तीर की तरह ९. अश्लेषा का आकार कुत्ते की पूंछ के समान १०. मघा का आकार हल की तरह, ११. पूर्वा और उत्तरा फाल्गुनी (१२) दोनों का आकार भार (कावरया लाठी पर दोनों तरफ लटकाये हुए) के समान १३. हस्त का आकार हाथ के समान, १४. चित्रा का आकार मोती के समान

माणिक्य (१५) तोरण (१६) फणि (१७)
कोड़रद (१८) किम्बु (१९) सर्प (२०) सदृश
तनवः सूर्या (२१) ग्नि बिम्बं सायक (२२)
मुरज (२३) वितान (२४) प्रतीकाशाः (१७) ।

१५. स्वाती का आकार माणिक्य, या मूंगा १६. विशाखा तोरण (छप्पर) की तरह १७. अनुराधा सांप के फण के समान, १८. ज्येष्ठा–सूअर के दांत की तरह, १९. मूल–शंख के समान, (या सिंह की पूंछ की तरह) २०. पूर्वाषाढ़ और २१ उत्तराषाढ दोनों सूप की तरह (या हाथी दांत की तरह) ०.० अभिजित् अग्नि बिम्ब की तरह या त्रिकोण २२. श्रवण शर (तीर) की तरह (या वामन) २३. धनिष्ठा– नगाड़ा की तरह, २४. शतभिष् तोरण की तरह ,

भारनिभा (२५ भारसमा (२६) मीनाभा (२७) चेतिसम्मताद् भढ़वः ।
काश्चित् कैश्चित् प्रोक्ता भिन्ना कृतयः स्वशास्त्रेषु । १८ ।

२५ पूर्व भाद्रपद और २६. उत्तर भाद्रपद भार (डण्डे के दोनों तरफ लटके) या मञ्च के समान २७ रेवती का आकार मछली या नगाड़ा की तरह दीखता है । नक्षत्रों का आकार समस्तो के मत से समान नहीं है ।

अश्वि (१) चन्द्र (५) भगे (११) न्द्राग्नि (१६) तोय २०) विश्वा (२१)
जपादका (२५) अहिर्बुध्नस्यो (२६) तरस्थायोगताराध्रुवां शगा । १९ ।

किस नक्षत्र का योगतारा कहां स्थित है यह कहा जाता है । १. अश्विनी ५. मृगशिरा, ११. पूर्वाफाल्गुनी १६ विशाखा, २० पूर्वाषाढ, २१. उत्तराषाढ़, २५. पूर्वभाद्रपद तथा २६. उत्तर भाद्रपद इन नक्षत्रों का योग तारा नक्षत्र के उत्तर दिशा में है ।

इन्द्र (१८) गोविन्द (२२) मित्रा (१७) ग्नि (३) जीवानां (८) मध्यगा मताः ।
आदित्या (७) दित्य (१३) दैत्यानां (१९) ईशान दिग वस्थिताः । २० ।

१९. ज्येष्ठा, २२. श्रवण, १७. अनुराधा ३. कृत्तिका, ८. पुष्य इन नक्षत्रों का योग तारा नक्षत्र के मध्य में । ७ पुनर्वसु, १३. हस्त, १९ मूल-इनका योग तारा नक्षत्र के ईशान दिशा में है ।

वित्त (२३) स्याभिजितः (०) पश्चात् पूर्वस्या ब्रह्म (४) सर्पयो (९)
याम्या स्थूलापितुः (१०) पूषा यमा (२) र्यमणाञ्च (१२) दक्षिणाः । २१ ।

२३. धनिष्ठा और अभिजित् (०) का योग तारा नक्षत्र के पश्चिम में है । ४. रोहिणी और ९. अश्लेषा का योग तारा पूर्व में है । १० मघा का योग तारा अत्यन्त स्थूल है और नक्षत्र के दक्षिण में है । २७ रेवती, २. भरणी और १२ . उत्तराफाल्गुनी का योगतारा नक्षत्र के दक्षिण में है ।

कृपीटयोनि काष्ठायां योगतारा प्रचेतसः (२४)
शंकर त्वष्टृ वातानां (६,१४,१५) स्वरूपाण्य के भावतः । २२ ।

२४. शतभिषा का योगतारा आग्नेय कोण में है । ६. आर्द्रा, १४ . चित्रा और १५. स्वाती में एक ही तारा अतः इनके योगतारा और नक्षत्र पुञ्ज में कोई अन्तर नहीं है । योगतारा का ही ध्रुव और शर, नक्षत्र का ध्रुव और शर होता है ।

योगतारा विलिप्तास्तु सूक्ष्मा, क्रमान् मानतः षड् (६) भुजौ
(२) वह्नयः (३) सप्तयः (७) ईक्षणे (२) क्ष्माभृतः (७)
कुञ्जरा (८) लोचने (२) सिन्धवः (४) षड् (६)
गुणा (३) वार्द्धय (४) रचाब्ध्यः । २३ ।

योगताराओं की सूक्ष्म बिम्ब कला (विलिप्ता में) कही जाती है । १. अश्विनी (६) २ भरणी (२) ३. कृत्तिका (३) ४. रोहिणी (७) ५. मृगशिरा (२) ६. आर्द्रा (७) ७ पुनर्वसु (८) पुष्य (२) ९. अश्लेषा (४) १० मघा (६) ११. पूर्वाफाल्गुनी (३) १२. उत्तरा फाल्गुनी (४) १३. हस्त (४)

सैन्धवा (७) स्त्रीन्दव (१३) श्चक्षुषो (२) सिन्धवः (४) ।
सप्त (७) पञ्चा (५) ब्धय (४) श्चाब्धयो (४) ऽ ब्धोन्दवः । (१४)
वाजिनः (७) पावका (३) वीति होत्राः (३) कृता (४)
अर्णवा (४) वह्नयः (३) श्चेति दस्रादितः । २४ ।

१४. चित्रा (७) १५. स्वाती (१३) १६. विशाखा (२) १७. अनुराधा (४) १८ ज्येष्ठा (७) १९. मूल (५) २०. पूर्वाषाढ़ (४) २१. उत्तराषाढ (४) ०. अभिजित् (१४) २२. श्रवण (७) २३. धनिष्ठा (३) २४. शतभिष (३) २५. पूर्वाभाद्रपद (४) २६ उत्तर भाद्रपद (४) २७. रेवती । (३) ।

देवमातु (७) पुनर्याम्यगा तारका सर्वतारा
धिका तद् विलिप्ता नखाः (२०)
तद् ध्रुव सप्त सप्तां (७७) शंका मार्गण,
खार्णवां (४०) शा निजापक्रमादक्षिणः । २५ ।

(अन्य कई तारों का ध्रुव, बिम्बमान तथा शर दिया जा रहा है । ७. पुनर्वसु नक्षत्र के दक्षिण में सबसे उज्जवल एक तारा का बिम्ब कला (२०) ध्रुव (७७) तथा ध्रुव प्रोतीय क्रान्ति (४०)

सूर्यसिद्धान्त वाक्यादियं तारका लुब्धका ख्यो सुनिश्चेति निश्चीयते ।
चेददित्या स्तदा याम्य गान्वा लघु स्तारका तत्समीपेऽपि निर्णीयताम् ।२६।

सूर्य सिद्धान्त के मत से इसे लुब्धकर तारा कहा जाता है । और एक छोटा तारा भी (पुनर्वसु के दक्षिण में) दीखता है । जो लुब्धक नहीं है ।

केचिदातु मृगव्याधनामा मुनिः सोमभाद् (५)
याम्य गस्तद् ध्रुऽवोङ्के षवः (५६)
याम्य वाणो रदाः ३२ स्वापमां दशकादिग् (१०)
विलिप्ताश्चतन्मण्डलस्या यतिः । २७ ।

कोई कोई आचार्य मृगव्याध नक्षत्र को मृगशिरा नक्षत्र के दक्षिण में मानते हैं । इसका ध्रुव ५६ दक्षिणशर ३२ तथा बिम्ब मान १० है ।

तस्य चेशा (५) नभस्या (६) पिमध्य स्थितास्तारक
स्तिप्र ईश्वाभका ईल्वलाः ।
एक षष्टि (६१) ध्रुवः स्थूल भस्यार्द्ध युग्
वह्निपक्षाः (२३-१/२) शरोयाम्य आसा मतः । २८ ।

यह मृगव्याध और आर्द्रा नक्षत्र के बीच तीर के आकार के तीन तारा है । इनको ईल्वल कहा जाता है । इनके बीच का योगतारा है जिसका ध्रुव (६१) तथा दक्षिण शर (२३।३०) है ।

हुतभुग् ब्रह्म हृदय योः पक्षार्थां (५२) शा ध्रुवश्च सौरोक्तः ।
प्रथमस्या ष्टौ (८) त्रिंश (३०) द्वितीय भस्यो त्तरेष्वंशाः । २९ ।

हुतभुक् नक्षत्र का सूर्य सिद्धान्त के अनुसार ध्रुव (५२) और उत्तर शर (८) है । ब्रह्महृदय का भी सूर्य सिद्धान्त के अनुसार ध्रुव (५२) तथा उत्तर शर (३०) है ।

ब्रह्महृदय पूर्वस्यां पञ्चभिरंशैः प्रजापति र्वसति
तस्योत्तर विक्षेपः कुञ्जर रामां (३८) शकोऽप्युदितः । ३० ।

ब्रह्महृदय से पूर्व ५° की दूरी पर प्रजापति नक्षत्र है । जिसका ध्रुव ५७° तथा उत्तर शर ४८° है (सूर्य सिद्धान्त के अनुसार) ।

आधिनिकैरभियुक्ते र्निश्चित्योक्तं पृथक् च संस्थानम्
हुत भुग् ब्रह्म हृदयोः प्रजापतये तत्पुन र्वच्मि । ३१ ।

आधुनिक प्रत्यक्ष दर्शी लोगों ने इन तारा का जो ध्रुव का कहा है वह मैं पुन कहता हूँ ।

हृदभुक् ध्रुव, सपादाष्टार्था (५८।१५) खा साग्नि पञ्च (५।१५)
सौम्यशरः षड् विकलास्त मानं ध्रुवः पुनर्ब्रम हृदयस्य । ३२ ।

हुतभुक् का ध्रुव ५८° १५' शर ५° १५' उत्तर तथा बिम्ब मान (६) है । ब्रह्म हृदय का ध्रुव -

अंगार्थाः (५६) सौम्य शर स्त्रिभुज (२३) लवानृपाः (१६)
स्तनुविकलाः सौमभ (५) याम्यगतो यो लुब्धक एतत् प्रजापतिम् । ३३ ।

५६° उत्तरशर २३° तथा बिम्बमान (१६) है । मृगशिरा नक्षत्र से दक्षिण के तारा को लुब्धक कहा गया था उसे अब प्रजापति कहा जाता है ।

त्वाष्ट्र (१४) स्यापां वत्सः पञ्चलवान्ते वसत्युदक् भागे ।
आप्य वसु स्तत्सौम्य स्थूलः किञ्चिततोऽगां (६) शैः । ३४ ।

१४. चित्रा तारा के उत्तर ५° की दूरी पर अपांवत्स तारा है । इसके उत्तर ६° की दूरी पर आप्य वसुतारा है, यह कुछ बड़ा दीखता है । इसका अन्य नाम आप है ।

ध्रुवोऽगस्तस्य पञ्चांक (९५) भागाः पञ्चाद्रयः (७५) शरः (५) ।
दक्षिणस्तद्ध्रुवो वामं चलांशैः संस्कृतः स्फुटः । ३५ ।

अपां वत्स और आप्य वसु-दोनों का ध्रुव चित्रा के समान है । अपां वत्स का उत्तर शर २° ५०' तथा आप्य वसु का उत्तरशर (८° ५०') है । अगस्त्य तारा का ध्रुव ९५° और दक्षिण शर ७५° । इस अगस्त्य के ध्रुव का अयनांश संस्कार (धन होने से जोड़ेगे, ऋण होने से घटायेंगे) करने पर यह स्फुट होगा ।

धृतयो (१८) विकलास्तस्य सूक्ष्ममण्डल विस्तृतिः ।
यमस्यैव द्विपक्षां (२२) शां ध्रुवो ऽगां गानि (६६) मार्गणः । ३६ ।

अगस्त्य का बिम्ब (१८") ध्रुव (२२°) शर (६६°) दक्षिण

याम्योऽष्टौ विकला बिम्बोऽगास्त्यब्द ध्रुव संस्कृतिः ।
राशित्रयमगस्त्यस्य ध्रुवः सौरोदितः पुरा । ३७ ।

तथा बिम्ब मान (८") है । सूर्य सिद्धान्त अगस्त्य तारा का ध्रुव ९०° कहा है । (जब सत्ययुग में अल्प या १२१ वर्ष बाकी था) ।

सप्त नागां शक (८७) प्रोक्त सत्सिद्धान्त शिरोमणौ
भू शराक्षिकृता (४२५१) ब्देषु कलेभास्कर धीमता । ३७ ।

कलि गताब्द (४२५१) में भास्करा चार्य ने सिद्धान्त शिरोमणि में अगस्त्य का ध्रुवांश ८७° कहा है ।

सोक्तादिति (७) ध्रुवा (९३) त्पश्चाद् भागषटकान्तरे (८७) यतः ।
दृष्टौऽसौ साम्प्रतं सार्द्धघनां (१७।३०) शान्तर इक्ष्यते । ३९ ।

(सिद्धान्त शिरोमणि में) पुनर्वसुका ध्रुव ९३° तथा अगस्त्य का उससे ६° कम अर्थात् ८७° कहा है । अभी सिद्धान्त दर्पण के समय १८६८ ई में) में यह (७) पुनर्वसु से १७° ३०' पीछे है । अर्थात् (९०°१५'-१७° ३०'- ७२° ४५') अगस्त्य ध्रुव ९५° में चलांश २२° घटाने पर भी ७३° (प्रायः समान आता है ।

युग्मस्य विश्व (१३) भागान्ते तदब्दै गौकुपर्वतैः । (७१९)
तस्य स्थानान्तरं सिद्धं सार्द्धरुद्रायनांशजम् । (११।३०) । ४० ।

अगस्त्य का ८७° ध्रुव ११° ३०' अयनाश (सिद्धान्त शिरोमणि)के समय था । अभी का मिथुन १३° (७३°) ध्रुव भास्कर के ७१९ वर्ष का परिवर्तन है । (१८६८ ई.में)

सप्तर्षि मण्डल

सप्तर्षणं ध्रुव प्राग्भिर्नोक्त सञ्चार सम्भवात्
तथाप्यतु भवालेषां व्यवस्था क्रियतेऽधुना । ४१ ।

चलन शील होने के कारण सप्तर्षि मण्डल का ध्रुव पूर्वा चार्यों ने नहीं कहा है । तथापि अपने अनुभव के आधार पर इनकी स्थिति के बारे में मैं कहता हूँ ।

पूर्वाग्रंशकटाकार, मुदक् स्थ मुडु सप्तकम् ।
सुरर्षि मण्डल प्रोक्तं व्यक्तं विश्व नमस्कृतम् । ४२ ।

उत्तर दिशा में पूर्व से पश्चिम की तरफ शगड़ (बैल गाड़ी) की तरह सप्तर्षि मण्डल बहुत स्पष्ट दीखता है । संहिता और पुराण में सप्तर्षि मण्डल को जगद् वन्द्य कहा गया है ।

तत्पूर्वोन्नत रेखाग्रे मरीचिः पश्चिमे ततः ।
वशिष्ठोऽरुन्धती युक्तस्तत्पश्चादंगिराः स्थितः । ४३ ।

सप्तर्षि मण्डल में पूर्व की तरफ जो उठी हुयी रेखा दीखती है उसके आगे में मरीचि का स्थान है । मरीचि के पीछे वशिष्ठ, अरुन्धती के साथ है । वशिष्ठ के पश्चिम अंगिरा है ।

तत्पश्चात् चतुरस्रस्य शम्भु दिश्यत्रिरस्य च ।
पुलस्त्यो दक्षिणे तस्य पश्चिमे पुलहः स्थितः । ४४ ।

इसके बाद जो चतुर्भुज है उसके ईशान कोण में अत्रि हैं । अत्रि के दक्षिण पुलस्त्य और पुलस्त्य के दक्षिण पुलह स्थित है ।

क्रतुस्तदुत्तर स्थान स्तत्रोक्तौ पुलहः क्रतुः
ध्रुव सूत्रेण यल्लग्नौ तदृक्षस्थाम हर्षया । ४५ ।

पुलह के उत्तर में क्रतु है पुलह और क्रतु को मिलाने वाले ध्रुव प्रोत वृत्त क्रान्ति नक्षत्र को जिस स्थान पर काटेगा उसी नक्षत्र (या राशि) में सप्तर्षि मण्डल को माना जायेगा ।

कथ्यते साम्प्रतं सिंहे भूभुजांशा (२१) न्त गौ हितौ ।
कालांशैर्विश्वकैः (१३) प्राच्यां पुलस्त्ये वर्त ते ततः । ४६ ।

अभी पुलह और क्रतु सिंह राशि के २१ अंश पर या पूर्व फाल्गुनी के तृतीय पाद में है । पुलह और क्रतु से १३ कालांश पूर्व में पुलस्त्य हैं ।

ततस्तैःसायकै (५) रत्रि रंगिरा नवभि (९) स्ततः ।
ततोऽष्टाभि (८) र्वशिष्ठोऽस्मान् मरीचिर्वततेऽ ष्टभिः (८) । ४७ ।

पुलह से ५ कालाश पूर्व में अत्रि, अत्रि से ९ कालांश पूर्व अंगिरा, अंगिरा, से ८ कालांश पूर्व वशिष्ठ तथा वशिष्ठ से ८ कालांश पूर्व मरीचि है ।

अरुन्धतो स्थिता प्राच्यां स्वामिनोऽद्रि (७) कलान्तरे ।
या वशिष्ठाति ने दिष्ठा यन्त्र दृष्टा शुरेततः । ४८ ।

अरुन्धती वशिष्ठ से ७ कालान्तर पूर्व, वशिष्ठ के निकट बहुत छोटा तारा जो आंख से कठिनाई से दीखता है या यन्त्र द्वारा दीखता है ।

स नेष्टा सदसद् दृष्टि फलोक्तः प्रथमेष्यते ।
एकास्या मानविकलाः त्रिस्रो ऽत्रेरष्ट चान्यतः । ४९ ।

वह शुभ अशुभ फल दायक नहीं है । पहले जो कहा गया है । (वशिष्ठ से ७ कला पूर्व) वही अरुन्धती फल दायक है । इसका बिम्ब मान १ विकला है । अत्रि का बिम्ब ३ विकला और बाकी सभी तारों का (सप्तर्षि मण्डल में) बिम्ब मान ८ विकला है ।

परस्परस्य चैतेषां सदातुल्यान्तर स्थितेः ।
गृह्न्यन्ता मृक्ष यो गेषुकालां शादिक् (१०) पलात्मकाः । ५० ।

इन तारा गणों की परस्पर दूरी समान है अतः इनका कालाश १० पल है ।

तेऽष्टादशशताभ्यस्ता व्यक्षलग्नासुभिर्हृताः ।
प्राग् ध्रुवाढ्या भवन्तीष्ट मुनिक्रान्त गृहांशकाः । ५१ ।

इस १० पल को १८०० से गुणा कर निरक्ष उदय (लग्न मान) असु से भाग देने पर जो लब्धि होगी उसे पुलह और क्रतु के पूर्वोक्त ध्रुव (सिंह २१°) में जोड़ने से ऋषि नक्षत्र का राशि आदि ध्रुव होगा ।

सप्तर्षि मण्डला याम स्त्र्यब्धि (४३) कालांश कोऽपि यत्
सायनांश तुलाकन्या स्थित्यांगोऽब्ध्यंश (४६) इक्ष्यते । ५२ ।

सप्तर्षि मण्डल की पूर्व से पश्चिम दिशा में लम्बाई ४३ कालांश होने पर भी सायन कन्या और तुला राशि में उसकी स्थिति के कारण यह लम्बाई (४६) अंश दीखती है ।

क्रान्त्यन्तात्सौम्य बाणांशा लिख्यन्तेऽङ्गशराः (५६) क्रतोः ।
पुलहस्यैक पञ्चाशत् (५१) पुलस्त्यस्याग्नि सायकाः (५३) । ५३ ।

क्रतु का क्रान्तिवृत्त से ध्रुव प्रोत वृत्त पर उत्तर शर (५६°) अंश है । पुलह का (५१°) तथा पुलस्त्य का (५३°) है ।

अंक पत्रिण (५९) एवात्रेः षष्ठि (६०) रंगिरसोमता ।
द्वाषष्ठ्यंशा (६२) वशिष्ठस्य मरीचेः षष्ठि (६०) रीक्षिता । ५४ ।

अत्रि का (५९°), अंगिरा का (६०°), वशिष्ठ का (६२°) और मरीचि का (६०°) उत्तर शर दीखता है ।

सर्वदायं शरः क्रान्ते यदि तुल्यो भवेत्तदा
युग्मान्तर वशिष्ठः स्यात् चतुर्भागान्तरो ध्रुवात् । ५५ ।

यदि क्रान्ति से वशिष्ठ का शर सर्वदा समान रहे तो यह युग्मान्त (मिथुन अंत) में रहने के कारण ध्रुव से ४° पर रहेगा । वशिष्ठ का उत्तर या सौम्य शर ६२ युग्मान्त की क्रान्ति २४° कुल ८६°, अतः ध्रुव ९०° से अन्तर ५° हुआ ।)

स्फुट क्रान्ते र्महर्षीणां तुल्यता यदि सर्वदा
तदा राश्यन्तर प्राप्तौ विक्षेपो भिन्नतां व्रजेत् । ५६ ।

सप्तर्षियों में प्रत्येक की स्फुट क्रान्ति सदा समान रहने पर भी, वे अन्य राशि में जाने पर उनका शर बदलता है ।

यमागस्त्य स्फुट क्रान्ते र्यथा साम्यं सदेक्ष्यते ।
दस्रादीनाञ्च वैषम्यं तथैषां नेक्षितोऽपमः । ५७ ।

यम और अगस्त्य की स्फुट क्रान्ति सदा समान होती है । अश्विनी आदि नक्षत्रों की क्रान्ति सदा बदलती है । सप्तर्षि मण्डल की क्रान्ति कभी सम कभी असमान होती है ।

प्रत्यब्द प्राग् गतिः प्रोक्ता पुराणै रष्ट लिप्तिका
तेषां नो निश्चिता पूर्वा नुभावा दर्शनान्मया । ५८ ।

पूर्व आचार्यों से सप्तर्षिमण्डल की पश्चिम से पूर्व गति वर्ष में ८ कैला मानी है । पर मैने (लेखक) यह गति नहीं देखी है । अतः इसे नहीं मानता हूँ ।

तथायनांश संस्कारो वामस्तेषां यदीरितः
तत्सर्वं कविभिर्भाव्यै ज्ञेय मत्कालिक स्थिते। ५९।

यम, अगस्त्य और सप्तर्षि मण्डल का अयन संस्कार ध्रुव से विपरीत दिशा में करने के लिए कहा गया है। वह मेरे समय के लिए (१८६८ ई) के लिए हैं।

लिप्ता तिथ्यंश (१५) मानः (४) खे यत्र राजत्युदग् ध्रुवः
न तन्मध्य ध्रुव स्थानं सूत्रा पाता ह्र मिष्यते। ६०।

ध्रुव तारा (उत्तर) का बिम्ब मान लिप्ता का १/१५ भाग (या ४ विकला) है। उत्तर ध्रुव तारा का स्थान वास्तविक ध्रुव स्थान नहीं है। अतः यह विषुववृत्त का केन्द्र नहीं है और ध्रुव और वृत्त इससे नहीं खींचा जाता है।

कृताष्ट (८४) लिप्तान्तरितो निजकेन्द्राद् यतो ध्रुवः।
मेषादिस्तोभ्र मत्यस्मान् पौष्णभे (२७) गगनार्द्धगे। ६१।

दृश्य ध्रुव तारा नाड़ी वृत्त के पृष्ठ केन्द्र (गणितीय ध्रुव) से लिप्ता (१° २५') की दूरी पर है। अतः रेवती नक्षत्र याम्योत्तर वृत्त पर आने से ध्रुवतारा मेषादि में रहकर याम्योत्तर वृत्त पर ८४ कला नत दीखता है।

उन्नतो दृश्यते विष्णो (२२) दित्यां (७) चाक्ष समोच्छितः
त्वाष्ट्रे (१४) नतस्ततो मध्य स्थान मस्या नुमीयताम्। ६२।

श्रवण पुनर्वसु याम्योत्तर वृत्त पर रहने के समय, यह ध्रुत नक्षत्र दिग्वलय से अपने अक्षांश के समान उन्नत दीखता है। पुनः चित्रा नक्षत्र याम्योत्तर वृत्त पर आने से ध्रुव अपने केन्द्र से ८४ कला नत दीखता है।

एवं याम्य ध्रुवो मेधि मूलयोजित गौरिव
तुल्यादिस्थो भ्रमन्नभ्रे दृश्यते सुरभागगैः। ६३।

इसी प्रकार दक्षिण ध्रुव भी दक्षिण गोलार्द्ध के लोगों को वास्तविक ध्रुव केन्द्र के चारों तरफ मेढ़ी के बैल की तरह घूमता दीखता है।

अंशास्तु त्रिविधा ज्ञेया, मानांशा, काल जांशकाः।
क्षेत्रांशाश्चेति लग्नानां भेदातौ क्षेत्र काल जौ।

अंश तीन प्रकार के है-मानांश, कालांश और क्षेत्रांश। राशियों का उदय मान भिन्न भिन्न हने के कारण क्षेत्रांश और कालांश -

अंशौ विभिन्नौ भवतः चक्रान्ते संख्यया समौ।
मान कालांशयो साम्यं विषुवद्दत एव तत्। ६५।

भिन्न भिन्न होते हैं। पर चक्र समाप्त होने पर इन दोनों का मान ३६०° होता है। मानांश और कालांश का मान विषुव वृत्त में समान होता है पर

महदन्तर मे वस्यात्तदुदग् याम्य भागयोः
प्राक् पश्चिमान्तरस्यायं क्रमोना वागुदं मिते । ६६ ।

विषुव से उत्तर का दक्षिण जाने पर कालांश और मानांश में बहुत अन्तर होगा । सप्तर्षि मण्डल के तारों का क्रम पूर्व पश्चिम दिशा स्थिति (देशान्तर के अनुसार) लिया जाता है (सबसे पश्चिम का पहला तारा आदि) यह उत्तर दक्षिण दिशा (अक्षांश) के क्रम से नहीं लिया जाता ।

यथात्र पुलह क्रत्वो सौम्य याम्यान्तरं शराः (५)
भागा एव समादृष्टा मरीच्यन्तं क्रतो पुनः । ६७ ।

जिस प्रकार पुलह और क्रतु का शरान्तर (ध्रुव प्रोतीय वृत्तान्तर) ५° मात्र है, यह सदा समान रहता है । उसी प्रकार क्रतु और मारीचि का पूर्व-पश्चिम अन्तर

प्राक् पश्चादन्तरेदृष्टा दृष्टा मानांश स्तत्त्व (२५) संख्यकाः ।
सार्द्धा (०।३०) तत्त्व शरां शेभ्य स्तयोः साध्यौ स्फुटा पमौ । ६८ ।

मानांश २५° तथा शरांश २५° ३०' है । इससे पूर्व विधि से स्फुट क्रान्ति का साधन किया जा सकता है ।

दिनव्यास दले प्राग्वत् तद् योगार्द्ध हृति र्भवेत् ।
मानां शास्त्रि ज्ययाभ्यस्ता हृत्याप्ताः क्षेत्रजांशकाः । ६९ ।

स्फुट क्रान्ति द्वारा द्युज्या का साधन होगा । दोनों द्युज्या (क्रान्ति वृत्तीय और विषुव वृत्तीय) का योगार्द्ध हार कहलाता है । मानांश को त्रिज्या से गुणा कर हार से भाग देने से प्राप्त फल क्षेत्रांश (क्रान्ति वृत्तीय अंश)

स्युस्ते लग्नाः सुगणिताः ख ख नाग मही (१८००) हृताः ।
कालांशाः स्युस्ततो मान भाग व्युत्क्रम कर्मतः । ७० ।

क्षेत्रांश को राशि से उदयासु से गुणा कर (१८००) से भाग देने पर फल का कालांश होता है । इस प्रकार मरीचि और क्रतु का कालाश आयेगा विपरीत क्रिया से इस कालाश से मानांश निकलेगा ।

एवं ध्रुव भ्रान्ति मार्ग खांगाग्नि (३६०) क्षेत्र भाग कः ।
अप्यष्टाम्बुधि लिप्तास्तु वसु (८।४८) मानांश सम्मिताः । ७१ ।

ध्रुव क्षेत्र के भ्रमण मार्ग का वृत्त ३६०° अंश होने से उसका मानांश (३६०x८४) /३४३८= ८'४८" मात्र है ।

क्रान्ति भेदे महर्षि णा माकृतेः समता यदि
स्यात्तदान्तर कालांशाः क्रान्त्यल्पत्व महत्वयोः । ७२ ।

क्रान्ति बदलने पर सप्तर्षियों का आकार यदि स्थिर रहता है (क्रान्ति के साथ नहीं बदलता) तो क्रान्ति कम या अधिक होने पर

क्रमादल्पाश्च भूयासो भवेयु र्द्युगुण क्रमात्
कालांशशर मेतेषां क्रान्ति भेदे यदि स्थिरम् । ७३ ।

उदयान्तर भी कम या अधिक होता है (क्रमानुसार द्युज्या अधिक या कम होने के कारण) ।

यदि क्रान्ति भेद होने पर सप्तर्षि तारों का कालान्तर स्थिर रहता है,

तद् कृतेर्हानि वृद्धि स्या तामृक्षान्तरांश वत् ।
स्थिरा क्रान्ति र्यदैषां स्यात् कालांश, स्युस्तदास्थिराः । ७४ ।

तो क्रान्ति कम या अधिक होने पर तारा का पूर्व पश्चिम अन्तर कम या अधिक अक्षांश अन्तर के समान होता है । यदि ताराओं की कान्ति स्थिर हो तो उनका कालांश भी स्थिर रहेगा ।

क्षेत्रांशानां स्थिरत्वे स्यात् काल मानाल्प भूरिता
क्षेत्र मानांशयोः सिद्धिः काल भागां शयोरिव । ७५ ।

क्षेत्रांश स्थिर रहने पर कालांश के साथ मानांश कम या अधिक होगा । कालांश और भागांश के समान ही कालांश और मानांश का परस्पर सम्बन्ध निकलेगा ।

नक्षत्राणां ध्रुवांश ये ते कृता यनदृक् क्रिया
भदिता एव विज्ञेया विक्षेपाश्च तदा स्फुटाः । ७६ ।

यहां नक्षत्रों का जो ध्रुवांश दिया गया है उसमें आयन दृक् कर्म संस्कार किया हुआ है । इन का शर भी स्फुट अर्थात् ध्रुव प्रोत वृत्तीय है ।

ग्रहाणा मस्फुटो बाणः कदम्बा भिमुखस्थितः ।
दृक् कर्मणा ध्रुव मुखः स्फुटः स्यात्तारकेषु वत् । ७७ ।

ग्रहों का अस्फुट शर कदम्ब प्रोत वृत्त में है । इसका दृक् कर्म संस्कार करने से वह ध्रुव मुख अर्थात् ध्रुव प्रोत वृत्तीय होगा । जिस प्रकार तारों का स्फुट शर होता है ।

प्राक् पश्चात् चलनाद् भानां क्रान्त्यन्तात् शर साम्यतः
क्रान्ति भेद स्ततो रात्रि दिनमानं पृथक् भवेत् । ७८ ।

क्रान्ति वृत्त से नक्षत्रों का कदम्ब प्रोतीय शर समान होने पर भी उनके पूर्व पश्चिम तल के कारण (ध्रुव प्रोतीय) क्रान्ति भिन्न होगी । अतः उनके दिन और रात्रि का मान भिन्न होगा ।

यस्य सौम्या स्फुट क्रान्ति लंम्बांशेभ्योऽधिका स्वतः ।
तद् भंसदोदितं यस्य याम्यास्यात् तन्नदृष्यते । ७९ ।

जिस नक्षत्र की स्फुट क्रान्ति अपने स्थान से लम्बांश से अधिक हो वह नक्षत्र

वहां सदा उदित रहेगा (वहां उक्त नक्षत्र सदा दिखायी देगा) उस नक्षत्र की दक्षिण स्फुट क्रान्ति लम्बांश से अधिक होने पर वह नक्षत्र उस स्थान पर सदा अस्त रहेगा अर्थात् कभी दिखाई नहीं देगा ।

ग्रहार्क्षान्तरजा लिप्ता ग्रह भुक्त्या विभाजिता ।
दिनादिभिः फलैर्योगो ग्रहे हीनेऽधिके ध्रुवात् । ८० ।

जिस ग्रह का किसी नक्षत्र के साथ योग जानना हो उस ग्रह का आयन दृक् कर्म संस्कार कर उसका और नक्षत्र के ध्रुव का अन्तर निकालते हैं । ग्रह नक्षत्र की अन्तर कला को ग्रह की स्फुट गति कला से भाग देकर लब्धि दिनादि होगी । ग्रह ध्रुव, (नक्षत्र) ध्रुव से कम होने पर उतने दिनों के बाद योग होगा, ध्रुव से अधिक होने पर

एष्यो गतो वक्रगेतु गतैष्यत्व विपर्ययात् ।
असकृत् कर्मणा तुल्य कले स्यातां ग्रहो डुनी । ८१ ।

उतने समय (दिन आदि) पहले योग हो चुका है । ग्रह वक्री होने पर ग्रह नक्षत्र योग का क्रम उल्टा होगा (ग्रह ध्रुव से कम रहने पर उतने समय पहले योग हुआ, अधिक रहने पर बाद में योग होगा । योग समय का स्फुट ग्रह और ध्रुव के अन्तर के पुनः अन्तर काल निकाल कर फिर योग काल निकालेंगे । बार बार ऐसा करने से ग्रह और नक्षत्र की कला समान होती है ।

ग्रहस्यायन दृक् कर्म कृत्वाऽथ ग्रहतारयोः ।
कार्ये दिन निशा माने स्फुट क्रान्ति चर क्रमात् । ८२ ।

इसके बाद ग्रह और नक्षत्र की अपनी अपनी स्फुट क्रान्ति और चर निकाल कर दिन और रात्रि मान का साधन होगा ।

उदयेऽस्त समये लग्न मस्त लग्नं प्रकल्प्य च ।
तत्समेऽर्के तदुदय मस्तं ज्ञात्वान्तरां शकैः । ८३ ।

इससे ग्रह और तारा दोनों का उदय के समय उदय लग्न तथा अस्त के समय अस्त लग्न होगा । पहले कहे गये अक्षदृक् कर्म विधि से स्फुट रवि का अंश उतना ही होने पर उदय और अस्त का समय होगा ।

कार्यात्समता प्राग् वद् याम्य सौम्यान्तरन्तयोः ।
बिम्ब भेदश्च निर्णेतुं शक्यते ग्रह युद्धवत् । ८४ ।

इसके बाद नक्षत्र उदयास्त प्रकरण की विधि से उदय और अस्त स्फुट होगा । उसके बाद भी अन्तर रहने पर पहले की तरह कला समान करेंगे । इसके बाद ग्रह योग विधि से ग्रह और नक्षत्र का उत्तर दक्षिण अन्तर (ध्रुव प्रोतीय शरान्तर) तथा विम्ब अन्तर का निर्णय करेंगे ।

ब्रह्मे ज्यानल चित्र पित्र दितयो मित्रेन्द्र शक्राग्नयः
पौष्णाम्भः पति वैश्वदेव सलिला (४।८।३।१४।१०।७।१७
।१८।१६।२७।२४।२१।२०। नीषुक्रमात् खेचरेः । भिद्यन्ते
(१।२।५।६।९।११।१२।१३।१५।१९।०२२।२३।२५।२६)
तत्र दितिभं (७) सर्वैः सदा भिद्यते ।
कादाचित्कतया जलान्त्यदहनाः (२०।२७।३)
शिष्टानि (४।८।१०।१४।१६।१७।१८।२१।२४) तैः प्रायशः । ८५ ।

रोहिणी, पुष्य, कृत्तिका, चित्रा, मघा, पुनर्वसु, अनुराधा, ज्येष्ठा विशाखा, रेवती, शतभिषा, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ इन १३ नक्षत्रों का ग्रह भेद करते हैं । अश्विनी भरणी, मृगशिरा, आर्द्रा, अश्लेषा, पूर्वा फाल्गुनी , हस्त, स्वाती, मूल, अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, पूर्व भाद्रपद और उत्तर भाद्रपद इन १५ नक्षत्रों का भेद ग्रह नहीं कर पाते हैं । भेद्य नक्षत्रों में पुनर्वसु का सभी ग्रह भेद करते हैं । पूर्वाषाढ़, रेवती और कृत्तिका का कभी-कभी भेद होता है । अन्य नक्षत्रों का क्रान्ति के अनुसार प्रायः भेद होता है ।

यस्यस्याद् वृष राशि शक्र (१४) लवगस्या वाक् शरोऽ शद्वयात् ।
सत्र्यंशा (२।२०) दधिकोभिनखि शकटं स्वायंम्भुवंसग्रहः ।
अन्यर्क्षाकृतिभेद भाग कलना यन्त्रेण कार्याबुधैः
याम्यो दिग्गमनर्क्ष भेदज जफलं ज्ञेयं श्रुतान्मैहिरात् । ८६ ।

वृष राशि के १४ अंश में जिस ग्रह की दक्षिण क्रान्ति २° २०' से अधिक हो वही रोहिणी (शकट आकार) का भेद कर सकता है ।

अन्य नक्षत्रों का ग्रह द्वारा भेदन होने पर, ज्योतितिर्विद उनकी स्थिति यन्त्रवेध द्वारा स्थिर करते हैं ।

नक्षत्रों के आकार तथा उनके उत्तर या दक्षिण ग्रहों की गति का फल वाराहमिहरि की वृहत्संहिता में देखा जा सकता है ।

प्राक् सिद्धानां ज्योतिषां स्थानमित्थं प्रोक्तं व्यक्तं यानि भानीतराणि ।
खे लक्ष्यन्ते तत्तदारुयापि संरुया वद्भिः रुयाति माप्तान पूर्वैः । ८७ ।

प्राचीन काल से विरुयात कई स्थानों की स्थिति इस प्रकार कही गयी । इसके अतिरिक्त और कितने नक्षत्र हैं उनकी संरुया भी ज्ञात नहीं है । अश्विनी आदि के अतिरिक्त अन्य नक्षत्रों के बारे में यहां नहीं कहा गया है ।

अपव्योम्निच्छाया पथ इतिह वैश्वानर पथो-
ऽभिजिन्मार्ग सूक्ष्मैर्घन तर भचक्रै र्निचलितः ।
प्रकाशात्सा वृत्ता कृति रनुमितो भ्रामति च य-
स्तदीयं संस्थानं कियदिह वदामि स्फुट तया । ८८ ।

आकाश में अत्यन्त सूक्ष्म तारा गणों का सघन और वृत्ताकार मार्ग गतिशील

दीखता है। इसको छाया पथ, वैश्वानर पथ या अभिजित् मार्ग कहा जाता है। इसकी स्थिति के सम्बन्ध में कुछ कहने की इच्छा है।

क्रान्ति वृत्त मयनान्तयो स्पृशन्नूत्तरायणज गोल सन्धितः
उत्तरे खरस (६०) भाग दूर खस्त्वन्य गोल युगसंधि दक्षिणे। ८९।

यह छायापथ वृत्ताकार है। क्रान्ति वृत्त को यह सायन कर्क और मकर आदि में स्पर्श कहता है। पुनः सायन मेष से ६०° अंश उत्तर तथा सायन तुला बिन्दु से दक्षिण दिशा में-

वह्नि तर्क (६३) लवदूर गोऽदिते (७)
र्दक्षिणांश भिदवाग् दिशंगतः।
मूल (१९) तोय (२०) भिदसौ तथा
भिजिद् वैष्णवा (२२) न्तर उदग् दिशंगतः। ९०।

६३° तक इसकी सीमा है। पुनर्वसु, नक्षत्र के दक्षिण भाग को भेदकर यह वृत्त दक्षिण दिशा में जाकर फिर मूल और पूर्वाषाढ़ नक्षत्र दोनों को भेद कर अभिजित् तथा श्रवण के बीच तक जाता है। वहां से उत्तर की तरफ जाता है।

याम्याय नान्त स्थलतो द्विफाल भाक्
ख नाग (८०) भागान्त मुदग् दिशिस्थितः
गोले विलिख्या कृति मस्य पश्यतां
यथा सुबोधन तथा भवेद्दिवि। ९१।

कर्क के आदि विन्दु से यह दो भागों में उत्तर की तरफ ८०° तक जाता है। छाया को गोल के ऊपर लिख कर आसानी से दिखाया जा सकता है, आकाश में दिखाना सम्भव नहीं है (क्यों कि आधा ही दीखता है)।

सम्यग् यन्त्र मिलद् विलोचन जनाः पश्यन्ति तारामयं
तन्मार्गं गुरुभं (८) च भास्वती शिखा नीलाभ रेखांकिताः
चन्द्रे तोया गिरिद्रुमान् बुध सितौ शीतांशुवत् खण्डितौ
शौरे र्बाह्य गतं प्रकाश वलयं सूक्ष्म ग्रहो पग्रहान्। ९२।

(दूर वीक्षण) यन्त्र की सहायता से छाया पथ के तारा अच्छी प्रकार (अलग अलग तारों को) देख सकते हैं। वे पुष्य नक्षत्र (वृहस्पति ?) सूर्य बिम्ब के काला दाग, चन्द्रमण्डल में पानी, पर्वत और वृक्ष आदि भी देखते हैं। वह बुध और शुक्र को भी चन्द्रमा के समान खण्डित होना देखते हैं। शनि के चारों तरफ प्रकाश वलय तथा कई नये ग्रहों और उपग्रहों को भी इस यन्त्र से देखा जा सकता है।

पटा पटू रुचि कृत प्रकट हाटक श्री र्जगत्
कटाह घटना स्फुटोत्कट कटाक्ष पात क्रमः।

वरद्रुम तटोद् भट द्युति रनिष्ठ कूटाट वो
फटाधर फटाच्छटनटान पाटवी पाटयेत् । ९३ ।

जो अपने पीताम्बर से शुद्ध स्वर्ण आभूषण की शोभा को लज्जित करते हैं, जो ब्रह्माण्ड रुपी कड़ाही में रचना तथा घटनाओं पर तीक्ष्ण दृष्टि रखे हुए हैं । जो कालिय नाग के फण पर नृत्य करने में कुशल हैं तथा जो कल्प वृक्ष के निकट बहुत प्रकाशित हैं वहीं महाप्रभु जगन्नाथ हमारे अनिष्ट समूह रूपी वन को नष्ट करें ।

इत्युत्कलो ज्ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
श्री चन्द्र शेखर कृतौ गणितेऽक्षि सिद्धे ।
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
यातोऽत्र भग्रह युगर्क (१२) मितः प्रकाशः । ९४ ।

इस प्रकार उड़ीसा के विख्यात राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्रशेखर द्वारा गणित और दृष्टि में समानता तथा छात्रों की शिक्षा के लिए लिखे सिद्धान्त दर्पण में नक्षत्र और ग्रह की युति सम्बन्धी द्वादश अध्याय समाप्त हुआ ।

त्रयोदशः प्रकाशः

ग्रहर्क्षोदयास्तसमय वर्णनम् ।

अथ ग्रहाणामृक्षाणां उदयास्त समयो ब्रुवे
स्थौलादिक्तौस्व केन्द्रांशै रत्रसूक्ष्म तया पुनः । १ ।

अब ग्रह और ताराओं के उदय और अस्त का वर्णन करता हूँ। स्फुटाधिकार में अपने अपने केन्द्रांश के अन्तर से ग्रह के उदय और अस्त के बारे में स्थूल रूप से कहा गया है ।

उदयास्त मयो द्वैधा नित्यौ नैमित्ति का वपि
प्रवहारूय मरुद् प्रान्त ज्योति क्रान्ति श्चवेश्मनाम् । २ ।

नित्य (प्रतिदिन) और नैमित्तिक (मुहूर्त सम्बन्धी या दृश्य) भाव से उदय और अस्त के दो प्रकार है । प्रथम प्रकार है जिसमें प्रवह वायु से घुमाये हुए (पृथ्वी की दैनिक गति के कारण) ग्रह और नक्षत्र-

उदयास्तमयो नित्यै भवतः प्राक् पराश्रयोः
वक्षे नैमित्तिकौ सूर्य सन्निकर्ष भवाविमौ । ३ ।

प्रतिदिन पूर्व में उदय और पश्चिम में अस्त होते हैं । इसे नित्य या प्रात्यहिक कहा जाता है । सूर्य के निकट वर्ती होने के कारण ग्रह का अस्त (दिन के प्रकाश में नहीं दीखते हैं ।) या दूर होने के कारण उदय को ग्रह नक्षत्रों का नैमित्तिक उदयास्त कहते हैं ।

सूर्य सिद्धान्ते-सूर्यादभ्यधिका, पश्चादस्तं जीवकुजार्कजाः
ऊनाः प्रागुदयं यान्ति ज्ञशुक्रौ वक्रिणौ तथा । इति । ४ ।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार - मंगल, गुरु और शनि सूर्य से अधिक (राश्यादि) होने पर पश्चिम में अस्त होते हैं । रवि से कम होने पर ये पूर्व में उदय होते हैं । वक्री बुध और शुक्र भी रवि से अधिक होने पर पश्चिम में अस्त और कम होने पर पूर्व में उदय होते हैं ।

अत्राधिकोनतो ज्ञेया निकटे प्राक् पर स्थितेः
अधिको मेष गस्तस्मादू नोमीन गतो मतः । ५ ।

यहां अधिक-कम का अर्थ सिर्फ राशि से नहीं है । रवि के निकट यदि ग्रह आगे हो तो उसे अधिक, पीछे हो तो कम कहलाता है । उदहरणतः मीन ग्रह से मेष का रवि अधिक गिना जायेगा । क्योंकि मीन के तुरन्त बाद मेष राशि है । संख्या की दृष्टि से मीन सबसे अधिक है लेकिन मेष के निकट नहीं है, पूरे चक्र के अन्त में आयेगा ।

सूर्य सिद्धान्ते-ऊना विवस्वतः प्राच्य मस्तं चन्द्रज्ञ भार्गवाः
व्रजन्त्य भ्यधिकाः पश्चायुदयं शीघ्र यायिनः । ६ ।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार- चन्द्र बुध और शुक्र सूर्य कम रहने पर पूर्व में अस्त होते हैं । रवि से अधिक रहने पर ये पश्चिम में उदय होते हैं । बुध और शुक्र रवि से अधिक गति होने के कारण ऐसा होता है ।

सूर्यास्त कालिकौ पश्चात् प्राच्य मुदय कालिकौ
दिवाकर ग्रहौ कुर्या दृक् कर्मार्थ ग्रहस्य तु । इति । ७ ।

उदय अस्त के लिए दृक् कर्म- प्रथम स्थूल केन्द्रांश निकाल कर उदय और अस्त का आसन्न दिन ज्ञान करना होगा । इस दिन पश्चिम दिशा का उदय और अस्त जानने के लिये सूर्य और ग्रह को सूर्यास्त कालिक करना होगा । पूर्व में उदय और अस्त ठीक प्रकार निकालने के लिए ग्रह और सूर्य को उदय कालिक करना होगा । इसके बाद दोनों का दृक् कर्म किया जायेग ।

कृत्वा यनज माक्षन्तु वक्ष्ये विक्षेप लिप्तिका ।
अक्ष भाघ्ना क्षिभू (१२) भक्ताः ख खाष्टविधु (१८००) ताड़िताः । ८ ।

पहले आयन और तब आक्षदृक् कर्म किया जाता है । यहां अक्ष दृक् कर्म की विधि कही जाती है । ग्रह के स्फुट शर कला को पलभार से गुणा कर १२ से भाग दें ।फल को १८०० से गुणा कर-

तत्कालोत्थं विलग्नासु भक्ता धनमृणं खगे ।
प्राक्स्थेऽर्के याम्य सौम्यात्थ शरयोर्व्यय मस्तगे । ९ ।

उस समय के लग्न असु से भाग देने पर फल कला आदि होगा । इस फल कला को सूर्य पूर्व क्षितिज में रहने पर दक्षिण शर ग्रह में जोड़ा जायेगा । तथा उत्तर शर घटाया जायेगा । सूर्य अस्त होते समय इसके विपरीत होगा ।

सूर्य सिद्धान्ते-तथोर्लग्नान्तर प्राणाः कालांशा षष्ठिभाजिताः
प्रतीच्यं षड्भयुतयो स्तद्वल्लग्नान्तरासवः । इति । १० ।

आक्ष कर्म संस्कृत ग्रह और रवि के अन्तर के असु को (जिस प्रकार लग्न की उदय असु निकाला जाता है) ६० से भाग देकर कालांश निकाला जाता है । पश्चिम में उदय और अस्त होने के लिए आक्ष ग्रह में ६ राशि जोड़ कर उससे ६ राशि युक्त रवि के अन्तर का लग्नासु, निकाला जाता है । इससे ग्रह का संस्कार कर पुनः कालांश निकालते हैं ।

सूक्ष्मेन्दोः स्फुट विक्षेपः स्पष्टावनति संस्कृतः
प्राह्यस्तल्लम्बम्न कलाः प्राक् प्रत्यग् युतवर्जिताः । ११ ।

सूक्ष्म स्फुट चन्द्र के स्फुट शर में सूर्य ग्रहण की विधि से स्फुट नति संस्कार होता है । उसकी लम्बन कला को पूर्व कपाल में अस्त देखने के लिए सूक्ष्म चन्द्र

में जोड़ते हैं तथा पश्चिमी कपाल में देखने के लिए घटाते हैं ।

सूर्यादन्त रितो दृश्यो रुद्र (११) कालांशतोऽधिकः ।
न्यूनस्ततो न दृशेत शीतराशि र्भुवि स्थितैः । १२ ।

इस प्रकार लम्बन संस्कृत स्फुट चन्द्र जब सूर्य से ११ कालांश दूर रहता है । तब वह भू पृष्ठ पर दिखायी देता है । उसकी सूर्य से दूरी ११ कालांश से कम होने पर चन्द्रमा दिखायी नहीं देता ।

भानां विक्षेप बाहुल्यात् प्राग् वद् विक्षेपत स्फुटा
क्रान्ति साध्या ततस्तेषां दिन माना सव स्तथा । १३ ।

नक्षत्रों का शर बहुत होता है । अतः उनके शर से स्फुट क्रान्ति निकाली जाती है । इस स्फुट क्रान्ति का चर निकाल कर उनका दिनमान असु निकाला जायेगा ।

नित्योदयास्त समयौ लग्नौ तत्काल सम्भवौः
तत्सूर्यान्तर जा सुभ्यः कालांशै र्मील नोद् गमौ । १४ ।

इससे दैनिक उदयास्त काल और तात्कालिक लग्न मध्य ज्ञात होगा । तत्कालिक लग्न और तत्कालिक सूर्य के अन्तर असु को ६० से भाग देने पर इष्ट कालांश होगा ।

पश्चादस्त मयं प्राच्य मुदयं यान्ति सर्वदा
भानि प्राग् गति शून्यत्वात् सूर्याजीव कुजार्किवत् । १५ ।

इष्ट कालांश और पहले कहे गये अपने अपने कालांश के अनुसार केवल रवि गति द्वारा ही नक्षत्रों का उदय अस्त ज्ञात होगा । नक्षत्रों की पूर्व गति नहीं है अतः वे मंगल, गुरु और शनि की तरह सूर्य से कालांश के बराबर दूर रह कर पूर्व में उदय और पश्चम में अस्त होते हैं ।

पश्चादस्त मयात् पूर्वे येषां प्रागुदयो भवेत् ।
उदयास्त मयौ तेषां नेष्टो प्रत्यह मीक्षणात् । १६ ।

पश्चिम में अस्त होने के पहले जो नक्षत्र पूर्व में उदय होते हैं उनका उदयास्त साधन करनें की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि उनकी यह दैनिक अवस्था है, उसका रवि की निकटता से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

यद् यन्मान विलिप्तानां भानामस्तोदयां शकाः ।
ये ये कालात्मकास्तेऽत्र की र्त्यन्ते दृक् समा क्रमात् । १७ ।

नक्षत्रों का बिम्ब-मान जितना कला में होगा उसके अनुसार उदय और अस्त का काल अंश में कहा जाता है जो कि स्फुट (वास्तव में दीखता है) मान है ।

या या बिम्ब विलिप्तानां संख्यापद् यादि मार्द्धगा
तत्तदस्तोदयांशानां संख्यान्त्यार्द्धेषु गृह्यताम् । १८ ।

बिम्ब विलिप्ता की जो जो संख्या, पद या आधा है उसके निकट की संख्या को कालांश के रूप में समझना चाहिये ।

रूपं (१) सपादं (१/१५) सार्द्धञ्च (१/३०)
सत्रिपादं (१/४५) विलोचने (२) सिद्धास्त्रिपक्षा
(२३) दृक् पक्षाः (२२) क्षितिपक्षाः (२१)
ख पक्ष काः (२०) । १९ ।

बिम्ब मान	कालांश मान	
		१''/३०-२२
१''/०	२४	१''/४५-२१
१''/१५	२३	२''-२०

सार्द्ध पक्षौ (२/३०) गुणा (३) वेदा (४) विशिखा (५)
ऋतवो (६) ऽद्विप (७) अंकैकः (१९) धृतयो (१८)
ऽत्यष्टि (१७) र्घन (१७) भूपाः (१६) नृपा (१६) स्तथा । २० ।

२''/३०-१९,। ३''१८/४''-१७/ ५''-१७/६''-१६,/७''-१६

अष्टा (८) वंका (९) दिशो (१०) रुद्रा (११), विवस्वन्तो
(१२) गुणेन्दवः (१३) तिथय (१५) स्तिथयो (१५)ऽर्थक्ष्माः
(१५) शक्राः (१४) शक्राः (१४) कृतेन्दवः (१४) । २१ ।

८''-१५/९-१५।१०''-१५।'' ११''-१४। १२''-१४''।१३'-१४

मनव (१४) स्तिथयो (१५) भूपा (१६) घनाः (१७) ऽष्टे
का (१८) नवेन्दवः (१९) विश्वे (१३) विश्वे (१३)
त्रिरुपाणि (१३) सूर्याः (१२) सूर्याः (१२) प्रभाकराः (१२) । २२ ।

१४''-१३।१५''-१३।१६''-१३।१७''-१२।१८ ''-१२।१९''-१२

नखः (२०) कुपक्षा (२१) दृक् पक्षा (२२) स्त्रक्ष्याद् यष्ट
भुजान्तकाः (२३।२४।२५।२६।२७।२८) रुद्रा (११) रुद्रा (११)
शिवा (११) श्चाथ हरितः (१०) परिकीर्त्तिताः । २३ ।

२०'-११।२१''-११।२२''-११।२३''- १०।२४''
-१०।२५''-१० २६''-१०।२७''-१०। २८''-१०

अथोनत्रिंशत श्चत्वारिंशदन्त विलिप्तिकाः (
२९।३०।३१।३२।३३।३४।३५।३६।३७।३८।३९।४०)
नव कालांशका (९०) एवं श्लोकार्द्धे रवि भि (१२) मंताः । २४ ।

बिम्बमान की विकला का मान (२९'' से ४०'') तक हो तो इन सभी बारह बिकलाओं की कालांश ९ होता है ।

अथ शुक्रेज्य सौम्यार्कि भौमास्तोदय भागकाः ।
प्रायशोऽङ्का (९) शिवा (११) विश्वे (१३)
तिथयो (१५) ऽद्रीन्दवः (१७) क्रमात् । २५ ।

तारा ग्रहों का कालांश इस प्रकार है-
शुक्र - ९ । वृहस्पति-११ । बुध-१३ । शनि-१५ । मंगल १७

चक्र चक्रार्द्ध निकट स्थितस्य शशि जन्मनः
मनवो (१४) भानवः (१२) स्पष्टा विश्वे (१३) मध्य तयोदिताः । २६ ।

चक्र या चक्रार्द्ध में कालांश इस प्रकार है-
बुध चक्र में -१४ , बुध चक्रार्ध में-१२
शुक्र चक्र में -१० शुक्र चक्रार्द्ध में -८

ग्रहार्कयो र्भार्कयोर्वा कथितां साधिकेऽन्तरे ।
बिम्बोदृश्य स्ततो न्यूने ग्रहर्क्षाणामदर्शनम् । २७ ।

रवि से ग्रह या नक्षत्र का अन्तर कालांश से अधिक होने पर वह सदा दिखाई देगा । रवि से ग्रह या नक्षत्र या अन्तर कालांश से कम होने पर नहीं दिखेगा ।

अस्त दिश्यस्त भागेभ्यः कालांशो नाधिकत्वयोः ।
क्रमादस्त मयोऽतीतो भावो चेति विचार्यताम् । २८ ।

इष्ट कालांश पठित कालांश से पश्चिम दिशा में कम होने पर उनका अस्त हो चुका है, अधिक होने पर होने वाला है ऐसा समझना होगा ।

तेभ्य स्तुदयक् तैष्टा माधिक्य न्यून भावयोः
अंशानामुदयो यातो भविष्यन्निति चिन्त्यताम् । २९ ।

पूर्वदिशा में उदय इसके विपरीत क्रम से होगा । इष्ट कालांश पठित कालांश से अधिक होने का अर्थ है कि उदय हो चुका है, कम होने का अर्थ है कि उदय होने वाला है ।

चलांश संस्कृता कान्य ग्रहक्रान्तो दयासुभिः
उदयोऽस्त मये तद् वत् सषड् भोदय जा सुभं । ३० ।

अपनांश संस्कृत ग्रह और रवि जिस राशि में उनके उदयासु को उदय के समय एवं सायन ग्रह और ६ राशियुक्त रवि के उदयासु अस्त के समय

ग्रहार्क भुक्ति गुणिते खाभ्र नगेन्दुभि (१८०) र्हते ।
स्यातां काल गतो तत्तद् विवरेणो दयास्तजाः । ३१ ।

रवि और ग्रह की दैनिक गति से गुणा कर (१८००) से भाग देंगे । फल उदय या अस्त समय की काल गति होगी ।

व्याक्ष दृक् कर्मखेटार्कान्तर लग्ना सुसम्भवाः
काल भागा हतास्ते स्युगत गम्य दिनादयः । ३२ ।

आक्ष और दृक् कर्म के बिना रवि और मार्गी ग्रह की गति के अन्तर से इष्ट कालांश के अन्तर में भाग देने से फल गत या गम्य दिन आदि होगा ।

ग्रहे वक्रिणित् सूर्य भुक्ति योगेन भाजिताः
नक्षत्रोदय कालार्कात्तदस्त समय कालिकम् । ३३ ।

ग्रह वक्री होने पर उसके और रवि के गति योग से कालांश अन्तर में भाग दिया जायेगा । दिन आदि फल पूर्व नियम के अनुसार गत या गम्य काल होगा ।

प्रोज्झ्य स्फुट रविं शिष्ट भागालि प्तिकृताः . पुनः
भध्रुव स्थार्क भुक्त्याप्ता भवन्त्यान्तर वासराः । ३४ ।

नक्षत्र के उदय और अस्त काल का स्फुट रवि निकाल कर दोनों की अन्तर कला निकालते हैं । उसको नक्षत्र ध्रुव स्थान के रवि की गति कला से भाग देने पर नक्षत्र के उदय से अस्त तक का दिन आदि समय आयेगा ।

स्फुटा स्फुट क्रान्तिज्भौरन्तरं यद्दिनार्द्ध यो
तत्प्राणा शशिलिप्ता (१८००) घ्नास्तदस्तो दय जासुभिः । ३५ ।

नक्षत्र के स्फुट क्रान्ति के दिनार्द्ध और अस्फुट क्रान्ति के दिनार्द्ध के अन्तर असु को (१८००) से गुणा कर अयनांश संस्कृत (सायन) अस्त का उदय रात्रि के उदयासु से

चलांश संस्कृतै र्भुक्ता लब्ध दृक् क्रम लिप्ति काः
ऋक्षस्य सौम्य विक्षेपे क्रमात् प्राक् पश्चिम स्थितौ । ३६ ।

भाग देने पर फल आक्ष दृक् कर्म कला आदि होगा । नक्षत्र का उत्तर शर पूर्व या पश्चिम में होने पर क्रमानुसार

तद् ध्रुवे वियुक्ता युक्ता याम्येक्षौ संयुतो निताः
दृक् कर्म ध्रुव एवं स्यात्तत्र क्षेत्रांश संस्कृति । ३७ ।

नक्षत्र के ध्रुव से घटायेंगे या जोड़ेगे । नक्षत्र का दक्षिण शर पूर्व या पश्चिम में होने पर इसे ध्रुव में जोड़े या घटायेंगे । फल को दृक् कर्म ध्रुव कहते हैं और इसी काक्षेत्राशं संस्कार किया जाता है ।

कालांशा योगताराणा ये सिद्धा उदयास्तजाः
ते राशि कलिका (१८००) भ्यस्ताः प्राच्या स्वोदय जासुभिः । ३८ ।

नक्षत्र के योगतारा का जो उदय या अस्त कालीन कालांश लिखा हुआ है उसकी कला कर १८०० से गुणा करते हैं । फल को नक्षत्र पूर्व दिशा में होने पर उसकी राशि के उदयासु से, और

पश्चाद् द्युनोदय प्राणैर्भक्ताः क्षेत्रांशका मताः
दृक् कर्मज ध्रुवस्तैस्तु प्राक् प्रतीच्यो र्युतोज्झितः । ३९ ।

पश्चिम में रहने पर अपनी राशि के उदयासु से भाग देते हैं । लब्धि क्रान्ति वृत्तीय क्षेत्रांश होगा । पहले निकाला गया दृक् कर्म ध्रुव पूर्व या पश्चिम में होने से इस क्षेत्रांश को क्रमानुसार उसमें जोड़ेंगे या घटायेंगे ।

भवेत् भयोगताराणां मुदयास्त मयध्रुवः
स्फुटार्कै तत्समेतेषा मुदयोऽस्त मयस्तथा । ४० ।

यह नक्षत्र योगतारा का उदय अस्त ध्रुव होगा । स्फुट सूर्य और तारा का उदय या अस्त ध्रुव समान होने पर वह नक्षत्र सूर्य सान्निध्य (निकटता) के कारण उदय या अस्त होगा ।

उदक् स्थानामस्त मया पूर्वे सोदय सम्भवात् ।
नेष्टेऽप्यस्तमय स्तत्काल ज्ञानाय केवलम् । ४१ ।

उत्तर दिशा में स्थित कई नक्षत्रों का पश्चिम में अस्त होने के पहले पुनः पूर्व में उदय हो जाता है । अतः उनके अस्त के बारे में चर्चा आवश्यक नहीं है । फिर भी कभी कभी उनका अस्त हो सकता है, इसके समय के ज्ञान के लिये ही उनकी चर्चा हुयी है ।

क्रत्वा दिना मन्यभानां, साध्यावस्त मयोदयौ
कुम्भोद्भव यमादीनां याम्या नामास्त भूरिता । ४२ ।

क्रतु आदि कितने नक्षत्रों का उदय और अस्त साधन करना चाहिये । अगस्त्य और यम आदि कई नक्षत्र बहुत दक्षिण होने के कारण वे बहुत दिन तक अस्त रहते हैं ।

सर्वेषान्तु ग्रहर्क्षाणां दिनमान प्रबोधतः
तौ ज्ञेयावपि दात्यार्थं कृतोगणित विस्तरः । ४३ ।

अपने अपने क्रान्ति के अनुसार चर निकालकर प्रत्येक ग्रह का दिनमान निकाला जा सकता है । अतः उनका नित्य उदय और अस्त आसानी से मालूम हो जायेगा । तथापि उदय और अस्त का निर्दिष्ट समय जानने के लिये यहां विस्तार पूर्वक गणित कहा गया ।

उदयास्त मयो प्रौक्तौ पूर्व सिद्धान्त सम्मतौ ।
दृक् सिद्ध्यै पुनरुच्येते निजकल्प न योगतौ । ४४ ।

यहां तक प्राचीन आचार्यों की विधि से तारा और ग्रहों के उदय तथा अस्त के विषय में कहा गया । अब अपनी कल्पना के अनुसार उनके उदयास्त के बारे में कहता हूँ जो दृक् सिद्ध या वास्तव में दिखायी देगा ।

उर्ध्व गानां ग्रहर्क्षाणामदृष्टौ कारणं यतः
खरांशु किरण व्याप्तिः साहि दृङ् मण्डलानुगा । ४५ ।

ग्रह और तारा गण क्षितिज के ऊपर रहने पर भी नहीं दीखते हैं उसका एक मात्र कारण है कि उस समय सूर्य का प्रकाश व्याप्त रहता है । सूर्य की किरण दृग् मण्डल में होने के कारण–

दृङ् मण्डल लवास्त्रिज्या हता लम्बज्यया हृताः
त्रिज्याघ्ना द्विज्यया भक्त्याः फलांशाः सूर्यतः स्फुटाः । ४६ ।

सूर्य के दृग् मण्डलीय उन्नतांश को नतज्या से गुणा कर लम्ब ज्या से भाग देते हैं । फल को पुनः त्रिज्या से गुणा कर द्युज्या से भाग देते हैं । फल सूर्य से ताराओं का स्फुट कालांश होगा ।

दृङ् मण्डलांश कालांश भेदस्तस्मादनल्पकः
भवेन्निरक्ष देशेऽपि द्युज्या त्रिज्यान्तरन्मितः । ४७ ।

इसका अर्थ है कि दृङ् मण्डलीय अंश और कालांश में पर्याप्त अन्तर होता है । निरक्ष देश में (विषुव वृत्त पर) भी यह अन्तर द्युज्या और त्रिज्या के अन्तर के बराबर है । अन्य स्थान पर यह और अधिक है ।

रसांगा (६६) क्षांशके देशे मेष मासे झषस्तयोः
उद्यतोः सह सूर्येण क्षितिजे गुरु शुक्रयोः । ४८ ।

(उदाहरण स्वरूप) जिस स्थान का अक्षांश ६६ है, वहां मेष मास में (जब रवि मेष राशि में है) मीन राशि का गुरु और शुक्र – ये रवि के साथ ही उदय होते हैं ।

भास्वतो दूर वर्त्तित्वात् सिद्धे दर्शन सम्भवे
उदयान्तर कालांश साधनं तत्र निष्फलम् । ४९ ।

ये दोनों ग्रह सूर्य से दूर रहने पर भी दीखते हैं । अतः उनका उदयान्तर कालांश निकालने की कोई जरूरत नहीं है । उस समय लिखे गये कालांश से कम कालांश रहने पर भी क्षेत्रांश अधिक होने के कारण ऐसा होता है ।

तदादौ स्थूल केन्द्रांशैः प्राग्वदस्तोदयोद् भवम् ।
कालमानीय तत्काल दोः फलञ्च विवस्वतः । ५० ।

तारा ग्रहों का दृक् सिद्ध ध्रुवांश –पहले लिखे गये उदय और अस्त केन्द्रंश से उदय और अस्त काल निकाल कर उस समय के सूर्य का मन्द फल निकालें ।

धनर्णं सूर्यवत्तूर्य केन्द्रे स्व स्वोदयास्तजे
जीव मन्दासृजां शुक्र बुधयो स्तु व्यतिक्रमात् । ५१ ।

जिस रीति से मन्द भुजफल सूर्य में जोड़ा या घटाया जाता है उसी क्रम से

गजाक्षिभि (११/२८) शिवा बाणै (११/५) रुद्रा (११) रुद्राभुवे (११/१)
तिच बुधस्य भूपा गिरिशै (१६/११) स्तिथयो नव वह्निभिः (१५/३९) । ६४ ।

उत्कल में वृहस्पति क्षेत्रांश-सायन संस्कृत रवि ४-९ राशि में -११°/२८'
,, ५-८ राशि में -११°/५'
,, ६-७ ,, - ११°/०'

बुध काक्षेत्रांश -सायन संस्कृत रवि १-१२ राशि में रहने पर -१६°/११'
,, २-११ राशि में,, - १५°/३०'

इन्द्रारदैः (१४/३२) गुणभुवोऽङ्गाग्निभि (१३/३६)
विश्व के नगैः (१३/७। विश्वे (१३) विश्वभुवा (१३/१)
कैस्तु धृतयो रस सायकै (१८/५६। । ६५ ।

बुधक्षेत्रांश-सायन संस्कृत रवि ३-१० राशि में -१४°/३२'
(उत्कल में) ,, ४-९ राशि - १३°/३६'
,, ५-८ ,, ,, - १३°/७'
,, ६-७ ,, - १३°/०' तथा १३°/१'

शनि क्षेत्रांश -सायन संस्कृत रवि १-१२ राशि में -१८°/५६'

धृतयश्च नृपै (१८/१६। भूपा गुणबाणैः (१६/५३। शरेन्दवः ।
कृतवेदैश्च (१५/४४। तिथयोदन्तिभि (१५/८। स्तिथयःपुनः । ६६ ।

शनिक्षेत्रांश सायन संस्कृत रवि २ ११ राशि में -१८°/१६'
,, ३-१० राशि में -१६°/५३'
(उत्कल में),, ,, ४-९ ,, - १५°/४४'
,, ५-८ ,, - १५°/८'
,, ६-७ ,, - १५°/०', १५°/१'

तिथयः एक (१५/१। भौमस्य भूदृशो नयनाब्धिभिः (२१/४२)
नखास्त्र्यक्षै (२०/५३) नवभुवः शक्रे (१९/१४) बर्हिशरैर्घनाः (१७/५२) ।६७।

मंगल का क्षेत्रांश-सायन संस्कृत रवि १-१२ राशि में -२१°/४२'
(उत्कल में) ,, २-११, , - २०°/५३'
,, ३-१० ,, - १९°/१४'
,, ४-९ ,, - १७°/५२'

घनादिग् भि (१७/१०। र्घना (१७) एव घन रूपेण (१७/१। सम्मताः
अस्तोदय ध्रुवाः स्पष्टा मध्यैः पञ्चमजाः समाः । ६८ ।

मंगल क्षेत्रांश-सायन संस्कृत रवि ५-८ राशि में १७°/१०'
(उत्कल में) ,, ,, ६-७ ,, - १७°/०', १७°/१'

५ राशि में जो अस्तोदय ध्रुव होगा वह मध्यम क्षेत्रांश के समान होगा (६ ठी और ७.वीं राशि का क्षेत्रांश का अन्तर १' लिखा गया है)

एवमन्येषु देशेषुन्नतज्या क्रमतो बुधैः ।
उन्नज्योदयास्तां शा सूर्य खेटान्तरान्तरा । ६९ ।

अन्य स्थानों में भी उन्नत ज्या आदि निकाल कर सूर्य और ग्रह के बीच का उदय और अस्त का क्षेत्रांश निकाला जा सकता है ।

स्फुटं ध्रुवांश लिप्ताभि रन्तरं सूर्य खेटयौः
यदातं समयं प्राग् वन्निश्चली कृत्य भुक्तिभिः । ७० ।

स्फुट उदयास्त काल की विधि-सूर्य और ग्रह का अन्तर पूर्वोक्त ध्रुवांश कला के समान होने पर वही स्फुट समय होगा । इसको पूर्वोक्त रवि और ग्रह कला द्वारा स्थिर करनां होगा ।

शरादायन दृक् कंर्म परमाक्षं विधाय च
तत्परस्पर संस्कारा धनर्णा शादिकं तथा । ७१ ।

शर से आयन और आक्ष दोनों दृक् कर्म संस्कार करेंगे । दोनों का परस्पर धन या ऋण करने पर शेष फल धन या ऋण हो उसे

विकली कृत्य खेटार्क गत्यन्तर कलाहृतम् ।
वक्रि शुक्रज्ञ गत्यर्क गति योग विभाजितम् । ७२ ।

विकला कर सूर्य और ग्रह के गति अन्तर की कला से भाग देगे । ग्रह वक्री होने पर ग्रह (बुध या शुक्र) और सूर्य की गति योग कला से भाग देंगे ।

दण्डादिकं फलं ग्राह्यं धने दृक् कर्मणि स्फुटे
समये पश्चिमास्तस्य योज्यं प्रागुदयस्य च । ७३ ।

दण्ड आदि फल को पूर्व में उदय या पश्चिम में अस्त समय में जोड़ेगे यदि दृक् कर्म संस्कार में योग हुआ था ।

प्राक् प्रत्यगस्तोदययोस्त्या ज्यं दृक् कर्मणि तदृणे ।
पश्चादस्त मय प्रागुदययोस्त्याज्य मन्वयोः । ७४ ।

पूर्व में अस्त होने पश्चिम में उदय होने पर उसे वियोग करेंगे । यदि स्फुट दृक् कर्म घटाया गया था तो इस दण्ड आदि फल को पूर्व में उदय और पश्चिम में अस्त समय से घटायेंगे ।

योज्य मेवं स्फुट तमः कालः स्यास्तदुदयास्तयोः ।
स च भुक्ति वशाज् ज्ञेयः स्फुट चक्रार्द्ध चक्रयोः । ७५ ।

(स्फुट दृक् कर्म ऋण होने पर) पूर्व के अस्त तथा पश्चिम के उदय समय में इसे जोड़ेंगे । इस प्रकार ग्रह का उदयास्त समय अति स्फुट होगा । इस प्रकार अति स्फुट समय ग्रह की चक्रार्द्ध और चक्र स्फुट के समय की ग्रह की गति के कारण है ।

स्फुट खेटार्क योर्यत्र समये समता तदा ।
स्फुटं चक्रं कुजादीनां चक्रार्द्ध च सितज्ञयोः । ७६ ।

स्फुट सूर्य और स्फुट ग्रह की राशि जब समान हो तब मंगल आदि ५ ग्रहों का चक्र काल तथा बुध शुक्र का चक्रार्द्ध (भी) होता है ।

सायनार्क स्य यद्राशौ ये ये स्वास्तो दयांशकाः
कथितास्ते तदात्वार्क ग्रह गत्यन्तरोद् धृताः । ७७ ।

चक्र और चक्रार्द्ध समय से बिना दृक् कर्म संस्कार के अस्तोदय काल निकालने की विधि -उत्कल के लिए सायन संस्कृत रवि की राशि अनुसार ग्रहों का उदय और अस्तांश कहा गया है । ग्रहों के चक्र काल और बुध और शुक्र के चक्रार्द्ध काल में उस अस्तोदयांश में रवि और ग्रह की गति अन्तर से भाग देंगे ।

चक्रज्ञसित गत्यर्क गति योग विभाजिताः ।
दिनादिभिः फलैः पूर्वं मस्तं पश्चात्तथोदयः । ७८ ।

बुध और शुक्र के लिये उनके और रवि के गति योग से भाग देंगे । फल का मान दिन आदि में होगा । इतने दिन आदि समय चक्र और चक्रार्द्ध समय के पहले तक ग्रहों का अदर्शन तथा उसके बाद दर्शन होगा ।

चक्र चक्रार्द्ध कालः स्यात् पुनस्तात्का लिकार्कतः ।
सायना दुदयास्तांशाः लिप्ताः प्राग्वद् हृताः फलैः । ७९ ।

इस प्रकार जो उदय और अस्त समय आयेगा उसको पुनः चक्र और चक्रार्द्ध काल कहा जायेगा ।

उदय अस्त कालीन सायन सूर्य से उदय और अस्त अंश आदि आयेगा । उसको पहले की तरह रवि और गति अन्तर से भाग देंगे । (बुध और शुक्र के लिए गति योग से भाग देंगे) फल का मान दिन आदि में होगा ।

दिनाद्यैरस्त मुदयं कृत्वा तत्काल जां गतिम्
चक्र चक्रार्द्ध जां त्यक्त्वा तद्यो गार्द्ध ग्रहार्कयोः । ८० ।

चक्र या चक्रार्द्ध समय से इतने दिन आदि पहले तक ग्रह अस्त रहेगा, उसके बाद उदय होगा । इस शोधित उदयास्त काल में ग्रह और रवि की गति निकाल कर उनका योग आधा करेंगे ।

कर्मयोग्या स्फुट गतिः स्यात्ततः पूर्ववद्दिनैः ।
प्राक् पश्चादागतौ कालौ स्यात् वास्तोदय स्फुटौ । ८१ ।

ग्रह और रवि की गति के योग का आधा ही उदय और अस्त काल के साधन के लिये ग्रह और रवि दोनों की स्फुट गति मानी जायेगी । तात्कालिक सायन और ध्रुवार्द्ध संस्कृत रवि की राशि के अनुसार जितनी उदय और अस्त

अंश की कला होगी उसमें रवि और ग्रह के स्फुट गति अन्तर या गति योग से भाग देंगे । फल जितना दिन आदि होगा, चक्रार्द्ध से उतने दिन पहले उदय होगा । इससे पुनः वास्तविक उदय अस्त समय निकाला जा सकता है ।

किन्तुक्त्वाः पटु चक्षुर्भि गुर्वाद्यस्तोदयांशकाः ।
एकेना सप्तः चांकाश्च (७,९) व क्रा वक्र क वे र्मताः । ८२ ।

सूक्ष्म गणितज्ञों ने पूर्व कथित गुरु आदि ग्रहों के उदय और अस्त अंश से एक कम उदयास्त की संख्या इस विधि से बतायी है । इसके अनुसार गुरु का १०, बुध का १२, शनि का १४, मंगल का १६, वक्री शुक्र का ७, मार्गी शुक्र का ९ उदय और अस्तांश होगा ।

नास्ते वास्त वमस्त मस्तिहि समास्ता नामधस्तात् पुरः
पश्चादुर्द्धनभस्तल स्थित रवि श्रान्तं यदेषां भ्रमात् ।
सद्योत द्युति भाञ्जि भान्य पटुभिः प्रद्योतन ज्योतिषां
लक्ष्यन्तेक्षिभि ऋक्षराड् गुरु सिता लक्ष्या दिवासौक्ष्म्यतः । ८३ ।

किसी ग्रह का वास्तव में अस्त या लोप नहीं है । ग्रह भ्रमण के क्रम में सदा पूर्व, पश्चिम, ऊपर या नीचे आते रहते हैं । सूर्य की तेज किरण से आंख स्तम्भित होने के कारण यह तारा ग्रह आदि खद्योत की भांति प्रकाश हीन हो नहीं दीखते हैं । बिम्ब बड़ा होने के कारण चन्द्र, वृहस्पति और शुक्र दिन में भी दीखते हैं ।

भानोरुद्गमतः पुरोऽस्तमयतः पश्चात्प्रका शोऽम्बरे
दृश्यः स्यात् समयांशकै र्दल युतै र्व्यक्षे हि पक्षाक्षिभः (२२।३०)
अन्यत्रत्रिगुणा हतैः स्फुर वितै र्लम्बज्यया भाजितैः
पूर्णेन्दोर्वसुभिः (८) कलाक्षयवशादल्पै र्भृगोरिन्दुना । ८४ ।

उदय होने के पहले और अस्त होने के बाद निरक्ष देश में (विषुव रेखा पर) २२°।३०' कालांश में आकाश में निश्चित रूप से सूर्य का प्रकाश तेज होता है । अन्य स्थानों पर इस २२।३० कालांश को त्रिज्या से गुणा कर अपने स्थान की लम्बज्या से भाग देने पर जो कालांश आयेगा उतने दूर तक सूर्य का प्रकाश तीव्र होगा ।

निरक्ष देश में पूर्ण चन्द्र विम्ब उदय होने के पहले और अस्त होने के बाद ८ कालांश में उसका प्रकाश तेज होता है । शुक्र का निरस देश में १ कालांश तक तेज प्रकाश होता है । इनका भी अपने स्थान पर कालांश जानने के लिए निरक्ष कालांश को त्रिज्या से गुणा कर अपने स्थान की लम्बज्या से भाग देंगे ।

वन्दोम हे हरिहय द्रुहिणाहिराज हेरम्ब शम्बर हरारि हिमांशु हंसैः।
अर्हास्पती कृत पटाम्बुरुहं सहस्रं वारान्महेन्द्र मणिहारि मही महीयः । ८५ ।

जिस का तेज इन्द्र की मणि के समान हैं, जिसके चरण कमल ब्रह्मा, वासुकि, गणेश, शिव, चन्द्र और सूर्य वन्दना करते हैं, उस परम पूज्य जगन्नाथ के तेज

को मेरा हजारों प्रणाम हैं ।

इत्युत्कलो ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
श्री चन्द्र शेखर कृतेगणितेऽक्षि सिद्धे ।
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
सास्तो दयो व्यरचि विश्व (१३) मितः प्रकाशः । ८६ ।

इस प्रकार उड़ीसा के विख्यात राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्र शेखर द्वारा गणना और दृष्टि में समानता तथा छात्रों की शिक्षा के लिये सिद्धान्त दर्पण में उदय और अस्त सम्बन्धी १३ वां प्रकाश लिखा गया ।

चतुर्दश प्रकाश

चन्द्र श्रृङ्गोन्नति वर्णनम्

श्रृंगोन्नतिं विधोर्वक्ष्ये सनित्यास्त मतयोदयाम् ।
दृक् सिद्धां वासनावद्भिः सबोधां छेदकान्विताम् । १ ।

सूक्ष्म ज्ञानियो के बोध के लिए चन्द्रमा के स्फुट दैनिक उदय अस्त, श्रृंगोन्नति तथा परिलेख के बारे में कह रहा हूँ ।

उदयास्त मयौ नित्या वानेयौ प्रथमं विधोः ।
दृक् कर्म द्वय संस्कार स्पष्ट सूक्ष्मेन्दु भास्वताः । २ ।

सूर्यास्त के कितने समय बार चन्द्रास्त होगा यह निकालने की विधि-पहले चन्द्रमा का उदय और अस्तकाल निकालना चाहिये । सूर्यास्त समय में सूक्ष्म चन्द्र और स्फुट रवि का साधन कर उन्हें सायन कर दृक् कर्म संस्कार करेंगे ।

अयनांशैः संस्कृतयोः सूर्यास्त समयोत्थयोः
सषड् भयोः काल लवाः साध्या लग्नान्तरासुभिः । ३ ।

सायन और दृक् कर्म संस्कृत सूर्यास्त कालीन रवि और चन्द्र में ६ राशि जोड़कर उनके लग्न अन्तर असु से कालांश का साधन करेंगे ।

तयोरूनस्य भोग्यासून् भुक्तासनधिकस्य च ।
तदन्तरोत्य लग्ना सून् संयोज्याभ्र रसो (६०) द् धृतेः । ४ ।

रवि और चन्द्र में जिसकी राशि आदि कम है उसका भोग्य असु, अधिक राशि वाले का भुक्त असु तथा मध्यवर्ती राशियों के उदय असु जोड़कर ६० से भाग देंगे ।

स्युः स्फुटान्तर कालांश रसा (६) प्ता घटिकादयः
तन्नाड़िका हते भुक्ति रवीन्दोः षष्टि भाजिते । ५ ।

फल रवि और चन्द्र का स्फुट अन्तर कालांश होगा । इसे ६ से भाग देने पर घटी आदि फल होगा जिसमें रवि और चन्द्र की गति से गुणा कर ६० से भाग देंगे ।

तत्फलान्वितयो र्भूयः कर्तव्या विवरासवः
असकृत् कर्म भिस्तेतु स्थिराः स्युरवि चन्द्रयोः । ६ ।

कलादि फल को रवि और चन्द्र में जोड़ने से जो रवि और चन्द्र होगा पुनः उनका अन्तर असु निकालेंगे । ऐसा बारबार करने से रवि और चन्द्र का अन्तर असु स्थिर होगा ।

अत्र चन्द्रस्य दृक् कर्म द्वय कार्यं पुनः पुनः
यतः स्फुटेन्दोः पातस्य भेदाद् विक्षेप भिन्नता । ७ ।

इसके बाद चन्द्र का आयन और आक्ष दृक् कर्म बार -बार करना होगा नहीं तो स्फुट चन्द्र और उसके पात के बीच की दूरी के कारण शर में भिन्नता होगी ।

तदन्तरोत्थ प्राणेषु स्थिरे ष्वित्थं विधोः पुनः
नतिं वित्रिभ लग्नोत्थां स्फुटेषु दृष्टि कर्मणो । ८ ।

इस प्रकार रवि और चन्द्र का अन्तर असु स्थिर होने पर चन्द्र से तीन राशि घटाकर उसका (वित्रिभ लग्न का) नत और शर निकाल कर उसका आयन और आक्ष दृक् कर्म करेंगे ।

कुर्यात् स्पष्ट गतीन्द्रां (१४) शस्त्रिज्याघ्नो लम्बयोद् धृतः
प्राणात्मक स्तदूनाः स्युर्दृक् सिद्धास्तेऽन्तरासवः । ९ ।

इसको पुनः सूक्ष्म करने के लिये ६ राशि युक्त रवि तथा चन्द्र में इसे जोड़कर दोनों का अन्तर असु निकालेंगे । चन्द्र की स्फुट गति के १/१४ को त्रिज्या से गुणा कर लम्बज्या से भाग देने पर चन्द्र का परम लम्बन असु आयेगा । इसे पहले निकाले गये अन्तर से घटाने पर दृक् सिद्ध अन्तर असु होगा ।

तैः प्राणैरस्त मेतीन्दुः शुक्रेऽर्कास्त मयात्परम् ।
अत्रार्क सावनत्वं हि द्वयो स्तात्कालिकी कृतौ । १० ।

सूर्यास्त के इतने समय बाद चन्द्र का अस्त होगा । रवि और चन्द्र को तात्कालिक करते समय असु को सावन तथा

तत्कृतौ केवल स्येन्दोः प्राणानामार्क्षता मता
सूर्यास्त कालिकौ तौ चेद् ग्राह्यौ ते चन्द्र सावना । ११ ।

केवल चन्द्र को तात्कालिक करते समय असु को नाक्षत्र (अर्थात् नाक्षत्र दिन का २१,६०० भाग) मेरे मत के अनुसार माना जायेगा । सूर्यास्त काल में रवि और चन्द्र निकालने के समय असु चन्द्र सावन (दिन का २१,६५९ भाग) होगा ।

भगणार्द्ध रवे दत्वा कार्यास्थिद् विवरासवः
तैः प्राणैः कृष्ण पक्षेतु शीतांशु रुदयं ब्रजेत् । १२ ।

कृष्ण पक्ष में सूर्यास्त कालिक रवि का साधन कर उसमें ६ राशि जोड़ेगे । इस रवि और चन्द्र का अन्तर असु निकालेंगे। सूर्यास्त के इतने असु आदि समय बाद चन्द्र उदय होगा ।

अत्राप्यर्कास्त कालोत्थौ रवीन्दुदृक् क्रिये विधोः
उदयेलम्बना सूनां धनत्वं स्थिरतोक्तवत् । १३ ।

यहां भी सूर्यास्त समय के रवि और चन्द्र दोनों का दृक् कर्म संस्कार करना पड़ेगा । उदय के समय लम्बन असु जोड़ना होगा और बार बार यह क्रिया कर रवि और चन्द्र के अन्तर असु का मान स्थिर करेंगे ।

उदयेस्तमये वापि स्वदिने यत्र कुत्रवा
यदादृक् चन्द्रमा साध्य स्तदायं क्रम उच्यते । १४ ।

सूर्य अस्त, या इष्ट काल में भू पृष्ठ पर दृश्य चन्द्र निकालने की विधि कही जाती है ।

षष्ठ प्रकाश विधिना कृत्वा सूक्ष्म स्फुटं विधुम् ।
स्वेष्ट कालिक मानीय पूर्वा पर कपालयो । १५ ।

६ ठे प्रकाश में कही गयी विधि से स्फुट चन्द्र निकालनेंगे । इसे पूर्व तथा पश्चिम कपाल का इष्टकालिक चन्द्र करेंगे ।

लग्नं तात्कालिकं कृत्वा वित्रिभं दृग् गतिं ततः ।
नतज्यां प्राक् परोद्धृतां सा दृक् गति गुणाहताः । १६ ।

इष्ट काल का लग्न, वित्रिभ लग्न तथा वित्रिभ शंकु निकालेंगे । पूर्व या पश्चिम-जिस कपाल में चन्द्र है उसकी दृग्ज्या निकाल उसे दृग् गति (वित्रिभ शंकु) से गुणा करेंगे तथा-

त्रिज्याप्ता द्येन्दु भुक्तिघ्नी मनु (१४) घ्रित्रिज्यया (४८१३२) द्धृता
फल लिप्ता युतोनःस्याद् वित्रिभोदयतो विधुः । १७ ।

त्रिज्या से भाग देंगे । लग्न को प्रथम स्फुट चन्द्र गति से गुणा कर १४ X ३४३८ (१४ X त्रिज्या)से भाग देने से कला आदि फल होगा उसे चन्द्र में जोड़ेगे या घटायेंगे यदि वित्रिभ लग्न से चन्द्र-

प्राक् प्रत्यक् स्थस्ततः प्राग्वन्नतिस्थ संस्कृतात् शरात्
दृक् कर्मायन साक्षञ्च स्यात्ततोदृग् विधुर्भवेत् । १८ ।

पूर्व या पश्चिम कपाल में स्थित हो । इससे इष्टकाल का लम्बन संस्कृत चन्द्र आयेगा । इसके बाद पहले की तरह पुनः चन्द्र नति का साधन करेंगे । इस नति से शर का संस्कार कर स्फुट शर निकाल कर उसका आयन और आक्ष दृक् कर्म निकालते हैं । इससे लम्बन संस्कृत चन्द्र का संस्कार करने से समप्रोत वृत्तीय होगा जो भूपृष्ठ से दीखता है ।

श्रृंगोन्नति द्विधा शुक्ल कृष्ण भेदान्तयोः सिता
दृश्यत्वात् सम्मता सर्वै कैश्चित् कृष्ण नुमानतः । १९ ।

चन्द्रमा के श्रृंग (सींग) की दो प्रकार की उन्नति (श्रृंगोन्नति) होती है । सामान्यतः श्रृंगोन्नति की अर्थ घवले श्रृंग की उन्नति होती है । परन्तु कुछ विद्वान कृष्ण श्रृंगोन्नति की भी कल्पना करते हैं (यह दीखता नहीं है गणना द्वारा जाना जाता है)

चन्द्रोदय द्वयान्तः स्थोऽहोरात्रश्चान्द्र सावनः
क्रान्तेस्तद्दिन मानञ्च माध्यमिष्टं नतं ततः । २० ।

चन्द्र के उदय के दूसरे उदय तक का समय चन्द्र सावन दिन कहा जाता है। चन्द्र की स्फुट क्रान्ति का साधन कर उससे इष्ट नत काल पूर्व राति से निकालते हैं।

पूर्वार्द्धे शुक्ल पक्षस्य कृष्ण स्यान्त्य दले विधोः
शुक्ला श्रृंगोन्नतिः कृष्णा कृष्ण शुक्ल मुखान्तयोः । २१ ।

शुक्ल पक्ष के पूर्वार्द्ध (प्रति पदा से ७ मीपर्यन्त) और कृष्ण पक्ष का उत्तरार्द्ध (९ मी से १४ शी पर्यन्त) शुक्ल श्रृंग की उन्नति निकाली जाती है। इसी प्रकार कृष्ण पक्ष का पूर्वार्द्ध तथा शुक्ल पक्ष के उत्तरार्द्ध में कृष्ण श्रृंग की उन्नति निकाली जाती है। शुक्ल या कृष्ण जो भाग आधा से कम हो उसकी उन्नति निकाली जायेगी।

विमण्डलं स्थिते चन्द्र मण्डले कांश संक्रमात्
अपवृत्त स्थिति भवा द्विविधा कृति सम्भवः । २२ ।

विमण्डल वृत्त में स्थित चन्द्र पर क्रान्ति वृत्त से स्थित सूर्य की किरण पड़ने से चन्द्र का अनेक प्रकार का आकार दीखता है।

अप्यर्कात्समदूरस्थ मिन्दु श्रृंगद्वयं सदा
देशान्तर वशाद् वक्रं तार तम्येन दृश्यते । २३ ।

चन्द्र का दोनों श्रृंग रवि से समान दूरी पर रहने से भी देशान्तर के कारण वह कम या अधिक होते हैं। तिरछा दीखते हैं।

सौम्यायनान्तगो भानू दिनार्द्धे मस्तको परि
दृश्यते यत्र तद्देशे मेषादिस्थे विवस्वतिः । २४ ।

जिस स्थान में दिनार्द्ध में सायन मिथुन अन्त का सूर्य ठीक सिर के ऊपर हो (अक्षांश परम उत्तर क्रान्ति के समान वहां सायन मेषादि का सूर्य-

सममण्डल वद् दृश्यं दिवसान्तेऽपमण्डलम् ।
तत्राविक्षिप्त शीतांशु प्राक् गतिः सरलेक्ष्यते । २५ ।

सूर्यास्त के समय पूर्वापर वृत्त की तरह दिखेगा। उस स्थान में शरहीन चन्द्र की गति अत्यन्त सरल पूर्व दिशा में होगी।

समता श्रृंगयोस्थस्मात् क्रान्ति वृत्त क्रमाद् भवेत् ।
सन्निवेशो गतिश्चन्द्रोः किन्तु भेदः शरोद् भवः । २६ ।

इससे पता चलता है कि क्रान्ति वृत्त की स्थिति के अनुसार चन्द्र का स्थान, श्रृंग और गति होती है। इसमें भी शरभेद के कारण भिन्नता होती है।

चन्द्र ग्रहण वत्साध्य मत्राणि वलन द्वयम्
आयनं फलजं स्पष्टं वैक्षेपरूय मिहोच्यते । २७ ।

चन्द्र ग्रहण के समान चन्द्र श्रृंगोन्नति साधन में भी आयन और आक्ष वलन का साधन किया जाता है ।

चन्द्रार्कान्तर जीवास्मिन् कोटीर्विक्षेपको भुजः
दोः कोटीवर्गयो र्योगात् पदं स्यात् कर्णसंज्ञकम् । २८ ।

शरवलन की विधि- (१) रवि और चन्द्र के अन्तर चाप की ज्या कोटि (२) चन्द्र की शरज्या का भुज और (३) इन दोनों के वर्ग योग का मूल-कर्ण इस त्रिभुज में-

त्रिज्या भुजघ्नी कर्णाप्ता फलं चापी कृतं कलाः
षष्ट्याप्ता वलनांशाः स्यु विक्षेपास्तेंऽगुलात्मकाः । २९ ।

त्रिज्या को शर से गुणा कर्ण से भाग देने पर जो फल आयेगा उस चाप की कला करेंगे । उसे ६० से भाग देने पर अंगुल में शर का वलनांश आयेगा ।

ख वृत्तमादौ पूर्वोक्तमनं दिक् चिह्नितं लिखेत्
षड्ंगुलं गुणेनेन्दुं तन्मध्ये द्वादशांगुलम् । ३० ।

ग्रहण के परिलेख में जितने व्यासार्द्ध का ख वृत्त खींचा जाता है उतने ही व्यासार्द्ध का यहां भी ख वृत्त बना कर उसमें दिशा का अंकन करेंगे । इसमें भी ६ अंगुल व्यासार्द्ध का चन्द्रमण्डल लिखेगें उसका व्यास १२ अंगुल का होगा) ।

ख वृत्ते वलनं स्पष्टं प्राच्यां प्राक् स्थे सदिश्यदः ।
इन्दौ प्रत्यक् कपालस्थे पश्चादिग् भेद तोन्यसेत् । ३१ ।

चन्द्र पूर्व कपाल में रहने पर चन्द्र का स्फुट वलन पूर्व विन्दु में तथा पश्चिम कपाल में रहने पर पश्चिम विन्दु से स्फुट बल की दिशा के अनुसार उत्तर या दक्षिण में अंकित करेंगे ।

तच्चिह्नतः सौम्य याम्य वैक्षेप वलनांगुलम् ।
दिग्वैपरीत्यतो न्यस्येत् कपाल द्वितयेऽप्यदः । ३२ ।

स्फुट वलनाग्र चिह्न से शर का वलन, वलन की विपरीत दिशा में (स्फुट वलन उतर होने पर शर वलन दक्षिण आदि) दोनों कपाल में देंगे ।

तदग्रस्थायिनं विन्दुं निश्चित्यार्कतयोततः
सूत्रं प्रसारितं चन्द्र बिम्ब मध्यान्त मानयेत् । ३३ ।

शर वलन के अग्र बिन्दु को सूर्य मान कर उससे चन्द्र बिम्ब के केन्द्र तक एक सरल रेखा खींच कर बढ़ायेंगे ।

तत्सूत्र मिन्दु बिम्बान्तं यत्र स्पृशति सूर्यतः
ज्योत्स्नोत्पत्ति क्षयौ तत्र भवेतां पर्व सन्धिजौ । ३४ ।

यह रेखा चन्द्र बिम्ब परिधि को जहां काटेगी वहीं पर सूर्य के कारण प्रकाश और छाया की सन्धि होगी ।

चन्द्रार्कान्तर जा लिप्ताः ख ख नन्द हृताः फलम्
शुक्लांगुलं तदिन्दुन्ता दन्तर्देयं रवेर्दिशः । ३५ ।

रवि और चन्द्र की अन्तर कला को ९०० से भाग देने पर शुक्लांगुल होगा । चन्द्र बिम्ब से उस रेखा (चन्द्र बिम्ब केन्द्र से शरवलन के अग्र बिन्दु सूर्य तक) पर रवि की दिशा में-

शुक्लाग्रे विन्यसेद् विन्दु मथ सूर्यात् ख वृत्त के
नवत्यं शान्तरे विन्दू पार्श्व योर्नस्य तद् युगात् । ३६ ।

वलनाश्रित वृत्त में सूर्य चिह्न के दोनों तरफ (९०) अंश की दूरी पर दो विन्दु देंगे । इन दोनों विन्दुओं से भी-

प्राग् वत्सूत्रे प्रसार्यैन्दौ तत्स्पर्श स्थानयो रुभै
बिन्दुं दत्वा लिखेद् विन्दु त्रयाहन्तुत्रयं विधः । ३७ ।

पहले के समान चन्द्र केन्द्र तक रेखा खींचे पर वह चन्द्र मण्डल को जिन दो विन्दुओं पर काटेगी वहां भी दो विन्दु देंगे । इन दोनों बिन्दुओं तथा चन्द्र मण्डल का केन्द्र -इन तीन बिन्दुओं से-

पञ्चाङ्गुल गुणेनात्र स्यातां मत्स्यौ तदन्तरे-
तत्पुच्छ मुखं संसक्त सूत्रयोर्यत्र संयुतिः । ३८ ।

प्रत्येक से ५ अंगुल व्यासार्द्ध का तीन वृत्त खींचेगे । इन तीन वृत्तों के मिलन से दो मत्स्याकृति होगी । दोनों मत्स्यों के मुख और पुच्छ को मिलाने वाली रेखा जहां काटेगी ,

ततो बिन्दु त्रय स्पर्शि धनुश्चन्द्रान्तरे लिखेत्
तस्मात् बिम्बान्तर स्थानं शुक्ली कृत्येक्षतां विधुम् । ३९ ।

उस विन्दु को केन्द्र मानकर तीन बिन्दुओं से होकर वृत्त चाप खींचेगें । इस चाप से सूर्यचिह्न की दिशा में चन्द्र बिम्ब का जो भाग है वह प्रकाशित दिखायी देगा ।

प्रत्यक् स्थे शुक्ल पक्षेस्मिन् कृष्णे चन्द्रे पुर स्थिते
तदर्कान्तर लिप्ताभ्यो वलनार्क दिशोद्युतेः । ४० ।

शुक्ल पक्ष में पश्चिम कपाल एवं कृष्ण पक्ष में पूर्व कपाल में रवि और चन्द्र की अन्तर कला के कारण वलन अग्र से रवि चिह्न की तरफ-

व्याप्तर्यथोदिता तदवत् प्राक् प्रत्यक् स्थेसितेऽसिते ।
वलनात्मार्कतः कार्यः शुक्ल स्या व्याप्ति निर्णयः । ४१ ।

जिस प्रकार प्रकाशित भाग रहता है उसी प्रकार शुक्ल पक्ष में श्र्वकपाल में और कृष्ण पक्ष में पश्चिम कपाल में वलनाग्र गति रवि चिह्न से अन्धकार मय क्षेत्र होगा ।

अर्द्धोनेन्दो सिते पक्षे प्रत्यग् भितो विलिख्यतम् ।
छेदकं दर्शयेच्छृंगं मुन्नतं सौम्य याम्यगम् । ४२ ।

शुक्ल पक्ष से आधा से कम चन्द्रमा का परिलेख (नक्शा) पहले की भांति पश्चिम दिशा में स्थित दीवाल पर लिख कर उत्तर या दक्षिण की तरफ झुका हुआ श्रृंग लोगों को दिखाना पड़ेगा ।

प्राग् भित्तौ कृष्ण पक्षान्तेऽप्यथ्यार्द्धाधिक शीतगोः ।
उन्नयेदसिता श्रृंगोन्नतिं तद् वलनार्कतः । ४३ ।

कृष्ण पक्ष में यह नक्शा (परिलेख या छेद्यक) पूर्व दिशा में स्थित दीवाल पर लिखकर उतर या दक्षिण की तरफ झुका श्रृंगा दिखलाया जायेगा । आधा से अधिक प्रकाशित चन्द्र बिम्ब का (ऊपर लिखा हुआ) वलनाग्र रविचन्द्र से कृष्ण श्रृंग की उन्नति होगी) ।

सिद्धान्त क्रमतः प्रोक्त श्चन्द्रेऽसौ सैत्य संक्रमः ।
अथयुक्ता नुभूतिभ्यां प्रसिद्धोऽत्रागुवर्ण्यते । ४४ ।

प्राचीन सिद्धान्त ग्रन्थ के अनुसार चन्द्र बिम्ब का शुक्ल भाग निकालने की विधि कही गयी । अब मेरे अनुभव तथा तर्क के अनुसार दृक् सिद्ध और सूक्ष्म शुक्ल साधन करने की रीति वर्णन करता हूँ ।

चन्द्र योजन कर्णघ्नी व्यर्केन्दु ज्यार्क कर्णहृत्
तत्कालाढ्योनितः कार्ये ग्लौ शुक्ला शुक्ल पक्षयोः । ४५ ।

चन्द्रमा से सूर्य का राशि आदि घटाकर शेष की भुजज्या को चन्द्र के योजन कर्ण से गुणा कर रवि योजन कर्ण से भाग देने पर कला आदि फल होगा उसको शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा में जोड़ेंगे तथा कृष्ण पक्ष के चन्द्रमा से घटायेंगे ।

तस्य सूक्ष्म स्फुटेन्दोर्या व्यर्क स्योत्क्रम दोर्ज्यका
सा गुणाद्रि शरै (५७३) र्भक्ता लब्धं शुक्लांगुलादिकम् । ४६ ।

यह स्फुट चन्द्र होगा । रवि की राशि आदि पुनः इस स्फुट चक्र से घटाकर शेष की उत्क्रम ज्या निकालें । शेष को ५७३ से भाग दे कर लब्धि अंगुल आदि फल होगा ।

अर्द्धो नेन्दो रथैतत्स्यात् कृष्ण मर्द्धा धिकस्य च
क्षीणे शुक्लांगुलं देयं द्वादशां गुल मण्डले । ४७ ।

आधे से कम होने पर शुक्ल भाग का तथा आधे से अधिक शुक्ल चन्द्र बिम्ब होने पर यह कृष्ण भाग का अंगुलादि फल होगा। आधा से कम चन्द्र बिम्ब शुक्ल होने पर १२ अंगुल चन्द्र बिम्ब में शुक्लां गुल दिया जायेगा।

पुष्टे षडंगुला प्रोज्भ्य कृष्णं शिष्टं सितांगुलम्
भोज्यं बिम्बदले चेत्स्याद् वलनार्क दिशः स्फुटः। ४८।

चन्द्रमा का आधा से अधिक शुक्ल बिम्ब होने पर कृष्ण अंगुलादि ६ अंगुल से घटाकर शेष शुक्ल अंगुल को यदि बिम्बार्द्ध ६ अंगुल में जोड़ेगे तब वलन के अग्र बिन्दु से रवि की दिशा में-

आकार चन्द्रबिम्बस्य प्राग् वद् बिन्दु त्रयोद् भवात्।
मत्स्यद्वयात् सूत्र सक्तात् सिद्धः साक्षात् सलक्ष्यते। ४९।

पहले की तरह तीन बिन्दुओं से दो मीन बनाकर मुख पुच्छ रेखा के मिलन बिन्दु केन्द्र से वृत्त खींचेगे।

सार्द्धांगुलाल्प शुक्रस्य श्रृंगान्तवति सौक्ष्म्यतः
न दृश्यौ दर्शनं तद् वत् सम्भवैत्त दुपान्तयोः। ५०।

डेढ़ अंगुल से कम शुक्ल बिम्ब नहीं दिखायी देता है। क्योंकि श्रृंग का प्रान्त भाग अत्यन्त पतला होता है। अवश्य श्रृंग के अग्र भाग के निकट थोड़ा शुक्ल दिखायी देता है।

कला वृद्धि क्षया वस्य दृश्यतां परिलेख के
शुक्ल पक्षस्य पादान्ते सूर्यास्त मय कालिकः। ५१।

चित्र, परिलेख (नक्शा या छेदक) बनाकर चन्द्र कला की वृद्धि और क्षय दिखाना होगा। शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तिथि को सूर्यास्त के समय

चन्द्रेऽर्कोगुलकोलेख्य उत्तरास्येन भूतले।
तन्मध्येदिक्षु कोणेषु देयं रेखा चतुष्टयम्। ५२।

उत्तर की दिशा में मुंह कर भूपृष्ठ पर १२ अंगुल व्यास का चन्द्र बिम्ब लिखेंगे। उसमें दिशाओं और कोणों के बीच चार व्यास रेखायें खींचेगे।

तन्मध्यानां यथा योगो बिम्ब मध्ये भवेत्त था
चन्द्रात् पश्चिम गो दूरे कल्पनीयो दिवाकरः। ५३।

सभी चारों रेखायें परस्पर केन्द्र विन्दु पर मिलेंगी और दो बराबर भागों में विभाजित होंगी। चन्द्र बिम्ब से पश्चिम की तरफ दूरी पर सूर्य लिखेगें।

बिम्बार्द्ध पश्चिमं भाव्य सातपं विन्दु रिन्दुतः
भू संज्ञः पञ्च हस्तान्ते देयोऽग्निदिशि दृष्टये। ५४।

इस सूर्य बिम्ब के कारण चन्द्र मण्डल का पश्चिम बिम्बार्द्ध शुक्ल होगा

ऐसी कल्पना की लायेगी शुक्ल भाग देखने केलिये चन्द्र बिम्ब केन्द्र से पाँच हाथ की दूरी पर आग्नेय दिशा में भू बिन्दु देंगे ।

उत्तराणा महीविन्दोः कल्पनीयार्द्ध मम्बरम्
तिर्यक् स्थित्वात्तनुः प्रेक्ष्यः समोऽपीन्दौ सदातपः । ५५ ।

इस भूविन्दु से ऊपर के आकाश को उत्तर दिशा मानेंगे । सूर्य बिम्ब से चन्द्र बिम्ब का आधा हमेशा प्रकाशित रहने पर भी भू भाग से दीखने वाला बिम्ब (दृश्य वृत्त) और शुक्ल वृत्त परस्पर तिरछा होने के कारण शुक्ल भाग आधा से बहुत कम दीखता है ।

ईशान नैऋत दिशोरायता यात्र रेखिका
साज्ञेया भूस्थितैर्दृश्या चन्द्रमण्डल विस्तृतिः । ५६ ।

ईशान और नैऋत विन्दु गामी चन्द्र बिम्ब का व्यास भूविन्दु पर के लोगों को निश्चय दीखेगा ।

दक्षिणोत्तर रेखान्त व्यापि पश्चिम शुक्लतः
अधः स्थो दक्षिणो भागो दृश्यता मेतियत् क्षितौ । ५७ ।

दक्षिण और उत्तर रेखा को स्पर्श करता हुआ पश्चिम आधा शुक्ल भाग का नीचे का भाग भूबिन्दु से दीखेगा ।

तद् भूमेर्निगतं सूत्रं याम्य रेखाग्र संगतम्
लग्नं पश्चिम रेखान्ते नेऋतैशान्यरेखिकाम् । ५८ ।

अत भू केन्द्र से चन्द्र मण्डल के पश्चिम बिन्दु को स्पर्श करता हुआ सूत्र ईशान नैऋत्यरेखा को

यत्र स्पृशत् ततस्तस्यां नैऋतान्तं सितस्थितिः ।
ऐशान्यान्तं सता भावः कर्ण सूत्रेण लक्ष्यते । ५९ ।

जहाँ स्पर्श करेगा वहां से उसी ईशान नैऋत्य रेखा से नैऋतचिह्न तक शुक्ल रहेगा । ईशान दिशा के चिह्न तक शुक्ल का अभाव अर्थात् कृष्ण रहेगा । कर्ण सूत्र से यह शुक्ल वृत्त पृथ्वी से दिखाई देता है ।

सार्द्ध राश्यन्तरेऽर्केन्दोः शास्त्रोक्त स्त्र्यंगुलः सितः
साक्षादत्रागतो यस्मात् पादोनद् व्यगुला (१।४५) त्मकः । ६० ।

रवि और चन्द्र का अन्तर (४५°) होने पर ३ अंगुल प्राचीन शास्त्रों में माना जाता है । यहां दिया हुआ परिलेख का कोण सूत्र में प्रत्यक्ष (१।४५) अंगुल ही शुक्ल आता है ।

अतश्चन्द्रस्य सर्वत्र शौक्ल्यमुत्क्रम जीवया
साध्यं बुधैर्यतो दृश्यो गोलांशः कर्णवर्त्मना । ६१ ।

अतः पण्डित लोग उत्क्रम ज्या द्वारा ही चन्द्र का शुक्ल परिमाण साधन करते हैं । क्योंकि गोल वस्तु में कोई भी भाग दृक् सूत्र मार्ग में ही दिखाई देगा ।

एवं शुक्र ज्ञेयो श्रृंगे चक्रार्द्धान्तिक वर्त्तिनोः
यन्त्रेण विदुषा दृश्ये चन्द्र वद्दूर दर्शिनाः । ६२ ।

इसी प्रकार ज्योतिषी लोग दूर तीक्षण यन्त्र द्वारा चन्द्र श्रृंग की तरह रवि के समीप बुध और शुक्र का भी शुक्ल श्रृंग देखते हैं ।

वर्षेऽस्मिन् भारते सौम्य प्रायशः श्रृंगमुन्नतम्
कपाल द्वितये दृश्यं कदाचिद्दक्षिणं विधोः । ६३ ।

भारत वर्ष में प्रायः पूर्व और पश्चिम दोनों कपाल में चन्द्र का उत्तर श्रृंग उन्नत दीखता है दक्षिण श्रृंग बहुत कम उन्नत होता है ।

छाया कर्ण वराद् विधो रवि शशि क्रान्त्यन्तरोत्थोदिता
या श्रृंगोन्नतिरादिभिः किलमया साव्यज्य सिद्धेर्दृशः
यद् भानो विषुवस्थिते सितरुचेर्यान्यायनान्त स्थितेः
खार्द्धेर्द्धं ध्रुवसूत्र खण्डित मिवावक्रं सदा लक्ष्यते । ६४ ।

प्राचीन आचार्य छाया वर्णन के लिये इष्ट काल के १२ अंगुल शंकु के छाया कर्ण द्वारा रवि और चन्द्र की क्रान्ति का अन्तर निकालते थे और उससे चन्द्र की श्रृंगोन्नति निकालते थे । यह विधि दृक् सिद्ध नहीं होने के कारण मैं ग्रहण नहीं कर रहा हूँ, छोड़ देता हूँ । सूर्य विषुव रेखा के ऊपर रहने पर (सायन मेषादि का तुलादि में रहने पर) साय मकर आदि के चन्द्र का बिम्बार्द्ध ख स्वस्तिक में याम्योत्तर वृत्त (रेखा) द्वारा खण्डित दीखता है । अतः बिम्बार्द्ध शुक्ल दीखता है ।

व्यर्केन्दूत्क्रमदोर्ज्यकादिम गति क्षुण्णाक्षि बाणाम्बुधि-
त्रिप्रावेन्दु (१७३४५२) हृता फलंश शभृतो ज्योत्स्नाकला बिम्बजा
अर्द्धोनस्य दलाधिकस्य तु दलं तद्धिर्न मर्द्धान्वितं
प्राक् पश्चात् सित बिम्ब मान मुदितं लिप्तात्मकं दृक् समम् । ६५ ।

अतः सूक्ष्म चन्द्र से सूर्य घटा कर शेष की उत्क्रमज्या को चन्द्र की प्रथम स्फुट गति से गुणा कर (१७३४५२) से भाग देने पर जो फल होगा, बिम्बार्द्ध से चन्द्रमा का शुक्ल भाग उतने कला कम या अधिक होगा । इस शुक्ल कला को बिम्बार्द्ध से कम चन्द्र रहने पर बिम्बार्द्ध से कम तथा बिम्बार्द्ध से अधिक चन्द्र रहने पर बिम्बार्द्ध में जोड़ने पर शुक्ल बिम्ब का कलात्मक मान होगा । यह पूर्व और पश्चिम दोनों कपाल में दृक् सिद्ध बिम्ब मान होगा ।

क्ष्माभू (११) काल लवान्तरेऽर्क शशिनोः शुभ्रांशु बिम्ब द्युतिः
प्रायेण क्षितिभृत् क्षपेश (१७) विकला मानादनूना बुधात्

न्यूना यद् गुरु बिम्बतो भवति तद् व्यक्तौ तदस्तौदयौ
रुद्रां (१) शैर्नतु सिद्धतोऽपरमत द्योत प्रवेश क्रमात् । ६६ ।

सूर्य से चन्द्र ११ अंश दूर रहने पर इसका प्रकाश १७ विकला के बुध बिम्ब से अधिक और वृहस्पति के तेजस्वी बिम्ब से कम होता है । अतः जो लोग ११ अंश दूरी (कालांश) पर चन्द्र का उदय और अस्त मानते हैं वह ठीक नहीं है । (प्राचीन आचार्य चन्द्र का उदयास्त कालांश १२° मानते हैं । कई ११° मानते हैं । किन्तु लेखक ११° तथा ११° के बीच मानते हैं ।

बिम्बस्याष्टोत्तर शत (१०८) लव प्रेष्य ते शुक्लपक्षे
प्राक्तिष्यन्ते (१) तनुरपि विधोः षष्ठ भागश्चतुर्ज्याम्
पञ्चम्यन्तेऽघ्रि रथ दशमी प्रान्तभागे त्रिपादाः
पक्षान्ते (१५)ऽर्द्धे (८) खिलदल भृति वैर्ष्णवान्ते (११) ऽरसांशः । ६७ ।

शुक्ल पक्ष प्रतिपदा के अन्त में चन्द्र मण्डल का १०८ भाग अति सूक्ष्म होने पर भी दीखता है । उसी पक्ष की चतुर्थी तिथि के अन्त में उसका १/६ भाग शुक्ल दीखेगा । पञ्चमी तिथि के अन्त में १/४ भाग शुक्ल होगा । दशमी तिथि के समाप्त होने पर ३/२ भाग शुक्ल होगा । पूर्णिमा में पूर्ण बिम्ब शुक्ल होगा । अष्टमी तिथि में आधा बिम्ब शुक्ल तथा एकादशी के अन्त में ५/६ भाग शुक्ल दीखेगा ।

क्षीरोदरोधसि धरो परि रोचमानः
सारो जबान्धवि सरोक्षत रोक्तिरोपात्
नारोप गोपन परोऽरिधरो विरोधि-
मारोत्थरोग निकरोपरतिं करोत । ६८ ।

समुद्र कूल (पुरुषोत्तम क्षेत्र में) शोभित जो सुदर्शन चक्र धारी श्री जगन्नाथ सूर्यपुत्र यम के क्रोध से लोगों की रक्षा करते हैं, तथा काम जनित सभी रोगों का नाश करते हैं, वे हमारी कामना जनित सभी व्याधि दूर करें ।

इत्युत्कलो ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
श्री चन्द्र शेखर कृतौ गणितेऽक्षि सिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
श्रृंगोन्नतिर्व्यगम दिन्द्र (१४) मितः प्रकाशः । ६९ ।

इस प्रकार उड़ीसा के विख्यात राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्रशेखर द्वारा वास्तविक घटना के समान गणना के लिए तथा छात्रों की शिक्षा के लिए लिखे सिद्धान्त दर्पण में चन्द्र श्रृंगोन्नति सम्बन्धी १४ वां अध्याय समाप्त हुआ ।

पञ्चदश प्रकाश

महापात वर्णन

यात्रादीनां शुभ फल मलं कर्मणा सत्कृतानां
यस्मिन् भस्मी भवति गण का यत्र मुह्यन्ति भूयः
तं योगेन्द्रं विवरण जयाद्येषु सूर्योपराग
प्रख्यं वक्ष्याम्यह मिह महापात मातत्य तत्वात् । १ ।

सज्जनों के यात्रा, उपनयन, विवाह आदि के शुभ कर्म जिस महापात के कारण भस्म हो जाते हैं, जिस महापात की चर्चा में सिद्धान्ती लोग भी भ्रमित हो जाते हैं, और जिस महापात में योग में दान, जप और स्नान आदि का फल सूर्य, ग्रहण के समान ही शुभ होता है । उसी महापात का वर्णन मैं विभिन्न शास्त्रों के अनुसार कर रहा हूँ ।

वैधृत्य व्यतिपाताख्यौ भेद्यौ पातस्य कीर्त्तितौ
गोलायन क्रान्ति भेद सम्भवौ रवि चन्द्रयोः । २ ।

पाद दो प्रकार के हैं- वैधृति और व्यतीपात । सूर्य और चन्द्र दोनों की क्रान्ति बराबर होने पर पात होता है । एक ही अयन में रहने पर (भिन्न गोल में) वैधृति योग तथा भिन्न अयन और एक गोल में रहने पर व्यतीसपात होता है ।

स्याद् गोल सन्धिरर्केन्दो र्विषुवद् वलयस्थयोः
सन्धि रायन एव स्यात् परमापक्रम स्थयोः । ३ ।

रवि और चन्द्र विषुव वृत्त (वृहत् अहोरात्र वृत्त) में रहने पर दोनों की गोल सन्धि होती है । दोनों परम क्रांति के स्थान पर रहने से उनकी अयन सन्धि होती है ।

क्रान्ति साम्यं यदा भिन्नायनयोः एव गोलयोः ।
योगः स्याद् व्यति पाताख्यं तदा चन्द्रविवस्वतोः । ४ ।

रवि और चन्द्र एक गोल तथा भिन्न अयन में रहने पर जब दोनों की क्रान्ति बराबर हो तो व्यतीपात योग होता है ।

विभिन्न गोल यो रेकायनयोः क्रान्ति तुल्यता
यदा तदा वैधृताख्यः सम्भवेद् दृष्टि योगजः । ५ ।

रवि और चन्द्र भिन्न गोल में पर एक ही अयन में हों और क्रान्ति बराबर हो तो वैधृति योग होता है । क्रान्ति समान होने पर परस्पर दृष्टि योग होता है ।

सूर्य सिद्धान्ते-तुल्यांशु जाल सम्पर्का त्तयस्तु प्रवहाहतः
तद् दृक् क्षेपोद् भवो वह्नि लोका भावाय जायते । ६ ।

(सूर्य सिद्धान्त में) रवि और चन्द्र दोनों की समान क्रान्ति होने पर उनकी

समान दिशा (या शक्ति) की किरणों के संयोग से अग्नि प्रवाह होता है। जिससे प्राणी जगत नष्ट होता है।

विनाशायाति पातोऽस्यः लोकानाम सकृद् यतः
व्यतिपातः प्रसिद्धोऽतः संज्ञा भेदेन वैधृतिः । ७ ।

अति पात योग सदा अकल्याण कर और संसार का विनाश करने वाला होता है। इसी के अन्य नाम व्यतीपात तथा वैधृति भी हैं।

यत्कृष्णों दारुण वपु र्लोहिताक्षो महोदरः
सर्वानिष्ट करो रौद्रो भूयोभूयः प्रजायते । इति । ८ ।

प्रत्येक पात का वर्ण कृष्ण, शरीर अति भयंकर तथा आखें लाल होती हैं। ये दोनों अति प्रचण्ड हैं और प्रति मास ये दोनों उत्पन्न होते हैं। (मध्यम मान की तुलना में स्पष्ट मान से पात होना अधिक अनिष्ट कारी होता है। (सूर्य सिद्धान्त उद्धरण समाप्त)

चलांश संस्कृतार्के न्दोर्योगश्चक्रं यदा भवेत्
तदा सन्निहितो योगो वैधृत्यः पुनरेतयोः । ९ ।

अपनांस संस्कृत रवि और चन्द्र का राशि आदि का योग जब १२ राशि हो तब वैधृति योग निकट होता है।

योगात् षड् भवनान्यष्टा दर्श वास भवन्ति चेत्
व्यतिपातस्तदासन्नो भिन्न पादस्तयो स्तुतौ । १० ।

इसी प्रकार अपनांश संस्कृत रवि और चन्द्र आदि की राशि आदि का योग ६ राशि या १८ राशि होता है। तो व्यतीपात योग आसन्न होता है। रवि और चन्द्र दोनों वृत्त के भिन्न पादों (९०°) में रहने पर ही पात होता है।

प्रायः तत् सम्भवो मासे द्विर्भवेत् न कचिद् भवेत्
क्वचित्सन्निहिते काले द्विःस्याद् विक्षेप भेदतः । ११ ।

प्रायः प्रतिमास दोनों योग (वैधृति और व्यतीपात) एक एक बार होते हैं) किसी किसी मास में बिल्कुल ही पात नहीं होता है। चन्द्रशर की उन्नता के कारण कभी कभी जल्दी जल्दी पात होता है - तब एक मास में २ बार भी ये पात होते हैं।

पात सम्भव कालोत्थ योगान् वक्षेऽयनांशकैऽ
कली कृतैर्द्युगुणितैश्चक्र (२१,६०००) चक्रार्द्ध (१०,८००) जाः कलाः । १२

पात सम्भावना कला के समय होने वाले विष्कम्भक आदि योगों का विवरण दे रहा हूँ। अयनांश को कला कर दो गुणा करते हैं। इसको चक्र कला (२१,६००) तथा चक्रार्द्ध कला (१०,८००) में-

विलोम संस्कृता श्चक्रा धिकाश्चेत् चक्र शोधिताः ।
खखाष्टा (८००) प्ता गता योगा विष्कुम्भाद्याः सरूपकाः । १३ ।

विलोम संस्कार (अयनांश योग होने पर वियोग तथा ऋण होने पर योग) करते हैं । फल (२१,६००) से अधिक होने पर उसमें चक्र घटाते हैं । शेष में (८००) से भाग देने पर लब्धि विष्कुम्भ आदि से गत योग होगा । लब्धि में एक जोड़ने पर -

वर्त्तमानस्ततः शेषात् षष्टिघ्नाखशराष्टभिः (८५०)
भाजितात् फल नाड्याढ्या यदा सूक्ष्मा भवन्ति हि । १४ ।

वर्त्तमान योग की संख्या होगी । (८००) से भाग देने पर बचे शेष को ६० से गुणा कर (८००) से भाग देने पर जितना नाड़ी आदि फल होगा उसे वर्तमान योग में जोड़ने पर वह सूक्ष्म होता है ।

तदैवेन्दु शराभावे स्यान् मध्य समयः शरात्
प्राक् पश्चात् सम्भवेत्पातः साध्यताः प्रथमं ततः । १५ ।

इस समय चन्द्र का शर नहीं रहने पर पात का भी समय होता है । शर होने पर इस समय से पहले या बाद में पात होता है । अतः पहले मध्यम मान के अनुसार क्रान्ति समान होने पर स्थूल पात का साधन करना चाहिये ।

अथेदानीं शुक्र (२४) वृद्ध्यौ तदीया (३) दम पादयो
भवति प्रायशो मध्य वैधृत्य व्यतीपातयोः । १६ ।

अभी (१८६८ ई.में) अयनांश २२° है । इस समय शुक्र (२४ वां) तथा वृद्धि (११ वां) योग में क्रमशः वैधृति ३ य पाद तथा व्यतीपात प्रथम पाद प्रायः पड़ता है । अतः उस समय को इनका मध्य समय कहा जाता है ।

अतोऽनुमानाय तत्कालं चक्र चक्रार्द्ध जं यतेः ।
तद् योग दिनजौ कार्यौ सूक्ष्मौ सूर्य निशाकरौ । १७ ।

अतः शुक्र योग और वृद्धि योग को चक्र (२१,६००) और चक्रार्द्ध (१०,८००) का समय मान कर उस दिन का तात्कालिक सूक्ष्म सूर्य और चन्द्र साधन करेंगे ।

न्यूनाधिका विलिप्तासु तद् भुक्त्यन्तर भाजिताः
लब्धैर्दण्डादिभिः कालः पूर्वः कार्यो युतोनितः । १८ ।

(रवि और चन्द्र) दोनों का अयनांश संस्कार कर जोड़ेगे । योगफल शुक्र योग में (२१,६००) कला से और वृद्धि योग में (१०,८००) कला से कितना कम या अधिक है यह ज्ञात करेंगे । इसको चन्द्र और रवि के गति अन्तर कला से भाग देने पर लब्धि दण्ड आदि होगा । इस दण्ड आदि को पूर्व अनुमानित समय में योग या वियोग करेंगे । (रविचन्द्र योग कला चक्र या चक्रार्द्ध से कम हो पर योग अन्यथा वियोग)

एवं स्यादसकृत्कर्म चक्र भार्द्ध समीकृते
ततस्तत्काल जात्यातात् साध्यः सूर्येन्दु सायकः । १९ ।

इस प्रकार बार बार करने से सायन रवि और सायन चन्द्र का योग चक्र या चक्रार्द्ध के समान हो जायेगा । इसके बाद चन्द्र के सूक्ष्म शर का साधन करेंगे ।

भू पृष्ठ निष्ट दृष्टीना मत्राप्य नु प योगतः
नैव कार्येन्दु दृक् कर्म लम्बनावनति क्रिया । २० ।

ये सभी योग आंख से नहीं दीखने के कारण चन्द्र में आक्षं, आयन कर्म या लम्बन, नति कर्म नहीं किया जायेगा । भूकेन्द्र दृष्टि से ही पात का साधन किया जायेगा ।

सूर्य सिद्धान्ते- अथौ ज पद गस्येन्दोः क्रान्ति विक्षेप संस्कृतः
यदास्यादधिका भानोः क्रान्तेः पातो गतस्तदा । २१ ।

(सूर्य सिद्धान्त में) विषम वृत्तपाद (प्रथम और तृतीय) में चन्द्र की शर संस्कृत क्रान्ति (स्फुट क्रान्ति) सूर्य की क्रान्ति से अधिक होने पर पात बीत चुका है ऐसा समझेंगे ।

ऊना चेत्स्यात्ततो भावो वामं युग्मपदस्य च
यदाल्पत्वं विधोः क्रान्तिर्विक्षेपाच्चेद् वि शुद्ध्यति । इति । २२ ।

विषम पाद के चन्द्र की स्फुट क्रान्ति सूर्यक्रान्ति से कम होने का अर्थ है कि पात आने वाला है । समवृत्त पाद (२ य तथा चतुर्थ) के चन्द्र की स्फुट क्रान्ति सूर्य क्रान्ति से अधिक होने का अर्थ है कि पात होने वाला है, कम होने का अर्थ है कि पात बीत चुका है । (उद्धरण समाप्त)

गोलज्ञैः सकलं ज्ञेयं गणकै र्वासना बलात्
गतैष्यत्वं हि बालानां बोधाय गणितक्रमः । २३ ।

गोल ज्ञान वाले गणक तर्क द्वारा पात होने वाला है या हो चुका है यह जान सकते हैं । किन्तु अज्ञ लोगों के ज्ञान के लिये गत और गम्य गणित क्रिया लिखी गयी है ।

योगभार्द्धन्वयोः सिद्धा यदा समकलीकृतिः
तत्कालतो गते पाते संशोध्या, षष्टिनाड़िकाः । २४ ।

जब रवि और चन्द्र की राशि का योग चन्द्र या चक्रार्द्ध की कला के बरा बर हो जाय, तब यदि पात बीत चुका है, उस समय से ६० दण्ड घटायेंगे ।

गम्यतास्तत्र संयोज्याः पुनस्तत्काल सम्भवैः
सूर्येन्दुपात विशिखैः साध्यं क्रान्त्यान्तरं तयोः । २५ ।

पात यदि होने वाला है तो उस समय में ६० दण्ड जोड़ेगे । इस समय का

रवि, चन्द्र का पात और शर निकाल कर रवि और चन्द्र की स्फुट क्रान्ति का अन्तर निकालेंगे ।

तदा प्राक् कालतः चेत् स्याद् गतैष्यत्व विपर्ययः
तदात् षष्टि दण्डान्त मध्यं पातस्य सम्भवेत् । २६ ।

इस समय यदि पहले गये समय से पात (गत या गम्य) से उल्टा दीखे (गम्य या गत) तो उक्त (६०) दण्ड में स्फुट क्रान्ति समान होगी ।

यदा गतस्य गतता गम्यता च भविष्यतिः
तदादूरे भवेद् योगानतु तद्दिवसान्तरा । २७ ।

पर यदि पूर्व समय का गत या गम्य पात ठीक उसी प्रकार गत या गम्य ही देखा जाय तो पात उक्त ६० दण्ड के बाद होगा । ६० दण्ड के दिन के भी तर नहीं होगा ।

तत् सिद्धये गतिः साध्या याम्य सौम्यापमोद् भवा
प्राक् पश्चात् कालयोः पात यातैष्य त्व विपर्यये । २८ ।

योग सिद्धि के लिए रवि और चन्द्र की क्रान्ति का अन्तर निकालेंगे । चक्र और चक्रार्द्ध समीकरण काल के पूर्व और पर काल के पात की पत और गम्यता के विपरीत होने पर समीकरण काल का

तत्क्रान्त्यन्तरयो र्योगस्त्यागस्तद विपर्यये
भवेत्क्रान्ति गति साध्या पातार्थं कलिकात्मिका । २९ ।

क्रान्ति का अन्तर और ६० घटिका संस्कृत समीकरण कालिक क्रान्ति अन्तर-इस प्रकार दो क्रान्ति अन्तरों का योग करेंगे । गति और गम्यता उल्टा नहीं होने पर दोनों क्रान्ति अन्तरों का अन्तर करेंगे । पात निकालने के लिए यह कलात्मक मान प्रथम क्रान्ति गति होगी ।

आद्य क्रान्त्यन्तर कलाः षष्टिघ्ना गति भाजिताः
फलं नाड्यादि संस्कार्यः काले समकालोद् भवे । ३० ।

प्रथम क्रान्ति अन्तर कला को ६० से गुणा कर प्रथम क्रान्ति गति से भाग देने पर जो लब्धि होगी उसको समीकरण काल में पात होने वाला (गम्य) हो तो योग करेंगे । यदि पात बीत चुका हो (गत) तो समीकरण समय से उसे घटायेंगे ।

गतैष्यता वशाद् भूयस्तत्काल क्रान्तितः पुनः
साध्यं क्रान्त्यन्तरं प्राग् वद् गतैष्यत्वाद् गतेः कलाः । ३१ ।

पात की तात्कालिक गत या गम्यता के अनुसार इष्ट काल में पुनः रवि चन्द्र और क्रान्ति द्वारा पहले की तरह क्रान्ति अन्तर का साधन करेंगे । और पहले की तरह क्रान्ति गति कला निकालेंगे-यह द्वितीय क्रान्ति गति होगी ।

कालेन यावता यावल्लभ्यतेऽप्यक्रमान्तरम्
तत्षष्टि गुणितं तत्तत्काल नाड़ी हृतं गतिः । ३२ ।

संस्कृत काल के क्रान्ति अन्तर को इष्ट नाड़ी से गुणा कर द्वितीय क्रान्ति गति से भाग देने पर घटिका फल से संस्कृत समीकरण काल का पुनः संस्कार करेंगे। इष्ट काल के क्रान्त्यन्तर को ६० से गुणा कर इष्ट काल से भाग देने पर क्रान्ति गति होगा।

असकृत् कर्म संसिद्ध काल भुक्त्यपमान्तरैः ।
क्रान्त्योः साम्यं यदा स स्यात् मध्यः कालोऽन्तिमा गतिः । ३३ ।

इस प्रकार बार बार करने से इष्ट काल के क्रान्ति की अन्तर गति जो होगी, उससे उस समय के रवि और चन्द्र की स्फुट क्रान्ति में समानता आयेगी। वही पात मध्य काल होगा। अन्तिम गति पात मध्यकाल की क्रान्ति अन्तर गति होगी।

पूर्णो योगस्तदैव स्याद् बिम्बयोर्मध्य विन्दुजः
स्थिति काला वगतये स्पर्शमोक्षौ ब्रुवेऽधुना । ३४ ।

पात के आदि से अन्त तक पूरा समय जानने के लिए पात के स्पर्श और मोक्ष के बारे में मैं अब कहता हूँ।

पूर्व वद् बिम्ब योर्मान योगार्द्ध रवि चन्द्रयोः ।
आनीयाभ्ररसा (६०) भ्यस्तं क्रान्ति गत्यन्त्ययो भजेत् । ३५ ।

चन्द्र ग्रहण की विधि से पात मध्य कालीन रवि और चन्द्र का बिम्ब निकाल कर उनका मानैक्यार्द्ध (बिम्ब मान के योग का आधा) निकालेंगे। उसे (मानैक्यार्द्ध को ६०) से गुणा कर अन्तिम क्रान्ति गति से भाग देंगे।

लब्धा भवन्ति पातस्य मध्य स्थित्यर्द्ध नाड़िकाः ।
मध्य कालस्तदु नाड्य स्पर्शो मोक्षस्य मध्यमः । ३६ ।

फल पात की मध्यम स्थिति अर्द्ध नाड़ी होगी। पातमध्य काल से इसे घटाने पर मध्यम स्पर्श काल तथा पात काल में मध्यम स्थिति अर्ध जोड़ने पर मध्यम मोक्ष काल होगा।

तत्काल प्रभवार्केन्दु स्फुट क्रान्त्यो यदन्तरम्
तन्मान योगदलतो न्यूनं चेत् स्पर्शको गतः । ३७ ।

पुनः तत्कालीन रवि और चन्द्र की स्फुट क्रान्ति का अन्तर करेंगे। यह मानैक्यार्द्ध से कम होने का अर्थ है कि स्पर्श समय बीत गया है (या मोक्ष होने वाला है।

मोक्षो भावो यदा तस्मात् बहुक्रान्ति द्वयान्तरम् ।
स्पर्शो भावो गतो मोक्षस्तत् क्रान्त्यन्तर लिप्तिकाः । ३८ ।

मानैक्यार्द्ध से क्रान्ति अन्तर अधिक होने पर स्पर्श होने वाला है ऐसा समझेंगे। (या मोक्ष बीत चुका है)

खरसे (६०) गुंणित्ता मध्य स्थित्यर्द्ध घटिका हताः
लब्धा भुक्ति कलाः स्पर्श मोक्षोत्य प्रथमा मताः । ३९ ।

मध्यम स्पर्श और मोक्ष कालिक क्रान्ति अन्तर कला आदि को ६० से गुणा कर मध्यम स्थिति अर्द्ध घटिका से भाग देने पर प्रथम स्पार्शिक और मौक्षिक क्रान्ति कला आयेगी।

मान योगार्द्ध विकलास्तद् भक्ताः स्पर्श मोक्षजा
स्थित्यर्द्ध नाड़िका मध्ये हीनाढ्या समये पुनः । ४० ।

स्पार्शिक या मौक्षिक मानैक्यार्द्ध विकला को क्रमशः स्पर्शिक और मौक्षिक क्रान्ति गति कला से भाग देने पर स्पर्श और मोक्ष की स्थिति अर्ध नाड़ी आयेगी। इसको पात मध्य काल में घटाने और जोड़ने से क्रमशः स्पर्श और मोक्ष काल आयेगा।

तत्काल क्रान्ति विवर लिप्तिकाः षष्ठि ताड़िताः
द्वितीय स्थिति खण्डाप्ताः लब्धा भुक्तिरिति क्रमात् । ४१ ।

पुनः इस स्पर्श और मोक्ष काल के क्रान्ति अन्तर कला को ६० से गुणा कर क्रमानुसार द्वितीय स्पर्शिक तथा मौक्षिक स्थितिअर्द्ध घटी से भाग देने पर द्वितीय स्पार्शिक तथा मौक्षिक क्रान्ति गति (अन्तर) होगा।

तत्क्रान्त्यन्तर योगार्द्ध साम्ये स्पर्श विनिर्गमौ
भवेतां सुस्थिरौ स्पष्टौ दण्डाश्च स्थिति खण्डजाः । ४२ ।

इस प्रकार बार बार करने से स्पार्शिक और मौक्षिक क्रान्तिअन्तर तथा स्पार्शिक और मौक्षिक मानैक्यार्द्ध समान होने पर स्पर्श और मोक्ष काल स्थिर होगा। उससे स्थित्यर्द्ध नाडिका आदि भी स्थिर होगा।

सूर्य सिद्धान्ते-आद्यन्त कालयोर्मध्ये कालोज्ञेयोऽति दारुणः ।
प्रज्वल ज्वलनाकारः सर्व कर्मेषु गर्हितः । ४३ ।

(सूर्य सिद्धान्त में) पात के आरम्भ से अन्त तक का समय प्रज्वलित अग्नि के समान अत्यन्त उग्र है तथा इस अवधि में (विवाह, उपनयन आदि) सभी शुभ कार्य निन्दनीय हैं।

एक काष्ठा गतं यावदर्केन्दो मण्डलान्तरम्
सम्भवस्ताव देवास्य सर्व कर्म विनाश कृत् । ४४ ।

रवि और चन्द्र की एक ही क्रान्ति होने पर पात की उत्पत्ति होती है। पात होने से सभी शुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं।

स्नान दान जप श्राद्ध व्रत होमादि कर्मभिः
प्राप्यते सुमहत् श्रेयः तत् कालज्ञानतः तथा । इति । ४५ ।

पात का समय जान कर उस समय ग्रहण काल के समान स्नान, दान, जप, श्राद्ध, व्रत और होम आदि करने से अनेक प्रकार का मंगल होता है । (उद्धरण समाप्त)

मध्यमः स्थिति कालोऽस्य प्रहर द्वितीयं भवेत्
नव दण्डात्मकोन्यूनः सत्र्यंशाहर्द्वयं (२।२०) महान् । ४६ ।

पात का मध्यम स्थिति काल दो प्रहर अर्थात् १५ दण्ड होता है । न्यूनतम स्थिति काल ९ दण्ड तथा अधिकतम स्थिति काल (२।२०) दिन होता है ।

चक्रान्ते चन्द्र पातोच्चौ रविश्चक्रान्त सन्निधौ
चन्द्रश्चेद् भार्द्धगस्तत्र पातस्याल्पस्थिति र्भवेत् । ४७ ।

१२ राशि के अन्तिम भाग में चन्द्र का उच्च तथा पात रहे, १२ राशि के निकट सायन रवि तथा ६ राशि के निकट सायन चन्द्र होने पर पात का स्थिति काल अत्यन्त कम होता है ।

चन्द्रोच्च पात शशिनो यदिस्युः कर्कटादिगाः
धनुरन्त्यां घ्रिगो भानु स्तदा स्यात् सुचिर स्थितिः । ४८ ।

चन्द्र का उच्च, पात और स्वयं चन्द्र (सायन) यदि कर्क राशि के आरम्भ में हों, (सायन) सूर्य धनुराशि के अन्तिम पाद में हो तो पात का स्थिति काल दीर्घ होता है ।

पातोऽत्र द्वित्रिभागोनः स्यात् चेत् द्विः सन्निधौ भवेत ।
अयनान्ते विधोर्न स्याद् गजाक्षं (२८) शाधिकेऽपमे । ४९ ।

चन्द्र का पात यदि कर्क के आरम्भ में रहने के बदले मिथुन राशि के २८ अंश से कर्क के १ अंश के बीच में रहे तो अति कम समय में २ बार क्रान्ति साम्य होता है । अयन समाप्ति के समय यदि चन्द्र की स्पष्ट क्रान्ति २८ अंश से अधिक हो तो उसका क्रान्ति साम्य बिल्कुल नहीं होता है ।

अत्र विक्षेप जो ग्राह्यो गोल भेदः सितद्युतेः
न ग्राह्योऽयन भेदोऽस्य सायनाभिमुख स्थितेः । ५० ।

पात साधन के लिये चन्द्र के शर में गोल भेद (पूर्व या पश्चिम गोल) से अन्तर किया जाता है । चन्द्र अपने अयन की तरफ होने के कारण उसका अयन भेद नहीं होता है ।

गोल सन्धौ क्रान्ति गतिर्वह्वि सांर्यन्न भिद्यते ।
अल्पा सायन सन्धौतु गत्येक्षोर्भिद्यते क्वचित् । ५१ ।

स्फुट क्रान्ति के लिये यह (अयन,भेद) लिया जाता है। गौल सन्धि में स्फुट क्रान्ति का शर के कारण अयन भेद नहीं होता। किन्तु अयन सन्धि में क्रान्ति गति का शर गति के कारण अन्तर पड़ता है। इसका कारण है गोल सन्धि में क्रान्ति गति अधिक और अयन सन्धि में कम होती है।

याम्य सौम्येऽयने चन्द्र सौम्य याम्य गतिः शरात्
दृष्टाप्ययन साम्मुख्या भावान्नायन भिन्नता। ५२।

दक्षिण और उत्तर गोल में शर के कारण चन्द्र की क्रमशः उत्तर और दक्षिण गति (स्फुट क्रान्ति की उत्तर और दक्षिण गति) दीखने पर भी आयन के अनुसार दिशा का अन्तर नहीं होता है।

पातेन दूरतः खेटो विक्षिप्तोऽपि स्वपार्श्वयोः
न त्यजेत्क्रान्ति वृत्तस्य साम्मुख्यं हि कदाचन। ५३।

पात द्वारा ग्रह (चन्द्र) क्रान्ति वृत्त के दक्षिण और उत्तर की तरफ विशेष विक्षिप्त होने (फेंके जाने) पर भी वह क्रान्ति की दिशा में ही चलता रहता है। क्रान्ति वृत्त की दिशा में गति नहीं बन्द होती, कितना भी अधिक शर क्यों न हो।

वराह मिहिराचार्ये वृहद् यात्रा ह्वये श्रुते
व्यवस्था विहिता सैव बहु युक्त पुरः सरम्। ५४।

वृहत्यात्रा नामक ग्रन्थ में वराह मिहिराचार्य ने महापात (वैधृति तथा व्यतीपात) की गोल और अयन व्यवस्था का बहुत युक्ति युक्त वर्णन किया है।

रवीन्दु योगतो योगो ये सप्ता विंशतिः पुरा
साधिता स्तत्र यो सप्त विंश सप्ददशा विमौ। ५५।

पहले ग्रह स्फुट अध्याय में रवि और चन्द्र की राशि आदि योग के अनुसार २७ योगो का वर्णन किया गया है। इन २७ योगों में २७ वां तथा १७ वां योग-

वैधृति व्यतीपाताख्यौ योगावत्यन्त दारुणौ
तौ हि खार्जुर चक्रैकार्गलगार्केन्दु दृग् भवौ। ५६।

क्रमशः वैधृति तथा व्यतीपात कहे जाते हैं। जो कि अत्यन्त दारुण योग हैं। सूर्य और चन्द्र क्रान्ति होने से) खार्जुर चक्र में एक लकड़ी से बंधे (तेल पेरने की घानी या अन्न का दाना अलग करने की लिए बैलों की जोड़ी) रहने से दोनों अत्यन्त क्रुद्ध होते है और उनकी दृष्टि से यह दो योग उत्पन्न होते हैं।

सूर्य सिद्धान्ते- सार्पे (९) न्द्र (१८) पौष्ण (२७)
धिष्णा नामन्त्याः पादाम स्कन्धयः
तदग्रभा (१०।१९।१) द्यपादार्द्ध गण्डान्तं
नाम कीर्त्यते। इति। ५७।

अश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्र के अन्तिम पाद में राशि और नक्षत्र की सन्धि होने के कारण इनके अन्तिम पाद को गण्ड कहा जाता है। इनके अगले नक्षत्रों (मघा, मूल तथा अश्विनी) के प्रथम पाद अर्द्ध को गण्डान्त कहा जाता है।

दृष्टा लग्न नवांशक इह मयो च्यते कुलीरे झषे
कीटेन्त्या हरिचाप मेष मुखगा मीनाज सम्बन्धिनः
तेखण्डान्त भ सन्धि पात सदृशाः सर्वेषु कर्मस्वपि
त्याज्या विष्टि मुखास्त्वनिष्ट निकरा होरागमोक्ताः पुनः । ५८ ।

राशि संधि के दोष में शुभ कर्म सब प्रकार से त्याज्य हैं। कर्क, वृश्चिक और मीन राशि का अन्तिम (९ वां) नवांश मीन राशि में होता है। सिंह, धनु और मीन का प्रथम नवांश मेष आदि में पड़ता है। अतः ये सभी भी नवांश दोष युक्त हैं। ये नवांश गण्डान्त की तरह राशि और नक्षत्र की सन्धि में पड़ने के कारण इनमें सभी शुभ कर्म त्याज्य हैं। विष्टि आदि अनिष्ट कारक करण भी त्याज्य हैं। होरा शास्त्र में इनको अनिष्ट कर कहा जाता है।

प्राक् कल्पे भूग्रहादि स्थिर चर सृजतः खाभ्र वेदाद्रि वेदा (४७,४००)
दिव्याब्दा ये व्यतीय सरसिज जनुषः प्रत्यहं पर्ययाणाम्।
तावत् कालात् प्रवृत्ते रितर दिने मुखाद्यात् सौराब्द संघा
सृष्ट्याब्दाः सृष्टि कालव्यवकलन वशादूक्त पूर्वा ममोति । ५९ ।

चराचर सृष्टि करने में ब्रह्मा को ४७,४०० दिव्य वर्ष लगे, जिस समय को सृष्टि काल या सृष्टि वर्ष कहते हैं। सृष्टि वर्ष समाप्त होने के अगले दिन से ही ग्रह, उच्च और पात आदि का भगण आरम्भ हुआ। अतः मैंने पहले ही लिखा है कि ग्रह साधन करने के लिए कल्पवर्ष से इतना सृष्टि वर्ष घटाया जायेगा।

सृष्ट्यन्ते चैत्र शुक्ल प्रतिपदिय यम को टयुद् गमे तिग्मभानो-
स्तद् वारे सोच्च पाता खिल गगन चराश्चक्रवक्त्रे नियुक्ताः
तस्माद्दस्राब्द मासापम भगण मुखा यौग पद्यात् प्रवृत्ताः
किञ्च ब्रह्महरादेर्युग मनु घटिका मात्र मन्यत्र किञ्चित् । ६० ।

सृष्टि वर्ष की समाप्ति पर चैत्र शुक्ल प्रतिपदा तिथि आरम्भ हुयी। यमकोटि पत्तन नगर में सूर्य का उदय (लंका में मध्य रात्रि) थी। यह दिन रविवार माना गया है। इस समय ब्रह्म ने ग्रह, उच्च, पात आदि को अपनी अपनी कक्षा में गति आरम्भ करने के लिए अश्विनी नक्षत्र के आदि बिन्दु (मेष आदि विन्दु) से छोड़ दिया। ठीक इसी समय से दिन, मास, वर्ष, क्रान्ति और भगण आदि की प्रवृत्ति आरम्भ हुई। ब्रह्मा के दिन से इन सबका आरम्भ नहीं हुआ। उस समय से केवल घटी, युग और मनु आदि की उत्पत्ति हुयी।

ये प्रोक्ताः सदसत्फलाय जगतः श्री व्यास पित्रादि भो
राजाद्या जलदाः सदादिपतयो भागाः सुयोगादयः
भावाभाव जुषा नदृष्टवशतः तत् तत् फलानां मया
कादीचित्कतया नतेत्र गदिता स्त्यक्ताश्च सिद्धान्तिभिः । ६१ ।

पराशर आदि ऋषियों ने जगत के शुभ अशुभ फल के लिये राजा, मन्त्री और पालक, द्रोण और पुष्कर आदि मेघ, आटका धिपति, अग्नि, वर्षा और व्याधि आदि का भाग, राज योग और अधिराज योग आदि का वर्णन किया है । ये सब कभी कभी वर्णित फल देते हैं । कभी नहीं भी देते हैं । यह सोचकर मैने इनके विषय में नहीं लिखा है । अन्य सिद्धान्त ग्रन्थों में भी इनके बारे में नहीं लिखा है ।

यत्सूर्येन्दो र्भगण विरतिः स्याद् युगे तत् कृतां (४) शे
निःशेषत्वं क्षिति दिनततो द्वापरान्त प्रसिद्धाः
सृष्टे रब्दायुगकृत (४) लवे (१०,८०,०००) नोद्धताः शेष शून्याः
स्तस्मात् नोक्त स्तपन शशिनो द्वापरान्त ध्रुवोऽत्र । ६२ ।

प्रति महायुग के अन्त में सूर्य और चन्द्र का भगण पूर्ण होता है । इस महायुग के १/४ अंश (१०,८०,०००) वर्ष में भी सावन अहर्गण पूर्ण होता है । महायुग के एक पाद में) इनकी (सावन अहर्गण की) संख्या (३९,४४,७९,४५७) है । द्वापर अन्त तक बीते सृष्ट्यब्द (१,९५,५८,८०,०००) को (१०,८०,०००) से भाग देने पर लब्धि (१८११) तया शेष शून्य होता है । इस कारण द्वापर अन्त में रवि और चन्द्र का ध्रुव कहने की आवश्यकता नहीं है ।

सृष्ट्यब्दानां कलि गत समानां दिनौघ सुमेलः
स्यान्मध्यार्क क्रिय मुख गतावत्र तत् पूर्वघस्रे,
चैत्राद्युक्ता दिनगतियुता स्वे ध्रुवाः पञ्जिकादौ
सौरे तुल्याः करण शरदां तद्दिनां गार (३) वारात् । ६३ ।

मध्य सूर्य मेष आदि में प्रवेश करने के समय (उस दिन का) सृष्टि आरम्भ से द्वापर अन्त तक गत वर्ष (१,९५,५८,८०,०००) एवं कलि गत वर्ष (४९७०) (१८६८ ई. करणाब्द) का अहर्गण क्रमशः (७,१४,४०,२२,९६,६२७) तथा (१८,१५,३३४) है । दोनों की वार शुद्धि ठीक है ।

करणाब्द के आरम्भ में मध्यम रवि मेष मे प्रवेश करने के पहले दिन मध्यम मान से चैत्र शुक्ल प्रति पदा था । उस दिन का जो ध्रुव आदि कहा गया है । उसमें (ग्रह की दैनिक गति) जोड़ने से पञ्जिका में वह सूर्य सिद्धान्त के अनुसार मध्यम ग्रह का ध्रुव होगा । करणाब्द अहर्गण का वार आदि मंगल वार से आरम्भ होगा ।

चान्द्रे वारे व्यरचि करणाब्दादि राद्या (१) तिथिर्या
सावैशाखे यदपि मलिने स्पष्ट सूर्येन्दु जेऽभूत्
मध्यार्केन्दूद् भव मलिन मासस्य पूर्णं गतत्वा
तस्याः खेट ध्रुव समुचितः शुद्ध चैत्रादि भावः । ६४ ।

करणाब्द का पूर्व दिन मैंने सोमवार माना है । यह दिन चैत्र शुक्ल प्रतिपदा था । स्पष्ट मान से यह वैशाख अधिमास की प्रतिपदा थी । इस करणाब्द आरम्भ दिन के पहले मध्यम मान का वैशाख अधिमास पूर्ण हो जाने से यह चैत्र प्रतिपदा शुद्ध माना गया और यही शुद्ध शुक्ल प्रतिपदा सोमवार दिन ग्रह पात आदि का ध्रुव कहने के लिये अत्यन्त उपयुक्त है ।

एतत् पूर्वं सपद कृत देवार्थ भूधृत्यहोभि (१८,१५,३३४।१५)
र्यां कल्यादौ मधु मुखति थिस्तुल्य मध्येन्द्विनोत्था
प्राग्भि प्रोक्ता ध्रुव गण युता सास्फुटे माधवोऽभूत्
तत् खेटादि ध्रुव निगमने मध्य मध्यादिरिष्ट । ६५ ।

करणाब्द आरम्भ से (१८,१५,३३४-१५) दिन पहले कलियुग का आरम्भ लंका की अर्द्ध रात्रि में हुआ था । उस समय मध्यम मान का चैत्र शुक्ल प्रतिपदा प्राचीन सिद्धान्तियों के मत से था । पुनः अब करणाब्द (१८६८ ई.) का प्रथम दिन स्पष्ट मान से वैशाख में पड़ रहा है । यह चैत्र शुक्ल प्रतिपदा निकालने के लिये द्वापारान्त ध्रुव जोड़ना पड़ेगा । इससे लगता है कि ग्रह, उच्च और पात आदि का ध्रुव कहने के लिये मध्य और स्पष्ट काल जानना होगा ।

कल्यब्द वेदकृत खगुणै (३०४४) रुनिता विक्रमा ब्दा
स्तेशाकाब्दाः शर गुण कुभि (१३५) स्तेकु पक्षाभ्र चन्द्रैः (१०२१)
शास्त्राब्दास्तेऽपिच विधुशरै (५१) र्भास्करीयाब्दकाः स्यु-
स्तेनागेन्द्रै (१४८) रधृति नगै (७१९) कौचना दार्पणाब्दाः । ६६ ।

कलि गत वर्ष से ३०४४ वर्ष घटाने पर वर्तमान विक्रमाब्द होगा । विक्रमाब्द से १३५ वर्ष घटाने से शकाब्द होगा । शकाब्द से १०२१ घटाने से भास्वती अब्द होगा) भास्वती शास्त्राब्द से ५१ वर्ष कम या विक्रमाब्द से १२२१ वर्ष घटाने से भास्कराब्द होगा भास्कराब्द से १४८ घटाने से कुचनाब्द तथा भास्कराब्द से ७१९ घटाने से दर्पणाब्द (सिद्धान्त द्रर्पण का) होगा ।

यस्मिन् खेटायन मुदितं सृष्टिजाहर्गणेभ्यः
सिद्धान्तोऽसौ युगदिन गणात् यत्रतन्त्रं तदेव
यस्मिन् शाकाद्यभिमत समा वासरे भ्यस्तदुक्तं
शास्त्रं प्राज्ञैः करण मिति तत्कार्य मत्रास्ति सर्वम् । ६७ ।

जिस (ग्रन्थ) में सृष्टि आदि के अहर्गण द्वारा ग्रह साधन का वर्णन हो उसे सिद्धान्त कहते हैं । युगादि अहर्गण से जो ग्रन्थ ग्रह साधन करे उसे तन्त्र कहते

हैं। शाकाब्द या किसी अन्य (निकट के) वर्ष से अहर्गण साधन कर उससे ग्रह निकालने की विधि जिस ग्रन्थ में हो उसे करण ग्रन्थ कहते हैं। इस सिद्धान्त दर्पण में तीनों ही विधियां हैं।

नृणां पापं दश दिन कृतं हन्ति सिद्धान्त वेत्ता
दृष्टः सद्यः त्रिदिन जनितं तन्त्रवेत्ता निहन्ति
एकाहोत्थं करण निपुणे यस्तु शास्त्रानभिज्ञ
कालं वृत्ते बहु वृजिनदः सोऽत्र नक्षत्रसूची। ६८।

सिद्धान्त ज्ञाता का दर्शन करने से दस दिन का पाप नष्ट होता है। तन्त्र वेत्ता से ३ दिन का तथा करण जानने वाले के दर्शन से १ दिन का पाप नष्ट होता है। जो बिना ज्योतिष जाने काल की चर्चा करता है। वह नक्षत्र सूची है। और उसे देखने से बहुत पाप होता है।

चन्द्रं मन्दात्रि भसमधिकं प्रेक्ष्य पक्ष्यार्द्ध सिद्धं
द्वित्रिशाढ्या यदिह गदिता सम्मता यत्तथान्यै
चक्रे ऽ जादि स्थितिरपि पृथक्सम्मता यत्तथान्यै
रप्रामाण्या त्तदखिल मुपादत्तनो चित्तमाप्र्याः। ६९।

भास्कर आदि कई ज्योतिर्विदों ने स्फुट चन्द्र को पक्ष अर्द्ध में मन्द (शनि) से ३ राशि अधिक देखकर अपने सिद्धान्त गणित (सिद्धान्त शिरोमणि) में नक्षत्र ध्रुव में १/३ अंश जोड़ दिया। अर्थात् उन्होंने स्वयं स्फुट कर प्रत्यक्ष नहीं किया था। अन्य कई ज्योतिषियों ने मेष का आदि बिन्दु अलग अलग स्थानों में स्वीकार किया है। प्रमाण के अभाव में मैने यह स्वीकार नहीं किया है।

कैश्चित् प्रोक्तं नलिन जनुषः स्वायुषोऽर्द्ध व्यतीतं
कैरप्येतत् पतन मुनिभिः सार्द्ध वर्षाष्ट का द्व्यं (८ १/२)।
तद् वैतद् वा भवतु न ततः कोऽपि लोकोपयोगः
कल्पस्यास्य द्युचर गणितं स्यादिदं तन्मुदेवः। ७०।

कई के मत से ब्रह्मा की परमायु का आधा (५०) तथा कुछ अन्य विशिष्ट ऋषियों की मत से (५८ १/२ वर्ष) साढ़े ८ वर्ष अधिक) बीत गया है। इसमें कोई भी मत ठीक हो उसका कोई लोक व्यवहार में उपयोग नहीं है क्योंकि ग्रह गणित का वर्णन वर्तमान कल्प (दिन) से ही होता है-आप लोग इसी से सन्तुष्ट हों)

यस्येच्छामे निज भजन तो दूर मुत्सार्य बुद्धिम्
दै वाधीनां गणित विपणौ पात यत्यात तायाम्
संख्यातीता नु गत पति तो द्वार कारुण्य सिन्धुः।
सस्याच्छेतः शरण चरणः सिन्धुजा प्राणबन्धुः। ७१।

जिससे मेरी बुद्धि को विष्णु भजन के प्रिय कर्म से दूर गणित बाजार में ठेल

दिया है तथा इच्छा के विरुद्ध मेरी बुद्धि जिनके अधीन काम कर रही है वही कृपासिन्धु समुद्रतनया लक्ष्मी के प्राण बन्धु के चरण युगल मेरी बुद्धि के आश्रय स्थल हों (जिससे वह दिग्भ्रमित न हों) क्योंकि उस महाप्रभु जगन्नाथ असंख्य पतितों का उद्धार करने वाले करुणा के समुद्र हैं ।

इत्युत्कलोज्ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
श्री चन्द्र शेखर कृतौ गणितेऽक्षि सिद्धे ।
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
यातः सपात इह पञ्चदशः प्रकाशः । ७२ ।

इस प्रकार उड़ीसा के उज्ज्वल राज वंश में उत्पन्न श्री चन्द्र शेखर द्वारा गणना और वास्तव में समानता तथा बालकों के ज्ञान के लिए लिखे सिद्धान्त दर्पण में पात वर्णन सम्बन्धी १५ वां अध्याय समाप्त हुआ ।

इति मुदित सुधीरे शुद्ध सिद्धान्त पूर्वे
नयन विषय सिद्ध व्योमगे दर्पणेऽस्मिन्
त्रिभिरिद मधिकारैः (३) पञ्चभूमिः (१) प्रकाशै
र्ग्रहगणित समाख्यं पूर्वमर्द्धं समाप्तम् । ७३ ।

इस प्रकार ३ अधिकार के १५ प्रकाश सहित सिद्धान्त दर्पण ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ जिसमें विद्वानों के आनन्द के लिये दृक् सिद्ध ग्रह गणित तथा शुद्ध सिद्धान्त है ।
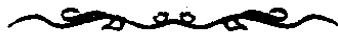
षोड़शः प्रकाशः

गोलाधिकारः

प्रश्न वर्णनम्

यत्पादाम्बुरुह प्रसक्त हृदया ब्रह्मादयोऽनास्थया
कालेऽन्यत्र च नेत्र साम्य विरहात्तत्र द्विरागायवा
शिष्य प्रश्न वशात्च सूक्ष्मवचसा सिद्धान्त जातं जगुः ।
सर्वज्ञा अपि मादृशा इव नम स्तस्मै जगत्स्वा मिने । १ ।

जिनके चरण कमलों में ध्यान रख कर ब्रह्मा वशिष्ठ आदि ज्ञानियों ने समय समय पर पहले के सिद्धान्तों में त्रुटि दीखने से उत्पन्न अनास्था के कारण नये सिद्धान्त ग्रन्थों की रचना की एवं शिष्यों के प्रश्नों का सूक्ष्म विश्लेषण कर उत्तर दिया तथा सर्वज्ञ होने पर भी मेरे (सामन्त चन्द्रशेखर की) भांति छोटे छोटे सिद्धान्त ग्रन्थ लिखे, उसी जगत के स्वामी महाप्रभु जगन्नाथ की वन्दना करता हूँ।

यश्चक्षुर्ग्रहणाति मोऽपि गगने गृह्णन् ग्रहाणां गणं
भूगोलं परि गच्छति ग्रहपतिः सर्वाग्रिमो मध्यमः
लोका लोक विशोक तावन कृते स्पष्ट स्त्रयो मूर्त्तिमान्
यश्चक्षुर्जगदात्मनो भगवत स्तस्मै सवित्रे नमः । २ ।

जो सूर्य मध्यम मान से प्रथम ग्रहपति के रूप में आकाश के सभी ग्रहों को लेकर पृथ्वी के चारों ओर घूमते हैं, संसार को प्रकाश देकर लोगों का दुःख दूर करते हैं तथा स्पष्ट मान से तीनों वेदों के स्वरूप हैं जो सूर्य की स्तुति करते हैं । तथा जो विराट् ब्रह्म के चक्षु रूप हैं उन सूर्य को नमस्कार है ।

प्राक् सिद्धान्त चयं प्रमायनयना न हँ महार्हाक्षरं
यः सिद्धान्त शिरोमणिं प्रणिगदन् न प्रोण यत् प्राणिनः
आत्मीया वसर प्रणीत भगण प्रत्यक्षितैः खेचरै
रास्ताकीन महोपकार कृतिनं वन्दे गुरुं भास्करम् । ३ ।

जिन्होंने अत्यन्त मूल्यवान प्राचीन सिद्धान्त ग्रन्थ दृक् सिद्ध (ठीक) नहीं होने का प्रमाण कर सिद्धान्त शिरोमणि की रचना की, जिन्होंने अपने समय के ग्रहों को प्रत्यक्ष कर (वास्तविक स्थान देखकर) उनके भगण आदि लिखे और संसार को आनन्द देकर मेरा भी बहुत उपकार किया, उस मेरे गुरु भास्कराचार्य की मैं वन्दना करता हूँ ।

महः किञ्चिन्नीलाचलनिलयी लीलाकृतजग
ज्जगन्नाथाख्यं तन्मनसि विनिधाया धनिधनम्
तदीयानुक्रोशाद् ग्रहगणित माख्या यरभसा-
-दहं कुर्वे पूर्वैरिच मति मतं गोल गणितम् । ४ ।

जिस नीलाद्रि विहारी पापनाशी जगन्नाथ के लिए सारा जगत् लीलाभूमि है, उनके तेज का हृदय में ध्यान कर उनके अनुग्रह से मैने ग्रहगणित लिखना समाप्त कर अब प्रसन्नापूर्वक गोल गणित आरम्भ करता हूँ जिसके बारे में प्राचीन सिद्धान्तियों ने विस्तार से लिखा है ।

सिद्धान्त जातोद्धृत वाक्यचक्र सन्दर्भितात्म प्रथिताग्र्य पद्यैः
गोलं ब्रुवे बाल विबोधनाय वाचं पुरस्कृत्य च भास्करीयाम् । ५ ।

अनभिज्ञ लोगों को भी गोल गणित समझाने के लिए इसके विषय में मैंने मुख्यतः भास्करा चार्य के कथनों की व्याख्या की है, इसके अतिरिक्त कहीं कहीं अन्य आचार्यों के विचार दिये हैं तथा प्राचीन सिद्धान्तों के अध्ययन से उत्पन्न मेरे विचार भी हैं ।

सिद्धान्त शिरोमणौ-मध्याद्यं द्युषदां यदत्र गणितं तस्योपपत्तिं विना
प्रौढ़ं प्रौढ़ सभा सुनैति गणको निः संशयो न स्वयम् ।
गोले सा विमला करामलकवत् प्रत्यक्ष तो दृश्यते ।
तस्मादास्म्युपपत्ति बोध विषये गोल प्रबन्धो द्यतः । ६ ।

ज्योतिष में ग्रहों का मध्य, स्फुट आदि गणित का वास्तविक अर्थ नहीं जानने से ज्योतिषी के मन में सन्देह बना रहता है तथा वह विद्वत् समाज में आदर नहीं पाता है । इस गणित का रहस्य हाथ में रखे आंवले के समान स्पष्ट भाव से दिखायी दे- इस उद्देश्य से मैं गोल ग्रन्थ की रचना कर रहा हूँ ।

भोज्यं यथा सर्व रसं विनाज्यं राज्यं यथा राज विवर्जितंञ्च
सभान भातीव सुवक्तृ हीना गोलानभिज्ञो गणकस्तथैव । ७ ।

घी के विना सभी रसों का भोजन, राजा के बिना राज्य तथा ज्ञानी वक्ता के बिना सभा की जिस प्रकार शोभा नहीं होती है उसी प्रकार गोल ज्ञान के बिना गणक भी व्यर्थ है ।

वाग्मीव्याकरणं विनैव विदुषां धृष्टः प्रविष्टः सभं
जल्पन्नल्पमति स्म यात् पटुवटु भ्रूभंग वक्रोक्तिभिः
हीनः सन्नुपहास मेति गणको गोलानभिज्ञ स्तया
ज्योतिर्विद सदस प्रगल्भ गणक प्रश्न प्रपञ्चोक्तिभिः । ८ ।

कोई धूर्त वक्ता बिना व्याकरण ज्ञान के विद्वानों की सभा में बकवाद कर उनके व्यंग दृष्टि और वचनों का शिकार होकर लज्जित होता है । इसी प्रकार गोल नहीं जानने वाला गणक भी ज्योतिषियों की सभा में विभिन्न प्रकार के प्रश्न और कौतुक उक्ति नहीं समझ कर उपहास का पात्र बनता है ।

दृष्टान्त एवावनिभ ग्रहाणां संस्थान मान प्रतिपादनार्थम्
गोलः स्मृतः क्षेत्र विशेष एषप्राज्ञै रतः स्याद् गणकेन गम्यः । ९ ।

पृथ्वी, तारा और ग्रहों की स्थिति परिमाण आदि समझाने के लिए गोल एक दृष्टान्त (प्रतिरूप या model) है। विद्वानों ने गोल को एक क्षेत्र (स्वतन्त्र विषय) माना है। जिसे कोई गणक गणित की सहायता से ही समझ सकता है।

ज्योतिः शास्त्र फलं पुराण गणकै रादेश इत्युच्यते
नूनं लग्नवलाश्रितं पुनरिदं तत्स्पष्ट खेटाश्रयम्
ते गोला श्रयिणोऽन्तरेण गणित गोलोऽपिन ज्ञायतेः
तस्माद् यो गणितं न वेत्ति सकथं गोलादिकं ज्ञास्यति। १०।

प्राचीन गणकों ने ज्योतिष शास्त्र फल को आदेश (प्रमाणिक) माना है। फल लग्न के अनुसार होता है, लग्न ग्रह (पृथ्वी) की स्थिति के अनुसार है। बिना स्पष्ट ग्रह जाने केवल लग्न द्वारा फल नहीं कहा जा सकता है। सभी ग्रह (ब्रह्माण्ड रुपी) गोल में ही भ्रमण करते हैं। अतः स्पष्ट ग्रह जानने के लिये गोल आवश्यक है। गोल गणित द्वारा ही समझा जा सकता है। अतः जो गणित नहीं जानता वह (गोल आदि) ज्योतिष कैसे जान सकता है ?

द्विविध गणित मुक्तं व्यक्त मव्यक्त युक्तं
तद व गमन निष्ठः शब्दशास्त्रे पचिष्ठः
यदि भवति तदेवं ज्योतिषं भूरि भेदं
प्रपठित मधिकारोऽस्यान्यथा नामधारी। इति। ११।

गणित दो प्रकार का है- व्यक्त (पाटी) और अव्यक्त (बीज)। इन दो प्रकार के गणित तथा व्याकरण (शब्द शास्त्र) का अच्छा ज्ञान होने पर ही कोई ज्योतिष शास्त्र पढ़कर समझ (पचा) सकता है, अन्यथा वह नाम मात्र का ही ज्योतिषी होगा। (सिद्धान्त शिरोमणि का उद्धरण समाप्त)

गुर्वन्ते वा सिसंवाद व्याजेनाथ विविच्यते।
तत्व ख भू भगोलानां वासना वगतिर्यतः। १२।

गुरु और शिष्टा के संवाद रूप में अव आकाश, पृथ्वी तथा नक्षत्र गोल का वर्णन किया जा रहा है, जिससे सभी का कारण (वासना या रहस्य) ज्ञात होगा।

तत्र भोः श्रीमदाचार्य निजवागमृते न यत्
त्व योक्तं खेट गणितं गोलाख्यं यच्च सूचितम्। १३।

(शिष्य)- हे आचार्य महोदय, आपने अपनी अमृत समान वाणी से जो ग्रह गणित कहा तथा गोल के विषय में सूचना दी।

तेन मे द्वापर लता वृद्धैव न तु वर्द्धिता
नाना मत द्रुमालम्ब बहु शास्त्रीकृता यतः। १४।

उससे मेरा सन्देह और बढ़ा है, घटा नहीं है-क्योंकि आपने जो कहा वह अनेक आचार्यों के मत रूप वृक्ष और उनकी बहुत सी शाखायें है जिसमें बहुत

शास्त्रीय वर्णन हो गया है ।

निवासाय पुरा स्माकं सृष्टाया विष्णुनाधरा
यज्यते प्रथमं तस्याः स्वरूपं परिशीलितुम् । १५ ।

बहुत पहले सृष्टि के आरम्भ में विधाता ने हम लोगों के लिए इस पृथ्वी को बनाया । पहले मुझे इसी का स्वरूप समझाइये ।

गोलं ज्ञात्वा ततस्तस्मिन्निः सन्देहं नभः सदाम्
गणितस्यानुभूतिर्मे भूयाद् भवद नुग्रहात् । १६ ।

उसके बाद आपकी कृपा से मेरा खगोल और ग्रह गणित का वास्तविक अनुभव हो सकता है ।

चक्राकारां वसुमतीं कथयन्ति पुराविदः
धृतां क्रीड़ा हि कूर्माद्यैः पञ्चाशत् कोटि योजनम् । १७ ।

पुराणों में पृथ्वी का आकार चक्र के समान कहा गया है । इस पृथ्वी को पुनः वराह, सर्प, (शेषनाग) और कच्छप आदि ने धारण किया है । पृथ्वी का विस्तार ५० कोटियोजन है (क्षेत्रफल)

तन्मध्ये जाम्बवो द्वीपो लक्षयोजन विस्तृतः
तावता लवणोदेंने वेष्टिता नवर्ष भृत् । १८ ।

इसके बीच में १ लाख योजन विस्तार (क्षेत्रफल) का जम्बू द्वीप है । जो चारों तरफ लवण समुद्र से घिरा है ।

मध्येतस्यस्थितो मेरु ख स्वाब्ध्यष्ट (८४,०००) योजनैः
सच्छितो भू प्रविष्टोऽसौ स्वा भ्राभ्रांगेन्दु (१६,०००) योजनैः । १९ ।

जम्बू द्वीप के मध्य में (८४,०००) योजन लम्बा मेरु पर्वत है । (ऊंचाई) मेरु का १६००० योजन भूगर्भ में है ।

जम्बू द्वीपाद् बहि द्वींपाः परितः स्व समैर्वृताः
सिन्धुभिस्ते पुराणोक्ताः क्रमद्विगुण विस्तृताः । २० ।

जम्बू द्वीप के बाहर क्रमशः दो गुणा विस्तृत अन्य द्वीप है तथा उनको भी समुद्र घेरे हुए हैं ।

प्रान्तस्थ पुष्कर द्वीप मध्यगे वलयो कृतौ
भ्रमत्यर्क रथायुर्द्धे मानसोत्तर पर्वते । २१ ।

अन्त में स्थित पुष्कर द्वीप के मध्य भाग में वलय के आकार का मानसोत्तर पर्वत है जिसके ऊपर सूर्य का रथ भ्रमण करता है ।

द्वीपाब्धीनां बहिः स्वर्ण भूलोका लोक पर्वतौ ।
गर्भादस्तद् बहि ब्रह्म कटाहक्ष्मादि भिर्वृतः । २२ ।

इन द्वीपों और सागर के बाहर लोकालोक पर्वत है जिसका भूभाग स्वर्णमय है । इस पर्वत के बाहर ब्रह्म कटाह की भूमि घेरे हुए हैं ।

भानु मति भूपृष्ठा ल्लक्षयोजन दूरगः
मज्जनु द्यन्निवा भाति तिर्यङ्डत्यन्त दूरगः । २३ ।

भू पृष्ठ से १ लाख योजन दूर सूर्य परिभ्रमण करते हैं । भू पृष्ठ से अत्यन्त दूर और तिरछा (स्पर्श रेखा) होने कारण सूर्य का उदय और अस्त होना दीखता है ।

भ्रमन्ति चन्द्र भौमाद्यां उपर्युपरि सूर्यतः
ध्रुवान्तः स च मेरु र्ध्वे ततो लोकाः स्थिता इति । २४ ।

सूर्य के ऊपर ऊपर चन्द्र, मंगल आदि ग्रह भ्रमण करते हैं । इन सबके ऊपर ध्रव की स्थिति । ध्रव तारा मेरु के ठीक ऊपर है । ध्रुव के ऊपर क्रमशः महः, जन, तप आदि लोक है ।

बौद्धास्तु भ भ्रमालोकान्तिरा धारां कुमब्रुवन्
खेऽधोयात्तीञ्च स्वस्थस्या दशनाद् गुरु वस्तुनः । २५ ।

बौद्ध मत के अनुसार पृथ्वी के चारों तरफ नक्षत्र भ्रमण करते हैं । अतः पृथ्वी का आधार किसी भी दिशा में नहीं है । आकाश में कोई भारी वस्तु नहीं होने के कारण उनकी कल्पना है कि पृथ्वी लगातार नीचे जा रही है ।

जैना वदन्ति सूर्येन्दु द्वौ द्वौ च भगणौ तथा
चतुष्कोण स्तम्भ रूपं मेरु मध्यगतः स्थिरम् । २६ ।

जैन मत के अनुसारर आकाश में २ सूर्य, २ चन्द्र तथा ५४ नक्षत्र हैं । वे चतुष्कोण स्तम्भ (चतुर्भजाकार) के समान स्थिर मेरु पर्वत की-

पर्य्यति भूर्जलान्तः स्थातस्यादार्कादयोजनैः
त एकान्तर मुद्यन्तो दृश्यन्ते मेरु कोणतः । २७ ।

परिक्रमा जल के भीतर रह कर करते हैं । अतः मेरु कोण से एक के बाद एक क्रम से सूर्य का उदय दिखायी देता है ।

इंग्लैण्ड पण्डिताः सूक्ष्म मतयः कथयन्ति च
भूगोला वर्त्तुलः क्षुद्रो भौमादि ग्रहवद्दिवि । २८ ।

सूक्ष्म बुद्धि के इंगलैण्ड के पण्डितों को कहना है कि पृथ्वी स्वयं दीर्घ वृत्ताकर है और आकाश में मंगल आदि ग्रहों के समान -

स मध्यस्थ वृहत्सूर्य बिम्बस्या वयवभ्रमैः
आकृष्टश्चक्र वद् भ्रान्ति क्रान्ति वृत्ते ब्रजत्यसौ । २९ ।

बहुत बड़े सूर्य बिम्ब से आकर्षण से क्रान्ति वृत्त में चक्र की तरह परिक्रमा करते हैं ।

सपादाशुगषड़वह्नि ३६५।१५ दिनैः पूर्वगतिक्रमात् ।
भगणः स्वतनूद् भ्रान्त्या द्युरात्रं चास्य सम्भवेत् । ३० ।

इस प्रकार पूर्व दिशा में गति से ३६५।१५ दिन में पृथ्वी का एक भगण पूर्ण होता है । पृथ्वी का अपने स्थान पर भ्रमण (अपनी धुरी पर) से दिन और रात होते हैं ।

इत्थं गति र्द्विधा भूमे राह्नि की वार्षिकीति च
भ्रमन्त्याः स्वतनोर्यस्मान्नित्यं स्थानान्तर स्थितिः । ३१ ।

इस प्रकार पृथ्वी की आह्निक और वार्षिक-इन दो गतियों के कारण क्रमशः दिन रात तथा वर्ष होते हैं । पृथ्वी की वार्षिक गति के कारण प्रतिदिन उसकी अलग अलग स्थान में स्थिति होती है ।

न पतन्ति जना भूमे र्मांध्याकर्षण शक्तितः
पश्यन्त्यर्कादिकान् भ्रान्तान्नाविकाहि नगान्निव । ३२ ।

पृथ्वी के केन्द्र की तरफ आकर्षण शक्ति होने के कारण लोग पृथ्वी से किसी दिशा में गिरते नहीं है । जिस प्रकार स्वयं गति शील नाव में नाविक लोगों को नाव स्थिर तथा पर्वत चलता हुआ लगता है उसी प्रकार पृथ्वी के लोगों को पृथ्वी स्थिर पर ग्रह नक्षत्र आदि गतिशील लगते हैं ।

भुवि मेषादि निष्ठायां तुलादौ दृश्यते रवि
दक्षिणोत्तर गायान्तु सौम्य याम्यापमौ तथा । ३३ ।

पृथ्वी मेषादि में रहने पर सूर्य तुलादि में दीखता है । पृथ्वी की दक्षिण और उत्तर गति (झुकाव) के कारण सूर्य की क्रमशः उत्तर और दक्षिण क्रान्ति होती है ।

बुध शुक्रावनी भौम गुरुमन्दाः क्रमाद्रवे
दूरत्वान्मन्द गतयः परिगच्छन्तितं प्रति । ३४ ।

बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल, गुरु और शनि क्रमशः सूर्य से अधिक दूर हैं । दूर होने के कारण क्रमशः इनकी गति मन्द होती जाती है । अपनी अपनी गति से ये सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं ।

तान् प्रत्युपग्रहाः क्षुद्रा भ्रमन्तस्थो समंपुनः
भ्रमन्त्यर्क यथाकृष्टो भुवेन्दुस्तां परिभ्रमन् । ३५ ।

क्षुद्र उपग्रह ग्रहों की परिक्रमा करते हैं और ग्रहों के साथ रहने के कारण सूर्य की भी परिक्रमा करते हैं । उदाहरण स्वरूप पृथ्वी का उपग्रह चन्द्र पृथ्वी की परिक्रमा करता है और पृथ्वी के साथ (पृथ्वी की कक्षा में) रहकर सूर्य की भी परिक्रमा करता है ।

भ्रान्ति रूपाय आलोक ऋतु भेदाश्च सूर्यतः
भू विग्रहेषु कार्याणि सर्वाणि स्युर भेदतः । ३६ ।

सूर्य के चारो और घूमने के कारण प्रकाश और ताप अन्तर के कारण जिस प्रकार पृथ्वी पर ऋतु भेद होता है । उसी प्रकार-अन्य ग्रहों पर भी होता है ।

इति स्थिते ग्रह गति ग्रहणा द्यत्र दृक् समम्
वृहदाकर्षणात् क्षुद्र भ्रान्ति र्न्याय्या भवत्यपि । ३७ ।

इस प्रकार मानने से ग्रहों की गति, ग्रहण आदि पृथ्वी से दृक् सिद्ध होता है । बड़े पदार्थ के आकर्षण से छोटा पदार्थ उसके चारों ओर घूमता है वह भी इस प्रकार की ग्रह स्थिति मानने से तर्क संगत रहता है ।

सिद्धान्तेषु स्थिरापृथ्वी गदिता व्योम मध्यगा
वृहतेन्दुज्ञ सितार्कार गुरुमन्दर्सवर्त्मभिः । ३८ ।

प्राचीन प्राच्यसिद्धान्तों के अनुसार पृथ्वी आकाश के मध्य स्थिर है तथा उसको चन्द्र बुध, शुक्र रवि, मंगल, वृहस्पति और शनि का कक्षावृत्त घेरे हुए हैं ।

आर्य भट्टोऽब्रवीद् भूः खे स्वस्थान स्थाभ्रमत्यतः
प्रत्यग् गतिर्भचक्रस्य प्राग् याते दृश्यते जनैः । ३९ ।

आर्य भट्ट ने कहा है कि पृथ्वी अपने स्थान पर रह घूमती हैं अर्थात् पृथ्वी का अपने अक्ष पर भ्रमण होता है । अतः पृथ्वी पर स्थित पूर्व की तरफ घूमते हुए लोग (पृथ्वी की पूर्व गति के कारण) नक्षत्रों को पश्चिम की तरफ चलता हुआ देखते हैं ।

साम्प्रतं भवता सोक्ता सूर्या भिभ्रमकारिभः
ग्रहै स्थेन परीतास्थे भ्रमता विधु नेति च । ४० ।

(शिष्य-गुरु के प्रति) अब आप कहते हैं कि अपने चारों ओर के ग्रहों को लेकर सूर्य पृथ्वी की प्रदक्षिणा करता है । चन्द्र की पृथ्वी की परिक्रमा करता है । (अर्थात् केवल चन्द्र ही उपग्रह के रूप में नहीं, अन्य ग्रह भी सूर्य के साथ पृथ्वी की परिक्रमा करते हैं ।)

ग्रहाणां योजनगतिं स्थूल्येति प्राङ्मया श्रुता
त्वत् तस्तु विषयेत्यत्र केयं सृष्टिर्नवातव । ४१ ।

पहले आपने कहा था कि ग्रहों की योजनात्मक गति समान है । अब आप कहते हैं । कि यह समान नहीं है । आप का यह नया विचार क्यों ?

विविध श्रूयते सृष्टि रैश्वरी तत्रका सती
केन क्रमेण रचिता ग्रहाद्या वसुमत्यपि । ४२ ।

ईश्वर की इस सृष्टि की अनेक प्रकार से व्याख्या होती है । उनमें कौन सी

व्याख्या ठीक है ? ग्रहों की सृष्टि का क्रम क्या है ? पृथ्वी का रचना किस प्रकार हुयी ?

किमाकारा किमाधारां सा धरा कवि सागरा
द्वीपैर्धराधरैर्व्याप्ता कथं कति निराश्रिता । ४३ ।

पृथ्वी का आकार और आधार कहिये । पृथ्वी पर कितने, समुद्र, द्वीप तथा पर्वत है ? इस पर कितने लोग निवास करते हैं ?

कियन्तौ परि धिव्यासौ किं फलं पृष्ठजं घनम्
उर्ध्वाधरस्थ लोकानां ज्योतिषां कीदृशी स्थितिः । ४४ ।

पृथ्वी का परिधि, व्यास, पृष्ठ (क्षेत्रफल) और घनफल (आयतन) कहिये । पृथ्वी पर उर्ध्वाधर भाव से लोक तथा ग्रह, नक्षत्र आदि कैसे स्थित हैं ?

चेतना चेतनावासो यथा भू पृष्ठ गर्भयोः
चन्द्र भौमादि बिम्बेषु तथास्ते किं न वा स्थितिः । ४५ ।

पृथ्वी पृष्ठ और गर्भ में किस प्रकार चेतन और अचेतन प्राणी रहते हैं ? क्या चन्द्र और मंगल आदि ग्रहों के बिम्ब पर भी उसी प्रकार प्राणी निवास करते हैं ?

ग्रहाणां कल्प भगणा ये सिद्धान्तेषु कीर्त्तिताः
तेषां दृक् सिद्धि राहित्या दार्य भट्टादिभिःपुनः । ४६ ।

प्राचीन सिद्धान्तौ में ग्रहों का कल्प भगण ठीक नहीं होने के कारण (दृक् सिद्ध नहीं होने से) आर्य भट्ट आदि ने पुनः-

कल्पिता दृक् समाहृयेते भास्कराद्यैनिराकृताः
तैर्ये स्थिरा कृतास्तेभ्यो भगणा भगदीरिताः । ४७ ।

अन्य दृक् सिद्ध भगणों की कल्पना की । भास्कर आदि आचार्यों ने पुनः इनको अस्वीकार कर अपने स्वतन्त्र भगण निर्धारित किये ।

विषमाश्चेत्तदामीषां स्थैर्ये किं मानमुच्यताम्
विपर्येष्यन्ति चेदेते तविन्त्रो का गतिस्तदा । ४८ ।

फिर आपका भगण भी भास्कर से अलग है । इससे लगता है कि भगण स्थिर नहीं है । इस अवस्था में आपके भगण की क्या गति होगी- क्या उसे भी कोई काट देगा ?

यदि संवत्सराः षष्टि मध्ये ज्ये गृह भोगजाः
तदास्तस्मिन्नजादिस्थे कथं न प्रभवादयः । ४९ ।

यदि मध्यम गुरु के राशि भोग से ६० संवत्सरों की उत्पत्ति होती है, तो मध्यम गुरु मेषादि में रहने पर संवत्सर प्रभव से (१ म) क्यों नहीं आरम्भ होता है ।

पदकानां कथं सृष्टिः खेटनान्तु स्फुटीकृतिः
भूमावेव समाकिंवा यत्र कुत्रापि सा भवेत् । ५० ।

अहर्गण आदि के पदक आपने क्यों (कैसे) बनाया ? ग्रहों के स्फुटीकरण के लिए इतना प्रपञ्च क्यों ? ग्रहों की यह स्फुटता केवल पृथ्वी के लिये है या अन्य ग्रहों से भी इसी रीति से अन्य ग्रह स्फुट होंगे ?

पूर्वोकृतं कुजादीनां सिद्धौ कर्म चतुष्टयम्
अधिकम् यत्वयोक्तं तत् किं नाम ज्ञार्कि भू भुवाम् । २१ ।

प्राचीन आचार्यों ने मंगल आदि ग्रहों को स्फुट करने के लिये चार प्रकार के संस्कार कहे हैं । आपने बुध, शनि और मंगल को स्फुट करने के लिए जो अतिरिक्त संस्कार दिया उसका क्या कारण है ।

सम्भवः परिधीनां स्याद् कथं द्राङ् मन्द जन्मनाम्
वैषम्यं स्यादत् कथं तेषा मोज युग्म पदान्तयोः । ५२।

शीघ्र और मन्द परिधि की कल्पना क्यों ? ओज (विषम) और युग्म (सम) पदों में वे समान क्यों नहीं होते ?

केन्द्र भ्रमः कथं बाहोः फलं मेष तुलादिकम् ।
धनर्णाख्यं कथं भुक्तेः कर्कि नक्रादिजं तथा । ५३ ।

मन्द और शीघ्र केन्द्र का भ्रमण किस प्रकार होता है ? मेषादि और तुलादि केन्द्र में मन्द और शीघ्र फल क्रमशः धन और ऋण क्यों होता है ? कर्क आदि तथा मकर आदि केन्द्र में ग्रह गति फल क्रमश धन या ऋण क्यों होता है ।

सिद्धांश (२४) सम्मिता क्रान्तिः सिद्धान्तेष्वखिलेष्वपि
त्योक्तार्द्धशं हीना कि सौम्य याम्येऽपमेकथम् । ५४ ।

सभी सिद्धान्तों में परम क्रान्ति २४ अंश माना गया है । आपने इसे २३ अंश क्यों माना है । क्रान्ति उत्तर और दक्षिण क्यों होता है ?

क्षय वृद्धि विपर्यासो दिन रात्य र्भवेद् भुवि
क्रान्ति वृत्तस्थ राशीनामुदया न समकृतः । ५५ ।

पृथ्वी पर दिन और रात का मान घटता बढ़ता क्यों है ? सभी राशि तो क्रान्ति वृत्त में ही है, उनका उदयमान समान क्यों नहीं है ?

तपर्त्तौ दुःसहं किं स्यादातपः शिशिरे सुख
ग्रीष्मान्ते किंम्प्रवर्षन्ति न्यान्यर्त्तौ किं तथा धनाः । ५६ ।

सूर्य किरण ग्रीष्म ऋतु में दुःसह तथा शिशिर में सुखकर क्यों है ? ग्रीष्म ऋतु के अन्त में मेघ अधिक वर्षा करते हैं, अन्य ऋतुओं में क्यों नहीं ?

मानं सूर्यस्य पूर्वोक्ता देकादश गुणं कथम्
ऊनं चन्द्रस्य किं वृषे कथं तद् ग्रहण द्वयम् । ५७ ।

आपने सूर्य बिम्ब का मान प्राचीन आचार्यों की तुलना में ११ गुणा क्यों माना है ? चन्द्र बिम्ब मान छोटा क्यों माना ? आपके अनुसार दोनों (चन्द्र और सूर्य) ग्रहण किस प्रकार होता है ?

चन्द्र ग्रहण वत् पर्व सन्धौ मध्य ग्रहों रवेः
न स्याद् यस्माद् वदास्यापि लम्बनास्यल्प भूरिताम् । ५८ ।

चन्द्रग्रहण के समान रवि का ग्रहण भी पर्व सन्धि में (अमान्त) में क्यों नहीं होता है ? रवि का लम्बन कहां पर कम या ज्यादा होता है ?

विज्ञातुं परमग्रासं पर्वलम्बन संस्कृतम्
सिद्धं चेत्तस्य किं प्रोक्तः संस्कार शरजः पुनः । ५९ ।

सूर्य का परम ग्रास मान निकालने के लिये लम्बन संस्कार किया, फिर शरज संस्कार क्यों ?

लम्बने ऽवनतौ मध्य लग्न वित्रिभ लग्नयोः
कः साधुः साधितः कस्मात् शराक्षः प्राङ्च विश्रुतः । ६० ।

लम्बन और नति साधन करने के लिए मध्यम लग्न तथा वित्रिभ लग्न की आवश्यकता और अच्छी तरह समझाइये । शराक्ष संस्कार के बारे में प्राचीन आचार्य ने क्यों नहीं कहा है ?

आदि मध्या वसानेषु द्युमणि ग्रहणेस्यते
शंकुं किं कल्पितो पूर्वेस्तमो मण्डल बुद्धये । ६१ ।

सूर्य ग्रहण के आदि, मध्य और अन्त भाग में (स्पर्श, मध्य और मोक्ष के समय) दृक् सिद्ध तमोमण्डल जानने के लिए आपने शंकु की कल्पना क्यों की जो प्राचीन आचार्यों ने नहीं की थी ?

किं नार्क ग्रहवच्चान्द्रे ग्रास बाण दिगेकता ।
वलनस्यापि दिग्भेदः किं प्राक् प्रत्यक् कपालयोः । ६२ ।

सूर्य ग्रहण के समान चन्द्र ग्रहण में ग्रास और शर एक ही दिशा में क्यों नहीं होते है । पूर्व पश्चिम कपाल के वलन में दिग भेद क्यों होता है ।

येषां येषां युति दृष्टा खेटानां भूमि पृष्ठ गेः ।
कियद्भि र्योजनै रिष्टं तत्तत्कक्षान्तरं त्वया । ६३ ।

जिन ग्रहों का योग भूमि पृष्ठ से दीखता है उनका कक्षान्तर योजन में आपके मत से कितना है ?

दृक्कर्मण्यायने मध्यं विशि खस्य स्फुटी कृतौ
न्यूनतायाति सर्वत्र पुरावित् साधन क्रमात् । ६४ ।

आयन दृक् कर्म में कदम्ब प्रोतीय शर को ध्रुव प्रोतीय करने पर प्राचीन रीति से साधारणतः कम हो जाता है ।

भवन्नते तु सूक्ष्मस्य स्फुटस्य विशिखस्य किम् ।
क्रान्ति संस्कार योग्यस्य मध्यतोऽधिकतेक्ष्यते । ६५ ।

परन्तु आपके मत से शर का क्रान्ति संस्कार करने पर वह अधिक क्यों हो जाता है ?

ग्रहोडुभिर्बहुत रै र्विहायसि महीयसि
व्याप्तेऽसि निशि किं न स्या दहनीव तमोहतिः । ६६ ।

अनन्त् आकाश में असंख्य ग्रह और तारा व्याप्त हैं तथापि रात में दिन के समान अन्धकार का नाश क्यों नहीं होता ?

सूर्यस्य किरण व्याप्तिः कतियोजन सम्मिता
कियती सा ग्रहर्क्षाणां कियद्दूरे च दृश्यता । ६७ ।

सूर्य की किरण कितने योजन तक जाती है ? ग्रह और तारों का प्रकाश कितने दूर तक जाता है ? (वे कितने दूर से दीखते हैं ?)

क्षुणानि कुदिनानि स्यु ग्रहाणां गति योजनैः ।
ख कक्षा योजनानीति श्रुतिं यत्तदि हत्वयाः । ६८ ।

कल्प सावन दिल में दैनिक ग्रह योजन गति से गुणा करने पर ब्रह्माण्ड का कक्षा योजन (परिधि की लम्बाई) होता है ऐसा श्रुति (वेद या प्राचीन शास्त्र) में कहा गयाहै । पर यहां पर आपके अनुसार

निरस्त संगति वैषम्याद् यदि तद् वेष्टनं दिवः
भवन्मते कियन्मानं ब्रह्माण्डोदर नामकम् । ६९ ।

ग्रहों की दैनिक योजन गति समान नहीं है, अतः शास्त्र वाक्य खण्डित हुआ (उसके अनुसार ब्रह्माण्ड का कक्षा का योजन नहीं आयेगा) । इस अवस्था में आपके अनुसार ब्रह्माण्ड का परिधि मान कितना है ? और वह कैसे ज्ञात होगा ?

ग्रहर्क्षा स्तौदयौ यद्वा दृक् कर्मध्यं त्वयादितौ ।
तथाकिं भवतो मेरौ न वा तन्निर्णयं वद । ७० ।

आपने आक्ष और आयन दृक् कर्म दोनों के द्वारा ग्रह और नक्षत्रों का उदय और अस्त साधन करने को कहा है । क्या मेरु क्षेत्र में भी वह इसी प्रकार किया जायेगा ? इसका निर्णय करें ।

क्षीयमाणाः कलादेवैः पीयन्तेऽमृत दीधितेः
इदिवादः पुराणाना मनृतः किमृतो मतः । ७१ ।

देवता लोग चन्द्र किरण का पान करते हैं । इस प्रकार पुराणों का वचन

आपके अनुसार सत्य है या मिथ्या है ?

पूर्वस्यां पश्चिमस्यांञ्च प्रायशः शशिनो दिशि
उन्नतिः सौम्य श्रृंगस्य दृश्यते भारते कथम्। ७२।

भारत में चन्द्र का उत्तर श्रृंग ही सदा उन्नत दीखता है - चन्द्र पूर्व या पश्चिम किसी भी दिशा में हो इसका क्या कारण है ?

रवीन्दु मार्गयो र्भूरि विप्रकर्षात् कथं भवेत्
भू पृष्ठ क्रान्ति साम्योत्तर पाते दृष्टि संगतिः। ७३।

रवि और चन्द्र परस्पर बहुत दूर हैं। तथापि उनकी क्रान्ति समान होने पर (वैधृति और व्यतीपात) महापात में उनकी दृष्टि का संयोग किस प्रकार होता है ?

किं भ्रमन्ति न वा लोकाः प्रवहान्महिरादयः।
दिनाब्द मास होराणा मधिपानां क्रमश्च कः। ७४।

क्या महः तप आदि लोक भी प्रवह वायु द्वारा घूमते हैं ? दिन, वर्ष, मास और होरा के स्वामी किस क्रम से होते हैं ?

स्यातां भानोः यदि दिन निशेदर्शना दर्शनाभ्याम्
नाड़ी षष्ट्या द्युति शमवनौ युक्त मासीत्त दानः।
पैत्रं मासा किमु शशिभुवा दैवमर्काब्दतः किम्
ब्राह्म्यंम् खाभ्रात्म भुजमितै (२,०००) किंयुगै स्यात्तदेवः। ७५।

सूर्य के दर्शन और अदर्शन (उदय) और अस्त) क्रम से दिन और रात होने से ६० दिन का अहोरात्र समझ में आता है। पर चन्द्र मास में पितृ दिन, सौर वर्ष में देवताओं का दिन रात तथा २००० महायुग में ब्रह्मा का दिन रात कैसे होता है ?

कतिविधः प्रलयः कतिधाः समाः समय बोधक यन्त्र महो कथम्।
नभसि भ ग्रह भांश कला मितौ भवति किं करणं भवदी प्सितम्। ७६।

प्रलय कितने प्रकार और वर्ष कितने प्रकार का है ? काल मापने का यन्त्र कैसा होता है। आकाश गोल में नक्षत्र और ग्रह का राशि, अंश और कला मान आपके अनुसार किस प्रकार निकाला जाता है (वेध द्वारा)?

षड् ऋतवः प्रभवन्ति कथं क्षि तौ
किमु समा न समाः किमु सर्वतः
उपकृतिर्भगणा ज्जगतोऽस्तिका
जगदिदं गमनादिति नास्ति काः। ७७।

पृथ्वी पर शिशिर आदि ६ ऋतु किस प्रकार होते हैं ? (सौर, चान्द्र, सावन आदि) वर्षों का परिमाण क्या समान होता है ? ग्रह भगण या नक्षत्र से क्या संसार का कुछ लाभ होता है ? गच्छति इति जगत्, अर्थात् जगत का अर्थ गति

वाला होता है । नास्तिक (वैदिक विरोधी) -

यदवदन्नद उत्तर मस्ति किं
शशि तनावसितं किमुतेक्ष्यते
किम समाधिमता मपि मोक्षदं
यदनुगेः सुलभं परमं पदम् । ७८ ।

ऐसा कहते है क्या इसका उत्तर आप दे सकते हैं ? चन्द्र में कलंक क्यों दीखता है ? ब्रह्म लीन लोगों को जिस प्रकार मोक्ष मिलता है, क्या समाधि हीन को भी वह मिल सकता है ?

श्रम मृते कलयन्ति कथं जना
स्थिति मुखांग मतीत मनागतम् ।
कथय सर्व मिदं यदवेत्यमे
भ्रमचयः शममेष्यति दुर्दमः । ७९ ।

लोक बिना परिश्रम के किस प्रकार अतीत तथा भविष्यत की तिथि नक्षत्र आदि पञ्चांग गणना कर सकें इसकी विधि बताये । इन सभी प्रश्नों का उत्तर आपसे सुनने पर मेरा घोर संदेह दूर हो जायेगा ।

जलजनाभि विभूषण विग्रहे
जलज सम्भव राजदनुग्रह
जलजना जनिकारण दर्शनो
जलजनाभर मीति करोऽस्तुनः । ८० ।

जलज (कमल) फल की माला से जिनका सर्वांग शोभित है, जिनके नाभि कमल से उत्पन्न ब्रह्म पर उनकी विशेष कृपा है, जिनके दर्शन मात्र से (अथवा सुदर्शन चक्र से) ग्रह की मुक्ति हुयी, वही पद्म नाम (जगन्नाथ) हमारा भय दूर करें ।

इत्युत्कलोज्वल नृपाल कुल प्रसूतः
श्री चन्द्रशेखर कृतौ गणितेऽक्षि सिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
प्रश्नान्वितो व्यरचि षोड़शकः प्रकाशः । ८१ ।

इस प्रकार उड़ीसा के विख्यात राजकुल में उत्पन्न श्रीचन्द्र शेखर द्वारा गणना और दर्शन में समानता तथा बलाकों की शिक्षा के लिये लिखे सिद्धान्त दर्पण में प्रश्नों से भरा हुआ १६ वां अध्याय समाप्त हुआ ।

सप्त दशः प्रकाशः

भूगोलस्थिति वर्णनम्

सच्छास्त्र गुच्छात्कतिचित् विशेषान् सच्छास्त्र पृच्छाच्छलतः प्रदर्श्य
तत्सार भूतोत्तर मार्य वाचा यच्छामि वत्सावहितः सकृत्स्याः । १ ।

उत्तम शिष्य प्रश्न के छल से (बहाना से) अनेक शास्त्रों के विशिष्ट विषयों की चर्चा कर उन सभी का सार उत्तर संस्कृत भाषा में देने के लिए मैं प्रयत्न कर रहा हूँ। हे वत्स (शिष्य), तुम ध्यान दे कर सुनो।

प्रत्यक्ष शब्दानुमिति प्रमाणै र्व्यवस्थया च स्थिरता स्थिरायाः।
(परपक्ष निग्रह पूर्वक स्वपक्ष स्थापनेन यथोक्त कथनं नामं व्यवस्था)
अहस्कारादेश्चलता खिलाना गोलं कृतत्वं प्रति पा घनेऽ त्रं । २ ।

(टिप्पणी- प्रमाण तीन प्रकार के होते हैं। (१) प्रत्यक्ष- देखकर मानना तथा २. शाब्द-वेद और आप्त वचन मानकर चलना (३) अनुमान कार्यकारण सम्बन्ध द्वारा निष्कर्ष निकालना। व्यवस्था-विपक्ष युक्ति का खण्डन कर अपना पक्ष स्थापित करना)।

मैं अब पृथ्वी का अचलत्व तथा सूर्य आदि ग्रहों का गतिशील होना तथा गोल आकार की (व्यवस्था का प्रमाण प्रत्यक्ष, शाब्द और अनुमान द्वारा कर रहा हूँ।

भूगोलः सौम्य शुक्रावनितनय सुराचार्य सूर्यात्मजानाम्
कक्षावृत्तै र्वृत्तस्या स्फुट दिवसकृतः कक्षयावेष्टितोऽयम्।
मध्ये मध्यर्कस्य दूरेऽन्ति के च स्फुट रविभगणर्क्षेश कक्षा परो तः
तिष्ठत्वण्डस्य मध्ये न भसि किल सदाधारशून्यः स्वशक्त्या। ३ ।

बुध, शुक्र, मंगल, गुरु और शनि इन पांच तारा ग्रहों की कक्षा के केन्द्र में सूर्य है। किन्तु यह सूर्य स्फुट नहीं, मध्यम सूर्य है। इस मध्यम सूर्य की कक्षा केन्द्र में पृथ्वी है। मध्यम सूर्य कभी पृथ्वी के निकट और कभी दूर रहता है। ब्रह्माण्ड के मध्य में पृथ्वी आधार शून्य होकर अपनी शक्ति से स्थित है। पृथ्वी को स्फुट रवि, नक्षत्र समूह तथा चन्द्र की कक्षा घेरे हुए हैं।

सिद्धान्त शिरोमणौ - सर्वतः पर्वताराम ग्राम चैत्य चयैश्चितः।
कदम्बकुसुमग्रन्थिः केसर प्रकरैरिव। इति । ४ ।

पृथ्वी पर पर्वत, बगीचा, ग्राम, ईटा का चबूतरा या स्तूपआदि व्याप्त हैं जिस प्रकार कदम्ब के फूल में केसर कण व्याप्त रहते हैं।

ममायमेव सिद्धान्ते मतान्तर विधायकान्
काश्चित् प्रत्युत्तरं यच्छन्निमं कुर्वे सुनिश्चितम्। ५ ।

मेरा यही सिद्धान्त है (अर्थात् ब्रह्माण्ड मध्य में पृथ्वी आधार शून्य है जिसके चारों तरफ सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र कक्षा है, तथा पृथ्वी और सभी ग्रहों का आकार गोल है) जिनका इससे भिन्न मत है उनके प्रश्नों का उत्तर देकर मैं अपना मत सिद्ध करना चाहता हूँ ।

सूर्य सिद्धान्ते-मध्ये समन्तादण्डस्य भूगोलो व्योम्नि तिष्ठति
बिभ्राणः परमां शक्तिं ब्रह्मणो धारणात्मिकाम् । इति । ६ ।

आकाश में ब्रह्माण्ड के मध्य में पृथ्वी सब तरफ से स्थिर होकर स्थित है । ब्रह्मा द्वारा प्राप्त धारिणी शक्ति द्वारा स्वयं को धर रखने के कारण पृथ्वी को धारिणी कहते हैं ।

सिद्धान्त शिरोमणौ-मूर्तो धर्त्ता चेद्धरित्र्य स्तदन्य-
स्तस्याप्यन्योऽस्यैव मत्रानवस्था ।
अन्त्ये कल्पा चेन्न शक्तिः किमाद्ये ।
किं तो भूमिः साष्ट मूर्त्ते श्च मूर्तिः । इति । ७ ।

पृथ्वी का धारक किसी अन्य को मानने पर फिर उसका धारक तीसरे को, तीसरे का चौथा और इस प्रकार क्रम की समाप्ति नहीं होगी । तथा पुनः अन्त में एक अमूर्त्त शक्ति को ही धारक मानना होगा । इस दोष को दूर करने के लिए आरम्भ में ही इस शक्ति को पृथ्वी का धारक मान ले तो क्या हानि है ? पृथ्वी क्या अष्टमूर्ति धारी भगवान् की मूर्ति नहीं है ।

कूर्मादीनांमतो भूमेर्यत्किञ्चित् खण्ड धारणात्
संगच्छते धारकत्वं न तु कृत्स्न महीधृतेः । ८ ।

कूर्म आदि अवतारों ने पृथ्वी को धारण किया था । इसका अर्थ है कि उन्होंने पृथ्वी के कुछ अंश का ही धारण किया था पूरी पृथ्वी को नहीं ।

भू धृताः पर्वता यद् वद् भूधरा इति कीर्तिताः
तथा धारत्व मेतेषां उक्तं भूस्थायिनामपि । ९ ।

पर्वत भी इसी प्रकार पृथ्वी के एक अंश को धारण करने के कारण भूधर कहलाते हैं । इसी प्रकार का धारत्व कूर्मादि अवतारों का (अंश धारण) था जिससे उनका नाम भूस्थायी आदि है ।

भू भार खिन्न नागेन्द्र शीर्ष विश्राम सम्भव
भूकम्प इति यद् वाक्यं तत्क्वचित् खण्ड धारणात् । १० ।

पृथ्वी के भार से थक जाने पर वासुकी नाग अपना सिर नीचे कर विश्राम करते हैं जिससे भूमि कम्प होता है इस वाक्य का अर्थ भी भी पूरी पृथ्वी का धारण करना नहीं है, पृथ्वी के एक अंश को ही वासुकी धारण करते हैं ।

समाधेयं हि भूगोलें लोका दृष्ट वशात् क्वचित्
अंगस्फुरणवत् कम्पो जातोऽगिन्युप चर्यते । ११ ।

यदि वासुकी आदि पृथ्वी के एक ही भाग को धारण करते हैं तो पृथ्वी के हर भाग में भूकम्प क्यों आता है, इसका समाधान है कि शरीर के किसी भी अंग में स्फुरण होने पर पूरा शरीर हिल जाता है । इसी प्रकार पृथ्वी के किसी एक भाग में कम्पन होने पर वह अन्य स्थानों में भी फैल जाता है ।

यथा स्वमध्यं प्रति सन्निकृष्ट माकृष्टमाणं (द्रव्यम्) परमाणु भूम्नः ।
क्रमेण वेगोत्पतती वभाति द्रव्यं धरा सौक्व पतत्वनन्ते । १२ ।

कोई भी द्रव्य पृथ्वी का ही परमाणु (अर्थात् उसका बहुत छोटा अंश) है । अतः पृथ्वी अपनी शक्ति से हर द्रव्य को अपनी तरफ आकर्षित करती है । पृथ्वी पर गिरने के बाद उसको आधार मिल जाता है अतः वह और कहीं नहीं जाता है । आकाश में और किसी दिशा में जाने का कारण नहीं हैं ।

ब्रह्म सिद्धान्ते-पञ्चाशत् कोटि विस्तीर्णा केवलं कल्पिता मही
अल्पराज्य मदान्धानां विषादाय विरुक्तये । १३ ।

पृथ्वी का विस्तार ५० कोटि योजन है । अल्प राज्य के शासन से गर्व करने वाले राजा यदि इसके बारे में समझें तो उनका मोह भंग होकर वैराग्य हो जायेगा ।

-साकल्पना न च वृथा सतां पीठादि पूजने ।
सर्वत्र विषयारोपादेव सिद्धेन्दूपासना । १४ । इति ।

सज्जन लोग पीठ आदि की पूजा करने पर सभी स्थान में विषय का आरोप करते हैं (छोटे पत्थर के टुकड़ो को देवता, अंजलि भर पानी में भारत की नदियों का समावेश या कलश को समुद्र आदि मानते हैं । अतः इतनी बड़ी पृथ्वी की कल्पना भी निरर्थक नहीं है और उपयोगी है । (उद्धरण समाप्त)

ब्रह्माण्डत्वं यथा देहे, धमन्या मादि शक्तिता
आत्मत्का शनी दासोत्वं तथैव स्थूलता क्षितेः । १५ ।

पिण्ड (देह) में ब्रह्माण्ड की कल्पना, शिरा (नाड़ी या चक्रों में) आदि शक्ति की कल्पना या आत्मा को ईश्वर का दास जिस प्रकार माना गया है । उसी प्रकार पृथ्वी की स्थूलता भी स्वीकृत हो चुकी है । (इसमें किसी को सन्देह नहीं है)

मण्डूकादि क्रमश्चेति सर्व मारोपितं बुधैः ।
ध्यान पूजा जपादीनां स्यात्पृष्टि स्तत् क्रमाद्यतः । १६ ।

पूजा पीठ में मण्डूक आदि की क्रम भी इसी प्रकार आरोपित है, इस मान्यता से पूजा, ध्यान आदि स्पष्ट होता है तथा फल की भी प्राप्ति होती है ।

सूर्य सिद्धान्ते-स्वल्पकायतया लोकाः स्वस्थानात्सर्वतोदिशम् ।
पश्यन्ति वृत्तामप्येता चक्राकारां वसुन्धराम् । इति । १७ ।

पृथ्वी की तुलना में मनुष्य का आकार अत्यन्त छोटा होने के कारण वह सभी दिशाओं में बहुत कम दूरी तक देख पाता है और पृथ्वी के गोल आकार की वक्रता नहीं दीखती । अतः पृथ्वी चक्राकार दीखती है ।

सिद्धान्त शिरोमणौ - यदि समा मुकुरोदर सन्निभा भगवती धरणीतरणीःक्षिते
उपरिदूर गतोऽपि परि भ्रमन् किमुनरै रमरै रविनिक्ष्यते । १८ ।

भगवती पृथ्वी यदि थाल के समान (समतल वृत्ताकार) है तो हर स्थान से सूर्य एक ही दिशा में एक साथ दीखेगा । यदि ऐसा है तो उत्तर मेरू में देवता लोग ६ मास तक सूर्य को देख पाते हैं । उसी प्रकार अन्य स्थानों पर भी सूर्य सदा क्यों नहीं दीखता है ?

यदि निशा जनकः कनका चलः किमु तदन्तरगः सनदृश्यते
उदगयन्ननु मेरु रथांशुमान् कथमुदेति च दक्षिण भाग के । १९ ।

यदि कनक गिरि रात्रि का कारण है, तो वह रात में क्यों नहीं दीखता, एक तरफ सूर्य रहने के कारण वह चकाचक दीखता । मेरू यदि सिर्फ उत्तर में हो तो उत्तर में ही सदा सूर्य का उदय होता, दक्षिण में क्यों होता है ?

समोयतः स्यात्परिधेः शतांश पृथ्वी च पृथ्वी नितरां तनीयान्
नरश्च तत्पृष्ठ गतस्य कृत्स्ना समेव तस्य प्रतिभात्यतः सा । २० ।

वृत्त की परिधि का १०० वां अंश सरल ही दीखता है । पृथ्वी की तुलना में मनुष्य बहुत छोटा होने के कारण वह गोल पृथ्वी का और भी बहुत छोटा अंश देख पाता है । अतः मनुष्य को गोल पृथ्वी भी समतल दीखती है ।

पुरान्तरं चेदिद मुत्तरं स्यात् तदक्ष विश्लेष लवैस्तदा किम्
चक्रांशकै रित्यनुपातयत्या युक्तं निरुक्तं परिधेः प्रमाणाम् । २१ ।

विषुव के उत्तर दो नगर (उत्तर दक्षिण रेखा पर) का अक्षांश निकालें । दोनों का उत्तर दक्षिण दिशा में योजन अन्तर भी निकालें । अक्षांश अन्तर का योजन मालूम होने पर ३६० का योजन अन्तर अनुपात से निकालने पर पृथ्वी की परिधि का परिमाण होगा ।

निरक्ष देशात् क्षिति षोड़शांशे भवेदवन्ती गणितेन यस्मात्
तदन्तरं षोड़श संगुणं स्या भूमानमस्मात् बहु किंतदुक्तम् । इति । २२ ।

विषुव से अवन्ती नगरी पृथ्वी परिधि के १/१६ भाग की दूरी पर स्थित है । इस अन्तर को १६ से गुणा करने पर भी पृथ्वी की परिधि का परिणाम आता है । पृथ्वी की गोलाकार और परिधि के बारे में इससे अधिक स्पष्ट और क्या कहा जा सकता है ? (उद्धरण समाप्त)

भूमौ समाया मति दूर गस्य प्राच्यं रवेः साह्नगतिर्न दृश्या
ततोऽल्प दूरस्य विलम्बि ता सा शीघ्रा ख मध्ये जलदस्य यद्वत्। २३।

पृथ्वी यदि गोल नहीं होकर समतल होती तो पूर्व दिशा में अत्यन्त दूर में स्थित मेघ के समान सूर्य गति भी अत्यन्त मन्द दिखायी होगी। मध्याह्न में निकट होने के कारण उसकी गति मेघ के समान तेज हो जायेगी।

असंगतेय यदहस्करा देर्गति पुरः पश्चिम भागयोः सा
पानीय यन्त्र द्रुत शातँ गत्या कुम्भ भ्रमाभेक्षत एव साक्षात्। २४।

किन्तु मेघ के समान पूर्व में और मध्याह्न में सूर्य की गति का अन्तर नहीं होता। मध्याह्न, क्या, पूर्व और पश्चिम में भी सूर्य की गति पानी यन्त्र में स्वर्ण कलश की गति की तरह समान होती है। (पानीयन्त्र समय नापने के लिये है। इससे सिद्ध हुआ कि पृथ्वी समतल नहीं गोलाकार है।

समुद्र मध्यादतटस्तटान्तं स्थूणाग्रमादौ तटगेनदृष्टम्
नरेण पोतस्य ततस्तदर्द्धं सर्वक्रमादन्तिक वर्तिनः स्यात्। २५।

समुद्र के मध्य से तट की तरफ आता हुआ जहाज का ऊपरी भाग तट पर पहले दिखायी देता है। बाद में स्थूण (मस्तूल) का नीचा भाग तथा सबसे अन्त में पूरा जहाज दीखता है।

वृत्तान चेत्क्ष्मा समवारि मध्ये दृक् पोत योस्तद् व्यवधापिनस्यात्
चन्द्र ग्रहे तद् गत भू प्रभायान वृत्त तास्यात् समयेऽ खिलेऽपि। २६।

पृथ्वी गोलाकर नहीं होने पर समतल पानी में इस प्रकार दृष्टि का व्यवधान नहीं होता। अर्थात् पहले अग्रभाग, तब मध्य भाग तक पूर्ण जहाज नहीं दीखता। चन्द्र ग्रहण के समय भी सभी प्रकार ग्रास में चन्द्र को ढंकने वाली पृथ्वी की छाया वृत्ताकार दीखती है। पृथ्वी की सब स्थिति में वृत्ताकार छाया होने का अर्थ है कि इसका गोल आकार है।

न स्याच्च देशान्तर नाड़िका द्यमयक्षयद् वीक्षणतः सुधांशोः
गोलत्वमायाति भ भानुं मुरुय गोला पुरोक्ताः श्रुति दृष्टि मद् भिः। २७।

पृथ्वी गोलाकार पृथ्वी नहीं होने पर पूर्व पश्चिम दिशा के सभी स्थानों पर सूर्य का उदय आदि एक समय होता, (उसमें समय का अन्तर होने का अर्थ है कि पृथ्वी गोलाकार है)। चन्द्र का भी वृद्धि क्षय वृत्ताकार दीखता है। जिसका अर्थ है कि गोलाकार है। शास्त्र और दृष्टि के आधार पर प्राचीन आचार्यों ने सूर्य नक्षत्र आदि सभी को गोलाकार कहा है (अतः पृथ्वी भी गोलाकार है)।

वदन्त्यनन्तेऽपि धरां न चाये भाषा च तेषा ममृषा मता मे।
परार्द्ध वारान् भ्रमता मरेण यद् गोल पृष्ठस्य न लभ्यते ऽन्तः। २८।

पृथ्वी को कुछ लोग अनन्त भी कहते हैं, यह बात असत्य नहीं है। पृथ्वी

गोल होने के कारण उसकी सतह पर किसी भी दिशा में जाने पर बार बार चक्कर लगता रहेगा । परार्द्ध चक्र में भी उसका अन्त नहीं होगा ।

सूर्योपरीन्दो स्थितिरन्य खेट स्थानं भचक्रोपरि या पुरोक्तिः ।
स्वर्गस्थ तत्तत्पुर पेक्षया सा न तु भ्रमज्योतिर पेक्षयेव । २९ ।

सूर्य के ऊपर चन्द्र तथा नक्षत्र के ऊपर ग्रह की स्थिति प्राचीन आचार्यों ने कही है- यह स्वर्ग की तरफ से देखने पर होता है । घूमते हुए ज्योति पिण्डों की दृष्टि से नहीं ।

किं वा कुरुक्षेत्र उपेन्द्र इन्द्रपुत्रा य सन्दर्शित विश्वरूपः ।
एकार्णवो भूतमहीतले च मृकुण्डपुत्राय निजोदरस्थम् । ३० ।।

भगवान् श्रीकृष्ण ने कुरुक्षेत्र में अर्जुन को, प्रलय पयोधि जल में मार्कण्डेय को विश्वरूप दिखाया था तथा

अदर्शयात् विश्वमसौ सभायां स्वविश्वरूपं धृतराष्ट्र राज्ञे
यद् भूमिपृष्ठे घट वत् सुदृष्टं क्वचित्प्रदेशेकिल विश्वरूपंम् । ३१ ।

तथा राजा धृतराष्ट्र को उनकी सभा में विश्व रूप में दिखाया था-वह गोल घटाकार पृष्ठ हमारी पृथ्वी से भिन्न है । वह बिम्ब और पृथ्वी एक नहीं है ।

तदस्मदावास भुवस्तदेव प्रभिद्यते तत्र पुराण सिद्धाः
भू भूधराम्भो निधि भानु भाद्या स्तिष्ठन्तु सिद्धान्त भुवः क्षितिः का । ३२ ।

अतः पुराणों में जिस पृथ्वी, पर्वत समुद्र, सूर्य और नक्षत्र आदि का वर्णन है-उससे हमारा कोई मतलब नहीं है । गणित सिद्ध पृथ्वी इन सबसे बिल्कुल अलग है ।

सिद्धान्त शिरोमणै-भूः खेऽधेः खलु यातीति बुद्धि बौद्ध मुधाकथम्
याता यातन्तु दृष्ट् वापि खे यत्क्षिप्तं गुरु क्षितिम् । ३३ ।

हे बौद्ध गण ! तुम्हारी बुद्धि वास्तव में मन्द है । स्पष्ट रूप से देखते हो कि आकाश में फेंकी गयी प्रत्येक वस्तु भारी पृथ्वी पर आ जाती है । फिर भी किस प्रकार मानत हो कि पृथ्वी लगातार नीचे की तरफ गिर रही है ?

किं चान्यत्तव वैगुण्यं द्वैगुण्यं यो वृथा कृताः ।
भार्केन्दूनां विलोक्याह्नां ध्रुवगत्स्य परिभ्रमम् । इति । ३४ ।

इस ध्रुव मत्स्य की प्रतिदिन नक्षत्र, सूर्य और चन्द्र परिक्रमा करते हुए दीखते हैं, फिर भी बेकार में कहते हो कि आकाश में दो सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र मण्डल हैं । इससे मानना ही पड़ेगा कि तुम बिल्कुल गुणहीन हो । (उद्धरण समाप्त) ।

सौम्य मीनाकृतिं भानां ध्रुव मत्स्य इति श्रुता
ध्रुवस्तन्मुख देशस्थः पुच्छे तारा ततोऽवरा । ३५ ।

उत्तर आकाश में एक तारा समूह मछली के आकार का है, उसे ध्रुव मत्स्य कहते हैं। इस ध्रुव मत्स्य के मुख में ध्रुव तथा पुच्छ में उससे कुछ छोटा एक तारा है।

विशाल समसूत्रे सा तिष्ठत्यंकेन्दु भाग के।
मुख पुच्छान्तरे वह्वयस्ताराः पंक्ति द्वयो स्थिताः। ३६।

विशाखा और इस पुच्छ तारा से जाता हुआ समसूत्र (ध्रुवप्रोतवृत्त) पर यह तारा विशाखा से १९ अंश दूरी पर स्थित है। इस मुख और पुच्छ से बीच दो पंक्तियों में बहुत से तारा हैं।

विशाखास्तोऽस्त मेत्यर्को यदा तत्पुच्छगा तदा।
तारका पश्चिमस्थास्यान्निशार्द्धेऽधोगता ध्रुवात्। ३७।

यह पुच्छ तारा विशाखा नक्षत्र में रह कर सूर्य अस्त होने के समय पश्चिम क्षितिज में लगता है। अर्ध रात्रि में यह तारा ध्रुव से नीचे अर्थात् दक्षिणोत्तर वृत्त में लगता है।

पातरुद्य द्रवेः सूत्रे प्राच्यं तिष्ठति सा यतः।
तदर्क द्वितयं कुत्र सम्भवेत् भ्रात रुच्यताम्। ३८।

सबेरे पुनः सूर्योदय के समय पुच्छ तारा पूर्व क्षितिज में लगता है। इससे स्पष्ट है कि सूर्य एक ही हैं। तन भी हे भाई (बौद्धगण) तुम दो सूर्यों की कल्पना किस प्रकार करते हो?

अति सूक्ष्म मते यदि तेऽस्ति मतेस्थिरता तरणेश्चलता धरणेः
निज वाक्य खण्डित पण्डित तच्छृणु मद् गिरमावृण चात्मवचः। ३९।

यदि तुम्हारी बुद्धि सूक्ष्म है और तुम्हारे अनुसार सूर्य स्थिर और पृथ्वी गतिशील है तो तुम अपने ही शास्त्रों द्वारा खण्डित हो अपने ही वाक्य द्वारा परास्त हुये)। अतः अपनी तर्कहीन बात को छिपाकर मेरी बात सुनो।

इयं भूर्निश्चला साक्षात् लक्ष्यते निखिलैर्जनैः।
भ्रान्तिश्च रवि बिम्बस्य किं फलं ते विपर्ययात्। ४०।

संसार में सभी इस पृथ्वी को गति हीन देखते हैं अतः पृथ्वी की स्थिर होना प्रत्यक्ष प्रमाणित है। इसी प्रकार सूर्य की गति भी प्रत्यक्ष है। अतः सूर्य को स्थिर और पृथ्वी को गतिशील मानने का क्या उपयोग है?

चलत्तरणी गो जनः सवसति स्थिरां मन्यते
तटस्थविटपि ब्रजं स विपरि ब्रजन्तं पुनः
उदस्तमपि हस्तगं गगनतः पतत्कन्दुकं
प्रपश्यति यता क्षिति गता इतीक्षास्ति चेत्। ४१।

नदी की धारा में वहती हुयी नाव में बैठा व्यक्ति अपनी नाव को स्थिर मान कर नदीतट के स्थिर वृक्षों को विपरीत दिशा में चलता हुआ देखता है, तथा ऊपर की तरफ फेंकी गयी चीज भी वापस हाथ में आते हुए देखता है (मानों उसकी नाव स्थिर हो) पृथ्वी से भी यह दोनों क्रियायें इसी प्रकार दीखती हैं (पृथ्वी की गति के कारण स्थिर नक्षत्र, सूर्य आदि चलते हुए दीखते हैं, तथा पृथ्वी पर भी ऊपर की तरफ फेंकी हुई वस्तु वापस अपने ही स्थान पर वापस आती है) । इस तर्क द्वारा यदि पृथ्वी को गतिशील माना गया है-

तदा हरि हरिन्मुख प्रजविना विना चेत् करे
विभर्त्यु परि यष्टि का शिखर जुष्ट चीनां शुकाम् ।
पुरः प्रवहदा शुप्रप्रचलितं तदा लोक्यते ।
सदा वरुणदिङ्मुखं किम वनौ पराशा मरुत् । ४२ ।

उस अवस्था में, यदि हवा पूर्व दिशा में बहती हो, तथा कोई व्यक्ति डण्डे के ऊपर रेशम की पता का बांध कर सीधा खड़ा करे तो वह पताका क्या सदा पश्चम दिशा में उड़ेगी ? पृथ्वी पर क्या पवन सदा पूर्व से पश्चिम की तरफ बहता हुआ दीखता है ? (अपने अक्ष पर पूर्व दिशा की तरफ घूमने के कारण, पवन की गति पश्चिम की तरफ होनी चाहिये) ।

यदि प्रवहकर्षणात् ब्रजति पश्चिमा शां ग्रहः
सदा कथमसौ पुरोगतिम् वाप्तु मीष्टे ततः
इदं वदसि चेद्धराभ्रमण पूर्व कृष्टा घनाः
खगाश्च कथमीशते प्रचलितुं प्रतीचीं प्रति । ४३ ।

ज्योतिष मत से प्रवह वायु ग्रह नक्षत्रों को पूर्व से पश्चिम दिशा में दिन में एक चक्र घुमाती है । इस पर यदि तुम्हारा प्रश्न है कि फिर ग्रह पुनः पूर्व की तरफ (नक्षत्रों की तुलना में) किस प्रकार चलते हैं । उस का उत्तर है कि पृथ्वी के वेग द्वारा मेघ और पक्षी आदि पूर्व की तरफ इसी प्रकार प्रवह वायु द्वारा नक्षत्र आदि पश्चिम दिशा में घुमाये जाने पर भी ग्रह अपनी शक्ति के अनुसार पूर्व की तरफ गति करते हैं ।

पुराणसिद्धान्त भिराप्त पुरुषै
स्थिरेति शब्दो धरणावुरीकृते
न चेत् प्रमाणो क्रियते त्वयाप्त वाक्
कथं प्रवृत्तिर्भवति सुकर्म्मसु । ४४ ।

प्राचीन आचार्यों तथा आप्त (वेद वादी) पुरुषों ने पृथ्वी
को स्थिर कहा है । यह स्वीकार नहीं करने पर कृत्य (शुभ) कर्म में तुम्हारी प्रवृत्ति कैसे होगी ?

प्रतिक्षणं गच्छति यत्ततोजनञ्जगाद चेदित्थमदोऽर्थविद् भवान्
चतुर्विधं याति लयं जगत्त्रयं ततोऽपि किं नार्थ समन्वयं ब्रजेत् । ४५ ।

सदा गतिशील होने के कारण संसार का नाम जगत् है -ऐसा आप शब्दार्थ के अनुसार कह सकते हैं । पर इसकी दूसरी व्याख्या है कि जगत अर्थात् स्वर्ग, मर्त्य और पाताल का चार प्रकार के प्रलय में नाश हो जाता है ।

इस अर्थ में पृथ्वी को जगत् (नाश होने वाला, अस्थायी) कहा जाता है ।

इतोऽन्यथार्थः क्रियते यदा तदा स्थिरेति किं भूरचलेति कथ्यते ।
चराचरावा सतयाथवा धरा जगत स्थिरेत्येव समीरिता बुधैः । ४६ ।

यदि आप इससे भिन्न अर्थ करते हैं (अर्थात् केवल गति शील के कारण जगत मानते हैं) तो कहिये-पृथ्वी का नाम स्थिरा और अचला क्यों हुआ ? इसके अतिरिक्त स्थावर जगम (स्थिर और गतिशील) सभी को धर कर रखने के कारण इसका नाम धरा विद्वानों ने रखा है ।

न शब्द मंगीकुरुतेऽनुमान वा न मान वाचाल वदे भवान् यदि
तदा तदा विष्क्रियया मया रयात्प्रमा समाधान कृते प्रतायते । ४७ ।

आप वाचालता के कारण यदि केवल आप्त वचन को प्रमाण नहीं मानते तथा अनुमान (तर्क) प्रमाण भी चाहते हैं तो मैं अनुमान द्वारा भी भास्कर मत को सिद्ध करने की विधि निकालता हूँ ।

यथार्थ माकृष्ट बुधादयोग्रहा भ्रमत् स्वदेहाः परियान्ति सन्ततम् ।
स्वकक्षया पक्रम युक्त या तथा पथात्मनः क्ष्मा भ्रमतीति ते प्रथा । ४८ ।

सूर्य द्वारा आकर्षित हो बुध आदि ग्रह जिस प्रकार अपने अक्ष पर घूमने के साथ साथ उत्तर और दक्षिण क्रान्ति अन्तर में अपनी अपनी कक्षा में अपनी गति से जाते हैं । ठीक उसी प्रकार पृथ्वी भी अपने अक्ष पर घूमने के साथ अपनी कक्षा में घूमती है - यदि ऐसा तुम्हारा मत है-

न स्याद् गतिः शक्तिमृतेऽखिलस्य साकर्ष विक्षेपवशाद्द्विधाचेत्
केन्द्राभि कर्षिण्य भिधा तदाद्या केन्द्रापसारिण्य परोच्यतेषा । ४९ ।

तथायदि कहते हो कि शक्ति या बल द्वारा ही किसी वस्तु की गति होती है और शक्ति दो प्रकार की है-आकर्षण शक्ति केन्द्र की तरफ तथा आकर्षण शक्ति (विक्षेप) केन्द्र से दूर की तरफ-

पराणुबाहुल्य समुद्भवाद्या दृष्टा गुरुत्व वगमाद्धरित्र्यम् ।
तत्रापतद् गोलक पिण्डशश्वत्परिभ्रमोस्मा भिरलाक्षि नैव । ५० ।

तो दोनों प्रकार की शक्ति पृथ्वी में भी होनी चाहिये क्योंकि परमाणु बाहुल्य के कारण इसकी उत्पत्ति प्रथम हुयी होगी । किन्तु पृथ्वी की विक्षेप शक्ति दिखायी नहीं देती । इसी प्रकार पृथ्वी पर पड़े किसी और वस्तू का अपने अक्ष पर भ्रमण

भी नहीं दीखता ।

प्रक्षिप्त लोके क्षणतोऽपरस्यां शक्तौ च गोल भ्रमसंभवोन
समक्षितौ क्षेप वलेन गोलः किन्त्वीक्ष्यतेयान् परिवर्तमानः । ५१ ।

पृथ्वी से ऊपर ढेला फेंकने पर वह क्षण भर के लिये भी किसी अन्य शक्ति द्वारा अक्ष पर घूमना हमने नहीं देखा है । पर दूसरी ओर सम धरातल पर कोई गोल वस्तु (चक्का) लुढ़का देने पर पर वह घूमता हुआ प्रत्यक्ष दीखता है ।

स चेद्धरत्राप्रथितः करेण क्षिप्येत शंशद् भ्रमता तदाग्रे
शक्ति द्वया कर्ष वशान्न केन्द्रे लग्ने न निर्याति परिभ्रमेतु । ५२ ।

किसी गोल वस्तु को चमड़े की रस्सी से बांन्ध कर हाथ के बल से घुमादेने वह रस्सी से अलग होकर पृथ्वी कहीं भी जाने पर पृथ्वी का केन्द्र ही आकर्षण करता है । केवल इन दो शक्तियों द्वारा आकृष्ट और विक्षिप्त होकर आकाश में जाना ही हम लोग देखते हैं । अपने अक्ष पर घूमना या हाथ में आकर्षण और विक्षेपण केन्द्र का आना नहीं दीखता है ।

इत्थं स्वकेन्द्रपरिशक्ति युग्म न द्वा परिभ्राम्यति चेद्धरित्री
सूर्याभिमुख्येन विनातदास्या न स्यात्कदा चिद् गतिरन्यथैव । ५३ ।

इसी प्रकार यदि पृथ्वी के केन्द्र पर सूर्य की विक्षेप और आकर्षण शक्ति के कारण पृथ्वी चल रही है तो पृथ्वी की गति सूर्य की दिशा में होती । इससे पृथ्वी के एक पक्ष में प्रकाश और दूसरे तरफ अन्धकार सदा रहता ।

आस्ता तदित्यात्थ यदि त्वमस्या व्यक्षैक देशे रविसम्मुखस्थे
यत्राहरत्रापि भवेन्नरात्रिः सा यत्रतत्रेत्थ महः कदाचित् । ५४ ।

पृथ्वी के सूर्य के चारों तरफ इस प्रकार घूमने से निरक्ष रेखा के जिस प्रदेश पर दिन होता वहां रात्रि नहीं होती तथा जहाँ रात्रि होती वहां दिन नहीं होता ।

किंवा समक्ष्मा परि वर्तमान सदृह पिण्डोपमया पृथिव्याः
स्वभ्रान्ति वाद स्त्वन चेदियं तत् प्राप्नोतु चक्र भ्रमिमन्तरीक्षे । ५५ ।

समधरातल पर गोल पिण्ड लुढ़कने चक्का की तरह चलने के समन यदि पृथ्वी की गति मानी जाय तो उसकी तुम्हारे मत से खण्डित होती है । चक्र के समान घूमने से

स्ववेष्टनं यावदियं हि तावत दिने दिने यातु पुरः प्रदेशम्
स्यात्वन्मते स्वभ्रमणं दिनेऽभ्र खाभ्राक्षिभू (१२०००) क्रोशपरिध्यवन्याः । ५६ ।

पृथ्वी एक दिन में अपनी परिधि के समान चलेगी तभी एक चक्र के बाद पुनः वह प्रदेश सूर्य के समाने होगा । किन्तु पृथ्वी का परिधि १२००० कोस होने पर तुम्हारे मत से

पुरो गतिश्चाष्ट विनिघ्न लक्ष (८,००,०००) क्रोश प्रमा सा कथ मत्र युक्ता
सा वास्तु तस्याः समपूर्व देह भ्रान्तौ कथं क्रान्ति पथेगतिः स्यात् । ५७ ।

पृथ्वी की पूर्व दिशा में दैनिक गति ८,००,००० कोस है- यह कैसे ठीक हो सकता है, वह परिधि से इतना ज्यादा कैसे होगा ? फिर यह पूर्व दिशा की अपने अक्ष पर गति विषुत वृत्त धरातल में है, फिर पृथ्वी की गति क्रान्ति वृत्त धरातल में कैसे हो जाती है ?

ईशानां दिङ् मुखे मार्गे गच्छतः पुरुषस्य हि
पूर्वाभिमुखतां भ्रातः कथं संगच्छते वद । ५८ ।

ईशान कोण में जाते हुए व्यक्ति की पूर्व दिशा में गति कैसे होगी (कहो भाई) !

किं वापार्श्व गतिं भूमेः कर्कटस्येव मन्यसे
उपपन्ना न सा युक्ति र्निसर्गो पाधि भेदतः । ५९ ।

अथवा पृथ्वी की पार्श्व गति (अपने अक्ष पर गति) कर्कट (केंकड़े) की तरह यदि मानते हैं तो यह निसर्ग (प्राकृतिक) तथा उपाधि (कृत्रिम अथवा दृष्टान्त) के समान भिन्न भिन्न युक्ति है ।

नैसर्गिकी कुलीरस्य सार्का कर्षण जा भुवः
तदृते क्रान्ति साम्मुख्याद् गतिरन्या न सम्भवेत् । ६० ।

आपके मत से पृथ्वी की स्वाभाविक गति सूर्य के आकर्षण के कारण है यह स्वाभाविक नहीं है । कर्कट स्वयं चलता है किसी के आकर्कण से नहीं । अतः यह तुलना ठीक नहीं है । इस प्रकार पृथ्वी की गति क्रान्ति के तल में नहीं है यह माना नहीं जा सकता है ।

विषुवद् वलयस्थेन्दु कलंको दक्षिणेऽयने
आग्नेयदिङ्मुखोदृष्टः सौम्येत्वैशान्य दिङ्मुखः । ६१ ।

विषुववृत्त के धरातल का चन्द्र का कलंक दक्षिण अयन में आग्नेय दिशा में और उत्तर अयन में ईशान दिशा में दीखता है ।

तत्कक्षान्तर्गतक्ष्माया ग्रहवद् भ्रान्ति रस्तिचेत्
तदासायन सामुख्यं ध्रुवं भवतु मर्हति । ६२ ।

ग्रहों की गति की तरह पृथ्वी की गति यदि विषुव कक्षा के अन्तर्गत होती तो चन्द्र का कलंक निश्चय अपनाभिमुख होता, यह निश्चय है ।

सायनव्यस्त विक्षेप वृद्धावपि न चेद् विधुः
जहात क्रान्ति साम्मुख्यं क्ष्मानिषुस्तत् कथंत्यजेत् । ६३ ।

याम्यायन में सौम्य शर तथा सौम्य (उत्तर) अयन में दक्षिण शर वृद्धि होने

से चन्द्र क्रान्ति मार्ग नहीं छोड़ता, बिल्कुल शर नहीं रहने पर पृथ्वी कैसे क्रान्ति मार्ग को छोड़ सकती है ? (अर्थात् विषुव तल में कैसे गति हो सकती है ?)

> **खे वाक्षिप्तं व्रजतु कुशलै घूर्णमानं दधित्थं**
> **चक्रं चक्राम्यतु भुविदिवि स्यन्दनस्थं करस्थम् ।**
> **पृथ्वी पृष्ठे लुठतु कठिनीगोलकः खेलया वा-**
> **देह भ्रान्तिर्न भवति विना स्व स्व मार्गा भिमुरूयात् । ६४ ।**

घूमते हुए कैंथ फल को आकाश में फेंकने से, रथ चक्र को आकाश में या जमीन पर लुढ़काने से, या खेल में गेन्द लुढ़काने से उनका अपने अक्ष पर भ्रमण अपनी गति की दिशा में ही होता है । किन्तु पृथ्वी विषुव कक्षा में अपने अक्ष पर घूमती है । तो उसके बदले क्रान्ति मार्ग पर क्यों गति है ?

> **यदि भ्रामं भ्रामं भ्रमति धरणी क्रान्ति पथगा**
> **तिरश्चिरा भानां पतिरि वतदा वासि पुरुषैः**
> **स्व पूर्वाद्याशास्थ द्रुम धरणि भृत् क्रोश गमने**
> **सुलक्ष्यो दिग् भेदः प्रतिदिन मुडुनां तदुदये । ६५ ।**

चन्द्र विषुव पर तिरछे रह कर अपने अक्ष पर घूमते हुए विमण्डल में चलता है, यदि पृथ्वी भी इसी प्रकार विषुवमार्ग पर घूमते हुए क्रान्ति मार्ग पर गति करती है तो पृथ्वी के लोग पृथ्वी पर पूर्व आदि दिशा में स्थित वृक्ष और पर्वतों की कोण गति देखते जिस प्रकार नक्षत्रों का उदय अलग अलग दिशा में देखते हैं ।

> **स्व कक्षा वृत्तत्वे भवति सवितुर्भूर भिमुखी**
> **मयास्वीः क्रान्त्युद्भावप वलय दैर्ध्याद् गति पथः**
> **दिशोर्याम्यो दीच्यो र्गुण वदृ जुरिष्टो तियदिचेत्**
> **इतिक्ष्मायां दृश्यस्त नु रयन सन्धौ दिनकरः । ६६ ।**

अपनी कक्षा वृत्त (अक्ष पर विषुव वृत्त में गति) के साथ साथ पृथ्वी यदि क्रान्ति वृत्त में सूर्याभिमुखी भी हो, तो क्रान्ति वृत्त के दैर्घ्य (दीर्घ वृत्त या वलय के लम्बा होने) के कारण क्रान्ति गति पथ उत्तर और दक्षिणी दिशा में ज्या के समान सरल होगा (चाप के समान गोला कार नहीं) यदि मेरे मत का तुम इस प्रकार अर्थ लेते हो तो मेरा उत्तर है कि इस अवस्था में सायन सूर्य कर्क और मकर आदि में दूरी के कारण (दीर्घ वलय का दूर का भाग में) छोटा और मेष, तुला के आदि में निकटता के कारण छोटा दीखना चाहिये । (पर ऐसा नहीं होता) ।

> **विदुरोऽनाथ स्येत्थं विषुवति भुवः सन्निधि वशा**
> **न्निशानाथ स्येत्थं शरसु सरलेऽपक्रमपथे**
> **क्वसाम्मुरुयात् लक्ष्यं रजनी लक्ष्मक्षितिगतै-**
> **र्विभिन्नाकारं यत्तदवनि गति र्नात्र घटते । ६७ ।**

इसी प्रकार चन्द्र का क्रान्ति मार्ग (विमण्डंल) अत्यन्त सरल होने के कारण चन्द्र का कलंक भी पृथ्वी वासियों को एक ही प्रकार दीखना चाहिये । किन्तु यह भी नहीं होता, चन्द्र कलंक भिन्न भिन्न आकार (दिशा) में पृथ्वी से दीखता है (अतः ग्रन्थकार के मत से पृथ्वी का भ्रमण नहीं होता)

केन्द्राभिमुख्य घटना कृष्टस्यामां तथापि भ्रूमति
अदिन कराभिमुख्यतया स्रष्टुः सेच्छा वसात्क्रान्तो । ६८ ।

यदि तुम्हारा कहना है कि सूर्य केन्द्र द्वारा आकृष्ट होने पर भी पृथ्वी की गति सूर्य की दिशा में न होकर क्रान्ति वृत्त में सृष्टि कर्त्ता की इच्छा के कारण है, तो मैं कहूँगा कि उसी सृष्टि कर्त्ता की इच्छा से पृथ्वी स्थिर रहे उसमें हलचल नहीं हो ।

इति वदसि तदिच्छा प्रामाण्यै मन्यतां महीस्थास्युः
आकर्षण मुरु भानोः स्याचेत् किं नास्ति तत् क्ष्मायां । ६९ ।

यदि बड़ा होने के कारण सूर्य में आकर्षण है (ऐसा कहते हो) तो वह पृथ्वी में भी क्यों नहीं होगा । (आकर्षण शक्ति केवल बड़ी वस्तु में ही कैसे होगी ?

स्थिराश्मकान्तेन कृशेनयस्मादाकृषयते तत् पृथुलोह पिण्डः
आकर्षणे कारणमेव शक्ति र्निसर्ग का नो पृथुता न तेजः । ७० ।

स्थिर छोटा लौह चुम्बक भी बड़े पिण्ड को खींचता है । इससे यह सिद्ध है कि आकर्षण शक्ति का कारण पिण्ड का बड़ा होना नहीं, उसकी अपनी स्वाभाविक (नैसर्गिक) शक्ति है ।

यदि क्षुद्र द्रव्यं भ्रमति वृहदाकर्षण बला-
न्तु क्षुद्रं स्थूलं भ्रमण कृदियं वाक् तव तदा ।
स्वतन्त्रत्वे सा सम्भवति न पराधीन वलयो-
र्यतः सर्वाकर्षिण्युत भगवदिच्छा बलवती । ७१ ।

इतना समझाने पर भी यदि तुम्हारा कहना है कि बड़ी वस्तु छोटे को खींच सकती है पर छोटी वस्तु बड़े को नहीं तो मेरा उत्तर है कि यह स्वतन्त्र वस्तु के लिये ही यह बात सम्भव है । जिस द्रव्य (छोटा या बड़ा) में स्वाधीन बल नहीं है उसके लिये यह ठीक नहीं है । प्रत्येक वस्तु को आकर्षित करने वाली शक्ति सदा भगवान की इच्छा के अधीन है ।

तड़ागान्तर्यष्टि कृश तनु मनु क्रामतिं यथा
महानौः कैवर्त्ता चरण परतन्त्रा जगदिदम्
तथा पर्यत्यर्कः पृथुरपि महेशा शयवशात् -
त्रिलोको लोकानामवनविधये सग्रह गणः । ७१ ।

जिस प्रकार तालाब में स्थित छोटे यूप दण्ड को नाविक की इच्छा के कारण

बड़ी बड़ी नौकायें परिक्रमा करती हैं, उसी प्रकार ईश्वर की इच्छा से छोटी पृथ्वी की परिक्रमा विशाल सूर्य अन्य ग्रहों के साथ त्रिभुवन के लोकोपकार के लिये करता है ।

सूर्योवान्य ग्रहो वा निजतनु परतो भ्रान्त माघ्नोतु तस्याः
का हानि र्भू स्थित्वे भवति वदसखे यस्य योऽस्ति स्वभावः
सोऽन्येषां दर्शनात् किं व्यभिचरति भवान् यन्त्र साहाय्य वत्वात्
सर्वेषां भ्रान्ति दर्शो न किमुडु पततोः पश्यति भ्रान्ति मारात् । ७३ ।

सूर्य और अन्य ग्रह अपने अक्ष पर घूमते है । इस कथा के साथ पृथ्वी के स्थिर रहने में क्या विरोध है ? कौन चलता है और कौन नहीं चलता इसमें कोई कठिनाई नहीं है- जिसकी जैसा स्वभाव है वैसा करेगा । आपने यन्त्र की सहायता से ग्रहों की गति देख ली पर निकट के चन्द्र की (अपने अक्ष पर) गति क्यों नहीं देख पाये ?

भ्रान्ति र्नोपग्रहाणां प्रभवति महतां खेचराणामिवेति
वृते चेद् भू मुखा नाभिह दिवसकृता योऽस्ति सम्बन्धएषः
चन्द्रादीनां स एव स्फुरति तमतया क्ष्मादिना किन्तु तेषा
मर्य्यम्णा कोऽपि नास्ते भ्रमण करण मालोकिता पद्वयान्यः । ७४ ।

वृहत् ग्रहों की तरह उपग्रहों का अपने अक्ष पर भ्रमण नहीं होता ऐसा यदि आपका मत है तो मेरा कहना है कि पृथ्वी आदि ग्रहों का सूर्य के साथ जो सम्बन्ध है (ये सूर्य का चक्कर लगाते हैं) वही सम्बन्ध चन्द्र आदि उपग्रहों का पृथ्वी आदि ग्रहों के साथ है (उपग्रह भी इसी प्रकार ग्रहों का चक्कर लगाते हैं । चन्द्र आदि उपग्रह सूर्य से प्रकाश और ताप ग्रहण करते हैं । (जैसा ग्रह करते हैं) पर गति का कोई सम्बन्ध नहीं है । (अतः प्रकाश और ताप के लिये ग्रह उपग्रह समान है, अपने अक्ष पर भ्रमण के लिये क्यों समान नहीं है ?)

किञ्चास्या विश्व धात्र्य रवि सदिधनुषः क्षुद्र मूर्तेः स्वदेह
भ्रान्तिः षष्ट्या (६०) घटि भिर्विशिख रस गुणै (३६५) र्वासरैः पर्ययश्चेद्
तत्किं भानोर्दवीयान् कुपृथुरिन (१२) शरत्पर्ययः तत्व (२५) दण्डे
स्वांग पर्येति जीव स्तदिह मम मतः स्रष्टृ दत्तः स्वभावः । ७५ ।

पृथ्वी सूर्य से बहुत छोटा और निकट रहकर ६० दण्ड में स्वांग (अपना) भ्रमण तथा ३६५ दिन में सूर्य का एक भगण पूरा करती है । वृहस्पति रवि से बहुत दूर रहने के कारण १२ वर्ष में १ भगण पूरा करता है पर पृथ्वी से बहुत बड़ा होने पर भी उसका अपने अक्ष पर (स्वांग) भ्रमण २५ दण्ड (पृथ्वी के आधे से भी कम) में ही कैसे हो जाता है । इससे लगता है कि इन सबका कोई नियम नहीं होता, इसमें भगवान की इच्छा ही प्रमाण है ।

वृहद् ग्रहस्या वयव भ्रमक्रमो भवे ज्जवे नाल्प तनोः सनो इति ।
ब्रवीषि चेत् तत्व (२५) दिनैः कथं शनै रविः स्वबिम्ब भ्रमभून्महानही । ७६।

(वृहस्पति और पृथ्वी के अक्ष भ्रमण समय के अनुसार) यदि कहा जाय कि बड़े ग्रह का स्वांग भ्रमण छोटे ग्रह से तेज होता है । तो रवि का अक्ष भ्रमण २५ दिनों में क्यों होता है जिसका बिम्ब वृहस्पति से बहुत बड़ा है । उसका समय वृहस्पति के २५ दण्ड समय से कम होना चाहिये था ।

सिद्धान्त शिरोमणौ-यथोष्णता र्कानल योश्च शीतता
विधौ द्रुतिः के कठिनत्व मश्मनि
मरुच्चलो भू रचला स्वभावता
यतो विचित्रा वत वस्तु शक्तयः । इति । ७७ ।

जिस प्राकार रवि और आग का गुण उष्म होता है, चन्द्रमा की शीतलता, जल की तरलता, पत्थर की कठिनता, वायु का गतिशील होना है उसी प्रकार पृथ्वी का स्वाभाविक गुण अचल होना है । वस्तुओं की अलग अलग प्रकार की शक्ति विचित्र है, उसका कोई समाधान नहीं हैं ।

जले यथा मृत्कण एतिमज्जनं महावहित्रप्लवते हि दारवम्
स्थिरोऽनिले स्थास्तुरियं तथास्थिरा निसर्ग लध्वर्क मुखाः खगाश्चराः । ७८ ।

पानी में थोड़ी सी मिट्टी डाल देने पर वह डूब जाती है पर काठ का बना हुआ महापोत उतराता है । इसी प्रकार पवन (आकाश) में छोटे आकार की पृथ्वी स्थिर है पर पड़े आकार का सूर्य आदि गति शील है क्योंकि वह स्वभाव से ही हलके हैं ।

किममूलः समूलो वा ग्रहाणां भगण क्रमेः ।
सृष्ट्यादि मूलकोऽस्माभिरक्तो यूष्मन्नतः स चेत् । ७९ ।

आपके मत से ग्रहों के भगण आरम्भ होने का क्या समय है या कोई निर्दिष्ट समय नहीं है । हमारे मत से उसका आरम्भ सृष्टि के आरम्भ से हुआ था । क्या इससे आप एक मत हैं ?

स्थाने निर्मूलक स्त्वेष मन्यते वा तथापि या ।
चक्रभोगाद् दिनगतिः सिद्धा सोभयथा समा । ८० ।

आपका मत कुछ भी क्यों न हो, आपके मत से एक भगण का जो मान है उसके अनुसार किसी ग्रह की दैनिक गति भगण ३६० दिन मान) तथा मेरे कल्पभगण के अनुसार दैनिक गति (ग्रह का कल्प भगण कल्प सावन दिन) एक समान है । (अतः गणना में कोई अन्तर नहीं होता)

सर्वखेचर कक्षाणां केन्द्रं चेत् सूर्यमण्डलम्
तदातस्यज्ञ सितयोः कुज्ये ज्यर्कि भुवां क्रमात् । ८१ ।

यदि सभी ग्रहों की कक्षा के केन्द्र में सूर्य मण्डल है तो पृथ्वी से देखने पर वह स्फुट सूर्य (१) बुध, शुक्र तथा (२) मंगल गुरु शनि का क्रमशः

मध्यता शीघ्रता पातः सोऽस्तीति त्वं ब्रवीषिचेत्
तदापरिधिभिः स्वीयैर्दृक् सिद्धेः शीघ्र मन्दजः । ८२ ।

(१) मध्यम मान तथा (२) शीघ्रोच्च होगा। उस अवस्था में प्रत्यक्ष देखे गये शीघ्र और मन्दपरिधि से

सर्व संस्कार शालिन्यां विहितायां स्फुटी कृतौ ।
कन्या मीन स्थिते भानौ केन्द्र चक्रान्तिक स्थयोः । ८३ ।

सभी संस्कार कर ग्रह स्पष्ट करने पर स्पष्ट सूर्य जब कन्या या मीन राशि में हो तो उच्च के निकट स्थित (सूर्य के दूसरी तरफ के कक्षा के भाग में)

भौम भार्गवयो र्दृश्यः प्रभेदाः स्वस्थितेः क्रमात्
कलाभि र्द्विशरै (मं-५२) रब्धि सायकैः (शु-५४) पुनरेतयोः । ८४ ।

मंगल और शुक्र के दृक् सिद्ध मान से गणितागत मान में क्रमशः ५२ तथा ५४ कला की अन्तर पड़ता है ।

चक्रार्द्ध स्थितयो र्द्वयंग बाहुभि (म २६२) विशिखामरैः (शु ३३४)
प्रभेदश्चेत्थमन्येषां दृश्यते परिधिक्रमात् । ८५ ।

पुनः यह दोनों चक्रार्द्ध (पृथ्वी की तरफ का कक्षा भाग) में रहने पर क्रमशः २६२ (मंगल) तथा ३३४ (शुक्र) कला का अन्तर दीखता है । इसी प्रकार अन्य ग्रहों का भी भेद दीखेगा ।

तत्कथं सूर्य बिम्बस्य सम्भवेद् मध्यशीघ्रता
तमूरी कुर्वतः सर्वमुदयस्तत्वेन यत्नतः । ८६ ।

अतः स्फुट सूर्य को बुध, शुक्र का मध्यम तथा मंगल गुरु, शनि का शीघ्रोच्च कैसे माना जा सकता है सूर्य को सभी ग्रहों का कक्षा केन्द्र जो लोग यत्नपूर्वक स्थिर करते हैं उनका यह मत है ।

काकतालीयवत् क्वापि दृक् सिद्धावपि ते मतम् ।
नास्माभिर्मन्यते साधु कदाचित् कं प्रमातृभिः । ८७ ।

काकतालीय न्याय (कौवा ताल वृक्ष पर बैठने के बाद उसका एक फल गिर पड़ा अत यह माना गया कि कौवा के कारण फल टूटा) के समान इस विधि से अभी दृक् सिद्ध होता है । अतः यही मत ठीक है-यह मत युक्ति युक्त और सब समय ठीक नहीं होगा । अतः यह मत मैं नहीं मानता ।

सर्वग्रहाणां भ्रमिकृत् केन्द्रस्थो मध्यमोरविः
स्वीकार्यश्चेत् तदेव स्यात् दृक् सिद्धः सार्वकालिकी । ८८ ।

मध्यम रवि को सभी ग्रहों का कक्षा केन्द्र मानने से स्पष्ट ग्रह सब समय दृकसिद्ध होते रहे हैं।

स्फुटार्क स्येति केन्द्रत्वा सिद्धावाकृष्य भावतः
निजोच्च देवताकृष्ट श्चन्द्रवद् भ्रान्ति मेति सः। ८९।

अतः स्फुट रवि ग्रह कक्षा के केन्द्र में नहीं है, इससे सिद्ध हुआ कि ग्रह स्फुट रवि की तरफ आकर्षित नहीं है और वह अपने उच्चके देवता से आकृष्ट होकर चन्द्र के समान स्वयं घूमते हैं। यही मानना युक्ति युक्त लगता है।

चक्रार्द्ध योगाद् भृगु जस्य चन्द्र फलाल्प भावादय भूमिजस्य
परोच्च मन्दोच्चफलाल्प भेदात् तौदृक् समौ वा भवदुक्तितः स्वाम्। ९०।

चक्रार्द्ध में रहने पर शुक्र का मन्दफल अत्यन्त कम है तथा मंगल के परोच्च और मन्दोच्च में बहुत कम अन्तर होने के कारण आपके मत से भी वह दोनों दृक् सिद्ध हो सकते हैं।

स्थित्वा स्वमध्येऽपमण्डला नुसारात् तनु भ्रान्ति मता सवित्रा
आकृष्ट कक्षाः सुतरां प्रयान्तु बुधादयः क्रान्ति पथेन खेटाः। ९१।

किन्तु आकाश में क्रान्ति वृत्त के धरातल में अपने अक्ष (धरातल पर लम्बरूप) पर घूमते हुए सूर्य से आकर्षण के कारण बुध आदि ग्रह क्रान्ति वृत्त में ही गति कर सकते हैं। उनका विमण्डल क्रान्ति वृत्त में होगा)

तयार्यमा कर्षत कक्षया भुवा विधुः समाकृष्ट तनु प्रयाति चेत्।
तदा कुगोल भ्रमि सिद्धया दिशा प्रयातु मेवा र्हति नान्यथा क्वचित्। ९२।

उसी सूर्य द्वारा आकर्षित होकर पृथ्वी चलती है तथा पृथ्वी के आकर्षण से चन्द्र चलता है। यदि ऐसा है तो चन्द्र भी पृथ्वी की तरह अपने अक्ष पर घुमने की दिशा में जाने को बाध्य है, अन्य दिशा में नहीं जा सकता।

क्षितेस्तथा क्रान्ति पथाभिमुख्यतो विदिश्यपिस्याद् विषुवेध्रुवेक्षणम्
न चाप मस्तद् ध्रुव पार्श्वक भ्रमे भवेद् विधोरित्यवला चला कथम्। ९३।

और भी, सूर्य के आकर्षण के कारण पृथ्वी की गति क्रान्ति वृत में होने से (पृथ्वी की अक्ष पर गति भी उसी तल में होगी) तथा विषुव दिन पर ध्रुव एक कोण पर दीखेगा (विषुव क्षेत्र से)। पुनः पृथ्वी की क्रान्ति वृत्त गति से आकृष्ट चन्द्र की स्पष्ट क्रान्ति कैसे होगी। वह क्रान्ति वृत्त में ही चलेगा। इन सबसे पृथ्वी का स्थिर होना सिद्ध है।

मन्दोच्च पाता प्रभवाधरोर्द्धव याम्योत्तरावस्थिति दृष्टि हेतो
प्रति व्यपादि भ्रममण्डलानां योगाद् यदुत्पद्यत एव वृत्तम्। ९४।

मन्दोच्च, शीघ्रोच्च और पात आदि के कारण ग्रह की ऊपर, नीचे उत्तर तथा दक्षिण में अवस्थिति होती है-इस गति को मार्ग दिखाने वाले वृत्त वास्तविक

वृत्त नहीं है । वरन्

तया तदेवो दिन मत्र वृत्त भासो ग्रहाणां सरणिर्यदेतत्
युक्तञ्च पातोच्च गतीक्षणार्त्ते क्षेपाभिरक्षात् मसुराः प्रदिष्टाः । ९५ ।

ये सिर्फ वृत्त का आभास (या उसकी अदृश्य दिशा या रेखा) हैं । इसी कक्षा में ग्रह का शर (बिम्ब से कदम्ब प्रोत वृत्त कक्षा को जिस बिन्दु पर काटता है) होता है । पाश्चात्य लोग जिस प्रकार ग्रह गति का कारण (सूर्य) का आकर्षण और विक्षेप मानते हैं, उसी प्रकार हम उन्हें आकर्षण और विक्षेप शक्ति वाला देवता मानते हैं ।

भवन्मते भूमिरियं ग्रहेभ्यो न भिद्यते तुल्यगुणा श्रितत्वात्
तथा सति स्थूलतराः पृथिव्या जीवादयाः पातवशाद् विदूरम् । ९६ ।

यदि पृथ्वी भी अन्य ग्रहों के समान मानी जाय तो पृथ्वी से आकार में बहुत बड़ा वृहस्पति पात के कारण बहुत दूर (उत्तर या दक्षिण दिशा में) क्यों चला जाता है ?

विक्षेप मृच्छन्ति कथं क्ष्मा किं नक्षिप्यते शुक्र समात्व दुक्तय ।
बिम्बानपेक्षा यदिष स्तदस्या गुरोरपि क्षुद्र इतीर्यते चेत् । ९७ ।

शुक्र के समान पृथ्वी भी सूर्य के निकट है, पर पृथ्वी का शुक्र की तरह विक्षेप क्यों नहीं होता ? शर या पात गी गति बिम्ब मानकर निर्भर नहीं है अतः गुरु से पृथ्वी कर शर कम होना सम्भव है ।

क्षित्यां तदापि त्रिकलेषु मर्त्यां क्रान्ति प्रभेदात् विषुवायनेषु
दृक् सिद्धभावात्तरणेर्न हि स्यात् ग्रह प्रभाकाल विलग्न सिद्धिः । ९८ ।

यदि तुम्हारे मत के अनुसार पृथ्वी का विक्षेप तीन कला माना जाय तो विषुव और आयन स्थिति में भेद के कारण सूर्य दृक् सिद्ध नहीं होगा । फलतः ग्रहण, छाया, समय और लग्न आदि नहीं सिद्ध हो पायेगा ।

अतः शराभावत एव साक्षान्निश्चीयते निश्चलता चलायाः
यद् गोलयोः सायन भाग यानो र्न क्रान्ति भेदोऽ पतनुर्भुजैक्य । ९९ ।

पृथ्वी का शर नहीं मानने यह सब सिद्ध हो जायेगा । अतः पृथ्वी को स्थिर मानना ही सिद्धान्त है । दोनों गोलों में सायन सूर्य का भुज समान होने पर जरा भी क्रान्ति भेद नहीं होता । इससे भी पृथ्वी स्थिर मालूम होती है ।

यथा रवे नास्ति शरो मते ते तथा भुवो सम्मत एव मात्थ
चेत् खेट कक्षादर पार्श्व केन्द्र स्थिते महत्वा दति भास्वर त्वात् । १०० ।

पृथ्वी की गति मानने से उसका शर मानना पड़ता है । जिससे यह गड़बड़ी हो रही है । जिस प्रकार तुम्हारे मत से सूर्य का शर नहीं है । उसी प्रकार हमारे

मत से पृथ्वी का शर नहीं है । सूर्य बिम्ब भी मध्यम सूर्य से अलग रहता है, इस कारण तुम सूर्य का शर क्यों नहीं मानते हो ?

भानोग्रहेभ्यो बहु भेद लाभात् प्रत्यक्षतेऽमानि मयेष्ठ भाव ।
बुधा दि साधर्म्यजषः पृथिव्याः सचेन्निसर्गादचलैव सा स्ताम् । १०१ ।

तुम्हारा मत है कि सूर्य के बाकी ग्रहों के समान पृथ्वी भी है, केवल एक अन्तर है कि और ग्रहों की तरह पृथ्वी का शर नहीं है । इसी तर्क से मेरा मानना है कि बाकी सभी ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं, पर पृथ्वी स्थिर है । स्वभाव से ही पृथ्वी अचल है, इसमें आपको आपत्ति क्यों ?

भू धर्मिणो भौम मुखा यदि स्युः सर्वर्तुमन्तस्तदिमान् किमन्तः
स्ववारि वाष्पोद् भव मेघ संघा नाच्छादयन्त्यर्क मया शशीव । १०२ ।

यदि मंगल आदि ग्रहों का गुण पृथ्वी के समान ही है और इनमें भी पृथ्वी की तरह ६ ऋतुएं हैं तो अमावस्या में जिस प्रकार चन्द्र सूर्य को ढंक लेता है और उसी प्रकार उन ग्रहों के पिण्ड से निकले वाष्प के मेघ पृथ्वी और ग्रह के बीच आवरण का कार्य करते । वह क्यों नहीं होता ?

मृण्मयसौ भूर्महती ग्रहास्ते तोयात्मकाः क्षुद्र निजप्रमाणाः
विरुद्ध धर्मावत एव पृथ्वी तारा ग्रहों स्तास्तु चलौ क्रमात् स्तः । १०३ ।

बुध शुक्र का बिम्ब जलीय है, पृथ्वी का बिम्ब मिट्टी का और उन से बड़ा है । इससे स्पष्ट है कि ग्रह समान धर्मी नहीं है । अतः पृथ्वी को स्थिर और बुध आदि को चल मानने में कोई असंगति नहीं है ।

भास्वत् करोत्तप्त मृदन्ति कस्ता दुद् गत्य वाष्पाणि जलाद् घनाः स्युः
न केवलात्तोयमय ग्रहेषू तत्सम्भवो वस्तुत एव नास्ते । १०४ ।

मिट्टी के निकट का जल सूर्य की गर्मी से वाष्प बन जाता है । जिससे मेघ होता है । अन्य ग्रहों का केवल जलीय बिम्ब होने से उन पर वाष्प नहीं बनता अतः मेघ नहीं दीखता । (यह सभी बातें पूर्णतः गलत हैं)

यष्ट्य ग्र युग्म ग्रथिताल्प भूरि मृत्पिण्डयो र्यत्रधृतौ तुलास्यात्
तद् भार केन्द्राख्य मदोर्यतेऽस्यां स्थान भ्रमेतद् ग्रहणात् वृत्ते । १०५ ।

एक डण्डे के दो छोरों पर क्रमशः बड़ा और छोटा पिण्ड लटकाने से जिस स्थान पर डण्डा पकड़ने से डण्डा समतल रहता है, उस स्थान को भार केन्द्र कहते हैं । उस भार केन्द्र को सूत्र से लटका कर घुमाने से

क्षुद्रस्य पिण्डस्य वृहत्प्रमाणं स्यान्मण्डलं भ्रान्ति भवं गुरोस्तु
अल्पायतं तद्धरणी तरण्यो रस्यां क्रियायां परिकल्पितायां । १०६ ।

छोटा पिण्ड बड़े वृत्त में तथा बड़ा पिण्ड छोटे वृत्त में भ्रमण करेगा । पृथ्वी

और सूर्य को इसी प्रकार छोटा और बड़ा पिण्ड मान कर

तद् भार केन्द्र रवि बिम्ब मध्ये पतव्यतः तिष्ठतितत् ख मध्ये
क्ष्मा दूरगा भ्राम्यति युक्ति रेषा तवास्ति चेत्सापि भवेत् सदोषा । १०७ ।

दोनों का भारकेन्द्र सूर्य बिम्ब में पड़ता है । अतः सूर्य बिम्ब को आकाश मध्य में और स्थिर माना गया है । इस प्रकार दूर पर स्थित पृथ्वी विशाल वृत्त में रह कर भ्रमण कर रही है । यदि सूर्य के स्थिर और पृथ्वी के चल होने का यही कारण आप बताते हैं तो इसमें भी दोष है ।

यत् तन्मते धनफलेन (५,१२,३४,२०,०,४,६७,७०७)
गुरो (४६,०८२) विभक्ताद् भास्वद् घनात्
(४५,९२,६४,६२,९१,३३,५३,८८२) फलमभूद्रसगोऽष्ट
(८९६) संख्य सैकेत (८९७) दाप्त मुभयान्तर वर्त्म
(२४,५०,००,०००) लब्धं क्रोशात्मकं धृतिनखाचल बाहु संख्यम् । १०८ ।

सूर्य भार उसके आकार के घनफल के अनुपात में है उसे वृहस्पति के भार वृहस्पति व्यास के घनफल) से भाग देने पर

$$\frac{४५,९२,६४,६२,९१,३३,५३,८८२}{५१,२३,४२,००,४६७,७०७} = ८९६ + \text{शेष}$$

आता है । लब्धि में एक जोड़ने पर ८९७ आता है । इससे सूर्य और गुरु की दूरी को भाग में देने पर

$$\frac{२४,५०,००,०००}{८९७} = २,७,२०,१८ \text{ कोस आता है ।}$$

यन्मध्यतो रवि तनोरियतान्तरेण
स्याद् भारकेन्द्र मधिकं रविमण्डलार्द्धात्
सार्द्धेन्दु भूप भुज दृग भुज (२,२२,१६१) सम्मितात्तद्
बाह्ये पतत्यत इनस्य कथं स्थिरत्वम् । १०९ ।

अतः सूर्य केन्द्र से २,७२,०१८ कोस दूरी पर भार केन्द्र होना चाहिये । रवि व्यासार्द्ध २,२२,१६१ x १/२ है, जो भार केन्द्र की दूरी के आधे से कुछ कम है । अतः भार केन्द्र किसी प्रकार सूर्य बिम्ब में नहीं आता है । अतः सूर्य की स्थिरता के लिये आपने जो कारण दिया है वह ठीक नहीं है ।

अत्रापि सूर्या भिमुखत्व सिद्धिः सर्वग्रहाणां समकालता च
कक्षाभ्रमे सम्भवतीत्य सिद्धा तत्कल्पना नल्प मतेकृता किम् । ११० ।

यहां भी सूर्य केन्द्र की तरफ सभी ग्रहों का कक्षा भ्रमण से भगण काल समता सिद्ध होता है । फिर आप इतने बुद्धि मान होकर भार केन्द्र की कल्पना क्यों करते हैं, जो सूर्य बिम्ब में अलग है ।

न वास्तवो तद् घटना ग्रहेषु भवेद् गुरुत्वं यद मीषु नास्ते
केन्द्राभिकृष्टे गुरुतैव वस्तु न्युक्तं प्रसंगात्पठतां हिताय । १११ ।

ग्रहों का भार नापा नहीं जा सकता अतः उनके भार केन्द्र की व्याख्या निरर्थक है । छात्रों और शिक्षकों के हित के लिए भार केन्द्र के प्रसंग में इसकी चर्चा की गयी ।

भ्राम्यद्धरा पृष्ठग तुंग वेष्म श्रृंगस्य रेखा भ्रमिमण्डलोत्था
महत्यतस्तत् पत दश्म खण्ड भू संगतिः स्यात् परत्त श्च किञ्चित् । ११२ ।

पृथ्वी घूमने के कारण उसकी सतह पर ऊंचे घर या पर्वत के शिखर बड़े वृत्त में घूमते हैं । अतः उनकी गति (सतह की गति से अधिक होती है । यदि उसके शिखर से पत्थर गिराया जाय तो वह अपने ठीक नीचे के बिन्दु से कुछ पूर्व की तरफ गिरेगा । (पृथ्वी की गति पूर्व दिशा में है) ।

भू भ्रान्त्य भावे पतनं महीत्थं स्यादित्यवादी यदितन्मयुक्तम् ।
भूवायु रत्रावह नामधेयं प्रत्यग् दिशो वाति सदैव धीरः । ११३ ।

पृथ्वी नहीं घूमने से ऐसा नहीं होता यह आपका निष्कर्ष है । मेरे मत से इसका कारण है कि आवह नामक भूवायु सदा धीर भाव से पश्चिम से पूर्व की तरफ गति करती है ।

तत्प्रेर्यमाणा स्तृणराजवृक्षा प्रायेण पूर्वातत भाव लक्ष्याः
पुनर्मही मध्यग रेखकायाः प्रायोनतः प्राग् गतभूमिभागः । ११४ ।

इस वायु से प्रभावित होकर घास वृक्ष आदि प्रायः पूर्व को ओर भी थोड़ा पूर्व की तरफ झुक जाने के कारण पत्थर थोड़ा पूर्व की तरफ गिरता है ।

अतः क्वचित् प्राचि पतेत्कदाचि दशादिकं नत्ववनि भ्रमेण
समे स्थले सावरणेतु सर्व स्याधो गति स्यादृजु रेखयैव । ११५ ।

अतः इसकी व्याख्या के लिये पृथ्वी का भ्रमण मानने की जरूरत नहीं है । समान स्थल में और ऊपर में आवरण रहने पर जिससे हवा का प्रवेश नहीं हो, सभी द्रव्य ठीक नीचे की तरफ ही गिरते दिखायी देते हैं ।

यावद्दूरे यस्य यस्य ग्रहस्य व्रघ्ना मध्य स्थान मास्ते तथैव
कालेनस्याद् यावता यस्य पूर्णो भास्वद् बिम्बाभि भ्रमः पर्ययाख्यः । ११६ ।

सूर्य बिम्ब केन्द्र से ग्रह केन्द्र तक दूरी को ग्रह की दूरी कहते हैं । तथा ग्रह को सूर्य का एक चक्कर लगाने में जितना समय लगता है उसे भगण काल कहते हैं ।

तत्खेटार्कान्तः स्फुरद् योजनानां ये स्युर्घात द्वन्द्वजाता घनांकाः
तत्तत्कालस्यापि वर्गाङ्का ये वर्गास्याद् यो घनेनानुपातः । ११७ ।

सूर्य से ग्रह की दूरी का घन तथा ग्रह के भगण काल के वर्ग का अनुपात

अन्योऽन्यं सर्वखेटस्यतुल्यं सोऽयं यद्
वद् भूः शरांकाग्नि (३६५) घस्त्रैः
सप्ताष्टाङ्कैः (६८७) मंगलोऽभि भ्रमेत् तद्
वर्गाद्वन्द्वस्याभवद्योऽनुपातः (३।३१) । ११८ ।

सभी ग्रहों के लिये समान होता है । पृथ्वी के भगणकाल (३६५ दिन) तथा मंगल के भगण काल (६८७ दिन) के वर्ग का अनुपात ।

$$\frac{(\text{मंगल भगण})^2}{(\text{पृथ्वी भगण})^2} = \frac{६८७^2}{३६५^2} = ३/३१ = ३.५१९$$

सोऽयं लक्षक्षुण्ण पञ्चाद्रि वेद (४,७५,००,०००)
क्रोश क्षौणी पद्धते र्मध्यमायाः
खाभ्र व्योमाकाश तत्वाक्षिशैल (७,२२,५०.०००)
क्रोश क्षौणीपुत्र मार्गस्यचापि । ११९ ।

सूर्य से पृथ्वी की दूरी (४,७५,००,०००) कोस तथा मंगल की दूरी (७,२२,५०,०००) कोस है ।

सम्बन्धः (३।३१) स्याकेन्द्र सूर्यदे घनाङ्क द्वन्द्व स्वेत्थं तथ्यवद्य त्वामात्थ व्यर्थो कर्त्तुं कम्पते तन्मनीषा दोषा भासादुच्यतेकोऽ पि भाषा । १२० ।

$$\frac{(\text{मंगल दूरी})^3}{(\text{पृथ्वी दूरी})^3} = \frac{(७,२२,५०,०००)^3}{(४,७५,००,०००)^3} = ३.५१९ = ३/३१$$

भगण के वर्गों इस प्रकार भगण काल के वर्ग का अनुपात तथा दूरी के घन का अनुपात पृथ्वी और मंगल के लिये समान है । इस नियम की सत्यता के आधार पर यदि आप पृथ्वी का भ्रमण होना प्रमाणित करते हैं तो मेरी बुद्धि विचलित हो जाती है । और बहुत सी बातें कहनी पडेंगी ।

न कार्य मुन्मीलति कारणादृते रवि भ्रमादेव खगाभ्रमन्तिते
अतोऽनुपातः किल काल मार्ग योर्ग्रहैः समं कर्तुमिनस्ययुज्यते । १२१ ।

बिना कारण के कार्य नहीं होता । यदि सूर्य के अपने अक्ष पर भ्रमण के कारण उसके चारों तरफ पृथ्वी आदि ग्रह घूमते हैं । तभी ग्रहों की दूरी तथा काल का आनुपातिक सम्बन्ध करना उचित है ।

यदोबिम्बाति समीपगो ग्रहः प्रकल्प्यते कश्चिदसौ भ्रुवो ऽ भवत् ।
सयन्त्र दृक् सिद्ध ख रांशु मण्डल भ्रमक्रमात्तत्व (२५)
दिनै भ्रमेद् ध्रुवम् । १२२ ।

यदि यह अनुपातिक सम्बन्ध ठीक है तो सूर्य के अति निकट (पृथ्वी के निकट मेष के समान) यदि कोई ग्रह हो तो उसका सूर्य के चारों ओर का भगण काल २५ दिनों होना चाहिये । क्योंकि यन्त्र द्वारा दृक् सिद्ध सूर्य का अपने अक्ष

पर भ्रमण (या उसकी सतह के बिन्दु का भगण) काल २५ दिन हैं।

तदन्तरं भास्कर मध्य केन्द्रतस्तदीय बिम्बार्द्धमितं भवेद् यतः।
ततोऽत्र केन्द्रं सवितेति कल्पितं स्वगोल पृष्ठं ग्रहकक्षिकेत्यपि। १२३।

अतः ऐसे ग्रह की मध्यविन्दु की सूर्य से दूरी सूर्य के बिम्बार्द्ध (व्यासार्द्ध) के बराबर होगी क्योंकि वह सूर्य पृष्ठ से सटा हुआ है।

तदन्तरालस्य (२,२२,१६१।३०) घनाङ्क
(१०९६४९४३४७२९९०७८३ ।२२।३०।
भाजतात् बुधादि मार्गस्य घनाङ्कतः फलम्
यदेव तेन ज्ञसितादि कालज् कृति र्हुता तत्फलतः पदंहि यत्। १२४।

इस दूरी (सूर्य का व्यासार्द्ध = २,२२,१६१।३०) कोस का घन (१०,९६,४९,४३,४७,२९९०,७८३।२२।३०। का बुध कोस के घन से भाग देकर बुध के भगण काल ८८ दिन से गुणा करने पर मात्र ६। ५२ दण्ड आता है।

भवेद्रवेः स्वभ्रमकालएव तत् सपक्ष नाराच फलाङ्क नाड़िकम् (६।२२)
तदेक घस्रे नव वार वेष्टनं विपाद यं दृष्ट विरुद्धमापतेत्। १२५।

यह मान (६।५२) दण्ड ही सूर्य का अपने अक्ष पर भ्रमण काल होना चाहिये। इसका अर्थ कि सूर्य एक दिन में अपने अक्ष पर ९ चक्र से एक पाद कम पूरा करना चाहिये जो कि यन्त्र दृष्ट मान (२५ दिन में एक भगण) के विरुद्ध है।

अथेषूपक्षा (२५) भ्रमणस्यवासराः समक्ष भावाद् यदि ते मताः स्थिराः
तदान्यखेट भ्रमिकाल वर्गतो रवि भ्रमो वासर वर्ग भाजितात्। १२६।

पुनः यदि सूर्य का अपने अक्ष पर भ्रमण काल २५ दिन माना जाय तो मंगल आदि ग्रह के भगण काल (६८७ दिन) वर्ग को रवि भगण काल (अपने अक्ष पर) (२५ दिन) के वर्ग से भाग देकर

फलेन खेटान्तर दूरता घने हृते फलात् यद् घन मूल मागतम्
तदर्क बिम्बार्द्धयतोऽर्क विस्तृति, तत् स्पष्ट मानात् रस वह्नि गुणितः।१२७।

फल से मंगल की दूरी के घन में भाग देने हैं तथा फल का घन मूल निकालते हैं। इससे सूर्य के बिम्बार्द्ध का जो मान आता है। वह वास्तविक मान का ३६ गुणा है।

स्वमान सिद्धौ भ्रमणं विरुद्ध्यते भ्रमस्य सिद्धौ च विरुद्ध् यते मितिः।
स्वकारणः स्योभय भेत्यसिद्धतः किमन्यकार्य भ्रमणानुपाततः। १२८।

इस प्रकार यदि सूर्य बिम्ब का मान ठीक मानते हैं। भगण दूरी सम्बन्ध के कारण उसका भगण काल गलत आता है और भगण काल ठीक मानने पर बिम्ब मान गलता आता है। इस प्रकार सूर्य का अपना ही भ्रमण काल और बिम्बमान

ये दोनों अनुपात के विरुद्ध हैं फिर उसके कारण मंगल आदि ग्रहों का भ्रम उस नियम से कैसे होगा ?

मध्यरविं पर्ययतां ग्रहाणां क्ष्मतः क्रमादन्तिक दूर वृत्तो
चक्रार्द्ध चक्रे चल केन्द्र भक्ते ते मन्द केन्द्रे रवितस्तथैव । १२९ ।

अपनी अपनी कक्षा में मध्यम सूर्य का परि भ्रमण करते हुए मंगल आदि ग्रहों का निकट में चक्रार्द्ध में तथा दूर रहने पर चक्र पूर्ण होने पर शीघ्र केन्द्र होता है। भूगर्भ से जो रेखा तुलादि तथा मेष आदि में प्रति वृत्त को काटती है। वही दो स्थान तुला आदि तथा मेष आदि का शीघ्र केन्द्र होता है।

स्वीयैरेक विग्रहैः सदापरिधिभि र्भौमादिकानां फलं
शैघ्रं मन्दभवं सुसिद्ध मवनौ दृक् तुल्यतां यादि चेत्
तन्नो भानुमतां सह ग्रहगणाः पर्येतु सर्वं सहां
भू सूर्य द्वय दिग् विशेष वसते द्राक् केन्द्र त निश्चयात्। १३० ।

ठीक उसी प्रकार मध्यम सूर्य से मन्द प्रति वृत्त के सबसे निकट तथा सबसे दूर स्थित तुलादि तथा मेषादि में मन्द केन्द्र होता है। मंगल आदि ग्रहों का शीघ्र और मन्दफल एक प्रकार का होता है। पृथ्वी सूर्य से उल्टी दिशा में (पृथ्वी से सूर्य की दिशा का उल्टा) होने से और उसी से शीघ्र केन्द्र स्थिर होने के कारण यही मानना सुविधा जनक है कि सूर्य ग्रहों के साथ पृथ्वी की प्रदक्षिणा करे।

ओजाघ्र्यन्त जुषः कुजस्य परिधि स्त्र्यंशाधिको दृश्यते
सूर्याद् भूदिशि तत्परोच्चत इदं मन्दः समाकृष्यते ।
तेनाकर्षित बिम्बतो मृदुफलं कौजं स्फुटं दृक् समं
शीघ्रोत्थेन फलेन किञ्चिदधिकं यन्मन्द केन्द्राच्च तत्। १३१ ।

विषम पादान्त में मंगल की मन्द परिधि तीन अंश अधिक होती है। यह मन्द परिधि (मन्दोच्च) सूर्य से पृथ्वी की दिशा में स्थित परोच्च द्वारा आकृष्ट होता है। अतः परोच्च तथा उससे आकृष्ट मन्दोच्च से आकृष्ट मंगल बिम्ब का जो दृक् सिद्ध मन्दफल होता है, वह शीघ्रफल से थोड़ा अधिक होता है। मंगल के मन्द केन्द्र के कारण ऐसा होता है।

ग्लौजन्मन श्चलफलोपच यात् फलस्य
मान्द्यस्य चापतय निश्चयतः चलस्य
मन्दोत्थ केन्द्र वशतो बहुताल्पतायत्
तत्सर्वमर्क कु युगान्न तु केवलार्कात्। १३२ ।

बुध का शीघ्र फल में वृद्धि तथा मन्दफल का ह्रास और मन्द केन्द्र के कारण शीघ्र फल बढ़ना और घटना आदि केवल सूर्य के कारण नहीं होता। (सूर्य और बुध का मन्द केन्द्र दोनों कारण हैं।)

इति क्षितिज सौम्ययोः क्षिति रवि द्वयानुभ्रमे
स्फुटेऽल्प फल भेदतोः भवति हि ध्रुवोऽन्यभ्रमः
तथा रवि रतः परिभ्रमति सर्वत् इक्षु क्षिते
र्दधत् खेचर कक्षिकान घटतेऽन्यथा दृक् फलम् । १३३ ।

मंगल और बुध इस प्रकार रवि और पृथ्वी दोनों की परिक्रमा करते हैं । तथा मन्द और शीघ्र दोनों दीखने के कारण यह सिद्ध है कि इन ग्रहों के अतिरिक्त पृथ्वी और सूर्य में से कोई एक अवश्य घूमता है । यदि रवि को स्थिर माना जाय तो इन ग्रहों का दृक् सिद्ध मान नहीं आ सकता है । अतः यह तय है कि इन ग्रहों की कक्षाओं को साथ ले (ग्रह सूर्य का चक्कर लगाते हैं) सूर्य पृथ्वी के चारों तरफ घूमता है ।

अति दूरग मृक्षमण्डलं तदवस्थाः खलु तारकाः स्थिराः
असमेर्द्धन भस्य वस्थिता रवयश्चेति बुधैः सुनिश्चिताः । १३४ ।

पण्डितों (पाश्चात्य) का मत है कि तारा गण अत्यन्त दूर रहने के कारण उनकी स्थिति स्थिर मालूम होती है । लेकिन सूर्य ग्रहण (सूर्य तथा सूर्य के समान अन्य तारा गण) आकाश में अलग अलग धरातल में हैं ।

स्वगणैः परिवारितास्तः तलग्नयास्म दिनात्तदन्तरम्
क्षिति भास्कर मध्य मार्गतः ख ख खा भ्राष्ट (८,।००)गुणाधिकं भवेत् ।१३५ ।

अन्य सूर्य भी अपने परिवार (ग्रहों) के साप हैं । सूर्य से सबसे निकट का जो तारा (सूर्य के ही समान) है उसकी सूर्य से दूरी, पृथ्वी से सूर्य की दूरी का (८,०००) गुणा है ।

रवितोऽपि वृहत्तनुधरा कथमेता मनुरुपिणीं ध्रुवम्
उड़वः परियान्तु तत् क्ष्मा भ्रमतः तद् गति रीक्ष्यते जनैः । १३६ ।

कितने तारा सूर्य से भी बड़े हैं । वह सभी छोटे आकार की पृथ्वी का कैसे परि भ्रमण कर सकते हैं ? अतः पृथ्वी के भ्रमण के कारण ही तारों की गति दीख पड़ती है ।

इति चेच्छृणु मन्मते तु तास्तलग दस्रमुखाः कुमध्यतः
खरसाग्नि गुणार्क मध्यम श्रुति तुल्ये पथि यान्ति नित्यशः । १३७ ।

यदि इस प्रकार तर्क स्वीकार किया जाय तो मेरे मत के अनुसार मध्यम सूर्य की दूरी से ३६० गुणा दूरी पर नक्षत्र मण्डल पृथ्वी की परिक्रमा प्रति दिन करते हैं । (पृथ्वी से नक्षत्र मण्डल की दूरी = ३६० x रवि मध्यम कक्षा = ३६० x ७६,०८,२९४ = ६८,४७,४६,४६० योजन दूर)

यद् युग्मौज पदान्त शीघ्र परिधे र्भागान्तरं दृश्यते
साक्षात् शीघ्र फले ततोऽस्मदुदिता सिद्धा भ चक्र श्रुतिः

भूमेः कर्कट वद् गमात्व दुदिता सा प्राङ् मुखी चेत् भ्रम-
त्यत्रापि प्रभवत्य संगति रतः क्रान्त्यन्तयो स्तर्कतः । १३८ ।

शीघ्रफल निकालते समय सम और विषय पादान्त में शीघ्र परिधि का अन्तर १ अंश दीखता है अतः मेरे मत के अनुसार दिया गया शीघ्र कर्ण ही ठीक है । केंकडे की तरह पृथ्वी की पूर्व दिशा में गति तर्क संगत नहीं है यह अन्त में क्रान्ति की आलोचना से स्पष्ट होगा ।

भू बिम्बे धनुरन्तगे यदुद यद् यत्रर्क्षमा लक्ष्यते
तस्मात् सप्त चतुर्लवान्तर गते युग्मान्त गे ऽ स्मिन्निदम्
दृश्यताष्टकलान्तरे यमदिशि स्थानादि तत् स्थूल्यता
लोकादप्यवनिः स्थिरेति मयका निश्चीयते सर्वतः । १३९ ।

पृथ्वी सायन मकर आरम्भ में (धनु के अन्त में) रहने के समय एक नक्षत्र उदय होकर भचक्र (नक्षत्र मण्डल) में जिस स्थान पर दीखता है पृथ्वी वहां से ४७° अंश क्रान्ति अन्तर पर मिथुन अन्त (या कर्क आरम्भ) में रहने पर अपने पहले उदय स्थान से ८' कला (४७° / ३६०°) दक्षिण की तरफ ही दीखना चाहिये । यह व्यवधान विल्कुल नहीं दीखने के कारण मैं पृथ्वी को ही स्थिर मानता हूँ ।

भानां चक्रं चलन रहितं चेत्तदा किं चलांशा
साक्षाद् मच्छ त्य नुभव मुदग् दक्षिण क्रान्त्य सा म्यात् ।
त्वं चेद् वृषे तदपि चलनं क्रान्ति वृत्तस्य सिद्धं
न त्वं ऋक्षाणां मिति श्रृणु तदा तस्य सिद्धान्त मस्मम् । १४० ।

भचक्र स्थिर है और चलता नहीं यह बात भी आप नहीं कह सकते हैं । इसका कारण अयन गति या अयनांश है । उत्तर और दक्षिण क्रान्ति में असमानता के कारण भचक्र का चलना स्पष्ट दीखता है । इसकी व्याख्या यदि करेंगे कि यह क्रान्ति वृत्त के चलन के कारण है । और उसके कारण नक्षत्रमण्डल का चलन दीखता है । तो मेरा समाधान सुनिये ।

पूर्वाचार्यैर्ध्रुव शरलवा दृष्टिसिद्धा य उक्ता
स्तत्तत्साम्यत्वपचलनाद्ध स्थिरत्वेन सिध्येत् ।
प्राकालोक्ता, य इह विशिखाः सम्प्रतीक्ष्यन्त एते
तस्माच्चक्रं प्रचल दभितो भाति संक्रान्ति वृत्तम् । १४१ ।

पूर्वाचार्यो ने दृक् सिद्ध कर नक्षत्रों का ध्रुवांश और शरांश जितना कहा था अभी भी वह उतना ही है । क्रान्ति वृत्त का चलन और नक्षत्रों की स्थिरता मानने से ऐसा नहीं होगा । अतः क्रान्ति सहित नक्षत्र समूह हम लोगों के सामने चलता हुआ दीखता है ।

इत्थं भाना मयन चलने निश्चिते सिद्धमेव
प्रत्यग् यानं प्रतिदिन मतो निश्चलैषा धरित्री

दिव्य ज्योतिर्यदिभव लयेसूर्यवद् द्योतमानम्
तत् किं ध्वान्ति निशि न विलयं यात्य संख्याहु सत्वे । १४२ ।

नक्षत्रों का अयन चलन, उनकी पूर्व से पश्चिम की दैनिक गति से प्रतीत होता है, कि पृथ्वी स्थिर है । भूगोल (आकाश) में यदि सूर्य के समान अन्य दिव्य ज्योति होते तो रात्रि का अन्धकार निश्चय नष्ट हो जाता (रात्रि'में अन्धकार होने से प्रतीत होता है कि तारागण सूर्य के समान प्रकाश मान नहीं हैं ।)

यन्त्रे यस्मिन् शत गुण वृहद् दृश्यते बिम्बमारात्
तस्मिन् दृष्टाद् वसु (८) कलामिते र्लुब्धकां तैक्ष्म्यमाजः
दुष्टुर्दृष्टि प्रति हति रपि स्यादिव सां घ्रिमानाद्
भानो र्यन्त्रान्तर गततनो र्यद्वयोः साम्य लाभः । १४३ ।

जिस दूरवीक्षण यन्त्र से १०० गुणा बड़ा बिम्ब दीखता है उससे लुब्धक तारा सूर्य से मात्र ८ कला दूर रहने पर भी दीखता है । सूर्य का बिम्बमान तो दोनों की दृष्टि समान दिशा से होने के कारण अत्यन्त भयंकर तेज उत्पन्न होगा । (अतः हमारे सूर्य के समान आकाश में असंख्य सूर्य नहीं हैं)

दूराधिक्याद् यदि हिमरजो वाष्प संघात जाता
तादृग् ज्योतिः क्षति रिति मतिर्भाति भानां तते स्ते
तत्खेटानां विविध सरणीभ्राजतां बिम्ब तुल्यां-
स्ताराः किं तत्सम रुचि भृतो भ्रान्ति कृप्तं हिमाद्यम् । १४४ ।

इसके बाद यदि आपका तर्क है कि तारागण अत्यन्त दूर होने के कारण उनका तेज हिमकणों और वाष्प आदि द्वार शोषित हो जाता है । अतः उनका प्रकाश सूर्य की तरह तेज नहीं होता है । तो मेरा उत्तर है- नाना प्रकार की गति करने वाले ग्रहों की तरह तारा गण कैसे उज्वल हो सकते हैं । भ्रम के कारण क्या तुषार आदि की कल्पना नहीं है ?

नेदीयस्त्वाद् यदि कुजमुखाः सुस्थिरालोकवन्त
स्तारा दूराश्चल हिममुखैरावृताः कम्पवत्यः
दृश्यन्ते तत् क्वचिदपि घनै श्चादिताः सन्ति लुप्ताः
स्व ज्वालानां स्फुरण करणं सिद्धमग्ने रिवातः । १४५ ।

निकट में होने के कारण मंगल आदि ग्रहों का प्रकाश स्थिर है । किन्तु तारागण दूर में हैं और हिम आदि से आवृत्त होने के कारण उनका प्रकाश कम्पन करता है । (टिमटिमाता है) । आग की लपट की तरह इनका कम्पन होना स्वाभाविक है । लेकिन आग की तरह घने तुषार आदि के कारण उनका भी प्रकाश लुप्त हो सकता है । क्या ऐसा देखा गया है ?

व्यक्षेस्फीत श्चिपिट उभयो केन्द्रये भ्रान्त भूम्ना
गोलश्चित्ते स्फुरति तवचेदार्द्र मृत्पिण्ड तुल्यः ।

तद् येनाग्रं सदृगिति मतस्तत् फलंकिं तथा भूत् ।
(येनानलदम्बु विशेष फलेन)
स्रष्टुः सृष्टि विसदृश गुणा किं मृषा भ्रान्ति कृप्तिः । १४६ ।

कच्चे मिट्टी के गोल पिण्ड को उसके व्यास के दो छोरों से पकड़कर घुमाने से दोनों व्यासाग्र बिन्दु दब जाते हैं तथा उनके मध्यवर्ती स्थान फैल जाता हैं । इसी प्रकार पृथ्वी में भी मेरु स्थल चिपटा तथा उनके बीच विषुव वृत्त स्थल फैला हुआ है । इससे पृथ्वी का अपने अक्ष (व्यास के चारों तरफ) घूमना सिद्ध है । आपकी इस युक्ति का उत्तर है कि विधाता की सृष्टि में भी इसके समान कई घटनायें हैं । इन दोनों फलों की समानता के कारण पृथ्वी के अक्ष भ्रमण की कल्पना जरूरी नहीं है ।

भू भ्रान्त्यै भ चक्र पश्चिम गमे सिद्धे किमायासतो
भ भ्रान्त्यै प्रवहाक्ष मारुत कृति विष्णोरिदं वक्ष चेत्
ईशः सर्षप पर्वतौ स्थिर चलौ कर्तुं समर्थां निजां
शक्ति व्यक्तु मिमां क्षमा मचलयत्यत्रास्ति किं दूषणम् । १४७ ।

पृथ्वी के पूर्व गति भ्रमण से नक्षत्र चक्र का पश्चिम की तरफ घूमना सिद्ध है । यदि ऐसा था तो भगवान ने अत्यन्त परिश्रम से प्रवह वायु द्वारा नक्षत्र मण्डल की पश्चिम गति क्यों आरम्भ की ? इसका उत्तर है कि भगवान सरसों को स्थिर और पर्वत को चलकर सकते हैं । अपना सामर्थ्य दिखाने के लिये उन्होंने पृथ्वी को भी अचल कर दिया है ।

धर्माधर्म फलं प्रदान विषये नृणां त्रिलोकेशितु
र्निन्द्या दुर्घटना नतूपकरणैः खेलासु लीलाम्बुधेः
लोकस्य क्षणभंगुराल्प तनवे पाषाण रत्नादिभिः
प्राज्याया सकृतालये ह्यपि यतोदृष्टा प्रवृत्तिर्मुहुः । १४८ ।

लीलाप्रिय भगवान ने लोगों को धर्म-अधर्म का फल देने के लिए कई बार निन्दनीय अघटनायें की हैं । लेकिन पार्थिव उपकरण में उनकी कोई निन्दनीय घटना नहीं है । लोगों का शरीर क्षण भंगुर है लेकिन पाषाण, रत्न द्वारा अत्यन्त परिश्रम से लोगों के निवास के लिये जो पृथ्वी बनी है, उसको भगवान स्थिर ही रखेंगे । जिस प्रकार मनुष्य अपना स्वभाव नहीं छोड़ता, भगवान भी पृथ्वी को स्थिर रख नक्षत्रों को घुमाने में सदा प्रवृत्त है ।

अज्ञानान्मनुजास्तथा विदधतु ज्ञानी तु सर्वेश्वरो
युक्त्या क्रीड़तु मर्हतीति तव चेदुक्तिर्मया त्रोच्यते
द्राङ् मर्त्याश्वगजादि नश्वर तया स्रष्टुः किमास्ते फलं
तेभ्यः काक श्रृगाल कादि सुचिर स्थित्यास्थ कार्यञ्च किम् । १४९ ।

जिस प्रकार अज्ञानी लोग घर द्वार करने आदि की चेष्टा में रहते हैं, उस

प्रकार ज्ञानी नहीं करते । भगवान केवल न्याय के लिये क्रीड़ा करते हैं । यदि तुम्हारी यह युक्ति है तो मेरा तर्क है कि उन्होंने मनुष्य, हाथी और घोड़ा को कम आयु तथा कौवा, सियार आदि को अधिक आयु देकर कौन सा फल पाया अर्थात् ये सब किसी उद्देश्य या परिणाम के लिये नहीं होते, भगवान् की इच्छा ही एकमात्र कारण है ।

यास्ते धरेश बहिरंग तटस्थ शक्ति
युग्माद् वरा निखिल सद्गुण जीव सद्म ।
सच्छक्ति रान्तर तनुः परमेश्वरस्यः
सांशैर्ग्रहैः परिभितास्ति किमत्र चित्रम् । १५० ।

भगवान् के अन्तरंग (तटस्थ) और बहिरंग दो प्रकार शक्तियों से निर्मित उनका अभ्यन्तर शरीर पृथ्वी ही सर्व गुणी तथा सभी जीवों का स्थान है । अतः भगवान के अंश रूप ग्रह इसकी परिक्रमा करते हैं, इसमें विचित्र क्या है ?

दिनाब्द क्रान्त्युत्था त्रिविधि गतिरित्यादि रवने
रसिद्धा सिद्धान्त द्रुमफल निभाभि र्भणितिभिः ।
रसास्वादादासां भवतु भवतं तुष्ट मनसां
रसाभ्रान्तित् क्रान्ति क्षितिरितरमा रतगिराम् । १५१ ।

सिद्धान्त वृक्ष के फल की तरह अनेक युक्ति द्वारा पृथ्वी की दैनिक, वार्षिक तथा क्रान्ति-तीन प्रकार की गति खण्डित (असिद्ध हुयी) । इन युक्तियों का रसास्वादन करने से लोगों की धराभ्रम में से उत्पन्न क्रान्ति दूर हो ।

तुल्यर्क्षोदय दर्शनाज् झ कुज मान्द्य द्राक् फल प्रेक्षणा
इन्द्रांक स्थिति दर्शनाद् गुरु लघु द्रव्य स्वभावे क्षणात्
आकृष्टस्य च कर्षकाभिमुखता सिद्धैः शरा दर्शना
दुष्णांशोरिति साधितां बहु विधै र्लिङ्गै स्थिरत्वं क्षितौ । १५२ ।

पृथ्वी की स्थिरता इन चीजों से स्थिर हुयी- (१) नक्षत्र गोल में एक ही स्थान पर उसी नक्षत्र का बराबर उदय होगा, (२२) बुध और मंगल के मन्द तथा शीघ्र फल में मन्दकेन्द्र के कारण ह्रास और वृद्धि, (३) पृथ्वी से चन्द्र कलंक सदा एक समान ही दीखना, (४) गुरु लघु (हल्के भारी) पदार्थ का स्वभाव देखने से (५) आकृष्ट वस्तु आकर्षण की दिशा में जाने से (६) सूर्य का शर नहीं रहने से आदि ।

सिद्धान्तशेखरे - नभस्य यस्कान्त महामणीनं मध्यस्थितो लोहगुड़ी यथास्ते ।
आधारशून्योऽपि तथैव सर्वाधरोधरित्र्या ध्रुवएष गोलः । इति । १५३ ।

लोहा युक्त मणि के भीतर लोहा जिस प्रकार गोल रहता है उसी प्रकार बिना किसी आधार के सभी का आश्रय स्थल यह पृथ्वी निश्चित रूप से गोल है ।

वाराहेऽपि-पञ्चमहाभूतमयस्तारागण पञ्जरे महीगोलः
खेऽयस्कान्तान्तः स्थो लोह इवा वस्थितोवृत्तः । इति । १५४ ।

जिस प्रार लौह युक्त मणि के भीतर लोहा रहता है इसी प्रकार तारा मण्डल के भीतर पांच महाभूतों से बनी पृथ्वी भी है ।

तस्मात्तिष्ठति भूः प्रयाति सविता मूर्त्या स्वमध्यारूयया
विभ्रत् खेचर चक्र मक्रम गती वैतत् क्षिता वीक्ष्यते
मत्सिद्धान्त मिमं विविच्य सकलं सन्त प्रशंसन्तुवा
निन्दन्तु श्रम वेदिनां ह्युभयथा मंस्ये कृतार्थं कृतिम् । १५५ ।

मेरी इन सभी युक्तियों के कारण मत है कि पृथ्वी स्थिर है । सूर्य अपनी मध्यम मूर्ति द्वारा (मध्यम सूर्य) अन्य ग्रहों को साथ लेकर पृथ्वी की परिक्रमा करता है । ग्रह समूह का कोई क्रम गमन नहीं हैं । (सभी अपने अपने रास्ते से जाते हैं ।) परिश्रम का मूल्य जानने वाले सज्जन मेरे सिद्धान्त पर विचार करें । मैं इसी से कृतार्थ हो जाऊंगा । मुझे अपने मत के प्रशंसा अथवा निन्दा से मतलब नहीं है ।

हे धीरा गणकाः समस्त सहृदो बद्धाञ्जलि र्वच्म्यहम्
यामेऽस्मिन्नजनिष्ट धार्ष्ट्य पटुता तां मार्ष्टु मिच्छास्तुवः
बालानां प्रतिपत्तये किल मया सम्वाद दम्भादियम्
भूमिष्ठा गदिता यथामति भवत्तोषात् सदोषा न के । १५६ ।

हे पण्डित गणक, आप सभी के बन्धु हैं । भू स्थितरता सिद्ध करने में मेरी विशेष धृष्टता को क्षमा करें । भू भ्रम के बदले भू स्थिरता बच्चों को समझाने के लिए मुझे जो दीखा वहीं मैने कहा है । जगत में कौन दोष मुक्त है ? (अर्थात् मेरी इस युक्ति में भी दोष सम्भव है)

आत्मोत्कर्षः पुरुषैः सर्वथेष्टो
दिवाकरे केनचिद् घष्यमाने
तस्यास्याच्चेन्मर्कटा कार सिद्धि
दैंवाधीनो नास्ति दोष स्तदेषः । १५७ ।

मनुष्य केवल अपना उत्कर्ष चाहता है। देवता बनाते बनाते वह मूर्ति यदि बन्दर की हो गयी तो क्या करें ? इसे विधि का विधान ही मानना पड़ेगा, मनुष्य का क्या दोष है ?

ब्रह्माण्ड कारणाब्धौ चलतु जल बलाद् वा महावात् वेगात्
किंवा स्वामम्बरस्थं तदुपरि परित स्तात् पुराणादि सिद्धम्
सप्ताब्धिद्वीप भूभृद् प्रभृति सुविततम् नास्ति तत्रास्मदुक्ति
र्व्यक्ति भूतै तदण्डोदर गत धरणी नाद्य मुद्दिश्य दृश्यम् । १५८ ।

ब्रह्माण्ड के मूल समुद्र में स्थित विश्व जल के कारण चलने लगा, वह कोई महावात्या आदि के कारण विचलित न होकर आकाश में उसी प्रकार रहता है। उसके चारों तरफ पुराण वर्णित सात समुद्र, द्वीप, पर्वत आदि फैले हुए हैं। यहां मैने ब्रह्माण्ड की कथा नहीं कही। केवल उसके आधार गत पृथ्वी, सूर्य आदि के विषय में ही कहा।

भूगोल भ्रान्ति वादी गतचिर समये न श्रुतोऽस्माद् युगांघ्रेः
साब्धीन्द्रांशे (१४४) व्यतीते सुविरल उदितः सौगतास्या- वटाद्यः
तस्याप्रत्युक्तिमार्याः प्रतनुविदधिरे युक्तिभि र्भास्कराद्याः
साम्प्रत्यस्य तनुत्वात् प्रचुरमकर वं वाक्यं तत् प्रशान्त्यै। १५९।

अतीत में पृथ्वी का चलना पहले कभी सुना नहीं गया। कलियुग के १४४ वें भाग (अर्थात् कलि ३००० सम्वत् में या ई.पू. १०२ में) बौद्धों के द्वारा भू चलन की सामान्य रूप से चर्चा हुई। भास्कर आदि विशिष्ट पण्डितों ने उसका उत्तर भी साधारण तौर पर दिया। अतः इस मत के निराकरण के लिये यहां बहुत कहना पड़ा।

सूर्य स्थैर्योक्ति सूत्रैः क्षितिगति कृतिं व्याजराजत्व माप्तः
सिद्धान्त स्वर्णगोत्रः प्रकृति मुपगतो यत्कृपा स्पर्शनोत्थैः।
अस्माद् जिह्वाग्रजाग्रज्जलनिधि वसनास्तेम सद् युक्ति वह्नि-
ज्वालै र्भूयोऽपि सोऽयं कलयतु कुशलं श्री नीलाचलेन्दुः। १६०।

स्वर्ण से उत्पन्न (स्वर्णपदक या धन बल से) सूर्य की स्थिरता तथा उसके सूत्र (आकर्षण) से पृथ्वी के चलने का सिद्धान्त बेकार ही श्रेष्ठ सिद्ध हो गया है। जिसकी कृपा से मेरी जीभ से सागर से घिरी पृथ्वी की स्थिरता के बारे में अनेक युक्ति निकली और अग्नि के समान प्रज्वलित युक्ति से पृथ्वी चलने का स्वर्ण रूपी सिद्धान्त गल गया, वह नीलाचल वासी प्रभु जगन्नाथ हमारा कुशल करें।

इत्युत्कलो ज्वल नृपाल कुल प्रसूत-
श्री चन्द्र शेखर कृतौ गणितेऽक्षि सिद्धे।
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बालबोधे
क्ष्माप्रस्थिति र्व्यरचि सप्तदश प्रकाशः। १६१।

इस प्रकार उड़ीसा के विख्यात् राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्र शेखर द्वारा गणना एवं दर्शन में समानता तथा बाल बोध के लिये लिखे सिद्धान्त दर्पण में आकाश में पृथ्वी की स्थिति से सम्बन्धित १७ वां प्रकाश समाप्त हुआ।

अष्टादश प्रकाश

भूगोल विवरणम्

यत्प्रोचुर्भगवानिति श्रितजनाः सांख्याश्च पातञ्जला-
निर्लेपः पुरुषः परः शिव इति ब्रह् मेति वेदान्तिनः
न्यायज्ञाः परमात्मशब्द ममृतं कर्मेति मीमांसकाः
सौराद्याः कुलदैवतं किमपि तत् कृष्णाख्य तत्वं भजे । १ ।

आश्रित लोग जिसको ऐश्वर्य शाली (भग-ऐश्वर्य) कहते हैं । सांख्य और योग में जिसका नाम निर्लिप्त पुरुष और परम शिव, वेदान्त में जिसे ब्रह्म कहा गया है, न्याय शास्त्र जिसे परमात्मा (अमर) कहता है, मीमांसक जिसे कर्म कहते हैं तथा सूर्योपासक जिसे कुल देवता कहते हैं, उसी श्रीकृष्ण रूपी तत्व को में नमस्कार करता हूँ ।

सृष्टिः प्राग् बहुधोदितामुनिवरैः तत् सार भूतां तदा
वक्ष्येऽन्यत्र कृतौ भविष्यदि यदा सृष्टिः तदीया दया
सिद्धान्त ग्रथनोचिता मिह पुनः सौरोक्तरीत्या ब्रुवे
पूर्व प्रश्न गणानुवाद विधिता संस्थान मानादि च । २ ।

महर्षियों ने सृष्टि के विषय में बहुत कुछ कहा है यदि भगवान की दया हुयी तो इस विषय पर विस्तार से एक अन्य ग्रन्थ में कहूँगा । यहां पुनः सूर्य सिद्धान्त की रीति से इस ग्रन्थ के लिये उपयोगी बातें सृष्टि के बारे में कह रहा हूँ । पहले कहे हुए प्रश्नों के उत्तर रूप में सृष्टि की स्थिति और परिमाण के विषय में भी कहूंगा ।

सूर्य सिद्धान्ते-श्रृणुष्वैक मनास्तत्वं गुह्य मध्यात्म संगितम्
प्रवक्ष्याम्येव भक्तानां नादेयं विद्यते मम । ३ ।

एक मन होकर सुनो क्योंकि अध्यात्म से सम्बन्धित होने के कारण यह तत्व अति गोपनीय है । मेरे पार ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे भक्तों को न देकर अपने पास रख लूं ।

वासुदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्त्तिः पुरुषः परः
अव्यक्तो निर्गुणः शान्ति पञ्चविंशा त्परोऽव्ययः । ४ ।

परम ब्रह्म की मूर्त्ति ही परम पुरुष वासुदेव हैं । वह निर्गुण, शान्त, अव्यय और २५ तत्वों से अतिरिक्त हैं ।

प्रकृत्यन्तर्गतो देहो बोध्यमानस्तु सर्वगः
संकर्षणोऽपः सृष्ट्यादौ वासुबीजमथा सृजत् । ५ ।

परम ब्रह्म के अंश रूप संकर्षण ने देहधारी होकर प्रकृति में प्रवेश किया ।

वह सर्वगामी और बोध्य है। इससे सर्व प्रथम जल की सृष्टि हुयी और उसमें संकर्षण ने बीज डाला।

तदण्डम भवंद् हैमं सर्वमन्तस्तमो वृतम्
तत्रानिरुद्ध प्रथमं व्यक्तीभूत सनातनः। ६।

वह बीज सुवर्ण अण्ड में परिणत हुआ जिसके भीतर सिर्फ अन्धकार था। उस अन्धकार के भीतर चिरस्थायी अनिरुद्ध प्रकाशित हुये।

हिरण्यगर्भो भगवाने ष छन्दसि पश्यते
आदित्यो ह्यादि भूतत्वात् प्रसूत्य सूर्य उच्यते। ७।

वेद में इस अनिरुद्ध को भगवान हिरण्य गर्भ कहा गया है। यह प्रथम उत्पत्ति होने के कारण आदित्य सूर्य भी कहा गया।

परं ज्योतिस्तमः पारे सूर्येऽयं सवितेति च
पर्येति भुवनान्येष भावयन् भूत भावनः। ८।

अन्धकार का अन्त करने के कारण इसे परम ज्योति कहा गया तथा सृष्टि रचने के कारण सविता। वह प्राणियों का निर्माण करने के साथ साथ सभी भुवनों (३ या १४ भुवन) का परिभ्रमण करते हैं।

प्रकाशात्मा तमो हन्ता महानित्येष विश्रुतः
ऋचेऽस्य मण्डलं सामान्युस्रा मुर्त्तिर्यजुंषि च। ९।

अन्धकार को नष्ट करने का कारण सूर्य महान् के रूप में विख्यात् हैं। ऋक् वेद का मन्त्र इनका मण्डल, सामवेद मन्त्र इनका किरण तथा यजुर्वेद मन्त्र इनका शरीर के रूप में प्रतिपादित किया जाता है।

त्रयीमयोऽयं भगवान् कालात्म काल कृद् विभुः
सर्वात्मा सर्वगः सूक्ष्मः सर्वस्मिन् सः प्रतिष्ठितम्। १०।

अतः सूर्य तीन वेदमय और ऐशर्वर्यशाली है। वह काल की आत्मा हैं। अर्थात् समय का मान उन्हीं से निर्धारित हुआ है। वह काल के कर्ता और सर्वव्यापी वह समस्तों की आत्मारूपी हैं। अतः हर स्थान के भीतर सूक्ष्मरूप से हैं। (वृहद् रूप में) सभी उनके भीतर हैं।

रथे विश्वमये चक्रं कृत्वा संवत्सरात्मकम्
छन्दां स्यश्वाः सूत्रयुताः पर्येत्येषवसीसदा। ११।

चर अचर सहित पूरा विश्व उनका रथ है, छन्द उनका घोड़ा, ये किरणों से युक्त होकर सूर्य के समान परिक्रमा करते हैं। सभी सूर्य के वश में हैं।

त्रिपादममृतं गुह्यं पादोऽयं प्रकटोऽभवत्
सोऽहंकारं जगत्सृष्ट्यंब्रह्माणमसृजत् प्रभुः। १२।

सूर्य के तेज का एक पाद हो प्रकाशित है तथा तीन पाद अमृत के रूप में गोपन है। उन्होंने अहंकार की सृष्टि कर जगत् बनाने के लिये ब्रह्मा की सृष्टि की।

तस्मै वेदान् वरान् दत्वा सर्व लोक पितामहम्
प्रतिष्ठाव्याण्ड मध्येऽथ स्वयं पर्येतिभासयन्। १३।

सूर्य ने ब्रह्मा को वेदरूपक वर देकर उनको अण्ड के भीतर स्थापित किया तथा स्वयं प्रकाशित होकर भ्रमण करते हैं।

अथ सृष्ट्यै मनश्चक्रे ब्रह्माहंकार मूर्तिमान्
मनश्चन्द्रमा जज्ञे सूर्येऽग्नेस्ते जसां निधिः। १४।

ब्रह्मा ने अहंकार रूप में आकर सृष्टि करने में ध्यान दिया। उनके मन से चन्द्र, कान ने अग्नि तथा आंख से सूर्य उत्पन्न हुए जो सभी तेजों के भण्डार हैं।

मनसः खं ततो वायुरग्नि रायो धराक्रमात्
गुणैक वृद्ध्या पञ्चैव महाभूतानि जज्ञिरे। १५।

मन से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, से जल, जल से पृथ्वी-इस प्रकार एक एक गुण बढ़ने के क्रमशः पञ्चमहाभूतों का जन्म हुआ।

अग्निरापो भानुचन्द्रौ ततश्चाङ्गिरकादयः
तेजो भूखाम्बु वातेभ्यः क्रमशः पञ्च जज्ञिरे। १६।

अग्नि, जल, सूर्य चन्द्र और तब मंगल आदि उत्पन्न हुये। तेज पृथ्वी, आकाश, जल और पवन से इनकी (पांच तारा ग्रहों) भौम आदि) उत्पत्ति हुयी।

पुनर्द्वादशधात्मानं विदधे राशि संज्ञकम्
नक्षत्र रूपिणं भूयः सप्त विंशात्मकं वशी। १७।

पुनः ब्रह्मा ने अपने को १२ भागों में बांट कर १२ राशियों का रूप ग्रहण किया। इन्हीं १२ राशियों को २७ नक्षत्रों मे विभाजित किया।

ततश्चरा परं विश्वं निर्ममे देवपूर्वकम्
ऊर्ध्वमध्या परेभ्यश्च स्रोतोभ्यः प्रकृतिं सृजत्। १८।

उसके बाद देवता तथा तब ऊपर, मध्य तथा नीचे क्रम से प्रकृति की सृष्टि तथा चर अचर सहित पूरा विश्व बनाया।

गुणकर्म विभागेन सृष्ट्या प्राग्वदनुक्रमात्
विभागं कल्पयामास यथास्वं वेद दर्शनात्। १९।

अपने वेद ज्ञान के द्वारा उन्होंने अपने अपने गुण और कर्म के अनुसार विभागों की कल्पना की।

ग्रह नक्षत्रताराणां भूमेर्विश्वस्य वा विभुः
देवासुर मनुष्याणां सिद्धानाञ्च यथा क्रमम् । २० ।

इन विभागों में क्रमशः ग्रह, नक्षत्र, तारागण, पृथ्वी, बिम्ब, ब्रह्माण्ड, देव, असुर, मानव और सिद्ध उत्पन्न हुए ।

ब्रह्माण्ड मंत्रः शुषिरं यत्रेवं भू र्भुवादिकम्
कटाहद्वितयस्येव सम्पुटं गोलकाकृति । २१ ।

ब्रह्माण्ड के भीतर खाली स्थान है जिसमें भू भूव, स्व आदि लोक है । दो कड़ाहों को परस्पर किरानों से मिलाने पर जैसी गोल आकृति होती है, ब्रह्माण्ड वैसा ही है ।

ब्रह्माण्ड मध्ये परिधि र्व्योमकक्षा भिधीयते ।
तन्मध्ये भ्रमणाद् भानां क्रमशोऽधः क्रमादधः । इति । २२ ।

ब्रह्माण्ड के भीतर की परिधि को व्योम कक्षा कहते हैं । उसमें ऊपर से नीचे की तरफ क्रमश, नक्षत्रों आदि का भ्रमण्ड होता है । (सूर्य सिद्धान्त का उद्धरण समाप्त) ।

नारदीये-इति सौरोक्त पद्यानां विंशत्या सूचितं क्रमः
अथैतदुक्त सूर्यादि स्वरूप प्रविविच्यते । २३ ।

सूर्य सिद्धान्त के इन २० पद्यों में सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम दिखाया गया है । अब उसमें कहे गये सूर्य आदि के स्वरूप का विशेष विचार किया जा रहा है ।

चतुर्व्यूह प्रकारेण कृतिः सर्वत्र सर्वदा । इति ।
इति श्री नारदीयोक्तः प्रद्युम्नोऽत्रैव पद्मभू . २४ ।

हर जगह सदा चार स्तर से कार्य होता है- इस प्रकार श्री नारदीय पुराण में कहा गया है । यहां प्रद्युम्न ही पद्मभू ब्रह्मा हैं । (उदाहरण सूर्य से ब्रह्मा, ब्रह्मा से सूर्य । वासुदेव (सूर्य) से संकर्षण प्रद्युम्न, उससे अनिरुद्ध, अनिरुद्ध (विष्णु) से ब्रह्मा ।

तत्कारणं महत्तत्त्व रूपीयः सूर्य उच्यते ।
ततोऽन्यः कथ्यते भूयः कार्यरूपी स्वयम्भुवः । २५ ।

ब्रह्मा का कारण महत्तत्व रूपी सूर्य है, ब्रह्म का कार्य रूपी एक और सूर्य भी कहा जाता है ।

अतीत्वे रूप्यमर्कस्य ब्रह्माण्डान्तः प्रतीयते
तत्राद्यस्यात्म भूघस्र कर्तृत्वं सम्भवेत्यतः । २६ ।

अतः दो सूर्य हैं । प्रथम सूर्य आदि देव (ब्रह्मा) की आत्मा भूमि का मालिक

तथा इनका कर्ता है ।

तैजसं भास्वतो बिम्ब मुद् भूतं स्पर्श रूपकम्
पाञ्चभौतिक मप्येतद् भास्वत्वात् प्रदीपवत् । २८ ।

सूर्य का बिम्ब पञ्च भूतों से बना होने पर ही अत्यन्त तेजपूर्ण होने के कारण दीपक की तरह उससे प्रकाश निकलता है । उसका तेज स्पर्श द्वारा अनुभव किया जा सकता है । (छूने से गर्म मालूम होगा)

अस्याष्टौ भानु बिम्बस्यारम्भ का भूत भागकाः
चत्वारस्तेज सैन्येषा मे कैकोंऽशः प्रकीर्तितः । २९ ।

सूर्य बिम्ब के आठ भूत विभाग हैं । इसमें ४ तेज से उत्पन्न हैं तथा अन्य ४ विभाग बाकी ४ महाभूतों के अधिनायक (प्रत्येक भाग एक महाभूत का स्वामी हैं) ।

तेजः प्राधान्यतः सूर्य स्तै जसः प्रोच्यतेऽखिलैः
किन्तु दिव्यं रवेस्तेजो भौमाच्छत गुणाधिकम् । ३० ।

तेज तत्व प्रधान होने के कारण सूर्य को सभी तैजस कहते हैं । किन्तु दिव्य रवि का तेज भौम, अग्नि आदि के तेज से १०० गुणा अधिक है ।

शीतस्पर्शाधिकरणं बिम्बमाप्यं हिमद्युतेः
करका वत्तदारब्धं चतुर्भिर्जल भागकैः । ३१ ।

इसी प्रकार चन्द्र बिम्ब जल मय होने पर भी उसमें ८ में ४ भाज जल होने के कारण उसमें शीतलता है । ओले की तरह

एकैक भागैरन्येषां भूतानां तत्र यत्पुनः
पर प्रकाशकत्वं तद् भानूमद् भानु संक्रमात् । ३२ ।

बाकी चार भागों में प्रत्येक १-१ महाभूत से सम्बन्धित है । सूर्य के प्रकाश के कारण इसमें भी प्रकाश होता है ।

प्रथमां पिवते वह्निः कलामित्यादि यत् स्मृतेः
वाक्यं सौक्त्या पचयतो नैवेदं पारमार्थिकम् । ३३ ।

स्मृति वाक्य (शान्ति पाठ) में कहा गया है । कि चन्द्र प्रथम कला या किरण से आग को पीता है वह यथार्थ नहीं (लाक्ष णिक) है । चन्द्र की शुक्लता कम होने के कारण इस प्रकार कहा जाता है । तब वह शुक्ल अंश अग्नि के समान लाल दीखता है)

तेजसः स्यात्कथं पानं दृष्टि भोगोऽत्र केवलः
देवदत्तेन भुज्यन्ते ग्रामा स इति वन्मतः । ३४ ।

तेज का पान नहीं हो सकता अतः इसका अर्थ यहां दृष्टि भोग, (आंख से

देखना ही है) । जैसे देवदत्त ने ग्राम का भोग किया-इसका अर्थ यह नहीं है कि वह गांव को खा गया । भोग का अर्थ अपने सुविधा के लिये व्यवहार ही है ।

कला शब्देन तद् वृद्धि क्षयाभ्यामनुलक्षितः
काल एवोच्यते नो चेत् पदे दर्शेऽखिल क्षति । ३५ ।

कला शब्द का प्रयोग चन्द्र के प्रकाश में कमी या बढ़ने के समय के बारे में किया गया है । नहीं तो अमावास्या में सभी किरणों का क्षय हो जाता है । उस समय कला वृद्धि की बात क्यों होगी ?

भूयसाल्पस्य बोधः स्यादिति न्यायेन शीतगोः
शैत्य नास्तोष्णतानुष्णा शीतस्पर्शाऽन्यथे भवेत् । ३६ ।

बड़े वस्तु से छोटा छिप जाता है यह न्याय (तर्क संगत) है । इसी कारण चन्द्र में शीतलता की प्रधानता होने कारण उसकी थोड़ी सी उष्णता का बोध नहीं होता है । किन्तु चन्द्रमा में बिल्कुल ही उष्णता नहीं है, ऐसी बात नहीं है । उष्णता नहीं होने पर उसका शीत स्पर्श अन्य प्रकार का होगा । (और ठण्डा होगा- वर्फ के समान)

जलप्राये विधोः पृष्ठे निष्ठा वृक्षादयो जनैः
कलंकत्वेन वर्ण्यन्ते नाना प्राचीन वाक्यैः । ३७ ।

चन्द्रबिम्ब जलमय है । उसमें वृक्ष पर्वत आदि हैं । उन्हीं का कलंक के रूप में वर्णन हुआ है । इस प्रसंग में अनेक प्रकार की प्राचीन कथायें भी हैं ।

चन्द्रवन्मंगलाद्यास्ते प्रागुक्ता भानि तु स्वतः
तैजसानित्यहं वच्मि जगुरात्यानि के चन । ३८ ।

चन्द्र के समान मंगल आदि है तारा स्वतः तैजस (प्रकाशित हैं) ऐसा मेरा मत है । कोई कोई इन्हें जल बिम्ब भी कहते हैं । बहुत दिनों से ऐसा मतभेद है ।

आप्यत्वेतु भकक्षायां दृश्यतेऽर्कस्य विस्तृतिः
विकला पञ्चकं यस्मात् ततः तत् कर संक्रमात् । ३९ ।

नक्षत्र गोल में रवि का व्यास ५ विकला मात्र है । अतः तारा गण विशुद्ध फल बिम्ब होते तो रवि की किरण द्वारा उनकी-

तादृगुज्वलता वानां न सम्भवति तान्यथ
यद्यर्क समते जांसि तदान स्यात्त मोनिशि । ४० ।

इतनी अधिक उज्वलता नहीं होती । दूसरी तरफ वह सूर्य के समान तैजस होने पर रात्रि में इतना अन्धकार नहीं होता । अर्थात् तारागण न सूर्य के समान तैजस् हैं न चन्द्र के समान जलमय ।

ततेष्वंगीकृतं भौमज्योति रौपाधिकोपमम्
सूर्या शुपाधिकं तेजो यद् ग्रहेषु तथेक्ष्यते । ४१ ।

अतः उनकी ज्योति पृथ्वी की ज्योति के समान औपाधिक है (उसी प्रकार की है । सूर्य का औपाधिक तेज जिस ग्रह के ऊपर पड़ता है वही दीखता है ।

वर्णभेदो यथा वह्नेः स्यादाधारविशेषतः
तथाभेषु ग्रहेषु स्याद् भिन्ना सौपाधिको द्युतिः । ४२ ।

आधार के कारण जिस प्रकार अग्नि के वर्ण में भिन्नता आती है उसी प्रकार सूर्य की किरण एक ही वर्ण की होती है, पर भिन्न भिन्न ग्रहों पर उसका अलग अलग रंग होता है ।

पितरश्चन्द्र बिम्बस्य श्रूयन्ते पृष्ठवासिनः
यथा तथान्य ग्रह भेष्वपि स्थानं प्रतीयते । ४३ ।

(शास्त्र के अनुसार) चन्द्र के पृष्ठ प्रदेश में पितृ लोक रहते हैं । ठीक इसी प्रकार अन्य ग्रहों पर भी भिन्न भिन्न प्राणी रहते हैं ।

यद्यद् भूतमया लोका स्तत्र तन्मय देहिनः
वर्तन्ते पार्थिवांशस्य सम्पर्काद् व्यवहारितः । ४४ ।

जिस महाभूत से जो लोक बना है वहां उसी महा भूत के शरीर वाले प्राणी रहते हैं । पृथ्वी के जिस अंश के सम्पर्क में वे अधिक आते हैं । उसी का व्यवहार करते हैं ।

ब्रह्माण्ड मध्य संस्थानो भूगोलः पाञ्चभौतिक
तदा रम्भकतामाप्तं भूमिभाग चतुष्टयम् । ४५ ।

ब्रह्माण्ड के मध्य में स्थित पृथ्वी पांच भूतों से बनी है । आरम्भ में इसमें ४ भाग (८ भाग में) भूमि का भाग था ।

जलादि भूत भागानां चतुष्कं पूर्ववत् मतम् ।
पृष्ठमस्याब्धि भागं सजल भागत्रयान्वितम् । ४६ ।

पहले लिखे गये मत के अनुसार जल आदि चार भूत प्रत्येक का एक एक भाग था । पृथ्वी की सतह पर ३ भाग जल का है-

एकेनस्थल भागेन लक्ष्यते प्रायशो जनैः
गोल पृष्ट चतुर्थांश स्थलेऽखिल जन स्थितः । ४७ ।

तथा एक भाग स्थल लोगों को दीखता है । इस प्रकार गोल सतह के एक चतुर्थांश भाग स्थल में ही सभी मनुष्य स्थित है ।

लवणोदधिमध्यस्थं महाद्वीप द्वयं पृथक्
ऊर्ध्वा धराभिधं तत्र महानुद्भवोऽधरंस्तनुः । ४८ ।

लवण समुद्र के भीतर दो महाद्वीप अलग अलग स्थित हैं। एक ऊर्ध्व और दूसरा निचे का महाद्वीप।

अधःस्थस्योत्तरार्धेन सहोर्ध्वः कथितोबुधैः
जम्बूद्वीपा रूययाधः स्थ द्वीपस्यार्द्धन्तुदक्षिणम्। ४९।

नीचे स्थित महाद्वीप के उत्तरी अंश और ऊपरी महाद्वीप को विद्वानों ने जम्बू द्वीप कहा है। नीचे वाले द्वीप का दक्षिणार्द्ध तथा

कथ्यते ह्यासुरा भूमि र्भागैः द्वादशभिर्युतम्
तत्रषट् सागरा द्वीपा ह्रद देशोपमाः स्थिताः। ५०।

१/१२ वां भाग (उत्तरार्द्ध का) और मिलाकर असुर भूमि के नाम से विख्यात है। इसमें हद और जनपद के समान ६ समुद्र और द्वीप हैं।

जम्बूद्वीप स्तु बहुधा विभक्तो वर्ष पर्वतैः
तत्तन्मानानि नोक्तानि ब्रह्म सूर्यांश भास्करैः। ५१।

जम्बू द्वीप भी पर्वतों द्वारा बहुत से वर्षों से विभक्त है। इनका मान ब्रह्म गुप्त, सूर्यांश पुरुष या भास्कराचार्य किसी ने नहीं कहा है।

यत्तु विस्तृत गोलादौ वर्णितं भूधरादिकम्
तत्तदृष्टि विरुद्धत्वात् नाम्नेव गदितं बुधैः। ५२।

विस्तार भाव से वर्णित भुगोल आदि में वर्णित पर्वतों का वर्णन वास्तविक नहीं है (दृष्टि विरोध है)। अतः पण्डित लोग इनका केवल नाम से ही वर्णन करते हैं।

तत्तच्छास्त्रो दितो मेरु कृताष्टा (८४) योजनोच्छ्रितः
कलाकृति (२५६) मितो मूल ऊर्ध्वस्थल्पां न खाग्निभिः। (३२०)। ५३।

सभी शास्त्रों ने मेरु पर्वत की ऊंचाई ८४ योजन कही है। मूल भाग में इसका विस्तार २५६ योजन तथा पृथ्वी के ऊपर इसका विस्तार ३२० योजन है।

वर्षाचला हिमाद्र्याद्याः पञ्चाशत् योजनोच्छ्रितः
तावत् प्रस्थाश्च तत्रायं क्रियते गणितं क्रमः। ५४।

हिमालय आदि वर्ष पर्वतों (देश विभाजन करने वाले सीमा स्थित) में प्रत्येक की उच्चता ५० योजन मात्र हैं। इनका प्रस्थ मध्य ५० योजन है। अत इस विषय में एक प्रकार का गणित समझाया जा रहा है।

यस्माद् गोलस्य शैलादि शंकुनां दूर वर्त्ति नाम्
व्यवधा दृश्यता मानं दृष्टि सीमा च बोध्यते। ५५।

इस गणित द्वारा दूर की वस्तु ओं पर्वत, शंकु आदि की दूरी, दृश्य भाग तथा दृष्टि सीमा (पृथ्वी की गोल सतह पर कितनी दूर देख सकते हैं। आदि ज्ञात हो

सकता है ।

अभीष्ट मान के गोले भचक्रत्वेन कल्पिते
स्थाप्यः स्वेच्छामितः शंकु सचक्रकलिका (२१,६००) हतः । ५६ ।

इष्ट परिमाण का गोल लें उसमें में भूगोल की कल्पनाकर उसे भचक्र (३६०°) मानते हैं । उसके ऊपर इष्ट मान का शंकु स्थापित कर उसका राशि की कला २१,६०० से गुणा कर

गोलवेष्टन मानेन हृतः संस्कृत नामकः
सद् विधो र्ध्व त्रिजीवा (३४३८) घ्न स्त्रिज्यायुक्त धरोद् धृतः । ५७ ।

भूगोल की परिधि से भाग देते हैं-फल संस्कृत नामक शंकु होगा । इस संस्कृत शंकु को दो स्थानों पर रखकर पहले स्थान में उसे त्रिज्या (३४३८) दो गुणा करते हैं तथा दूसरे स्थान पर शंकु में त्रिज्या जोड़कर योग से पहले फल को भाग देते हैं ।

फल उत्क्रम जीवातत् चापं दृङ् मार्ग लिप्तिका
ता गोल परिधिक्षुण्णं भचक्र कलिको द् धृताः । ५८ ।

फल उत्क्रम ज्या होगी । उसका चाप करने पर वह दृष्टि मार्ग लिप्ता में होगा । उसको भूगोल की परिधि से गुणा कर भचक्र की कला (२१,६००) से भाग देने पर

शंकु दर्शन सीमास्युः ततो दूरेभ्य नेक्षते ।
उत्क्रमज्या अगो (७) ना चेत्तदून त्रिज्यकाकृतिम् (१,१८,१९ ,८४४) । ५९ ।

फल शंकु दर्शन सीमा होगी (अर्थात् उतनी दूरी तक शंकु दिखायी देगा) उत्क्रमज्या ७ से कम होने पर दूसरी रीति से काम होगा) उसको त्रिज्या से घटा कर फल के वर्ग को पुन त्रिज्या के वर्ग से घटायेंगे । शेष का वर्गमूल उक्त उत्क्रमज्या का चाप होगा ।

त्रिज्याकृते र्विशोध्यातः पदमुत्क्रम कार्म्मुकम् ।
परमात्रोत्क्रमज्याया धनुर्ज्यात् लिप्तिकाधिकम् । ६० ।

इस अवधि में उत्क्रमज्या का चाप यदि अपनी कला से अधिक हो तो उत्क्रम ज्या का मान विकला तक ग्रहण करते हैं ।

ग्राह्यात्यल्पाक्रमज्यात्र तद् विलिप्तादिभिः समम्
हिमाद्रिः कल्पितः शंकु पञ्चाशद् योजनोच्छ्रतः । ६१ ।

५० योजन उच्च हिमालय को शंकु माना गया ।

षड् भुजाभ्रेषु (५०२६) मानोऽस्मिन् भूगोल परिधौस्थितः
स प्राग् वत् संस्कृतः शंकु स्थिति दृक् (२२५) कलिकोऽ भवत् । ६२ ।

इस ५० योजन शंकु को ५०२६ योजन की भूगोल परिधि के ऊपर स्थित मानेंगे। पूर्व रीति के अनुसार इसके संस्कृत शंकु का मान २२५ कला होगा।

द्विः स्थाद स्रादुत्क्रमज्या दृङ्नखा (२०२) स्तद्धनुः कलाः
दृङ् नागेशो (११८२) दृष्टि सीमा शरभै (२७५) र्योजनैर्मता। ६३।

दो स्थानों पर रखर कर क्रिया करने पर इसकी उत्क्रमज्या २०२ होगी। इसकी चापकला ११८२ ही दृष्टि सीमा का मान कला में हुआ दृष्टि सीमा का योजन मान २७५ है (अर्थात् ५० योजन हिमालय से २७५ योजन तक की दूरी से दीख सकता है)।

द्रष्टृ शंक्वन्तर धरामानं चक्रकला हतम्
हृतं परिधिमानेन लब्धा भुजकला स्ततः। ६४।

द्रष्टा और दृश्य वस्तु (शंकु) के बीच की दूरी को चक्र कला (२१, ६००) से गुणा भू परिधि (५०२६) से भाग देने पर भुज कला होगी।

द्रष्टृ दृश्यान्तरे राशि त्रयोने दृष्टि सम्भवः।
भुंज लिप्ता ज्यका वर्ग हीन त्रिज्याकृतेः पदम्। ६५।

इस भुजकला का परिमाण ३ राशि से कम होने पर द्रष्टा दृश्य वस्तु को देख सकता है। भुजलिप्ता के वर्ग को त्रिज्या के वर्ग से घटाकर उसका वर्गमूल निकालने से

को टीज्या त्रिगुणा (३४३८) च्छोध्याशेषः स्यादुत्क्रमज्यका
अथ कोटिज्य याभ्यस्ता त्रिज्याप्तः संस्कृतो नरः। ६६।

कोटिज्या होगी। इस कोटिज्या को त्रिज्या (३४३८) से घटाने पर उत्क्रमज्या होगी। इसके बाद संस्कृत शंकु को कोटिज्या से गुणा कर त्रिज्या से भाग देने पर-

स्फुट शंकु स चेदल्प उत्क्रमज्या प्रमाणतः
तदा न दृश्यते भूयान् दृश्यते व्यवधान भित्। ६७।

स्फुट शंकु आता है। यह उत्क्रमज्या से कम होने पर नहीं दीखता है। यह उत्क्रमज्या से जितना अधिक होता है उतना भाग अवरोध के ऊपर दीखता है।

उत्क्रमज्योज्झितः स्पष्टा शंकुर्दृश्य ज्यका भवेत्,
सात्रिज्याध्नन्तरक्ष्मात्थ भुजज्याप्तोन्नतज्यका। ६८।

स्फुट शंकु से उत्क्रमज्या घटाने पर दृश्य ज्या होती है। इस दृश्यज्या को त्रिज्या से गुणा कर द्रष्टा और दृश्य के अन्तर की ज्या से भाग देने पर उन्नत ज्या होती है।

तद् धनुर्दृश्यलिप्ताः स्युस्तच्छंकौः क्षितिज्या परि ।
दृश्य ज्या परिधिक्षुण्णा चक्रलिप्तोद्धृता फलम् । ६९ ।

इस उन्नत ज्या का चाप क्षितिज के ऊपर उस संस्कृत शंकु की दृश्यकला (२१,०००) से भाग देने पर फल-

शंको र्दृश्ये नतिः साथ त्रिज्याघ्नी कोटि भाजिता
दृश्य भागः स्फुटः शंको स्याद् योजन करादिकः ।

शंकु का योजन में दृश्य भाग होता है । शंकु की दृश्योन्नति होती है । इस दृश्योन्नति को त्रिज्या से गुणा कोटिज्या से भाग देने पर फल शंकु का योजनात्मक दृश्य भाग होता है ।

परिधिघ्नोत्क्रमज्याथ भचक्र कलिकोद्धृता
त्रिज्याघ्नी कोटि जीवाप्तां लुप्तांश प्रमिति र्भवेत् । ७१ ।

पुनः उत्क्रमज्या को भू परिधि से गुणा कर भचक्र कला से भाग दें । और फल को त्रिज्या से गुणा कर कोटिज्या से भाग दें । फल शंकु के अदृश्य भाग का परिमाण होता है ।

हिमाद्रीशृंग तलतः कुनृपै (१६१) र्योजनैः स्थिते
दक्षिणे नीलशैलेऽत्र द्रष्टुः स्थानं प्रकल्प्यते । ७२ ।

हिमाचल के श्रृंग तल से दक्षिण की तरफ १६१ योजन पर नीलाचल (पुरी में श्री जगन्नाथ मन्दिर) को द्रष्टा का स्थान मानें ।

तदन्तरोत्थदे र्लिप्ताद् व्यं कांग (६९२) न्युत्क्रमज्यका
सप्ततिः (७०) कोटि जीवाष्ट रसाग्न्यग्निमिता (३३६८) भवत् । ७३ ।

उसकी (१६१) योजना की भुजकला ६९२, उत्क्रमज्या ७० तथा कोटिज्या ३३६८ हुयी ।

पूर्वोक्तः संस्कृत शंकुः (२१५) स्फुटो रुद्राक्षिः (२११) सम्मितः
दृश्यज्याधरणी शक्र (१४१) उन्नतज्येषु खाद्रयः (७०५) । ७४ ।

संस्कृत शंकु २१५, स्फुट शंकु २११, दृश्यज्या १४१ तथा उन्नतज्या (७०५) ।

दिगाद्रयो (७१०) न्नतकलादेव ३३ दृश्योन्नतिस्तथा
स्फुट दृश्योन्नति वेदगुण (३४) योजन सम्मिता । ७५ ।

उन्नतज्या का चाप (७१०) उन्नतकला, दृश्य की उन्नति ३३ स्फुट दृश्योन्नति ३४ तथा

षोडशा दृश्यमानानि योजनानि गिरेर्यतः
क्षितिज्या द्वादशांशोच्चस्तत्र दृश्यो हिमालयः । ७६ ।

दृश्यमान १६ योजन हुआ । अतः क्षितिज से १२ अंश (१६ योजन का चाप)

ऊपर हिमालय नीलाद्रि से दृश्य होना चाहिये।

धूमधूलि हिम घनेर दृष्टोऽपीह दूरगे
छादनाद् ध्रुवमत्स्यस्थ माना स्यास्तत्समक्षता । ७७ ।

धूम, धूलि, हिम और मेघ द्वारा आच्छादित होने के कारण अति दूरी पर ये पर्वत दीखते नहीं हैं। पर ध्रुव मत्स्य के अनेक नक्षत्र उसके सामने होने के कारण (अवरोध से)

अतोन् तावदौन्नत्यं सिद्धं नायाम विस्तृती
प्रत्यक्षे तस्य तुच्छत्वं खार्णवांश (४०) मितं ततः । ७८ ।

हिमालय की स्थिति प्रत्यक्ष (आंभास) होती है। पर उससे उसकी ऊंचाई, लम्बाई और विस्तार वास्तव में सिद्ध नहीं होता। नक्षत्र मेघ आदि के कारण भी छिप सकते हैं, यदि उतनी ऊंचाई तक हिमालय नहीं भी होता। वास्तव में हिमालय की उन्नता ४० अंश ही है।

सोऽयुतद्वय (२०,०००) हस्तोच्चः शंकुश्चेत्संस्कृतः पुनः
दृग्दन्त (३२२) विकलास्तावत्युत्क्रमज्या (५/२२।) य तद्धनुः । ७९ ।

उससे हिमालय को यदि २०,००० हाथ ऊंचा शंकु माना जाय तो उसका संस्कृत शंकु ३२२ विकला जिसकी उत्क्रम ज्या भी ३२२ विकला (या ५ कला विकला) होगी। इसका चाप–

द्विनवेन्दु (१९२) कला दृष्टि सीमा क्रोशा नवद्विपाः (८९)
स्वकूट तलतस्तावद्दूरे दृश्योऽधिके न सः । ८० ।

१९२ कला दृष्टि सीमा ८९ कोस होगी। अर्थात् अपने चोटी के नीचे से ८९ कोस की दूरी से यह हिमालय दृश्य होगा। उससे ज्यादा दूरी से नहीं दीखेगा।

हिमालयाष्ट मांशोच्चो महेन्द्राख्यं कुलाचलः
स्वमूलतों हि भूनिष्ठै रात्रिंश क्रोश मीक्ष्यते । ८१ ।

हिमालय के ८ भाग में एक भाग कुलाचल महेन्द्र पर्वत की उच्चत है। वह अपने मूल से ३० कोस दूरी तक दीख सकता है।

यदि मेरो स्तथोच्चाय विस्तारो भवतस्तदा
(तथेति विस्तृत गोलाद्युक्त प्रकारेण)
प्राक् स्थाना ममरावत्या याम्यगोलः कथं निशा । ८२ ।

(उत्तरी ध्रुव के) मेरु का ८४ योजन उच्चता तथा २५६ योजन विस्तार होने से अमरावती के पूर्व स्थित देवताओं की रात्रि कैसे होगी जब सूर्य दक्षिण गोल में भी रहेगा ?

सार्द्धेशा (११/३०) स्तत्रलम्बांश दृष्टयंशाः पञ्चविंशति (२५)
तञ्चापान्तर्गतः सूर्य क्षितिजाद् विश्वभागकैः । ८३ ।

क्योंकि उसका लम्बांश (११°/३०') अंक्षाश ७८°/३०') होने से दृष्टायंश (२५°) इसके चाप के बीच में स्थित सूर्य क्षितिज से १३° उञ्च देवताओं को दीखेगा । अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि देवता लोग ६ मास सूर्य को नहीं देखते ।

उञ्चस्थो द्रक्ष्यते देवैः षण्मासास्तमय कथम्
विषुवत्कालके खण्ड ग्रहणे शीतगोस्तथा । ८४ ।

सम दिवस (जब सूर्य विषुव रेखा ०° क्रान्ति पर हो) में तब चन्द्र के खण्ड ग्रहण में

अद्रक्षतः कुभान्तःस्थ मेरुच्छाया चतुः कला
अतो मेरून्नति न्यूनं मन्यतां हिमवन् मिते । ८५ ।

भू छाया के अन्तर्गत मेरू की छाया ४ कला अधिक दीखती है । अतः हिमवान की उञ्चता से मेरू की उञ्चता कम कही जाती है ।

पश्यद्भ र्नाविकैः सिन्धौ मस्तकोद्धर्व गतिं ध्रुवम्
हेमाद्रिनै क्षितोऽप्यस्य स्थितिर्वाच्य मृषेति नो । ८६ ।

समुद्र में स्थित नाविक अपने स्थिर के ऊपर ध्रव नक्षत्र को देखते हैं पर मेरु को नहीं देखते हैं । इसका अर्थ यह नहीं है । कि मेरु का अस्तित्व नहीं है ।

लिक्ष्यातन्मायया साक्षान्नदेवो सुरभूर्नृभिः ।
अन्तर्द्धाद्यपि मर्त्यानां यदुपासनयेक्ष्यते । ८७ ।

देव और असुरों का निवास (सुमेरू और कुमेरु) उन्हीं (देव और असुरों) की माया के कारण मनुष्यों को नहीं दीखता है । उनकी सेवा और पूजा से उनका अन्तर्धान होना भी दीख सकता है । इस प्रकार मेरू भी उनकी कृपा से ही दीख सकता है ।

खाद्रिदृक् (२७०) योजनव्यास वार्धिमध्यान्तिरक्षतः
जम्बुद्वीपान्तरं तुल्य न सर्वत्रोपलभ्यते । ८८ ।

जम्बूद्वीप का समुद्रतट विषुव वृत्त से २७० योजन की मध्यम दूरी पर है किन्तु यह दूरी सर्वत्र समान नहीं है ।

नीलाद्रेर्नैऋताशायं कुमार्यस्या मरुद्दिशि
द्वारकास्याश्च नीलाद्रिः प्राच्यं वेलास्थितं त्रयम् । ८९ ।

नीलाचल (पुरी) से नैऋत्य दिशा में कुमारी अन्तरीप (कन्या कुमारी) है, कुमारी से वायव्य कोण पर द्वारका क्षेत्र तथा पुनः द्वारका से पूर्व में नीलाद्रि है । यह तीनों स्थान समुद्र कूल पर हैं ।

अतो भारत वर्षस्य याम्य भागे त्रिकोणता
प्राक् पश्चान्मध्य देशानामन्तरज्ञानतोऽपि च । ९० ।

अतः इन तीन स्थानों का त्रिकोण भारत वर्ष के दक्षिणी भाग में स्थित है । पुनः भारत वर्ष का पूर्व, पश्चिम और मध्य भागों का अन्तर देखने से भी स्पष्ट होता है कि -

शंखाग्रा कारता सिद्धि स्तद्वीपेऽस्मिन्न वृत्ततां
तन्मानता न चैवाब्धौ न चापि वलयाकृतिः । ९१ ।

भारत का आकार शंख के अग्रभाग की तरह है । अतः जम्बूद्वीप का आकार वृत्ताकार नहीं है । इसी प्रकार समुद्र भी वलयाकार नहीं है । (जैसा पुराणों में कहा गया है ।)

तत्ततोऽधिक मानोऽसौ सागरो विविधाकृतिः
प्राक्पश्चाद् याम्य सौम्याख्या नानाख्यः स्थानभेदतः । ९२ ।

समुद्र भी विविध आकार के तथा अधिक मान के हैं । पूर्व पश्चिम, दक्षिण तथा उत्तर नाम से इन समुद्रों का नाम करण हुआ है । स्थान भेद से इनका नाम अलग अलग है ।

लवणार्णव मध्यस्था द्वीप भेदः परः शताः
दशार्बुदाधिका संख्या मनुष्याणां भुविश्रुता । ९३ ।

लवण समुद्र में भिन्न भिन्न सौ से अधिक द्वीप हैं । सुना जाता है । कि पृथ्वी पर १०० कोटि से भी अधिक लोग रहते हैं ।

समन्ताद् योजनं कल्पे भूगोलः किल वर्द्धते
इति सिद्धान्त तो वृद्धे वैषम्याद्देश भेदतः । ९४ ।

एक कल्प में पृथ्वी गोल की वृद्धि चारों तरफ चार कोस होती है यह सिद्धान्त स्थिर हो चुका है । अवश्य स्थान भेद से यह वृद्धि कम या अधिक होती है ।

बहुदिक् प्रसरद् वात क्षुब्धाम्भोधि जला हते
वर्षो द्रेकान्नदी वेगान्मुदां नाना विध स्थिते । ९५ ।

अनेक दिशाओं में हवा से क्षुब्ध समुद्र जल के आघात से तथा वर्षा वेग और नदी के प्रवाह से मिट्टी का कटाव अनेक प्रकार से होता है ।

उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति केचित्केचित्कदा कदा
क्षुद्राद्वीपा महन्तस्तु भिन्नाकारा भवन्ति हि । ९६ ।

मिट्टी के असमान कटाव के कारण विभिन्न आकार के छोटे और बड़े द्वीप कभी दब जाते हैं । तथा कभी समुद्र से ऊपर उठ जाते हैं । तथा आकार भी बदल जाता है ।

तथापि वृत्ततो भूमेर्मृद् भिस्तो यैर्न भिद्यते ।
मृदा पमाञ्च संस्थानान्याध्नुवन्ति सदा भिदाम् । ९७ ।

तथापि मिट्टी और पानी के इस परिवर्तन से पृथ्वी का गोलकार नहीं बदलता है । सिर्फ मिट्टी और पानी का स्थान परिवर्तन होता है ।

लवणोदेन सम्पृक्ताः क्षीरोदाद्याक्वचित्क्वचित्
दधतिक्षीर दध्यादि न स्वरूपन्तु कात्स्र्यतः । ९८ ।

क्षीर और दधि मिला हुआ लवण समुद्र कहीं कहीं पर है । पुराणों में वर्णित शुद्ध क्षीर या दधि समुद्र कहीं नहीं है ।

तत्प्राक् सिद्धान्त सम्प्रोक्त सृष्टिकाल कुसंस्थिते-
वर्त्तते वर्तमानक्ष्मा संस्थिते श्चान्तरं महत् । ९९ ।

अवश्य पहले के सिद्धान्त ग्रन्थों में वर्णित सृष्टिकाल तथा पृथ्वी की स्थिति से अभी की पृथ्वी की स्थिति में बहुत अन्तर है ।

आदियामले-यस्य श्रृंगैक देशस्था देवास्त्रींशं त्रिकोटयः
समेरू पृथिवीमध्ये श्रूयते न च दृश्यते । इति । १०० ।

आदि यामल ग्रन्थ के अनुसारर जिसके श्रृंग के एक स्थान पर ३३ कोटि देवता रहते हैं । वही मेरु पर्वत पृथ्वी के मध्य भाग में है वह मेरू सिर्फ सुनने में आता है किन्तु दीखता नहीं है ।

सूर्य सिद्धान्ते-अनेक रत्न निचयो जाम्बू नद मयो गिरिः
भूगोल मध्य गो मेरू रूभयत्र विनिर्गतः । १०१ ।

सूर्य सिद्धान्त के अनुसार -भूमि के मध्य भाग में दोनों दिशाओं में निकले हुये दो मेरू हैं । यह सुवर्णमय तथा इनमें अनेक मणि माणिक्य हैं ।

उपरिष्टात् स्थितास्तस्य सेन्द्रा देवा महर्षयः
अधस्तादसुरास्त द् वद्विषन्तोऽन्योऽन्य माश्रितः । १०२ ।

उनके ऊपर इन्द्र सहित देवता गण और महर्षि निवास करते हैं । नीचे स्थित मेरु (कुमेरू) पर देवताओं के द्वेषी असुरों का आश्रय स्थान है ।

ततः समन्ता परिधि क्रमेणायं महार्णवः
मेखलेव स्थितो धात्र्या देवासुर विभागकृत् । इति । १०३ ।

यह दोनों मेरु के चारों तरफ पृथ्वी की परिधि के रूप में महा समुद्र घेरे हुए हैं और इसके द्वारा देव तथा असुरों का विभाग स्पष्ट दिखाई देता है (उद्धरण समाप्त)

देवावासः सुमेर्वारूयः कुमेरु रसुराश्रयः
रत्सामान्तरगा रेखा व्यक्षरुया परिधिर्महान् । १०४ ।

सुमेरू पर देवता तथा कुमेरू पर असुरों का वास है । इन दोनों स्थानों से बराबर दूरी पर स्थित महापरिधि को व्यक्ष या विषुव वृत्त कहा जाता है ।

अक्षांश मेरू पर्यन्तं क्रमोना वृत्त रेखिकाः
तद् भिदो मेरू युक् सक्ता द्राधिमाख्याः समा मताः । १०५ ।

इस विषुव वृत्त से क्रम से छोटे होते गये वृत्त मेरू तक ही दीखते हैं । जिन्हें अक्षांश रेखा कहते हैं । दोनों मेरू पर्वत के बीच की रेखा जो इन अक्ष वृत्तों को काटती है उसे द्राधिमा (देशान्तर) रेखा कहते हैं ।

इत्थामाकाश वद् भूमावपि सर्वं प्रकल्प्यते
भूमध्यात्ख स्थितिर्यस्मात् पृष्ठे सूत्र समाभवेत् । १०६ ।

इस प्रकार आकाश में जिन रेखाओं की कल्पना की गयी है, उसी अनुसार पृथ्वी पर भी रेखाओं की कल्पना है । आकाश वर्णित रेखा से भू केन्द्र का सूत्र (रेखा) पृथ्वी की सतह को जहां स्पर्श करता है, वहां वही रेखा मानी जाती है ।

ब्रह्माण्डात्म विराड्ं देह मेरुदण्डायिते स्थिरे
वायो भूरादयः स्युताश्चक्राणोवतनौ नृणाम् । १०७ ।

जिस प्रकार मनुष्य देह में चक्र हैं । (मेरू दण्ड में ६ तथा ऊपर सहस्रार) उसी प्रकार परमात्मा के विराट देह में भी मेरुदण्ड रूपी जो स्थायी वायु (प्रवह) है उसमें भू, भुवः स्वः आदि लौक स्थित हैं ।

ख मेरु समरुत् प्रोक्तो लोकाधार तथा गमैः
गर्भोद सिन्धु युङ् मूलः षोड़शाधार भृच्छिखः । १०८ ।

आकाश के मेरू को शास्त्रों ने सभी लोकों का आधार माना है । प्रसिद्ध है कि वहां बहुत पवन होता है । उसका श्रृंग १६ आधार का है । तथा मूल जल समुद्र के भीतर है ।

लोका लोक तया प्रोक्ता कटाह प्रथमावृतिः
हिरण्मयो भूमि संज्ञा ततो दश गुणोत्तरा । १०९ ।

पृथ्वी का नाम हिरण्मयी है । लोगों की दृष्टि में इसका आकार कड़ाह के समान (गोलाकार है) । भूमि का इसका प्रथम आवरण है । उससे क्रमशः दस-दस गुणा अधिक

क्रमाज्जलादयः प्रोक्ताः प्रकृत्यन्ताः प्रसंगताः ।
यस्थाधारण भूगोल शास्त्रे देशादि वर्णना । ११० ।

जल आदि के आवरण हैं, अन्त में प्रकृति है । प्रसंग के अनुसार इनका शास्त्रों में वर्णन है । देश, (सागर, नगर) आदि का वर्णन साधारणतः भूगोल में ही होता है, अतः

कर्त्तुर्महा तदेतस्मिन् गणितेदिक् प्रदर्शिता
पश्चाद् व्यासादि गोलस्य वाच्यं दृक्शास्त्र सम्मतम् । १११ ।

अतः इस गणित शास्त्र में उसका दिग्दर्शन मात्र दिया गया है । बाद में गोल अध्याय में वास्तविक व्यास आदि के बारे में कहा जायेगा ।

अथ भूभाग संस्थान परिचित्यै कुतूहलात्
लिख्यन्ते कतिचित्श्लोकाः सत्सिद्धान्त शिरोमणौ । ११२ ।

भूभाग में कौन सा स्थान कहां पर है इसका परिचय और कुतूहल शान्ति के लिये प्रमाणिक सिद्धान्त शिरोमणि के कई श्लोक लिखे जाते हैं ।

सिद्धान्त शिरोमणौ-लंका कुमध्ये यम कोटिरस्याः
प्राक्पश्चिमे रोमकपतनश्च ।
अधस्ततः सिद्ध पुरं सुमेरू सौम्येऽथ याम्ये वड़वानलश्च । ११३ ।

सिद्धान्त शिरोमणि के अनुसार-पृथ्वी के मध्य (विषुव रेखा पर) लंका नगरी है । उससे पूर्व (९०° पर) यम कोटि पत्तन, लंका से पश्चिम उतनी ही दूरी पर रोमक पत्तन है । लंका के ठीक नीचे (१८०° पर) सिद्ध पुर तथा इन चारों से ठीक उत्तर (९०°) पर सुमेरू और दक्षिण में कुमेरु या बड़वानल है ।

कुवृत्त पादान्तरितानि यानि स्थानानि षड्गोल विदोवदन्ति
वसन्त मेरौ सुरसिद्ध संघा और्वेच सर्वे नरकाः सदैत्याः । ११४ ।

यह सभी ६ स्थान एक दूसरे से एक वृत्त पाद (९०°) की दूरी पर हैं । (कुमेरू और सुमेरू के बीच दूरी २ पाद या १८०° की दूरी है) । मेरू में सुर और सिद्ध निवास करते हैं । तथा और्व या बड़वानल (कुमेरू) में असुर रहते हैं ।

यो यत्र तिष्ठत्यवनीं तलस्था मात्मानमस्या उपरिस्थितञ्च
समन्यतेऽतः कु चतुर्थ संस्था अधश्चते तिर्यगिता मनन्ति । ११५ ।

पृथ्वी में जो जहां पर है अपने से पृथ्वी को नीचे तथा अपने को ऊपर समझता है । ९०° की दूरी से लोगों को वह तिरघा मानते हैं ।

अधः शिरस्काः कुजलान्तरस्थाश्छाया मनुष्या इव नीरतीरे ।
अनाकुलास्तिर्यगधः स्थिताश्च तिष्ठन्तिते तत्र वयं यथात्र । ११६ ।

जिस प्रकार जल में छाया नीचे की तरफ दीखती है उसी प्रकार पृथ्वी पर परस्पर १८०° दूरी पर स्थित मनुष्य अपने को ऊपर और दूसरे को नीचे की तरफ सिर किये हुये देखते हैं । लेकिन हम लोग जिस प्रकार स्थिर होकर बैठे हैं । उसी प्रकार नीचे की दिशा या तिर्यक् दिशा वाले भी ।

भूमेरर्द्धं क्षारसिन्धो रुदक्स्थं जम्बूद्वीपं प्राहुराचार्य वर्याः
उर्ध्वेऽन्यस्मिन् द्वीप षट् कस्य याम्ये क्षार क्षीराद्यम्बुधिना निवेशः । ११७ ।

लवण समुद्र के उत्तर स्थित आधी पृथ्वी को श्रेष्ठ आचार्यो

है । इसके विपरीत पृथ्वी के दक्षिणार्द्ध में ६ द्वीप तथा लवण क्षीर आदि समुद्र हैं ।

लवण जलधीरादौ दुग्धसिन्धुश्च तस्मा
दमृतममृतरश्मिश्रीश्च यस्माद् वभूव ।
महतचरणपद्मः पद्म् जन्मादि देवै र्वसति
सकल वासो वासुदेवश्च यत्र । ११८ ।

पहले लवण तथा उसके बाद क्षीर समुद्र हैं । क्षीर समुद्र से चन्द्र और लक्ष्मी का जन्म हुआ । इसमें स्वयं वासुदेव निवास करते हैं । जिनके शरीर में सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है । ब्रह्मा आदि सभी देवता उनकी चरण वन्दना करते हैं ।

दध्नोघृतस्येक्षुरसस्य तस्मान्मद् यस्य च स्वादु जलस्य चान्त्यः
स्वादु ह्यकान्तर्वड़वानलोऽसौ पाताल लोकाः पृथिवी पुटानि । ११९ ।

क्षीर के बाद दधि (दही) घृत (घी) गुड़ (ईख का रस), मद्य और अन्त में पानी का समुद्र क्रमशः अधिक दूरी पर है । इस स्वादु जल समुद्र के भीतर बड़वानल है । पृथ्वी के गड्ढों को ही पाताल कहा जाता है ।

चञ्चत् फणामणि गणांशुकृत प्रकाशा
एतेषुसासुर गणाः फणिनोवसन्ति ।
दीव्यम्ति दिव्य रमणी रमणीय देहैः
सिद्धाश्च तत्र चलसत् कनका विभासैः । १२० ।

पाताल लोक में असुर और सर्प निवास करते हैं । सर्पों के सिर की मणि से वह प्रकाशित है । सिद्ध अपने रूप गुण रूपी मणि को धारण कर वहां विचरण करते हैं । उनके विचरण (या क्रीड़ा) के समय उनके देह के स्वर्ण गहने सदा चमकते हैं । सिद्ध और दिव्य स्त्रियों के सुन्दर देह गहनों की क्रान्ति से प्रकाशित हैं ।

शाकं ततः शाल्मलीमत्र क्रौंशं क्रौञ्चञ्च गोमेदक (प्लक्ष) पुष्करे च
द्वयोर्द्वयोरन्तरमेक मेकं समुद्रयोर्द्वीप मुदाहरन्ति । १२१ ।

ये सभी सात समुद्र वलयाकार हैं । इनके भीतर ६ द्वीप हैं । द्वीपों के नाम क्रमशः शाक, शाल्मली, कौश, क्रौञ्च, गोमेदक और पुष्कर, गोमेदक का एक अन्य नाम प्लक्ष है ।

लंकादेशाद्धिमगिरि रुदग् हेमकूटोऽथ तस्मात्
तस्माच्चान्यो निषध इति ते सिन्धु पर्यन्त दैर्घ्याः
एवं सिद्धादुद गपि पुरा च्छृंग वच्छुक्ल नीला
वर्षाण्येषां जगुरिह बुधा अन्तरे द्रोणि देशान् । १२२ ।

लंका से हिमालय उत्तर की तरफ है । उससे उत्तर हेमकूट पर्वत तथा और

उत्तर निषध पर्वत है। प्रत्येक का विस्तार समुद्र तक है। पुनः सिद्धपुर से उत्तर क्रमशः श्रृंगवान् शुक्ल और नील पर्वत है। दो दो पर्वतों के बीच में जो वर्ष हैं उन्हें द्रोणी देश कहते हैं।

भारत वर्ष मिदं ह्युदगस्मात् किन्नर वर्ष मतो हरिवर्षम्
सिद्धपुराच्च तथा कुरु तस्माद् विद्धि हिरण्मय रम्यक वर्षे। १२३।

लंका से उत्तर दिशा में पहले भारवर्ष तब किन्नर देश तथा उसके बाद हरि देश है। सिद्ध पुर से उत्तर क्रमशः कुरु, हिरण्मय तथा रम्यक देश हैं।

माल्यवांश्च यमकोटि पत्तनो द्रोमकाच्च किल गन्धमादनः
नीलशैल निषधावधी च तावन्तराले मनयोरिलावृतम्। १२४।

यमकोटि पत्तन से उत्तर की तरफ माल्यवान् तथा रोमक में उत्तर गन्धमादन पर्वत है। यह दोनों क्रमशः नील और निषध पर्वत तक फैले हुए हैं। इनके बीच के क्षेत्र को इलावृत्त वर्ष कहा जाता है।

माल्यवज्जलधि मध्यवर्ती यतत् तु भद्र तुरगं जगुर्बुधाः
गन्धशैल जलराशि मध्यगं केतुमालक मिला कलाविदः। १२५।

माल्यवान पर्वत तथा समुद्र के बीच का भाग भ्रद्र तुरग कहलाता है। गन्धमादन तथा समुद्र के बीच का क्षेत्र को भूगोल विद लोग केतुमालक देश कहते हैं।

निषध नील सुगन्ध समाल्यकै रतमिला वृत्त मावृत मावभौ
अमरकेरकुलाय समाकुलं रुचिर काञ्चन चित्र महीतलम्। १२६।

निषध, नील, गन्धमादन और माल्यवान् इन चार पर्वतों से चार दिशाओं में घिरा हुआ विस्तृत इलावृत्त देश है। इस देश में देवता घर बनाकर सुख से रहते हैं। इस देश की मिट्टी सुन्दर और बिचित्र है तथा उसके नीचे स्वर्ण भण्डार है।

इह हि मेरु गिरिः किल मध्यगः कनक रत्नमयस्त्रिद शालयः
द्रुहिण जन्म कुपद् मज कर्णिकेति च पुराणविदोऽ मुमवर्णमन्। १२७।

इसके मध्यभाग में मेरू पर्वत है। इसकी मिट्टी स्वर्णमय है तथा पुराणविदों के अनुसार यहां देवताओं का निवास है। यह पर्वत ही पृथ्वी रूपी पद्म की डण्टी (कर्णिका) है जिससे ब्रह्म का जन्म हुआ था।

विष्कुम्भ शैलाः खलु मन्दरोऽस्य सुगन्ध शैला विपुलः सुपार्श्वः
तेषुक्रमात्सन्ति च केतु वृक्षाः कदम्ब जम्बू वट पिप्पलाख्या। १२८।

इस मेरू पर्वत के चार विष्कुम्भः (शाखा) पर्वत हैं-मन्दर, (मन्दराचल) सुगन्ध (गन्धमादन) विपुल और सुपार्श्व। इनमें क्रमशः कदम्ब, जम्बू (जामुन), वट तथा पीपल की प्रधानता है।

जम्बूफलामलगल द्रसतः प्रवृत्ता
जम्बूनदोरसहुते मृदभूत् सुवर्णम् ।
जाम्बूनदं हि तदप सुरसिद्ध संघाः
शाश्वत्पिवन्त्यमृतपान पराङ्मुखास्ते । १२९ ।

पके हुए जम्बू फल के रस गिरने से जम्बू रस की एक नदी बन गयी है। जिसके संसर्ग से मिट्टी से सोना बना । इस जम्बू नद का पानी पीने के लिये देवताओं और सिद्धों का इतना आग्रह है कि वे अमृत पान से भी विमुख हो जाते हैं ।

वनं तथा चैत्र रथं विचित्रं तेष्वप्सरो नन्दन नन्दनश्च
धृत्याह्वयं यद् धृतिकृत् सुराणां भ्राजिष्णवैभ्राजमिति प्रसिद्धम् । १३० ।

मेरु के चार विष्कुम्भ पर्वतों के नीचे के भाग में चार वन हैं । प्रसिद्ध हैं-चैत्ररथ अत्यन्त विचित्र है, नन्दन में अप्सरायें क्रीड़ा करती है, धृति वन देवताओं को धैर्य देता है । तथा वैभ्राज अत्यन्त रुचिकर है ।

संरास्यथैतेष्वरुणञ्च मानसं महाह्रदं श्वेत जलं यथाक्रमम्
सरत्सुरामा रमणश्रमालसाः सुरा रमन्ते जल के लिलालसाः । १३१ ।

इन चार वनों में चार ह्रद (झील) हैं- अरुण, मानस, महाह्रद और श्वेत दल) देव स्त्रियां घूमने से थककर इन्हीं ह्रदों में जल क्रीड़ा करती हैं ।

सद्रत्नकाञ्चनमयं शिखरत्रयञ्च
मेरौ मुरारिक परारिपुराणि तेषु
तेषामधः शतमखज्वनान्त कारुण्य
रक्षोऽम्बुपानिल धनेशपुराणि चाष्टौ । १३२ ।

मेरु के पर्वत के तीन श्रृंग हैं-प्रत्येक रत्न और स्वर्ण से बने हैं । एक पर विष्णु, दूसरे पर ब्रह्मा और तीसरे पर शिव अपना अपना पुर बनाकर रहते हैं । इन चोटियों के नीचे क्रमशः इन्द्र, अग्नि, यम, राक्षस, वरुण, पवन, कुबेर तथा शिव के नगर हैं ।

विष्णु पदी विष्णुपदा त्पतिता मेरौ चतुर्द्धास्मात्
विष्कुम्भा चल मस्तक शस्तसरः संगता वयता । १३३ ।

विष्णु के पाद से निकल कर गंगा का अवतरण पहले मेरू पर हुआ । उससे वह चार भागों में विभक्त होकर चार विष्कुम्भ पर्वतों के नीचे के चार ह्रदों में मिल कर आगे बढ़ी ।

शीताख्या भद्राश्वं सालकनन्दा च भारतं वर्षम्
वंक्षुश्च केतुमालम् भद्राख्या चोत्तरान कुरुन् याता । १३४ ।

शीता गंगा भद्राश्व देश में, अलकनन्दा (गंगा) भारत वर्ष में वक्षु गंगा

केतुमाल में और भद्र गंगा उत्तर कुरु वर्ष में प्रवाहित हुयी ।

या कर्णिता भिलाषिता दृष्टा स्पृष्टावगाहिता पीता
भक्ता स्मृता स्तुतावा पुनाति बहुधापि पापिनः पुरुषान् । १३५ ।

गंगा के द्वारा बहुत प्रकार से पापी पुरुष पवित्र होते हैं । नाम सुनने, पाने की इच्छा करने से, दर्शन से, स्पर्श से, स्नान से, पानी पीने से, भक्ति करने से, स्मरण करने या स्तुति करने से ।

याञ्चलिते दलिताखिल बन्धो गच्छति वल्गति तत् पितृसंघः ।
प्राप्त तटे विजितान्तक दुतो याति नरेनिरयात् सुरलोकम् । १३६ ।

गंगा की तरफ प्रयाण करने से ही लोगों का पितृ ऋण का सब बन्धन टूट जाता है । गंगा तट पर पहुंच ने से ही मनुष्य खुशी से नाच उठता है । (अहा गंगा तट पर पहुंच गया) यमदूतों को जीत लेता है । जल में प्रवेश करने से नरक से मुक्ति पाकर स्वर्ग में प्रवेश करता है ।

ऐन्द्रं कशेरुशकलं किल ताम्र पर्णमन्यद् गभस्ति मदतश्चकुमारिकाख्यम् ।
नागञ्च सौम्य वारुण मन्त्यखण्डं गान्धर्व संज्ञमिति भारत वर्ष मध्ये ।१३७।

भारत वर्ष के कई खण्ड हैं- इन्द्र, कशेरु, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, कुमारिका, नाग, सौम्य, वारुण और गान्धर्व ।

वर्णव्यवस्थितिरिहैव कुमारिकाख्ये
शेषेषु चान्यजजना निवसन्ति सर्वे
माहेन्द्रशुक्ति मलयर्क्षक पारियात्रा सह्यः
सविन्ध्य इह सप्तकुलाचलाख्याः । १३८ ।

कुमारिका खण्ड में ही वर्ण व्यवस्था है । अन्य खन्डों में अन्त्यज (चान्डाल) प्रायः निवास करते हैं । इस भारत वर्ष में ७ कुलाचल (श्रेष्ठ पर्वत) हैं- महेन्द्र, शुक्ति, मलय, ऋक्ष, पारियात्र, सह्य और विन्ध्य ।

भूर्लोकाख्यो दक्षिणे व्यक्षदेशात् तस्मात् सौम्योऽयं भुवः स्वश्चमेरु
लभ्यः पुण्यैस्तै महोऽस्माजनोऽतोलभ्योऽ नल्पैस्तैस्तपः सत्यंमन्त्यः । १३९ ।

शून्य अक्षांश के स्थान को व्यक्ष (या निरक्ष देश-विषुव रेखा) कहते हैं । विषुव रेखा से दक्षिण का क्षेत्र भूलोक, तथा उत्तर का क्षेत्र भुवलोक कहलाता है । मेरु (सुमेरु) ही स्वः लोक है । उससे ऊपर महः लोक, जन लोक, तपलोक तथा अन्त में सत्यलोक है ।

लंकापुरेऽर्कस्य यदोदयः स्यात्तदादिनार्द्ध यमकोटिपुर्याम् ।
अधस्तदा सिद्धपुरेऽस्तकालः स्याद्रोमके रात्रिदलं तदैव । १४० ।

जब लंका में सूर्योदय होता है उस समय यमकोटि नगर में दिनार्द्ध (दो पहर), लंका के ठीक नीचे सिद्ध पुर में सूर्यास्त तथा रोमक नगर में आधी रात

होती है ।

यत्रोदितोऽर्क किल तत्रपूर्वातत्रापरायत्र गतः प्रतिष्ठाम्
तन्मध्यतोऽन्ये च तलोऽखिलानामुदक् स्थितो मेरुरिति प्रसिद्धिः । १४१ ।

सूर्य की उदय दिशा को पूर्व तथा अस्त होने की दिशा को पश्मिम कहते हैं । पूर्व और पश्चिम के बीच की दोनों दिशायें उत्तर और दक्षिण हैं । इन चार दिशाओं से अन्य विदिग (कोण दिशाओं) का निर्णय हो सकता है । मेरु (सुमेरू) सभी के उत्तर में स्थित है ।

अथोज्ञयिन्या कुचतुर्थ भागे प्राच्यां दिशिस्यात् यमकोटिरेव
ततश्चपश्चान्नभवेद वन्ती लंकैव तस्याः ककुभिः प्रतीच्यम् । १४२ ।

उज्जयिनी से पृथ्वी के १/४ भाग (९०°) पूर्व दिशा में यमकोटि पत्तन है । परन्तु इस यमकोटि पत्तन के ठीक पश्चिम में अवन्ति (उज्जयिनी) नहीं हैं । परन्तु यमकोटि के ठीक पश्चिम में लंका ही है ।

तथैव सर्वत्र यतोहि यत्स्यात् ततस्तन्नभवेत् प्रतीच्यम् ।
निरक्ष देशादितरत्र तस्मात् प्राची प्रतीच्ये च विचित्र संस्थे । १४३ ।

इससे लगता है कि जिस स्थान के पूर्व में जो स्थान है वहां से पहला स्थान ठीक पश्चिम में नहीं है । यह विचित्र व्यवस्था सिर्फ विषुव वृत्त पर नहीं होती है ।

निरक्षदेशे क्षतिमण्डलोपगो ध्रुवोनरः पश्यति दक्षिणोत्तरो
तदाश्रितं खे जलयन्त्रवत्तथा भ्रमद् भ चक्रं निजमस्तकोपरि । १४४ ।

विषुववृत्त (निरक्ष देश) में रहने पर मनुष्य अपने दिग वलय में दोनों ध्रुवों सुमेरू तथा कुमेरु को क्रमशः उत्तर तथा दक्षिण की तरफ देखता है । उसे क्रान्ति वृत्त अपने सिर के ऊपर आकाश में जलयन्त्र के समान दीखता है ।

उदग् दिशं याति यथा यथानरस्तथा तथा स्यान्नत मृक्ष मण्डलम् ।
उदग् ध्रुवं पश्यति चोन्नतं क्षिते स्तदन्तरे योजन जाः फलांशकाः । १४५ ।

मनुष्य विषुव वृत्त से जैसे जैसे उत्तर की तरफ जाता है, क्रान्ति वृत्त दक्षिण दिशा में धीरे धीरे नीचे झुकता है, तथा उत्तरी ध्रुव क्षितिज से ऊपर उठता है । उत्तरी ध्रुव की उन्नति (या क्रान्ति वृत्त की नति) उतनी ही होती है, जितना विषुव से उस स्थान की योजनात्मक दूरी का अंशात्मक मान होता है ।

योजना संख्या भांशै (३६०) गुणिता स्वपरिधि हृता भवन्त्यंशाः
भूमौकक्षायां भागेभ्यो योजनानि च व्यस्तम् । १४६ ।

देशान्तर योजन को ३६० से गुणाकर भूपरिधि योजन से भाग देने पर उस स्थान का अक्षांश होगा । ग्रह कक्षा में भी इसी प्रकार अक्षांश आयेगा । उल्टे

अनुपात से अक्षांश द्वारा विषुव से योजन में दूरी निकाली जा सकती हैं।

सौम्यं ध्रुवं मेरुगताः खमध्ये याम्यंञ्चदैत्यानिक मस्तकोर्द्ध्वे
सव्यापसव्यं भ्रमदृक्ष चक्रं विलोक यन्ति क्षितिज प्रसक्तम्। १४७।

जिस प्रकार सुमेरू वासी उत्तर ध्रुव को अपने सिर के ऊपर देखते हैं, उसी प्रकार कुमेरू वासी दक्षिण ध्रुव को। दोनों ध्रुव प्रदेश के लोग क्रान्ति वृत्त को सव्य दिशा (दाहिने की तरफ) तथा दक्षिण ध्रुव के लोग अपनी अपसव्य (बायीं तरफ) घूमता हुआ देखते हैं।

वृद्धि विंधेरह्नि भुवः समन्तात् स्याद् योजनं भू भव भूतपूर्वे।
ब्राह्मे लये योजन मात्र वृद्धे र्नाशोभुवःप्राकृतिकेऽ खिलाया। १४८।

पृथ्वी से निकले हुए भौतिक पदार्थों के कारण ब्रह्मा के एक दिन (कल्प) में इसका आकार चारों तरफ एक योजन (९ कि.मी.) बढ़ जाता है। ब्रह्मा का लय (रात्रि में) में १ योजन की वृद्धि नष्ट हो जाती है। प्राकृतिक प्रलय में पूरी पृथ्वी नष्ट हो जाती है।

दिने दिने यन्म्रियतेहि भूतैः दैनन्दिनं तं प्रलयं वदन्ति
ब्राह्यं लयं ब्रह्म दिनान्त काले भूतानि यद् ब्रह्मतनुं व्रजन्ति। १४९।

प्रति दिन प्राणियों का मरना दैनन्दिन प्रलय कहलाता है। ब्रह्म का दिवस समाप्त होने पर पूरी सृष्टि के देह में लुप्त हो जाती है। उसे ब्राह्म प्रलय कहा जाता है।

ब्रह्मात्यये यत् प्रकृति प्रयान्ति सर्वाण्यतः प्राकृतिकं कृतीन्द्राः
लीनान्यतः कर्मपुटान्तरत्वात् पृथक् क्रियन्ते प्रकृते र्विकारैः। १५०।

ब्रह्मा की आयु समाप्त होने पर सम्पूर्ण सृष्टि प्रकृति में समा जाती है। जिससे सभी पदार्थों का गुण भेद समाप्त होता है। इसे मीमांसक (कर्मी या कृतीन्द्र) प्राकृतिक प्रलय कहते हैं। पुनः सृष्टि के समय प्रकृति इनमें कर्म या गुण भेद उत्पन्न करती हैं।

ज्ञानाग्नि दग्धाखिल पुण्य पापा मनः समाधायहरौ परेशे
यद् योगिनो यान्त्य निवर्त्ति मन्स्यादात्यन्तिकञ्चेति लयश्चतुर्धा। १५१।

योगी अपनी ज्ञान की अग्नि में पुण्य और पाप दोनों को नष्ट अपने मन को पूरी तरह भगवान में मिला देते हैं। (नष्ट कर देते हैं) तथा वे फिर इस संसार में आने की इच्छा नहीं करते है। इसे आत्यन्तिक प्रलय कहते हैं। इस प्रकार चार प्रकार के प्रलय हैं। दैनन्दिन, ब्राह्म, प्राकृतिक आत्यन्तिक।

भूभूधरत्रिदश दानव मानवाद्या
ये याश्चधिष्ण्य गगने चर चक्र कक्षाः।

लोक व्यवस्थितिरुपर्युपरिप्रदिष्टा
ब्रह्माण्ड भाण्ड जठरेतदिदं समस्तम् । इति । १५२ ।

इन श्लोकों में पृथ्वी, पर्वत, देव, दानव, मानव, नक्षत्र, ग्रह और उनकी कक्षा, मह, जन, तप आदि एक के ऊपर एक श्लोकों की स्थिति कही गयी । ये सभी ब्रह्माण्ड के उदर रूपी भाण्ड में ही एक आधार से स्थित हैं । (सिद्धान्त शिरोमणि का उद्धरण समाप्त) ।

भूव्यासः खख भूप (१६००) योजनमितः सोद् यंक्षनन्दाग्निभिः (३९२७)
क्षुण्णः खाशुगसूर्य (१२५०) हृत् स्वपरिधिः सूक्ष्मोऽपि कक्षावलौ ।
खेटानां भूविलिप्तिकांश घटना सौकर्यहेतो रिह-
व्यासः खाभ्ररसा (६००) हतः कुनव भू (१९१) भक्तो मतो वेष्टनम् । १५३।

पृथ्वी का व्यास (१६००) योजन है । इसे (३९२७) से गुणा कर (१२५०) से भाग देने पर पृथ्वी की परिधि का मान आता है । पृथ्वी, ग्रह तथा उनकी कक्षा आदि के व्यास से उनकी परिधि निकालने की एक और सरल विधि है । पृथ्वी (या किसी ग्रह) के व्यास को ६०० से गुणा कर १९१ से भाग देने पर भी उसकी परिधि होगी ।

तस्याद् योजनसंख्ययाकुपरिधिः षट् पक्षशून्याशुगाः (५०२६)
षष्ट्यंशौ दशभिस्ततः (१०) क्षितिकृतैः (४१)
सार्द्ध मयात्रोदिताः (५०२६।१०।४१)
व्यासघ्नः परिधिः कुपृष्ठजफलं वाणाष्ट
नागावनी, वेदाभ्र द्विरदा (८०,४१८८५)
स्ततो घनफलं व्यासांग (६) भागाहृतेः (२१४४५०२६६६।४०) । १५४ ।

इस विधि से पृथ्वी की परिधि $\frac{१६०० \times ६००}{१९१}$ = ५०२६ । १० । ४१ योजन है ।

जो मेरा (लेखक का) भी मत है । पृथ्वी परिधि को पुनः व्यास से गुणा करने से पृष्ठफल हुआ ५०२६।१०।४१ x १६०० = ८०,४१,८८५ योजन (वर्ग) इससे पृथ्वी का घनफल (पृष्ठफल x व्यास /६)

हुआ $\frac{८०,४१,८८५ \times १६००}{६}$ = २,१४,४५,०२,६६६ । ४० ।

क्ष्मापृष्ठस्य निरक्षदेशत उदग् भागे स्थलं योजनै
बाणाद्रीन्दुशरेषु वाण विधुभि (१५,५५,१७५) स्तोयं मितं चाम्बुधेः
शून्यद्व्यग्नि रसेषु सागर भुजै (२४,५६,३२०) र्याम्ये दले शून्यगे
रामाक्षीषु (५५२३९०) स्थलं ख खाष्टाद्र्य ब्धि रामै र्जलम् । १५५ ।

पृथ्वी के उत्तरार्द्ध में स्थल परिमाण	=	१५,५५,१७५	योजन
जल ,,	=	२४,५६,३२०	,,
,, दक्षिणार्द्ध में स्थल ,,	=	५५,२३,९०	,,
,, ,, जल ,,,	=	३४,७८,०००	,,

सिद्धान्त शिरोमणौ - वृत्त क्षेत्रे परिधिगुणितव्यास पादः फलं तत्
क्षुण्णं वेदैरूपरि परितः कन्दुकस्येव जालम्
गोलस्यैवं तदपि च फलं पृष्ठजं व्यास निघ्नम्
षड्भिर्भक्तं भवति नियतं गोल गर्भे घनाख्यं । इति । १५६ ।

परिधि को व्यास से गुणा कर ४ से भाग देने पर वृत्त का क्षेत्रफल होता है। इस वृत्त क्षेत्रफल के ४ से गुणा करने पर वह उस व्यास पर वाले गोत की सतह का क्षेत्रफल होता है। वर्गाकृति क्षेत्र वाले जाल से लपेटे हुए गेन्द की तरह गोले का क्षेत्रफल होता है। गोल की सतह के क्षेत्रफल को व्यास से गुणा कर ६ से भाग देने पर उसका घनफल होता है। प्रतिघन (आकार की वस्तु) में लम्बाई, चौड़ाई ऊंचाई (या मोटाई) रहती है। एक गोल में कितने घन है, इस घनफल से पता चलेगा।

केचिद्वदन्त्यत्र च वेष्टनार्द्ध व्यासं
प्रकल्पस्य भुजाक्षि (२२) घातात्
नगो (७) द् धृता त्तत् परिधि र्विधेय
स्तद् युग्म घातस्य चतुर्थ भाग । १५७ ।

किसी किसी का (भास्कर आदि का) मत है कि परिधि के अर्द्धभाग के छोरों के बीच की दूरी को व्यास कहा जाता है। व्यास में २२ से गुणा कर ७ से भाग देने पर परिधि होती है। परिधि और व्यास के गुणनफल में ४ से भाग देने पर।

क्षेत्रस्य वृत्तस्य फलं यदेतद् गोलाद्वतुल्यस्य ततो द्विनिघ्नम् ।
तद् गोल पृष्ठस्य फलं पुरोक्ता त्पादाधिकं सम्भवतीति तत्र । १५८ ।

वृत्त का क्षेत्रफळ होता है। वृत्त क्षेत्रफल में २ से गुणा करने पर उस वृत्त पर बने गोलार्द्ध की सतह क्षेत्रफल होता है। यह पूर्वफल से चतुर्थांश अधिक होता है।

वक्ष्ये स्फुटं साधनमिष्ट गोलं भचक्र लिप्ता । (२१,६००) सममारचय्य
त्रिज्या (३४३०) मितंव्यासदलं प्रकल्प्यतद्यात्तद ध्र्वाधर केन्द्रबिन्दु । १५९ ।

अब स्फुट पृष्ठफल तथा घन फल निकालने की विधि कही जाती है। इष्ट व्यासार्द्ध का एक गोल तैयार कर उसकी किसी परिधि को २१, ६०० कला में विभक्त करेंगे। उसके व्यासार्द्ध को त्रिज्या ३४३८ कला मानेंगे। परिधि के ऊपर और नीचे की दिशा में पृष्ठ के केन्द्र विन्दु को चिह्नित करेंगे।

निरक्षवृत्तं विलिखेत्तदन्तस्तदूर्ध्वे केन्द्रावधि गोलाकार्द्धे
तत्वाश्वि २२५) लिप्ता प्रमितानि वृत्तान्यब्धाक्षि (२४)
संख्यानि विलिख्यतानि । १६० ।

गोल के मध्यभागमें जो परिधि लिखी गयी है (२१,६०० कला में विभक्त) वह निरक्ष वृत्त है यह उर्ध्वाधर विन्दुओं के ठीक बीच में हैं । ऊर्ध्व बिन्दु से विषुव वृत्त तक (९०° की दूरी) प्रति २२५ कला अन्तर पर एक एक वृत्त विषुव वृत्त के समानान्तर खींचेंगे ।

भवन्ति तस्मिन् वलयाभिधानि क्षेत्राणि तेषां क्रमतो निरक्षात्
व्यासः समानः परिधिः क्रमोनः प्रत्येक मध्यं प्रतिलम्ब जीवाः । १६१ ।

विषुव क्षेत्र और इन २३ अन्य वृत्तों के बीच के वलयाकार क्षेत्रों की संख्या २३ है । प्रत्येक व प्रक्षेत्र (वलयाकार क्षेत्र) की मोटाई (व्यास) समान अर्थात् २२५ कला है । विषुव से ऊपरी तरफ जाने पर वृत्तों की परिधि क्रमशः छोटी होती जाती है । वलय क्षेत्र की मोटाई (व्यास) का चाप प्रति व प्रक्षेत्र की परिधि पर लम्बरूप है ।

स्वस्वाक्ष लिप्ताः क्रमतः प्रसाध्याः पुनः पुनस्ततु कृत वर्जितायाः
त्रिज्या कृते (११,८,१९,८४४) मूलतया गृहीताः स्थिरीकृताः
स्युश्च परस्परंता । १६२ ।

प्रति स्थान की अक्षज्या निकाल कर उसका वर्ग त्रिज्या के वर्ग से घटाकर उसका वर्गमूल निकालने से लम्ब ज्या होगी ।

तासां युतिर्दन्तशराक्षिबाणाः षष्ठ्यंशकैरष्ट
गुणैश्च सिद्धैः (५२,५३२।३८।२४)
समं भवेयुः पुनरक्ष पक्ष पक्षा (२२५)
हताश्चक्रकला (२१,६००) निरक्षे । १६३ ।

इन सभी लम्बज्या का योग (५२, ५३२। ३८ । २४) होगा । निरक्ष वृत्त का क्षेत्रफल(कला में) निकालने के लिये २२५ वलय की चौड़ाई) तथा २१,६०० (परिधि) में गुणा करेंगे ।

फलं वृहत् क्षेत्रभवं भवन्ति खखाभ्रशून्यांग
गजाब्धिसंख्याः (४८,६०,०००)
तत् संगुणाल्लम्ब गुणैक्यतो यत्
त्रिज्या विभक्तात् फलमेत देव । १६४ ।

इसको (निरक्ष केवलय क्षेत्रफल को) सभी लम्बज्या के योग से गुणा करने पर (४८,६०,०००) होगा । इस फल को त्रिज्या (३४३८) भाग देने पर

ख खाष्ट षष्ट्यक्षि कृताद्रि तुल्यं (७,४,२६०, ८००)
स्याद् गोल पृष्ठार्द्ध फलं कलात्म ।
द्विनिघ्न मेतत् सकलं फलं स्यात् (१४,८५,२१,६००)
पृष्ठोद् भवं चक्र कलाख्य गोले । १६५ ।

फल (७,४२,६०,८००) गोलार्द्ध के सतह का क्षेत्रफल होगा । इसे २ से गुणा करने पर गोल के पृष्ठ का क्षेत्रफल (१४,८५,२१,६००) कला में होगा ।

द्विघ्न त्रिजीवा (६८७६) गुणितर्क्ष चक्रलिप्ता समंतद् भवतीह यस्मात्
तद् वेष्टनं व्यासहतेः प्रसिद्धं पृष्ठं फलं तच्चतुरस्र रूपम् । १६६ ।

व्यास (त्रिज्या x २ = ६८७६) तथा परिधि (२१,६०० कला) को गुणा करने से भी गोल पृष्ठ इतना ही आता है । अतः परिधि और व्यास की लम्बाई चौड़ाई के चतुर्भुज के समान ही गोल का क्षेत्रफल होता है - ऐसा प्रसिद्ध है ।

प्रत्येक वलयाभिधानं फलानि तद् वद् वृहतः फलेन
निघ्नाच्च लम्बा त्रिगुणोद्धृतात् स्युस्तद् योगतः पृष्ठफलं तदेव । १६७ ।

वलयाकार क्षेत्र का क्षेत्रफल निकालने के लिये वृहत् वृत्त (विषुव के बलयक्षेत्र) के क्षेत्रफल को उस वलय की लम्बज्या से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देते हैं । इन सभी वलयों का योग भी गोलार्द्ध के पृष्ठ फल के समान होगा ।

कृत्वा मृत्तिकया सवर्त्तुल चतुष्कोणौ पृथक् पञ्चुकौ
तुल्य व्यास तया तयोर्गुरुतयोः स्याद् योऽनुपातः पुनः
तत्पृष्ठच्छदनां शुकद्वय तुला जातोऽनुपातश्च य-
स्ताभ्यमुक्त घनाख्य पृष्ठजफले बोध्ये हि बालै रपि । १६८ ।

समान व्यास (चौड़ाई) का मिट्टी का गोला तथा चतुष्कोण (समघन) बनायें । उनके वजन के अनुपात के अनुसार ही उनके घनफल का अनुपात होगा जो मापा जा सकता है । उनको ढंकने में जितना कपड़ा लगेगा । उसका अनुपात निकालें । दोनों अनुपातों की समानता से एक बालक को भी स्पष्ट हो जायेगा कि गोल और घन के क्षेत्र फल का जो अनुपात है, वही अनुपात उनके घनफल का भी होगा ।

मात्रांगुलं वसु (८) यवोदर सम्मितं तै
र्मुष्टिः कृतै (४) श्चरस (६) मुष्टि भिरेव हस्तः
हस्तैश्चतुर्भिरिह दण्ड उदीरितस्तैः
क्रोशः खखाभ्रः नयनै (२,०००) रथ तद् युगेन । १६९ ।

८ यवों के एक दूसरे के पेट (चौड़ाई) से सटाकर रखने पर जो दूरी होती है उसे १ अंगुल कहते हैं । ४ अंगुल की एक मुष्टि, तथा ६ मुष्टि का एक हाथ होता है । ४ हाथ का एक दण्ड, तथा २००० दण्ड का एक कोस होता है ।

गव्यूतिरे तदुभयं किलयोजनं स्यात्
केचित् खभूप गजलोचन (२८,१६०) हस्तमूचुः ।
गच्छत् समागं कनृणां खखतर्क बाणैः (५६,००)
क्रोशः पदैर्भवति वेग विलम्ब हीनैः । १७० ।

२ कोस का एक गव्यूति । २ गव्यूति का एक योजन । कोई कोई विद्वान् (२८, १६०) हाथ का एक योजन मानते हैं । सामान्य उच्चता का व्यक्ति समगति से चलने पर ५,६०० पग में एक कोस चलता है ।

ज्यार्द्धं ज्योतियथा श्रुतेष्व विहितं लोकेश सूर्यादिभि
र्गव्यूतिर्गदिता त्र योजनमितिक्ष्मार्कादि माने तथा
तस्माद् वास्तव भूमि विस्तृत रसौ खाभ्राष्टभिः (८००) सम्मिता
सेन्दो र्द्विर्द्विभुजै (२२२) रवेः खखनभः षड् वह्निभिर्योजनैः । १७१ ।

ब्रह्मा सूर्य आदि सिद्धान्तियों ने पूर्ण ज्या के आधे भाग को ही ज्या कहा है । शास्त्र में पृथ्वी और सूर्य का बिम्बमान समान कहने के साथ साथ गव्यूति को भी योजन के बराबर कहा गया है । इस गणना के अनुसार पृथ्वी का व्यास ८०० योजन, (१६००/२) चन्द्रका व्यास २२२ योजन (४४४/२) तथा सूर्य का व्यास ३६००० योजन (७२०००/२) ।

शंकुः सूर्य (१२) मितांगुल स्तदुभयं हस्तश्चतुर्भिर्द्धनुः
तैः क्रोशो धनुषां सहस्र मितवा स्याद् विष्णु धर्मोत्तरादत्
तस्माद्देश विशेष सिद्ध मितिभि स्तद् योजनैः सम्मताः
पूर्वोक्ता रवि (७२०००) चन्द्र (४४४) भू (१६००)
प्रभृतयः सिद्धास्तुवा विस्तृतः । १७१ ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार शकु का मान १२ अंगुल १२ शंकु का एक हाथ, ४ हाथ का एक धनु तथा १०० धनु का एक कोस । इसके मान के अनुसार व्यासों का वास्तविक मान इस प्रकार है- रवि व्यास, ७२,००० योजन, चन्द्र व्यास ४४४ योजन तथा पृथ्वी व्यास १६०० योजन ।

विष्णु धर्मोत्तरे - द्वादशांगुलकः शंकुस्तद्वयञ्च शरःस्मृतः
तच्चतुष्क धनुः प्रोक्तं क्रोशोधनुः सहस्रकम् । इति । १७३ ।

विष्णु धर्मोत्तर पुराण से उद् धृत्-१२ अंगुल का एक शंकु, २ शंकु का एक शर (बाण या हाथ), ४ शर एक धनु तथा १००० धनु का एक कोस होता है ।

उद् बाहोः प्रपदोत्थितस्य पुरुषस्यार्थां (५) श हस्तैः ख षड्
भूनागाक्षि (२८,१६०) मितैर्मतंसुमतिभिर्यद् योजनं तैः पुन
त्रिशोनैः कृतनन्द खाग्निभि । ३०९३।४० । रिलागोलस्य चेद् वेष्टनं
व्यासो व्याघ्रि शराष्टगोभि (९८४।४५) रुभयाघातात् फलं पृष्ठजम् । १७४ ।

पैर की उंगली पर खड़ा होकर अपने दोनों हाथ ऊपर उठाने से पुरुष की जो ऊंचाई होती है उसके १/५ भाग को एक हाथ कहा जाता है। इस मान से २८, १६० हाथ का एक योजन पण्डितों ने माना है। इस मान के अनुसार ३०९३/४० योजन पृथ्वी की परिधि तथा ९८४।४५ योजन व्यास होगा।

> नागाष्टाब्धि रसाब्धि खानल (३०,४६,४८८) मितंपञ्चाशताकोटिभिः
> स्यादल्पाभ्यधिकैर्धनाभिधफलं गर्भेऽस्यतद् योजनैः (५००००४८४३)
> तुल्यं खाशुग (५०) कोटि भिश्च विकला द्यानां वियोगाद् भवे-
> दित्थं भू विततिः कृताथ नभसि ज्योतिः क्रमे विक्ष्यते। १७५।

इसके अनुसार पृथ्वी का क्षेत्रफल ३०,४६,४८८ योजन तथा घनफल ५००००४८४३ जिससे अन्तिम अल्पमान घटाने पर प्रायः ५० कोटियोजन पृथ्वी का घनफल होगा। इस प्रकार पृथ्वी का विवरण समाप्त कर अब मैं आकाश के ज्योतिर्पिण्डों के बारे में कहूँगा।

> नीलारविन्द सुमिलिन्द कलिन्द जेन्द्र-नीलाम्बुदालि दलिताञ्ज न पुञ्ज मञ्जुम
> नीलाचलाधर शिरोमुकुटायमानं नीलाम्बुरानु जम जं शरणं व्रजामः। १७६।

नील कमल, श्रेष्ठ भ्रमर, इन्द्रनील मणि, यमुना के नील जल, काजल के समान काला चमकदार शोभा के साथ नीलाचल शिखर पर मुकुट के समान शोभित नीलम्बर (बलराम) के अनुज की शरण में जाता हूँ।

> इत्युत्कलो ज्ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
> श्री चन्द्रशेखर कृतौ गणितेऽक्षि सिद्धे
> सिद्धान्त दर्पण उपाहित बालबोधे
> ह्यष्टादशो गत इलाविवृतिः प्रकाशः। १७७।

इस प्रकार उड़ीसा के विख्यात राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्रशेखर द्वारा गणना एवं दर्शन में समानता तथा बालकों की शिक्षा के लिए लिखे सिद्धान्त दर्पण में भूगोल विवरण सहित १८ वां अध्याय समाप्त हुआ।

उनविंश प्रकाशः

भूगोल खगोल वर्णनम्

स्रष्टुर्या या शरीरेन्द्रिय विषयमयी भूतसृष्टिः पुरासी-
त्तत्द् बीजं द्विधान्तबहि रभवदितः पञ्चकम् मण्डलानाम्
बाह्यं ब्रह्माण्ड भाण्डावृति रुदरसमा कारमन्तः ख वा यो
बिम्ब द्वन्द्वं रवीन्दुक्षितय इह महस्तोय भूमण्डलानि । १ ।

सभी प्राणियों की सृष्टि के पूर्व ब्रह्मा ने शरीर के इन्द्रिय और विषय रूप सृष्टि के लिये दो प्रकार के बीजों अन्त र्बीज और बहि र्बीज से पांच मण्डल उत्पन्न किये । बाह्य बीज ही ब्राह्माण्ड भाण्ड का आवरण हुआ । अन्तबीज से पांच मण्डल उसके उदर में उत्पन्न हुए-आकाश, वायुमण्डल, रवितेज मण्डल, चन्द्रगोल मण्डल तथा पृथ्वी मण्डल ।

योऽसावाकाश मेरुर्मरु दितिगतितोवृत्त यष्टि स्वरूप-
स्त त्स्युतिस्था स्तुलोक प्रकर विटपिनो मूलतुल्यात् कुगोलात्
वायुस्कन्धाः समन्ताद्वहिरूपचयिनः सन्ति सप्तावहाद्या
आब्रह्माण्डादिहास्ते स्थिर चरमखिलं भग्रहाम्भोदराद्यम् । २ ।

आकाश के मेरु को ही मरुत् कहा गया है । आकाश वृत्त में मेरू (दोनों मेरू को मिलाने वाली रेखा) यष्टि (दण्ड या धुरी) के समान है । (इसके चारों ओर नक्षत्र मण्डल परिक्रमा करते हैं ।) इसी मेरुदण्ड से भुवन बन्धे हुए हैं । इस भुवन रूपी वृक्ष के मूल पृथ्वी से आरम्भ कर ब्रह्माण्ड तक आवह आदि सात वायु स्कन्ध बाहर की तरफ क्रमशः बड़े और पहले को टके हुये हैं । इसी सप्त वायु स्कन्ध के भीतर चल अचल सृष्टि, तारा, ग्रह, मेघ आदि हैं ।

सिद्धान्त शिरोमणौ-भूवायुरावह इह प्रवहस्तदुद्धर्व
स्यादुद् वह स्वदनु संवह संज्ञकश्च
अन्यस्ततोऽपि सुवहः परिपूर्णकोऽस्माद्
बाह्यः परावह इमे पवनाः प्रसिद्धाः । ३ ।

सिद्धान्त शिरोमणि में कहा है-भूवायु को आवह कहते हैं । उससे ऊपर एक के बाद एक प्रवह, उद्वह, संवह, सुवह, परिवह और परावह इस प्रकार वायु के विभाग हैं ।

भूमेर्बहि र्द्वादश योजनानि भूवायु स्ताम्बुदविद्युदाद्यम्
तदुद्धर्वगो यः प्रवहः स नित्यं प्रत्यग् गतिस्तस्य तुमध्य संस्था । ४ ।

पृथ्वी से १२ योजन तक भूवायु है । इसी के भीतर मेघ और विद्युत आदि रहते हैं । उसके ऊपर प्रवह वायु है । जिसकी गति सदा पूर्व से पश्चिम दिशा में है । इसी के मध्य में स्थित

नक्षत्र कक्षा खचरैः समेतो यस्माद तस्तैन समाहतोऽम्
भपञ्जरः खेचर, चक्र युक्तो भ्रमत्यजस्र प्रवहानिलेन । ५ ।

होकर नक्षत्र कक्षा तथा ग्रह कक्षा आदि रहकर प्रवह के आघात से सभी की कक्षा पश्चिम दिशा में गतिशील है ।

यान्तो भचक्रे लघुपूर्व गत्या खेटास्तु तस्या पर शीघ्रगत्या
कुलाल चक्रे भ्रमि वामगत्या यान्तो न कीटा इव भान्ति यान्तः। इति । ६ ।

भचक्र की पश्चिम गति के भीतर ग्रह अपनी अल्प गति से (भ्रचक) की तुलना में) पूर्व की तरफ इसी प्रकार चलते हैं । जैसे कुम्हार का चक्र जिस दिशा में घूमता है, उसकी विपरीत दिशा में कोई कीड़ा धीमी गति से जा रहा हो । चाक की तेज गति के कारण कीड़ा भी उसी दिशा में चलता दिखायी देगा, बहुत ध्यान से देखने पर उसकी अपनी गति दिखायी देगी । (इसी प्रकार ग्रह भी पश्चिम की तरफ भचक्र के कारण चलते हैं, तारों की तुलना में उनकी क्रमशः पूर्व की तरफ गति बहुत सावधानी से देखने पर ज्ञात होता है ।) उद्धरण समाप्त ।

प्राग् यापि मध्यम रवे परितो भसूत्रे
मन्दोच्चकृष्ट तनवः खचरा भ्रमन्तः ।
तिष्ठान्त यावति भुवोऽन्तर एव तस्मात्
पश्चाद् यतां बहुविधा भवतिस्वकक्षा । ७ ।

मध्यम रवि पूर्व की तरफ जाता है । उसके चारों तरफ मन्दोच्च से आकृष्ट होकर बिम्ब शरीर वाले ग्रह घूमते हैं । ये पृथ्वी से पश्चिम दिशा में जाते हैं । (नक्षत्र मण्डल के साथ) अतः इन ग्रहों की कक्षा के मध्यम और स्फुट कई प्रकार के भेद हैं ।

अथावनीवेष्टन कृद्रवीन्द्वोर्न्यूनाधिका कर्षणतो मृदुत्थात् ।
कक्षानिजा स्यादत एव मध्या लेख्याग्रतः कर्म ततः स्फुटानाम् । ८ ।

पृथ्वी के चारों तरफ रवि और चन्द्र भ्रमण करते हैं । मन्दोचल के कम या अधिक आकर्षण से इनके मार्ग में थोड़ा परिवर्तन होता है । अतः पहले मध्यम कक्षा लिखकर तब स्फुट साधन के लिए कक्षा लिखी जाती है ।

भूसूर्य बाह्याम्बर सञ्चराणां दवीयसां जीव कुजार्कि जानाम्
गत्यल्प भावान्निजमध्य कक्षा मध्यार्कतो मध्य रवेस्तु कक्षा । ९ ।

पृथ्वी और सूर्य के बाहर अति दूर में स्थित होकर वृहस्पति , मंगल, और शनि की गति अत्यन्त कम होने के कारण और मध्यम सूर्य की गति भी कम होने से मध्यम सूर्य केन्द्र से ही उनकी अपनी अपनी मध्य कक्षा होगी । मध्यम रवि कक्षा ही

तेषा चलाख्या भवति क्षितोन मध्याग्र सञ्चारि सितज्ञयोश्च
अनल्पगत्यो रवि मध्यकक्षा मध्याभिधास्या रवितश्चलाख्या । १० ।

उनके शीघ्र केन्द्र की कक्षा होगी । सूर्य और पृथ्वी के बीच में स्थित अधिक गति शील बुध और शुक्र का मध्य रवि कक्षा ही है । रवि के चारों ओर उनकी जिस चल कक्षा के बारे में कहा गया उसमे रवि से-

साप्यर्कतस्तन्मृदुकर्णसिद्धौ मध्योच्यते कौरिव चन्द्रभान्वो-
सूर्यत्कुजाद्यन्तर एवमन्द कर्ण स्फुटाद्राग्मृदुजः कुगोलात् । ११ ।

बुध और शुक्र का मन्द कर्ण साधन करने के लिए उसको मध्यकक्षा भी कहा जा सकता है । जिस प्रकार भूमि से चन्द्र और सूर्य के मन्दकर्ण साधन के लिए मध्यकक्षा होती है । सूर्य से मगंल आदि की दूरी से मन्द कर्ण या स्फुट मन्द कर्ण है । पृथ्वी से मंगल आदि की दूरी शीघ्र कर्ण तथा रवि चन्द्र आदि की दूरी शीघ्र कर्ण है ।

सूर्यज्ञा स्फूजितां मध्य कक्षा योजन संख्यया
शताहताष्टशून्याभ्रनागासैन्धवसिन्धवः (४७८००८००) । १२ ।

सूर्य, बुध, शुक्र की मध्य कक्षा का योजन ४,७८,००,८०० है ।

शीघ्रकक्षय मे वोक्ता कुजजीवार्कि जन्मनाम्
बुधस्य नखवेदांग बाणाब्धिधृतयो (१,८४,५६,४२०) निजा । १३ ।

यही (सूर्य मध्यम कक्षा) मंगल, वृहस्पति तथा शनि की चलया शीघ्र कक्षा है । बुध की चल कक्षा (१,८४,५६,४२०) योजन है ।

शुक्रस्याभ्राष्ट पञ्चेषू पञ्चाङ्गाब्धि गुणाः (३,४६,५५, ५८०) स्वका ।
मध्यांगारस्य ख खषड् गुणाभ्रगुणदृङ्नगः (७,२३०,३,६००) । १४ ।

शुक्र की चल या शीघ्र कक्षा (३,४६,५५,५८०) योजन है ।
मंगल की मध्य या मन्द कक्षा (७,२३,०३, ६००) योजन है ।

गीस्पष्ट नखरामाष्ट शरसिद्धाः शताहताः (२४,५८,३२,०००) ।
शनेः ख ख रसाद्रयग्नि पक्ष चन्द्राब्धि सिन्धवः (४४,१२३, ७६००) । १५ ।

गुरु की स्पष्ट या मन्द कक्षा (२४,५८,३२,०००) योजन हैं । शनि की मन्द कक्षा (४४,१२,३७,६००) योजन हैं ।

शीघ्रकक्षा भ चक्रांश (३६०) गुणिता मध्ययोद्धृता
लब्धाः शीघ्र परिध्यंशा श्चक्र चक्रार्द्धजा मताः । १६ ।

ग्रह की शीघ्र (चल) कक्षा को ३६०° से गुणा कर ग्रह की मध्यकला से भाग देने पर युग्म पादान्तर की शीघ्र परिधि के अंश आदि होंगे ।

$$\text{शीघ्र परिधि अंश} = \frac{\text{भचक्रांश x शीघ्र कक्षा}}{\text{मनदकक्षा}}$$

शतघ्नाम्बर षट् पूर्णरामा (३०,६,०००) मध्येन्दु कक्षिका
भानां खखाभ्र नागाष्ट दृङ् नाग नखनीरदाः (१७,२०,८२,८,०००) । १७ ।

चन्द्र कक्षा (३०,६,०००) योजन है । नक्षत्र कक्षा - (१७,२०,८२,८८,०००) योजन है ।

स्व स्व कक्षेन्दु गोभू (१९१) घ्नी ख ख सूर्यहृता (१२००) श्रुतिः
मध्यासूर्याद् बुधादीनां भूमेश्चर्क्षेन्दु भास्वताम् । १८ ।

ग्रह की अपनी अपनी कक्षा को १९१ से गुणा कर १२०० से भाग देने पर बुध शुक्र मंगल गुरु और शनि को सूर्य से तथा नक्षत्र तथा चन्द्र का पृथ्वी से मन्दकर्ण (दूरी) होता है ।

मन्द श्रुति कला निघ्नी मध्या त्रिज्योद्धृता स्फुटा
मध्यवन्मन्द संस्कारः सूर्याज्ञसित शीघ्रयोः । १९ ।

मध्य कर्ण को स्फुट मन्दकर्ण की कला से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर फल सूर्य का योजन में मन्द कर्ण (दूरी) होता है । जिस प्रकार मध्य ग्रह का मन्दफल संस्कार किया जाता है । उसी प्रकार बुध और शुक्र के शीघ्रोच्च में मन्दफल संस्कार होता है ।

भूमध्यात् स्फुट भौमादि कर्णज्ञानाय मध्यमः
कर्णस्तृतीय कर्णदना' स्त्रिज्या भक्तोऽथ तुर्यया । २० ।

पृथ्वी केन्द्र से मंगल आदि ६ ग्रहों का योजन में (शीघ्र कर्ण जानने के लिए मध्यम कर्ण को तृतीय कलात्मक मन्दकर्ण से गुणा कर त्रिज्या से भाग देंगे । फल को चौथे-

श्रुत्याभ्यस्त स्त्रिजीवाप्तः कार्यः कक्षापि कर्णतः
साध्या खखार्क (१२००) गुणितात् कुनवेन्दुभि (१९१) रुद्धतात् । २१ ।

शीप्रकर्ण से गुणा कर त्रिज्या से भाग देने पर मंगल आदि ग्रहों का योजन में शीघ्र कर्ण होगा । कर्ण को १२०० से गुणा कर १९१ से भाग देने पर कक्षा होगी ।

मन्दोच्चानाञ्च पातानां भगणाश्रित भावतः
कक्षा नक्षत्र कक्षैव ज्ञेया दृश्येतर त्विषाम् । २२ ।

मन्दोच्च और पात भगण आश्रित होने के कारण इनकी कक्षा नक्षत्र कक्षा से ही ज्ञात होगी, यह देखने से नहीं पता चलेगा ।

स्वस्व कक्षाः स्वभगणैरभ्यस्ताः कुदिनो (१५,७७,९१,७८,२८,०००) द्धृताः
फलं स्वगति मानं स्यात् खेचराणां दिनेदिने । २३ ।

ग्रह के कक्षा योजन को ग्रह के कल्प भगण से गुणा कर कल्प सावन दिन से भाग देने पर ग्रह की दैनिक योजन गति होती है ।

स्वस्व पूर्ण गतिः स्वस्व कक्षायां योजनात्मिका
कथ्यतेऽथैक दिवसे रविमध्यम सावने । २४ ।

सूर्य के एक मध्यम सावन दिन में ग्रहों की अपनी अपनी कक्षा में योजनात्मक सावन गति कही जाती है ।

भूगोलं परितोऽर्कस्य गजांगाष्टाभ्रविश्व के । (१३०८६८)
खनखेशा (११,२००) विधोर्भानां प्राक् पश्चात् कृत गोनखाः (२०९४) । २५ ।

पृथ्वी के चारों और सूर्य की मध्यम सावन दिनों में गति (१३०,८६८) है । चन्द्र का (११,२००) तथा भचक्र (अयन) की पूर्व या पश्चिम दिशा में गति (२०९४) योजन है ।

ज्ञशुक्रयोस्तु मध्यार्कं क्रमात्र्य भ्राष्ट गोनखाः (२०, ९८०३) बुध ।
गोऽक्षिदृग् वेद तिथयः (१,५४,२२९) परितोऽथ महीभुवः । २६ ।

मध्यम रवि के चारों तरफ घूमते हुए बुध और शुक्र की अपनी अपनी कक्षा में एक सावन दिन में गति क्रमशः (२०,९८०३) तथा (१, ५४,२२९) योजन है । मंगल की गति–

वसुसिद्धार्थ शून्येन्दु (१०५२४८) गुरोर्देवाद्रि षट् शराः (५६,७३२)
शनैश्चरस्य नागाभ्रपूर्णचन्द्र धरोधयः (४१,००८) । २७ ।

(१,०५,२४८) योजन, गुरु (५६,७३३) योजन तथा शनि (४१,००८) योजन है ।

गतिश्चक्र कलाघ्नी स्वकक्षाप्ता कलात्मिका
भवति प्रायशस्तेषा मथोक्ता योजनात्मिका । २८ ।

किसी ग्रह की योजनात्मक गति को चक्रकला (२१, ६००) से गुणा कर उस ग्रह की कलात्मक कक्षा से भाग देने पर प्रायः योजनात्मक भचक्र (आयन) गति होती है ।

भवति (२०९४) ग्रह कक्षाघ्नी भकक्षाप्ता फलोनयुक्
पश्चात् प्राक् चक्र चलने भवेत् खेट गतिः स्फुटा । २९ ।

योजनात्मक आयनगति को ग्रह के कक्षा योजन से गुणा कर भकक्षा योजन से भाग देने पर जो फल होगा उसे भचक्र पश्चिम की तरफ चलने पर ग्रह गति से कम तथा भचक्र पूर्व की तरफ चलने से ग्रह गति में जोड़ेगें । इससे सायन मेष आदि से ग्रह की योजन में स्फुट गति होगी ।

स्वतुंगा कर्षण वशात् कक्षा केन्द्रान्नभः सदाम्
कर्णस्योनाधिकत्वेऽपि समैव प्राग् गतिर्भवेद् । ३० ।

अपने उच्च आकर्षण के कारण ग्रह अपनी कक्षा से ऊपर नीचे होने पर भी उसकी पूर्व दिशा में योजन गति समान ही रहती है । कर्ण कम या अधिक होने पर भी पूर्व दिशा में योजनात्मक गति या कलात्मक गति (अपनी कक्षा के अनुपात में) समान होती है ।

विक्षिप्तानां स्वकैः पातैः सौम्य याम्य गतिः पुनः
न्यूनाधिकाद् भवेत्येषां मन्दकर्णानुसारतः । ३१ ।

अपने अपने पात द्वारा क्रान्ति वृत्त से उत्तर या दक्षिण दिशा में (शर) गति ग्रहों के अपने मन्द कर्ण के अनुपात के अनुसार होती है ।

भूरिन्दु सौम्य शुक्रार्क कुजेज्यार्कि भवृत्तकैः
क्रमायतै वृतेत्युक्तिः प्राच्यां दृष्टि विरोधिनी । ३२ ।

पृथ्वी के चारों ओर क्रमशः बड़ी कक्षाओं में चन्द्र, बुध, शुक्र, रवि, मंगल, वृहस्पति, तथा शनि हैं,- ऐसा प्राचीन आचार्यों ने कहा है, पर यह दृक् सिद्ध नहीं है ।

यत्तदुक्ता नभः कक्षा स्वकल्पभगणो द्धृता
लब्धाभिर्ग्रहकक्षाभिः सिद्धाभिर नुपाततः । ३३ ।

उपर जो ग्रहों की कक्षा का योजनात्मक मान कहा गया उसमें ग्रह के कल्प भगण (अपूर्ण भगण अंश) से भाग देने पर अपनी कक्षा में कितना योजन ग्रहने पार किया है और अनुपात द्वारा प्राप्त होगा ।

वेष्टिते लिखिते विन्दौ भूमि नाम्नि विपश्चिता
स्व स्व कक्षा सु तुल्याया नाप्तायां प्राग्गतौ पुनः । ३४ ।

इस प्रकार ग्रह के कक्षा वृत्त खींचकर उनके केन्द्र बिन्दु को 'भू' नाम देकर अपनी अपनी कक्षा में ग्रह की स्थिति और उसकी पूर्व गति लिखेंगे ।

शीघ्रोच्चा कर्षणोद् भूत दोः फलाग्रस्थितद् ग्रहः
भूतारास्य च सूत्रस्थश्चक्रार्द्धे नैति वक्रिताम् । ३५ ।

इस स्थिति में शीघ्रोच्च आकर्षण के कारण जो भुजफल (शीघ्रफल) होगा उसके आगे (उतनी दूरी पर) ग्रह को रखेंगे । पृथ्वी, एक तारा (ग्रह की उस स्थित के पास नक्षत्र) तथा ग्रह इन तीनों को एक सूत्र में देखेंगे । इसमें देखेंगे कि चक्रार्द्ध में (उच्च से १८०° या नीच पर) ग्रह वक्र दीखता है या नहीं ।

तदस्मदुक्त मार्गस्थाः क्रमाल्पगतयोऽर्कतः
सूर्यर्क्षसूत्रगाः क्ष्मर्क्ष सूत्रात् स्युर्वक्रिणाः खगाः । ३६ ।

रवि से क्रमशः अल्प गति वाले ग्रह (मंगल, गुरु, रात्रि) भूतारा सूत्र से सूर्य तारा सूत्र की तरफ झुके रहते हैं ।

चलकर्ण क्रमाद् बिम्ब विक्षेपाल्प महत्वतः
तारा ग्रहाणामायाति मध्यार्का भिम्रमः स्फुटः । ३७ ।

शीघ्र कर्ण घटने बढ़ने के साथ बिम्ब और शर भी कम या अधिक होता है । इससे मंगल आदि ग्रहों का मध्यम रवि की परिक्रमा करना सिद्ध होता है ।

यदि स्याद् भास्वतः कक्षा सौर भास्कर सम्मता
तदास्व भुक्ति तिथ्यंशे (१५) सिद्धे प्राक् पर लम्बने । ३८ ।

मंगल आदि ग्रहों की सूर्य के चारो तरफ की कक्षा यदि सूर्य सिद्धान्त या भास्कराचार्य के मत के अनुसार होती तो उनका १५° पूर्व या पश्चिम लम्बन होने पर-

मध्यमं लम्बनं कौजं प्रायशः कलिका द्वयम्
त्रिज्याघ्नं शीघ्र कर्णान्तं भार्द्धे स्याद्रस (६) लिप्तकम् । ३९ ।

मंगल का मध्यम लम्बन प्राय, २ कला होता (मध्य गति = ३१।२६ में १५ से भाग देने पर प्रायः २ कला) मगंल के इस लम्बन को त्रिज्या से गुणा कर शीघ्र कर्ण से भाग देने पर चक्रार्द्ध में ६ कला होता है ।

सत्यां वक्रगतौ सिद्ध कलिकायां कुजन्मनः
सायमुद्यन् यया साकं तारया बिम्ब लक्ष्यते । ४० ।

मंगल अपने स्पष्ट स्थान से २४ कला वक्र दीखने पर वह सन्ध्या में जिस तारा के साथ उदय होता है ।

ततः सिद्ध कला पश्चादस्तकाले सदृश्यते
ययाप्यस्तमये तुल्यः परेऽहन्युदयक्षणे । ४१ ।

अस्त के समय उसी समय में २४ कला पश्चिम दिशा में दिखायी देता है । अस्त के समय मंगल बिम्ब जहां दीखता है । उसके अगले दिन उदय के समय-

तया समोहि दृश्येत्य स्वल्प कक्षोत्थ लम्बनात्
मयान लक्षितं भार्द्धे कदाचित्कलि कापि यत् । ४२ ।

कक्षा के अति अल्प लम्बन के कारण उसी तारा के साथ दीखना चाहिये । पर ऐसा नहीं होता । मैंने (लेखक ने) नीच स्थान में मंगल का लम्बन एक कला भी नहीं देखा है ।

कुजस्य लम्बनं तस्मादुक्ता कक्षा महत्तरा
सूर्यस्यानुक्रमादस्या स्ताराख्य द्युषदामपि । ४३ ।

अतः मेरे मत से सूर्य सिद्धान्त के लिखे कक्षा मान की तुलना में मंगल आदि

तारा ग्रहों की कक्षा बड़ी है ।

व्यर्क सूक्ष्मेन्दु बाहुज्या चन्द्र कर्णेन ताड़िता
सौराद्युक्तार्क कर्णाप्ता फल लिप्ता युतोनितः । ४४ ।

चन्द्र से रवि (की राशि) घटाकर उसकी भुजज्या निकालें) उसको चन्द्र कर्ण से गुणा कर सूर्य सिद्धान्त या भास्कर के अनुसार रवि कर्ण मान से भाग देने पर जो फल आता है उसे चन्द्र में जोड़ने या घटाने से

पक्षयोःशुभ्रभानुश्चेच्छूक्लाष्टम्यादि पादके
कृष्णाष्टम्यन्त पादे च पूर्णार्द्धः स्यान्नदृक् समः । ४५ ।

शुक्ल पक्ष के चन्द्र में जोड़ने या कृष्ण पक्ष के चन्द्र में घटाने से शुक्ल अष्टमी के प्रथम पाद में (रवि चन्द्र का अन्तर ८४°-८७° के बीच रहने पर) और कृष्ण अष्टमी के अन्तिम पाद में (रवि चन्द्र का अन्तर २७३°-२७६° के बीच) पूर्ण चन्द्र का आधा शुक्ल नहीं होता जो गणना से होना चाहिये ।

यदि द्वितीय पर्वान्त तृतीयाघ्रिं प्रवेशयोः
चन्द्रार्द्ध लक्ष्यते साक्षात् सूर्यकर्णोऽधिकस्ततः । ४६ ।

किन्तु शुक्ल अष्टमी के द्वितीय पाद के अन्त में (रवि चन्द्र अन्तर ९०°) तथा कृष्ण अष्टमी के द्वितीय पाद के अन्त में (रवि चन्द्र अन्तर २७०°) चन्द्र का आधा बिम्ब शुक्ल दीखता है । अतः मैने सूर्य कर्ण उन ग्रन्थों की तुलना में अधिक लिया है ।

महत्ता भवतत्कक्षा बिम्बयोर्युक्ति भिः रवेः
इयता कथमानीता प्रश्नश्चेदिति कथ्यते । ४७ ।

सूर्य से आरम्भ कर सभी ग्रहों की कक्षा और बिम्ब का बड़ा मान सूर्य से आरम्भ कर सभी ग्रहों की कक्षा और बिम्ब का बड़ा मान (सूर्य सिद्धान्त की तुलना में) तर्क द्वारा सिद्ध होना चाहिये । अतः इन सभी का मान किस प्रकार इतना हुआ इसका वर्णन कर रहा हूँ ।

नहि, शब्दाखिल त्यागा दनुमानं प्रशंस्य ते
विस्तारोऽकृतो भानो स्तन्मया श्रुति सम्मतः । ४८ ।

वेद को न मानकर सिर्फ अनुमान की प्रशंसा नहीं होती है । अतः मैने सूर्य का वेदोक्त व्यास स्वीकार किया है ।

ब्रह्मविद्योपनिषदि प्रणवार्थ निरूपणे ।
द्विसप्तति सहस्राणि योजनानीति भास्वतः । ४९ ।

ब्रह्मविद्या उपनिषद् में प्रणव (ॐ) के अर्थ की व्याख्या के समय सूर्य का व्यास ७२,००० योजन कहा है ।

श्रीमहापुरुषेणोक्ता विस्तृति र्यान्तिम श्रुतौ
दृक् सिद्धा सार्क सिद्धान्त भूव्यासश्च तथा मतः । ५० ।

महापुरुष भगवान ने अथर्व वेद में भी इतना ही विस्तार (सूर्य व्यास का) कहा है । सूर्य सिद्धान्त में पृथ्वी का जो व्यास दिया गया है वह भी दृक् सिद्ध है ।

मध्य बिम्बकला भानो र्यन्त्र वेधेन लक्षिताः
भास्करेणोदिता दन्ताः (३२) सदन्त विकला (३२) यतः ५१ ।

यन्त्रवेध द्वारा भी सूर्य की मध्य बिम्ब कला (३२।३२) है जितना भास्करा चार्य ने कहा है ।

तावद् दृष्टा नुपातेन कर्णमार्गो मयोदितः
ततः कक्षाः परेषान्तु सशीघ्र फल दर्शनात् । ५२ ।

मैने इस दृश्य बिम्बकला (तथा वास्तविक बिम्ब व्यास योजन) के अनुपात से रवि कर्ण (सूर्य की दूरी) का मान कहा है । उसके अनुसार कक्षा का मान कहा है । ग्रहों का अपना शीघ्र फल देखने से

शैघ्राः परिधयः सिद्धास्तद् गुणाद् भांश भाजितात् (३६०)
कक्षा वृत्ताद्रवेः सिद्धे स्व स्व कक्षेज्ञ शुक्रयोः । ५३ ।

अन्य ग्रहों की शीघ्र परिधि भी (अनुपात द्वारा) निकलती हैं । रवि के कक्षा वृत्त को (बुध और शुक्र की) शीघ्र परिधि के अंश से गुणा कर ३६० से भाग देने पर क्रमशः बुध और शुक्र की अपनी अपनी कक्षा का मान आता है ।

भू कक्षाया विभक्तायाः शैघ्रैः परिधि भागकैः
कुजेज्य मन्दकक्षाः स्युरिति सर्वं समञ्जसम् । ५४ ।

अपनी अपनी शीघ्र परिधि के अंश से भू कक्षा में भाग देने पर मंगल, गुरु और शनि को कक्षा होगी । इस प्रकार इन मानों का सामञ्जस्य (तर्क संगति) हुआ ।

नति लम्बन भूयस्थ बिम्ब मानो नतेक्षणात्
भूच्छाया लोकतिश्चन्द्र कक्षा बिम्बाल्पता कृता । ५५ ।

नति और लम्बन की अधिकता बिम्बमानो में अन्तर होने के कारण भूछाया और चन्द्र बिम्ब का मान कम किया गया है ।

सूर्यान्नक्षत्र सूत्रस्थ ग्रहाणामन्तदोः फलम्
शैघ्रं भूमेरुडुगतात् सूत्राद् यद् बुध शुक्रयोः । ५६ ।

सूर्य से नक्षत्र सूत्र में स्थित (नक्षत्र दिशा में) ग्रहों का परम शीघ्रफल, यदि पृथ्वी से नक्षत्र सूत्र में स्थित बुध और शुक्र से शीघ्र फल से-

अधिक दृश्यते यावद् भौमेज्य रविजन्मनाम्
यावन्यूनञ्च तद् वाहु फलान्तर कलायतः । ५७ ।

अधिक होता है तथा मंगल, गुरु शनि का शीघ्र फल कम दीखता है । तो उन दोनों भुज (रवि नक्षत्र दिशा तथा भूनक्षत्रदिशा) के अन्तर कला

फलं खाङ्गाग्न्यंश (३६०) तुल्या भकक्षा तादृशोततः
दस्राद्येत्यतर भानान्तु न सीमा निश्चिता स्थिते । ५८ ।

३६० कला होने के कारण भ (नक्षत्र) कक्षा को रवि कक्षा से ३६० गुणा माना गया है । अश्विनी आदि नक्षत्रों के अतिरिक्त अन्य नक्षत्रों की स्थिति सीमा अभी तक ज्ञात नहीं है ।

बिम्ब ज्ञानात पुष्पवतोः स्वकर्णः परिचीयते
स्वकर्ण वर्गते र्भानां ज्ञायन्ते मण्डलान्यपि । ५९ ।

सूर्य और चन्द्र की बिम्ब ज्ञान होने से कर्ण ज्ञान होता है । नक्षत्रों का कर्ण ज्ञात होने से उनका बिम्ब ज्ञान होता है ।

बिम्बात्म चक्षुषोर्मध्यस्थिताच्छादन पट्टका
बिम्बव्यास समायत्र दृश्यान्यस्यात्र निश्चला । ६० ।

नक्षत्र बिम्ब और अपने आंख के बीच आवरण पट्टिका जितनी दूरी पर रखने से वह जिम्ब व्यास के समान दीखे वह दूरी स्थिर करनी होगी ।

पट्टिकाक्ष्यन्तरं बिम्बव्यास निघ्नं तयोद्धृतम्
रवीन्दु कर्णमानं स्यात् कर्णाद् बिम्बोऽपि सिद्ध्यते । ६१ ।

पट्टी और आंख के बीच के दूरी को बिम्ब व्यास से गुणा कर पट्टी व्यास से भाग देने पर रवि और चन्द्र कर्ण मान आयेगा । इसके उल्टे अनुपात द्वारा कर्ण से बिम्ब निकाला जा सकता है ।

किं वोदयास्त मययोः प्राक् पश्चात् कुड्ययो गृहे ।
तद् वातायन माच्छाद्य तालपर्णेन तत्र च । ६२ ।

अथवा सूर्य उदय या अस्त के समय पूर्व या पश्चिम खिड़की को ताल पत्र से ढंक कर-

विधाय वर्तुलं सूक्ष्मं छिद्रं तेनाध्वना गतः
अतपोऽपरभित्थो यो बिम्बाकार ईक्ष्यते । ६३ ।

उस में सूक्ष्म छिद्र करने पर दूसरे तरफ की दीवाल में उस छेद से प्रकाश जाने के कारण बिम्ब आकार का आकाश दीखता है ।

तद् व्यास छिद्रमानोनो हार कुड्य विलान्तरम्
बिम्ब मानाहतं हारं भक्तं कर्णः स्फुटो भवेत् । ६४ ।

उस प्रकाश व्यास से छिद्र का व्यास घटाने पर हार होता है। उस दीवाल और छिद्र के बीच की दूरी को बिम्ब प्रमाण से गुणा कर हार से भाग देने पर (सूर्य का) स्फुट कर्ण आता है।

यस्य यस्य ग्रहस्यापि चन्द्रेणास्त मयोदयौ।
विलोक्यते समंतस्य मण्डलं ज्ञातु मिष्यते। ६५।

जिस तारा और ग्रह का चन्द्र के साथ अस्त होता है। उनके मण्डल का मान जानने के लिए -

षट् त्रिशद् हस्ततो दूरे चन्द्र बिम्बाभिधायकम्
अताराच्छादकं न्यस्य कुत्रचित्ताल वृन्तकम् । ६६।

अपने दृष्टि स्थान से ३६ हाथ की दूरी पर एक ताल पत्र इस आकार का रखेंगे, जिससे उतनी दूरी पर चन्द्र बिम्ब ढंक सके। उसको ऐसे स्थान पर रखेंगे, जिससे तारा बिम्ब नहीं ढंके।

चन्द्र बिम्बैक देशोऽत्र यथा तत्तारका समः
दृश्यते शुषिरं तद् वत् कार्यं तत्पादसं गुणात्। ६७।

उसमें इतना बड़ा छेद करेंगे जिससे तारा (तारा ग्रह) का बिम्ब पूरादीख सके। उस छेद के चतुर्थांश को-

तारकाकर्ण तस्थात्सवृन्तनेत्रान्तरोद्धृतात्
फलं तारा ग्रह त्यासो नान्यथायादि सौक्ष्म्यतः। ६८।

तारा कर्ण (तारा ग्रह की पृथ्वी से दूरी) से गुणा कर तालपत्र और आंख के बीच की दूरी से भाग देते हैं। फल तारा ग्रह का बिम्ब मान होगा। बिम्ब मान निकालने की यह सबसे सूक्ष्म विधि है।

तिथ्यं (१५) शोऽगुल मंशस्य खमध्ये दृश्यते यतः
त्रिज्यांघ्रं (८५९/०) गुल तो दूरं व्यजनान्तरम्। ६९।

१/१५ अशं आकाश में एक अंगुल के बराबर दीखता है। अतः आंख, और ताल पत्र का अन्तर त्रिज्या का चतुर्थांथ (३४३८ = ८५९ १/२) अंगुल या ३६ हाथ रखा गया है।

अथ दीप द्रुमाद्यादेर्दूरतौन्नत्ययोर्मितिम्
प्रसंगात् कौतुकाद्वक्ष्ये शंकुच्छायावलोक जाम्। ७०।

शंकु की छाया देखकर दीप और पर्वत आदि की उच्चता कैसे निकाला जा सकता है, इसका वर्णन किया जा रहा है। यह बहुत रोचक है।

उच्चस्थ दीपतोऽभीष्ट काष्ठाया समभूतले
समशंकोर्निविष्टस्य च्छायाग्र दिशितत्समम्। ७१।

उच्चस्थान में स्थित दीप से किसी दिशा में समधरातल पर सम शंकु रख कर उसकी छाया नापलेंगे।

शंकुमन्यं कियद्दूरे निवेश्यान्तर मेतयोः
द्वितीय शंकु भायुक्तं प्रथम प्रभयोज्झितम्। ७२।

उसी दिशा में उतना ही ऊंचा एक और शंकु रखर उसकी छाया भी नाप कर दोनों शंकु के बीच की दूरी भी नापते हैं। उसमें दूसरे शंकु छाया जोड़कर पहली छाया घटाते हैं।

पुनस्तयाघ्नं विभजे छाययोरन्तरांगुलैः
लब्धं प्राक् शंकुभा हीनं भवेद्दीप तलस्थलात्। ७३।

फल को प्रथम शंकु छाया से गुणा कर उसको घटाने पर दीप मूल से प्रथम शंकु की दूरी होगी।

आपूर्व शंकु भूमान मथ लब्धं पुरोदितम्
शंकुघ्न प्रथमच्छाया भक्तं दीपोन्नति र्भवेत्। ७४।

भूमान निकालने से पहले जो लब्धि आयी थी उसे शंकु की ऊंचाई से गुणा कर प्रथम शंकु की छाया से भाग देने पर दीप की उच्चता होगी।

शंकु दीपान्तरं शंकु गुणितं छाययोद्धृतम्
शकुमानयुतम् दीपोन्नतिः स्यादेक शंकुतः। ७५।

शंकु और दीप के बीच की दूरी को शंकु से गुणा कर छाया से भाग देने पर तथा उसमें शंकु की उच्चता जोड़ने पर दीप की उच्चता होगी।

आक्रोश पर्वताद् यत्र श्रृंगतस्य विलोक्यते
तत्र तत्सम सूत्रस्थौ शतदण्डाधिकान्तरौ। ७६।

जहां पर एक कोस तक के क्षेत्र से पर्वत का श्रृंग (चोटी) दीखती है। वहां श्रृंग से एक सरल रेखा (सम सूत्र) में परस्पर १०० दण्ड से अधिक दूरी पर

पञ्चहस्तोच्छितौ शंकु निवेशा वक्रितौ दृतम्।
नवशंक्वग्रयोः साम्यं दृष्ट्वा दर्शे भुवस्थिते। ७७।

५ हाथ ऊंचा दृढ़ और सीधा शंकु स्थापित करेंगे। तब पृथ्वी की सतह पर उसी रेखा में (सम सूत्र) एक दर्पण इस प्रकार रखेंगे जिससे उस दर्पण में पर्वत (श्रृंग) और शंकु का अग्रभाग एक विन्दु पर दीखे।

तद् भागे यत्र निश्चित्य विद्वान्मार्गोच्छ्रयौ तथा
दवीयसी गिरौ मार्गेऽनुमिते त्येक शंकुना। ७८।

दर्पण स्थिति से दोनों शंकु का छायाग्र भाग स्थिर कर जिस प्रकार दीप की उच्चता तथा दूरी ज्ञात हुई थी उसी प्रकार पर्वत श्रृंग की उच्चता तथा दूरी भी ज्ञात

होगी। पर्वत यदि बहुत दूर पर हो तो एक शंकु द्वारा उसकी उच्चता निकाली जा सकती है।

> मातुमध्य धरोन्नत्या सह दृश्यां शमस्यहि
> तिर्यग् विस्तीर्णता तिर्यक् शंकु नैवाव गच्छतु। ७९।

पर्वत का दृश्य भाग तथा भू पृष्ठ से ढंका अदृश्य भाग नापने के लिए तिर्यक शंकु का व्यवहार होता है।

> द्रुमाता शत हस्तत्तु दशहस्ताधिकान्तरौ
> तावन्तौ वार्द्धमानौ वास्थाप्यौ तन्मितये नरौ। ८०।

१०० हाथ तक ऊंचे किसी पेड़ की ऊंचाई नापने के लिए दस हाथ से अधिक दूरी पर दो शंकु स्थापित करेंगे। उसके आधा अर्थात् ५ हाथ अन्तर पर भी यह शंकु रखा जा सकता है। इन शंकुओं की उच्चता भी १० हाथ या ५ हाथ होगी।

> प्रमायार्केन्दु का शंकुप्रमेयछाययोर्गतिम्
> तुल्यकाल भवां शंकुं मेरुभागति ताड़ितः। ८१।

उस समय सूर्य या चन्द्र के कारण शंकु की छाया तथा मेरु (वृक्ष की चोटी) की छाया की गति (लम्बाई) ज्ञात करेगी। शंकु को मेरु वृक्ष की चोटी छाया की गति से गुणा कर

> स्वभागत्याप्त उच्छ्रायोज्ञेयः शंकु भया तुसः
> क्षुण्णः शंकु हृतच्छया मानं तत्तलतौ भवेत्। ८२।

अपनी छाया गति से भाग देने पर वृक्ष की उन्नति होगी। वृक्ष की उन्नति को शंकु छाया से गुणा कर शंकु से भाग देने पर वृक्ष मूल से छायाग्र तक की भूमि का मान होगा।

> अव्यग्रस्याद् प्रखण्डस्यदृश्यार्कान्तर लिप्तिकाः
> प्रमाय तत्क्षणं तद् भास्वस्थानान्तर हस्तकान्। ८३।

मेघ प्रायः स्थिर रहने पर उसमें और सूर्य के बीच की कोणीय दूरी को कला में नापेंगे। उस समय अपने स्थान से पृथ्वी पर मेघ छाया की दूरी भी हाथों में नापेंगे।

> त्रिज्या हतान् भजेत्ताभिश्छायातोऽभ्रश्रुतिः फलम्
> सा तत्काल नृभाध्न्याप्ततत् श्रुत्या दिनकृद्दिशि। ८४।

अपने स्थान से मेघ छाया की दूरी को त्रिज्या (३४३८) से गुणा कर सूर्य और मेघ के बीच कलात्मक दूरी से भाग देंगे। फल मेघ छाया से मेघ तक कर्ण (दूरी) का मान होगा। उस कर्ण को उसी काल के शंकुछाया से गुणा कर छाया कर्ण से भाग देने पर सूर्य की दिशा में (मेघ कर्ण से मेघ तल तक की दूरी होगी।)

आमेघ तल भूमानं स्यात्तन्नृघ्नं प्रभाहृतम्
घनौन्नत्यमिति ज्ञेय मन्यन्त्रैराशिक क्रमात् । ८५ ।

मेघ कर्ण से मेघ तल तक भूमि पर दूरी होगी । इस दूरी को शंकु से गुणा कर शंकुछाया से भाग देने पर भूमि से मेघ की ऊंचाई होगी । इसी प्रकार त्रैराशिक गणित द्वारा अन्य (प्रसाद आदि की) भी ऊंचाई निकाली जा सकती है ।

अष्टादश प्रकाशोक्त दृष्टि सीमादि विस्तरात्
विशेषः कथ्यते कश्चिद् गोलता ज्ञापकः क्षिते । ८६ ।

अठारहवें अध्याय में दृष्टि सीमा की दूरी का वर्णन किया गया था । यहां कुछ और कहा जा रहा है, जिससे पृथ्वी का गोलाकार और स्पष्ट हो जायेगा ।

शंकु दर्शन सीमाया परितो मण्डलाकृतिः
भूपृष्ठे साधिता सैव निजक्षितिज मण्डलम् । ८७ ।

भू पृष्ठ के चारों ओर वृत्ताकार में जो शंकु के दर्शन सीमा से निकाली गयी है । उसी को शंकु का दृश्य क्षितिज मण्डल कहा जाता है ।

तिष्ठताभूविदूरत्वाद् यः पुंसा नैव दृश्यते
उच्चस्थानाधिरूढ़ेन स पुनर्दृश्यते नगः । ८८ ।

जो पर्वत बहुत दूरी के कारण पृथ्वी की सतह से नहीं दीखता है वही पर्वत ऊंचे स्थान पर चढ़ने से दिखाई देता है ।

अन्योन्य विप्रकृष्टाग द्वय क्षितिज वृत्तयोः
यावत् स्यान्मेलनं तावद् दृश्यते भुवि तद् द्वयम् । ८९ ।

दूर पर स्थित दो पर्वतों की दृष्टि सीमा के व्यासार्द्ध से दो क्षितिज वृत्त बनाया जायेगा । दोनों वृत्तों के मिलन स्थल में स्थित व्यक्ति को दोनों पर्वत दीखेगा ।

यत् शंकोः क्षितिजस्थेन यावान्यंशोऽन्यशंकुतः
पुरतो दृश्यते तावान् स्तदग्रे तिष्ठता यतः । ९० ।

एक पर्वत (शंकु) के क्षितिज (वृत्त के सीमा विन्दु पर) रहने से दूसरे शंकु का कुछ अंश (चोटी से कुछ नीचे तक) दीखेगा ।

क्षितिजेदृश्य लिप्ताद्याः क्षितिजान्य नरान्तरा
गुणिताः शंकु युग्मान्त मार्गाप्ताः स्युर्नरे स्फुटाः । ९१ ।

क्षितिज से स्थित व्यक्ति को दूसरे शंकु का जितना भाग (कला में) दीखता है उसे दोनों शंकु के अन्तर (ऊंचाई के अन्तर) से गुणा कर उनके बीच की दूरी से भाग देने पर शंकु अग्र की स्फुट दृश्यलिप्ता आदि होगी ।

ययोरति दवीयस्त्वान्न लगेत् क्षितिजद्वयम्
तयोरेकाग्र निष्ठेन नान्यः सन्दृश्यते क्वचित् । ९२ ।

यदि दो पर्वतों का दृष्टि क्षितिज नहीं मिलता है, तो एक क्षितिज की सीमा से भी दूसरा पर्वत नहीं दिखायी देगा।

महाद्रिक्षितिजस्यान्तः क्षुद्रादि क्षितिजं यदि।
लीयते तन्महागस्थः क्षुद्रं कौलीन मीक्षते। ९३।

बड़े पर्वत के क्षितिज के भीतर ही यदि छोटे पर्वत का क्षितिज वृत्त हो तो बड़े वृत्त की सीमा से देखने पर सिर्फ बड़ा पर्वत दिखाई देगा। छोटा पर्वत बीच में रहने पर भी नहीं दीखेगा। वह पृथ्वी में लीन हुआ दीखेगा।

उभयक्षितिजस्पर्शाद् यदि स्यान्मत्स्य रेखिका।
तदाप्ययतनुं पश्योद् व्यामगं क्षितिजो परि। ९४।

बड़े और छोटे पर्वत की क्षितिज वृत्त रेखा स्पर्श करती हो तो स्पर्श रेखा पर रहकर देखने से बड़ा पर्वत आकाश में ऊंचा दीखता है।

भू पृष्ठं यदि तुल्यं स्याद्दर्पणे च दरत्तदा
उच्चेऽनुच्चोऽपि दूरस्थो दृश्य क्षित्यन्तरेव सः। ९५।

भूमि पृष्ट यदि दर्पण के समान समतल होता तो थोड़ी ऊंचाई पर स्थित होकर भी कोई दूर के छोटे छोटे पर्वत पृथ्वी की सतह से लगा हुआ देखता।

यद् गोलता स्फुटा साक्षाद् गिरेः क्षितिज मण्डले।
यथा तथैव शिखरे ज्योतिश्चक्रस्य दर्शनात्। ९६।

पर्वत के क्षितिजवृत्त पर पृथ्वी का गोलाकार स्पष्ट दीखता है। पर्वत शिखर पर रहकर ऊपर की तरफ देखने से ज्योति चक्र (राशि वृत्तं) की गोलाई स्पष्ट दीखती है।

प्राक् पश्चाद् दृष्टि सीमोत्थ देशान्तर पलै रविः
उदेति पुरतः पश्चादस्तमेति नगोपरि। ९७।

पर्वत के ऊपर स्थित व्यक्ति पर्वत के नीचे भाग पर स्थित व्यक्ति से देशान्तर लिप्तादि पहले सूर्योदय देखता है। तथा बाद में सूर्यास्त देखता है।

तिष्ठतः समभूस्थल्यां संघ्रि हस्तत्रयोन्नतेः
पश्यतो नव साहस्र हस्तैः क्षितिज निश्चयात्। ९८।

साढ़े तीन हाथ ऊंचा व्यक्ति समतल पर जो क्षितिज देखता उसकी दूरी अपने स्थान से ९००० हाथ है।

तद्देशान्तर कालस्तु पलोनत्वात् न गण्यते
नव्य वह्निय तेचाद्रौ दृक् सिद्धेऽपि क्षणाधिकः। ९९।

पर्वत के ऊपर और नीचे के क्षितिज में समय का अन्तर यदि एक पल से कम हो तो उसकी गणना नहीं होती है। यह दृक् सिद्ध होने पर भी ग्रहण में

इसका उपयोग नहीं है ।

हस्तै रभ्ररसांग सिद्ध जलधि व्योमाष्टभिः (८,०४,२८,९६०) संम्मितो
यन्मध्ये परिधिर्वभाविह महीपृष्ठे स्थितानांक्रमात् ।
शंकूनां किलतत्तदर्द्ध व पुषां क्रोशाघ्रि संख्या ब्रुवे
दृक् सीम्नां प्रथमोऽत्र षण्णवनभः पाथोधि हस्तोन्नचः । १०० ।

भूगोल के परिधि (८०४२४९६०) हाथ है । इस पर ११ शंकुओं की दृष्टि सीमा का मान क्रोश के चतुर्थांश (१/४ कोस) में कहता हूँ । प्रथमशंकु का मान ४०९६ हाथ ऊंचा है । २ से ११ वें शंकु पहले से आधे हैं ।

दृग् भूपाः (१६२) शर शंकराः (११५) कुवसवः (८१)
सप्तेषवः (५७) खाब्धयो (४०) गोनेत्राणि (२९) नखा (२०)
श्चतुर्दश (१४) दिशो (१०) गोत्राःशराः (५) प्रायशः इच्छानृघ्न
परा (४०९६) प्तदृङ् नृपकृतेः (२६२४४) सीमापदं गोः
स्वनूः सीमावर्गहतः पराकृति (२६२४४) हृतो
नाद्यः (४०९६) स्वनांसीमतः । १०१ ।

शंकुओं की उच्चता और उनकी दृक् सीमा १/४ कोस में इस प्रकार -

शंकु संख्या	शंकुउच्चता (हाथ में)	दृक् सीमा (१/४ कोस में)
१	४०९६	१६२
२	२०४८	११५
३	१०२४	८१
४	५१२	५७
५	२५६	४०
६	१२८	२९
७	६४	२०
८	३२	१४
९	१६	१०
१०	८	७
११	४	५

इच्छा शंकु की दृक् सीमा निकालने के लिए शंकु की उच्चता में (४०९६) हाथ से भाग देकर ४०९६ हाथ शंकु की दृक् सीमा (१६२ कोस पाद) के वर्ग (२६,२४४) से गुणा करने उसका वर्गमूल लेते हैं ।

लक्षघ्नाष्ट दिनेश (१२८,००,०००) हस्तमवनि
व्यासार्द्धमेतत् कृतिं (१६,३८,४०,००,००,००,०००)
सैकव्यासद लस्य (१२८,००,००१) वर्गत (१६,३८,४०,०२५,५६,००, ००१)
ऋषी कृत्यावशेषात् (२५६,००,००१) पदम् (५०५९/३९) ।

दृक् सीमैक करस्यनुर्भवति तत् वर्गो (२५६००००१) द्भुतादिष्टनू
हस्तैर्मूलमभीष्टनू दृगवधिश्चाहस्त लक्षाष्टकात्। १०२।

पृथ्वी का व्यासर्द्ध (१,२८,००,०००) हाथ है। इसके वर्ग को पृथ्वी के व्यासार्द्ध वर्ग में १ जोड़कर उससे घटाने पर अन्तर फल को वर्गमूल निकालेंगे। यह एक हाथ के शंकु की दृक् सीमा (५०५९/३९) हाथ होगी।

इष्ट शंकु की दृक् सीमा निकालने के लिए एक हस्त शंकु की दृक् सीमा के वर्ग को इष्ट शंकु की ऊंचाई से गुणा कर फल का वर्गमूल लेना होगा। इस विधि से ८ लाख तक की दृक् सीमा आयेगी।

दिनाब्द होरा मासे शज्ञानायान्यग्रहस्थितिः
दृष्टा तत्राल्प गतिकः स्थाप्य ऊर्ध्वे प्यधः पुनः। १०३।

दिन, वर्ष, होरा और मासों के अधिपति जानने के लिए अन्य प्रकार की (प्राचीन) ग्रह स्थिति मानी जायेगी। सबसे कम गति वाले ग्रह को सबसे ऊपर रखकर उससे नीचे

बहु भुक्ति कलः खेट इत्थमेष क्रमोभवेत्
सूर्य सिद्धान्ते-मन्दामरेज्यभूपुत्र सूर्यशुक्रेन्दुजेन्दवः। इति। १०४।

क्रमशः अधिक गति वाले ग्रहों को रखेंगे। सूर्य सिद्धान्त के अनुसार इनका क्रम इस प्रकार है-शनि, गुरु, मंगल, सूर्य, शुक्र, बुध और चन्द्र।

लेरूयाथधोऽध स्तत्राधो मन्दात्र्यां दिनाधिपाः
गुरो रधस्तृतीयाश्च सावनाब्दाधिपाः क्रमात्। १०५।

इसमें शनि से ४ थे बार का अधिपति दिन का अधिपति होगा। इस ग्रह स्थिति में गुरु से तीसरा ग्रह सावन वर्ष का अधिपति होगा।

काल होराधिपा भौमाद् द्वितीयाः परिकीर्त्तिताः
लंकार्द्ध रात्रतस्तेऽहो रात्रेस्यु सिद्ध (२४) संरूयकाः। १०६।

काल होरा ६० दण्ड में २४ हैं और इनका आरम्भ लंका की अर्द्धरात्रि से आरम्भ होता है।

उद्ध्र्व क्रमाद् द्वितीयाः स्युः शुक्रात् सावन मासपाः
सृष्ट्यादौ दिन मासाब्द होरेशो स्माद्रविर्मतः। १०७।

शुक्र से आरम्भ कर क्रमशः ऊपर की तरफ श्य इय ग्रह सावन मास का अधिपति होगा। सृष्टि के आरम्भ में रवि ही दिन, मास, वर्ष और होरा का अधिपति था।

वर्ष मास दिनेशानां भवेदारम्भ कालतः
मासाहः काल होरेश प्रवृत्ति र्युगपत् क्षितौ। १०८।

सौरादिवर्ष का अधिपति, मास का अधिपति (सौर) और चान्द्रदिन का अधिपति वर्षारम्भ काल से होगा।

प्रोक्तं चान्द्रार्क्षतः सूर्य तेजः शत गुणाधिकम्
दिग् (१०) गुणव्यासतः क्षेत्र फलं शत गुणं भवेत्। १०९।

शास्त्रों ने कहा है कि सूर्य का तेज चन्द्र और नक्षत्रों के तेज से १०० गुणा अधिक है। व्यास १० गुणा होने पर वृत्त का क्षेत्रफल १०० गुणा होता है।

स्यात्तेजः प्रसरः क्षेत्रफलानुक्रमतो यतः
तद् व्यास दशमांश स्य दृश्य स्याशा गुंणे पथि। ११०

तेज का प्रसार क्षेत्रफल के अनुसार होता है। अतः किसी व्यास के दशमांश द्वारा जितना प्रकाश किसी दूरी पर होगा, पूर्ण व्यास का उतना ही तेज १० गुणा दूरी पर होगा।

शतांशस्तेजसोलभ्य इतितन्निणाये स्थिते
द्विसहस्र गुणेदूरे स्वव्यासात्तिग्म दृश्यते। १११।

१० गुणा दूरी पर तेज १/१० भाग हो जाता है। अतः सूर्यव्यास से (२,०००) गुणा दूरी पर सूर्य किरण

उष्ण स्पर्श समाप्तिः स्यात् किरणानानभस्तले
अन्य ग्रहाणा मृक्षाणां शतद्वय गुणे पथि। ११२।

की गर्मी प्रायः समाप्त हो जाती है। अत, अन्य ग्रहनक्षत्रों का तेज भी अपने व्यास से २०० गुणा दूरी पर समाप्त हो जाता है। (क्योंकि उनका तेज सूर्य तेज का १/१०० है)

शीतोष्ण स्पर्श नाशः स्यात्तथा भौमस्य तेजस
स्पर्शान्ति स्थानतः खां शुव्याप्ति, पञ्चाशता गुणैः। ११३।

इसी प्रकार पृथ्वी के तेज की गर्मी भी व्यास से २०० गुणा दूरी पर समाप्त हो जाती है। किरण की उज्वलता अपने व्यास से ५०० गुणा दूरी तक होती है।

अधिकाकिरण व्याप्ते मार्गे तत्व (२५) गुणाधिके
दृष्टि सीमेत्यनुमितं दीपार्केन्द्वनुभूतितः। ११४।

किरण व्याप्ति की सीमा और २५ गुणा दूरी तक होती है। दृष्टि सीमा का अनुमान मैने दीप, रवि और चन्द्र के अनुभव से किया है।

व्यासो हि सूर्य बिम्बस्य ख ख खाक्ष्याद्रि योजनः (७२,०००)
स्पर्श कर्ण तदुस्राणां प्रयुतघ्नाब्धि वासवाः (१४,४०,००,०००)। ११५।

सूर्य बिम्ब का व्यास (७२,०००) योजन है। अतः उसकी गर्मी सीमा कर्ण (दूरी) १४,४०,००,०००) योजन है।

किरण व्याप्ति कर्णोऽस्य कोटिघ्नख भूधराः (७,२०,००,००००)
ख खा प्रधृतयः कोटि गुणिता (१,८०,००,००,००,०००) दर्शन श्रुतिः । ११६ ।

सूर्य की किरण का तेज (७,२०,००,०००) योजन तक तथा किरण की दीखने की सीमा (१,८०,००,००,००,०००) योजन है ।

कालाध्वनोनृमानं यत्तदभ्रांगाग्नि (३६०) ताड़ितम्
दिव्यमानं भवेत्तेन व्यासोऽस्य शतकोटिभिः । ११७ ।

मनुष्य के काल और मार्ग मान को ३६० से गुणा करने पर दिव्य काल और दूरी का मान होता है । दिव्य मान से सौ कोटि योजन

योजनैः सम्मितोऽण्डस्य नृमाने नासुकः पुनः
ख ख खा भ्रा भ्र खा भ्रषड् वह्नि भि (३,६०,००,००,००,०००) योर्जनंमतः । ११८ ।

ब्रह्माण्ड का व्यास है । अतः मनुष्य मान से ब्रह्माण्ड का व्यास ३,६०,००,००,००,००० योजन है ।

ब्रह्माण्डान्त ख कक्षार्क भगण किरण ध्वस्त विश्वक्त मिस्रा
लक्षाघ्ना भ्राङ्ग भूभृन्नवखगुणशिवै (११,३०,९७,६०,००,०००)
योंजनैः सम्मितास्मात्
सेक्षाकक्षैव भानो रवि तनु विकला द्वादशांशोऽपि दृश्यो
ऽन्येषां लिप्ता द्विसप्तां (७२) शक इतर मतव्यञ्जकं वच्मिकिञ्चित् । ११९ ।

जहां पर सूर्य और तारों द्वारा प्रकाश का नाश नहीं हो पाता है । ब्रह्माण्ड में उस आकाश की कक्षा परिणाम ११,३०,९७,६० ,००,००० योजन है । इसको सूर्य की दर्शन कक्षा भी कहा जा सकता है । इतनी दूरी पर सूर्य बिम्ब १/१२ विलिप्ता अर्थात् ५ प्रति विकला होता है । अन्य ग्रहों का बिम्ब लिप्ता का १/७२ अंश दीखता है । यहां मैं इससे भिन्न मत भी कुछ कहूंगा ।

श्रीमान् भास्कर दुष्करांक घटना विष्कार वाचस्पते
त्वं चेत् पुष्कर मात्थ भास्कर, कराव स्कन्दितान्तस्तमः
कल्पाद् भूत न भोग भुक्त सरणी तुल्यात्म कक्षं तदा
किं ब्रूमो गुरु वर्ग दुर्घटनया निर्विघ्नचित्ता वयम् । १२० ।

श्री भास्कराचार्य ! आपने कहा है कि सूर्य किरण द्वारा अन्धकार दूर होने के बाद जहां से काला आरम्भ होता है, वही आकाश कक्षा है । इतना ही योजन आप के आविष्कार के अनुसार ग्रह एक कल्प में चलते हैं । आपके समान विज्ञ व्यक्ति यदि ऐसा कहता है, तो हम लोग विषाद् ग्रस्त होकर और क्या कहेंगे ।

स्वकक्षायां खेट भ्रमण गण भुक्ता प्रसरणी
यदि स्याद् ब्रह्माण्डोदर परिमिता का हनितदा

शताब्दा निष्ठायां पुरि परिवृतायां प्रतिदिनं
कयाचिद् व्यक्त्यास्यात् कुपरिधि समस्तद् गति पथः । १२१ ।

अपनी कक्षा में घूम घूम कर ब्रह्माण्ड के भीतर यदि ग्रह आकाश कक्षा के बराबर योजन चलता है, तो लोग अपने ही घर में प्रतिदिन घूम घूम कर पृथ्वी की परिधि के बराबर मार्ग क्यों नहीं चलते ?

कोटिघ्नैर्नखनन्द षट्क नख भू
भू भृद् भुजंगेन्दुभि (१८,७१,२०,६९,२०,००,००,००,०००)
स्त्वत् प्रोक्तस्य च योजनैः ख परिधिस्तत्रापि लक्षांशके
नस्याद्वि द्विशरर्त्तु (६५२२) योजन रवि व्यासस्य यद्दर्शनं
द्योता व्याप्तिः तमः क्षितिः क्व घटते खान्तेऽपिते तन्मते । १२२ ।

आप आकाश की परिधि का मान (१८,७१,२०,६९,२०,००,००,००,०००) योजन कहते हैं, इसके एक लाख भाग में भी एक भाग करने पर सूर्य व्यास ६५२२ योजन नहीं होता है । (उससे बहुत अधिक है) तब आकाश गोल का अन्धकार गोल परिधि तक सूर्य कैसे नाश करता है ?

सर्वाश्चर्य गहाम्बुधेर्भगवतः स्थूलेविभौधामनि
क्रीड़ाण्डाणुगणाः स्फुरन्ति कतिधा नो वेत्तिवेधा अपि
तस्माद् वेद पुराण वर्णित जगन्मानादिकं नो मृषा
किन्त्वस्मद् वसते र्भुवोऽन्तिक जुषामेषा स्थिति ज्योंतिषाम् । १२३ ।

भगवान् सबसे बड़े आश्चर्य और आश्चर्य के महासमुद्र हैं । उनके विराट् स्थूल रूप के भीतर कितने प्रकार के विश्व हैं । यह ब्रह्मा भी नहीं जान सकते हैं । अतः वेद और पुराणों में जगत का जो परिणाम दिया गया है, वह सब मिथ्या नहीं होगा। किन्तु सिर्फ हमारी पृथ्वी के आसपास जो ग्रह दीखते हैं, उन्हीं की स्थिति के विषय में मैं अनेक बातें कहूंगा ।

शंखासुर सुहृतिनन्दित देववृन्दः
शंखारि सुन्दर तराग्र करारविन्दः
शंखाकृति क्षितिपतिः प्रतनोतु नित्यं
शंखादि भूतमयकाय निकाय भाजाम् । १२४ ।

जिनके द्वारा शंखासुर का वध होने पर देवगण प्रसन्न हुए थे, जिनका कर रूपी कमल शंख चिह्न द्वारा और सुन्दर दीखता है, तथा जो शंख क्षेत्र के अधिपति है । वह (महाप्रभुजगन्नाथ) आकाश आदि पांच भूतों के बने शरीर धारियों का मंगल करे ।

इत्युत्कलो ज्वल नृपाल कुल प्रसूतः
श्री चन्द्र शेखर कृतौ गणितेऽक्षि सिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे ।
यातः प्रकाश इह भा भ्रगृदूनविंशः । १२५ ।

इस प्रकार उड़ीसा के उज्ज्वल राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्र शेखर द्वारा गणना और दृष्टि में समानता के लिए तथा बलकों की शिक्षा के लिए लिखे सिद्धान्त दर्पण में नक्षत्र और आकाश के विषय में २९ वां प्रकाश समाप्त हुआ ।
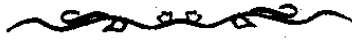
विंशः प्रकाशः

गोलाधिकारे गोलादि यन्त्र वर्णनम्

यन्त्रं विनाग्रह ग्रहणादिकानां
स्याद् वासना न सुगमा समय क्रमश्च
तद् यन्त्र निर्मित मुपक्रमतेऽभिधातुं
श्रीचन्द्रशेखर कृतोप्रतिभानुसारात् । १ ।

बिना यन्त्रों के ग्रहों की गति तथा ग्रहण आदि आसानी से नहीं जाने जा सकते हैं। कालगति भी बिना यन्त्र के नहीं जानी जा सकती। अतः श्रीचन्द्रशेखर अपनी प्रतिभा के अनुसार यन्त्र निर्माण का वर्णन आरम्भ करते हैं।

यन्त्रं द्विधा भवति गोलक काल भेदात्
सन्त्येतयोः पुनरवान्तर भूरि भेदाः
तेभ्यः कियन्ति सुकराणि समाकलस्य
प्राधान्यतः शिशुमुदे विशदी करोमि । २ ।

गोल और काल भेद से यन्त्र कई प्रकार के हैं, उनके भीतर भी कई उपभेद। उनमें जो आसानी से बनाये जा सकते। उनमें कुछ के विषय में मैं यन्त्र के विषय में नहीं जानने वालों के लिये वर्णन कर रहा हूँ।

गोलाख्यमेककक्षं बहुकक्ष मितिद्विधेच्यते यन्त्रम्
तत्राद्यमुक्तमादिभिरपरं मत्कल्पनासिद्धम् । ३ ।

यहां दो प्रकार के गोल यन्त्रों के बारे में कहा जायेगा। एक एक कक्ष वाला तथा दूसरा बहु कक्ष वाला। पहले के बारे में प्राचीन आचार्यों में कहा है। दूसरे के बारे में स्वयं अपनी बुद्धि से कह रहा हूँ।

गुप्तस्थले सुविमले सुस्नातोऽलंकृती गणकः
सम्पूज्य भास्कर मुखान् ग्रहान् भचक्रं चतुर्व्यूहम् । ४ ।

गुप्त और स्वच्छ स्थान में स्नान कर और अलंकृत होकर गणक जाये और वहां विभिन्न देवताओं की पूजा करे-सूर्यादि ग्रह, नक्षत्र मण्डल, चारों तरफ के

इन्द्रादि लोक पालान् गुह्यकवर्गं गुरुन विघ्नाय
बोधार्थं शिष्याणां गोलक यन्त्र निविधीयात् । ५ ।

इन्द्र आदि लोक पाल, (गुह्यक) तथा अपने गुरु-जिससे विघ्न दूर हों। इसके बाद शिष्यों के यन्त्र ज्ञान के लिये गोलयन्त्र बान्धना आरम्भ करें।

निर्म्माय क्षितिगोलं षडं गुलामितस्ववेष्टनं समिधा
द्वीपाद्रि सागराद्यैरंकितमन्तर्गत स्वाग्रम् । ६ ।

काठ का एक पृथ्वी गोल बनायें जिसकी परिधि ६ अंगुल हो। उसमें द्वीप,

सागर और पर्वत अंकित करें ।

तन्मध्ये ध्रुव यष्टिर्वृत्ता विष्टायतोत्तरावाच्योः
सरला करषट्क मिता कृशा दृढ़ा मेरु दण्डाख्या । ७ ।

उसके बीच में ध्रुव स्थान में पतला छेद कर ध्रुव यष्टि लगायेंगे । यह यष्टि (डण्डा) गोलाकार, लम्बा और सीधा ६ हाथ लम्बा होगा । यह मजबूत लकड़ी का बनता है । इसे मेरुदण्ड कहा जाता है ।

कार्यातद्धरणार्थ सपाद कर पञ्चकान्तरं सौम्ये
याम्ये च स्तूप युगं पञ्चकरोच्चं दृढं स्थाप्यम् । ८ ।

इस मेरु दण्ड को पकड़ने के लिए सवा पांच (५-१/४।) हाथ की दूरी पर दक्षिण और उत्तर में दो ५-५ हाथ का खूंटा दृढ़ता से स्थिर करेंगे ।

दारुण्यथवा भूमौ हस्तत्रितयोन्नत स्थले रन्ध्रे
निर्माय स्तम्भ युगे ध्रुव यष्ट्य ग्र प्रवेशाय । ९ ।

यह दोनों खूटे जमीन में या लकड़ी चौखट पर स्थिर किया जायेगा (लकड़ी या जमीन से ऊंचाई ५ हाथ होगी) दोनों में तीन हाथ की ऊंचाई पर ध्रुव यष्टि घुसाने के लिए एक एक छेद करेंगे ।

भूयो भूगोल दलादक्षांश समोन्नता नत स्थलयोः
भू सम्मुखीन रन्ध्रे सौम्यान्यस्तम्भयोः कार्ये । १० ।

३ हाथ की समान ऊंचाई वाले स्थल से उत्तर खण्ड में उत्तर की तरफ तथा दक्षिण खण्ड में नीचे की तरफ एक एक छेद करेंगे । जिसमें ध्रुव यष्टि रह सके ।

आदौत्वक् सारज्या पट्टकयाधार कक्षिका युग्मम्
बद्ध्वाभांशां (३६०) गुल मित मेकं क्षिति जाभिधं वृत्तम् । ११ ।

बांस की पतली पट्टी का ३६० अंगुल लम्बा दो वृत्त तैयार करेंगे । इसमें एक का नाम क्षितिज वृत्त है ।

धृत्वा तत्र कराभ्य मूर्ध्वाधर सौम्य याम्यकक्षाख्यम्
वृत्तं नियोज्य मन्त्राद् योगस्थान द्वये शुषिरे । १२ ।

दूसरा वृत्त ऊर्ध्वाधर वृत्त कहलाता है । इसका क्षितिज वृत्त से उत्तर दक्षिण दिशा में जोड़कर मिलन स्थान में दो छेद

कृत्वात्रध्रुवयष्टि प्रवेशितास्तम्भरन्ध्रयोः स्थाप्या
श्लथमथविषुवत्कक्षा गोले बद्ध्वाधरोर्ध्व गता । १३ ।

कर उसमें ध्रुव यष्टि प्रवेश करेंगे और स्तम्भ के छेदों में उसे स्थापित करेंगे । यह दोनों वृत्त ऊपर रहेंगे जिससे उनको घुमाया जा सके । दोनों के ठीक बीच में पृथ्वी का गोल रहेगा ।

भूमेर्निरक्ष रेखो परिर्ख रसोषर्बुधां (३६०) गुल प्रमिता
नाड़ी मण्डल मेषा नाड़ी फल चिह्निता कार्या । १४ ।

एक और ३६० अंगुल लम्बे बांस की पट्टी का वृत्त बनायेंगे और उसको पृथ्वी की विषुवत रेखा के ठीक ऊपर अर्थात् क्षितिज और उर्द्धाधर वृत्त के बीच में रखेंगे । इसे नाड़ी मण्डल कहते हैं । इसमें नाड़ी पल भी चिह्नित करेंगें ।

तत्पार्श्वयो र्भुजैक द्वित्रि भुजापक्रम स्थलेषु पुनः
षड् वलयाः क्रमतोऽल्पाद्युरात्र वृत्ताख्यया स्थाप्याः । १५ ।

विषुव वृत्त के दक्षिण उत्तर दोनों तरफ, १,२, और ३ राशि की क्रान्ति के बराबर अंगुल की दूरी पर ३-३, कुल ६ अहोरात्र वृत्त (क्रमशः छोटे आकार का) उस गोल में स्थापित करेंगे ।

ध्रुव यष्टि शिखा विद्ध स्वनाभि फलकद्वयं न्यसेदभितः
तन्नेमौ च शलाकाः खरस गुणा (३६०) सन्निवेश्यासाम् । १६ ।

ध्रुव यष्टि के दोनों तरफ दो वृत्ताकार पट्टा लगायेंगे । जिसके केन्द्र के छेद में यष्टि को लगाया जायेगा । उसमें ३६० अंशों का चिह्नित कर प्रत्येक अंश पर एक शलाका परिधि पर लगायेंगे ।

वलयार्द्धाकाराणामग्रपि वज्रलेपसदृढानि
कृत्वान्तरजतुलाधोर्न्यसेद् ध्रुवौ सौम्य याम्यौ च । १७ ।

शलाकाओं को वज्र लेप से दृढ़ कर देंगे जिससे वह गिरे नहीं । इस फलक के मेष आरम्भ में (0° पर) उत्तर ध्रुव तथा तुला आरम्भ (180°) में दक्षिण ध्रुव चिह्न देंगे ।

ध्रुव चिह्नात् फलकान्त वलयै रेकांगु लान्तरै रंशाः
लेखास्तिर्यग् भांशा अथ गोले वेणुजैर्वलयैः । १८ ।

ध्रुव चिह्न से फलक के अन्त में बांस के जो वलय हैं, उसमें एक एक अंगुल पर अंश चिह्नित करेंगे (३६० अंगुल पर ३६० अंश) यह चिह्न फलक के चिन्हों से तिरछे (दूसरे तल के वृत्त में) होंगे ।

आविषुवद् वलयान्तात् क्रमाधिकै र्गाढ़ सूत्र संनद्धैः ।
अक्षांशा रचनीया इत्यभितो भांश (360°) संस्थाने । १९ ।

काठ के पृथ्वी पर बांस पर गोले में ध्रुव से विषुव की तरफ बांस के पतले पतले वृत्त चिपकायेंगे । ध्रुव से ये वृत्त क्रमशः मोटे होते जायेंगे । तथा विषुव पर सबसे मोटा होगा ।

निश्चित्य राशि सन्धोन प्रवृत्तं तत्तदकं संलग्नम्
अयनांशं संस्कृत तुला मेषाद्योः संस्पृशद् विषुवम् । २० ।

बांस के गोले में राशि सन्धि को ठीक स्थान पर चिह्नित करेंगे। इसके बाद आयन संस्कृत मेष आदि को विषुवद् वृत् से सटाकर रखेंगे।

तत्कर्कि नक्र मुखयोः सदलाग्नि भुजां (२३।३०) श दूरगं विषुवात्
कलनीयां कुशलधिया रविगतिमार्गः यदेवाहुः। २१।

क्रान्ति और विषुव वृत्त का परमान्तर कर्क और मकर रेखा के स्थान पर २३° ३०' होगा। इस क्रान्ति वृत्त को ही रवि गति मार्ग कहा जाता है।

ऊर्ध्वाधः प्राक् पश्चिम याम्योत्तर विन्दु षट्क मवैव
प्रत्येकं स्वस्तिकं मिति गदितं स्वस्वस्तिकं चोर्द्ध्वम्। २२।

इस वृत्त के ऊपर, नीचे, पूर्व पश्चिम, तथा दक्षिण उत्तर (याम्योत्तर) इस प्रकार ६ विन्दु देंगे। प्रत्येक बिन्दु को ख स्वस्तिक कहा जाता है। उर्ध्व के स्वस्तिक को ऊर्ध्व खस्वस्तिक कहते हैं।

चन्द्रादीनां पातानपमण्डलगान् विधाय तद् भार्द्धे
पात स्थाने च लगत् क्रान्तिजवृत्ते त्रिभान्ते तु। २३।

चन्द्र आदि ग्रहों के पात राशि आदि को क्रान्ति वृत्त में चिह्नित करेंगे। उसमें चन्द्र विमण्डल को एक स्थान लगा कर पुनः ६ राशि दूरी पर विमण्डल और क्रान्ति वृत्त का मिलन (सम्पात) करायेंगे। सम्पात विन्दुओं से तीन राशि की दूरी पर

पातात् पश्चात् पुरतो याम्योत्तरग विमण्डला क्रान्तेः
परमशरान्ते देय तेषा मध्येऽनुपातेन। २४।

पात के आगे पीछे दोनों (विमण्डल और क्रान्ति वृत्त) का अन्तर चन्द्र के परम शर के बराबर उत्तर और दक्षिण दिशा में होगा।

किन्तु कुजादेः पाताश्च फल भागैः सुसंस्कृता स्थाप्याः
श्रुति संस्कृति विशिखान्ते तद् गति मार्गो विवृत्ताख्यः। २५।

मंगल आदि ग्रहों का विमण्डल भी इसी विधि से बांधा जायेगा। किन्तु इनके पातों में इनके शीघ्र फल से संस्कार करना पड़ेगा। कर्ण के अनुपात से उनका परमशर निकाल कर उतने ही अन्तर पर उन ग्रहों का विमण्डल क्रान्ति वृत्त से उत्तर तथा दक्षिण रहेगा।

क्षितिज वलयं निरक्षेऽप्युन्मण्डल नामकं परिज्ञेयम्
तच्चर हेतु स्तस्मात् स्वक्षिति जात् खार्द्धगान्त्यज्या। २६।

निरक्ष देश का क्षितिज वृत्त अन्य स्थानों पर (विषुव से उत्तर या दक्षिण) उन्मण्डल कहलाता है। इस वृत्त के कारण ही चर की उत्पत्ति होती है (वृत्त क्षितिज से झुका होने के कारण नक्षत्र और राशियों का उदय विषुव से पहले या

बाद में होता है । समय का यह अन्तर चर कहा जाता है) अहोरात्र वृत्त और याम्योत्तर वृत्त के सम्पात को खार्द्ध कहते हैं । खार्द्ध से क्षितिज धरातल के उदयास्त सूत्र पर लम्ब को हृति कहते हैं । त्रिज्या वृत्त में हृति को अन्त्यज्या कहते हैं ।

आधार विषुव कक्षा व्यपदत्त क्षिति जनाम वृत्तानाम्
साम्येऽपि किञ्चिद धिकं क्षितिजं कार्यं चलत्वाय । २७ ।

दोनों आधार वृत्त, विषुव और क्रान्ति वृत्त और क्षितिज वृत्त इन सभी की परिधि का परिणाम समान होने भी पर क्षितिज वृत्त थोड़ा बड़ा रखा जाता है । नहीं तो उसे घुमाया नहीं जा सकता ।

भू सहित ध्रुवयष्टेर्निश्चल भावो भगोल चलता च
भवति यथैवं नाभ्योस्तैलं योज्यं सुख भ्रान्त्यै । २८ ।

पृथ्वी के साथ ध्रुव यष्टि को निश्चिल रखा जायेगा । भगोल इस प्रकार किया जायेगा, कि उसे घुमाया जा सकें । वृत्तों के जोड़ो पर थोड़ा तेल देने से उन्हें सरलता से घुमाया जा सकता है ।

इत्थम् गोलरचनां कृत्वा तत्र ग्रहर्क्ष विन्यासः
गृहलव कलिका क्रान्तिक्षेपा नुसृतेः स्फुटः कार्यः । २९ ।

इस प्रकार भगोल रचना करने पर उसमें ग्रह और तारा का विन्यास किया जायेगा । (रवि की) क्रान्ति और (अन्य ग्रहों का) शर निकाल कर ग्रहों का स्फुट राशि अंश कला आदि निकालेंगे ।

निजनिजमार्गा नुगतैः सूत्रैः ग्रथिता ग्रहाः स्वचार वशात्
नेया ग्रहणाद्युह्यं प्रवह गति गौल चालनतः । ३० ।

इन ग्रहों को अपने अपने विमण्डल में अपनी राशि पर स्थापित कर देंगे । इसमें ग्रहण आदि भी दिखाया जा सकता है । गोल को चलाकर प्रवह वायु की गति की कल्पना करेंगे ।

लंकास्थित्यनुसारात् प्रथमं संस्थाप्य गोल मेव मथो
ध्रुव युग समोच्च नलिके निर्मायायः शलाकया विद्धे । ३१ ।

यह भगोल रचना लंका स्थिति के अनुसार की गयी । इसके बाद खगोल रचना कर उसमें किस प्रकार लगाया जायेगा । यह बताया जा रहा है । दोनों खूंटों में ध्रुव स्थानों की ऊंचाई के बराबर नली बना कर उसमें लोहे से छेद करेंगे (सीधा छेद करने के लिए)

तद् बहिरपि च खगोलं षडि भर्वृत्तैर्दृढ़ं निबध्नीयात्
तत्र क्षितिजं पूर्वा पराभिधं याम्य सौम्याख्यम् । ३२ ।

इसके बाद भगोल के बाहर खगोल बनायेंगे । इस खगोल में ६ वृत्तों को दृढ़ता से बांधेगे क्षितिज वृत्त, पूर्वापर वृत्त, याम्योत्तर वृत्त,

कोणाख्य वृत्त युगलं दिङ् मण्डल नामकं षडेतानि
निश्चल खगोल मध्ये भगोल चलनं भवेदत्र । ३३ ।

दो कोणवृत्त तथा दिङ् मण्डल वृत्त । खगोल में ये ६ वृत्त दृढ़ और अचल होंगे पर उसके भीतर भगोल घुमाने लायक स्थिर किया जायेगा ।

अथनिज देशे भादिन उदयास्त मयादि वीक्षितुं साक्षात्
स्तम्भ युगोद्ध्वाधरयोर्ध्रुव यष्टी रन्ध्रयोः स्थाप्याः । ३४ ।

अब अपने स्थान पर दिन में छाया तथा ग्रहों का उदय और अस्त प्रत्यक्ष देखने के लिए दो स्थम्भों के ऊपर और नीचे के छेद में ध्रुव और यष्टि को लगायेंगे ।

गोलद्वये स्वदेशानुसारि सममण्डलं तथा क्षितिजम्
बद्ध्वा खगोल कान्तर्याम्योत्तर मण्डलस्य पुनः । ३५ ।

खगोल और भगोल दोनों में अपने स्थान का पूर्व पश्चिम क्षितिज वृत्त बान्ध कर खगोल वृत्त के याम्योत्तर

सममण्डलस्य योग स्थान युगे कीलक द्वयं न्यस्य
दृग् गोलाख्यं वृत्तं तत्रनियोज्यं श्लथं विदुषा । ३६ ।

और सममण्डल वृत्तों के दो मिलन स्थानों (ऊर्ध्व ख स्वस्तिक तथा अधः ख स्वस्तिक) पर दो कील देंगे इन कीलों पर दृग् मण्डल को इस प्रकार लगायेंगे, कि वह इच्छानुसार घूम सके ।

उर्ध्वाधः प्राक् पश्चादायत समवृत्तवद् भगोल बहिः
तक्ष द्रणीय मिच्छावशतो ध्रुव यष्टि पर्यन्तम् । ३७ ।

दृग् मण्डल को पूर्वा पर वृत्त की तरह भगोल के बाहर रखेगें, जिससे इसको इच्छानुसार ध्रुव यष्टि के चारों तरफ घुमा सकें ।

अभतश्चाल्यं खेटः प्रयाति यत्रापि तत्र तन्नेयम्
विभिन्न लग्नं प्रतिचेन्नेयं दृक् क्षेप वृत्तं स्यात् । ३८ ।

कोई ग्रह जहां पर है, उसके ऊपर से जाते हुए दृङ्मण्डल को रखेगें । यह दृङ् मण्डल वित्रिभ के ऊपर ले जाने से यह दृक् क्षेप वृत्त हो जायेगा ।

गोल पृष्ठ निवेशितमपि खगभगणं महीस्थया दृष्ट्या
तदुदरगतमिव पश्येदन्तर्नरगत्य सम्भवतः । ३९ ।

इन गोलो में भीतर मनुष्य का जाना असम्भव है । अतः भगोल पृष्ठ पर जो ग्रह हिसाब करके दिया गया है । उसको पृथ्वी पृष्ठ दृष्टि से ग्रह को गोल गर्भ में रहने जैसा देखेंगे । (रेखा वही होगी, बाहर से देखने पर दिशा उल्टी होगी ।)

कोणेषु दिक्षुः परितः प्रोतैः कीलैर्धृतः समिद् वलयः
क्षितिज समोन्नति रंशुक वेष्टित इदमर्द्धलुग् देयः । ४० ।

गोल क्षितिज के आठ दिशाओं में छोटी छोटी कील देकर नीचे से कपड़ा से क्षितिज तक कपड़ा से ढंक देंगे । क्षितिज के ऊपर थोड़ा छोड़कर एक काठ का क्षितिज कर नीचे से वहां तक ढंकेगे जिससे गोल का ऊपरी आधा भाग दीखे ।

किं वार्द्ध मग्न वपुषं गोलं खाते निधाय तद् भ्रमणात्
क्षितिजोपरिगत भार्द्धं भूस्थिति कृत्या बूधैर्दृश्यम् । ४१ ।

अथवा गोल रचना समाप्त होने पर उसको गड्ढे के भीतर इस प्रकार रखेंगे जिससे क्षितिज का निचला आधा भाग गढे में रहेगा तथा ऊपरी भाग बाहर रहेगा । इतना करने पर गोल को घुमा कर भूगोल स्थिति की कल्पना कर क्षितिज के ऊपर के चक्रार्द्ध को देखा जा सकता है । जो कि दृश्य चक्रार्द्ध होगा ।

सिद्धान्त शिरोमणेः-बद्ध्वा भगोल एवं यष्ट्यां खगोल नलिकोक्तम्
प्रक्षिप्य भ्रमयेत्तं यष्ट्याधार स्थिरौ खदृग् गोलौ । इति । ४२ ।

(सिद्धान्त शिरोमणि के अनुसार) भगोल को ध्रुव यष्टि से बान्धकर यष्टि को खगोल नली के भीतर घुसाकर भगोल को घुमायेंगे । यष्टि के अग्र भाग में दो नलिका से खगोल और दृगगोल को स्थिर और अचल कर स्थापित करना होगा ।

एक कक्ष यन्त्र का वर्णन -

धरणी गोल भगोल क दृग् गोल खगोल सन्निपातेऽपि
यन्त्रमिदमेक कक्षं ज्योतिश्चक्रं यदेकत्र । ४३ ।

भूगोल, भगोल दृग् गोल और आकाश गोलों से मिलकर बना यह द्विकक्ष गोल एक कक्ष भी किया जा सकता है । ज्योतिश्चक्र

दृश्यं विधुकक्षात्मक भगोल एवाथ वा कुशाग्रधिय
पृथुलतरः क्षुद्रतरो गोलः कार्यः सुकल्पनया । ४४ ।

चन्द्रगोल में दीखने के कारण एक भगोल (चन्द्र के भगोल) में ही यह सब लगाकर पहले के समान देखा जा सकता है । अति बुद्धिमान व्यक्ति अपनी कल्पना के द्वारा इन गोलों का आकार बड़ा या छोटा भी बना सकते हैं ।

अथाभिधास्ये बहुकक्षयन्त्रं यत्प्रेक्षणादेव नभश्चराणाम्
सञ्चार बिम्बा शुगमान वक्रा वक्रादि साक्षाद् भवति क्षमायाम् । ४५ ।

अब मैं बहुकक्ष यन्त्र के बारे में कहता हूँ, जिसको देखने से ही ग्रहों का सञ्चार, बिम्ब, शरमान, वक्रता, अवक्रता आदि पृथ्वी पर रहकर ही प्रत्यक्ष भाव से देखा जा सकता है ।

कृत्वैधसादौ घनं चक्र युग्मं हस्तोन्मितं व्यास मुदीच्य वाच्यो
बहिः स्थितस्तम्भयुग प्रगाढ़ प्रोताक्षयुग्मापि तनाभि देशम् । ४६ ।

एक हाथ व्यास का काठका दो घन चक्र करेंगे । दो खूंटा गाड़कर उसके बाहर दक्षिण और उत्तर में यह दोनों चक्र लगाकर कर रखें । दोनों खूंट उत्तर दक्षिण दिशा में लगाया जायेगा । खूंट के ऊपर धूरी का कील रखकर उसी कील को दो चक्रों के केन्द्र में लगा कर रखना होगा ।

धारादृढ़प्रोत निचार वार प्रान्तस्फुरद् वर्त्तुल नेमि युग्म्
खांङ्का (९०) ङ् गुलाक्ष प्रधिकान्तरा लं संस्थाप्यहस्तत्रयदूरगंतत् । ४७ ।

दोनों काठ के गोलों में छेद कर शर (लकड़ी की छड़ी) लगायेंगे और शरों के अगले भाग में एक नेमि (कांठ की वृत्ता कर पट्टी जिसमें ३६० अंश चिह्नहों) लगाकर रखेंगे । नेमि और अक्ष के बीच ९० अंगुल की दूरी होगी । काठ के गोलों को एक दूसरे से ३ हाथ दूर रखेंगे ।

नेमिद्वयस्यूति दृढ़ा शलाकाश्चक्रद्वयं भ्रान्ति कृते ह्यवक्राः
देयास्त्रि हस्ताभ्यधिकास्तदन्तः क्ष्मा खेटकक्षाः परिकल्पनीयाः । ४८ ।

इन दो गोलों (नेमि सहित) को घुमाने के लिए ३ हाथ से अधिक दृढ़ काठ का डण्डा इन दो तुम्बियों के भीतर घुसा कर रखेंगे । इन दोनों चक्रों के बीच (३ हाथ की दूरी पर) पृथ्वी और ग्रह कक्षा आदि रहेंगे ।

याम्या रितश्चाङ्ग गुणा (३६) निवेश्य दीर्घस्य सौम्याभिमुखस्यसूक्ष्मे
अक्षस्यामूर्द्धन्यनुवेश्य पृथ्वीं तन्वीं विधोस्तत्वरितश्च कक्षा । ४९ ।

दक्षिण चक्र (गोला) से ३६ अंगुल दूर (बीच की तरफ) उत्तर दिशा में मुख किया हुआ अक्ष (उत्तर दिशा में कील का डण्डा) लगायेंगे । उस अक्ष में छोटे आकार की पृथ्वी लगा देंगे । पृथ्वी के चारों तरफ चन्द्र कक्षा होगी ।

षड़ंगुलार्द्धाङ्गुल राशि युक्ता क्रान्त्युच्च पातानु गता श्लथा च
याम्यारि संसक्त चतुः शलाका कार्योद्ध् र्व सूत्र प्रथिताणु चन्द्रा । ५० ।

पृथ्वी के चारो तरफ चन्द्र कक्षा शिथिल होगी, उसका माप ६ अंगुल होगा तथा आधे आधे अंगुल पर १ राशि चिह्नित होगी । चन्द्र कक्षा में क्रान्ति, मन्दोच्च, पात और चन्द्र का स्थान चिह्नित कर दक्षिण चक्र से इनके ऊपर ४ मजबूत काठी लगाकर रखेंगे ।

चक्रांकित द्वादश राशि रेखानुसारतश्चन्द्र मृदूच्चपातौ
स्वकालजौ दक्षिण चक्रमध्ये देया वुदीच्यन्यनभश्चराणाम् । ५१ ।

दक्षिण चक्र में १२ राशि का चिह्न दिया जायेगा । उसी क्रम में इष्ट काल में चन्द्र मन्दोच्च और पात दक्षिण चक्र में देगें । उत्तर चक्र में अन्य ग्रहों की कक्षा देंगे ।

ततो विधेया ग्रह चक्र यष्टि रुदीच्य चक्रोदर भेद योग्या
सूक्ष्माग्र तिष्ठा पृथुमध्य भानुर्मूले पृथुः खेतर चक्र धृतौ । ५२ ।

इसके बाद उत्तरी चक्र में छेद कर उसमें लगाने के लिए ग्रह चक्र यष्टि (डण्डा) तैयार करना होगा । यह यष्टि पतली होगी । और इसके अग्र भाग में सूर्य रहेगा । यष्टि मूल की तरफ मोटा होगा जिससे अन्य ग्रहों को भी उसमें लगाया जा सके ।

तद ग्रजा पत्तनु कीलकाग्रे मध्यार्कतश्चाङ्गुल पाददूरे ।
न्यस्यौ रविस्तुङ्ग दिशि स्फुटाक्षः पृथुः पृथिव्या विमलः सुवृत्तः । ५३ ।

इस ग्रह चक्र यष्टि के छोर पर एक पतले कील पर मध्यम सूर्य लगाया जायेगा तथा उससे १/४० अंगुल (१५ कला) दूरी पर उच्च की तरफ स्फुट रवि लगाया जायेगा । यह पृथ्वी से बड़ा, चिकना और पूर्ण गोलाकार होगा ।

आधार दारू ग्रहचक्र यष्ट्यां सपादहस्तान्तर तोत्तरस्थम्
विन्यस्यतत् प्रोत दृढ़ारकाष्ठै स्त्रिहस्त कै र्द्वादशभिर्विधेयम् । ५४ ।

ग्रह चक्र यष्टि से ३० अंगुल (१ १/४ हाथ) उत्तर आधार काठ देकर १२ अर दिया जायेगा । प्रत्येक अर की लम्बाई ३ हाथ होगी ।

आधार चक्रं उदरस्थ रन्ध्र प्रस्यूत तिर्यग् यमदिङ् मुखस्य
अग्रेषु कील प्रचयस्य मध्य सूर्याभिवेष्ट ग्रह चक्र कक्षाः । ५५ ।

आधार चक्र के केन्द्र से निकले दक्षिण दिशा में तिरछी कील के बीच में सूर्य तथा उसके चारों ओर ग्रहों की कक्षा का चक्र लगाया जायेगा ।

आमोचनीया वलयैः सुवृत्ता भासाक्षयोच्चापमपात जातैः
सर्क्षांशचिह्नाः स्पृहयात्र नेया तत्पृष्ठसूत्र ग्रथितो ग्रहालिः । ५६ ।

यह सभी ग्रह कक्षा उच्च, अपम, पात इत्यादि द्वारा चिह्नित किया जायेगा । उसमें राशि, अंश का चिह्न भी होगा । इसके भीतर (सतह पर) मंगल आदि ५ ग्रह होंगे । इसमें इच्छानुसार ग्रहों को यथा स्थान रखकर कक्षा चक्र (काठ की वृत्ताकार पट्टी) को घुमाया जा सकता है ।

मध्यार्क संवेष्टन कृज्ज्ञ कक्षा धृत्य (१८)
ङ्गुला स्थाच्चिपिटात्मपृष्ठा ।
तद्वत् सितस्यार्थगुणा (३५) ङ्गुला सद्व्यद्राङ्गुला
(७२) मंगल कक्षिकैव । ५७ ।

मध्यम सूर्य के चारों तरफ पहली कक्षा बुध की होगी जिसकी परिधि १८ अंगुल की होगी । दूसरी कक्षा शुक्र की ३५ अंगुल की तथा तीसरी कक्षा मंगल की ७२ अंगुल की होगी ।

गुरो रसोम्भाधिभुजा (२४६) ङ्गुलाथ रूपाब्धि
वेद (४४१) ङ्गुल कार्क सूनोः ।
विमण्डलाख्या इति खेट कक्षाः पूर्वोक्त
कीलेष्व समेषु योज्याः । ५८ ।

वृस्पति कक्षा की परिधि २४६ अंगुल तथा शनि कक्षा की परिधि ४४१ अंगुल होगी । इन कक्षाओं को असमान कीलों से जोड़कर रखेंगे । इनका दूसरा नाम विमण्डल है ।

कीलेष्वयो दक्षिणदिङ्मुखो यत् विमण्डलानुक्र मतोनि कृत्तः
स्याद् गोल सन्धौ सममण्डलग्रो मध्यार्कतोऽवागयनान्त संस्थः । ५९ ।

दक्षिण की तरफ मुंह किये कीलों में क्रम से जो विमण्डल काटा गया है, वह मध्यम सूर्य से गोल सन्धि में पूर्व पश्चिम दिशा में रहेगा । दक्षिण अयनान्त में यह कीलें अधिक लम्बी होंगी ।

दीर्घोऽथ सौम्यायन पूर्त्तनिष्ठः क्षुद्रोऽ न्यराशावनुपात सिद्धः
प्रत्येक भिन्नो मृदु पात भेदात् कक्षानुसाराब्दर मण्डलस्थः । ६० ।

दक्षिण अयन में ये कीले बड़ी तथा उत्तर अयन में छोटी होंगी । उत्तर अयन से दक्षिण अयन के बीच की दूरी के अनुपात से उनकी लम्बाई निकालनी होगी । मन्दोच्च भेद से कक्षा के अनुसार अर भिन्न भिन्न होंगे ।

अथार्क कक्षा भ्रमणाय सौम्ये निशायचक्रोपरितः स्वमध्यात्
साष्टाग्नि लिप्ताद्रि (७/३८) मितांगुलान्तेमध्यं
यथास्यातु विभिद्यकाष्ठम् । ६१ ।

सूर्य कक्षा को घुमाने के लिए उत्तर के चक्र में केन्द्र से (७/३८) अंगुल पर एक गोलाकार छेद करेंगे ।

तथैव गर्त्तं वलयायमानं सौम्यायनान्ते विततावकाशम्
याम्यायनान्तेऽल्पमिता न्तरालें तस्मिन् प्रवेश्या ग्रह चक्रयष्टिः । ६२ ।

यह छेद उत्तरायण अर्थात् सायन कर्क आदि में थोड़ा बड़ा तथा दक्षिणायन अर्थात् सायन मकर आदि में थोड़ा छोटा होगा । इस छेद में ग्रह चक्र यष्टि को घुसा देंगें ।

सौम्यारि बाह्यस्थ जनेन सैव प्रचानिता चेद्वलयाभगर्त्ते
प्राचीं प्रतिस्वेष्ट ग्रहांशकादौस्थाप्या दृढ़ं कीलक पातनादौ । ६३ ।

उत्तरी चक्र के बाहर रह कर ग्रह यष्टि को उक्त वलयाकार छेद में पूर्व दिशा में घुमाया जायेगा । ग्रह को इष्ट अंश कला आदि में कांटा मार कर स्थिर करेंगें,

यथा तद ग्रस्थ रविर्धरित्र्य स्याद् गोल सन्धौ सममण्डलस्थः सिद्धांश (२४)
युज्त्र्यंगुल (३।२।३०) सौम्य भागे युग्मान्त गस्तावदवाक् प्रदेशे । ६४ ।

जिससे यष्टि के अग्र भाग में स्थित पूर्वापर वृत्त में तथा पृथ्वी गोल सन्धि सायन मेषादि में रहे । सायन कर्क के आरम्भ में रवि इससे (३।२।३०) अंगुल उत्तर तथा सायन मकर के आरम्भ में इतना थी दक्षिण जायेगा ।

चापान्तगस्तिष्ठत तद् वदेष्क कार्योऽ ल्पभूरिर्वलयावकाशः
याम्यार्यरान्त विंशतान्तरं वा धृत्वां प्रचाल्य पुरुषेण यष्टिः । ६५ ।

वलयाकार छेद इसी प्रकार अधिक या कम मोटा होगा । अथवा दक्षिण चक्र के अरों के बीच हाथ डालकर ग्रह चक्र यष्टि को घुमाया जा सकता है ।

नक्षत्र चक्रं प्रकृतं न भस्यं प्रत्यर्क मध्यान्निज कालयातान्
कृत्वा ग्रहां स्तत् समयानुसाराद् भूमध्यतो भानुमपि प्रचाल्य । ६६ ।

सूर्य केन्द्र से आकाश के नक्षत्र चक्र में अभीष्ट काल का ग्रह निकाल कर (अभीष्ट काल का मन्द स्फुट ग्रह निकाल कर) उसी समय के अनुसार भूमध्य दृष्टि से सूर्य को देखकर घुमायेंगे ।

भूखेट सूत्रे क्षितिभांशकादौ दृश्याः स्फुटः खेट इतीषु बिम्बौ
ततोबहि र्भूय जनेन तेन यन्त्रस्य पश्चाद् भ्रमणं विधेयम् । ६७ ।

पृथ्वी से ग्रह की सीध में देखने पर ग्रह का स्फुट राशि अंश (मन्द स्फुट) आदि इस गोल में दीखेगा । ग्रह का शर और बिम्ब भी गणित के अनुसार दीखेगा । इसके बाद यन्त्र के बाहर आकर पुनः इसे पश्चिम को घुमायेंगे ।

यन्त्रस्यवा सूक्ष्मधिया समन्तात् कार्या भकक्षा शरवेद (४५) हस्ता
स्थानेऽर्पिता योग्यतमे ततोऽस्यां वक्रार्जवाद्यं सकलं हि लक्ष्यम् । ६८ ।

अथवा अति बुद्धिमान व्यक्ति यन्त्र के चारों तरफ ४५ हाथ का एक कक्षावृत्त कर उसमें अश्विनी आदि २७ नक्षत्र चिह्नित करेंगे । इसको भगोल में उचित स्थान पर (विषुव से २३° ३०', झुका हुआ कान्तिवृत्त के तल में) स्थापित करेंगे । इस भ कक्षा में ग्रह की वक्र और सरल गति सभी देखा और दिखाया जा सकता है ।

किंवार्कतः खेचर चक्र सूत्रे कृताब्धिरामा (३४४)ङ्गुलदूर मुर्व्याः ।
स्तम्भद्वयं प्राक् परयोर्निवेश्य तत्रांशकानं गुल षट्क तुल्यान् । ६९ ।

अथवा रवि से ग्रह चक्र की दिशा में पृथ्वी से पूर्व और पश्चिम की तरफ (३४४) अंगुल दूरी पर दो स्तम्भ स्थापित करेंगे । उसमें क्रान्ति वृत्तरीति से ६ अंगुल के बराबर अंश (प्रायः ६ अंश) अंकन करेंगे ।

वक्रेऽप्रवृत्तोपमयांक यित्वा कृत्वार्क मध्यं क्षिति पश्चिमस्थम्
मध्यार्यमाक्रान्त गृहादि भार्द्धे निवेश्य भौमं निजकक्षिकायाम् । ७० ।

पृथ्वी के पश्चिम मध्यम सूर्य को रखकर मध्य सूर्य की राशि अंश से ६ राशि अन्तर पर मंगल को अपनी कक्षा में स्थापित करेंगे ।

तद् भूमि संसक्तगुणं प्रसार्य प्राक् स्तम्भ पर्यन्त मयं यमंशम्
तत्रस्पृशेदंक मिहार्पयित्वा गजाम्बु (४८) राश्यंगुलकक्षिकायाम् । ७१ ।

मंगल और पृथ्वी से होकर जाती रेखा को पूर्व दिशा के चिह्न तक (पूर्व स्तम्भ तक) बढ़ायेंगे । यह रेखा जिस अंश आदि को स्पर्श करे, वहां चिह्न देकर उससे ४८ अंगुल की कक्षा में -

मध्येर वावं गुल मात्र भुक्ति निक्षिप्य पक्षार्द्ध गतिं कुजेऽर्कात्
पूर्वार्पितांकात् कुज भूमि सूत्र मूर्धांशगं वीक्ष्य महीस्थ दृष्ट् या । ७२ ।

मध्यम रवि को रखेंगे । रवि की गति एक अंगुल का (अर्थात् ७/ ३०) तथा मंगल का एक अंगुल (२-१/२) गति होगी । सूर्य से पूर्वोक्त चिह्न (पृथ्वी मंगल रेखा का पूर्व स्तम्भ की दिशा में) तक की रेखा से पृथ्वी मंगल रेखा ऊपर की तरफ होगी ।

दृष्येतवक्रागतिरेव मन्यनभश्चराणामृजुवक्रतापि
गतिर्विधोश्च ग्रहणादि सर्वे प्रेक्ष्यं निरक्षानुसृतेक्षणेन । ७३ ।

पृथ्वी से देखने पर मंगल की वक्र गति दीखेगी । इसी प्रकार अन्य ग्रहों की भी सरल और वक्र गति देखी जा सकती है । चन्द्र का ग्रहण और गति आदि विषुव वृत्त धरातल की दृष्टि से देखना होगा ।

सितार कक्षान्तरगेन्दु कक्षा संघट्ट्यमाना न भवेद् यथाभ्याम्
तथा बुधेना वहितेन खेट चक्रं पुरो नेयम भीष्ट भादौ । ७४ ।

शुक्र और मंगल कक्षा के बीच में चन्द्र कक्षा इस प्रकार रखनी होगी जिससे दोनों लड़े नहीं । ग्रह मण्डल को इष्ट राशि आदि में पूर्व और पश्चिम को लेते समय बहुत सावधानी करनी होगी ।

इदं मदुक्तम् बहुकक्षिकाख्यं यन्त्रं यदत्राखिल खेचराणाम् ।
पृथक् पृथक् सूत्र परीत वृत्तै र्दृश्या गतिर्नेक विधादिवीव । ७५ ।

यह मेरा बहु कक्षा यन्त्र का वर्णन हुआ । इसमें आकाश के दृश्य के समान ग्रहों की विभिन्न गति देखी जा सकती है । यह अलग अलग और सूत्र की सहायता से देखी जा सकती है ।

गोलाख्य यन्त्र द्वितीये निजांश छायाभ्रमाद् यन्त्र परिभ्रमाञ्च
कालस्य बोधे सुगमेऽपि बाल व्युत्पत्तये वच्मि पृथक् कियन्ति । ७६ ।

एक कक्ष और बहुकक्ष – दो प्रकार के गोल यन्त्रों का वर्णन हुआ। अपनी (या किसी अन्य वस्तु) की छाया भ्रम (छाया की दिशा और लम्बाई) या यन्त्र घूमने से भी काल का ज्ञान आसानी से हो सकता है। तथापि अल्पज्ञ लोगों को समय ज्ञान के लिए कालयन्त्र के बारे में कहता हूं।

चक्रेन यष्ट्या धनुषा नरेण तूर्येण घट् या फलकादिना च
काचैः परोभिः सिकतादिभिश्च सूत्रैः स्मकालं कलयन्तितज्ज्ञाः ७७।

चक्र यन्त्र से (नाड़ी मण्डल का या दृङ् मण्डल में) यष्टि यन्त्र में, वृत्तार्द्ध चाप यन्त्र से, शंकु से, वृत्त चतुअर्थांश से, घठी यन्त्र से, भास्कर द्वारा वर्णित फलकादियन्त्र से, काठी से, पानी से, बालू से, या सूत्र यन्त्र से भी समय का ज्ञान हो सकता है। यन्त्र जानने वाले व्यक्ति प्रत्येक यन्त्र से काल ज्ञान कर सकते हैं।

गोलार्द्ध यन्त्रं समया वगत्यै कृत्वामृदाकुम्भ दलस्वरूपम्
दृक् सिद्ध मत्यामवनौ निधाय तदूर्ध्व वक्रं खलु भार्द्धबुद्धया। ७८।

मिट्टी के घड़ने के निचले आधे भाग के समान एक गोलार्द्ध यन्त्र बनायें। उसको जमीन पर ऊपरकी तरफ मुंह कर रख उसमें उस स्थान का पूर्व पश्चिम आदि दिशा का साधन कर चिह्न देंगे। पृथ्वी के ऊपर उसका जो वक्र भाग है। उसको वृत्तार्द्ध मानें।

उदग् ध्रुवं दक्षिण भित्तिमस्तकादधोऽक्ष भागै रुदरे निवेश्यच।
ततो ध्रुवार्कान्तर भाग तुल्य शलाकयोदश्खया ध्रुवस्थया। ७९।

उसके उदर (भीतरी भाग) में पूर्वापर और याम्योत्तर वृत्त खींचेगे। दक्षिण उत्तर मस्तक से नीचे अक्षांश अन्तर से उत्तर ध्रुव देकर कलश के पेट में चिह्न देंगे। तब ध्रुव और सूर्य की अन्तर रेखा व्यासार्द्ध से ध्रुव को केन्द्र मान एक वृत्त खींचेगे।

विलिख्यतत् पश्चिमभित्तिमूर्ध्वतः पुरः स्थमित्यन्त विसर्पिरेखिकाम्।
निधाय तद् व्यास दल प्रमाणकं नरञ्च साध्ये सरलं दिनादितः। ८०।

यह वृत्त उस समय के लिए अहोरात्र वृत्त होगा। इस अहोरात्र वृत्त के व्यासार्द्ध के बराबर ऊंचाई का एक सरल शंकु गोलार्द्ध के बीच में रखेंगे। जो अहोरात्र वृत्त होगा। उसको भी

स्वघस्र नाड़ी पल लक्ष लक्षिते पुरोक्त रेखावलयार्द्ध केऽन्वितात्
नरप्रभाग्रात्समयं प्रतीयतां सितांशुतो निश्यपि सूक्ष्म बुद्धिना। ८१।

नाड़ी पल आदि से चिह्नित करेंगे। उस पर शंकु छाया की स्थिति से समय का ज्ञान हो जायेगा। बुद्धिमान् लोग इसी यन्त्र द्वारा रात में भी चन्द्र से समय का ज्ञान कर सकते हैं।

नभसि निरवलम्बे खेचराणामुडुनां
ग्रहलव घटिकादौ रन्तरं यन्त्र वेधैः
परिकलयितुमिष्टं मानयन्त्रं प्रवक्ष्ये
धर धरणीरुहादि स्याद् यतेऽपिप्रमेयम्। ८२।

निराधार आकाश में ग्रह तथा नक्षत्रों का अन्तर राशि, अंश, कला, आदि निकालने के लिए अब मानयन्त्र के विषय में कहता हूँ। इस यन्त्र से पर्वत और वृक्ष आदि का मान भी जाना जा सकता है।

घनरस समभूमौ वृत्तमालिख्य भांशां (३६०)
गुल परिमितिं मेतत्स्वां शकैरंकयित्वा
रुजुलघुमिह दत्वा पट्टिकां पृष्ठलग्नां
परिधि लवलगद्भिः केन्द्र निर्यात सूत्रैः। ८३।

समतल भूमि को गाढ़े रससे लीपकर चिकना करते हैं। और उसमें ३६० अंगुल का एक वृत्त बनाकर उसके प्रत्येक अंश (परिधि पर १ अंगुल की दूरी) पर एक चिह्न देते हैं। ठीक इसी वृत्त के बराबर एक काठ पट्टा का वृत्त बनाते हैं, जो इसे ढंक सके। काठ पट्टा में भी केन्द्र और अंशों को चिह्नित कर केन्द्र से परिधि के ३६० अंश चिह्नों तक एक एक रेखा खींचते हैं। भूमि के वृत्त को भी ३६० भाग में बांटते हैं।

विरचयितु बहि स्थे पट्टिकान्तेलवाङ्का
स्तनुलवन समुत्थां स्तत्र सोपान कल्पान्
लगयतु पुनरस्या मध्य भागेऽपिदण्डम्।
दृढ़मृजु मथ वृत्त व्यासतोऽर्द्ध प्रमाणम्। ८४।

पट्टी के प्रति अंश का विभाग कर कला आदि भी किया जा सकता है। इस पट्टे के केन्द्र में एक दृढ़ और सीधी छड़ी लगाते हैं, जिसका प्रमाण उस वृत्त के व्यासार्द्ध के बराबर होगा।

सदल गृह समावा पट्टिका राशि तुल्या
तिथिलव कलिता वा वाञ्छितां शैर्मिता स्यात्
पुनरिह लवनांकाद् व्यंशकाख्यं शका वा
कृतःशर लवका वा स्वेच्छया निर्मिताःस्युः। ८५।

इस पट्टे का परिमाण ४,५,३०,१५ वा इष्टांश भी हो सकता है।

नयन तलगमूलं पाणिनादाय दण्डं
द्विचर विवर मध्ये पट्टिकांशैः प्रमातात्
ग्रह भव सति चिह्नात् प्रत्यगा गामि तत्त-
द्विवर लवकषट्कैस्त्रिज्यया (३४३८) ताड़ितैस्तु। ८६।

पट्टे के कोणों को दो ग्रहों या ग्रहनक्षत्र की सीध में रखकर यष्टि और कोण को ग्रह की सीध में देखते हैं। पट्टी के कोण का जो अन्तर होता है, उसे ६ से भाग देते हैं तथा त्रिज्या से गुणा करते हैं।

निजनिजदिन जीवा भाजितै नाड़िकास्यु
गिरि मुख नर मूल स्वान्तरा हस्त संघात्
सकल लवक शंकु ज्या हता दृग् ज्ययाप्ता
भवति फलक राद्यं मानम द्रिद्रुमादैः। ८७।

फल को उस दिन के अहोरात्र वृत्त के व्यासार्द्ध से भाग देने पर वह अन्तर की नाड़ी होगी। पर्वत का अग्रभाग और शंकु मूल के बीच की दूरी को शंकुज्या से गुणा कर दृग्ज्या से भाग देने पर पर्वत की उच्चता आयेगी। वृक्ष की उच्चता भी इसी प्रकार निकाली जा सकती है।

वहल सलिल वर्षं वीक्ष्यतस्योर्द्ध्व सीमो
न्नतनत लवकेभ्यः शंकुदृग्ज्ये विधाय
ख खशरकर (२५००) हस्ता दृग्ज्य काघ्ना नराप्ताः।
स्व जलद तल भूम्योरन्तरं प्रायशः स्यात्। ८८।

खूब वर्षा करने वाले मेघ को भी देखकर मानयन्त्र से उसका उन्नतांश या नतांश निकाला जा सकता है। उसकी दृग्ज्या को (२५००) हाथ से गुणा करने पर शंकु से भाग देने पर अपने और मेघ के केन्द्र तल के बीच की दूरी होगी। (नतज्या से भूमि की दूरी और उन्नतज्या से मेघ की जमीन से ऊंचाई ज्ञात होगी।)

नर युगल सुसाध्यं मानमानेतु मस्मा-
दपि कलयितुशंकुस्थानयोः सन्निविष्टः
नगमुख समदृश्यं पट्टिकान्तः प्रदेशं
नरमितिरिति दण्ड भेदमेयान्ति कस्थम्। ८९।

दो शंकु द्वारा पर्वत और वृक्ष आदि की ऊंचाई निकालने की विधि में शंकु के समान स्वयं बैठकर मान यन्त्र से पर्वत को देखा है। इस यन्त्र का डण्डा ही शंकु है। मेघ पर्वत आदि के निकट स्थित शंकु को छाया माने)

अनिकट भुवि सिद्धे शंकु भे संस्कृतोस्तः
प्रथमनर विनिध्यौ दूरशंकु प्रभक्ते
कथितमपरकर्म क्ष्मा समात्रास्तु नो वा
भवति सम भगा दे रूर्ध्व तिर्यक् प्रमाणम्। ९०।

इस प्रकार दूर स्थान के शंकु और उसकी छाया को प्रथम शंकु से गुणा कर २ य या दूरस्थ शंकु से भाग देने पर दो छाया आयेगी। इसके बाद की विधि पहले कही जा चुकी है। इस विधि में पृथ्वी समतल या तिरछी हो तब भी पर्वत की उच्चता और उसका विस्तार आयेगा।

स्फुटतर परिमाण स्यवगतौ तु दण्ड
शर (५) करमित दैर्ध्यः कार्यएतत् शिखायाम्
विकलयिषित साम्य प्रापिताक्ष्णा शलाका
नर इति लगनीया संस्कृतिः स्यात्तथैव । ९१ ।

यदि वृक्ष और पर्वत आदि का अति स्पष्ट परिमाण जानना हो तो यष्टि को ५ हाथ लम्बा कर देंगे । इस दण्ड के अंग्रभाग की सीध में पर्वत की चोटी को देखेंगे । इसके बाद आंख और पर्वत के बीच एक और शंकु रखेंगे जिसका अग्र भाग भी पर्वत की चोटी की सीध में हो । तब पहले की विधि से उसका सभी संस्कार करेंगे ।

ध्रुव समनग श्रृंगं वीक्ष्य तत् प्राक् प्रतीच्यो
क्वचिदुभविवरज्यां चोन्नतज्यां तथाद्रे
स्थिति युगविवरघ्नो सोन्नतज्या द्वयाप्ता
भवति शिखर मानं दूरता दृग् ज्याकान्तः । ९२ ।

ध्रुव देखने की विधि से (याम्योत्तर वृत्त में) पर्वत श्रृंग को देखेगे । उसी पर्वत के पूर्व पश्चिम अन्तरज्या और उन्नतज्या निकालेंगे । उस उन्नत ज्या को पूर्वापर अन्तरज्या से गुणा कर २ से भाग देने में फल पर्वत आदि की उच्चता होगी । दृग् ज्या (नतज्या) से दूरता आयेगी अर्थात् नतज्या को उसी पूर्वा पर अन्तर से गुणा कर २ से भाग देने पर पर्वत की दृगे ज्ञान होगी ।

चक्रवृत्तं तद्दलं चाप संज्ञं चापस्यार्द्धं यष्टि नामास्ति यन्त्रम् ।
चक्रेणा हो रात्रा कालस्तदर्द्धं चापेनां भ्रिर्ज्ञायते तस्य यष्ट्या । ९३ ।

चक्रयन्त्र वृत्ताकार है । उसका आधार या वृत्तार्द्धाकार चाप यन्त्र कहा जाता है ।

पुनः चाप के आधा को यष्टि यन्त्र या तुरीय (चतुर्थांश) यन्त्र कहा जाता है । चक्र यन्त्र से दिन और रात का समय, चाप या वृत्तार्द्ध यन्त्र से अहोरात्र का आधा, पुन, यष्टि यन्त्र से (तुरीय यन्त्र से) दिन का अहोरात्र का चतुर्थांश (दिनार्द्ध) निकाला जा सकता है ।

काच पात्रं युगलं परस्परं सम्मुखीन मणु मध्यरन्ध्रकम्
सं विधाय जल पूरितैकतानिः सरेदपर पात्र के जलम् । ९४ ।

ऊपर नीचे के दो कांच के बर्तनों के बीच में एक छोटा छेद होगा । जिससे ऊपर के पात्र का जल नीचे के बर्तन में जा सके ।

यावताथ समये नतावता व्यस्त संस्थिति वशात् पुनस्ततः
ऊर्ध्वत स्थल गतेऽपि नःसरेदित्थ मत्र सिकतापि निःसृतिः । ९५ ।

पहला पात्र ऊपर रहने पर उससे नीचे के पात्र में जल गिरने में जितना समय लगता है, उसे उल्टा रखने पर ऊपर के दूसरे पात्र से उतने ही समय में पहले

पात्र में जल जायेगा। इसमें जल के बदले बालू का भी व्यवहार किया जा सकता है। इस समय के अनुसार दिन का समय भी जान सकते हैं।

मयूर नर वानराः कुशल शिल्पिना कल्पिताः
ससूत्र नलको दराः सलिल गामि पात्र स्थितैः
रसादिभ रनुद्भूतं निजमुखैश्च मण्यादिकं
गिलन्ति गुण गुम्फितं प्रतिमुहूर्त्त मिच्छा वशात्। ९६।

अच्छे शिल्पी द्वारा खोखला नर या वानर मूर्ति बनाकर उसके पेट में नली लगाकर उसके भीतर एक लोहा का तार लगायेंगे। एक पानी से भरे बर्तन में रखने पर पारद की तरह आकर्षण (Surface tension) के कारण उसमें बूंद बूंद जल जाय इसकी व्यवस्था करेंगे। छेद की लम्बाई और मोटाई इस प्रकार स्थिर करेंगे जिससे २ दण्ड (एक मुहूर्त) में एक बूंद (या कोई स्थिर चिह्न तक) पानी जाय।

गोलार्द्धाकृति घटितं सुताम्रपात्रम्
छिद्रेनाप्यति तनना तले समेतम्
कुण्डाम्भस्य बहलभित्ति पतितं सद्
घट्या मज्जति यदिदं कपालयन्त्रम्। ९७।

अर्द्ध गोलाकार ताम्बे का एक बर्त्तन तैयार करेंगे, जिसका तल थोड़ा चिपटा हो (जिससे वह स्थिर रह सके)। उसके तल में एक छोटा छेद कर उसको पानी के ऊपर रखने पर पात्र में धीरे धीरे पानी भरने लगेगा। छेद का आकार ऐसा होगा जिससे एक घड़ी में पूरा पात्र भर जाय। इसे कपाल यन्त्र कहते हैं।

भास्करेणोदितं यस्मात् फलकाक्षं सुविस्तरात्
यन्त्रं तदत्र न मया गदितं विदितं पुनः। ९८।

भास्कर ने फलक यन्त्र के बारे में विस्तार से कहा है अतः मैं पुनःनहीं कह रहा हूँ।

यन्त्रं स्वयं वह मिहाभिदधामि चक्रं
षष्टयं गुलावर्त्मल तुल्य नेमि
निर्म्माय यष्टि घटिकात्मक रेखिकाष्टयं
रेखान्तरे द्विषु (५) मितै वृत मंश चिह्नैः। ९९।

स्वयंवह यन्त्र के लिए ६० अंगुल परिधि का एक चक्र बनायेंगे। उसकी परिधि पर प्रति अंगुल पर एक एक रेखा देंगे। नेमि की ६० रेखायें दिन-रात की ६० घटी के समान हैं। ५-५ अंश पर और एक चिह्न उस पर बनायेंगे।

हस्तत्रयोन्नति मदुत्तर दक्षिणस्थ-
स्थूलाग्ररन्ध्र युग निश्चल सन्निवशे

अक्षे सुवृत्त मसृणे विनियोज्यनाभिं
चक्रस्य तुल्य लघुता खिल वेष्टनस्य । १०० ।

चक्र के केन्द्र में एक छेद कर उसके भीतर एक गोल और चिकना आंख (चिकनी नली) लगायेंगे, जिससे वह धुरी पर आसानी से घूम सके । उत्तर दक्षिण दिशा में ३ हाथ ऊंचा दो खूंटा गाड़ कर उस पर एक धुरी पर यह चक्र लगायेंगे । चक्र का वजन समान होना चाहिये नहीं तो वह आसानी से नहीं घूमेगा ।

प्राक् पश्चिमक्षि तिजयो रविचन्द्र चिह्ने
दत्वास्य वासर निशा परिवर्त हेतोः
प्रत्यग् प्रमार्थ मपरक्षितिजाधर स्थं
ताम्रादि निर्मित मृजुनलकं निदध्यात् । १०१ ।

पूर्व और पश्चिम क्षितिज में सूर्य और चन्द्रचिह्न देकर यह दिन रात घुमाने के लिए पश्चिम क्षितिज के नीचे ताम्बा आदि धातु की बनी एक सीधी नली स्थापित करेंगे ।

षष्ट्यंगुल प्रमित तन्नलकोदरस्थ
तोयं यथा स्रवति षष्टि घटि भिरेवम्
छिद्रं तले विरचयत्त दधश्च भाण्डं
स्थित्यै विनिः सृत जलस्य निधाय भूयः । १०२ ।

यह नली ६० अंगुल लम्बी होगी । इस नली का पानी ठीक ६० दण्ड में जिस प्रकार बाहर निकले इसके लिए उसके निचले भाग में एक छोटा छिद्र करेंगे । छिद्र के नीचे एक पात्र रखेंगे नहीं तो बाहर निकलता हुआ पानी जमीन पर जमा हो जायेगा ।

तत्रात्पर क्षितिज वेशित सूक्ष्मकीले
बद्ध्वाग्रमेक मथसूत्रमधः क्रमेण
पूर्वोर्ध्व पश्चिमतया वारिवेष्ट नेमिं
कालाधराग्रपरिलम्बित मेव कुर्यात् । १०३ ।

उसके बाद चक्र के दूसरी दिशा में क्षितिज में एक छोटी कील से सूता बांध कर उसको परिधि पर नीचे से लपेट कर ऊपर की तरफ लायेंगे । पूरा नेमि बान्ध (लपेट कर) उस सूता को नीचे लटका कर उसमें लौकी की तुमड़ी लटका दें ।

बद्धता गुणाञ्चल इहै वहि पारदाढ्यं
शुष्कं नलोदर गलत्सदलावुपात्रम्
तोये निपातयतु तेन तलाभिकृष्ट-
सूत्रं भ्रमत्यरिसकृच्छ नकै र्धुरात्रे । १०४ ।

सूत्रे के किनारे पारद (मोम आदि) देंगे । तुम्बी को पानी में डालने से वह

धीरे धीरे चक्के को अहोरात्र में एक बार घुमायेगा।

प्रातः पुरः स्थितिरवेः सविधे शलाकां
तिर्यग् ददत् क्षणघटी रूदिताः प्रमातुम्
अंके र्घुरात्र्य वयवान् कलयेत्पुरेद्युः
प्राग् वन्नियो जयतु जीवन पूरणाद्यैः । १०५ ।

सवेरे सूर्योदय के समय पूर्व क्षितिज में रवि चिह्न के निकट उसी चक्र से तिरछे दक्षिणोत्तर दिशा में एक काठी रखेंगे। सूर्योदय से आरंभ कर चक्र के पूर्व दिशा में घूमने से चक्र (नेमि) का जो चिह्न काठी से लगता है उससे अहोरात्र का अवयव (घटी, पल आदि) जाना जा सकता है। अगले दिन भी उस चक्र को उसी प्रकार स्थापित करेंगे।

चक्रार्द्धतोऽवनितलावधि गोपनीयं
सर्वं भ्रमोपकरणं खलु दर्शकेभ्यः
तेषां भवेन्नहि चमत्कृतिरन्यथात्र
सच्छात्र नेत्रपतनार्ह मदो यदेव । १०६ ।

निचला चक्रार्द्ध जमीन के नीचे रखेंगे। जिससे यह दर्शकों को दिखायी नहीं दे, नहीं तो दर्शकों की चमत्कार देखने की इच्छा नष्ट हो जायेगी। यह गोपनीय विधि सिर्फ अच्छे छात्र को ही दिखानी चाहिये।

अथ पुरोदित गोल परिभ्रमो भवति चक्र वदत्र मतान्तरम्
ब्रुत इह ध्रुव चक्र विलान्तगौ पृथुल दारु मयौ वलयौ क्रियात्। १०७ ।

पहले कहे गये गोल यन्त्र का भ्रमण भी इस स्वयंवह यन्त्र के समान होगा। इसके बारे में अन्य मत कहता हूँ। सायन मेषादि से ध्रुव (चक्र) मण्डल के भीतर पतली लकड़ी का दो वृत्त बनायेंगे।

विमलतैल मिलद् विल युग्मके समसुवृत्त शिखां ध्रुव यष्टिकाम्
अभिनिवेश्य पुनस्तन कीलकौ वलय पश्चिमगौनलकावधः । १०८ ।

ध्रुव चक्र के दोनों रन्ध्रो (काष्ठ के वृत्ताकार छेदो) में अच्छी तरह तेल देकर समभाग से उसमें ध्रुव यष्टि को लगायेंगे) पुनः गोल के पश्चिम में दो छोटी कीलें देकर कील के नीचे दो नली स्थापित करेंगे।

तदनुसारि रसान्वित तुम्बिका युगलकृष्ट गुणौ रचयेत्तथा
इति कृते ऽखिल कर्मणि गोल को भ्रमति संस्थिति पूर्व निरक्षके । १०९ ।

नली से दो तुम्बी लटकायेंगे और उसमें पारद देंगे। तुम्बी द्वारा खींचने के लिये गोल और तुम्बी के बीच सूत्र बान्धेंगे। इससे गोल यन्त्र विषुव वृत्त में पूर्वापर वृत्त की तरह घूमेगा।

सूर्य सिद्धान्ते- ग्रह नक्षत्र चरितं ज्ञात्वा गोलं च तत्वतः
ग्रहलोकमवाप्नोति पर्ययेणात्मवान्नरः । इति । ११० ।

ग्रह नक्षत्र तथा गोल का ज्ञान होने से व्यक्ति धनी होता है तथा मरने के बाद ग्रह लोक में जाता है ।

सिद्धान्त शिरोमणै-दिव्य ज्ञान मतीन्द्रियं यदृषिभिर्ब्राह्म्यवशिष्ठादिभि
पारम्पर्य वशाद् रहस्य मवनीं नीतं प्रकाश्यं ततः
नैतद् वेषि कृतघ्न दुर्जन दुरा राराचिरा वासिनां
स्यादायुः सुकृतक्षयो मुनिकृतां सीमामिमामुज्झतः । इति । १११ ।

ग्रहज्ञान दिव्य और अतीन्द्रिय है । यह पहले ब्रह्मा ने कहा था उसके बाद वशिष्ठ आदि ऋषियों के क्रम-से पृथ्वी पर इसका विस्तार हुआ । इस प्रकार पवित्र ज्ञान को हिंसक, कृतघ्न, दुर्वृत्त तथा अधिक दिन ज्ञान न रख सकने वाले व्यक्ति को नहीं देना चाहिये ।

ऋषि मुनियो का यह आदेश नहीं मानने से आयु तथा पुण्य का नाश होता है ।

कृति प्रति निवृत्तयो मनु जवीययो यन्महा
प्रसाद परिपूरितोदर कराननाः पावनाः
पनन्ति पतितान् पथि स्वतनू मारुतौ मादृशौ
दृशो र्वहतु मेऽन्वहं महमदो महान्तं महः । ११२ ।

जिसका महाप्रसाद हाथ में, मुंह या पेट में लेने से पुनः जन्म नहीं होता, जिसके द्वारा मेरे जैसे पतित भी पावन हो जाते हैं, उस महाप्रभु का तेज सदा मेरी दृष्टि में रह कर आनन्द दे ।

इत्युत्कलो ज्ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
श्री चन्द्शेखर कृतौ गणितेऽक्षि सिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
विंशोऽगमहाटित यन्त्रकथः प्रकाशः । ११३ ।

इस प्रकार उड़ीसा के विख्यात राजकुल में उत्पन्न श्रीचन्द्र शेखर द्वारा गणना और दृष्टि में समानता तथा बालको की शिक्षा के लिए सिद्धान्त दर्पण का यन्त्र वर्णन सम्बन्धी २० वां प्रकाश समाप्त हुआ ।

एक विंशः प्रकाशः

वासना शेष रहस्य वर्णन

कृत्वा ग्रहाणां गोलानां गणितक्रम वर्णनम्
प्रत्युक्ति शेषमिषतो वासनादिक् प्रदर्श्यते । १ ।

ग्रह और गोल का वर्णन पूरा करने के बाद प्रश्नोत्तर रूप में वासना (गणित विधियों का रहस्य या तर्क) दिखाया जा रहा है ।

व्यक्षे क्षितिज वृत्तम् यत्तदुन्मण्डलान्यतः
स्वदेशे क्षितिजे सूर्योदयोऽस्मात् स्वनिरक्षयोः । २ ।

निरक्ष देश (विषुव वृत्त स्थान) के क्षितिज वृत्त को अन्य स्थानों पर उन्मण्डल कहा जाता है । अपने अपने स्थान के क्षितिज वृत्त में ही सूर्योदय होता है । अपने स्थान के क्षितिज और निरक्ष के क्षितिज (जो अपने स्थान का उन्मण्डल है) के बीच

द्युरात्र वृत्तानुसृतेश्चरं सूर्योदयान्तरम्
द्युरात्र मण्डले यस्मात् क्षितिजादुपरि स्थिते । ३ ।

अहोरात्र वृत्त का खण्ड ही चर है । यह दोनों स्थान के सूर्योदयों में समय का अन्तर है । सूर्य अहोरात्र वृत्त में अपने क्षितिज के ऊपर रहने पर

दिनं भवेदधः संस्थे ततो भवति यामिनी
तस्मात् समत्वं सततं द्युनिशो व्यक्ष देशके । ४ ।

दिन होता है । तथा नीचे रहने पर रात होती है । निरक्षवृत्त ही सबसे बड़ा अहोरात्र वृत्त है । इसको सभी देशों का क्षितिज दो समान भागों में बांटता है । अतः सूर्य निरक्ष वृत्त में घूमने पर दिन और रात हर स्थान पर समान होते हैं । निरक्ष देश में दिन रात...सदा समान होते हैं ।

निरक्षोदयतः पूर्वं सौम्य गोले स्वदेशजः
उदयोऽस्तमयः पश्चाद् याम्य गोले विपर्ययः । ५ ।

विषुव रेखा से उत्तर-सूर्य रहने पर उत्तर के स्थानों में विषुव क्षेत्र से पहले सूर्योदय तथा पीछे सूर्यास्त होता है । दक्षिणीगोल में इसका विपरीत होता है ।

क्षितिजोर्ध्वाधरः स्थित्वा द्विकृत्तस्य च गोलयोः
सौम्ये महद्दिनं रात्रिस्तनुर्याम्ये तु वाम्यतः । ६ ।

इसका कारण है कि उत्तर गोल में उन्मण्डल अपने क्षितिज से ऊपर रहता है, उन्मण्डल तक पहंचने (निरक्ष सूर्योदय) से पहले ही सूर्य अपने क्षितिज पर आ जाता है । और अपने स्थान का सूर्योदय होता है। दक्षिण गोल में उन्मण्डल अपने क्षितिज से नीचे होता है।

सार्द्धषट् षष्टि (६६।३०) भागेभ्यो देशे यत्र पलांशकाः
भवन्त्य भ्यधिकास्तत्र विशेषोऽपर उच्यते । ७ ।

जिसका स्थान का अक्षांश ६६ १/२ अंश से अधिक है वहां विशेष घटना होती है । जिसके बारे में यहां कहा जा रहा है ।

लम्बाधिकोत्तर क्रान्ति र्यावत्तावत् सदादिनम्
याम्य क्रान्ति स्तथा यावत् तावत्तत्र निशानिशम् । ८ ।

सूर्य की उत्तर क्रान्ति जितने दिनों तक रहती है । तब तक यहां दिन होता है तथा जब तक दक्षिण क्रान्ति होती है तब तक रात्रि (अर्थात् ६ मास का दिन तथा उतनी ही रात्रि) ।

देवासुराणां क्षितिजं विषुवद् वलयं यतः
सौम्य याम्य ध्रुवौ तेषां मस्तकोर्द्ध्व स्थितौ ततः । ९ ।

विषुव वृत्त देव और असुरों का क्षितिज है । अतः उत्तर ध्रुव देवताओं का तथा दक्षिण असुरों का ख स्वस्तिक है ।

उर्ध्वे भ्रमन्तं क्षितिजादुदग् दक्षिण गोल योः
सव्यगं सूर्यमीक्ष्यन्ते देवा दैत्या स्त्व सव्यगम् । १० ।

सूर्य उत्तर गोल में रहने पर देवता लोग उसे दक्षिणी क्षितिज पर घूमता हुआ देखते हैं । सूर्य दक्षिण क्रान्ति होने पर असुर उसे उत्तरी क्षितिज पर घूमता हुआ देखते हैं ।

अस्मादुत्तर गोलस्थे भानौ दिविषदां दिनम् ।
रात्रि रन्यत्र दैत्यानां वैपरी त्यादहर्निशम् । ११ ।

क्रान्ति वृत्त का आधा भाग (सायन मेष से सायन तुला आदि तक) विषुव के उत्तर है । अतः वर्ष के आधे भाग में जब सूर्य उत्तरायण होता है, देवताओं का दिन और असुरों की रात होती है । सूर्य दक्षिणी गोल में रहने पर इसका उल्टा होता है ।

सुराणां दिन यामिन्यौ सौम्य याम्या यने इति ।
स्मृति र्दिनोन्मुखे रात्र्यमुखेऽर्कं समतातयोः । १२ ।

अतः स्मृतियों में कहा गया है सूर्य के उतर या दक्षिण अयन में रहने से सुरों का दिन या रात होता है । दिनार्द्ध के बाद सूर्य क्षितिज से नीचे की दिशा में जाने लगता है । तथा रात्रि अर्द्ध के बात ऊपर उठता है, या दिन की दिशा में जाता है ।

निशाहर्दलयो र्भानो र्यदारोहा वरोहयो
स्यादारम्भस्ततः कृत्यं देवानां स्याद् द्युरात्रजम् । १३ ।

इस प्रकार अर्द्ध रात्रि से ही दिन का आरम्भ हो जाता है। अतः उत्तरायण आरम्भ होने पर देवताओं के दिन का आरम्भ माना जाता है। और उस समय देवताओं के दिनारम्भ कृत्य मनुष्य करने पर देवता गण प्रसन्न होते हैं।

ब्रह्मयाति दूरगं भूमेः पश्येदा प्रलयं रविम्
दिनान्तेऽस्तमिते शेते तत्रेत्युक्तिः पुराविदाम्। १४।

भूमि से ब्रह्मा बहुत दूर रहने के कारण वह प्रलय होने तक सदा रवि को देखते हैं। और उनका दिन रहता है। प्रलय होने पर सूर्य अस्त (वा नष्ट) होता है तब ब्रह्मा की रात्रि होती है और वह शयन करते हैं ऐसा पुराणों में कहा है।

अन्यस्य तदहः कर्त्तुमनेन सति भास्वतः
भ्रान्तिर्युग सहस्राभ्या मेका तस्यापि मन्यताम्। १५।

अन्यों का (देव, दानव और मनुष्यों का) दिन-रात एक ही सूर्य से होता है। ब्रह्मा की रात्रि समाप्त होने पर एक अन्य सूर्य का उदय होता है। (क्यों कि पिछला सूर्य प्रलय में नष्ट हो जाता है)

दिनं स्याद्दर्शने भानोर्यतो रात्रि रदर्शने
पितॄणां तद्दिनं मासाशशि पृष्ठ निवासिनाम्। १६।

सूर्य का दर्शन होने से दिन तथा अदर्शन (छिप जाने) से रात्रि होती है। अतः पितृ लोक चन्द्र की सतह पर रहने के कारण एक चान्द्र मास उनका दिन -रात होता है।

मध्यन्दिनंस्याद्दर्शान्त पूर्णिमान्ते निशादिनम्
सितेऽसिते पक्ष दले सायं प्रात रितः क्रमात्। १७।

अमान्त में पितरों का दिनार्द्ध तथा पूर्णान्त में उन लोगों का निशार्द्ध होता है। शुक्ल पक्ष की अष्टमी में उन लोगों की सन्ध्या तथा कृष्ण पक्ष की अष्टमी (आधा में) उनका सूर्योदय होता है।

यत्रापमण्डलं प्राच्यां लगति क्षितिजे लवे
लग्नस्तद्राशि भागाद्यमस्त लग्नः परे कजे। १८।

पूर्व क्षितिज में क्रान्ति वृत्त का जो अंश लगता है वही उस समय का (उस स्थान का) लग्न है। पश्चिम क्षितिज में क्रान्ति वृत्त का जो भाग लगता है वह उस समय का अन्त लग्न है।

क्षितिजद्वय मध्यस्थौ प्रदेशा दधरोर्द्ध्व गौ
पाताल मध्य लग्ना रूयौज्ञेयौ त्रिप्रश्न दर्शनात्। १९।

पूर्व और पश्चिम क्षितिज के बीच में नीचे और ऊपर की दिशा में क्रान्ति वृत्त का जो अंश लगता है उसे क्रमशः चतुर्थ और दशम् लग्न कहते हैं। इसका ज्ञान त्रिप्रश्नाधिकार से होता है।

तिरश्चीनोऽपवृत्तस्य प्रदेशोऽस्तमयोदयौ
यात्यल्प कालेन ऋजु र्बहुना समयेन यत् । २० ।

क्रान्ति वृत्त का तिरछा स्थान जल्दी उदय और अस्त होता है किन्तु सरल भाग (लम्बा होने के कारण) उदय और अस्त होने में अधिक समय लगता है ।

ततोन तुल्या उदया व्यक्षे चक्रांध्रयः पृथक्
उद्यन्ति तिथिनाड़ी भिभार्द्धे सर्वत्रखाग्निभिः (३०) । २१ ।

अतः क्रान्ति वृत्त की सभी राशियों का उदय मान समान नहीं है । निरक्ष देश में ९०° अंश १५ घटी में तथा १८०° अंश ३० घटी में उदय होता है ।

अजादि क्षितिजे कृत्वा भ्रमयन् गोलकं सुधीः
सर्वमुक्तमनुक्तं च शिष्य बोधाय दर्शयेत् । २२ ।

यहां जो कहा गया है अथवा नहीं भी कहा गया है उसे अच्छी तरह समझाने के लिए गुरु को चाहिये कि सायन मेषादि को क्षितिज वृत्त से लगाकर भगोल को घुमाकर दिखाये ।

अक्षांशाः पञ्चमांशोनाः सप्तति (६९।४८) र्यत्र तत्रहि
नेक्ष्येत् नक्रधनुषो कर्क युग्मे सदोदिते । २३ ।

जहाँ अक्षांश ६९° ४८' है वहां धनु और मकर राशि नहीं दीखते हैं । पर मिथुन और कर्क सदा उदित रहते हैं ।

सार्द्धाष्टाद्रि (७८।३०) मिता यत्र तत्र राशि चतुष्टयम्
वृश्चिकाद्य मदृश्यं स्याद् वृषभाद्यं सदोदितम् । २४ ।

जिस स्थान का अक्षांश ७८° ३०' हो वहां वृश्चिक आदि चार राशि सदा अदृश्य रहते हैं (क्षितिज से नीचे) । वृष आदि चार राशि सदा उदित रहते हैं (क्षितिज के ऊपर) ।

पलांश नवतिर्यत्र सुमेर्वोरुयेऽत्रकेन्द्रके
भाद् ध्वं तुलाद्य लक्ष्यं स्यात् सदोदित मजादिकम् । २५ ।

जहाँ अक्षांश ९०° है (सुमेरु पर) वहां तुला आदि ६ राशि नहीं दीखते हैं । मेष आदि ६ राशि सदा उदित रहते हैं ।

एवं दैवे भुवो भागेऽथा सुरेऽक्षलवक्रमात्
व्यत्यया दृष्ट लुप्ताः स्यु राशयोऽयनसंस्कृताः । २६ ।

इस प्रकार देव भाग । उत्तरी गोलार्द्ध) तथा असुर भाग (दक्षिणी गोलार्द्ध) में अक्षांश के अनुसार ही राशि दृष्ट या लुप्त होती है । देव भाग में जो राशि सदा उदित रहती है । वह दक्षिणी (असुर) भाग के उसी अक्षांश में सदा लुप्त होती है ।

ग्रहाणां योजन गतेः साम्यं स्वीक्रियते यदि
तदागति क्रमात् कक्षाविस्तारः कर्तु मिष्यते । २७ ।

यदि ग्रहों की योजन गति समान मानी जाय तो उनकी कला गति के अनुसार कक्षा का विस्तार करना होगा (कला गति कम होने पर बड़ी कक्षा होगी ।)

तथा सति न दृक् तुल्याः शैघ्रं परिधयो हि यत्
भवन्ति त्युदिता सूर्याद् बुद्धाद्याः क्रम मन्दगाः । २८ ।

ऐसा मानने पर भी ग्रहों की शीघ्र परिधि दृक् सिद्ध नहीं होती है ।
अतः मेरा मत है कि सूर्य से बुध शुक्र आदि क्रमशः मन्द कला गति वाले ग्रहों की योजन गति भी क्रमशः कम होती जाती है ।

हानि वृद्ध्युक्तितः शैघ्र फलानां बिम्ब बाणयोः
सिद्धान्तेऽनुक्त मप्यक्तं ज्ञादीनामर्क वेष्टनम् । २९ ।

प्राचीन सिद्धान्तों में भी ग्रहों का बिम्ब, शर और शीघ्र फल का कम अधिक होना लिखा है अतः सिद्ध होता है, कि वे भी ग्रहों की सूर्य केन्द्रित कक्षा स्वीकार करते हैं । पर स्पष्ट रूप से कहा नहीं है । मैने सिर्फ स्पष्ट रूप से कह दिया है ।

भुवः परित इन्दूर्कौ मध्यमार्कात् बुधादयः
मध्यार्क सावन दिने यावद् यान्ति पुरोदितम् । ३० ।

पृथ्वी के चारों तरफ सूर्य और चन्द्र भ्रमण करते हैं तथा बुध आदि अन्य ग्रह मध्यम सूर्य की परिक्रमा करते हैं । मध्यम रवि सावन दिन में इनकी दैनिक गति पूर्व दिशा में होती है ।

स्वभाविकोगतिः सैषां मन्दोच्चा कर्षणात् तु सा
कलाद्यैर्भिद्यते नित्यं दूर सामीप्य या नतः । ३१ ।

यही इन ग्रहों की स्वाभाविक गति है । जो कि मन्दोच्च के आकर्षण के कारण होती है । पृथ्वी से ग्रह दूर या निकट होने से उनकी कलादि गति भिन्न भिन्न होती है ।

नानाचार्य निरुक्तानां भगणानांविभेदतः
कैश्चित्कल्पादि कालस्य गणना सम्मता न यत् । ३२ ।

आचार्यों के अनुसार ग्रह और उच्च का भगण भिन्न भिन्न होने के कारण कुछ गणक कहते हैं कि कल्प आदि काल की गणना भी ठीक नहीं है ।

तत् पाषण्डमतं यस्मात् सिद्धान्तोदित पर्यतैः
तदुक्त कुदिनातीत मध्यमेन्दु विवस्वताः । ३३ ।

किन्तु यह शास्त्र विरुद्ध और पाखण्ड है (आर्य भट्ट मत की आलोचना)

किन्तु प्राचीन सिद्धान्तों से उक्त मध्यम सूर्य और चन्द्र भगण से कल्प सावन दिन के अनुसार–

अद्यावर्ध्यार्य भट्टस्य कालात् शक्रशताब्दतः (१४००)
कलाभेदोऽपि नोलब्धस्तत् कथं प्राक् कृति मृषा । ३४ ।

आर्यभट्ट से १४०० वर्ष बीत जाने पर भी वर्तमान मध्यम सूर्य और चन्द्र में कला भेद भी नहीं दीखता है । अतः प्राचीन आचार्यो का शास्त्र भ्रान्त कैसे कहा जा सकता है ।

स्थिरत्वात् मन्द तुंगस्य भानोर्मध्य गति र्जनैः
भूच्छायादि समालोकात् पञ्चशाब्दैः प्रतीय ताम् । ३५ ।

रवि मन्दोच्च की स्थिरता (बहुत कम गति होने के कारण) तथा रवि मध्यम गति को भू छाया आदि देखकर ५-६ वर्षों में ही जाना जा सकता है ।

चन्द्र तत्तुं गयो र्नित्यं चलनाद् भगणास्तयोः
न शक्यन्ते नृभिर्ज्ञातुं बिना सिद्धान्त दर्शनात् । ३६ ।

किन्तु चन्द्र का मन्दोच्च तेज चलने के कारण उसके उच्च की गति या मध्यम चन्द्र गति को बिना सिद्धान्त के नहीं जाना जा सकता है ।

ज्ञायतां तत् विशेषोऽपि बहु भ्रमण दर्शिभिः
मध्योच्चाभ्यं शनेर्भेदं शताब्दैर्ज्ञायते कथम् । ३७ ।

बार बार चन्द्र का वेध करने पर ही उसका गति भेद जाना जा सकता है । शनि की गति अत्यन्त कम होने के कारण १०० वर्ष के भीतर उसकी मध्य और मन्दोच्च गति में अन्तर नहीं किया जा सकता है ।

तस्माद्रवीन्दु भगणा वर्ष मास दिनानि च
लंकार्द्ध रात्रः सर्वादिरिति सिद्धान्त वाग् ध्रुवा । ३८ ।

इन कारणों से रवि और चन्द्र का भगण, वर्ष, मास और दिन आदि की गणना कल्प से करना असत्य नहीं, उचित है । अतः सिद्धान्त वचन भी सत्य है ।

चन्द्रोच्च पात भौमादौ विसंवादो यदीक्ष्यते
तत्सर्वं स्थूल दृष्ट्योक्तं युग पर्ययवादतः । ३९ ।

चन्द्र के उच्च और पात की भगण तथा मंगल आदि के भगण में जो अन्तर दीखता है वह युग आदि के कारण दीखता है । युग भगण आदि स्थूल गणना के लिये है । सूक्ष्म गणना कल्प भगण से ही हो सकती है ।

मतिमान् भास्कराचार्यः प्रभेदं युगपर्ययैः
ग्रहाणां वीक्ष्यतत् संख्या कल्पे पूर्णमकल्पयत् । ४० ।

बुद्धिमान भास्कराचार्य ने युग भगण गणना में त्रुटि होने के कारण कल्प में पूर्ण अखण्ड भगण की कल्पना की ।

सृष्टि कालस्य च त्यागमकृत्वा कल्प वक्त्रतः ।
कालस्य गणनाञ्चक्रे लंका मध्यार्य मोदयात् । ४१ ।

उन्होंने सृष्टि काल का त्याग कर कल्प आरम्भ से ही गणना आरम्भ की । कल्प आरम्भ उनके मत से लंका की अर्द्धरात्रि नहीं, मध्यम सूर्योदय से हुआ ।

कृप्ताहर्गण संख्यया अल्पत्त्वा द्रविचन्द्रयोः
कलिवक्त्रात् स्वकालान्तं भागाद्याधिक्यपाततः । ४२ ।

कलियुग के प्रारम्भ से अपने समय तक के अहर्गण की कल्पना करने पर उसकी संख्या अत्यन्त्र कम होने के कारण उससे रवि और चन्द्र निकालने पर अंशादि का मान अधिक लगा (भास्कर को)

खाभ्र खाक्यैहते त्वादि सिद्ध बीज कलोज्झनात्
सिद्धान्त मास्य वात्मीय समये कृतवां स्तयोः । ४३ ।

अतः उन्होंने सिद्धान्त शिरोमणि के 'खाभ्रखाक्यैहताः कल्पयाताः समाः' इत्यादि श्लोकों द्वारा सिद्ध बीच कला को घटाया । इससे उन्होंने अपने समय के रवि और चन्द्र के लिए श्रेष्ठ सिद्धान्त कर दिया ।

इत्थमन्यग्रहाणाञ्च निर्माय भगणावलिम्
स्व स्वबीजैर्युतो नानां तेषां दृक् सिद्धि मैक्षतः । ४४ ।

इसी प्रकार उन्होंने अन्य ग्रहों का भी भगण आदि स्थिर कर अपने बीज को जोड़कर या घटाकर सभी ग्रहों को दृक् सिद्ध किया ।

सिद्धान्त सिद्धि रर्केन्द्वोर्बीजेनापि यदीप्सिता
स्वपर्याया स्थिरत्वं हि सतेना विष्कृतं स्वयम् । ४५ ।

बीज संस्कार कर रवि और चन्द्र स्फुट किया । इससे लगा कि उनका रचित भगण आदि निश्चित नहीं है । (नहीं तो संस्कार की आवश्यकता नहीं होती ।)

अधुनैतन्मध्यमयोः सिद्धान्त नीतयोर्यतः
दृक् सिद्धिर्भाति तस्योक्ता दृश्यते महदन्तरम् । ४६ ।

वर्तमान सिद्धान्त (सिद्धान्त दर्पण) द्वारा जिस प्रकार रवि और चन्द्र का साधन किया जाता है, वह अच्छी प्रकार दृक् सिद्ध होता है । पर भास्कर की रीति से करने पर बहुत अन्तर पड़ता है ।

यदि तत् पूर्व समये कश्चित्तत् सदृशः सुधीः
अकारिष्यत दृक् सिद्धिं कल्पितैः कल्प पर्ययैः । ४७ ।

यदि उनके पहले किसी ने भगण की कल्पना कर ग्रहों की दृक् सिद्धि की

होती

तदैवदृग् विसंवादो भास्करोक्तेर्नसंभवेत्
स्वपूर्व काल संवादा घ्यतः स्यादन्तर ग्रहः । ४८ ।

तो भास्कर की उक्ति (भगण मान) और दर्शन (वास्तविक स्थिति) में इतना अन्तर नहीं होता । उनसे (५१६) पूर्व ब्रह्म गुप्त के कल्प भगण के आधार पर गणना में भेद आते देख कर

आचार्यः कल्पभगणान् यदाहेष महान् गुणः
प्रवृत्ति दिन मासादि संख्या भेदस्तु दूषणम् । ४९ ।

अपना अलग कल्प भगण कहा यह उनका महान् गुण है । लेकिन उन्होंने कल्पादि के लंका के सूर्योदय से ग्रहविचार आरम्भ किया तथा सावन, चान्द्र दिन, मास आदि की अलग संख्या दी वह उनका दोष है ।

तथाप्येष निजेकाले लिखित्वा दृक् समान् ग्रहान्
महोपकार मकरोत् मादृशा मल्प संविदाम् । ५० ।

तथापि उन्होंने अपने समय का दृक् सिद्ध ग्रह गणित लिखकर मेरे समान कम ज्ञान वाले लोगों का बहुत उपकार किया है ।

आर्यभट्ट शतानन्द भास्कराणां स्वकालजैः
तत्तन्मतमानीतैः कामभट्टादि सम्मतैः । ५१ ।

आर्यभट्ट, शतानन्द और भास्कर आदि ने जो अपने समय का ग्रह (स्थिति) निकाला तथा काम भट्ट आदि के द्वारा गणित समान किया गया

ग्रहैः स्वानीत खेटानां कृत्वा संवादमात्मनः
कालेनाहं दृष्टि सिद्धान् सृष्टवान् भगणानसून । ५२ ।

इन सभी को मैने अपने समय में अपनी रीति में निकाले गये ग्रहों से तुलना की है और उनके अनुसार दृक् सिद्ध भगण लिखे हैं ।

तिथि भादौ घटी भेदो भाग भेदो कुजादिषु
भविष्यत्ययुताब्दान्तं नैतेभ्य इति मे मतः । ५३ ।

अतः मेरी धारणा है कि आज से अयुत (१०,०००) वर्ष बाद भी मेरी गणना आज ही के समान दृक् सिद्ध होगी । तिथि नक्षत्र आदि में, या मंगल आदि ग्रहों के स्पष्ट राशि अंश में कोई भेद नहीं होगा ।

त्रिकाल ज्ञान हीनत्वात् ना द्रशां चिरकालतः
अंशादिभिः प्रभेदश्चेत् साक्षात्कार्यः प्रमातृभिः । ५४ ।

मैं त्रिकालज्ञ नहीं हूँ अतः चिरकाल तक मेरा सिद्धान्त स्थिर नहीं रह सकता है । अतः एक अयुत वर्ष से अधिक समय के बाद स्पष्ट ग्रह के अंशों में भेद आने

पर उसका संशोधन करना पड़ेगा।

तदा मयोक्त पूर्वेषु भगणेष्वपि विपर्ययात्।
देया हेया वाथमाणा हानि वृद्ध्यनुसारतः। ५५।

मेरे कहे गये भगण के अनुसार यदि ग्रह स्थिति वास्तव से कम या अधिक आती है तो उसमें कुछ जोड़ना या घटाना पड़ेगा।

वेद तत्वानि (२५४) पञ्चेषु सिन्धवो (४५५) नव खाद्रयः। (७०९)
रामर्त्वं का (९६३) समुद्रांगं रुद्राः (११६४) सप्तेन्दु भास्कराः (१२१७)। ५६।

संशोधन के लिये मंगल के भगण में (२५४) जोड़ना या (४५५) घटाना पड़ेगा। (कल्प भगण में) बुध भगण में (७०९) जोड़ना या (९६३) घटाना पड़ेगा। गुरु भगण में (११६४) जोड़ना या (१२१७) घटाना पड़ेगा

द्विशैल रस मेदिन्य (१६७२) श्चन्द्राष्ट गुण बाहवः। २३८१)
शराग्नि रस ने त्राणि (२६३५) खनन्द गगनाऽग्नयः (३०९०)। ५७।

शुक्र भगण में (१६७२) जोड़ना या (२३८१) घटाना पड़ेगा। शनि भगण में (२६३५) जोड़ना या (३०९०) घटाना पड़ेगा।

एवं दशविधा भेदा धनर्णत्वेन सम्मताः
भौमादैः कल्पिताः कल्प भगणानां विशुद्धये। ५८।

इस प्रकार भौम आदि के कल्प भगणों में संशोधन के लिये (यदि १०,००० वर्ष बाद राशि अंश कम या अधिक हों) लिखित कल्प भागणों में इन दस राशियों को जोड़ना या घटाना पड़ेगा।

अत्रतु प्रथमो भेदो द्विगुणःक्वचिदिष्यते
ततो द्वि त्रिवेदघ्न स्तुर्यः पञ्चगुणावधि। ५९।

यहां दिया हुआ प्रथम भेद २ गुणा भी हो सकता है। तृतीय भेद, २, ३ या ४ गुणा भी हो सकता है। चतुर्थ भेद ५ गुणा तक हो सकता है।

तथैवाष्टमपक्षः स्यात् सप्तमो दिग् गुणावधिः
अन्यो द्वित्रिगुणो ग्राह्य स्त्रयस्त्रिंशद् भिदा इति। ६०।

इसी प्रकार ८ वां भेद २, ३, ४ या ५ गुणा हो सकता है। अन्या का २ या ३ गुणा तक होगा। इस प्रकार इन भेदों की संख्या ३३ हुयी।

एषामन्योन्य योगाद्य ये स्तुस्ते भास्कर स्यमे
संवादात्काल योर्ग्राह्या स्त्रिंश लिप्तान्तरा दपि। ६१।

भास्कर के समय और मेरे समान के बीच दृकसिद्धि में यदि ३० कला का भी अन्तर पड़े तो यह योग वियोग करना पड़ेगा।

तिथ्यादौ ग्रहमादौ च चन्द्र मन्दोच्च पातयोः
सर्वोपादेयता हेतो स्तद् विशेषं ब्रुवे पुनः । ६२ ।

तिथि नक्षत्र आदि निकालने में तथा ग्रहण आदि में चन्द्र मन्दोच्च और पात की सर्वोपयोगिता के कारण उसके संशोधन के बारे में कह रहा हूं ।

ख चतुर्नव सप्तेश वसु नाग कृता इति (४८,८१,१७,९४०)
उक्त पूर्वान्मया चन्द्रमन्दोच्च भगण ब्रजात् । ६३ ।

पहले चन्द्र मन्दोच्च का कल्प भगण (४८,८१,१७,९४०) कहा गया गया है ।

कालान्तरे सुसाध्यस्य तुंगस्येक्षण सिद्धितः
अधिकं न्यूनता वापि भवता तेत्तदाप्यमो । ६४ ।

बहुत काल के बाद उसमें अच्छी तरह उच्च साधन करने पर यदि उससे वास्तविक मान अधिक या कम दिखायी दे तो दिये गये मान में

ग्राह्या दृक् सिद्धये भेदा द्विसप्त रस भूमयः (१६७२)
चन्द्राद्रिगुणपक्षा (२३८१) वा किं वाग्नीषु ख सागराः । ४०५३) । ६५ ।

१६७२, २३८१ या ४०५३ जोड़ेगे या घटायेंगे (जिस मान से गणना और दृष्टि में समानता है ।)

तत्पात भगणानान्तु शंकानास्ति विपर्यये
तथाप्यब्दा युतेऽतीते भेदो भागाधिका यदि । ६६ ।

चन्द्रपात भगण में एक अयुत (१०,०००) वर्ष के बाद परिवर्तन अवश्य होगा । गणना और दृष्टि में एक अंश का अन्तर हो

भावीतद् व्यद्रिष्ट चन्द्रा (१६७२) स्तेषु दृश्यनुसारतः
क्रान्ति पातस्य भगणेष्व भ्रगो गगनाग्नयः । (३०९०) । ६७ ।

तो भगण में १६७२ जोड़ेगे या घटायेंगे । क्रान्ति पात का भगण में (३०९०)

खाद्रिद् व्यर्थाः (५२७०) खधृत्यंगा (६१८०) न्यभ्रषड् गुणदन्तिनः । (८३६०)
एतेद्विघ्ना स्त्रिनिघ्नाश्च दिग्गजांक निशाकराः । (१९,८१०) । ६८ ।

(५,१७०) (६१८०), (८,३६०) इसका दो गुणा (१६,७२०) ३ गुणा (२५, ०८०) (१९८१०) या (२८,१७०) जोड़ेगे या घटायेंगे । (कल्प में क्रान्ति पात भगण ६,४०,१७० है)

खाद्रिचन्द्राष्ट पक्षाश्च (२८,१७०) यो ज्यात्याज्या तथापि चेत्
दृक् सिद्धिर्न तदा भानो व्यत्यया भावनिश्चयात् । ६९ ।

यदि इसके बाद भी क्रान्ति पात स्पष्ट नहीं होते तो सूर्य की छाया द्वारा क्रान्ति साधन करेंगे ।

गणितागत सूक्ष्मार्क छायार्कान्तर सम्मिताः
अयनांशादयो ग्राह्या विशेषोऽत्रेति कीर्त्तितः । ७० ।

सुक्ष्म गणित द्वारा सूर्य तथा छाया द्वारा सूर्य निकाल कर (त्रिप्रश्नाधिकार विधि से) दोनों का अन्तर निकालेंगे । जो कि वास्तविक अयनांश होगा ।

यदा प्रजापतिः खेटान् सृष्टा जादौन्यवीविशन्
ततो द्विद्यु (२२) ब्दतः कुम्भराश्यादौ निदधे गुरुम् । ७१ ।

(वाराह मिहिर की वृहत्संहिता के अनुसार) जब सृष्टि का आरम्भ हुआ उस समय वृहस्पति मेष राशि के आरम्भ में था । अतः वह २२ वर्ष बाद कुम्भ राशि में निश्चय रहा होगा । (मध्यम मान से १ वर्ष में एक राशि)

तदादि प्रभवस्तस्मात् प्रवृत्तोऽब्दागुरौ पुनः
मेषादि निष्ठे शुक्लाया इति सांहितिकोविदः । ७२ ।

उससे प्रभव नामक गुरुवर्ग आरम्भ हुआ । पुनः वृहस्पति मेषादि में रहने से उस वर्ष का नाम शुक्ल आदि हो सकता है ।

राशि द्वय युतिः प्रोक्ता मया मध्य वृहस्पतौ
तत्पर्यय विपर्यसि सम्भविष्यति पण्डितैः । ७३ ।

अतः प्रभव से आरम्भ होने वाला गुरु वर्ष निकालने के लिए मध्यम वृहस्पति में २ राशि जोड़ा जाता है । भविष्य में वृहस्पति साधन में यदि भगण परिवर्तन के कारण अन्तर हो तो पण्डितों द्वारा

भगणां पञ्चनिःशेषाः कल्प्यास्तत् खरदावलिं
सृष्टेर्विश्वावसु (३९) मुखा कपिलाख्या (५१) दिरेववा । ७४ ।

गुरु भगण में ५ से भाग दिया जायेगा । क्योंकि गुरु वर्ष ६० होते हैं और ५ वर्ष में एक-एक सम्वत्सर होने के कारण ५ से भाग देने पर १२ सम्वत्सर होंगे । सृष्टि आरम्भ से विश्वावसु (३९), कपिल (पिंगल) (५१)

शुक्ला (३) दिर्वा वृषा (१५) दिर्वा विजया (२७) दिरथापि वा
लेख्याः स्वकाल सिद्धिना मब्दानामविरोधतः । ७५ ।

शुक्ल (३) वृष (१५) या विजय (२७) आदि संवत्सर ही होगा । क्योंकि ६० को ५ से भाग देने पर प्रत्येक १२ संवत्सर केआरम्भ में इन्हीं में से कोई वर्ष होगा । अपने देश में प्रचलित अब्द का नाम लिखना चाहिये ।

किन्तु खाब्ध्यष्ट सप्तार्थ द्व्यब्धिषड् गुण पर्ययाः (३६ ,४२,५७,८४०)
शुक्लाद्य ब्द गणाः सर्व पक्षतः साधवो मताः । ७६ ।

वृहस्पति की भगण संख्या (३६,४२,५७,८४०) मानने वाले लोगों के लिए शुक्ल से ही सम्वत्सर आरम्भ करना चाहिये ।

एतद् भगण जेष्विन्दु (१५) लिप्तोनेजस्य संम्प्रति
दृक् साम्यात्पदकं लेखं ध्रुव गत्यादि संगतम् । ७७ ।

इस भगण से जो मध्यम वृहस्पति आयेगा उससे १५ कला घटाने पर वह आकाश में प्रत्यक्ष होगा । इसमें ध्रुव गति आदि जोड़कर पदक आदि लिखना होगा ।

भाविद् व्यब्धीश (११४२) वर्षान्ते मतद्वयज गीष्पतेः
समत्वं भविता तत्र कार्यें दृक् सिद्धि रुत्तमैः । ७८ ।

(११४२) वर्ष बाद उल्लिखित मत और पारम्परिक मत के अनुसार गुरु साधन कर देखेंगे कि दोनों मत से एक ही मान आता है, कि नहीं । उस समय सूक्ष्म बुद्धि वाले दृक् सिद्धि करेंगे ।

शास्त्रस्यास्य विसंवादे धर्मगोप्ताच्युतेन चेत्
सम्भव्यो ग्रन्थकृत्कश्चिद्रहस्य तत्कृतेह्यदः । ७९ ।

ज्योतिष शास्त्र की गणना में त्रुटि होने पर धर्मरक्षक भगवान इस शास्त्र का संस्कारक उत्पन्न करते हैं । उसी को यह गोपनीय शास्त्र ज्ञात होता है । अन्य लोग यह रहस्य नहीं समझ सकते ।

कलाद्या दशधा भुक्तिर्ग्रहाणां या पुरोदिता
क्रमाद्दश गुणैकादिदिनं संख्या हताथसा । ८० ।

'ग्रहों की गति कला आदि १० भागों में पहले दी गयी है, इस दैनिक गति को क्रमशः १०,१० से गुणा कर दिन संख्या से गुणा करेगें ।

अन्ततः क्रमषष्ठाप्तै र्विवरान्त समन्विता
ततो द्वित्र्यादि नन्दान्त गुणिता खरसादिभिः । ८१ ।

फल को अंतिम स्थान (सबसे छोटे विभाग) से ६० से भाग देकर शेष को वहीं रखेंगे, और भागफल को अगले विभाग की राशि में जोड़ेगे । यही क्रिया उस राशि और क्रमशः अगली राशियों में करेंगे । गुणनफल को पुनः २,३,---९ संख्याओं से गुणा कर ६० से भाग देकर

विपरादि गृहान्तानां स्वहारै र्विहृता क्रमात्
फलयुक् शेष संस्थानैः सिद्धं यद् भादि पञ्चकम् । ८२ ।

विपरा आदि [illegible] स्थान में फलों को [illegible] । यह राशि आदि ५ स्थानों की [illegible]ंख्या होगी ।

तत्कोष्ठकेषु संलेख्यं स संख्या पद काक्षया
कर्मेद भगणैः खेटा नयनात्सुकरं मतम् । ८३ ।

इसको कोष्ठक (Column) में लिखकर रखेंगे । इन्हीं संख्याओं को पदक

कहते हैं। भगण के अनुपात से इष्ट सावन दिन का ग्रह निकालने की तुलना में यह विधि सरल है।

योक्ता परिधिनैर्मान्द्य शैघ्र्यः स्पष्टीकृतिः फलैः
भूगोल एव सातुल्या न तु लोकान्त रेष्वपि । ८४ ।

मन्दफल और शीघ्र फल संस्कार से ग्रहों को स्पष्ट करने की विधि पृथ्वी के लोगों की दृष्टि से ही ठीक है। अन्य ग्रहों से देखने पर वैसी ग्रह स्थिति नहीं होगी।

अन्य खेटेषु लोकेषु दृक् सिद्ध्यै तत् प्रमाणतः
रवि कर्मानुसारेण सोन्नेयो फल वासना । ८५ ।

अन्य ग्रहों के लोगों को जिस स्थिति में ग्रह दिखाई देंगे उसे स्पष्ट करने के लिए उस ग्रह की दूरी तथा अन्य ग्रहों का रवि कर्ण से साधन करना होगा। मन्दफल और शीघ्र फल करने का यही रहस्य है।

सिद्धान्त शिरोमणौ-भूमेर्मध्ये खलु भवलयस्य मध्यं यतः स्याद्
यस्मिन् वृत्ते भ्रमति खचरो, नास्यं मध्यं कुमध्ये
भूस्थो द्रष्टा नहि भ वलये मध्य तुल्यं प्रपस्येत्
तस्मात्तज्ज्ञैः क्रियत इहतद्दोः फलं मध्यखेटे । इति । ८६ ।

नक्षत्र मण्डल के केन्द्र में भूगोल का केन्द्र है लेकिन वह ग्रह कक्षा का केन्द्र नहीं है। अतः पृथ्वी की सतह से देखने पर अपने मध्य समान स्थिति में नहीं दिखायी देगा। अतः ज्ञाता लोग मध्यम ग्रह का भुजफल (मन्द या शीघ्र) संस्कार कर ग्रह स्पष्ट करते हैं।

स्फुटीकृतः न भोगानां साक्षात्कर्तुं समक्षितौ
साष्टादश कलाद्र्यर्था (५७।१८) ङ्गुल सूत्रेण शीतगोः । ८७ ।

ग्रहों को स्फुट करने के लिए तथा उनकी वास्तविक स्थिति देखने के लिए समभूमि के एक अंश की अंगुल परिधि के हिसाब से (५७।१८) अंगुल व्यासार्द्ध का चन्द्र का कक्षावृत्त बनायेंगे।

कक्षावृत्तं लिखेदादौ भगणांशांगुलां गितम्
पूर्वोत्तरादि क्रमतो राशि चिह्नान्यजादितः । ८८ ।

कक्षा वृत्त का परिमाण ३६ अंगुल होगा। उसमें मेष आदि १२ राशियों को पूर्व से उत्तर दिशा की तरफ क्रम से चिह्नित करेगा।

हस्त्वान्तद् व्यंगुल व्यासं भूगोल विलिखेद् विधोः
मेषादिस्थं स्वमन्दोच्चं कल्पयित्वाल्पदूरगम् । ८९ ।

मध्य में २ अंगुल व्यास का भूगोल बनायेंगे। पृथ्वी से अल्प दूर पर मेषादि में चन्द्र मन्दोच्च को रखेंगे।

द्विगुणान्त्यफलज्य (६००) नुसारा द्दशभिरंगुलै
दूरमन्दोच्च काष्ठायां दधाद् विन्दुं कुमध्यतः । ९० ।

पृथ्वी केन्द्र से अन्त्यफल ज्या का दो गुणा (६०० कला) के अनुसार दस अंगुल दूरी पर मन्दोच्च की दिशा में एक बिन्दु देंगे ।

दत्रचक्षिति मध्ये च निश्चलाग्र युगे गुणे
त्रिज्यान्त्य फलशिञ्जिन्योवर्गयोगपद क्रमात् । ९१ ।

उस विन्दु से भूकेन्द्र तक एक रेखा खींचेगे । त्रिज्या और चन्द्र अन्त्य फल की ज्या के वर्गों को जोड़कर कर उसका वर्गमूल निकालेंगे ।

द्वैगुण्या द्विकला ब्यार्थ रुद्रां (११५।२) गुल मिते पुनः
हत्वा सूचीं समाकृष्य तत्सूत्रस्य सरद्वयम् । ९२ ।

उसको दो से गुणा कर अंगुल करने के लिए पुनः ६० से भाग दें । फल (११५।२) अंगुल होगा ।

$$२ \times \sqrt{\text{त्रिज्या}^२ - \text{चन्द्रअन्त्यज्या}^२} = \sqrt{३४३४ + ३००^२} \times २$$
$$= २ \times \sqrt{१,१८,१९,८४४ + ९०,०००} = २ \times (३४५११।४)$$
$$\text{कला} = \frac{२ \times (३४५१।४) \text{ अंगुल}}{६०} = (११५।२) \text{ अंगुल}$$

क्रमयोत्परितस्तां चेद्या रेखोत्पद्यते ततः
प्रतिमण्डल नामासौ मन्दोच्च कर्षणोद् भवा । ९३ ।

इतने अंगुल व्यासार्द्ध के वृत्त को प्रतिवृत्त कहा जायेगा (समद्विबाहु की सूइयों को इतनी दूरी तक तानकर घुमाने में) । यह मन्दोच्च के आकर्षण से होता है ।

कक्षा वृत्त समैवस्यादोजपादान्तयो रसौ
युग्मान्त गेन्दु कक्षायाः षड्विंशति कलाधिका । ९४ ।

प्रतिमण्डल रेखा कक्षा के विषम पदान्त में कक्षा वृत्त से सम्पात् करता है तथा उसके बराबर होता है । सम पदान्त में चन्द्र कक्षा से २६ कला अधिक होता है ।

प्राक् पश्चिमान्तरं कक्षा प्रतिमण्डल रेखयोः
चक्रे शरां गुल विश्वलिप्ताश्चं (५।.१३) केन्द्र जेविधोः । ९६ ।

चन्द्र के १२ राशि केन्द्र में कक्षा और प्रतिमण्डल का पूर्व और पश्चिम का परम अन्तर (५।१३) अंगुल है ।

चक्रार्द्धे विश्व लिप्तो न पञ्चांगुल मितं (४।४७) यतः
स्व स[illegible]स्य ततो युक्ता तुंगा कर्षण भूरिता । ९७ ।

६ राशि केन्द्र में वही परमान्तर (४।४७) अंगुल होता है, (५' + १३" चक्र के

अन्त में) इस स्थान के निकट उच्च और नीच जनित आकर्षण अधिक होता है ।

अत्रोच्चस्य पुरस्थत्वात् कक्षातः प्रतिमण्डलम्
पूर्वाकृष्ट मतः कक्षा मिथुनान्त स्थितो विधुः । ९८ ।

मन्दोच्च पूर्व में रहने पर प्रतिमण्डल कक्षा से पूर्व की तरफ आकृष्ट होता है ।कक्षा में चन्द्र मिथुन राशि के अन्त में रहने पर

प्रतिमण्डल चापान्ते कक्षा चापान्त गस्त्वयम्
प्रतिवृत्त त्रिराश्यन्ते तिष्ठ त्येवं गृहान्तरात् । ९९ ।

प्रतिवृत्त में धनुराशि के अन्त में रहेगा । कक्षा में राशि के अन्त में रहने पर धनु प्रति वृत्त में मिथुन राशि के अन्त में रहेगा ।

पूर्वाकर्ष वशात्कक्षा सौम्यस्थेऽजादि भार्द्धके
प्रत्यङ्मुखे मध्यखादूनः स्याद्वि स्फुट ग्रहः । १०० ।

ग्रह को उच्च अपनी तरफ (पूर्व दिशा में) खींचने के कारण कक्षा के उत्तर में स्थित मेष आदि ६ राशियों में स्फुट ग्रह मध्य ग्रह से कम तथा

कक्षामध्य स्य तौल्यादि भदले प्रामुखे पुनः
मध्यमादधिकः स्पष्टश्चक्र चक्रार्द्धयोः समः । १०१ ।

कक्षा के दक्षिण में स्थित तुला आदि ६ राशियों में मध्य ग्रह से स्पष्ट ग्रह अधिक होता है । मेष और तुला के आदि में स्फुट ग्रह तथा मध्यम ग्रह समान होते हैं ।

भूमध्याद्रचये द्रेखां मण्डलद्वय भेदिनीम्
स्पष्ट मध्य ग्रहामेकां सृष्ट स्पष्टखगां पराम् । १०२ ।

भू केन्द्र से मध्य ग्रह तथा स्फुट ग्रह तक एक-एक रेखा खींचते हैं । ये रेखायें कक्षा और प्रतिवृत्त दोनों मण्डलों को काटती हुई जायेंगी ।

तयो संज्ञायते यावत् प्रतिवृत्त कलान्तरम् ।
तस्याद् बाहुफलं तिर्यग् द्वितीया यातु रेखिका । १०३ ।

प्रतिवृत्त में इन दोनों रेखाओं के बीच जितना अन्तर (कला आदि में) होगा वही मन्द भुजफल है । यह तिर्यक् होता है (मध्य रेखा की दिशा नहीं, उससे लम्ब दिशा में) ।

वृत्तयोरन्तरगता तदूर्ध्वे कोटिजं फलम्
दोः कोटि फल वर्गैक्य मूलंया क्रर्णरेखिका । १०४ ।

दोनों वृत्त के अन्तर में भू केन्द्र से स्पष्ट ग्रह तक रेखा कोटि या कोटिफल होता है । भुजवर्ग और कोटिवर्ग के योग का वर्गमूल कर्ण रेखा होती है ।

उच्चोन्मुखी भवेत् सैवा कर्षण प्रमितिर्मता
चन्द्रग्रहोक्त कर्णादिः संवादोऽत्रापि चिन्त्यतम् । १०५ ।

यह कर्ण रेखा उच्च की दिशा में होती है । वही उच्च आकर्षण का असल मान है, जिसको अन्त्यफल या अन्त्यज्या कहते हैं । चन्द्र स्फुट के इस परिलेख से बिम्ब और कर्ण की दृक् सिद्धि तथा चन्द्र ग्रहण के बारे में भी विचार किया जा सकता है ।

दृश्यश्चक्रान्त गस्याणु र्बिम्बश्चक्रार्द्ध गस्यतु
पृथुर्बाहु फलाभाव स्तत्र कोटि फलं महत् । १०६ ।

उच्च स्थान के ग्रह का बिम्ब बड़ा होता है । ६ राशि और १२ राशि केन्द्र (उच्च से दूरी पर) बाहु फल नहीं होता है और कोटिफल सर्वाधिक होता है ।

केन्द्र स्यौज पदान्तस्थ ग्रहस्य मृदुदोः फलम् ।
महत्कोटिफलाभावस्तत्र बिम्ब समोभवेत् । १०७ ।

केन्द्र (उच्च से कोणीय दूरी) ओज पदान्त (विषम पद के अन्त ९०° तथा २७०° पर) में रहने पर मन्दफल सर्वाधिक तथा कोटिफल शून्य होता है । इन स्थानों पर ग्रह बिम्ब मध्यम होता है । अर्थात् उच्च और नीच बिम्बों के योग का आधा होता है ।

चक्रे दूरस्थिते र्भूमेश्चक्रार्द्धे निकटस्थिते
प्राग् गते र्न्यूनताधिक्यं भवेत् खेटस्य बिम्बवत् । १०८ ।

उच्च स्थान का ग्रह पृथ्वी से दूर रहने के कारण तथा नीच स्थान पर अति निकट रहने के कारण उच्च स्थान के ग्रह की पूर्व गति सबसे कम तथा नीच स्थान पर सबसे अधिक होती है, जिस प्रकार ग्रह का बिम्ब छोटा बड़ा होता है ।

तन्नक्रादौ मन्द केन्द्रे गतेः फल मृणाभिधम्
क कर्यादौ तद् धनं प्रोक्तम् साम्येऽपि गतिवर्त्मनः । १०९

गति समान होने पर भी केन्द्र मकर आदि ३ राशियों में रहने गति फल ऋण तथा कर्क आदि ६ राशियों में धन होता है ।

सिद्धान्त शिरोमणौ- यथा भवेत्तैलिक यन्त्र मध्ये
काष्ठभ्रमो गोभ्रमतो विलोमः
नीचोच्च वृत्ते भ्रमणं तथा न्यत्
स्याद् गच्छतोऽपि प्रतिमण्डलेन । इति । ११० ।

तेल की घानी में जिस प्रकार बैल की गति की उल्टी दिशा में तेल पेरने वाले काठ की गति होती है, उसी प्रकार नीच उच्च वृत्तों में भ्रमण करते हुये ग्रह की गति उच्च से विपरीत दिशा में होती है ।

रवीन्दूञ्चौ भकक्षायां स्थितौ चेद् भास्करोदितः
ऋज्याकृष्टौ जपादान्ते कर्णस्यात्रिगुणा (३४३८) धिकः । १११ ।

रवि और चन्द्र भकक्षा में उच्च कक्षा में विषम पाद में रहने पर भास्करा चार्य का कहा हुआ कर्ण (मन्दकर्ण) त्रिज्या से अधिक होता है । तथा ग्रह की गति भी सरल या ऋजु होती है ।

केन्द्रौजांघ्र्यन्त गतयो स्त्रिज्यासाम्य मृदुश्रुतेः
चेद् बिम्बार्थ मुरी कार्यंत दाकर्षण रेखयोः । ११२ ।

रवि चन्द्र का केन्द्र विषमपाद के अन्त में रहने पर उनका बिम्ब मध्यम मान का रहने के कारण मन्द कर्ण को त्रिज्या के बराबर माना जायेगा ।

किञ्चित् वक्रतया मध्य रवीन्दोः क्षितिमध्यतः
अन्तरं यावदेतावद् भवतु स्फुटयो रवि । ११३ ।

दोनों स्थानों (उच्च से ९०° तथा २७०° पर) पर प्रतिवृत्त सामान्य वक्र होने के कारण भूकेन्द्र से मध्यम रवि या चन्द्र की दूरता स्पष्ट रवि या चन्द्र दूरता के ही बराबर होगी ।

तत्रार्केन्द्वोर्मध्यकर्णौ (७६०८२९४।४८७०५)
त्रिशरै (५३) स्त्रिभुजैः (२३) क्रमात्
गुणितौ स्वोच्चकर्णौस्थः कक्षाप्येवं प्रकल्पताम् । ११४ ।

रवि और चन्द्र का मन्दकर्ण क्रमशः ७६,०८,२९४ तथा ४८,७०५ योजन है । इनको क्रमशः ५३ तथा २३ से गुणा करने पर इनका उच्च कर्ण होगा । रवि का उच्च कर्ण = ७६,०८,२९४ x ५३ = ४०,३२,३९,५८२ योजन तथा चन्द्र का उच्चकर्ण = ४८,७०५ x २३ = ११,२०,२१५ योजन है । इन्हीं कर्णों के अनुसार उनकी उच्चकक्षा की कल्पना करनी चाहिये ।

विधोस्तुङ्गान्तराख्यस्य पाक्षिकस्य फलस्य च ।
सपातैः तद्दिगंश स्योपलब्धिर्वा सना मता । ११५ ।

चन्द्र का तुंगान्तर, पाक्षिक, पात और चन्द्र का दिंगश फल इत्यादि जो कहा गया है उनकी कोई युक्ति नहीं है । उपलब्धि पर ही, ये सब निर्भर है । वास्तविक मान से समानता से लिए इनकी कल्पना की गयी है)

द्वितीय यन्त्रवत् सूर्य कक्षां स ग्रह कक्षिकाम्
विलिख्य भूमिं मध्य ततः पश्येच्चलक्रियाम् । ११६ ।

बहुकक्ष यन्त्र के समान मंगल आदि की कक्षा के साथ सूर्य कक्षा बना कर सूर्य कक्षा के केन्द्र में भूगोल रखेंगे । कक्षा को घुमाकर शीघ्र फल किस प्रकार होता है, वह दिखायें तथा स्वयं भी देखें ।

तत्रानुलोमगं केन्द्र शीघ्रं तुंगस्य यद् गतिः
बह्वो मध्य गते भुक्तिः स्फुटा स्याद्दोः फलक्रमात् । ११७ ।

प्रतिमण्डल में शीघ्र केन्द्र को उल्टी दिशा में देंगे । शीघ्रोच्च की गति ग्रह की मध्य गति से बहुत अधिक है । अतः शीघ्र फल के अनुसार ही स्फुट ग्रह की गति होनी चाहिये । ग्रह का शीघ्र फल संस्कार करने से जिस प्रकार स्फुट ग्रह होता है, उसी प्रकार गति में शीघ्र गतिफल का संस्कार करने से स्फुट गति होती है ।

चक्रार्द्धे तत् समीपे च प्राग् गतेः सूर्यतो यतः
बहुगत्येर्ज्ञ सितयोः सूर्य भूमध्य संस्थितिः । ११८ ।

नीच स्थान में या उसके निकट के सूर्य की पूर्व गति से अधिक गतिशील बुध और शुक्र की स्थिति सूर्य और पृथ्वी के बीच में होने के कारण उनकी वक्र गति दीखती है ।

ततो वक्रागतिर्दृश्या भौमेज्यार्क भुवां पुनः
भास्वतो भिन्न दिक् स्थानान् मन्दगानां तथैव सा । ११९ ।

पुनः सूर्य से मन्द गतिवाले और पृथ्वी से सूर्य की भिन्न दिशा में स्थित (सूर्य से भूगोल की दिशा में स्थित) मंगल, गुरु और शनि की चक्रार्द्ध में अर्थात् पृथ्वी के निकट (नीच स्थान, या उसके पास) वक्र गति दीखती है ।

विस्तरेणोच्यते वक्रा वक्रा भुक्तिः सवासना,
कर्णयोजन संख्या या अंगुलत्वजुषः क्षितौ । १२० ।

अब युक्तिके साथ मार्गी और वक्री गति के बारे में विस्तार से कहा जा रहा है। रवि का मध्यम कर्ण योजन के अनुपात अंनुसार अंगुल मान की सम भूमि पर कक्षा बनायेंगे ।

त्रयोदशा युतांशेन गजार्थ (५८) ङ्गुलकेन हि
सूत्रेण रचये वृत्तः रविकक्षेति सम्मतम् । १२१ ।

रवि के मध्यमकर्ण ७६,०८,२९४ का १३,००० वां भाग प्रायः ५८ होगा इसे अंगुल मान कर (कक्षा योजन में है, १ अंगुल = १३,००० योजन) उतने व्यासार्द्ध की रवि कक्षा बनायेंगे ।

मध्येन्यस्य महीबिन्दुं मध्यार्कं तस्य पश्चिमे
सप्ताशीत्य (८७) ङ्गुलेनैव कक्षा तत् परितोऽसृजः । १२२ ।

इस कक्षा के मध्य बिन्दु में पृथ्वी बिन्दु देकर उसके चारों तरफ मंगल कक्षा ८७ अंगुल व्यासार्द्ध (यहां भी १ अंगुल = १३,००० योजन) का बनायेंगे ।

प्राग् भागे निजकक्षायां न्यसेद् बिम्बं महीभुवः
सूर्य भूमंगलस्यूत सूत्राग्रे बहु दूरतः । १२३ ।

इस कक्षा की पूर्व दिशा में मंगल को रखेंगे । पृथ्वी, रवि और मंगल के केन्द्र से एक रेखा खींचकर बहुत दूर में

प्रकल्प्यां तारकां काञ्चित् प्राच्यं कौतत्समं कुजम्
दृष्टा चक्रार्द्धगं याम्य भाग मूर्ध्वे विचार्य च । १२४ ।

पूर्व दिशा में एक तारा की कल्पना कर उसे रखेंगे । पृथ्वी के अति निकट में मंगल रखकर उसे उसी तारा की दिशा में रखेंगे । यह कक्षा के दक्षिण भाग में होगा और इस भाग को ऊर्ध्व मानकर

मध्यार्क दक्षिणं नीत्वा हर्गत्यां गुल मानया
तथा भौमं सकक्षञ्च सार्थां (५) शोनांगुलात्मना (४८) । १२५ ।

दैनिक एक अंगुल गति से मध्यम रवि को दक्षिण भाग की तरफ चलायेंगे । कक्षा सहित मंगल को ४८ अंगुल गति से

स्वगत्यो तरणं कुर्यात्तारा सूत्रात् सयाम्यगः ।
षष्ट्यंशकै र्द्वादशभ (१२) दृश्यतेऽन्तरितः स्फुटः । १२६ ।

उत्तर दिशा में चलायेंगे । ऐसा करने से स्फुट मंगल तारा सूत्र से १२ षष्ट्यंश कला दक्षिण दिशा में खिसकेगा ।

भूमि सूर्यान्तरार्द्ध यद् भूमि भौमान्तर श्रवः
ततः सिद्ध कला दृश्या साक्षाद् वक्रा गति र्भुवि । १२७ ।

पृथ्वी से मंगल कर्ण (दूरी) सूर्य कर्ण दूरी या अन्तर का आधा होगा और पृथ्वी से मंगल की वक्र गति २४ कला (१२ कला की दुनी) दीखेगी ।

चक्रे कुजार्कयोरेक दिग् गतिर्नग दिक् (१०७) कला
भौमयाम्य गतिः सूर्य कर्ण (५८) घ्नी निजकर्म (१४५) हृत् । १२८ ।

उच्च स्थान से रवि और मंगल की एक दिशा में स्थिति के कारण १०७ कला मंगल दक्षिण गति को सूर्य कर्ण (५८) से गुणा कर अपने कर्ण १४५ (सूर्य कक्षा व्यासार्द्ध ५८ मंगल कक्षा व्यासार्द्ध ८७) से भाग देने पर (१०७ x ५८)/१४५ = ४३)।

रामाब्धि (४३) कलिका साक्षाद् ऋज्वो भवति तद् गतिः
इत्थमन्य ग्रहाणाञ्च द्रष्टव्या विविधा बुधैः । १२९ ।

४३ कला मंगल की मार्गी गति होगी । यह उक्त चित्र में स्पष्ट प्राप्त होता है। इसी प्रकार उदाहरणों से अन्य ग्रहों की भी मार्गी और वक्री गति प्रत्यक्ष देखी जा सकती है ।

प्राक् सिद्धान्त मते सैव इति कक्षा कुजस्य तु
नवाशा (१०९) ङ्गुल सूत्रोत्थ कार्याभूवेष्टन क्रमात् । १३० ।

पूर्व सिद्धान्त के अनुसार पहले कहे गये रवि कक्षा को ही रवि कक्षा मानें । पृथ्वी केन्द्र की मंगल कक्षा का केन्द्र माने । पृथ्वी के चारों तरफ भू केन्द्र से १०९ अंगुल व्यासार्द्ध से मंगल कक्षा बनाये ।

एक सूत्रेऽर्क भू भौमाः स्थाप्या भञ्चपुनः पुनः
स्वशीघ्र तपनाकृष्टः पश्चाद् व्यद्रा (७२) ङ्गुलान्तरे । १३१ ।

एक सूत्र में सूर्य, पृथ्वी और मंगल बिम्ब को रखकर भकक्षा के के एक नक्षत्र को भी प्रायः उसी सूत्र में रखेंगे । मध्यम सूर्य मंगल के शीघ्रोच्च है । उससे आकृष्ट होकर मंगल पश्चिम दिशा में ७२ अंगुल दूरी पर

स्थितश्चक्रार्द्धगो दृश्यस्ततो दिन गतिः समा
याम्ये सौम्येऽर्क कुजयोर्दत्वा प्राग् वत् स्वकक्षयोः । १३२ ।

अपने नीच स्थान (चक्रार्द्ध) में दीखेगा । इसके बाद रवि और मंगल की दैनिक गति क्रमशः दक्षिण और उत्तर की तरफ अपनी अपनी कक्षा में पहले के समान दिखायेंगे ।

ततस्तावदिनाकृष्टे रङ्गुलं गां (७) शउत्तरे
सूत्राद् गतस्य दृश्यस्य प्राग् गति विश्व (१३) लिप्ति का । १३३ ।

वहां से सूर्य आकर्षण के १/७ भाग (७ २/७) उत्तर को मंगल की १३ कला पूर्व गति दीखेगी ।

भूमध्यार्क समे सूत्रे भकक्षायां यदीष्यते
शीघ्रोच्च तद् गति द्वैधा चक्र चक्रार्द्धयो भवेत् । १३४ ।

परन्तु नीच स्थित मंगल की वक्र पश्चिम गति भी दीख सकती है । पृथ्वी केन्द्र और सूर्य केन्द्र से जाते हुए सूत्र (रेखा) भकक्षा को जिस स्थान पर काटेगा वहां शीघ्रोच्च पर ऊच्च और नीच स्थान में दो प्रकार की गति होगी -एक पूर्व और दूसरी पश्चिम ।

तदाकर्षात् कुजादीनां यद्यत् स्यात् प्रतिमण्डलम्
तत्रन्मध्येऽर्क मध्यस्य स्थितेः सिद्धयति तद् भ्रमः । १३५ ।

शीघ्रोच्च आकर्षण के कारण मंगल आदि ग्रहों का जो शीघ्र प्रतिवृत्त होता है उन्हीं के केन्द्र में रवि का केन्द्र होने से मध्यम रवि की मध्यम गति भी सिद्ध होती है ।

यदि भूमध्यका कक्षा मन्यते तन्मृदूच्चयात्
आकर्षणान्न भिद्येत शरस्तेषां विधोरिवः । १३६ ।

मंगल आदि की कक्षा का केन्द्र यदि पृथ्वी केन्द्र होता है, तो मन्दोच्च आकर्षण से ही इसका भी शर होता है, जैसे चन्द्रमा का होता है। (चन्द्र शर के लिए एक ही अनुपात होता है। उसी प्रकार इनका भी होता दो अनुपातों की आवश्यकता नहीं होती)।

केवलं शीघ्रजाकर्षा भेदोयः प्रतिपद्यते
सत्रिज्याघ्नन्त्य कर्णाप्त मध्येषोरेव सिद्धयते। १३७।

यह नहीं होने से अर्थात् शीघ्रोच्च आकर्षण के कारण उनका प्रभेद उत्पन्न होने के कारण उस शर को त्रिज्या से गुणा कर ४ र्थ कर्ण से भाग देने पर ही भगोलीय शर प्राप्त होता है।

तत्रार्कोत्थ गुणद्वन्द्वे शरान्तौ लगतौ यतः
मन्दाकृष्टस्य नीचोच्च गतावपि नभः सदः। १३८।

रवि केन्द्रित ग्रह कक्षा में मन्दोच्च से आकृष्ट ग्रह नीच उच्च की तरफ गति करते समय रवि से ग्रह गोलीय विमण्डल तथा प्रतिमण्डल के दो सूत्रों से दो शरान्त लगता है।

मदुक्तयोशर श्रुत्या संस्कृतेषोः स्फुटत्वतः
मध्यार्काभिभ्रमः सिद्धः शुक्रेज्यार्कि बुधाः सृजाम्। १३९।

अतः मैने पहले जैसा कहा है कि उसके अनुसार शर साधन योग्य कर्ण द्वारा स्फुट शर होने के कारण शुक्र, गुरु, शनि बुध और मंगल का मध्यम सूर्य के चारों तरफ भ्रमण करना सिद्ध होता है।

मध्यार्क केन्द्र का कक्षा यत्ताराक्ष नभः सदाम्
तन्मन्दा कृष्टि रे खैषां भूमौ भन्नैक्ष्यतेऽर्कतः। १४०।

मंगल आदि पांच तारा ग्रहों की कक्षा रवि केन्द्रित तथा इनकी मन्दा कर्षण रेखा पृथ्वी से सदा अलग दीखती है।

ततोमन्द स्फुटं खेटं ज्ञातुं कर्मद्वयं कृतम्
शैघ्र मान्द्यार्द्ध नामादौ इतः स्पष्टां मृदुक्रियाम्। १४१।

मंगल आदि तारा ग्रह सूर्य केन्द्रित अपनी अपनी कक्षा में घूमने के कारण मन्द स्फुट ग्रह जानने के लिये पहले मध्यम ग्रह का शीघ्र फलार्द्ध तथा उसके बाद मन्द फलार्द्ध संस्कार किया जाता है।

मन्दस्पष्टस्य भूगोल दूरता दूरता वशात्
भचक्रावस्थितीक्षायै तुर्यं द्राक् कर्म निर्मतम्। १४२।

उसके बाद स्फुट मन्दफल संस्कार किया जाता है। तब भूगोल से अति दूर होने के कारण और मन्द स्पष्ट ग्रह का भचक्र में स्थिति देखने के लिये ४र्थ शीघ्र फल का संस्कार किया जाता है।

इत्थं शैघ्रार्द्ध मान्द्यार्द्ध मान्द्य शैघ्रः फलैरपि
ज्ञारार्किणां कियद् भेद लाभात्तत् शुद्धयेमया । १४३ ।

इसी प्रकार शीघ्र फलार्द्ध, मन्दफलार्द्ध मन्दफल, शीघ्रफल- इन चार फलों के संस्कार से मंगल बुध, और शनि की स्पष्टता की जाती है । तब भी इसमें कुछ त्रुटि दीखने के कारण और शुद्धि के लिये -

परोच्च संस्कृति प्रोक्ता विधोस्तुं गान्तरादियत्
तत्तत्फलं मुनि प्रोक्त बीजमित्य विधार्यताम् । १४४ ।

मैंने इन सभी में परोच्च संस्कार भी किया है । चन्द्र का तुंगान्तर आदि जितने फलों का संस्कार कहा गया है उन सबों को आर्ष वचन का बीज (संशोधन) मानना चाहिये ।

आर्ष सिद्धान्ततो ये ये विशेषा दृष्टि सिद्धये
स्फुटीकृतौ प्रकल्प्यन्ते ते बीजत्वेन सम्मता । १४५ ।

ग्रह को दृक् सिद्ध करने के लिए आर्षसिद्धान्त से जितने विशेष संस्कारों की कल्पना की गयी है, उन सभी को बीज संस्कार माना जाता है ।

तथाहिवार्तिके ज्ञात ग्रहों पदेशाद् बीजं ज्ञात्वा सुदैवज्ञैः
सत्संस्कृत ग्रहेभ्यः कर्तव्यौ निर्णयादेशौ । इति । १४६ ।

उत्तम ज्योतिषियों ने प्रसिद्ध ज्योतिष शास्त्रों का बीज संस्कार देखकर उनसे स्फुट ग्रह साधन किया तथा इसी बीज संस्कार से स्पष्ट ग्रहके अनुसार तिथि, ग्रहण आदि का निर्माण और शुभ अशुभ फल कहा जाता है । (वार्त्तिक में)

सिद्धान्त शिरोमणौ मध्येहि मन्दप्रतिमण्डले स्वे मन्द स्फुटो द्राक् प्रतिमण्डले च भ्रमत्यतश्चञ्चल कर्मणोह मन्दस्फुटो मध्य खगः प्रकल्प्यः । १४७ ।

मन्द प्रति वृत्त में मध्य ग्रह और शीघ्र प्रतिवृत में मन्द स्फुट ग्रह घूमते हैं । अतः शीघ्र फल संस्कार करने के समय मन्द स्फुट ग्रह को मध्यम ग्रह मानना चाहिये । (सिद्धान्त शिरोमणि से)

भ्रमन् ग्रहः स्वे प्रतिमण्डल नृभिः सयत्र कक्षा वलये विलोक्यते
स्फुटो हि तत्रस्य फलोपपत्तये प्रकल्पितं तुंग मिहाद्य सूरिभिः । १४८ ।

अपने प्रतिवृत्त में ग्रह घूमने के समय उनको मनुष्य कक्षावृत्त (भकक्षा) में जिस स्थान पर देखते हैं, वही वास्तविक स्फुट ग्रह है । वही स्थान (या दिशा) उस समय का स्फुट ग्रह है । इस स्फुट ग्रह की राशि आदि जानने के लिए प्राचीन आचार्यों ने उच्च (मन्दोच्च तथा शीघ्रोच्च) की कल्पना की है ।

यःस्यात् प्रदेशः प्रतिमण्डलस्य दूरे भुवस्तस्यकृतोच्च संज्ञा ।
सोऽपि प्रदेशश्चलतीति तस्मात् अकल्पिता तुंग गति र्गतिज्ञैः । १४९ ।

प्रतिवृत्त जिस स्थान पर पृथ्वी से सबसे दूर हो उस स्थान को ही उच्च नाम दिया गया है। यह स्थान भी गति शील होने के कारण विज्ञानियों ने उच्च गति की कल्पना की है।

उच्चात् भषट् कान्तर तञ्च नीचं मध्यः स्वनीचोच्च समोयदा स्यात्
कक्षास्थ मध्योपर कर्ण सूत्र पातात् स्फुटो मध्य समस्तदानीम्। १५०।

उच्च से ६ राशि दूरी पर (प्रति वृत्त का जो स्थान पृथ्वी के सबसे निकट हो) उसे नीच स्थान कहा गया है। मध्य ग्रह उच्च सहित या नीच सहित समान होते पर कर्ण सूत्र (भूकेन्द्र से स्पष्ट ग्रह की रेखा) कक्षा वृत्त में मध्य ग्रह के स्थान से होकर जाता है। अतः भुजफल का अभाव होता है, और मध्यग्रह तथा स्पष्ट ग्रह समान होता है।

उच्चस्थितो व्योम चरः सुदूरे नी चस्थितः स्यान्निकटेधरित्र्य
अतोऽणुबिम्बः पृथुलश्च भाति भानोस्तथासन्नसुदूरवर्ती। इति। १५१।

ग्रह उच्च स्थान में पृथ्वी से सबसे दूर नीच स्थान पर सबसे निकट होता है। अतः उच्च और नीच का ग्रह क्रमशः बड़ा और छोटा दीखता है। (उद्धरण समाप्त)।

छाया लोकाद् यन्त्र वेधो दयनात्तद्वयं रवेः
सप्ताब्ध्यं (४७) शान्तरं दृष्टं तत्सिद्धां (२४) शाल्पकोपमः। १५२।

शंकु और उसकी छाया, यन्त्रवेध तथा आयन आदि विचार द्वारा मैंने देखा है कि सूर्य की दोनों क्रान्ति (उत्तर तथा दक्षिण) ४७° अंश के भीतर ही है। अतः मैंने प्राचीन शास्त्र मत के प्रति क्रान्ति के २४° से कम २३° ३०' (दोनों क्रान्ति ४७°) माना है।

चन्द्र ग्रहस्य गणितं सवासन मुदाहृतम्
लम्बनस्योपपत्तिश्च तस्याल्प बहुतोच्यते। १५३।

चन्द्र ग्रहण का गणित सभी युक्ति के साथ कहा गया है। इस समय लम्बन की उपपत्ति उसके कम और अधिक होने के विषय में कहता हूँ।

चक्रार्द्धान्तरितौ तुल्य भागलिप्ताविलिप्तकौ
स्यातां यदर्क शशिनौ शराल्पत्वे यदा विधौ। १५४।

जिस समय रवि और चन्द्र दोनों ६ राशि की दूरी पर रहते हैं, तथा उनका अंश कला और विकला समान होते हैं, उस समय मानैक्यार्द्ध (बिम्ब व्यासों के योग का आधा) से चन्द्र का शर कम होने से –

भूछाया लगतीत्यत्र समकक्षा स्थिते स्तयो
लम्बना वनती न स्तो रजनीरमण ग्रहे। १५५।

चन्द्र बिम्ब में भूछाया लग जाती है। इससे ज्ञात हुआ कि चंद्र और भू छाया एक ही कक्षा (चन्द्र कक्षा) में हैं। अतः इसमें नत और लम्बन नहीं होता।

सूर्य ग्रहे तु सूर्येन्दो र्भिन्न कक्षा निवासतः
देश भेदात् ग्रास भेदो लम्बनावनती तथा। १५६।

सूर्य ग्रहण में सूर्य छाया तथा चन्द्र छादक-दोनों किसी एक कक्षा (रवि चन्द्र कक्षा) में नहीं रहने के कारण-अर्थात् अलग अलग कक्षाओं में रहने से पृथ्वी पर स्थान भेद से ग्रास भी कम या अधिक होता है। इस एक ही कारण से लम्बन और नति भी होता है।

दृङ्मण्डल फल दृश्यं क्वार्द्धोनं गोलपृष्ट गैः
ग्रहस्या यततो दृष्टि मण्डले सम्भवेन्नतिः। १५७।

पृथ्वी के गोलाकार सतह पर लोग किसी ग्रह को दृङ्मण्डल के आधे से भूव्यासार्द्ध के बराबर कम क्षेत्र में देखते हैं। अतः दृङ्मण्डल में ग्रह का लम्बन होता है।

क्षिति जो पगते सूर्य दर्शान्ते भूमि गर्भतः
रवि बिम्बार्द्धगे सूत्रे बिम्ब मध्यं लगेद् विधोः। १५८।

अमान्त समय में सूर्य पृष्ठ क्षितिज पर आने से पृथ्वी के केन्द्र से सूर्य केन्द्र तक की रेखा में चन्द्र भी रहता है। (सूर्य ग्रहण के समय) किन्तु

भू पृष्ठाद् भानु बिम्बार्द्ध चुम्बि सूत्राद् विधुर्यतः
अधो विलम्बते तस्मात् क्षितिजेऽस्मिन् धरा नतिः। १५९।

किन्तु भूमि पृष्ठ से रवि बिम्ब केन्द्र तक की रेखा से चन्द्र लम्ब दिशा में रहने के कारण और यह सबसे अधिक होने के कारण इसका परमनति या परम लम्बन कहा जाता है।

गर्भदृक् सूत्रयो रैक्यात् खमध्येन भवेदसौ
खस्वस्तिक क्षितिजोर्मध्ये सूत्रभेदान्नतिर्भवेत्। १६०।

आकाश के मध्यस्थल अर्थात् खस्वस्तिक में ग्रह बिम्ब रहने पर पृथ्वी के पृष्ठ से तथा केन्द्र से एक ही दृक् सूत्र होता है। उनमें अन्तर नहीं होने के कारण नति नहीं होती है। ख स्वास्तिक तथा क्षितिज के बीच में किसी स्थान में पृष्ठ से ग्रह की दिशा तथा केन्द्र से दिशा के बीच के अन्तर को नति या लम्बन कहते हैं।

खार्द्धे यदापवृत्तं स्यात्तदा तद् दृष्टि बिम्बयो
ऐक्यान्नावनतिः किन्तु लम्बनं परमं कुजे। १६१।

ख स्वस्तिक में रवि रहने से क्रान्ति वृत्त ही दृङ् मण्डल होगा अतः नति नहीं होगी। केवल क्षितिज में परम लम्बन होगा।

यदादृक् क्षेप वृत्तस्थः खेचरोऽवनति स्तदा
परमालम्बनाभावस्ततो दृक् क्रान्तिवृत्तयोः । १६२ ।

ग्रह दृक् क्षेप वृत्त में रहने से नति होती है । किन्तु परम लम्बन नहीं होता (अधिकतम मान से कुछ कम होता है) अतः दृङ् मण्डल और क्रान्तिवृत्त में

नत्यन्तजान्तर कलाधिक्या लम्बन संक्षयः
क्रान्तिदृग् वृत्त संयोगात् सार्द्धगस्य न तद् युगम् । १६३ ।

अन्तर के कारण या रवि चन्द्र इन दोनों की उत्तर और दक्षिण क्रान्ति में अन्तर के कारण दोनों की पूर्व पश्चिम अन्तर कला भी बढ़ जाती है ।

खमध्य में दोनों (क्रान्ति वृत्त और दृङ्मण्डल) एक होने के कारण नत या लम्बन नहीं होता ।

त्रिभोन लग्न जा ह्यस्मात् क्रान्ति वृत्ताद् गतः शरः
प्राप्नोति नभसि मध्यं मध्याह्ने, तु शराग्रतः । १६४ ।

त्रिभोन लग्न का शर क्रान्ति वृत्त से खस्वस्तिक तक जाता है । मध्याह्न में पुनः शराग्र पर-

याम्योदिग् लम्बित श्चन्द्रो दर्शान्तेऽर्क समो न यत्
लम्बनेऽवनतौ तस्मात् ग्राह्यो लग्नस्त्रि भोनितः । १६५ ।

लम्बित चन्द्र अमान्त में रवि के समान दृक् सूत्र में नहीं रह पाता है । अतः लम्बन नति साधन करते समय वित्रिभ लग्न की कल्पना की जाती है ।

त स खार्द्धे नतज्या या सा प्राक् पश्चिम संस्थितेः
वक्रत्वात् सम्भवेद् बह्वो तत् सिद्धा वुदयज्यका । १६६ ।

वित्रिभ की याम्योत्तर वृत्त में जो नतज्या (दृगज्या) होती है, वह वित्रिभ के पूर्व पश्चिम अन्तर में वक्र होने के कारण अधिक होती है । विभिभ लग्न का नतांश

उक्ता यद् वित्रिभ तनु क्रान्ति वृत्तं यथा यथा
वक्रं तथा तथा लग्न क्रान्तिज्या महती भवेत् । १६७ ।

वित्रिभ दृङ्मण्डल में अर्थात् दृक् क्षेप वृत्त में ही होता है । यह दृक् क्षेपवृत्त कदम्ब प्रोत वृत्त होने के कारण क्रान्ति वृत्त पर सदा लम्ब होता है । उसकी क्रान्ति ज्या के अनुपात में ही विभिन्न लग्न की नतज्या भी बढ़ जाती है ।

यदा वित्रिभ लग्नस्य क्रान्तिः सौम्याक्ष तुल्यताम्
प्रयाति विषु व क्रान्ति रुदेति च यदा तदा । १६८ ।

विभिन्न लग्न की उत्तर क्रान्ति जिस देश के अक्षांश के समान होती है, उस देश में सायन मेषादि जिस समय उदय होता है, उस समय

समता सम्भवेन्मध्य लग्न वित्रिभ लग्नयोः
नान्यदा तत्तयोः स्यातां येनत ज्ये तदन्तरा । १६९ ।

मध्य लग्न तथा वित्रिभ लग्न समान होता है । अन्य स्थानों पर ऐसा नहीं होता । वहां पर मध्य लग्न और वित्रिभ लग्न के अन्तर की नतज्या-

शरवद् भाति दृक् क्षेपो दृग् ज्या सा वित्रिभांगजा
विक्षेपाग्र स्थित स्येन्दो भवेद वनतिः स्फुटा । १७० ।

उन दोनों के नीच वित्रिभज्या के शर के समान मानी जाती है । शर के अंग्र में स्थित चन्द्र की इस स्थिति में स्फुट अवनति होती है ।

तत् शरेणाक्ष संस्कारे कृते तस्मात् शराक्षतः
क्रान्ति संस्कार संसिद्धोदृक् क्षेपः स्यात् परिस्फुटः । १७१ ।

अतः शर में अक्ष संस्कार करने के बाद उसको पुनः वित्रिभ क्रान्ति द्वारा संस्कृत करने से दृक् क्षेप परिस्फुट होता है ।

पर्वान्तो यः समदितः स्फुटां लम्बन संस्कृतः
अर्केन्द्वोः क्रान्ति वृत्तोदक् याम्य स्थितैस केवलम् । १७२ ।

लम्बन संस्कृत जो स्फुट पर्वान्त कहा गया, वह पृथ्वी की सतह से रवि और चन्द्र एक कदम्ब प्रोत वृत्त में उत्तर दक्षिण स्थित रहने पर ही होता है ।

त्रिभोन लग्नज क्रान्ति गति र्बद्धो यथा यथा
शरानुसारतो ग्रास काल भेदस्तथा तथा । १७३ ।

त्रिभोन लग्न की क्रान्ति गति जैसे जैसे बढ़ेगी शर गति के कारण ग्रास और स्पर्श आदि काल का अन्तर भी उसी प्रकार बढेगा ।

उक्ता ग्राहक मार्गस्य छेद के या दृशो स्थितिः
तत्क्रमाच्चालिते तस्मिन् ग्रासकाले भवेत्स्फुटः । १७४ ।

ग्रहण परिलेख में ग्राहक मार्ग से छेदक की जिस प्रकार स्थिति बतायी जाती है, उसी क्रम से ग्राहक मार्ग से चलाने से ग्रहण समय स्पष्ट हो जायेगा ।

विषुवोदय काले चेत् पर्वलम्बन संस्कृतम्
तदा मध्य ग्रहस्तुल्योऽन्यथान्यूनोऽधिको भवेत् । १७५ ।

सायन मेषादि के उदय समय में यदि स्फुट अमान्त पड़े तब पहले निकाला गया मध्य ग्रहण काल ही समान होगा अर्थात् उसमें कुछ जोड़ने या घटाने की आवश्कता नहीं होगी ।

एवं तदुदये स्पर्श मोक्ष कालस्य तुल्यता
उदय ज्योद् भवः काल भेदः स्याद्दिक् शर क्रमात् । १७६ ।

इसका कारण उस समय लग्न क्रान्ति का अभाव है । अन्य समय में अमान्त

काल होने पर उसमें अर्थात् मध्य और स्फुट अमान्त में अनेक भेद होगा। विषुवोदय में स्पर्श और मोक्ष काल से भी तुल्यता होगी। शर की दिशा के कारण लग्न क्रान्ति ज्या के अनुसार समय का भी अन्तर होगा।

गर्भात् पृष्ठाद् भुवः सूत्रे क्षितिजस्थं विधुं प्रति
प्रसारिते समे स्यातं ततश्चन्द्रे समुद् गते। १७७।

भूगर्भ और भू पृष्ठ से क्षितिज पर स्थित चन्द्र तक के दोनों सूत्रों की लम्बाई समान होती है।

क्रमात् पृष्ठाद् गतं सूत्रम् अल्पस्याद् गर्भसूत्रतः
सन्निकर्षाद् विधोः तस्मात् मानाधिक्यं नरोद् भवम्। १७८।

चन्द्र क्षितिज से ऊपर उठ जाने पर चन्द्र पर इन दो रेखाओं में पृष्ठ से जाता हुआ सूत्र गर्भ के सूत्र से छोटा होता है। अतः वहां चन्द्र शंकु भी अधिक हो जायेगा। (शंकु की चौड़ाई अधिक होगी)

भिन्न कक्षा स्थिति वशाद् रवीन्दोः शंकु सम्भवा
तमसोऽधिकता ग्रास कालयोवृद्धि दा भवेत्। १७९।

रवि और चन्द्र भिन्न कक्षा में स्थित होने के कारण शंकु द्वारा उत्पन्न अन्धकार (छाया) बड़ी होगी तथा ग्रास और ग्रहण काल में भी वृद्धि होगी (सतह पर)।

ग्राह्य ग्राहकयोरैक कक्षावासाद् विधुग्रहे।
न काल ग्रास भेद, स्यात् मानाधिक्येऽपिशंकुजे। १८०।

चन्द्र ग्रहण में ग्राह्य और ग्राहक एक ही कक्षा में होने के कारण शंक का मान अधिक होने पर भी ग्रहण समय और ग्रास का अन्तर नहीं होगा।

विमण्डल गतिर्वक्रा पूर्णिमान्तेऽप मण्डलात्
यावत् स्यात्त न्मिति श्चन्द्र गत्यर्कांश मितायतः। १८१।

पूर्णान्त में विमण्डल क्रान्तिवृत्त के ऊपर लम्ब होने के कारण शरगति भी वक्र होती है। शर गति का मान पृथ्वी पर चन्द्र गति के १/१२ भाग के बराबर है।

स्पर्शाद्याः शशिनस्तस्मात् शरार्कां शोत्थ कालतः
प्राक् पश्चात् भावमायान्ति मध्य ग्रास श्च भूरिताम्। १८२।

अतः चन्द्र का स्पर्श आदि के समय से वास्तविक समय शर के १/ १२ अंश से उत्पन्न समय पहले पीछे होगा। मध्य ग्रास का समय भी इसी के अनुसार बढ़ जायेगा।

ग्राहकान्य दिशि स्पष्टो ग्राह्यस्यैव यतः शरः
ततश्चन्द्र ग्रहे ग्रास बाणयो र्दिग् भिदा मता। १८३।

ग्राहक के विपरीत दिशा में ग्राह्य शर होने के कारण ग्रास और शर की दिशा अलग होती है । (चन्द्र ग्रहण में)

ग्राहकस्यैव चन्द्रस्य स्फुटेषुर्यत् स्वदिग् गतः
तद् ग्रास बाणयोः सिद्धं दिक् साम्यं सूर्य पर्वणि । १८४ ।

सूर्य ग्रहण में ग्राहक चन्द्र का शर ग्राहक दिशा में रहता है । अतः ग्रास और शर एक ही राशि में होते हैं ।

चन्द्रस्यैव यतः सिद्धं वलनं ग्रहण द्वये
तस्माद्ग्राह्यस्य चन्द्रस्य स्पर्शे तत् स्यात् स्वदिग् गतम् । १८५ ।

दोनों ग्रहणों में चन्द्र का ही वलन होता है । अतः चन्द्र ग्रहण में चन्द्र के स्पर्श के समय स्पष्ट वलन को पूर्व दिशा के चिह्न से अपनी दिशा में

व्यस्त दिङ् मोक्ष काले स्याद् ग्राह्यकस्य रवि ग्रहे
मोक्ष कालें निजाशास्थं स्पर्शे तद् विपरीत गम् । १८६ ।

तथा मोक्ष काल में पश्चिम चिह्न से विपरीत दिशा में देंगे । सूर्य ग्रहण में पूर्व दिशा में मोक्ष होने के कारण मोक्ष समय में पूर्व चिह्न से अपनी दिशा में स्पष्ट वलन दिया जायेगा । तथा स्पर्श समय में पश्चिम चिह्न से उल्टी दिशा में दिया जायेगा ।

उदयेऽस्तमये देशेऽव्यक्षे प्रायिक दिङ्मुखम्
बिम्बं स्यादन्यदेशेऽस्मा दक्षजं वलनं भवेत् । १८७ ।

निरक्ष प्रदेश (विषुववृत्त स्थान) में उदय, अस्त और मध्याह्न समय में ग्रह बिम्ब अपने वास्तविक दिशा में ही होता है । अन्य स्थानों में अक्ष वलन होता है ।

ध्रुवा भिमुख विभ्रान्ते स्तदुन्नत्यनुसारतः
प्राक् चिह्नं बिम्बगं खार्द्धे यत्तत् पूर्व कपाल के । १८८ ।

ग्रह बिम्ब ध्रुव की दिशा में भ्रमण करने के कारण ध्रुव की उन्नति (अर्थात् अक्षांश) के अनुसार आकाश के मध्य स्थल में बिम्ब का पूर्व चिह्न पूर्व कपाल में रहता है ।

भवेदुदन्मुखं प्रत्यक् कपाले दक्षिणामुखम्
तद् भेदादायनं दृश्यं वलनञ्च पृथग् विधम् । १८९ ।

और उत्तर की तरफ झुकता है । पश्चिम कपाल में यह दक्षिण की तरफ झुकता है । आक्ष वलन के कारण बिम्ब की दिशा में अन्तर दीखने के कारण दृक् सिद्ध आयन वलन भिन्न प्रकार का होता है ।

सिद्धान्त शिरोमणौ-त्रिज्या वर्गादयन वलनज्या कृतिं प्रोज्भ्यमूलं
यष्टिर्यष्ट्याद्युचर विशिखस्ताड़िता स्त्रिज्ययाप्तः
यद्वा राशित्रय युत खगद्युज्यकाघ्नस्त्रिमौर्व्या
भक्तस्पष्टो भवति नियतं क्रान्ति संस्कार योग्यः । इति । १९० ।

त्रिज्यावर्ग से अयन वलन ज्या का वर्ग घटाकर उसका वर्गमूल निकाले । इसको यष्टि कहा जाता है । ग्रह (चन्द्र) के शर को इस यष्टि से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देने पर क्रान्ति संस्कार के लिये उपयोगी शर आता है । अथवा ग्रह में ३ राशि (९०°) जोड़कर उसकी भुज ज्या निकालें । उसको पुनः शर से गुणा कर त्रिज्यां से भाग देने से भी क्रान्ति उपयोगी शर आता है ।

इतियद् भास्कर प्राहः सूक्ष्म बाणस्य तानवम्
युक्ति युक्तं न तद् तस्मात् विहितायन दृष् क्रियः । १९१ ।

इस श्लोक में भास्कराचार्य ने सूक्ष्म शर (स्फुट ध्रुव प्रोतवृतोय) का कम मान (कदम्ब प्रोत वृत्तीय शर से) दिखाया है । वह युक्ति युक्त नहीं हो सकता । क्योंकि आयन और दृक् कर्म संस्कृत

ध्रुव सूत्र समं खेटो भवेद् भग्रह योगयोः ।

तद् दृक् कर्माद् भवाल्लिप्ताधनार्णा स्व्या भुजामता । १९२ ।

ग्रह, नक्षत्र और ग्रह योग ध्रुवं प्रोत वृत्त में होता है । अतः दृक् कर्म के अनुसार जितनी कला जोड़कर या घटाकर क्रान्ति वृत्त में होता है, उसे भुज कहते हैं ।

कदम्बाभिमुखे बाणः कोटि तद्वर्ण युक् पदम्
ध्रुवोन्मुख स्फुटेषुः स्यात् कर्ण वान्मयतो महान् । १९३ ।

कदम्ब प्रोतीय मध्यशर, और कोटि इन दोनों का वर्ग जोड़कर उसका मूल लेने से कर्ण होगा । यही ध्रुव की दिशा में स्फुट शर होगा । यह कर्ण कोटि भी शर से बडा होता है ।

मास षट्क मिता रात्रि मेंरौया तत्र खेचराः
चन्द्राद्या उदयं चास्तं यान्त्युदक् क्रान्ति भागकैः । १९४ ।

मेरू प्रदेश में ६ मास तक रात्रि होती है । (जब सूर्य सायन तुला से आरम्भ ६ राशियों में होतो उत्तर मेरु में रात्रि) चन्द्र आदि ग्रह अपनी उत्तर क्रान्ति रहने तक वहां उदय और अस्त होते हैं ।

सूर्याग्रपश्चात्ते राशिद्वयान्त वर्त्तिनायदि
तदोदयास्त मययो विचारः कर्त्तु मिष्यते । १९५ ।

ये ग्रह सूर्य से पूर्व या पश्चिम २ राशि के भीतर हैं तब उनका उदय और अस्त का विचार किया जायेगा ।

कालांशा ये निगदिता ग्रहाणा मुदयास्तजाः
तत्संग गृह्यतामत्र सौम्य क्रान्त्यन्तरं रवेः । १९६ ।

ग्रहों का जो उदय और अस्त कालांश कहा गया है,ग्रह और रवि का उत्तर क्रान्ति का अन्तर उतना अंश रहने पर उनका उदय अस्त आरम्भ होगा ।

उदग् देशान्तरर्द्धिः स्याद यथा व्यक्षातथापम
याम्येनतः प्रायशोऽस्मात् सौम्य श्रृंगोन्नतिर्विधो । १९७ ।

निरक्ष देश से उत्तर अक्षांश जैसे जैसे बढ़ेगा, क्रान्ति वृत्त दक्षिण में चन्द्र दृङ् मण्डल से उतना ही नत रहेगा । इस कारण से चन्द्र की उत्तर श्रृंगोन्नति होती है ।

रवीन्दु मार्गयोभूरिर्विप्रकर्षेऽपि तद् दृशोः ।
संगतः स्यान्महापाते क्रान्ति साम्यात् पुरोदितात् । १९८ ।

वैधृति और व्यतीपात को महापात कहा जाता है। सूर्य और चन्द्र की कक्षा में बहुत अन्तर होने पर भी दोनों की क्रान्ति समान होने से इनकी किरणों के मिलन के कारण महापात होता है ।

यदेक सृज मेदिन्या गोल गर्भाद् विनिः सृताम् ।
सूत्रं चन्द्रादिशन्यस्त ग्रहाणामप वृत्तभित् । १९९ ।

पृथ्वी के केन्द्र से चन्द्र आदि शनि पर्यन्त ग्रहों के क्रान्ति वृत्त को भेदकर जो सरल रेखा जाती है ।

उपकारो मया दृष्टो भगणाज्जगतो महान्
यत् सूर्यात् सर्व ऋतवो बिवृद्धिः स्थिर जग् मुषाम् । २०० ।

उसे भगणात्मक सूत्र कहते हैं । भगण से ही ग्रह गणित आरम्भ होता है । अतः इस सूत्र से संसार का बहुत उपकार होता है । सूर्य से सभी ऋतुएं होती है । स्थावर जंगम की वृद्धि होती है ।

भवत्यपरिमेयाश्च तमोहत्यादयोगुणाः
तथैव रजनी भर्तु राह्लादाद्या अनेकशः । २०१ ।

अन्धकार भी दुर होता है-इस प्रकार सूर्य के अनेक गुण हैं । इसी प्रकार चन्द्र में भी आह्लाद आदि अनेक गुण हैं ।

चन्द्रार्का लोक नाल्लोके धृष्यता धृष्यते शितुः
जनैरुन्नीयते कार्यात् कारणावगति र्यतः । २०२ ।

कार्य से कारण का ज्ञान होता है। लोग इसी प्रकार सूर्य और चन्द्र को देखकर स्रष्टा की सहनीयता और असहनीयता गुणों की तुलना करते हैं ।

विविधग्रह भुक्तीनां साक्षात्कारात् शरीरिणाम्
शुभाशुभानिकर्माणि ज्ञायन्ते प्राक् कृतान्यपि । २०३ ।

विविध ग्रहों की अनेक प्रकार की गति देख कर शरीरधारियों के पूर्व जन्म में किये हुए शुभ अशुभ कर्मों का ज्ञान होता है ।

तथा तद् बिम्बमानानां कक्षाणां योजनानि च ।
तत्तद् विक्षेपतो भूमेः स्थिरत्वं चानुमानतः । २०४ ।

(ग्रहगति से) ग्रह कक्षा योजन और ग्रह बिम्ब योजन भी ज्ञात होता है । ग्रहों के शर के से पृथ्वी स्थिरता का भी अनुमान होता है ।

भचक्रालोकतो लोक स्रष्टु लोको त्तराकृतिः
प्रतीयतेऽन्धतमसं ततोऽव तमसो भवेत् । २०५ ।

भचक्र से सृष्टि कर्ता का असाधारण कार्य का अनुमान होता है । उससे अन्धकार का गाढ़ा पन कुछ कम हो जाता है । (भचक्र का भी कुछ प्रकाश होता है ।)

पथिकानां मतिमतां प्रथमं याति दिग् भ्रमः
इत्यादयो बहुविध उपकारा भवन्त्यतः । २०६ ।

भचक्र में नक्षत्र स्थिति से पथिकों (विशेषतः नाविकों) का दिग् भ्रम नहीं होता है । इस प्रकार भचक्र से अनेक उपकार होते हैं ।

तपोवर्षा ततः शीतं कालस्येति गुणास्त्रयः
ततद्वैविध्यतो लोके षड् भवन्त्यृतवः खलु । २०७ ।

ग्रीष्म, वर्षा और शीत-काल के ये तीन प्रधान गुण है । प्रत्येक के दो दो भेद होने से ६ ऋतुएं होती हैं ।

प्रायशो भारते वर्षे तेषां सम्पूर्ण भुक्तयः
भवन्ति भूमि भेदभ्य उत्कटाः केऽप्यनुत्कटाः । २०८ ।

भारत वर्ष में सभी ६ ऋतुओं का भोग प्रायः पूर्ण मात्रा में होता है । भूमि (स्थान) भेद से इन ऋतुओं का फल कहीं अति उत्कट कहीं अति कम होता है ।

तपस्य प्राग् दलं सौख्याद् वसन्तो ह्य परं दलम्
ग्रीष्म स्यादथ वर्षाणां तत् प्रावृट् शरदौमते । २०९ ।

ग्रीष्म का प्रथमार्द्ध वसन्त सुखकर होता है । द्वितीयार्द्ध गर्म होता है । वर्षा काल का प्रथमार्द्ध वर्षा तथा शेषार्द्ध शरत् होता है ।

हेमन्तः शिशिरः शीत प्राक् पश्चिम दले इति ।
सूर्य क्रान्ति वशात्तेस्यु र्देश भेदात् पृथग् विधाः । २१० ।

शीत का पूर्वार्द्ध हेमन्त, परार्द्ध शिशिर । देश भेद (अक्षांश) तथा सूर्य क्रान्ति

भेद से अलग अलग ऋतुयें होती हैं ।

तिरश्चिनाः करायत्र पतन्त्यर्कस्य भूतले
नाप्नोति तत्तथा तापं तत्र शीतं बलोत्तरम् । २११ ।

पृथ्वी के ऊपर सूर्य किरण तिरछे पड़ने से उष्णता अधिक नहीं होने के कारण शीत बढ़ता जाता है ।

पतन्त्यजुतया यत्र तत्र तापातिरेकतः
तत्रत्यानां तपर्त्तुः स्याद्रवि सम्मुख वृत्ति जात् । २१२ ।

जहां पर सूर्य किरण सरल (लम्ब रूप) पड़े वहां ताप अधिक होने के कारण ग्रीष्म ऋतु होती है ।

तीक्ष्णैः सूर्यांशुभि सिन्धो र्लघुतोयं समुत्थितम्
पतत्याकर्षणाद् भूमौ तत्तपान्ते घनागमः । २१३ ।

ग्रीष्म में सूर्य की सीधी किरण समुद्र में पड़ने से उसका पानी गर्म होने से वाष्प बनकर ऊपर उठता है । पुनः भूमि के आकर्षण से ऊपर ठण्डा होकर आकाश से पृथ्वी पर पड़ता है । अतः ग्रीष्म समाप्त होने पर वर्षा का आरम्भ होता है ।

निरक्ष देशतोऽशाना मक्षाणां यावदष्टकम्
हेमन्त शिशिरौ नस्तो ग्रीष्म वर्षातिरेकतः । २१४ ।

निरक्षदेश से आठ अंश तक (भारत में कुमारी अन्तरीप का निकटवर्ती स्थान अत्यन्त गर्म होने के कारण वहां हेमन्त और शिशिर नहीं होता तथा ग्रीष्म और वर्षा अधिक होती है ।

प्रावृड्न्ते शरत्कालस्त पादो स्यात् वसन्तकः
एतयोरन्तरे किंचित् शींत देशे जलाधिके । २१५ ।

वर्षा समाप्त होने पर शरत् काल होता है । ग्रीष्म के आरम्भ में वसन्त होता है । शरत् और वसन्त के बीच में अधिक जल (वर्षा) वाले स्थान में सामान्य शीत होता है ।

पौष माघ द्वयं शीतं द्वितीयेऽक्ष लवाष्टके
दशस्वेन्येषु मासेषु वसन्तादि चतुष्टयम् । २१६ ।

अक्षांश ८ से १६ तक पौष और माघ दो मास शीत होता है तथा बाकी दस मास में वसन्त आदि चार ऋतुयें ही होती है ।

तृतीयेंऽशाष्टके शीतं स्यान्मार्गादि चतुष्टयम्
चैत्राद्येषु वसन्ताद्या श्चात्वारोऽत्रैवषट् समाः । २१७ ।

अक्षांश १६ से २४ के बीच में स्थित भारत में मार्गशीर्ष से आरम्भकर चार

मास तक शीत होता है तथा चैत्र आदि आठ मासों में वसन्त आदि चार ऋतुयें होती हैं।

चतुर्विं शति रंशानांमियं स्यादुष्णमण्डलम्
इतः षोड़ शकं प्रोक्तं सममण्डल नामकम्। २१८।

२४ अंश अक्षांश तक उष्ण मण्डल होता है। २४ अंश के स्थान में सभी ६ ऋतुएं २-२ मास की होती हैं। २४ से ४० अंक्षांश तक का स्थान सममण्डल कहा जाता है।

चतुर्थेऽशाष्ट के व्यक्षाद् भार्द्ध मुर्जादि शीतलम्
माधवा द्युष्णमत्रैव वसन्तादि चतुष्टयम्। २१९।

२४ से ३२ अक्षांश तक कार्तिक आदि ६ मास तक शीत होता है। वहां वैशाख आदि ६ मास उष्ण होता है तथा उसीमे वसन्त आदि ऋतुयें होती हैं।

उषाद्यं शीतलं प्रोक्तम् पञ्चमेंऽशाष्टकेऽष्टकम्
वसन्तादि चतुष्टं स्यात्तत्र ज्येष्ठ चतुष्टये। २२०।

अक्षांश ३२ से ४० के बीच के स्थानों में आश्विन आदि ८ मास शीत होता है। ज्येष्ठ आदि ४ मासों में वसन्त आदि ४ ऋतुएं होती हैं।

इतः केन्द्रातमक्षांशाः पञ्चाशच्छीतमण्डलम्
निरक्षादष्ट के षष्ठे भागानां भाद्रतो दश। २२१।

अक्षांश ४० से ५० तक शीतमण्डल होता है। अक्षांश ४० से ४८ तक भ्राद्र से दस -

मासाः शीताः शुचिद्वन्द्वे वसन्तादृतवोऽल्पकाः।
इत्युक्तः षड् ऋतु स्थान मष्टा म्भो धि (४८) लवावधि। २२२।

मास तक शीत होता है तथा आषाढ़ और श्रावण मासों में बहुत कम समय के लिए वसन्त आदि ऋतु होती हैं। इस प्रकार निरक्ष से ८-८ अंश उत्तर अक्षांश के ६ ऋतुस्थानों का वर्णन हुआ।

आसु मेरु ततो द्व्यब्धि (४२) भागस्थं केवलं हिमम्
एवं देवे सुरांशे तु तुल्याद्याः स्युरजादिवत्। २२३।

अक्षांश ४८ से मेरु तक ४२° अक्षांश क्षेत्र बर्फ से ढंका रहता है। इस प्रकार उत्तरार्द्ध की ऋतुयें हुयीं। दक्षिण गोलार्द्ध में तुला आदि ६ राशियों में उत्तर गोलार्द्ध के मेष आदि ६ राशियों के सूर्य के समान ऋतु होती हैं।

अत्र राधादयोमासा संस्कृतस्यायनांशकैः।
भानेर्मेष प्रवेशादेः स्वीकार्य ऋतु भुक्तये। २२४।

सायन रवि के मेष प्रवेश से वैशाख आदि १२ मास ऋतु भाग के लिये ग्रहण

कहना चाहिये ।

वसन्त कालेऽवनिभृद् वनीनां वानैश्छदैर्वितइलातलेऽ लम् ।
वंशद्रुमान्यौऽन्य विघट्टनोत्थ वह्निर्विसर्पन मप्यवानम् । २२५ ।

वसन्त में पर्वत और जंगल में बहुत सूखे पत्ते गिरने से वन भूमि ढंक जाती है । बांस में परस्पर रगड़ होने से आग निकाली है जिससे सूखे पत्रों में आग लगती है । और पूरा जंगल जल जाता है ।

दन्दह्यतोऽस्माद् वहलोऽति धूमों व्योमोदरं व्याप्य विशेषदूरम् ।
तद् गत्य भौमा न्मरुतो लघुत्वा तिष्ठत्यवाप्य स्वसमं तमभ्रे । २२६ ।

इससे अत्यन्त घना काला धुंआ पृथ्वी की गर्म हल्की हवा के दवाव से ऊपर उठ जाता है । यही धुंआ की परत आकाश को ढंक कर रखती है । तथा वायु के जोर से स्वयं आकाश में स्थित रहता है ।

चण्डांशु सन्तप्त धरोष्मणाब्धे रुत्थाय वाष्पाणि घनानि घूमैः
पृक्तानि मेघाः प्रभवन्ति चेत्थं ज्योति र्मरुद्धूमक सन्निपातात् । २२७ ।

ग्रीष्म काल में प्रखर सूर्य की किरण से जमीन, गर्म होने से समुद्र का जल वाष्प होकर ऊपर उठता है । और पूर्व वर्णित धूम से मिलकर गोला बनाता है । इस तरह घूम, ज्योति, पानी और हवा से मेघ होता है ।

वस्त्रैरवाभ्रै र्द्युमणिः करामैर्वेतण्ड शुण्डासदृशैः पयोधेः
उद् धृत्य वारीणि धनेषु तेषु संरुया पयेत्वे त्वसिता घनत्वात् । २२८ ।

जिस प्रकार अपने वस्त्र में या हाथी अपने सूंढ़ से पानी खींचकर जमा करता है । उसी प्रकार सूर्य भी अपनी किरणों से समुद्र का पानी उठाकर उसे मेघ से जोड़ देता है । इससे मेघ भारी और घना होकर काला दीखता है ।

भारातिरेकात् गुरुव्रोऽम्बुधारा वर्षान्ति ते भूरि भुवाभिकृष्टाः
क्रोशांध्रितः क्रोशदलावधिस्था भूपृष्ठतो नत्वति दूर संस्था । २२९ ।

पृथ्वी की सतह से १/४ से १/२ कोस दूरी तक स्थित मेघ बहुत भारी हो जाने से पृथ्वी द्वारा उत्कृष्ट होकर पानी के रूप में बरसते हैं । पृथ्वी से मेघ की दूरी अधिक नहीं है ।

दैवेन दृक् काल सखेन धातृ गच्छानि याम्येन जनोत्करस्य ।
स्याद् वृष्टि रत्र ध्वनि विद्युताद्यं ज्ञेयं श्रुतेभ्यो मिहिरादिजेभ्या । २३० ।

दैव (भाग्य) विधाता की इच्छा से नियन्त्रित हैं तथा वह दिक् और काल का सखा या मित्र है । यही दैव जल समूह से वर्षा कराता है । मेघ, गर्जन, विद्युत आदि के बारे में वराह मिहिर ने अपने शास्त्र में लिखा है । इसकी चर्चा यहां नहीं की जाती है ।

सूर्योष्मणाति लघवः परमाणवोऽपा
मूर्ध्वं व्रजन्ति गुरवोलवणस्यतेन
तेनाभिवृष्टि सलिलं मधुरं महाब्धेः सिद्धं
पुनः कुतुकतो गणितं ब्रुतेऽल्पम् । २३१ ।

महासागर में लवण जल है । सूर्य ताप से जल के अत्यन्त छोटे अणु ऊपर ऊठ जाते हैं पर लवण के अणु नहीं उठते । अतः वर्षा का पानी मीठा होता है । अब मनोरञ्जन के लिए कुछ पाटीगणित कहता हूँ ।

घनः समांक त्रिनयस्य घातस्तदीय मूलानयनाय सूत्रम् ।
पथांकं पंक्ते श्चर ये निधाय विन्दुं ततो वाम गते चतुर्थे । २३२ ।

तीन समान अंकों के गुणफल को धन कहा जाता है । इस घनांक का मूल निकालने के लिए यह सूत्र कहा जा रहा है । घन संख्या के दाहिने अन्तिम अंक पर विन्दु देकर उससे बायीं तरफ चतुर्थ अंक पर-

तत्तचतुर्थे क्रमतश्चदत्वा सविन्दु शिष्टां कितएव यस्य
यातुं घनो युज्यत एतमकं लब्धं न्यसेत्तद् घन वर्जितायः । २३३ ।

बिन्दु देकर बायीं तरफ प्रति चतुर्थ अंक पर उसी प्रकार विन्दु देते जायं । बायीं छोर से दाहिनी तरफ बिन्दु वाले अंक तक जो संख्या होगी, उससे जितनी अधिक संख्या का धन घट सकता है, घटाते हैं । जिस संख्या का घन घटा उसे लब्धि के रूप में रखते हैं ।

पंक्ते स्थिरात्मत्रिविधांक हानि जाताद्वितीयादिक लब्ध सिद्ध्यै ।
तस्यास्तलेन्यस्य पृथक् स्थिताया लब्धांक वर्गं त्रिशतघ्नमेकम् । २३४ ।

दूसरी लब्धि संख्या निकालने के लिये पहले लब्धाक को वर्गकर ३०० से गुणा करके अलग स्थान में रखते हैं ।

वामाद् द्वितीयादिसविन्दुकांक स्याधोऽन्य शून्यस्य यथा स्थितः स्यात्
तेनैव तस्या हरणे प्रवृत्ते नवाधिकं चेत्पततीह लब्धम् । २३५ ।

उससे भाज्य में बायें से दूसरे बिंदु के नीचे के अंक तक जो शेष बचा उसमें भाग देते हैं । फल दूसरी लब्धि के रूप में रखते है ।

नवैव कृत्वा तदनेन हारं हत्वा पृथक् पंक्ति तले निधाय
कृतिं द्वितीयादि फलस्य पूर्वं लब्धैर्हतां खाग्नि (३०) गुणांततोऽधः । २२६ ।

यदि लब्धि ९ से अधिक होती है । तो उसे ९ ही लेते हैं (लब्धि के रूप में) (१) द्वितीय लब्धि से भाजक को गुणा कर उसके नीचे (२) द्वितीय लब्धि का वर्ग से पूर्व लब्धांक को गुणा कर ३० से गुणा कर प्राप्त संख्या को रखें ।

घन द्वितीयादि फलस्य चैवं त्रिधांक योगं विजहातु पंक्तेः
साल्पायदि त्र्यंकं युतेः द्वितीय द्येकैक हीनं क्रमशोऽ त्रलब्धम् । २३७ ।

उसके नीचे (३) दूसरी लब्धि का घन-इन तीन संख्यांओ के योग को भाज्य से घटाने पर यदि बहुत कम शेष आता है । तो दूसरी लब्धि को एक कम कर पुनः इसी प्रकार एक के नीचे एक तीन संख्यायें लिखते हैं ।

कृत्वा विधाय त्रिविधांक योगं स्थिरं विशुद्ध्यान्त मथांक पंक्तेः
तेनोज्झिताया पुनरन्य लब्धाः न्येवं फलां का घनमूल संज्ञा । २३८ ।

इस प्रकार तीन संख्यायें स्थिर होने पर उनका योग भाज्य से घटाते हैं और शेष में अगले बिन्दु तक के अंक मिलाते हैं । अबतक के दो लब्धि अंको को पहली लब्धि मानकर अगला लब्धि अंक पहले की तरह प्राप्त करते हैं और तीन संख्याओं का योग घटाकर तब तक क्रिया करते हैं । जबकि अन्तिम बिन्दु तक भ्राज्य के अंक समाप्त न हों । यही लब्धि घनमूल होता है ।

पतन्ति पंक्त्युर्ध्व रविन्दु तुल्या स्तेषां घनः पूर्ववदंक पंक्तिः ।
सा चेत्सहस्राल्पतयास्थिता स्यात् सकृद् भवेत्तद् घनमूलमेकम् । २३९ ।

घन अंक संख्या के ऊपर जितने विन्दु होते हैं । घनमूल में उतने ही अंक होते हैं । घन १००० से कम होने से उसका एक ही अंक का घनमूल होता है तथा एक ही बार में निकलता है, बिना अन्य क्रियाओं के ।

भास्करपोष्यां घनकरण सूत्र वृत्तम्--
समत्रिघातश्च घनः प्रदिष्टः स्थाप्योघनोऽन्तस्य ततोऽन्त्यवर्गः
आदि त्रिनिघ्नस्तत आदि वर्गस्त्वन्त्या हताश्चादि घनश्च सर्वे । २४० ।

तीन समान अंक (संख्या) के गुणनफल को उस संख्या का घन कहा जाता है । संख्या को रखकर उसके अन्तिम अंक के घन को रखेंगे । शेष अंक के वर्ग को आदि अंक और तीन द्वारा गुणा कर और तब आदि संख्या के वर्ग को अन्त्यं अंक और तब आदि अंक के घन को

स्थानान्तरत्वेन युतः घनः स्यात्प्रकल्प्यतत् खण्डयुगं ततोऽन्त्यम् ।
एवं मुहुर्वर्ग घन प्रसिद्धा वाद्यंकतो वा विधिरेश्च कार्यः । २४१ ।

एक-एक स्थान हटाकार रखेंगे । अन्त में सबको जोड़ देने पर पूरी संख्या का घन आ जायेगा ।

संख्या को दो खण्डों में बांट कर भी अन्तिम खण्ड से इस प्रकार कार्य कर बाकी खण्ड से भी कार्य करेंगे । इससे पूरी संख्या का घन आ जायेगा ।

खण्डाभ्यतां हतो राशिस्त्रिघ्नः खण्डधैनैक्य युक्
वर्गमूल घनः स्वघ्नी वर्ग राशि घनोभवेत् । २४२ ।

संख्या के दो खण्डों को आपस में गुणा कर ३ से गुणा कर उससे संख्या को गुणा करेंगे । उसके दाहिने अन्तिम संख्या का घन तथा बायें आदि संख्या का घन जोड़ने से पूरी संख्या का घन आ जायेगा । किसी वर्ग संख्या का घन

निकालने के लिए वर्गमूल का धन निकालेंगे । और धन का वर्ग निकालेंगे ।

घनमूले करण सूत्रं वृत्तद्वयम् --
आद्यं घनस्थान मथाघने द्वेपुन स्तथान्त्याद् घनतो विशोध्य
घनं पृथक् स्थं पदमस्य कृत्या त्रिघ्ना दातव्यं विजभेत् फलंतु । २४३ ।

धन संख्या को लिखकर दाहिने तरफ के अन्तिम अंक पर घन चिह्न दें । उससे बायीं तरफ के दो अंकों पर अघन चिह्न दें । इसके बाद फिर एक अंक पर घन और उससे बायें दो अंको पर अघन चिह्न दें । पूरी संख्या में घन अघन चिह्न देने पर अन्तिम (बायें तरफ) घन संख्या से जिस अंक का घन घट सकता है उस अंक को अलग लिखेंगे । और घन को घटायेंगे । इसके अंक के वर्ग को ३ से गुणा कर फल से प्रथम भाज्यशेष और उसके बाद के प्रथम अघन अंक से भाग देंगे ।

पंक्त्या न्यसेतत् कृतिमन्त्य निघ्नीं त्रिघ्नीं त्यजेत्तत्प्रथमात् फलस्य
घनं तदाद्यात् घनमूलमेवं पंक्तिर्भवेदेव मतः पुनश्च । २४४ ।

फल को प्रथम घनमूल अंक के बाद रखेंगे । फल के वर्ग को पंक्ति में स्थित बाकीअंक से गुणा कर और उसको तीन से गुणा कर भाज्य राशि से घटायेंगे । पुनः जो शेष बचा उससे इस फल के धन को घटायेंगे । इस प्रकार बारबार करने पर उक्त घन संख्या का धन मूल निकलेगा ।

मूलावशेषात् कथयामसिद्धि षष्ट्यंशकानां पदशेष भाजाम्
पदं घनीकृत्य पदोत्तरांक घनाद्विजह्याद्य इहावशेषः । २४५ ।

सावयव संख्या का धनमूल निकालने के लिए प्रथम अवयव का जितना मूल होता है, उतने का धन घटाने के बाद शेष को घनकर उसके बाद के अंक के धन से घटायेंगे । फल शेष हार होगा ।

स चान्त्यहारो यदि मूल संख्या त्रिंशद् बहुस्तत्र पदावशेषः
षष्ट्याहतोऽन्वेन हरेण भक्तः फलं कलास्तत्पद मल्पकं चेत् । २४६ ।

मूलसंख्या ३० से अधिक होने पर मूल शेष को ६० से गुणा कर अन्त्यहार से भाग देने पर कला (१/६० वें भाग) में फल आयेगा । मूल संख्या ३० से कम होने पर

व्योमोऽनलेभ्य (३०) स्तदिहान्त्यहारोन्मूलावशेषं विरहस्य शेषः
गुण्योऽन्त्य हारान्तु सरूपमूल भक्तात् फैलं स्याद् गुणकाभिधानम् । २४७ ।

अन्त्यहार से मूल अवशेष को घटा कर उसको गुण्य नाम देंगे । अन्त्यहार को मूल में एक जोड़ कर भाग देने से जो लब्धि होगी उसको गुणक कहेंगे ।

तत् क्षुण गुणे भ्योऽन्यहरेण भक्तः फलोज्झितोऽ न्यस्फुट हार उक्तः ।
मूलावशेषो वियदंग (६०) निघ्नो लिप्तामयः स्यात् स्फुटहार भक्तः । २४८ ।

* गुण्य और गुणक को गुणा उसको अन्त्य हार से भाग देंगे । फल को पुनः अन्त्यहार से घटाने से वह अन्त्य स्फुट हार होगा । मूल अवशेष को ६० से गुणा कर इस स्फुट हार से हरने पर यह लिप्ता होगा ।

पुरोदितं वर्गपदं मयात्र बहूपयोगोद्धन मूल मुक्तम्
दिग् दर्शिता साधन वासनाया गोलज्ञ गम्यानुदिता खिलायत । २४९ ।

वर्गमूल निकालने की विधि में पहले कह चुका हूँ। गणित में अति आवश्यक होने के कारण घनमूल के बारे में भी मैने कहा । गणित साधन विधि सामान्य प्रकार से कही गयी है । बाकी विधियां गोलज्ञ गणक स्वयं जान सकते हैं

सिद्धान्तशिरोमणौ-इषदोषदिह मध्य गमादौ ग्रन्थ गौरवभयेन मयोक्ता
वासनामति मतासक्त लोह्या गोल बोध इदमेद फलंहि । इति । २५० ।

सिद्धान्त शिरोमणि में लिखा है- ग्रन्थ बढ़ने के भय से मैं पहले थोड़ा थोड़ा तर्क देकर आगे बढ़ जाता हूँ। बुद्धिमान् उसी से बाकीयुक्ति भी समझ लेंगे । गोल ज्ञान होने से ही यह फल होता है ।

हृत्प्राणेन्द्रिय रोध शोधित समक्रोध स्मरादिद्विषः
पञ्चक्लेष मुचोन यत्क्षणमपि द्रष्टुंक्षमा योगिनः
तद्यः स्वं परमं पदं स्वचरण प्रेमाध्व पान्थैर्जनैः
सु प्रापं विद धाति नः स भगवानव्याद् भव व्यापदः । २५१ ।

मन, प्राण और इन्द्रियों पर नियन्त्रण के लिये योगी गण मोह , क्रोध तथा काम आदि शत्रुओं को जीतते हैं । इससे वे पांच क्लेशों विद्या, अस्मिता, अनुराग, द्वेष और अभि निवेश से मुक्त हो जाते है । इसके बाद भी योगी गण उस परमपद को एक क्षण के लिये भी नहीं देख पाते । (अधिक समय के लिए देखना दूर की बात है) उसी परम पद को जो अपने पाद सेवकों को सहज दिला देते हैं । वे महाप्रभु श्री जगन्नाथ हमें विपद् से मुक्त करें ।

इत्युत्कलो ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
श्री चन्द्रशेखर कृतौ, गणितेऽक्षिसिद्धे
सिद्धान्त दर्पण उपाहित बालबोधे
सद् वासनोऽतिनख (२१) संख्यः इतः प्रकाशः । २५२ ।

इस प्रकार उड़ीसा के प्रसिद्ध राज परिवार में उत्पन्न श्री चन्द्र शेखर द्वारा गणना और दृष्टि में समानता तथा बालकों की शिक्षा के लिये लिखे सिद्धान्त दर्पण में सद् वासना (तर्क युक्त व्याख्या) सहित २१ वां प्रकाश समाप्त हुआ ।

द्वाविंश प्रकाशः

कालाधिकार

संवत्सरादि वर्णनम्

कलान्मानमकाल दण्ड निलयं कालाम्बु जन्म द्युतिं
कालो केलि कला जरार्च्चित पदं काला चलालं कृतिम्
क्रुध्यत् कालिय कालिकुञ्जनकृतं काकोदरी काकुभिः
कृष्णं कृप्त कृपं करोभ्यभिवदन् कालाधिकार क्रमम् । १ ।

भगवान् कृष्ण काल के स्वरूप हैं और यम का काल दण्ड उनमें लीन (लुप्त) हो जाता है । उनकी नील कमल जैसी शोभा है । उनके पदों की अर्चना पार्वती की क्रीड़ा के चनद्र रूप शिव के द्वारा की गयी है । वह नीलाचल पर जगन्नाथ के रूप में स्थित है । वह नीलाचल पर जगन्नाथ के रूप में स्थित है । उन्होंने क्रूर कालिय का दमन किया तथा नाग स्त्रियों का रोना सुनकर उन पर दया की । उन्हीं प्रभु को प्रणाम कर मै कालाधिकार लिखता हूँ ।

कालास्तु द्विविधो नित्यो जन्यश्चेति प्रकीर्तिनः
नित्यः श्री परमेशोऽत्र काल कालापराह्वयः । २ ।

काल के दो प्रकार हैं-नित्य तथा जन्य । स्वयं परमेश्वर नित्य काल का रूप हैं । वह काल की गणना करते हैं । अतः उनका अन्य नाम काल है ।

विशेषं कलनात् कालो जन्यः स तु तथेश्वरः
तत् स्मृति सर्वकार्येषु कर्तव्या मंगलार्थिभिः । ३ ।

जगत् का हिसाब करने के कारण वही पर परमेश्वर जन्य काल भी है । अतः कल्याण चाहने वाले लोग सभी कामों में परमेश्वर का स्मरण करते हैं ।

कौर्म्मे - अनादि के भगवान् कालोऽनन्तोऽक्षरः परः ।
सर्वाङ्गत्वात् स्वतन्त्रत्वात् सर्वात्मत्वात् महेश्वरः । ४ ।

कूर्म पुराण में कहा है- भगवान अनादि और अनन्त काल रूप हैं । उनका क्षय नहीं होता । वह सभी के रोम रोम में तथा उसके बाहर भी हैं वह महेश्वर, सर्वगत, स्वतन्त्र तथा सभी की आत्मा है ।

पर ब्रह्म च भूतानि वासुदेवोऽपि शंकरः
कालेनैव च सृज्यन्ते स एव ग्रसते पुनः । इति । ५ ।

काल ही स्वयं परम ब्रह्म, वासुदेव और शंकर है । काल द्वारा ही संसार उत्पन्न तथा पीछे नष्ट हो जाता है । (उद्धरण समाप्त)

स्मृतिश्च-सर्वेषु कालेषु समस्त देशेषु तथेश्वरे श्वरश्च ।
सर्वेः स्वरूपै भगवान नादि र्ममास्तु मांगल्य वृद्धये हरिः । ६ ।

स्मृति में है- हर समय-सभी देशों में और सभी कामों में भगवान ही स्वामी रूप में है । वह सभी के रूपों में और अनादि है । वे हरि मेरे कल्याण वृद्धि करें ।

यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञ क्रियादिषु
न्यूनं सम्पूर्णतां याति स द्यो वन्दे तमच्युतम् । ७ । इति ।

तपस्या, यज्ञ आदि सभी कार्यों की कमी यात्रुटि जिसके नाम स्मरण या गान से उसी समय पूर्ण हो जाती है । उसी अच्युत की में वन्दना करता हूँ । (उद्धरण समाप्त)

निर्गुणत्वात् परेशस्य तत्स्मृति र्घटते कथम् ।
इति चे दुच्यते तस्य वाशिष्ठोक्त्या शरीरिता । ८ ।

यदि परमेश निर्गुण हैं तो उनका स्मरण किस प्रकार हो सकता है । इस प्रश्न के उत्तर में योग वाशिष्ट रामायण में भगवान के शरीर धारण करने के विषय में जो कहा है वह उद्धघृत किया जा रहा है ।

तथा हि वाशिष्ठ रामायणे-
नित्योजन्यश्च कालौ द्वौ तयोराद्य परेश्वरः
सोऽवाङ्मनस गम्योऽपिदेही भक्तानुकम्पया । ९ ।

वाशिष्ठ रामायण में इस प्रकार है-नित्य और जन्य- दो प्रकार का काल है । इनमें परमेश्वर ही प्रथम और नित्यकाल है । वाणी और मन द्वारा उनकी कल्पना नहीं की जसकती, पर भक्तों पर कृपा करने के लिए वे शरीर धारण करते हैं ।

खड्ग पाशधरः श्रीमान् कुण्डली कवचान्वितः
ऋतु षटक् मयोदार वक्त्र् षट्क समन्वितः । १० ।

भगवान् खड्ग और पाश धरने वाले, कवच तथा कुण्डल से सज्जित हैं । वह ६ ऋतुओं के रूप में ६ मुख धारण किये हुए हैं ।

मासो द्वादश कोद्दाम भुज द्वादश कोद् भटः
स्वाकार समया वह्वा वृतः किंकर सेनया । इति । ११ ।

उनकी १२ भुजाओं का पराक्रम १२ मास है । वह अपने ही आकार और रूप वाले सेवकों से सदा सेवित है । (उद्धरण समाप्त)

यद्यप्येतत्काल रूपं तथाप्यस्य रमापतेः
धृतनानातनोर्भक्त्यै कार्यास्वेष्टा कृति स्मृतिः । १२ ।

लक्ष्मीपति इस प्रकार काल रूप होने पर भी भक्तों के लिये अनेक प्रकार का रूप धारण करते हैं । अतः भक्त अपनी इच्छा के अनुसार किसी भी रूप में उनका स्मरण करते हैं ।

नित्यात् जन्यस्य कालस्य समुत्पत्ति रभूदिति
श्रुति प्रमाण्य मासाद्य प्राह स्वायम्भुवो मनुः । १३ ।

इसी नित्य कालरूप परमेश्वर से जन्य काल भी उत्पन्न हुआ है- यह वेद में कहा है तथा स्वायम्भुव मनु ने भी कहा है ।

तथाहि-कालः काल विभक्तिश्च नक्षत्राणि ग्रहस्तथा
सृष्टिं ससर्ज चैवेमां स्रष्टुमिच्छंान्निमाः प्रजा । इति । १४ ।

ईश्वर रूपी काल ने प्रजा की सृष्टि के लिए काल के विभाग (दिन, मास आदि), नक्षत्र ग्रह तथा इस विश्व की रचना की ।

कालात्मा दिनकृत् प्रोक्ता होरास्कन्धे यतस्ततः
सिद्धान्त गदिता सृष्टिर्न विरोध मिहार्हति । १५ ।

होरा स्कन्ध (वृहज्जातक मे)सूर्य को कालात्मा कहा गया है । इस उक्ति का सिद्धान्त की उक्ति विरोध करती है, ऐसा मानना ठीक नहीं है।

त्रुट् यादि प्रलयान्तेषु जन्यकालेषु वत्सरः
प्रधान भूतोऽवयवो स्वाङ्गैर्युक्तोऽयनादिभिः । १६ ।

सूर्य को कालात्मा मानने से वह स्वयं सृष्टि का कारण है । त्रुटि से लेकर प्रलय तक के जन्य काल में वर्ष प्रधान अवयव है । इसके अवयव हैं-अयन,

सम्यग् व्रसन्ति यत्रर्त्तु मास पक्षादिनादयः
प्राज्ञैःकाल विशेषोऽसौ संवत्सर इतीरितः । १७ ।

मास पक्ष और दिन आदि । वर्ष रुपी अवयव इन्हीं से बना है, इसका एक नाम संवत्सर भी है ।

अयने येन पूषर्त्त त्रयेणोदग् दिशं तथा ।
दक्षिणां शा तदेवोक्त मयनं सौर मानजम् । १८ ।

सूर्य जिन तीन ऋतुओं (६ मास) में उत्तर दिशा और अन्य तीन ऋतुओं में दक्षिण दिशा में जाता है उसे ही अयन कहते हैं । यह सूर्य की क्रान्ति के अनुसार होता है । (अय् धातु का अर्थ गति है)

इयर्त्य शोक पुष्यादि लिङ्ग साधारणेतरम्
यः सकाल विशेषोऽत्रवसन्तादि ऋतुरुच्यते । १९ ।

जिस समय (दो मास) अशोक वृक्ष पुष्प आदि असाधारण चिह्न धारण करता है । उस को आदि ऋतु वसन्त कहा जाता है ।

मास्यते परिमीयते येन चन्द्रार्द्ध संख्ययौ
सूर्य राशि गतिर्यत्र मास्यतेऽह्नोञ्च यत्रहिं । २० ।

जिस समय को मापा जाय या हिसाब किया जाय उसे मास कहते हैं । चन्द्र

की वृद्धि और क्षय का माप करने वाला चान्द्र मास है। सूर्य की राशि गति का समय मापने वाला सौर मास तथा दिन रात

त्रिंशतानि व्यतीतानि भचक्र भ्रमणानिच
मासः स ऊच्यते चान्द्रः सौरः सावन ऋक्षकः । २१ ।

३० तथा ३० नक्षत्र भ्रमण का माप करने वाला समय क्रमशः सावन और नाक्षत्र मास कहलाता है।

पक्षेते परि गृह्येते देवता पितृकार्ययोः
यौ तौ पक्षौ शुक्ल कृष्णौ चन्द्र वृद्धिक्षयाद् भवौ । २२ ।

चन्द्र की वृद्धि और क्षय के अनुसार शुक्ल और कृष्ण पक्ष होता है। उन दो पक्षों का उपयोग देव और पितृकार्य में होता है।

तनोति यो वर्द्धमानां क्षीयमाणां कलां विधोः
एकां काल विशेषोऽयं तिथि रित्युच्यते बुधैः । २३ ।

बढ़ने वाले या घटने वाले चन्द्र की एक एक कला का जिस समय द्वारा हिसाब होता है उसे तिथि कहते हैं।

इत्थं याम मुहूर्त्तादि कालांगाना मदेकशः
व्युत्पत्तिर्न मया प्रोक्ता ग्रन्थ विस्तार साध्वसात् । २४ ।

इसी प्रकार याम, मुहूर्त आदि समय के अनेक अंग है। ग्रन्थ का विस्तार बढ़ने के भय से इन सबकी व्युत्पत्ति नहीं कही है।

नवधा कालमानानि चान्द्र मार्क्ष्य च सावनम्
बार्हस्पत्यं ततः सौरं मानवं पैत्र मेव च । २५ ।

समय का विभाग ९ प्रकार का है- चान्द्र, नाक्षत्र, सावन, बार्हस्पत्य, सौर, मानव, पैत्र, दैव और ब्राह्म।

दैवं ब्राह्म्य मिति प्रोक्तान्यत्र पञ्चभिरादिमैः
व्यवहारो मनुष्याणां मन्वादीनां स्वनामतः । २६ ।

इनमें प्रथम पांच समय मान ही मनुष्य के व्यवहार में आते हैं, बाकी मानव आदि का व्यवहार अपने नाम के अनुसार होता है।

भू गर्भ निः सृतात् सूत्रात् सूर्य मण्डल मध्यगात्
प्राचीं यद्याति शीतांशुश्चान्द्र मानं तदुच्यते । २७ ।

भू केन्द्र से सूर्य केन्द्र तक के सूत्र से पूर्व की तरफ, १२ अंश जितने समय में चन्द्र जाता है, उसको चान्द्र मान (१ तिथि) कहते हैं।

व्यर्केन्दु भगणो मास स्तदर्द्धं पक्ष ईष्यते ।
तिथि स्तत् शर रूपांश (१५) स्तदर्द्धं करणं मतम् । २८ ।

चन्द्र से सूर्य का अन्तर एक भगण होने से एक चान्द्र मास होता है । इसके आधे को पक्ष कहते हैं । पक्ष के १/१५ भाग को तिथि तथा तिथि के आधे भाग को करण कहते हैं ।

व्रतोपवास पर्वादि कृत्याकृत्य पितृक्रियाः ।
चान्द्र मानेन गृह्यन्ते मास वृद्धिक्षयादयः । २९ ।

मास की वृद्धि क्षय, व्रत, उपवास, पर्व आदि, कृत्यकाल और अकृत्य काल, तथा पितृक्रिया-सभी चान्द्र मान (तिथि) के अनुसार ही किये जाते हैं ।

पर्वान्ते कृत्ति का दीनां योगद्वे कार्तिकादयः
मासाः प्राग् भिर्मता स्त द्यदृक्षस्थ बृहस्पते । ३० ।

पूर्णिमान्त में कृत्ति का आदि नक्षत्र के साथ चन्द्र के संयोग के कारण जिस प्रकार कार्तिक आदि मासों का नाम दिया गया है । उसी प्रकार जिस नक्षत्र में रहकर वृहस्पति अमान्त में -

उदयस्तद् भ नामा ब्दाः सूर्य सिद्धान्त सम्मत-
तल्लक्षणान्यति व्याप्ते र्नात्र प्रोक्तानि विस्तरात् । ३१ ।

उदय होता है, उसी नक्षत्र के अनुसार बार्हस्पत्य वर्ष का नाम होता है ऐसा सूर्य सिद्धान्त का मत है । पर ग्रन्थ विस्तार के भय से इन सभी लक्षणों का वर्णन नहीं किया जा रहा है ।

कृत्ति का शब्द वाच्यं यत् कृत्तिका रोहिणी द्वयम्
तत् पर्वान्ताद्वयन्मासो निरुक्त कार्तिको यदि । ३२ ।

कार्तिक और रोहिणी दोनों को कृत्तिका मानकर इसमें किसी के साथ पूर्णान्त में चन्द्र का योग होने पर यदि उस मास को कार्तिक कहा जाता है,

तदूर्ज मार्ग पर्वान्त भरणी रोहिणी यतौ
अब्दे त्विषोर्जतपत्ति र्भवेत् कार्तिक मार्गयोः । ३२ ।

तो कार्तिक और मार्गशिर पूर्णान्त में क्रमशः भरणी और रोहिणी के साथ योग होने पर उस वर्ष इन मासों को क्रमसः आश्विन और कार्तिक क्यों नहीं कहा जाता है ।

तथापि पूर्व चलित व्यवहार व शादिमे
कृत्तिका मार्ग-शीर्षादि नामभिः प्रायिका मताः । ३४ ।

यह असुविधा होने पर प्राचीन काल से प्रचलित व्यवहार के अनुसार कार्तिक और मार्गशीर्ष आदि मासों की गणना होती है । यह नक्षत्र योग भी प्रायः घटता है ।

एकः पश्चाद् भ्रमो भानां नाक्षत्रं दिन मुच्यते
घटिकादिक मायुश्च तन्मानेनैव सिद्ध्यति । ३५ ।

नक्षत्रों के पश्चिम दिशा में एक चक्र पूरा करने में जितना समय लगता है, उसे १ नक्षत्र दिन कहते हैं । घटी, पल आदि इसी मान के अनुसार होते हैं । ब्रह्मा की आयु भी इसी मान से होती है ।

नाक्षत्र मान संसिद्धं मायुः कल्पार्क वासरैः
गुणितं कल्प भदिन माप्तं सौराब्दादि स्फुटं । ३६ ।

नाक्षत्र मान की आयु को कल्प सौर दिन (१५,५२,००,००,०००,००) से गुणा कर कल्प नक्षत्र दिन (१५,८२,२,३७,८,२,८,२८,००००) से भाग देने पर फल स्फुट सौर वर्ष आदि होता है ।

यद्यपि स्याद् भग्रहाणां स्वस्वोदय युगान्तरम्
तत्तत् सावन घस्राख्य मुक्त पूर्वं तथापि हि । ३७ ।

पहले कहा जा चुका है, कि किसी ग्रह या नक्षत्र के एक उदय से दूसरे उदय तक के समय को उस ग्रह या नक्षत्र का सावन दिन कहा जाता है ।

मध्यार्क गति युक् चक्रकलिका संख्यकादिभिः(२१,६५९।८)
सम्मतं सावनं मध्यं ग्रहानयन कर्मणि । ३८ ।

तथापि गणित में मध्यम ग्रह निकालने के लिये रवि की मध्यम गति युक्त २१,६०० कला को ही साधारणतः सावन दिन कहा जाता है जिसका मान (२१,६५९।८) असु है ।

स्फुटसूर्योदय द्वन्द्व विवरं सावनं दिनम्
प्रसिद्धं तेन यज्ञादि सूतकाद्यब्द पादयः । ३९ ।

दो स्फुट सूर्योदय के अन्तर काल को स्फुट सावन दिन कहते हैं और साधारणतः इसी को सावन दिन के रूप में व्यवहार किया जाता है । इसी सावन दिन के अनुसार यज्ञ कार्य, सूतक, कार्य में दिन गणना, वर्षपति और मासाधिपति आदि स्थिर किया जाता है ।

ज्ञेया जैवेन मानेन वत्सराः प्रभवादयः
लुप्त वर्षाधि वर्षाब्द स्वराद्याः संहितोक्तिभिः । ४० ।

बार्हस्पत्य मान से प्रभव आदि संवत्सर, लुप्त वर्ष, अधिवर्ष स्वरशास्त्रोक्त अब्द तथा स्वर आदि माना जाता है । ऐसा वृहत् संहिता में लिखा है ।

एकांश प्राग् गति र्भानोः सौर दिन मितीर्यते
त्रिशता तद्दिनै र्मासो वर्षं द्वादश भिश्चतैः । ४१ ।

सूर्य जितने समय में एक अंश गति करता है उसे एक सौर दिन कहते है ।

इस प्रकार के ३० सौर दिनों का एक सौर मास होता है। इस प्रकार १२ सौर मासों का एक सौर वर्ष होता है।

सौर मानेन गृह्यन्ते संक्रमर्त्वयनादयः
देवासुर द्युरजनी युगमन्वन्तरक्षयाः । ४२ ।

सौर मान से संक्रान्ति, अयन और ऋतु आदि का पालन होता है। देवता और असुरों का दिन और रात, युग, मन्वन्तर आदि की समाप्ति भी इसी सौर मान से होती है।

विवाह व्रत चूड़ादि वेशमारम्भादयः क्रिया
मासाब्द नियमाः पर्वाण्यपि देशविशेषतः । ४३ ।

विवाह, व्रत, चूड़ा कर्म, गृहारम्भ आदि काम, मास, वर्ष, व्रतादि का पालन, पर्व आदि का पालन किसी किसी देश में सौर मान से भी होता है। (सामान्यतः चान्द्र मान से होता है ऐसा लिखा गया है)

सौर-तुलादिषड्शी (८६) त्यंशैः षड्शीति मुखं दिनम्
तच्चतुष्टय मेवस्यात् द्विस्व भावेषु राशिषु । इति । ४४ ।

सूर्य सिद्धान्त में-तुला आरम्भ से ८६ अंश तक सूर्य रहने पर (अर्थात् ८६ सौर दिनों तक) षड्शीति मुख नामक मास होता है। यह वर्ष में ४ बार होता है और रवि द्विस्वभाव (द्वात्मिक राशि ३,६,९,१२) में रहने पर ही होता है। (उद्धरण समाप्त होता है)।

धनुषः सप्त विंशोऽश स्त्रयो विंशोऽण्डजस्य च
द्वन्द्व से कोन विंशश्च स्त्रियाः पञ्चदशः स्मृतः । ४५ ।

धनु राशि का २७ अंश, मीन का २३ अंश, मिथुन का १९ अंश तथा कन्या का १५ अंश में

तत्तन्मासेषु सूर्यस्य षड्शीति मुखान्वयात् ।
षड्शीत्याख्यया प्रोक्ता द्वात्मक क्षेत्र संक्रमाः । ४६ ।

उन मासों का सूर्य जाने से और ये स्थान ८६-८६ अंशों के बाद पड़ने से इन (संक्रान्तियों) को षड्शीति मुख कहते हैं। ये सभी द्वात्मिक राशियों में ही होती हैं।

ओज पादादि चरयोः संक्रमौ विषवाभिधौ
युग्मादि चरये र्याम्य सौम्या यन तयोदितौ । ४७ ।

विषम पद में स्थित दो चर राशियों (मेष और तुला) में रवि की संक्रान्ति को विषुव संक्रान्ति कहते हैं। सम पद में स्थित दो चर राशियों (कर्क और मकर) संक्रान्ति को क्रमशः दक्षिण और उत्तर अयन संक्रान्ति कहा जाता है।

चर द्वात्मकयो र्मध्ये स्थिर राशि चतुष्टयम् ।
भानो र्विष्णुपदी संज्ञा स्तद् प्रवेशाः प्रकीर्त्तिताः । ४८ ।

चर और द्वात्मिक राशियों के बीच में जो चार राशियां (वृश्चिक, कुम्भ, वृष और सिंह) हैं उनमें रवि के प्रवेश से विष्णुपदी संक्रान्ति होती है ।

पूर्वोक्त क्रम संसिद्धा रवि संक्रान्ति सम्भवः
पुण्य नाड्यस्त्रय स्त्रिंशत् स्वमध्य स्थार्क संक्रमः । ४९ ।

एक राशि का अन्तिम बिन्दु ही दूसरी राशि का आदि बिन्दु है । उस बिन्दु को रवि बिम्ब की परिधि स्पर्श करने से संक्रमण या संक्रान्ति का आरम्भ होता है । रवि बिम्ब का दूसरी तरफ का अन्तिम बिन्दु उस बिन्दु से लगने पर पूरा रवि संक्रमण बिन्दु पार कर जाता है । इसमें ३३ दण्ड (रवि बिम्ब व्यास ३३ कला पार करने का समय) लगता है । अतः यह ३३ दण्ड ही संक्रान्ति का पुण्य काल है ।

ग्राह्या दशसु संक्रान्तिष्वयने दक्षिणेतु ताः
अन्तःस्थ संक्रमाः सौम्यायनेत्वादिस्थ संक्रमाः । ५० ।

दस सक्रान्ति में संक्रान्ति के आरम्भ से ३३ दण्ड ही पुण्य काल हैं । दक्षिणायन संक्रमण में अन्तिम १६/३० दण्ड तथा उत्तरायण संक्रमण में प्रथम आधा (१६/३०)

अति पुण्यतमाःप्रोक्ताः संक्रमासन्न नाड़िकाः
चलमा सन्तता यत्र दिवास्नानादिकं तदा । ५१ ।

अत्यन्त पुण्य काल होता है । यह एक राशि से दूसरी राशि में संचार का समय है । संक्रान्ति समय दिन में पड़ने से स्नान दान आदि किया जाता है ।

तन्निशार्धादधश्चोर्द्ध सञ्चारे प्राक् परं ततः
आसन्न द्यु दलं पुण्यं निशीथे चेत्तदा तिथेः । ५२ ।

रात्रि के पूर्वार्द्ध में संक्रान्ति होने से उसके पूर्व दिन के दूसरे अर्द्ध तथा रात्रि के दूसरे अर्ध में संक्रान्ति होने पर अगले दिन के प्रथम अर्द्ध में पुण्यकाल होता है ।

संक्रान्ति काल निष्ठाया यद्दिने महती स्थितिः
तत्र कार्याः क्रियाएष विचारोह्या यनादृते । ५३ ।

ठीक आधी रात को संक्रान्ति पड़ने से इसका अधिक भाग जिस दिन होता है उसी दिन उतने समय पुण्य काल होता है । अतः उसी समय पुण्य क्रिया करनी चाहिये । अयन संक्रान्ति में इस प्रकार का विचार नहीं होता है ।

नक्रौ याम्यायने पूर्वदिनस्यान्त्य दलं मतम् ।
सौम्या यने पर दिन स्यादिमं पुण्यदं दलम् । ५४ ।

याम्य अयन या कर्क संक्रान्ति रात में होने से पूर्व दिन का द्वितीयार्द्ध तथा उत्तरायण (मकर) संक्रान्ति रात में होने से अगले दिन का पूर्वार्द्ध पुण्यकाल होता है ।

अहः संक्रमणे पुण्य महः कृत् संम्प्रकीर्तितम्
स्मार्तै स्तथापि संक्रान्ते रासत्ति र्बहुमन्यते । ५५ ।

दिन में संक्रान्ति होने से सारा दिन दिन पुण्य काल होता है । यह स्मार्त मत होने पर भी संक्रमण का निकट वर्ती समय निश्चय बहुत फल दायक है ।

उक्तो विधेरयं कालो निषेधे त्वामिषादिनः
पूर्वास्त्रिंशपरास्त्रिंशद् ग्राह्याः पर्वाक्ष नाड़िकाः । ५६ ।

संक्रान्ति पर्व दिन होने के कारण पूर्वोक्त स्नान. दान, आदि के अतिरिक्त इसमें आमिष भोजन करना मना है । आमिष भोजन का निषेध संक्रान्ति से ३० दण्ड पहले और उसके ३० दण्ड बाद तक, इस प्रकार कुल ६० दण्ड तक है ।

मासान्ताख्य निरंशा ख्यौ मासस्यान्त्यादिमौलवौ
यात्रोद् वाहादि कार्येषु व्याज्या कल्याण मिच्छभिः । ५७ ।

किसी राशि का अन्तिम (३० वां) अंश मासान्त तथा प्रथम अंश निरंश कहा जाता है । इन दो अंशों में रवि रहने से मासान्त तथा निरंश काल होता है । कल्याण चाहने वाले इन दो दिनों में यात्रा विवाह आदि शुभ कार्य नहीं करते हैं ।

बिम्बान्तर्वर्त्तिनः पुंसः संक्रान्ति समयोनृभिः
त्रुटेः सहस्र भागत्वादवगन्तुं न शक्यते । ५८ ।

सूर्य बिम्ब के केन्द्र बिन्दु (पुरुष) का संक्रमण काल एक त्रुटि का हजारवां भाग होता है । इसको जानना मनुष्य के लिये सम्भव नहीं है ।

सौरे-भचक्र नाभौ विषुव द्वितयं समसूत्रगम्
आयन द्वितयं तैव गतस्र परमास्तताः । इति । ५९ ।

भचक्र की नाभि या केन्द्र स्थल में होने के कारण दो विषुव संक्रान्ति तथा दो अयन संक्रानति ये चार अति श्रेष्ठ हैं । सायन मेषादि तथा तुलादि जिस प्रकार मेरु से बराबर दूरी (९०° अंश) पर है उसी प्रकार सायन कर्क तथा मकर आदि भी ध्रुव से बराबर दूरी पर हैं । अतः इनका माहात्म्य भी समान है । (सूर्य सिद्धान्त के अनुसार)

सौम्यायनान्मास युगैः शिशिरादि ऋतवस्त्रयः
तथैव याम्यायनतः प्रावृडाद्यास्त्रयोमताः । ६० ।

उत्तर अयन से दो दो मास अर्थात् मकर संक्रान्ति (सायन) से दो-दो सौर मास तक शीत आदि तीन ऋतुएं होंगी (६ मास तक) इसी प्रकार सायन कर्क

आरम्भ में २-२ मास की वर्षा आदि ३ ऋतुएं होगी ।

अथ पञ्चविधाब्दानां रवि मध्यम सावनैः
दिनैर्मानानि कथ्यन्ते मध्य भुक्त्यनुसारतः । ६१ ।

रवि की मध्यम गति के अनुसार पांच प्रकार के वर्ष में मध्यम सावन दिनों की संख्या कही जा रही है ।

द्व्यक्षिनाड् यधिकाब्ध्यर्थ रामा (३५४।२२) श्चान्द्राब्द वासराः
सैकनाड्यंक बाणाग्नि संख्या (३५९।१) नक्षत्र वर्ष जाः । ६२ ।

चान्द्र वर्ष में (३५४।२२) तथा नाक्षत्र वर्ष में (३५९।१) सावन दिन होते हैं ।

सावनाब्दस्य ते षष्ठि समन्वित शतत्रयम् । (३६०)
स पञ्च दण्ड रूपाङ्गवह्नयो (३६१।५) जैववर्ष जाः । ६३ ।

सावन वर्ष में (३६०।०) तथा बार्हस्पत्य वर्ष में (३६१।५) सावन दिन होते हैं ।

सौराब्द वासराः पञ्चषष्ठ्युत्तर शत त्रयम् । (३६५)
तिथिभिः (१५) क्ष्माग्निभि (३१) श्चैतैः (३१)
सिद्धै (२४) दण्डादिभिर्यतम् । ६४ ।

सौर वर्ष में ३६५।१५।३१।३१।२४ सावन दिन होते हैं ।

ऋक्षेण भगणं केचिदार्द्ध मासं प्रचक्षते ।
अष्ट दण्डोन नागाक्षि गुणाप्तद् वर्ष वासराः । (३२७।५२) । ६५ ।

कुछ लोग चन्द्र भगण काल को नाक्षत्र मास कहते हैं । इस मत से नाक्षत्र वर्ष (१२ नक्षत्र मासों में) सावन दिन संख्या ३२७।५२ है ।

मनूनां राज्य कालोऽत्र मानवं मान मुच्यते ।
न पृथग् दिन मासादि नियमस्तत्र सम्मतः । ६६ ।

स्वायम्भुव आदि मनु प्रत्येक जितने दिन राज्य करते हैं, उस काल को मनु कहा जाता है । इसमें अलग दिन, मास आदि की गणना नहीं है ।

चान्द्रो मासः पितृदिनं यतैः खांगगुणैः (३६०) समा
सावनैस्तद् प्रमाणं तद्रू पाग्नि रस दिग् दिनैः (१०,६३१) । ६७ ।

एक चान्द्र मास को ही पितरों का अहोरात्र कहा जाता है। इस प्रकार के ३६० दिनों का पितृवर्ष होता है । एक पितृवर्ष में (१०,६३१) सावन दिन होते हैं ।

देवमानं यदेवैतदासुरं परिकीर्तितम्
सौराब्दस्तदहोरात्रो दिनरात्रिविपर्ययात् । ६८ ।

देवताओं और असुरों का मान बराबर है, पर उनका दिन और रात विपरीत

क्रम से होते हैं, जिस समय एक का दिन (६ सौर मास का) उस समय दूसरे की रात्रि होती है ।

स षष्ठि त्रिशताहोभि (३६०) स्तदब्दः सतु सावनैः
सम्मितः साङ्कदण्डाग्नि गोशक्राग्नि कुभि (१३१४९३।९) दिनैः । ६९ ।

इस प्रकार के ३६० दैव (या आसुर) दिनों का दिव्य वर्ष होता है। जिसमें (१,३१,४९३।९) सावन दिन होते हैं ।

सौराब्दे रर्बुद गुणैः कृतदिक् चन्द्र वह्निभिः (३११०४०,००,००,००,०००)
सम्मितं ब्रह्मणो वर्षं पुरोक्तास्त द्दिनादयः । ७० ।

ब्रह्मा का वर्ष (३१,१०,४०,००,००,००,०००) सौर वर्ष होते हैं । ब्रह्मा के दिन के बारे में कहा जा चुका है ।

मनूनां यत् पृथङ्मानं हरिवंशेऽस्तितद्रवेः ।
गत्याप्यशक्यमाने तुं लिखाम्यार्षोक्ति गौरवात् । ७१ ।

हरिवंश में मनु का जो अलग मान दिया गया है वह सूर्य की गति से नहीं निकाला जा सकता है । ऋषि वचन के प्रति सम्मान के कारण में उसे यहां लिख रहा हूँ ।

यथा हरिवंशे-दिव्यमब्दं दश गुणंमहोरात्रं मनोः स्मृतम्
अहोरात्रं दश गुणं मानवः पक्ष उच्यते । ७२ ।

हरिवंश पुराण के अनुसार -१० दिव्य वर्षों का मनु का एक अहोरात्र होता है । १० मनु अहोरात्र का मनु का १ पक्ष होता है ।

पक्षो दस गुणो मासो मासै द्वादशभिर्गुणैः
ऋतुर्मनूनां संप्रोक्तः प्राज्ञैस्तत्वार्थं दर्शिभिः । ७३ ।

मनु के १० पक्षों का मनु मास, १२ मनु मास का मनु की एक ऋतु होती है-ऐसा तत्त्व दर्शी ज्ञानियों ने कहा है ।

कालव्याप्ति र्बहुविधा श्रौत स्मार्त्तेषु कर्मसु
तत् शुद्धिश्च विवाहादौ न्युक्ता स्मृत्युक्ति भावतः । ७४ ।

वैदिक और स्मार्त्त कर्मों में अनेक प्रकार का काल विभाग हैं । स्मृति में इस प्रकार की काल व्यवस्था का वर्णन होने के कारण विवाह आदि में काल शुद्धि की व्यवस्था यहां नहीं कही जा रही है ।

चन्द्रगत्यनुसारेण जलोल्लासान्महाम्बुधेः
गंगाद्यवृद्धि नियमः क्वाचित्कत्वादलेखिना । ७५ ।

चन्द्र गति के अनुसार महासागर का पानी ऊपर ऊठता है । अतः गंगा आदि नदियों का पानी भी बढ़ता होगा । परन्तु यह विचार ठीक नहीं होने के कारण

इस विषय में नहीं लिखा जा रहा है ।

> भास्वत्सम्मुख भाग् दले द्युति भृतोऽन्यत्रात्मनश्छायया
> व्याप्तस्येन्दव गोलकस्य सतत क्ष्मा सम्मुखै कार्द्धतः
> सूर्यां शांन्त्यजतोऽयतो धवलतां वृद्धिक्षया वीक्षते
> लोकस्तत् पितरः क्व सम्मुख दले मासार्क पश्चाद् भ्रमम् । ७६ ।

चन्द्र का जो गोलार्द्ध सूर्य के समाने होता है वह सूर्य किरण से प्रकाशित होता है तथा विपरीत दिशा का आधा भाग छाया में रहता है । छाया अर्द्ध के सामने पृथ्वी के लोग देखते हैं, कि चन्द्र सूर्य से दूर जाते समय उसकी कला बढ़ती जाती है । दूसरी दिशा में (चन्द्र सूर्य के निकट) आने पर चन्द्र की कला घटती है । क्या चन्द्र मण्डल पर रहने वाले पितर भी रवि की एक मास तक पश्चिम दिशा की गति देख पाते हैं ?

> नव्याभ्र भ्रमर प्रभाकर सुता पाथः प्रफुल्लोत्पलः
> प्रालेयांशुकलंक कज्जलमहानीलाश्म नीलोज्ज्वलः
> शम्पा चम्पक नीप कुंकुमतमी चामीकरा भाम्बरः
> कृष्णः संसृति शर्करा ध्वजनितं मुष्णातु, तृष्णां मम । ७७ ।

नया काला मेघ, भ्रमर, यमुना जल, प्रफुल्ल नील कमल, चन्द्र का काला कंलक, कज्जल और नीलमणि के समान उज्ज्वल, बिजली, चम्पाफूल, कुकुम, हल्दी और सोने के समान पीताम्बर धारण करने वाले कृष्ण जगन्नाथ संसार रूपी लोभ द्वारा जन्मी मेरी तृष्णा को नष्ट करे ।

> इत्युत्कलोज्ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
> श्री चन्द्रशेखर कृतौ गणितेऽक्षिसिद्धे
> सिद्धान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
> द्वाविंशकः प्रथित काल इतः प्रकाशः । ७८ ।

इस प्रकार उड़ीसा के प्रसिद्ध राज परिवार में उत्पन्न श्रीचन्द्रशेखर द्वारा गणना और दृष्टि में समानता तथा बालकों के ज्ञान के लिये लिखे सिद्धान्त दर्पण में काल वर्णन सम्बन्धी २२ वां प्रकाश समाप्त हुआ ।

त्रयोविंश प्रकाश

पुरुषोत्तम स्तव वर्णन

या वाग् वाग् ब्रह्म शर्वेड़ित गुणवितते: श्रीपते वर्णनाढ्या
सास्याद् विश्वाशुभघ्नी सततमपियुता वद्यवद् गव्यपद्यैः
या तद्रक्ता सुपृक्ता पि च सुभग पदै स्त्यज्यते सद्भिरेषा
तस्मात् कृष्णा चले शामल गुण जलधो वर्णनीयोऽत्रविन्दुः । १ ।

सरस्वती, ब्रह्मा और शिव द्वारा पूजित गुणों के समुद्र लक्ष्मीपति की गद्य पद्य पूर्ण वाक्यों में विस्तृत वर्णन है । वह सारे संसार का क्लेश दूर कर सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ।

दूसरे अर्थ से जो वाक्य अत्यन्त सुन्दर पद विन्यास और लय से युक्त हैं । पर उसमें भगवान् का गुण कीर्तन नहीं है उसको सज्जन ग्रहण नहीं करते हैं ।

अतः विशुद्ध गुण के सागर नीलाचल नाथ श्री जगन्नाथ का बहुत थोड़ा वर्णन यहां किया गया है । गुण के सागर होने के कारण सभी गुणों का वर्णन नहीं हो सकता ।

उत्कल

यत्रक्षेत्रं पवित्रं विलसत सितरुङ् मित्रनेत्रस्य गात्रं
गोत्रा यत्रातिमात्रा स्तदवयव सृती दीपवत्यो विचित्राः
स्वस्थानस्थाः पदस्थापित निजजनता देवताः सन्ति नित्याः
मर्त्याःस्मार्ताः स्मरार्त्ता हरिचरण रता श्चोत्कलः स्तात्कलिघ्नः । २ ।

जिस देश में कमल नेत्र श्रीकृष्ण का शरीर तथा पवित्र क्षेत्र है, जिसके अंशरूप में अनेक पर्वत हैं जहां देवताओं के मन्दिरों में सदा दीपक जलते हैं, जहां देवी देवता अपने अपने मन्दिरों में स्थित होकर भी भक्तों को उच्च पद पर स्थापित करते हैं, जहां के लोग स्मार्त काम कर नाम स्मरण और प्रभु चरण सेवा में तत्पर हैं । वह उत्कल देश कलि के दोषों का नाश करे ।

स्तव्याभव्या अभव्या अपि वचन चयैर्नव्य नवैश्च दिव्यै
र्वास्तव्ययत् पृथिव्या मवनत वदनै र्व्योम्नि निर्वर्ण्यमाना
बाहू व्यूहाग्र विभ्राजित वन जगदा कम्बुचक्रा इवेश्चै
रौड्रः प्रौढः प्रभावो जयति परिवढः सर्वदेशस्य सोऽयम् । २ ।

जहां के निवासी अयोग्य होने पर भी हाथों में चक्र गदा और पद्म धारण करने वाले विष्णु की तरह दीखते हैं । देवगण आकाश में झुक कर उनकी विचित्र और बड़े शब्दों में प्रशंसा करते उनको योग्य कहते हैं, वह औड्र देश बहुत प्राचीन काल से विख्यात है और अन्य देशों से उच्च स्थान पर है ।

पुरुषोत्तम और नीलाद्रि

नानोद्यानोद्यतानो कह वहल दलच्छाय शान्तात पार्त्ति
र्नित्यप्रत्यग्र सौदावलिदलित कला नाथभृत् शैल कान्तिः
अश्रान्त भ्रान्त वात प्रमथित पथिक श्रान्ति रक्षेम शान्ति
कुर्यात् पर्यन्त गर्ज्ज जलधि रधिरुचिः कम्बुभाः कापितुर्नः । ४ ।

जहां असंख्य उद्यानों और उनमें घने वृक्षों के पत्रों की छाया से सूर्य के ताप का कष्ट नहीं होता। जहां के नये प्रासादों की शोभा कैलाश पर्वत से अधिक है, जहां हमेशा बहता पवन पथिकों की थकावट दूर करता है।

जिसके एक तरफ शब्द करता हुआ समुद्र है, तथा जो शंख के समान शोभित पुरुषोत्तम क्षेत्र हैं वहां हम लोगों का निर्वाण और शान्ति हो।

यत्रामर्त्याः परित्राकृत सुकत जनत्रासिनोऽ प्येत्यमर्त्यान्
वित्रस्ता वेत्रहस्ता ननुविवृति कृतः प्रेक्ष्य संरुयेच्छवःस्युः
देवा देवाधि देवानन नलिन दृशः सन्ति नानात्मभाजः
कुर्यात् पर्याप्त वीर्या समविषम सिता हास्य धूर्या पुरीनः । ५ ।

वहां पूर्व जन्म में अकर्म करने के भय से हाथ में बेत लेकर स्तुति करते हुये मनुष्यों से देवता गण मित्रता चाहते हैं, जहां पर अनेक रूपों में स्थिति देवगण कमलनयन प्रभु को देखते रहते हैं, उस पुरी में अत्यन्त बली और नीलगिरि का भार उठाने में समर्थ प्रभु जगन्नाथ हमारा मंगल करें।

अन्तर्वेदी त्रिवेदी निगदितमहिमाधित्यका नित्यकान्ता
स्तुङ्गाः श्रृंगाणि यस्यामर निकरगृहः पावनी यद् वनीश्रीः
प्राकारो यत्प्रपातः प्रमथ पतनुतो पत्यका पूर्यदीया
स श्री शम्पोदभारी वितरतु जगतां मेचकं मेचकाद्रिः । ६ ।

जिस अन्तर्यामी की महिमा तीनों वेदों में उच्चप्रशंसित है, जिसकी उन्नत अधित्यका (पर्वत की उच्च भूमि) सदा रमणीय है, जिसकी चोटियों पर देवतागण रहते हैं, जिसकी भीड़ से लोग पवित्र हो जाते हैं, जिसकी प्राचीर पर्वत समान ऊंची है, जिसकी तट भूमि की शिव सदा प्रशंसा करते हैं, तथा जिसकी पुरी कृष्ण रूपी मेघ के भार से आक्रान्त है उसी नीलगिरि के नाथ हमारा मंगल करें।

पताका

तुंग प्रासाद श्रृंग प्रतिलव पवनान्दोलिता वैजन्यती
वांच्छाकल्पद्रुम तीर्थेश्वर शिरसि चरत् पल्लवं श्री जयन्ती
याम्य स्वाम्याति ताम्यज्जन वृजिन चमूमूर्जितां तर्जयन्ती
पायान्माया भवाब्ध श्रममिव शमिनां विजनैर्मार्जयन्ती । ७ ।

श्री जगन्नाथ के ऊंचे मन्दिर की चोटी पर प्रतिक्षण वैजयन्ती पताका हवा से फर-फर होती है। तीर्थेश्वर इच्छा कल्पवृक्ष के सिर पर हिलते हुए वट के

पत्तों की शोभा को भी इस पताका की शोभा पराजित करती है । जो पापी लोगों को अत्यन्त पीड़ित करने वाली यमराज की सेना को भय देते हैं वे संसार पथ पर थके अपने भक्तों की थकावट दूर कर शान्ति प्रदान करें ।

पताका दण्ड

शौण्डानां दण्डपाणेरपि चरणयुषां दण्डदः केतुदण्डः
श्चण्डाल स्योर्दर्ध्व गत्या अपि किमु विदलच्चण्ड मार्तण्ड बिम्बः
चञ्चञ्चञ्चत्पताकाश्रय विधुति मिषाद् बाहुराहत्य लोकः
प्रासादस्यैव दूरादपनयतुभयं पंकतः किंकराणाम् । ८ ।

जो यम के पद सेवक यम दूतों को दण्ड देता है, पताका की ऊर्ध्व गति से जो प्रखर सूर्य बिम्ब का उत्ताप कम करता है, जो अति रमणीय भाव से हिलकर मानों दूर के लोंगो को हाथ हिलाकर बुला रहा है, और मन्दिर की भुजा के समान है, वह पताकादण्ड हम अकिञ्चन सेवकों के पाप के भय को दूर करे ।

चक्र

चक्रं तन्नक्र शक्र क्रकच कटुतनु क्रान्त्य विक्रान्ति दन्ती
क्रान्ति प्रान्ताति शान्ता जित महित महीः संहरेदं हसां नः
संघसंगात पाता दवितु मविकलं हन्त पातत्य भाजो
भ्राजत् प्रासाद राजोपरि पतितदृशः श्रीशतुर्यां शरूपम् । ९ ।

जिस चक्र ने गज को मुक्त करने के लिए ग्राह के शरीर में आरी तरह घुस कर काट डाला तथा उसके बाद भी अविकृत शान्त और अपराजित रहा, जो लक्ष्मीपति भगवान के चतुर्भुज रूप में विद्यमान है तथा मन्दिर के ऊपर चमक रहा है वह अपने दर्शन करने वाले पापियों के प्रसार और संकट को पूरी तरह नष्ट करे ।

कलश

पर्यन्तोत्कीर्णनानाभरण चणतनुश्चातनुः शीतदायी
सोऽन्तः सन्ताप शान्त्यै विलसतु कलशः सत्सुधाधारधामा
यः पद्माकान्त सद्मा भवविवुध शिरोगर्भ काकार चक्रा
क्रान्तश्चूड़ेव निः श्रेयस पथ पथिकानर्थहृद् हृद्र कुम्भः । १० ।

चक्र के नीचे स्थित स्वर्ण कुम्भ ही मन्दिर का कलश है, जो विशाल अमृत से भरा हुआ है तथा उस पर अनेक प्रकार के चित्र बने हुए हैं, वह सुखदायी तथा मोक्षमार्ग पर चले वालों का अनर्थ दूर करता है । जगन्नाथ मन्दिर के मस्तक के केन्द्र में गोल ढक्कन के समान रहने के कारण वह मन्दिर की चूड़ी के समान दीखता है । वह हमारे हृदय के दुख समूह का नाश करने के लिए सदा विराजमान रहे ।

आवला बेड़ा

सद् वण्टा कर्परात्या मलकत तरति द्योतिता द्योतयन्ती
प्रासादस्थूल मूर्त्तेर्भवतु भगवतः सर्वतोवक्त्र भावम्
याष्टाशोत्यंग जुष्टाष्ट परिगुण चतुः षष्टिमुष्ट्यन्त निष्ठैः
दृष्ट्या भ्रष्टं शिरो वेष्टनमपि तनुते सोम मानिष्ट नष्ट्यै । ११ ।

मन्दिर कलश के नीचे आँवला बेड़ा बड़े घण्टे के खोल के समान तथा मन्दिर रूपी शरीर का कपाल है । इसके ८८ अंग (आंवला) हैं तथा ६४x८ = ५१२ मुट्ठी दूर से देखने वाले लोगों के सिर से पगड़ी गिर जाती है । यह हमारा अनिष्ट दूर करे ।

देउल कण्ठ

स्पष्टा स्पष्टा सुकाष्ठा स्वनुघटित पतच्छ्रेष्ठ कण्ठीरवेन्द्रैः
पश्याद्दिश्या घनागप्रभव परिभवोल्लुण्ठना कुण्ठवीर्यैः
दृष्टि प्रेष्ठकृष्ट प्रतिकृति खलुः सुष्ठु नोऽ धिष्ठिताङ्गि
वैकुण्ठागार कण्ठो विघट यतु हठात् कष्टदादृष्ट सृष्टिम् । १२ ।

जगन्नाथ मन्दिर का कण्ठ शीघ्र हमारे कष्टप्रद प्रारब्ध कर्म को अच्छी प्रकार नष्ट कर दे । इस कण्ठ के आठ दिशाओं में पाप रूपी दिग्गजों को नष्ट करने के लिए श्रेष्ठ सिंह इनके ऊपर अंकित दीखते हैं । मन्दिर से ये गज और सिंह लगे रहने से इनका आकार अत्यन्त सुन्दर अतुलनीय दीखता है ।

मन्दिर

जम्बूद्वीपा स्वभूपाखिल भुवन जयस्तम्भ सम्भार भारी
गर्भस्थानन्त विश्वम्भर शरणतया वाङ्मयातीत मानः ।
सांगो पांगोऽति तुंगोऽनुगुणपृथुलतः प्रेक्षकानन्दकन्दः
प्रासादेशोऽनिशं नःस्पृशतु विश दृशः स्वाशयं श्रीश मूर्त्तिः । १३ ।

समस्त जम्बूद्वीप के सभी राजाओं पर जीत के स्तम्भ के रूप में उनके भार से आक्रान्त होकर यह प्रासाद अपने गर्भ में जगन्नाथ कोरख उनकी शरण पाने से अत्यन्त सम्मानित्त हुआ है । यह प्रासाद अत्यन्त ऊंचा है तथा इसका कोई भी अंग पतला या शक्ति हीन नहीं है । यह जगन्नाथ की मूर्ति के समान अतुलनीय और दर्शकों को आनन्द देने वाला है ।

प्राकार द्वन्द्वमध्य प्रतत समदृशत् कूट्टि माट्टाषकृष्ट
प्रासाद वेष्टिन्नोऽधस्तृत मसृणलसन्नुदग् पाषाण पट्टः
नाना कारावतारैः हरिण नरवरैः कुञ्जरै रञ्जितोऽज्ञः
पुञ्जं कुञ्जाधिराजालय उपचयिनं व्यञ्जयेच्छर्मणा नः । १४ ।

इसके दो प्राचीरों के बीच की भूमि समान कटे पत्थरों से ढंकी है। उसके ऊपर छोटे-छोटे देव प्रसाद हैं। ठीक नीचे चिकना संगमर्मर पत्थर है। मन्दिर की दीवारों पर मत्स्य, कच्छप आदि अनेक अवतार, सिंह और हाथी मूर्त्ति रखी हुई है। नगेन्द्र श्रीकृष्ण के घर इस मन्दिर से हम लोगों का सुख बढ़ता रहे।

प्रग्रीवं सोद्धर्व भागं शिखर मृजुतरं मञ्जरी मञ्जुलाभां
भित्ति ध्वस्ताधभीतिं त्रितनुतनुगृहान् वक्त्रशालां विशालाम्
पीठं शिष्टाभिजुष्टं गृहमति विततं श्री जगन्मोहनाख्यं
भोगार्थं मण्डपञ्चाद् भूत मवनी धवस्याश्रये प्रश्रयेण। १५।

पृथ्वी पति जगन्नाथ की सभी चीजों का मैं भक्ति और उत्कण्ठा के साथ आश्रय लेता हूँ। मन्दिर के कण्ठ के नीचे (छाती के ऊपरी भाग-प्रग्रीव) लगे हुए सीधे शिखरों के समूह अत्यन्त सुन्दर दीखते हैं। मन्दिर के गोलाकार दीवाल को देख कर सभी पाप नष्ट होते हैं। पाताल में स्थित तीन छोटे घर (मन्दिर के पास जिसमें गणेश, वामन और वाराह हैं) उसके बाद विशाल मुख शाला। इसके बाद जगन्मोहन पीठ है जहां के विशाल घर में शिष्ट लोग बैठते हैं। अन्त में भोग मण्डप है।

प्रेंक्षन शंखस्य नाभौ सतत गति वशाद् बाहु दण्डैः प्रचण्डैः
शाखाभिश्चण्डरोति स्तनुजनिज जनान् वासयन् किं विदूरात्
कल्पान्तेऽप्यन्तहीनः सकल कलुषहृत् सिन्धु राजोऽधिराधो
न्यग्रोधः क्रोध कामाद्यरी परिभव कृद् भूत वर्गस्य भूयात्। १६।

मन्दिर का कल्पवट प्रलयकाल में भी नष्ट नहीं होता है और सभी प्रकार के पापों का नाश करता है। यह महासागर के तीर पर अवस्थित है। यह प्राणियों के शत्रु काम, क्रोध आदि को परास्त करे। शंख क्षेत्र की नाभि में रह कर यह कल्प वृक्ष पवन से अपनी भुज दण्ड रूपी शाखाओं से सूर्यपुत्र यम के दूतों को दूर से ही भगा देता है।

भद्राभूमाधव श्रीमुषल भृदरिभिः शोभितः श्रीवपुष्मा
नष्मानुष्णां शुजोषा गम शमनघनः पातु देवाधिदेवः
जन्तुर्मन्तुन्निहन्तुं प्रभवति शतशोऽह्नाय यन्नाम गृह्णन्
पश्यन् भ्रश्यत्य वश्यं विषयजल निधौ नेवयं दैव भृत्यः। १७।

दैव के अधीन प्राणी भी जिस जगन्नाथ का नाम सौ बार लेने से उसी समय पाप से मुक्त हो जाता है, जिसे देखने से संसार (विषय) समुद्र में प्राणी नहीं पड़ता है, जो देवताओं के प्रभु और ताप शान्त करने के लिये वर्षा वाले मेघ हैं तथा जो सुभद्रा, भूदेवी, माधव, बलभद्र और सुभद्रा के साथ शोभा पाते हैं वे हमारी रक्षा करे।

सार्द्धं येनेन्दु पद्मा ह्यखिल मुपमिति द्रव्य मासीत् कृतार्थं
* विद्वद् भिर्वर्णमानं यदनुमितिकृतः कृत्रिमं विश्वमाहुः
शब्द ब्रह्म प्रमाणं यदवयव जनै र्योऽसकृन्नारदाद्यैः
साक्षाल्लक्षोऽपि साक्षो भवति नवनवः श्रीधवः सोऽ वतान्नः । १८ ।

जिसके अंगों से उपमा के कारण चन्द्र और पद्म आदि धन्य हो गये हैं, जिसकी कल्पना करने से तार्किकों को यह सचरा चर विश्व ही कृत्रिम (ईश्वर की तुलना में) लगता है । जिसके अवयव रूप जगत् की उत्पत्ति में शब्द ब्रह्म (ॐ) ही प्रमाण है, जिसे नारद आदि महर्षि प्रत्यक्ष देख पाते थे और जो स्वयं सभी के द्रष्टा होकर स्थित है, वे लक्ष्मीपति भगवान नित्य नये रूपों में हमारी रक्षा करें ।

द्रव्यैर्जातुपमानं न भवति कृतिनां प्राकृतैर्जात दोषं
सर्वान्तर्यामि भवाद्युति मति कृतिभिः यस्य लोकोत्तरस्य
व्यक्ताव्यक्तेषुसत्वे स्वपरिमित निज व्याप्ति मुद् व्यक्त कामः
स्तस्मादो दिव्यसिंहोऽभवदिह च महादारु देहः सनो ऽ व्यात् । १९ ।

भगवान् लोकोत्तर होने के कारण किसी भी प्राकृतिक वस्तु से तुलना (उपमा) कर उनका रूप, बुद्धि या प्रयत्न का वर्णन करने में कवियों का दोष होता है । वह सभी के भीतर स्थित हैं । उन्होंने सभी व्यक्त तथा अव्यक्त द्रव्यों में अपने असंख्य रूपों को दिखाने के लिये दिव्य सिंह (नृसिंह) का रूप धारण किया था । वही दारुब्रह्म रूप में हमारी रक्षा करें ।

पारावार प्रतीरप्रथित वर महापादयोः स्पर्शनाशा
प्रोद्यत् प्रासाद पीठार्पित विपुल वपुः पाण्डु पद्मोपमाक्षः
पूर्ण प्रेम प्रदान प्रवण उपनिषद् प्रार्थ्य मानानुनम्रः
पापौधाम्नां पुनीयात्पतित पतिमयं पूतना प्राण पायी । २० ।

समुद्र किनारे कल्पवृक्ष की दिशा में उसे स्पर्श करते हुए सुन्दर मन्दिर में पीठ (रत्न सिंहासन) पर विराजमान महाकाय जगन्नाथ की आंखें धवल कमल के समान हैं । उन्होंने पूतना राक्षसी के प्राण पी लिया था । उपनिषद् उनकी स्तुति करते हैं । वह भक्तों को सदा स्नेह देते हैं । अतः मेरे जैसे पापराशि का भी उद्धार करे ।

अथ श्री जगन्नाथस्य द्वाभ्यां समुद्र साम्यम् -

लक्ष्मीभृ नागसद् मामृत खनिरशनि त्रासितक्ष्मा भृदीश-
स्थानं स्वर्गापगायाः प्रभुरखिलनृणां पापसन्ताप हन्ता
श्याम श्रीमान् कूर्माद्यमित तनुधरः शंखचक्राब्जवाहः
कल्पान्त ग्रस्त लोकः कलयतु कमलं तीर्थराट् क्रान्ति शन्त्यै । २१ ।

जगन्नाथ लक्ष्मी पति हैं तथा समुद्र भी लक्ष्मी का पिता है । भगवान नाग

(शेष) को घर बनाये हैं । नाग का घर समुद्र है । दोनों अमृत के भण्डार हैं । भगवान ने मस्त्य कच्छप आदि प्रत्येक रूप धारण किया था, ये सबी रूप वाले प्राणी समुद्र ने भी धारण किये हैं । इन्द्र वज्र से रक्षा के लिए पर्वत (गोवर्द्धन) का आश्रय कृष्ण ने लिया था-समुद्र ने भी वज्र से रक्षा के लिए पर्वत (मैनाक) को आश्रय दिया था । विष्णु से गंगा की उत्पत्ति (नख से हुयी), समुद्र में गंगा मिलती है, अतः दोनों गंगा के स्वामी हैं । भगवान के हाथो में शंख, पद्म आदि है जो समुद्र में भी है । सृष्टि के अन्त में वे दोनों भुवनों को जनप्लावित करते हैं । वे सभी तीर्थों के राजा हैं । वे दोनों दुःख शान्ति के लिए सुख (जल) का विवरण करें ।

यत्रास्ते सानुबिम्बादित सित किरण प्रोज्वलं नेत्रयुग्मं
नासाबाहूदराघ्रिं स्फुरति च विविध द्वीप शोभानुकारि
वारीत श्यामल श्रीर्मकर सुरुचिरे कुण्डले वाड़वाग्नि-
ज्वाले वाद्यत् किरीटं तरणिव दधरः सोऽस्तु शान्त्यै कृपाब्धिः । २२ ।

जिसके दोनों नेत्र उदय होते हुए सूर्य और चन्द्र बिम्बों के समान है । (कृष्ण नेत्र गोल तेजस्वी हैं) । समुद्र में भी दोनों उदय होते सम उसके नेत्र समान दीखते हैं । जिसके नाक, भुजा, पेट और पैर आदि प्रत्येक द्वीपों के समान है (कृष्ण के भुजा, पैर आदि द्विप अर्थात् हाथी के समान विशाल हैं) समुद्र के द्वीप उसके अंगों के समान बाहर निकले हैं । जिनकी श्यामल शोभा है (कृष्ण और समुद्र दोनों नीले हैं) जो मकर कुण्डल धारण किये हैं (कृष्ण के कुण्डल का आकार मकर जैसा है । समुद्र के भीतर मकरों का समूह है), जिसका किरीट् बड़वानल के समान तेजस्वी है (कृष्ण की मणि किरीट का तेज अग्नि के समान है, समुद्र का बड़वानल उसकी मणि के समान है), जिसका नौका के समान अधर है । कृष्ण के ओठ नौका के समान सामान्य वक्र हैं, समुद्र का प्रवेश द्वार नौका है- मुख के प्रवेश की तरह)- वे दया सागर (कृष्ण और समुद्र) हमारी शान्ति के लिये विराजमान रहें ।

ब्रह्माण्ड साम्यम्

विभ्रद् वस्त्र क्षपे शौ नयन युग मिषादगभ शोभामदभ्रां
शुभ्र श्री वक्त्र दम्भादधर पुर रुचि व्याजतः सान्ध्यवेलाम्
तिर्यग् विस्तीर्ण वृत्तातुल भुजबल यच्छद् मनश्चक्र वालं
शैलं मध्यच्छला काञ्छल मुपरि नुतात् विश्वभर्त्ता शुभंनः । २३ ।

ब्रह्माण्ड के सूर्य चन्द्र की तरह कृष्ण के दो नेत्र हैं । ब्रह्माण्ड के मेघ की तरह कृष्ण भी श्यामल है । ब्रह्माण्ड (आकाश) के समान कृष्ण का स्वच्छ तेज है । ब्रह्माण्ड की सन्ध्या के समान लाल रंग कृष्ण के अधरों का है । भगवान की दोनों भुजायें ब्रह्माण्ड के दिगवलय की तरह तिर्यक् फैली हुयी, गोल और

अनुपम है । ब्रह्माण्ड का मेरु सुवर्णमय है, कृष्ण भी शरीर में सुवर्ण समान पीताम्बर पहने है । इस प्रकार ब्रह्माण्ड समान ही उसके स्वामी हमारा शुभ करें ।

श्री जगन्नाथ स्य शिव साम्यम् -

भूते शो भूति भूमिर्भवज भय भरोद् भेद भेदिप्रभावो
भुवीन्द्र भोगाभरण पुर भी भावदो भूत भूतेः
भू भृद् भूमीन्द्र मौलि र्भूत वरकमलो गौर भाभेशभंग-
प्रभ्राजद् भाल भत्तिर्वृषभरणचणः सत्यदप्राभिसन्धिः । २४ ।

कृष्ण भूत (प्राणियों) के प्रभु हैं । शिव भूत पिशाचों के । कृष्ण अणिमा आदि विभूतियों के स्थान है, शिव भूति (भस्म या सम्पत्ति) के आश्रय स्थल । कृष्ण संसार के कारण हुए भय (भवभीति) का नाश करने में प्रभाव शाली हैं । शिव भूमि से निकले भयानक सर्पों को अपने शरीर से लिपटाये हैं । कृष्ण पर्वतराज (नीलाचल) पर नील कमल के समान मुकुट रूप में विराजमान हैं । शिव पर्वत राज (कैलाश) पर अपने मुकुट पर गंगा जल धारण किये हैं । कृष्ण का ललाट खण्ड चन्द्र के समान उन्नत है, शिव ललाट पर खण्ड चन्द्र है । कृष्ण धर्म रूपी वृषभ के रक्षक है अथवा वृषासुर के नाश कर्ता है । शिव वृषभ पर आरूढ़ हैं । कृष्ण का हृदय साधुओं के लिए अति खुला है । शिव का हृदय भाव दक्ष कन्या सती के पास पूर्ण हुआ । कृष्ण कान्ति गौर वर्ण को नष्ट करती है अर्थात् काला है, शिव गौर हैं । वे दोनों प्राणियों की उन्नति करें ।

श्री गौरी साम्यम्

सर्वाराध्या सितक्ष्माधर परम यशोभूति विख्यात हेतु-
माता लोकस्य दृप्यन्मधुवध मुदिता दित्यगीत प्रशस्ति
पाता इण्डादि दैत्या भिभवन खर रुक् चन्द्रकान्तोत्तमांग
श्री रस्मान् सर्वदो मेश्वर उदित रतिः केलिकान्ताङ्गसंभृत् । २५ ।

लक्ष्मी पति विष्णु के लिये-सभी वस्तु देने वाले लक्ष्मीपति जगन्नाथ हमारी रक्षा करें । वह लक्ष्मी को क्रीड़ा के लिए अपने शरीर पर धारण करते हैं । कृष्ण से सदा अनुराग (सुगन्ध) निकलता है । वे मस्तक पर मोर पंख लगाते हैं । अति उग्र प्रथम दैत्य हिरण्यकशिपु को मारने के लिये उन्होंने नखों आदि की शक्ति दिखायी थी । मधु दैत्य को मारने पर देवताओं ने उनकी प्रशंसा की थी । वे १४ ब्रह्माण्ड बनाने वाले तथा सभी के पूज्य हैं । उनके कारण नीलाचल के यश (सम्पत्ति) में वृद्धि हुयी है ।

गौरी के लिये -गौरी सभी की आराध्या, कैलाश की सभी यश सम्पत्ति का कारण तथा लोकों की माता है । चण्ड आदि दैत्यों के को हराने के समय उनका अत्यन्त तेज था । ईश्वर प्रति अति अनुराग के कारण उनके वाम अंग में स्थित हुयी है । खण्डित चन्द्र से उनका (शिव का) मस्तक शोभा पाता है । उनका

नाम उमा है । मधु दैत्य के वध के लिए देवताओं ने उनकी वन्दना की थी जिनकी शक्ति से वह मारा गया ।

वाग् देवी साम्यम्

श्रीमद् गौराम्बराडम्बर रुचिर पयोराशि शित्यंग लक्ष्मी
र्लक्ष्मी सेना दृतांग स्फुट तमसमनः संगति वाङ्ङितांघ्रिः ।
ब्रह्मानन्दैक भूमिर्भ्रमशमन पटुः साश्रिता नाम विद्यां
भिद्याद् स्थूल देहा हित सकल जगद्धिरमेय् स्थितिर्नः । २९ ।

कृष्ण पक्ष में अर्थ - श्रीकृष्ण हमारी दुर्गति दूर करें । उनके नील शरीर पर पीताम्बर फब रहा है । उनको लक्ष्मी, शिव और सूर्य सम्मान करते हैं । उनके पास देवता लोग जाते हैं । सरस्वती उनके चरणों की वन्दना करती है । वे भक्तों का अज्ञान दूर करने में दक्ष तथा ब्रह्मानन्द देते हैं । वे सूक्ष्म रूप से पूरे समाज में व्याप्त हैं । उनकी स्थिति पण्डित लोग ही समझ सकते हैं ।

सरस्वती पक्ष में अर्थ- सरस्वती हमारी माया दूर करें । उनके धवल शरीर पर शुक्ल वस्त्र फब रहा है । विष्णु से वह आदृत हैं तथा उन्हीं के प्रिय फूल सरस्वती पर अर्पित हैं । भक्त उनकी चरण वन्दना करते हैं। वह भक्तों का अज्ञान दूर कर ब्रह्मानन्द देती हैं । सूक्ष्म देह से सारे संसार में व्याप्त हैं । पण्डित ही उनकी स्थिति के बारे में जान सकते हैं ।

गणेश साम्य-

हस्त्योद्य पुष्कर श्री श्रुति शिखर धृतोन्मत्तचित्तालिलेखो
ऽलंकर्त्ताक्षाम मध्य स्त्रिपुर हर तनुदक्ष पक्षस्य रक्षात्
सद्योऽविद्यान्धकारात् परशुधर पुरस्कार्य दुर्वार्य वीर्यो
देवः श्री पार्वती वाग् विधिं विततयशाः स्वर्गवर्गाग्रपूज्यः । २७ ।

कृष्ण आदित्यों में प्रथम (उपेन्द्र या वामन) हैं, गणेश देवताओं में प्रथम पूज्य हैं । कृष्ण ने दुर्द्धर्ष परशुराम को पुरस्कार दिया था । गणेश ने भी परशुराम को बहुत कठिनाई से रोका था जब वे शिव से पुरस्कार लेने जा रहे थे । कृष्ण हरि हर मिलन में शिव के दाहिने रहते हैं । गणेश भी शिव के दाहिने रहते हैं । दोनों के हाथ में कमल का फूल सजा हुआ है । दोनों का यश लक्ष्मी, पार्वती, सरस्वती और ब्रह्मा फैलाते हैं । दोनों हमारे अविद्या रूपी अन्धकार को नष्ट करे ।

सूर्य साम्यम्

छाया कान्तः कृतान्तार्च्चित चरण युगः पाणिराजत् सरोजः
स्वाग्रोद्यद् वैनेतेया रजनीचर सुखोच्छाया विच्छेददक्षः
स्वच्छानन्तांक लीलः क्षयिततम तमाः सर्वतेजोऽभिभावी
कालिन्द्यानन्द कलः प्रमुदित कमलः पातु पकांधरिर्नः । २८ ।

कृष्ण पाप से हमारी रक्षा करें । सूर्य छाया देवी के स्वामी हैं । कृष्ण की भी छाया के समान कान्ति है । कृष्ण का चरण यमुना धोती है । यम (सूर्य पुत्र) सूर्य की पूजा करते हैं । कृष्ण के हाथ में कमल शोभित होता है । सूर्य किरणों (पाणि) से कमल खिल जाते हैं । कृष्ण वैनतेय गरुड़ पर चलते हैं । सूर्य के आगे भी वैनतेय (अरुण) सारथी उन्हें ले जाते हैं कृष्ण राक्षसों (रजनीचर) का नाश करते हैं । सूर्य रजनी (अन्धकार) का नाश करते हैं । अनन्त (शेष नाग) की गोद में कृष्ण विश्राम करते हैं । सूर्य अनन्त आकाश में विचरण करते हैं । दोनों में सभी प्रकार का तेज है । दोनों कालिन्दी को सुख देते हैं (कालिन्दी कृष्ण की एक पत्नी, कालिन्दी यमुना सूर्य की पुत्री) । दोनों सदा पद्म को आनन्दित करते हैं ।

नवग्रह साम्य

पद् मान न्दैक सद् मामृतनिधिर वनी नन्दनश्चन्द्र वंशो
तंसः स्वर्गेशवर्गोड़ित चरण युगः सत्कवित्वा श्रयश्च
पत्री भूतो रूपत्री जननयन चया गोचरो नीचकेतु
ज्योतिष्मान च्युतोऽस्मानवतु द् भवभया दाशु विश्वग्रहात्मा । २९ ।

कृष्ण और सूर्य दोनों पद्मानन्द देने वाले हैं (कृष्ण के आंख, हाथ पैर आदि पद्म के समान आनन्द दायक, उनके हाथ में पद्म है, पद्मा सन में उनके ध्यान का आनन्द होता है । सूर्य किरणों से पद्म खिलता है) । कृष्ण और चन्द्र दोनों अमृत के भण्डार हैं । कृष्ण अवनी नन्दन (पृथ्वी को आनन्द देने वाले) हैं, मंगल भी अवनि (पृथ्वी) के पुत्र हैं । कृष्ण चन्द्र वंशी है, बुध, भी चन्द्र पुत्र हैं । कृष्ण-वाहन गरुड़ तथा सूर्य सारथी अरुण दोनों वैनतेय हैं । कृष्ण देववर्ग द्वारा पूजित हैं, वृहस्पति भी उनके गुरु में पूजित हैं । कृष्ण सृष्टि निर्माता (कवि) या कविता का विषय है । शुक्र भी कवि (रचयिता) हैं । शनि भी गृद्ध वाहन हैं । कृष्ण का नित्य रूप आंख से नहीं देखा जा सकता जिस प्रकार राहु को नहीं देखा जा सकता । कृष्ण नीच (दीन) लोगों के बन्धु हैं केतु भी नीचों का अधिपति है । कृष्ण और सूर्य दोनों सभी ग्रहों की आत्मा और प्रकाश वाले हैं ।

गोविन्द वन्दना

वन्देवन्दारु वृन्दारक निकर शिखा रत्न नक्षत्र राजी-
रज्यात्पादा रविन्द स्फुट नखर विध ध्वस्त चेत स्तमस्कम्
कोटि क्रीड़ाण्ड भाण्ड प्रकट गुण घटैः सेवितं स्वावतारै
श्रीमद् गोविन्द मिन्दिवर रुचिर तनु मिन्दिरानन्द कन्दम् । ३० ।

मैं श्रीगोविन्द को प्रणाम करता हूँ । देवताओं के सिर उनके चरणों पर प्रणाम करने के लिये झुकते हैं, तो उनके मुकुट पर नक्षत्रों जैसे प्रकाश रत्नों से चरण कमल प्रकाशित हो जाते हैं । उनके नखों की चन्द्र समान उज्जवलता से हृदय

का अन्धकार दूर हो जाता है । करोड़ो ब्रह्माण्ड उन्हीं के गुणों के प्रकाश है । उनकी पूजा उन्हीं के अवतार भी करते हैं । उनका शरीर नील कमल जैसा सुन्दर है तथा लक्ष्मी के आनन्द का मूल हैं ।

अथ दशावतार स्तुति मीनावतार

मीनोऽलीनो नदीनोदर उषित ऋषि व्रात गोत्रातरीस्थं
त्रातुं सत्यव्रतं वातरदिह सुमहाहार्य सन्दोह देहः ।
वेदोद्धाराय योद्धा व्यधित वधमदश्चौर वृत्रालिशत्रो-
स्त्राणं तापत्रयान्न स्त्रिपुर हर पुरष्कार पात्रं तनोतु । ३१ ।

मीन अवतार धारी भगवान तीन तापों (दैहिक, दैविक और भौतिक) से हमारी रक्षा करें । विशाल आकार के कारण वे मीन रूप में समुद्र में भी नहीं छिप सके । उन्होंने नौका रूप पृथ्वी में स्थित ऋषियों तथा दुःखी सत्यव्रत के उद्धार के लिये अवतार लिया था । उन्होंने वेदों के उद्धार के लिये शंखासुर का वध किया जो वृत्रशत्रु इन्द्र का शत्रु और चोर था । उनकी त्रिपुरारि भी पूजा करते हैं ।

कूर्मावतार

कूर्म्मेऽशर्म्मोपनिर्म्मोचयतु रयभर भ्रान्त मन्थस्थिराभृ-
द् भूरिग्रावाग्र संघटन घटित महापृष्ठ कण्डूति सौख्यः
पच्छंकोचच्छलनो च्छलित चल हृदां मिलनं स्वाश्रितेभ्यो-
ऽनर्थभ्यः प्रोत्थितास्येन च पवन समुत्थान मर्थापयन्नः । ३२ ।

कूर्म रूपी श्री जगन्नाथ हमारा अमंगल दूर करें । समुद्र मन्थन के लिये उनकी विशाल पीठ पर मन्दराचल पर्वत के तेज घूमने से उनकी पीठ की खुजली दूर होने का सुख हुआ । पैर संकोच करने से जिस प्रकार मन्दराचल को आश्रय मिला था (उनकी पीठ पर) उसी प्रकार भ्रमित बुद्धि वाले लोगों की बुद्धि भी स्थिर होती है । मुहं खोलकर हवा निकालने से समुद्र मन्थन में देवो और असुरों को शक्ति मिली, इसी प्रकार लोगों को उस रूप से काम करने की शक्ति मिले ।

वाराहावतार

कोलं-कोलं कुगोलं दधदधि जलधी वाध उद्धत्यदन्त
प्रान्तेऽशान्ते दूरन्ते प्रथम दितिसुते वृद्धदुर्द्धर्ष युद्धैः ।
देयादाया सहीनोदृहिण हरिहया द्यादितेयार्हणीयः
श्रेयो दाम्नाया गेय क्रतुनिचयमया मेघकायः श्रियः नः । ३३ ।

वाराह ने प्रबल और दुर्भेद्य दिति के प्रथम पुत्र हिरण्याक्ष जैसे दुर्वृत्त को मार कर बिना कठिनाई के ही समुद्र में नाव के समान अपने दांतों पर पृथ्वी को नीचे से उठा लिया था । उस समय ब्रह्मा इन्द्र आदि ने उनकी पूजा की थी । वेद उनकी स्तुति करते हैं । वह यज्ञ मय और अनन्त हैं । वराह रूपी भगवान हमारा

मंगल करे ।

नृसिंहावतार

अघं संघं नृसिंहो भवतु भवहरोऽह्नयसंहर्त्तु मर्हे
गर्हन्निर्ह्लादवृन्दैः प्रलय जलधर ध्यान धारा समृद्धिम्
अक्षान्त स्वीय भक्ताक्षति रमरपराध्यक्ष वक्षः क पाट
क्षोभ प्रक्षर्यमाणक्षतय भृतनखो लक्ष्यलक्ष्मीकवक्षाः । ३४ ।

संसार के (जन्म मृत्यु के) नाशक नृसिंह भगवान शीघ्र पाप समूहों का नाश करें । उनके वक्षस्थल पर लक्ष्मी है । अपने भक्तों की क्षति या कष्ट वे नहीं सह पाते हैं । दैत्यराज हिरण्यकशिपु के कपाट रूपी वक्ष को चीरने से निकलाहुआ रक्त उनके नखों में लग गया था । उस समय उनकी घोर गर्जना प्रलय कालीन मेघ से भी अधिक भयंकर थी ।

वामनावतार

खर्विकुर्वित दर्वि कर भुवनक गीर्वाणवर्गालयार्वी
गर्वानिर्वाक् सुपर्वार्य वनिधवमहा सम्पदं लुम्पमानः
व्यापद् व्यापञ्चयं पत्रितय रयभरा दर्थना व्याजखर्वः
सर्वं शंकादि सेव्यः स्त्रवद मर धुनी नीर पन्नीरजोयः । ३५ ।

वामन् भगवान हमारे विपद समूह को नष्ट करें । उनकी शिव आदि देवता सेवा करते हैं । उनके चरण कमलों में गंगा निकली है । मांग कर छल करने के लिए उन्होंने वामन रूप लिया था । दैत्यराज (बलि) की सम्पूर्ण सम्पत्ति (दान में) लेकर उन्होंने अपने तीन पगों से पाताल, देवालय (स्वर्ग) और पृथ्वी-सबका गर्व चूर्ण कर दिया था ।

परशुरामावतार

षष्ठः क्ष्माप्रेष्ठ गोष्टी कुठ गण लुठना कुण्ठतेजः कुठारः
श्रीवैकुण्ठावतारः कठिन रणधुरादृष्ट षष्ठीश पृष्ठः
तिष्ठन् कण्ठिर वाभीऽर्जुन सुभटघटा घोर मातंग यूथे
श्रेष्ठः कष्टानि निष्ठे वयतु भृगु भुवां नील कण्ठांघ्रि निष्ठः । ३६ ।

भृगुवंश के श्रेष्ठ, भगवान के षष्ठ अवतार और विष्णु के अंशरूप परशुराम स्वयं वैकुण्ठावतार के रूप में हमारा कष्ट दूर करें । वह नील कण्ठ महादेव के भक्त और कार्त्त वीर्य अर्जुन के योद्धा रूपी हाथियों के लिये सिंह के समान पराक्रमी थे । उन्होंने निष्ठुरता से कार्तवीर्य अर्जुन को मार डाला तथा पृथ्वी के राजाओं को वृक्षों की तरह काट गिराने में कुठार कुण्ठित नहीं हुआ ।

रामावतार

रामः श्यामाब्जधामा शमयुत सममाशर्म धर्मांश वंशो
तंसः संसार हिंसा वह महिम महाम्भोधि रम्भोज नेत्रः
शोण्डश्चण्डीश काण्डा सनवल दलने दण्डकारण्य चारी
हारी वारीश तारी सरपर विसर प्राणहारी षुधारी । ३७ ।

भगवान राम नील कमल के समान और सूर्य वंश के भूषण हैं। वह हमारा अमंगल दूर करें। उनकी आंखें कमल के समान सुन्दर हैं। संसार के हिंसकों के नाश के लिये (डुबाने के लिये) महासागर के समान हैं। उन्होंने शिव धनुष को भी सहज में मोड़ कर तोड़ दिया था। दण्डकारण्य में विचरण करने वाले हैं तथा महासागर को पाकर उन्होंने अजेय रावण का प्राण हर लिया था। वे सदा बाणों के साथ रहते हैं।

बलरामावतार

उर्जेन्दु ज्योतिरुर्जस्वल विमलहराहार्यरुग् जैत्र गात्रः
सद्यः प्रोद्यहिनेश प्रमदमदभराघूर्णिना स्तीर्ण नेत्रः
प्रत्यग्राम्भोदवन्द प्रतिभट पटभृद् भूरि भास्वद् विभूषो
भूयाद् भूगोल भारो भव भयभिद् भानु भूभेदनो नः । ३८ ।

भगवान् बलराम हमारा संसार भय दूर करें। वह कार्तिक पूर्णिमा के चन्द्र के समान प्रकाशमान है, अथवा रोहिणी (माता) के चन्द्र (पुत्र) रूप में विख्यात हैं। उनके शरीर की धवल कान्ति कैलाश पर्वत से भी अधिक है। उनकी आंखें मदमस्त तथा चञ्चल है, लाल और विशाल होने के कारण उदय कालीन सूर्य के समान दीखती हैं। नीचे मेघ समूह के समान नीले रंग का वस्त्र पहनते हैं तथा बहुत से आभूषणों से सज्जित हैं। शेष के रूप में वह पूरे संसार का भार बिना कष्ट के ही सहते हैं।

बुद्धावतार

अध्यात्मध्यान बुद्धादर विधृत धृतिर्ध्वस्त शुद्धाध्मराध्व
श्रद्धाः क्रोधादिरोधा विधि विहित वधा साधुता सिद्ध बोधः
दध्याद् बुद्धा भिधानो मगध धरणी हल्लब्ध जन्माभिदेवो
बाधाब्ध्योद्धार धूर्यां धियमधन धनं धर्मधारां धरन्तः । ३९ ।

भगवान बुद्ध के रूप में हमारी बुद्धि को बढ़ायें। मगध देश के (लुम्बिनी के राजवंश) में जन्म होने पर भी वे दरिद्रों के धन थे। विपद् समुद्र से उद्धार के लिये उन्होंने उपयुक्त धर्म मार्ग बनाया। सदा आत्मा में लीन रहकर कभी धैर्य नहीं छोड़ा। उन्होंने वैदिक यज्ञ कर्मों में पशुओं की हत्या की स्पष्ट रूप से निन्दा की। यज्ञ में पशुओं की हत्या की तुलना में अपने ही भीतर काम क्रोध आदि

शत्रुओं का दमन श्रेष्ठ है यह प्रतिपादित किया ।

कल्कि अवतार

निर्धूली धूमाधारा धरनि कर नभो मध्य विद्योतमानं
द्योत् प्राग् भार भास्वद् भ्रमकर कर युङ् मण्डलाग्र प्रचण्डः
स्वाधाराधीर घोरोद्धर तुरंग सुरक्षोदित क्षोणिरेणु
च्छन्नच्छायेण ईशोदिशतु दशको म्लेच्छविच्छेदकृच्छम् । ४० ।

भगवान् अपने कल्कि अवतार द्वारा हमारा मंगल करें । धूलि, धूम और मेघ से शून्य स्वच्छ आकाश में दशम अवतार कल्कि का प्रकाश होगा । उनके शरीर के ऊपरी भाग से तेज निकलेगा (मुख और आंखो से अग्नि) । तथा हाथों में तीक्ष्ण खड्ग (करवाल) सूर्य की भ्रांति भ्रमण करेगा । उनके भंयकर रूप तथा भयानक अश्व की गति से पृथ्वी खाली हो जायेगी और म्लेच्छों का संहार होगा । उससे उत्पन्न धूलि से स्वयं सूर्य ढंक जायेगा ।

जगन्नाथ स्तुति

मत्स्याद्या कल्कि रूपं दशविधतनू भाक् सिद्ध (२४) संख्यात्ममूर्त्तिद्
द्वात्रिंशद् घात्रधर्त्ता जगदुपकृतयेत्कृप्तनानावतारः
भागांशाद्यैर्विभेदैः परिचरित पद द्वन्द्व इन्द्राश्म कान्तिः
कृष्ण तृष्णा नृताब्धेः सजतुनृजनिजा दुष्कृता निष्कृति मे । ४१ ।

भगवान् में जगत के उपकार के लिये मत्स्य से कल्कितक १० अवतार, २४ अवतार और ३२ अवतार ग्रहण किये तथा आवश्यकता होने पर और भी अवतार लेते हैं । नीलमणि के समान श्याम तेज वाले उनके शरीर की भक्तगण पूजा करते हैं । अपने अलग अलग अंशों से विभिन्न अवतार लेते हैं । श्री कृष्ण आशा रूपी मिथ्या समुद्र तथा मानव जन्म के कारण जो दुष्कर्म करना पड़ता है, उससे उद्धार करे ।

या लीला गोकुलान्त र्मधुपुरी रचिता या कृता द्वारवत्यां
क्षित्यां नित्यावतारैः प्रतियुग मुचिताः सुचिताः प्राङ्मुनीन्द्रैः
तास्ता विस्तारयन् यो वसति शिति गिरौ वेद वेद्योऽवतारी
नित्यो धाम्नि स्फुरतु मर रिपुः सोऽयमन्तः सदानः । ४२ ।

श्री कृष्ण अवतारी, मुरारि, तथा वेद द्वारा जानने योग्य है । उन्होंने कृष्ण वतार में गोकुल, मथुरा तथा द्वारका में जो लीलायें कीं उनका वर्णन व्यास आदि ऋषि पहले ही कर चुके हैं । अभी वही मुरारि श्री जगन्नाथ रूप में वैकुण्ठ समान नीलाचल धाम में विराजमान होकर भक्तों को प्रेरणा देते हैं ।

योऽसौ सर्वत्र पूर्णोऽप्यसित गिरि दरी केशरीथोऽ प्यरूपः
पद्म प्रद्युम्नरूपोऽप्यणु रतनुतनू संभृताशेष लोकः ।

निस्त्रैगुण्योऽगण्या मल गण निलयो वाङ्मनोऽतीत धामा ।
मादृक् चर्माक्षिलक्ष्यः स्फुरतु मनसि न श्चित्र सिन्धुर्मुकुन्दः । ४३ ।

जो सभी समय और स्थान में पूरी तरह व्याप्त होने पर भी नील गिरि की गुफा में सिंह के रूप में रहते हैं । नहीं होने पर भी वह कूर्म तथा प्रद्युम्न आदि अनेक रूप धारण करते हैं । वह अति सूक्ष्म होने पर भी उनके भीतर अनन्त लोक (१४ भुवन) हैं । वह प्राणी और मन द्वारा कल्पना से बाहर और निर्गुण होने पर भी निर्मल गुणों के आश्रय हैं । वही मुकुन्द हमारे चर्म चक्षुओं को दर्शन दें तथा मन में सदा प्रकाशित रहें ।

माधुर्यैश्वर्य पूर्णः शितिघर परम व्योम गोलोक नाथः
श्री भूलीलादि सेव्योदर कमल गदा चक्रभृद् वेणु पाणिः
भुक्तेर्मुक्तेश्च भक्ते र्वितरण निपुणश्चिद् घनानन्द मूर्तिः ।
सर्वव्यापी परात्मा स भवतु भगवान् ब्रह्म भूति र्गतिर्नः । ४४ ।

कृष्ण प्रेम विभूति से पूर्ण और ज्ञान आनन्द के भण्डार है । वह सर्वव्यापी, परमात्मा तथा गोलोक के नाथ हैं । लक्ष्मी, भूदेवी तथा लीला आदि देवियां सदा उनकी सेवा करती हैं । द्वि भुजरूप में वंशीधर तथा चतुर्भुज रूप में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए हैं । वह रूप, मोक्ष, भोग और भक्ति सभी देने में दक्ष हैं । वही आनन्द मूर्ति ब्रह्ममय भगवान हमारी गति हों ।

राजन् प्रासाद् राजेवृजिन वनरुजा कुञ्जरः कुञ्जपुञ्जे
मञ्जौ सञ्जात शात ब्रजयुवती जनान् रञ्जितान् व्यञ्जयन्यः
गर्जत् पर्जन्य राजि प्रतिभट लवणाम्भोधिकूलं स्थनील
क्ष्माभृत् भूसार्व भौमः स भवत भविनां भूतये देवराजः । ४५ ।

कृष्ण सर्वोत्तम प्रासाद (मन्दिर) में विराजमान हैं । वह पाप रूपी रोग के वन के कुचलने के लिए हाथी हैं । मनोहर वनों में अनुरक्त ब्रज युवितयों का आनन्द उन्होंने बढ़ा दिया था । मेघ के समान गर्जन करने वाले लवण समुद्र के किनारे नीलाचल भूमि के सार्वभौम राजा हैं । वही देवराज जगन्नाथ संसारी लोगों को सम्पति दें ।

कंसाकर्ष क्रियाकृत् कनक वसनकः कुञ्जकेलि कलापी
केशोद्यत् केकिपिच्छ कृत कलिकलुष क्लेशलुकृतिः कृतज्ञः
कल्पाक्रान्त त्रिलोको कवलन कलित क्रूर कालाग्नि रुद्रः
कृष्णः कल्याण कारी भवतु कवि कुलोत्कीर्त्तितानेक कीर्तिः । ४६ ।

कृष्ण कंस को मारने वाले, सोने के रंग का पीताम्बर पहनने वाले, कुञ्ज में क्रीड़ा करने में मोर के समान तथा केशों में मोर पंख लगाये हैं । वह कलियुग का पाप और दुःख दूर कर भक्तों पर दया करने वाले (कृतज्ञ) हैं । कल्प के अन्त में वह भयंकर विनाश कारी अग्नि द्वारा (या कालाग्नि रुद्र रूप में) क्रूरता से

तीनों लोकों को समाप्त कर देते हैं। कवियों ने जिनकी अनेक कीर्तियों का वर्णन किया है वह कृष्ण हमारा कल्याण करें।

संख्येऽसंख्ये यदुः क्षेपण कुणपभुजां वक्षसिक्षिप्त वाणः,
पक्षे संख्येऽति दक्षेऽसुर वरतनुजे ख्यात सौख्योऽम्बु जाक्षः
अक्षेऽधिक्षे पलक्ष्ये कुरु कुल नृपतेः धर्मराजे कृपालू
रक्षे दक्षे मविक्षेपक उदधि तट क्षेत्रराट् क्ष्मापतिर्नः। ४७।

युद्ध में कृष्ण के वक्षस्थल पर अनेक राक्षसों ने तीर मारे हैं। दैत्यराज हिरण्यकशिपु के चतुर पुत्र प्रह्लाद उनके भक्त थे, पुण्डरीकाक्ष कृष्ण ने उनको अनन्त वर दिये थे। द्यूत क्रीड़ा में धर्मराज युधिष्ठिर के अपमानित होने पर उन पर उन्होंने विशेष दया की थी। वही कृष्ण समुद्र तट पर पुरुषोत्तम क्षेत्र के स्वामी होकर हमारी रक्षा और अमंगल का नाश करें।

कारागारा नुकारा नुमित भव दवच्छेद नोद्यत्कुठारः
कालव्यालस्यमील जगद दगदः श्रीलनीलाद्रि सिंहः
माराकारावकारा नवरत रतनुर्भानु भूदण्ड खण्डी
सर्वागीर्वाण गर्वाचलपवि रवत प्राक्तनः पूरुषो नः। ४८।

कृष्ण संसार वृक्ष रूपी कारागार को काटने के लिए कुठार, काल रूपी सर्प के मुंह में पड़े संसार के लिए औषध तथा नीला चल के सिंह (स्वामी) हैं। उनका शरीर कामदेव से भी अधिक आकर्षक है। उन्होंने सभी दैत्यों के गर्व रूपी पर्वत को वज्र के समान काट दिया था। वहीं पुराण पुरुष जगन्नाथ हमारी रक्षा करे।

धीरा धीरादि सल्लक्षण चण रमणी वर्गसंगीत रागः
क्षाराम्भो राशि तीरावनि धरणिखर प्रस्तरागार सारः
स्वारान्निराजितांघ्रि र्व्यूहदतलभुजः कुञ्जरापत्ति भेत्ता
भाराहारावतारो वितरतु नितरां श्रीधरः श्रीभरं नः। ४९।

श्रीकृष्ण ने द्वापर युग में उत्तम लक्षण युक्त धीरा अधीरा आदि नायिकाओं के साथ नृत्य संगीत आदि लीलायें की थीं। वह लवण समुद्र के किनारे नीलाचल शिखर के पाषाण मन्दिर में श्रेष्ठ देव के रूप में विराजमान हैं। इन्द्र आदि देवता उनकी चरण पूजा करते हैं। उनकी लम्बी तथा अतुलनीय भुजायें हैं। उन्होंने गज को विपत्ति से (ग्राह द्वारा पकड़े जाने पर) उद्धार किया था। वह पृथ्वी का भार कम करने के लिये सदा अवतार लेते हैं। वही अति सुन्दर जगन्नाथ हमारी श्रीवृद्धि का आशीर्वाद दें।

ह्लादिन्याह्लाद सीमार्बुद मदन रुचिः सन्धिनीसन्धितात्मा
संवित्सवातधामा निगम गण शिर स्तुत्यसत्य प्रभावः

शेषा शेषांग सद्य सुरा तरुतल भात्कल्पित प्रेमरूपः
श्रीकृष्णः प्रेम भक्तिं वितरतु हृदि नः सच्चिदानन्द रूपः । ५० ।

श्री कृष्ण ह्लादिनी शक्ति श्री राधिका के सुख की सीमा हैं । उनकी शोभा लाखों कामदेवों के समान है । वह योग शक्ति युक्त और योगेश्वर है । वेदों के प्रधान अंग उपनिषद् उनकी स्तुति करते हैं । उनका सत्य प्रभाव (वास्तविक वही है, बाकी अस्थायी) है । अनंन्त का पूरा अंग उनका निवास है । वह कल्प वृक्ष के नीचे विश्राम करते हैं तथा प्रेम मूर्ति है । वही श्री जगन्नाथ सच्चिदानन्द हमारे हृदय में प्रेम और भक्ति का वितरण करें ।

राधा साधारण श्रीकमन सुमनसं केकिपिच्छावतंसं
चन्द्रावल्यादिरागाच्छिदूर सुरनदी संग्राहागाध सिन्धुम् ।
वंशी संशीलितारूयं मणिमया कल्पना कल्पयन्तुं
विद्युद् विद्योत् वस्त्रं नव जलद रुचिं श्री जगन्नाथ मीड़े । ५१ ।

श्री कृष्ण राधा को लक्ष्मी के समान देखते थे और उनके लिए कामदेव के समान थे । मोर पंख उनका अलंकार है । चन्द्रावली आदि गोप कन्याओं के गंगा के प्रवाह के समान सतत प्रेमधारा के लिये वे अथाह सागर थे । वह सदा वंशीवादन में रत थे । सोने के समान पीताम्बर और रत्न धारण किये रहते थे । वर्षा वाले मेघ के समान उनके श्याम शरीर पर पीताम्बर की शोभा बिजली के समान है । उसी कृष्ण रूप जगन्नाथ की मैं पूजा करता हूँ ।

यस्य श्री विग्रहोद्यद् द्युति रिति परम ब्रह्म वेदान्त वेद्य
कोटी ब्रह्माण्ड भारी परमशिव भवः श्रीमहाविष्णुरंशः
यस्य भ्रूक्षेप मात्रात्सृजति हरिहर ब्रह्मशक्रादिदेवान्
माया पायाद पायादय मुदित दयः पुण्डरीकेश्वरोऽस्मान् । ५२ ।

जिसके सुन्दर शरीर का प्रज्वलित तेज है, वेदान्त (उपनिषद) द्वारा जिसके परम ब्रह्म होने का ज्ञान होता है, जो करोड़ो ब्रह्माण्डों का भार उठाते हैं,जिनसे परमशिव (या मंगल) उत्पन्न होते हैं, जो स्वंय महाविष्णु हैं, जिनके भौंह हिलाने से ही माया या प्रकृति हरि, हर, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवताओं की रचना होती है, वही दयालु हृदय कमल के ईश्वर मरण से हमारी रक्षा करें ।

कृष्ण कृष्णाम्बुधिष्ण्याम्बुज चरण रण क्षीण गीर्वाणशत्रो
कृष्णाकृष्णादि तृष्णा हरण रणरण श्री तिरस्कार कारिन्
उष्णानुष्णांशु विस्मापन नयन युगाकार तारुण्य भारि
न्नस्मान् भीष्मादि कोष्मापह विहित महापातकान् पाहिपातात् । ५३ ।

हे कृष्ण ! तुमने क्षीर सागर को अपना घर बनाया है । तुम्हारे दोनों पैर कमल के समान हैं । तुमने युद्ध में देवताओं के शत्रुओं को नष्ट कर दिया है । द्रौपदी तथा अर्जुन का कष्ट तुम्हीं ने दूर किया था । तुम कामदेव की शोभा को भी

लज्जित करते हो। तुम्हारी दो आंखें सूर्य और चन्द्र के समान चमकती हैं। तुम सदा युवक रूप में हो। तुमने भीष्म और द्रोण आदि का गर्व (उष्मा) तोड़ा था। हम पापियों की पतन से रक्षा करो।

श्री राधाकान्त कान्तानन नलिन हरे रामकृष्णावतारिन्
गोविन्दानन्द कन्दाद् भुत गुण वितते श्रीपते नीप मालिन्
कंसारेऽसार संसार सार हर हरनुता पारकारुण्य सिद्धो
दुःखान्धोरुद्धतिं मे तनु दनुज रिपोऽनुग्रहप्रग्रहेण। ५४।

हे राधाकान्त, तुम्हारा मुख कमल के समान सुन्दर है। हे हरि, हे गोविन्द, तुमने राम और कृष्ण अवतार ग्रहण किया था। तुम आनन्द के आश्रय हो। तुममें अद् भुत गुण हैं। तुम लक्ष्मी के स्वामी हो। तुम्हारे वक्षस्थल पर कदम्ब फूलों की माला शोभित है। तुम कंस के शत्रु हो। इस असार संसार को ध्वंस करो। तुम असीम दया के सागर हो। तुम को शिव भी पूजते हैं। तुमने ही दैत्यों का नाश किया था। तुम अपनी कृपा रूपी रस्सी से मुझे दुःख रुपी कुँएं से निकालो।

पार्थानर्थ प्रमाथ प्रभित पृथुयशो मन्मथ प्रार्थ्यकान्ते
श्रीमन्नित्य स्थल स्थागम पथ पथिक प्रार्थतार्थामरेन्द्रो
शक्र प्रत्यर्थिपाथः पति मथन महामन्थ पृथ्वीधरान्तः
स्थानं नाथामि तीर्थाधिपतट वटयोः श्रीजगन्नाथ दुःस्थः। ५५।

हे जगन्नाथ, तुमने पाण्डवों का सभी कष्ट दूर किया। कामदेव रूप के लिए तुम्हारी प्रार्थना करता है। सदा लक्ष्मी के साथ अपने नित्य स्थल पर विराजमान हो। धर्म मार्ग में स्थित लोगों की कामना सूर्य करने के लिए तुम कल्पवृक्ष के समान हो। देव और असुरों द्वारा समुद्र मन्थन करने के समय आपने मथानी को कूर्म रूप से स्थिर किया था। मुझ दरिद्र को पुरी के कल्पवट की छाया में और समुद्र तीर पर स्थान दो।

दासी पाद रजां सिनिर्जर शिरोधार्याणि सुर्यात्मक
स्फूर्जद्दूर्ज सुदूत दर्पदमनी यत्रस्थितिः पापिनाम्
तत्रस्ता दसमोद्धर्व वैभववति क्षेत्रोत्तमे जातुमे
नैव श्रीपुरुषोत्तमे शिवतमे स्थातुं विरोगादयः। ५६।

जिस श्रीक्षेत्र के सेव की चरणधूलि को देव अपने सिर से लगाते हैं, जहां रहने से पापी भी यमदूतों के गर्व को खण्डित करते हैं उसी मंगलमय वैभवशाली पुरुषोत्तम क्षेत्र में रहने पर मेरा मन सदा प्रसन्न रहे।

इत्युत्कलोज्वल नृपाल कुल प्रसूतः श्रीचन्द्रशेखर कृतौ गणिते ऽक्षिसिद्धे सिद्धान्तदर्पण उपाहित बाल बोधे कृष्णस्तुतिस्त्रधिक विंशइतः प्रकाशः

इस प्रकार उड़ीसा के प्रसिद्ध राजकुल में उत्पन्न श्रीचन्द्रशेखर द्वारा गणना और दृष्टि में समानता तथा छात्रों की शिक्षा के लिये लिखे सिद्धान्त दर्पण में कृष्ण स्तुति सम्बन्धी २३ वां प्रकाश समाप्त हुआ।

चतुर्विंशः प्रकाशः

उपसंहार वर्णन्

कौतुक पञ्जिका विधानम्

उपक्रमः स्वेष्टतमस्य विष्णोः स्तवादिनादौ रचितश्रुतस्य
तत्पादनत्योपनतस्य पूर्त्ति मथोप संहार ममुष्य कुर्वे । १ ।

मैंने अपने इष्टतम देव श्री जगन्नाथ (विष्णु) का स्तवन कर इस ग्रन्थ का आरम्भ किया था । अन्त में पुनः उनको प्रणाम कर इस ग्रन्थ का उपसंहार कर रहा हूँ ।

तस्यादितः कौतुक पञ्जिकाख्यं वक्षामि किञ्चिद् गणितं मयायद् ।
कैशोर भाजां रचि पञ्जिकालिं दृष्ट्वैव पित्रा लिखितां प्रयत्नात् । २ ।

ग्रन्थ समाप्त करने से पहले कौतुक पञ्जिका नाम से कितनी गणित विधियां मैं कहूंगा । मेरे पिता ने बहुत परिश्रम कर बहुत सी पाञ्जी बनायी थी । मैने युवावस्था में इन्हें देखकर यह कौतुक पञ्जिका तैयार की थी ।

कौतुक पञ्चिका

पञ्चांगपाञ्चीं प्रविलोक्य चैकामन्यां ततः कल्पयितुंक्षमः स्यात्
जनो धनुर्ज्या पदकाद्यविज्ञो यथा तथायं क्रियते प्रकारः । ३ ।

चाप गणित (ज्या, कोटिज्या आदि) बिना जाने केवल पुरानी पाञ्जी (पञ्चाग) देखकर जिस विधि से नयी पांजी बनायी जा सकती है, वह विधि कर रहा हूँ ।

कुवासरा नागशराग्नि (३५८) तुल्या नागेन्दु नाड्योरस भू (१६) विनाड्य
कृतांगरामै (३६४) स्तिथिभिः समाप्ताः स्युर्मन्द केन्द्रौजपदान्तगेऽर्के । ४ ।

अपने मन्दोच्च से सूर्य पूर्व या पीछे के पदान्त में रहने पर उस वर्ष के सावनदिनों की संख्या ३५८।१८।१६ होगी । इतने दिनों में ३६४ तिथि या चन्द्र दिन समाप्त होंगे ।

पलैस्त्रिभि (३) र्विश्व (१३) मितैश्च दण्डे
र्युक्तानिपूर्वोक्त महीदिनानि । ३५८।१३ । ३ ।
ऋक्षैश्चतुः पञ्चगुणैः (३५४) समाप्तं
यान्त्यत्र नेष्टं रवि मन्द केन्द्रम् । ५ ।

३५८।१३।३ सावन दिनों में ३५४ नाक्षत्र दिन होते हैं । अतः चन्द्र मन्द केन्द्र की आवश्यकता नहीं है ।

कुवासरास्ते (३५८) सदलेन्द्र (१४।३०) नाड़ी
युक्ता खनागज्वलनैः सहार्द्धैः (३८०)

योगैः समाप्तिं खलु यान्ति मन्द
केन्द्रौज पादान्त गते खरांशौ । ६ ।

३५८।१४।३० सावन दिन में ३८० १/२ योग होता है । यह सब मन्द केन्द्र से विषम पादान्त में रवि रहन से होता है ।

तिथ्यर्द्धके यत्र यदिष्ट मेतत् संवत्सरान्ते करणं प्रमेयम्
नक्षत्र भोगांघ्रि विवेचनेन नवर्क्षपादान्त कराशयः स्युः । ७ ।

जिस तिथिअर्द्ध में जो करण है, एक वर्ष बाद उसी तिथि के उसी अर्द्ध में वही करण फिर होगा । नक्षत्र के चार पाद करने पर प्रत्येक राशि में ९ नक्षत्र पाद होंगे ।

पूर्णेष्वतो द्वादशसु क्षपेश मासेषु यद्यन्ति भिभाद्यमिष्टम्
तत्पूर्व वर्षे हि तिथिः कृतो (४) ना ग्राह्या
गुणो (३) नं भमथापि योगः । ८ ।

१२ चान्द्र मास पूर्ण होने पर अर्थात् ३५८ सावन दिनों में (एक सौराब्द के अन्तः पात ३५८ सावन दिनों में) चान्द्र वर्ष की ४ तिथि अधिक होगी । पूर्ण भगण का ३ नक्षत्र तथा पूर्ण योग में

सार्द्धद्वयो (२ १/२) नः परिगृह्यतां तद् ग्राह्यर्क्षतिथ्यन्त त एव देयाः
पुरोदितास्ता निजनाड़िकाद्या योगस्य मध्यादथ तत्तराढ्याः । ९ ।

(तिथि नाड्यः (१८।१६ भनाड्यः १३।३ योगनाड्यः १४।३०)

२ १/२ योग अधिक होता है । पूर्व वर्ष में जो तिथि आदि ग्रहण करने से वर्तमान वर्ष की इष्ट तिथि होती है । उसी को ही ग्राह्य तिथि आदि कहते हैं। ग्राह्य नक्षत्र में १८।१६ नाड़ी, ग्राह्य तिथि में १३।३ दण्ड तथा ग्राह्य योग में १४।३० दण्ड जोड़ेगे ।

तिथ्यादयः षष्टि घटीभ्य ऊना भवन्ति चेदिष्ट तमास्तदैकः
ग्राह्ये दिने वार इहैव देयो द्वौषष्टिदण्डाधिकता पिचेत्तौ । १० ।

यह सब योग करने पर फल यदि ६० दण्ड से कम हो तो ग्राह्य दिन में एक एक वार जोड़ना होगा । फल ६० दण्ड से अधिक होने पर २ वार जोड़ा जायेगा ।

तद् ग्राह्यतिथ्यां तिथयश्चतस्रो योज्याश्चतस्रः किलतारकायाम्
योगे च सार्द्धद्वयमेवमिष्ट तिथ्यादयो ग्राह्यत उद् भवन्ति । ११ ।

फल की ग्राह्यतिथि में ४ तिथि, नक्षत्र में ४ तारा तथा योग में २-१/२ योग जोड़ा जायेगा । इसके प्रकार ग्राह्य तिथि आदि से इष्ट तिथि आदि हो जायेगा ।

मासेऽत्रपक्षे ऽत्र तिथिर्मदिष्टा की दृश्य मुष्यां कथमृक्षयोगौ
इतिस्थिते प्रश्न विधौ तिथिः सा पञ्चांग मुख्या प्रतिभाति यस्मात् । १२ ।

इस मास के इसी पक्ष में (अर्थात् चैत्र आदि मास में शुक्ल या कृष्ण पक्ष में) मेरी इष्ट तिथि क्या होगी ? इसी तिथि में पुनः नक्षत्र और योग क्या है ? इस प्रकार प्रश्न हो सकता है । पञ्चांग में तिथि ही प्रमुख होने के कारण

तद् यत्र घस्रे भवतीष्टतिथ्या पूर्त्तिर्यदृक्षायमिहान्तमेति
तदिष्टमस्मात् क्वचिदेक योगो ग्राह्ये क्वचिच्चैक वियोगइष्टः । १३ ।

सौर मास के जिस दिन इष्ट तिथि पूरी होगी, जो नक्षत्र या योग इस तिथि में समाप्त होगा उन सबको इष्ट तिथि आदि मानना होगा । इस इष्ट तिथि के अनुसार ग्राह्य दिन में एक दिन जोड़ना या घटाना पड़ेगा ।

अष्टाग्नयो (३८) नागरसा (६८) गजाश्वा (७८)
नागर्त्तवो (६८) नागगुणा (३८) विनाड्यः
देयास्तिथावेष्ट तमे क्रियादि
मासेषु पञ्चस्व मुना क्रमेण । १४ ।

मेस से आरम्भ सिंह तक ५ मास में इष्ट तिथि में क्रमशः ३८, ६८,७८,६८ और ३८ कला (पल) जोड़ना होगा ।

हेयास्तुला दिष्वथ योग इष्टे प्रोक्तषु मासेषु धनर्ण वाम्यात्
सूक्ष्मागृहाष्टा दश भाग केऽर्केऽन्यत्रानुपातान् न तुभे क्रियेऽयम् । १५ ।

किन्तु तुला आदि ५ मासों में इष्ट तिथि से क्रमानुसार इसे घटाना होगा । यह व्यवस्था इष्ट तिथि में होगी । राशि के १८ अंश में सूर्य रहने पर यह कला सबसे अधिक होने के कारण अन्य अंशों के अनुपात के अनुसार योग या घटाव विकला निकालना होगा। इस विकला जोड़ने घटाने का प्रयोग नक्षत्र आदि में नहीं होता है ।

अथोद्धृतो भावितिथित्तयर्द्धि
कालः क्रमान्माः सुधनुर्मुखेषु
तिथी (१५) न्द्र (१४) विश्वा (१३)
र्यम (१२) रुद्र (११) काष्ठा (१०) गो (९)
दिङ् (१०) महेशो (११) र्यम (१२) विश्व (१३) शक्रैः (१४) । १६ ।

धनुमास से आरम्भ कर १२ मासों का तिथि क्षय और वृद्धि काल क्रमशः इस प्रकार है । धनु (१५) मकर (१४) कुम्भ (१३) मीन (१२) मेष (११) वृष (१०) मिथुन (९) कर्क (१०) सिंह (११) कन्या (१२) तुला (१३) वृश्चिक (१४)

तत्तत् फलं स्वेष्ट तिथावृणाढ्यं कार्यंक्षयर्ध्योरथ भक्षयर्ध्योः
खसूर्य भागोज्झित युग् भमिष्टं स्फुटं भवेतच्चर कर्मवक्ष्ये । १७ ।

इष्ट तिथि में जोड़ने या घटायेंगे । नक्षत्र क्षयवृद्धि काल का १/१२० वां भाग भी उसी क्रम से घटायेंगे या जोड़ेगे । इससे इष्ट नक्षत्र स्फुट होगा । तिथि आदि

का चर कर्म कहा जा रहा है ।

सप्तोनिते ग्राह्य दिने दिनार्द्ध यत्स्या त्तदेवेष्ट दिनेऽब्दतः स्यात्
तदन्तरं यद्दिन सप्तकोत्थं तद् याम्य सौम्यायन योः क्रमेण । १८ ।

ग्राह्यदिन से ७ घटाने पर जो होगा उसी दिन का दिनार्द्ध इष्ट दिन के दिनार्ध के बराबर होगा । अतः ७ दिन (३६५-३५८) सम्बन्धी दिनार्द्ध अन्तर को दक्षिण उत्तरायण क्रम से तिथि, नक्षत्र और योग में जोड़ना या घटाना पड़ेगा ।

तिथ्यादिषु क्षेप्यमृणं विधेय मित्थं स्फुटं स्थूलमत प्रसिद्धम् ।
तिथ्यादिकं सूक्ष्ममितोऽपि कल्प्यं पूर्वोक्तरीत्यामृदुतुङ्ग बोधात् । १९ ।

इतना करने से प्राचीन सौर आदि मतों के अनुसार तिथि आदि स्फुट होगा । स्थूल मत से निकाले तिथि आदि से मन्दोच्च आदि के अनुसार पूर्वोक्त रीति से सूक्ष्मतिथि आदि की कल्पना करनी होगी ।

स्याद् ग्राह्य तिथ्यादि यदीह सूक्ष्मं स्थूली कृतिस्तस्य विधातु मिष्टा
व्यस्तेतु तुंगान्तर पाक्षिकाख्ये कार्ये फले तत्र पुनः प्रयासात् । २० ।

यदि ग्राह्य तिथि आदि सूक्ष्म है तो इस विधि से उन्हें स्थूल करना चाहिये । तुंगान्तर और पाक्षिक फल निकाल कर विपरीत रीति से आदि में उसका संस्कार करना होगा । यह कष्ट साध्य होने पर भी आवश्यक है ।

नागर्त्तवो (६८) नागदिवाकराश्च (१२५) गोर्थेन्दवः (१५९)
षट्कनृपाः (१६६) शरेन्द्रोः (१४५) भुजंगनन्दाश्च (९८)
कलम्बरामाः (३५) क्रमोत्क्रमादाद्य तिथेर्विनाड्यः । २१ ।

प्रतिपदा से सप्तमी की तिथियों में क्रमशः ६८, १२५, १५९, १६६, १४५, ९८ तथा ३५ कला (पल) जोड़ेगे तथा उल्टे क्रम से अष्टमी से चतुर्दशीतक की तिथियों में घटायेंगे ।

कार्याधनर्णान्यथ बाहुलिप्ताः पूर्वोक्त तुंगान्तर केन्द्र जाताः
पक्षार्द्धजास्तत्त्वयमै (२२५) र्विभक्ता लब्धाः स्वखण्डास्तदनुक्रमोत्थाः । २२ ।

पक्षार्द्ध में पूर्वोक्त तुंगान्तर की भुजकला को २२५ से भाग देने पर फल तुंगान्तर केन्द्र का भुज खण्ड होगा ।

वृहस्पते र्मान्द्यफलस्य लिप्ता यास्ताः शरघ्नात् विहृताविनाड्यः
ज्ञेयाः पराः पक्षदले पुनस्ता हताः क्रमादादि तिथे स्त्रि चन्द्रैः । २३ ।

इन खण्डों के अनुसार वृहस्पति का जितना मन्दफल कला होगी उसको ५ से गुणा कर २ से भाग देने पर पक्षार्द्ध की परा आदि होगी । इस परा आदि को प्रतिपदा से सप्तमी तक क्रमशः १३,

तत्वै (२-२५) कलम्बाग्निभि (३-३५) र्थवेदै (४-४५)
द्व्यर्थै (५-५२) र्नगार्थै (६-५७) खरसै (७-६६०) र्विलोमम्
तथाष्टमीतः (६०।५७।५२।४५।३५।२५।१३)
खरसै (६०) र्विभक्ता वामं खतुंगान्तर वद् युतोनाः । २४ ।

२५,३५,४५,५७,६० से गुणा करेंगे । अष्टमी से चतुर्दशी तक क्रमशः ६०,५७,५२,४५,३५,२५,१३ से गुणा करेंगे । सभी फलों में ६० से भाग देने पर जो फल होगा उसे तुंगान्तर फल के समान विपरीत रीति से सूक्ष्म फल में संस्कार करने से स्थूल तिथि हो जायेगी ।

ग्राह्य इतिस्युस्तिथयो भमेवं तिथ्यन्त पूर्णं तदृणस्वनाड्यः
विश्वां (१३) शहीनास्तिथि भान्तयोर्यत् कालान्तरं
यात मनागतं स्यात् । २५ ।

ठीक उसी प्रकार तिथि अन्त में जो नक्षत्रं पूर्ण होगा उसी तिथि में जो घटाने या जोड़ने वाला दण्ड आदि होगा उसका १/१३ भाग कम कर व्यवहार करेंगे । तिथि अन्त में नक्षत्र पूर्ण नहीं होने पर तिथि और नक्षत्र के बीच के समय को

तद् घ्नं तिथि द्वन्द्व धनर्ण कालान्तरेण षष्ट्याप्त मितैष्य दृष्ट्या
न्यूनाधिकं कार्यमथर्क्षकेषु ग्राह्येषु शोध्यः क्रमतो विनाड्यः । २६ ।

नक्षत्र से संबन्धित दोनों तिथियों के धन या ऋण कालान्तर से गुणा कर ६० से भाग देने पर गत नक्षत्र में योग या बाकी (गम्य) में घटायेंगे । ग्राह्य स्थूल नक्षत्र होगा ।

षड् बाहवः (२६) षण् निगमा (४६) स्त्रिबाणा (५३)
रसाब्धयो (४६) ऽङ्गाक्षि (२६) मितामृगादेः
मासेषुकर्कादिषु योजनीया
यथास्थिताः कार्मुक युग्मयोस्तु । २७ ।

ग्राह्य नक्षत्र में मकर से आरम्भ कर ५ मासों में क्रमशः २६, ४६, ५३, ४६, २६ पल (लिप्ता) घटाना पड़ेगा । कर्क आदि ५ मासों में इन्हें क्रमशः जोड़ना पड़ेगा । धनु और मिथुन मास में योग या घटाव नहीं होता है ।

योगेऽत्र तिथ्युक्त फलान्य गांश (७)
हीनानि कुर्याद् भ इवा नुपातम्
ग्राह्येभ्य इष्टानि पुरोक्त वत् स्युः
स्थूलानि सूक्ष्मी करणन्तु तेषाम् । २८ ।

विष्कुम्भ आदि योग निकालने के समय तिथि के लिये लिखे गये धन या ऋण फल से उसका १/७ भाग कर व्यवहार करेंगे । नक्षत्र के गत या गम्य भाग के समान गत या गम्य कालान्तर में अनुपात किया जायेगा । इस प्रकार ग्राह्यतिथि

आदि से पहले के समान स्थूल इष्ट तिथि आदि हो जायेगा ।

इहोक्त तुंगान्तर पाक्षिका भ्यं स्यादंगकानां धन हानि वाम्यात्
भानान्त कर्कादि मृगादि मासधनर्णता स्यादपि वैपरीत्यात् । २९ ।

इस स्थूल तिथि आदि को सूक्ष्म करने के लिए तुंगान्तर और पाक्षिक दोनों फलों से तिथि आदि में उल्टे क्रम से संस्कार (जोड़ या घटाव) करेंगे । नक्षत्रों का यह संस्कार कर्क और मकर से आरम्भ कर ५-५ मासों में क्रमशः जोड़कर या घटाकर विपरीत क्रम से होगा ।

ग्राह्येष्टमध्येत्वधिमास पातश्चेद् ग्राह्यमेवोत्तर मासिसर्वम् ।
रूपाद्रि रामा (३७२) स्तिथयोऽर्कवर्षे यद्यान्त पूर्तिसह षोड़शांशाः । ३० ।

ग्राह्य मास और इष्ट मास के बीच अधिमास पड़ने से अधिमास के अगले मास में तिथि आदि सभी ग्रहण किया जायेगा । इसका कारण एक सौर वर्ष में (३७२-१/१६) चान्द्र दिन या तिथि होती हैं । (३७२।३।४५)

शरांगरामाः (३६५) कुदिनानिदण्डाः पञ्चेन्दवः
(१५) पक्षगुणाः (३२) विनाड् यः
निर्यान्ति भानो र्भगणे ततोयत् वारेयदृक्षं प्रविशेत्सतत्र । ३१ ।

सूर्य के एक भगण पूरा होने में अर्थात्, एक सौर वर्ष में ३६५।१५।३२ सावन दिन होते हैं । जिस वार में जिस नक्षत्र में रवि जाता है । उस नक्षत्र का वही वार कहा जायेगा ।

पुनस्तदृक्षाभिगमे च वार एकः प्रदेयोघटिकाः परोक्ताः (१५।३२)
ताः षष्टि दण्डाभ्यधिका यदि स्युर्वारावभौ संक्रमणे तदिष्टे । ३२ ।

रवि पुनः उसी नक्षत्र में आने पर एक बार जोड़ना होगा तथा पूर्वोक्त भगण में सावन दिनों से अधिक १५।३२ दण्ड भी जोड़ना होगा । क्योंकि भगण पूर्ति सावन दिनों में ७ से भाग देने पर (१।१५।३२) शेष रहता है । यदि यह योग ६० दण्ड से अधिक होता है । (नक्षत्र प्रवेश समय + १५।३२ दण्ड) तो इष्ट संक्रान्ति या भगण आरम्भ संक्रान्ति में २ वार जोड़ना पड़ेगा ।

संक्रान्तितो यत्र दिने स्फुटार्को
यथा तथाब्दान्तर तद्दिने यः
लिप्ताभि रर्थेन्दुभि (१५) रष्टचन्द्र (१८)
विलिप्तिका भी रहितः स्फुटः स्यात् । ३३ ।

किसी संक्रान्ति के जितने दिन बाद रवि स्फुट होता है, अगले दिन उसी संक्रान्ति से उतने दिन बाद उससे (१५।१८) कला घटाने पर उस दिन का रवि स्फुट होगा ।

यद्राशि चार स्थिति (१५) दण्ड तोऽङ्गाद्
द्विराम (३२) संख्यैः पलकै र्युतेभ्य
तन्मास्यभीष्ट दिन एक हीने
प्राग् वर्षजात् स्पष्ट इनः पुरेव । ३४ ।

किसी मास की संक्रान्ति पिछले वर्ष की संक्रान्ति से १५।३२ दण्ड के बाद होगी । उस मास के अभीष्ट दिन में एक घटाकर पूर्व वर्ष के उसी समय के रवि से पहले की तरह रवि को स्फुट किया जा सकता है ।

किन्तुत्रयाः प्रोज्झ्यतया निरुक्ता लिप्तादय
(१५।१८) स्ताः स्फुटसूर्यगत्याः
हताविभक्ताः खरसैः (६०) स्फुटाः स्युस्तदूनितः
सूक्ष्मइनोऽब्दतः स्यात् । ३५ ।

किन्तु यहां (१५।१८) कला घटाने को कहा गया है । उसको स्फुट सूर्य गति से गुणा कर ६० से भाग देने पर स्फुट होगा । उसी स्फुट कला आदि को पूर्व वर्ष के उसी दिन के सूर्य से घटाने पर इस वर्ष के इष्ट दिन का स्फुट सूर्य होगा ।

ग्राह्यादिरर्कोज्झित एष्यघस्र सूर्यः स्फुटा भुक्ति रतोऽवशेषः
अत्येति दर्शं रविसंक्रमश्चेत्त दाधिमासः सुविधावगम्यः । ३६ ।

अतः आगामी दिन के स्पष्ट सूर्य से ग्रह्य दिन का सूर्य घटाने पर शेष सूर्य की स्फुट गति होगी । यदि रवि संक्रान्ति अमान्त के बाद हो वह मास अधिमास होगा ।

भभुक्त नाड्योऽष्टशतो (८००) विनिध्नाः साद्यन्त नक्षत्रघटी विभक्ताः
गतर्क्ष संख्याश्चततो गुणाढ्या भवन्ति विस्पष्ट सुधांशु लिप्ताः । ३७ ।

इष्ट नक्षत्र के गत दण्ड आदि को ८०० से गुणा कर उस नक्षत्र के भोग (आदि से अन्त तक) दण्ड आदि से भाग देने पर उस नक्षत्र का भुक्त (बीता हुआ) कला आदि होगा । ज्ञात नक्षत्र से पहले के नक्षत्र संख्या को ८०० से गुणा कर उससे ज्ञात नक्षत्र के भुक्त अंशादि को मिलाने से चन्द्र का स्फुट कला आदि होगा । कला में ६० से भाग देने पर अंश और उसमें १२ से भाग देने पर राशि होगी ।

सहस्रनिघ्ना भ्रगजाष्ट पक्षाः (२८,८०,०००) साद्यन्त नक्षत्र पलै र्विभक्तः
फलं विधोर्भुक्ति रनेक वर्ष यातैष्यतिथ्यादि वदन्ति विज्ञाः । ३८ ।

(२८,८०,०००) में नक्षत्र की आदि और अन्त लिप्ता (चन्द्र की) से भाग देने पर चन्द्र की स्फुट गति होगी । विज्ञ गणक इस प्रकार अनेक वर्ष की गति और एष्य तिथि आदि जान सकते हैं ।

अथेन्दु सूर्य ग्रह सम्भवाया चन्द्रार्क मानावगतेर हानि
आनीय वारैः परिशोधितानि स्वाभीष्ट पर्वानुगतानि तेभ्यः । ३९ ।

चन्द्र और सूर्य ग्रहण की सम्भावना जानने के लिए चन्द्र और सूर्य का स्फुट राशि आदि निकालना होगा। उसके लिए पूर्णिमा या अमावास्या (चन्द्र या सूर्य ग्रहण में) का अहर्गण निकाल कर उसे बार शुद्ध करेंगे।

पातं स्वगत्या (३।१०।४८) परिकल्प्य पाता
तद् भार्द्धतो वाग्निकु (१३) भाग मध्ये
पक्षान्तजेऽर्क स्थित एव चन्द्र
ग्रहो भवेत्तत् क्रम भक्त पूर्वः। ४०।

इस अहर्गण को दैनिक ३।१०।४८ कला गति से गुणा कर चन्द्र पात (राहु) की राशि ज्ञात होगी। अमान्त में सूर्य और पात से ६ राशि बाद की दूरी तथा पूर्णिमान्त में स्फुट चन्द्र और पात के बीच की पूरी १३ अंश से कम होने पर ग्रहण की सम्भावना रहती है। चन्द्र ग्रहण के बारे में पहले कहा जा चुका है।

दर्शान्त काले क्रमतस्तु पूर्व पश्चान्नति त्र्यश विहीन युक्ते
तात्कालिक ग्लौदिगिषोस्त्रिभोन तनू नतज्या भ्ररसां (६०) शकस्य। ४१।

गणित से अमान्त काल निकालेंगे और उसमें लम्बन संस्कार करेंगे। लम्बन संस्कृत दर्शान्त काल का चन्द्र तथा उससे चन्द्र दिशा का शर निकालेंगे। वित्रिभ लग्न आदि निकाल कर उससे दृक् क्षेप निकालेंगे।

दिग् भेद साम्योत्थ वियोग योगे सिद्ध स्फुटेषौ रद (३२) लिप्तिकोने
स्यात्सम्भवस्तिग्म रुचि ग्रहस्य ग्रासादिसर्वं गदितं पुरस्तात्। ४२।

शर और दृक् क्षेप का संस्कार कर स्फुट शर निकालेंगे। यह स्फुट शर ३२ कला से कम होने पर सूर्य ग्रहण की सम्भावना रहती है। उसके बाद, ग्रास, मोक्ष आदि निकालने की विधि पहले कही जा चुकी है।

पर्वान्तमर्क क्रमणाद्दिनाद्यं यावत्प्रमाणं भवतीष्ट वर्षे
ग्राह्याब्द संक्रान्तित एव तावत् कालोत्थ भागैः स्फुटतारवीन्दोः। ४३।

इष्ट वर्ष में सूर्य संक्रान्ति से अमावास्या और पूर्णिमा तक जितना सावन दिन होगा ग्राह्यवर्ष में उसी संक्रान्ति सेउतने दिन बाद रवि और चन्द्र की गति निकाल और अमान्त पूर्णान्त रवि और चन्द्र में जोड़ने से रवि और चन्द्र स्फुट हो जायेगा। क्योंकि अमान्त में रवि और चन्द्र में की राशि आदि में समान होता है। तथा पूर्णिमा में ठीक ६ राशि का अन्तर होता है। (अंश आदि समान होते हैं।

शरेन्दु (१५) भिर्बाणनृपैः (१६५) खनाग
चन्द्रैः (१८०) शरांकेन्दुभि (१९५) रभ्रदेवैः (३३०)
शराब्धि रामै- (३४५) खरसात्र यांशै (३६०)
रेतावतीभिस्तिथिभिः कदाचित्। ४४।

चान्द्रवर्ष में एक ग्रहण से १५, १६५, १८०, १९५, ३३०, ३४५ तथा ३६० तिथि

अन्तर से फिर ग्रहण हो सकता है ।

ग्रहात् पुनः प्रगहणान्तरं स्यात्ततस्ततस्ताभिरिति क्रमेण
पातर्क शीतां श्वधिमासविद्भि र्ज्ञेया ग्रहाद्या दशवत्सरान्तम् । ४५ ।

उसके बाद पुनः १५,१६५ आदि तिथि में इस प्रकार दस वर्ष में पुनः ग्रहण हो सकता है । यह राहु, चन्द्र, रवि तथा अधिमास के द्वारा समझा जा सकता है ।

ताराग्रहाणां समतैक वर्षे न स्याद्यतस्तद् बहुपञ्जिकानाम् ।
कार्यो बुधैः संग्रह एवमन्य कार्याणि सिद्धन्त्यपि साधुताभ्यः । ४६ ।

एक वर्ष में तारा ग्रहों (मंगल आदि) की समता नहीं आने के कारण (एक भगण पूर्ण नहीं होने के कारण) गणित पण्डितों को बहुत वर्षों की पञ्जिका रखनी चाहिये । इन पंजिकाओं से अनेक उपयोगी काम किये जा सकते हैं ।

सौरेण मानेन रदा (३२) ब्दतः प्राग् यथा कुजः सोऽ पि तथेष्ट वर्षे
चक्रे खनागेन्दु (१८०) कला भराढ्य एकादिराश्यन्त रितस्तु सूर्यात् । ४७ ।

वर्तमान सूर्य वर्ष के जिस मास के जिस दिन का मंगल स्फुट राशि आदि जितना है उस दिन के ठीक ३२ वर्ष पूर्व उस मास के उसी दिन मंगल का स्फुट राशि आदि वही था । (३२ वर्ष बाद भी वही होगा) वह सूर्य से १२ राशि पर रहनें पर १८० कला जोड़ना पडेगा ।

युतः कलादि र्दश ताड़िताभिः
कुबाहुभि (२१०) मै (२७०) रसवीतिहोत्रै (३६०) ।
गजाब्धिभिः (४८०) वह्निरसैः (६३०) कुनागैः (८१०)
स्ताभिः पुनः कार्मुक पञ्चकस्थे । ४८ ।

सूर्य से १,२,३ आदि राशि के अन्तर पर मंगल रहने पर क्रमशः २१०, २७०, ३६०, ४८०,.६३० तथा ८१० कला मंगल में जोड़ना पड़ेगा । मंगल धनु से आरम्भ कर पांच राशियों में रहने पर

तस्मिन् क्रमात्पञ्चदशा (१५) ष्ट (८) पंच (५)
मातंग (८) तिथ्यं (१५) श समन्विता भिः ।
युग्मादि पञ्चर्क्ष गते तदंश (१५।८।५।८।१५।)
हीनाभिरे वं स्फुटता मुपैति । ४९ ।

क्रमशः १५,८,५,८,१५ अंश मंगल से घटाना पड़ेगा । इससे ३२ वर्ष बाद मंगल स्फुट हो जायेगा ।

विश्वा (१३) ब्दतः प्राक् शशिजो यथा भूत्तथेष्ट वर्षेऽ त्र कियान् विशेषः
गत्यन्तरेण स्फुट सौम्य मध्य भान्वोर्वसु (८) ध्नाग्नि (३) हृतेन चेषः । ५० ।

इष्टवर्ष के इष्ट सौर मास तथा इष्ट दिन का बुध का राशि आदि वही होगा

जो उससे ठीक १३ वर्ष पूर्व उसी मास के उसी दिन था । इस विषय में और भी कई बाते हैं । स्फुट बुध और मध्यासूर्य के गति अन्तर को ८ से गुणा कर ३ से भाग दें ।

युतोनितः सूर्य गतेः ५९।८ स्वभुक्ति र्न्यूनाधिकत्वे सतु वक्रगश्चेत् तदात्मभास्वद् गति योग नाग (८) घाताग्नि (३) भागेन युतः स्फुटः स्यात् । ५१ ।

बुध की गति, ५९।९ से कम या अधिक होने पर इस फल को बुध के राशि आदि में जोड़ेगे या घटायेंगे । बुध वक्री होने पर स्फुट बुध और मध्यम सूर्य की गति योग को इसी प्रकार ८ से गुणा कर ३ से भाग देकर फल को वक्र बुध में जोड़ने से बुध स्फुट होगा ।

वृहस्पतिर्द्वादश वर्षतः प्राग्
यथा यथा स्वार्क कलान्तरस्य
खार्कांशं (१२०) युग्मिः खकुदृक् (२१०)
कलाभि स्ताभिः पुनः कर्कट पञ्चकस्थे । ५२ ।

वृहस्पति १२ वर्ष पहले जो था वही होगा । गुरु और सूर्य की अन्तर कला को १२० से भाग देकर फल को २१० कला में जोड़े । योग को वृहस्पति में जोड़े । पुनः वृहस्पति कर्क आदि ५ राशियों में होने पर

तस्मिन् सुधांशो (३३) घन (१७) रुद्र (११) मेघ (१७)
देवांश (३३) हीना भिरिहैव नक्रात्
मपञ्चकस्थे तुतदंश (३३।१७।११।१७।३३) युग्मिः
समन्वितः सन् स्फुटतां प्रयाति । ५३ ।

रवि और गुरु के अन्तर को क्रमशः ३३, १७,११,१७ और ३३ से भाग देकर फल को उस अन्तर से घटाकर शेष को वृहस्पति में जोड़ेगे । वृहस्पति मकर आदि ५ राशियों में रहने पर इस अन्तरफल को २१० कला में योग कर उसे पुनः गुरु से जोड़ने से वृहस्पति स्फुट होगा ।

वर्षाष्टकात् प्राग् भृगुजो यथैव मिष्टाब्दके सौर दिने च तत्र
स्फुटस्व भुक्त्यर्यम मध्य भुक्त्यन्तरेण बाण (५) घ्न भुजो (२) द्दतेन । ५४ ।

इष्ट और वर्ष मास और दिन में शुक्र की राशि जो होगी वही ठीक आठ वर्ष पहले उसी मास और उसी दिन थी । शुक्र स्फुट गति और सूर्य की मध्यम गति के अन्तर को ५ से गुणा कर २ से भाग देंगे ।

उनो युते भानुगतेः स्वभुक्तो न्यूनाधिकायां क्रमतोऽ नृजुश्चेत्
युत्याशर (५) घ्नाक्षि (२) ह्रतस्वभास्वद्
गत्यास्तदोनः स्फुटतां संगच्छेत् । ५५ ।

सूर्य मध्यम गति ५९।८ से स्फुट शुक्र गति कम या अधिक होने पर इस

लब्धि को स्फुट शुक्र में घटाने या जोड़ने से वह स्फुट शुक्र (इष्टवर्ष का) होगा शुक्र वक्री होने पर सूर्य मध्यम गति और शुक्र स्फुट गति के योग को ५ से गुणा कर २ से भाग देकर फल को शुक्र से घटाने पर स्फुट होगा ।

> शनिः खरामा (३०) ब्द पुरोः यथासीत्
> कि न्त्वात्स सूर्यान्तर लिप्तिकानाम्
> खेनांश (१२०) युग्भिः शरवाजिराम (३७५)
> लिप्ताभिराभिः पुनरत्र मेषात् । ५६ ।

शनि ३० वर्ष पूर्व जिस राशि अंश आदि में था इष्ट सौर वर्ष मास दिन आदि में वही होगा । मध्यम सूर्य और स्फुट शनि की अन्तर कला को १२० से भाग देकर फल को ३७५ कला में जोड़ेगे । योग को स्फुट शनि में जोड़ेगे ।

> पञ्चर्क्ष संस्थे नख (२०) दिग (१०) श्व (७) दशा (१०)
> नखां (२०) श संयोगवती भिरस्मिन्
> तुलादि पञ्चर्क्ष गते तदंश (२०।१०।७।१०।२०)
> हीनाभिराढ्यः स्फुट भाव मेति । ५७ ।

शनि मेषादि ५ राशियों में रहने पर स्फुट शनि और मध्यम सूर्य की अन्तर कला को क्रमशः २०,१०,७,१० और २० से भाग देकर फल को संस्कृत स्फुट शनि में जोड़ेगे । शनि तुला आदि ५ राशियों में होने से घटायेंगे । इससे शनि स्फुट होगा । (इष्ट वर्ष में) ।

> अत्रार जीवार्क भुवां यदुक्तं सूर्यात् स्वलिप्तान्तरमेतदेव
> न राशि षट्का दधिकं कदाचित्ततः परेचन्द्र दले धनं स्यात् । ५८ ।

मंगल, गुरु तथा शनि का सूर्य से अन्तर ६ राशि से कभी अधिक नहीं होगा । ६ राशि के बाद के चक्रार्द्ध में उसी लिप्तान्तर को जोड़ेगे ।

> अहर्गणः स्वाग्निकृतेन्दु (१४३) भाग युक्तो नवेन्द्वा (१९) प्तइतः फलांशैः
> उनो युतो ग्राह्यदिनस्य राहु रेष्ये गतेऽभिष्ट दिनेस्फुटः स्यात् । ५९ ।

ग्राह्य और इष्ट दिन के बीच का अहर्गण निकाल कर उसमें १४३ से भाग देंगे । लब्धि को उसी अहर्गण में जोड़ेगे । इस योगफल को १९ से भाग देकर लब्धि अंशादि को ग्राह्य दिन से इष्ट दिन बाद में होने पर घटाने से तथा पहले होने पर जोड़ने से चन्द्र पात (राहु) स्फुट होगा ।

> दिनोच्चयः स्वाभ्रकृतोब्धि (४४०) भागयुक्तोनवा (९) प्ताश्चफलैर्लवाद्यै
> युतोनितो ग्राह्य दिनेन्दुमन्द एष्ये गतेऽभीष्ट दिने स्फुटः स्यात् । ६० ।

अहर्गण में उसका १/४४० भाग जोड़कर ९ से भाग देंगे । फल को चन्द्र मन्दोच्च में ग्राह्य दिन से इष्ट दिन पहले होने पर जोड़ेगे तथा बाद में होने पर घटायेंगे । फल स्फुट मन्दोच्च होगा ।

किं वा नवाश्वै (७९) र्दिननाथ वर्षै
भौमश्चतुः षष्टि (६४) कलाधिकः स्यात्
बुधोंऽगवेदै (४६) विधुदिक् (१०१) कलोनो
गुरुस्त्रिनागै (८३) कृत सप्त (७४) हीनः । ६१ ।

मध्यम मंगल ७९ सौरवर्ष में ६४ कला अधिक होता है । बुध ६४ सौर वर्ष में (१०१) कला कम होता है । गुरु ८३ सौर वर्ष में ७४ कला कम होता है ।

शुक्रस्त्रिसिद्धै (२४३) स्त्रिचतु (४३) ष्कलाढ्यः
शनिर्निवार्थै (५९) र्नगसायकाढ्यः (५७)
राहुस्त्रिनन्दै (९३) र्नख (२०) लिप्तिकोनः
शीघ्रोज्ञ शुक्रा वितरेऽत्र मध्या । ६२ ।

मध्यम शुक्र (२४३) सौर वर्षों में (४३) कला बढ़ता है । शनि (५९) सौर वर्षों में (५७) कला बढ़ता है । राहु (९३) सौर वर्षों में (२०) कला कम होता है। बुध और शुक्र का शीघ्रोच्च तथा अन्य ग्रहों के मध्यम मान ठीक आते हैं ।

तिथ्यादिषूक्ताः प्रति सौर मास्य यायाहृतिः स्वर्णविनाड़िकाप्ताः
ग्राह्येऽष्टघस्रार्क युगान्तरार्द्धयुक्तेष्टघस्रार्यम मासतःस्युः ६३ ।

सौर मास के तिथि नक्षत्र आदि के लिये जो भाग विधि या दण्ड जोड़ने घटाने के विषय में कहा गया है, उसे रखें । ग्राह्य तथा इष्ट दिन सम्बन्धी स्पष्ट सूर्य के अन्तर के आधे को जोड़ने पर इष्ट दिन का सूर्य जिस राशि में जायेगा उसी मास से उन तिथियों की गिनती होगी तथा अन्य संस्कार होंगे ।

ताराग्रहेष्वंशभिरेन्दु भान्वोः कला प्रभेद स्तिथि योग भेषु
फल प्रभेदोऽत्र बुधैर्नगण्यः कृतिर्मदीया यद सावपूर्वा । ६४ ।

कौतुक पंजिका में मंगल आदि तारा ग्रहों में अंश की त्रुटि हो सकती है । चन्द्र, सूर्य में कला का अन्तर तथा तिथि योग और नक्षत्र में लिप्ता का अन्तर विज्ञ गणक नगण्य मानेंगे ।

स्नानादि योगां श्चिरकालतोऽस्या भविष्यतो ज्ञातुमलं नरः स्यात्
मृषाप्यतः कौतुक पंजिकेयं महोपकाराय सतांसदास्ताम् । ६५ ।

पहले किसी ने इस प्रकार की कौतुक पंजिका नहीं बतायी थी । लोग इससे आगामी तीर्थ स्नान आदि योग बहुत पहले जान णयेंगे । अतः यह कौतुक पंजिका स्थूल होने पर भी इससे सज्जनों का बहुत उपकार हो यह मेरी इच्छा है ।

सलक्षणोदाहरणं वितत्य सिद्धान्त मध्येऽत्रकुतूहलाय
उद्देश्यतो भूय उदीर्यतेऽसौयतोऽतिवेशाद् विषय ग्रहः स्यात् । ६६ ।

इस सिद्धान्त दर्पण में उदाहरण के साथ अनेक लक्षण विस्तार से दिये गये हैं । तथापि इसके विषय वस्तु को शीघ्र जानने के लिए उद्देश्य से संक्षेप में सभी

बातें पुनः कही जा रही हैं ।

प्रोक्तं प्रकाशे प्रथमे प्रमाणं त्रुट् यादि कालस्य लयान्तिमस्य
सिद्धान्त सल्लक्षण सृष्टि काल सहांग चक्राणि च सप्रशंसम् । ६७ ।

प्रथम प्रकाश में ये विषय है- त्रुटि आदि से आरम्भ कर प्रलय के अन्त तक का काल मान, सिद्धान्त का लक्षण, सृष्टिकाल, वेद उसका अंग विभाग, उसकी प्रशंसा ।

संख्या द्वितीये भगणेत्करस्य कल्पाब्दमास द्युमिति र्निरुक्ता
नभश्चराणां दिन भुक्ति लिप्तास्तत्साधनं पर्ययघस्त्रकृप्ति । ६८ ।

द्वितीय प्रकाश में ये विषय हैं । ग्रह उच्च, और पात आदि की भगण संख्या, कल्प में वर्ष, मास और दिन की संख्या, ग्रह उच्च और पात आदि की दैनिक मध्यमगति कला और उसे निकालने की विधि, भगण का दिन परिमाण ।

उक्त स्तृतीये कुदिनौघ इष्टे दिनाब्द मासाधिप मध्य खेटा
जैवास्तथाब्दा द्विविधा ग्रहादि ध्रुवा द्युषत्पात मृदूच्चहाराः । ६९ ।

तृतीय प्रकाश के विषय हैं-इष्ट अहर्गण निकालने की विधि, दिन, मास, वर्ष आदि के अधिपति निकालने की विधि, मध्यम ग्रह, बार्हस्पत्य वर्ष, ग्रह उच्च और पात का ध्रुव तथा उच्च पात का हार ।

तुर्ये महीवेष्टन देश नाड़ी वार प्रवृत्तीष्ट धनर्ण लिप्ताः
भुजान्तराख्या वदयान्तराख्या श्चरोद् भवा सत्पदकं ध्रुवादौ । ७० ।

चतुर्थ प्रकाश में भू परिधि, देशान्तर दण्ड, वार प्रवृत्ति और योग वियोग कला, भुजान्तर कला, उदयान्तर कला, चर कला और द्वापरान्त ध्रुवपदक हैं ।

इत्थं चतुर्भिर्गदित प्रकाशैर्मध्याधिकारः सुरवर्त्मगानाम्
अथ प्रकाश द्वितीयेन तेषा मुद्दिष्यते विस्फुटताधिकारः । ७१ ।

इस प्रकार प्रथम चार प्रकाशों में आकाश चारी ग्रहों का मध्यमाधिकार पूरा हुआ । इसके बाद २ प्रकाशों में ग्रह स्फुट करने के बारे में जो कहा गया है उसके बारे में संक्षेप में कहूँगा ।

पश्चात् पुरः खेट गतिः प्रमाणं तदुच्च पातोत्थ पृथग्गति त्वम्
ज्या पञ्चमे दोः फल भुक्ति खण्डाः परिध्युपात्तास्तिथि भादि सर्वः । ७२ ।

पंचम प्रकाश में ग्रहों की पूर्व और पश्चिम गति का मान, उच्च और पात के कारण ग्रहों का गति भेद, क्रम और उत्क्रमण ज्या साधन, भुजफल निकालने के लिये गति खण्ड,, परिधि और उसकी मन्द और शीघ्र परिधि, तिथि और नक्षत्र आदि पंचांग कहा गया है ।

षष्टेऽर्क चन्द्रर्क्षज सूक्ष्मपंजी तिथ्यादिसन्धिः प्रतिमण्डलाद्या
चलांशकाः क्रान्तिमही द्युजीवाश्चराणि लग्ना विविधाश्चदेशैः । ७३ ।

षष्ठ प्रकाश में रवि, चन्द्र और नक्षत्र की सूक्ष्म पञ्जिका, तिथि, नक्षत्र और राशि की सन्धि, वृत्त और प्रतिवृत्त, अयनांश, शीघ्र फल, क्रान्ति ज्या, द्युज्या और भूज्या, चर और स्थान विशेष का लग्न कहा गया है।

दिग्भूमि शुद्धिर्भुजकोटिकर्ण लम्बाक्ष काग्राः सममण्डलाद्याः
दिग् देश काल स्फुट सूर्य बोधो ना सप्तमे कोण भवः करण्याः । ७४ ।

७ म प्रकाश में दिग् और भूमि शुद्धि, भुज कोटि और कर्ण, लम्बज्या, अक्षज्या और अग्रा, सममण्डल आदि वृत्त, दिग और देश समय और स्फुट रवि निकालना, करणी, कोण शंकु आदि कहा गया है।

अथाष्टमे सूर्य विधूक्ष माभा मानश्रुतीषुस्थिति मर्द्दकालै
चन्द्रग्रहोक्ति र्वलने सयुक्तो चान्द्रंदिनं ग्रास ज वर्णभेदाः । ७५ ।

अष्टम प्रकाश में, सूर्य, चन्द्र, भूछाया बिम्ब परिमाण, रविचन्द्र मन्दकर्ण, शर स्थिति, मर्द्दकाल और इन सबके द्वारा चन्द्रग्रहण, युक्ति सहित आयन औरर आक्ष वलन चान्द्र दिन तथा विभिन्न ग्रास के बारे में कहा गया है।

युक्ति र्नते वित्रिभ लग्न शंकोर्द्विधोदितं लम्बन मिन्दु भान्वोः
नतिस्तमो मानभिदा नरोत्थाग्रहः स्वराशोर्नवमेकिलेति । ७६ ।

नवम प्रकाश में नति, वित्रिभ लग्न का शंकु, रवि और चन्द्र का दो प्रकार का लम्बन, शंकु के अनुसार छाया मान में भेद तथा सूर्य ग्रहण के बारे में कहा गया है।

कालोन्नतेर्मान भिदाथ वृत्त त्रयं सरण्या सवशात् समक्षः
लेखस्थलेच्छेदक नामधेया ग्रहस्य सिद्धो दशम प्रकाशे । ७७ ।

दशम प्रकाश में उदय आदि, उन्नत काल भेद से दृश्य बिम्ब मान में भेद, शर के अनुसार तीन वृत्तों के विषय में तथा ग्रहण का परिलेख दिया गया है।

एकादशेखेचर तुल्यतादौ दृक् कर्मयुग्म स्फुट दिक् कलम्बैः
द्युष द्युति र्बिम्बमितेर्भिदोक्ता युद्धप्रभेदानलकादि सिद्धिः । ७८ ।

एकादश प्रकाश में स्फुट ग्रहों की समानता, ग्रह स्फुट करना और उससे आयन और आक्ष दृक् कर्म निकालना, ग्रह युति (योग), ग्रह बिम्ब के भेद, ग्रह युद्ध के भेद, ग्रहयुद्ध देखने के लिये नलिंका के व्यवहार के बारे में कहा गया है।

भानां युति द्वादश के खगेन्द्रे र्ध्रुवाः शराश्चाकृतयो भ संख्याः
तद् बिम्बमानानि च योग ताराः सप्तर्ष्यगस्त्य प्रमुखाः प्रदिष्टाः । ७९ ।

बारहवें प्रकाश में नक्षत्र और ग्रह योग, ग्रह नक्षत्र का ध्रुव, दक्षिण और उत्तर शर, ग्रह नक्षत्र का आकार, तारा संख्या, नक्षत्र बिम्ब परिमाण, योगतारा, सप्तर्षि, अगस्त्य, लुब्धक आदि तारों के बारे में विशेष रूप से कहा गया है ।

त्रयोदशे प्राक् परदिग् गृहार्क्ष समुद् गमा स्तं गमने निरुक्ते ।
क्षेत्रांश कालांशक चक्र भागे र्भास्वन्निशेषा स्फुजितां प्रकाशाः । ८० ।

१३ वें प्रकाश में पूर्व और पश्चिम में ग्रह नक्षत्र का उदय और अस्त, क्षेत्रांश कालांश और मानांश तथा सूर्य चन्द्र और शुक्र के प्रकाश के बारे में विशेष वर्णन है ।

चतुर्दशे सूक्ष्म रवीन्दु मध्य कालां शतश्चन्द्रसमुद् गभास्तौ
चन्द्रक्षयो द्वौंः परिलेख इन्दोः श्रृंगोन्नतिः साबुध शुक्रयोश्च । ८१ ।

१४ वें प्रकाश में स्पष्ट सूर्य और चन्द्र का कालांश से चन्द्र का उदय और अस्त, चन्द्र की क्षय और वृद्धि का परिलेख, चन्द्र श्रृंगोन्नति और बुध तथा शुक्र की श्रृंगोन्नति भी कहा गया है ।

पातो महान् पञ्चदशे निरुक्तो द्विरूप इत्थं नवभिः प्रकाशैः
त्रिप्रश्नमाधिकृतिभिः समाप्ता पूर्वे नभः सद् गणिताख्य मर्द्धम् । ८२ ।

पन्द्रहवें प्रकाश में वैधृति तथा व्यतीपात इन महापातों की कथा है । इस प्रकार ९ प्रकाशों में त्रिप्रश्नाधिकार समाप्त हुआ है । यहां ग्रन्थ का पूर्वार्द्ध समाप्त हुआ ।

अथोदिताः षोड़ शकेऽनुयोगाः स्थिराचला का क्षितिरित्यनेकैः
मतैः स्वसन्देह मुदस्तुमन्य कार्याण्यवैतुं सह वासिनाभिः । ८३ ।

सोलहवें प्रकाश में बहुत मतों का उल्लेख कर पृथ्वी की गति शीलता, सृष्टि रचना आदि के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न किये गये हैं ।

प्रत्युक्तयः सप्तदशे निरुक्ता बौद्धादि नानामत खण्डनोत्थाः
भ्रान्तिर्विधोः स ग्रह भास्वतश्च खान्तर्भुवः स्थानमवादि युक्त्या । ८४ ।

सत्रहवें प्रकाश में उक्त प्रश्नों के उत्तर, बौद्ध मत आदि का खण्डन, चन्द्र और अन्य ग्रहों के साथ सूर्य का भ्रमण तथा आकाश शून्य में पृथ्वी की स्थिति के बारे में कहा गया है ।

अष्टादशे सृष्टि रथस्वरूपाण्यकादिकानां गिरितुंगतोक्तिः
संस्थान मानानि भुवः सहाब्धेः सयुक्तिकक्षेत्र फल व्रजोक्तिः । ८५ ।

अठाहरवें प्रकाश में सृष्टि चर्चा सूर्य आदि ग्रहों का स्वरूप, पर्वत आदि की उच्चता, समुद्र सहित पृथ्वी का परिणाम और स्थिति, युक्ति के साथ वृत्त क्षेत्र तथा पृथ्वी पृष्ठ आदि का फल निकालने का वर्णन हुआ है ।

एकोन विंशे ग्रह भास्वकक्षा युक्तिः प्रमाणं श्रुति मण्डलानाम्
वर्षेश मासेशदिनेश होराधिपक्रमो दृष्टि कर प्रसाराः । ८६ ।

उन्नीसवें प्रकाश में ग्रह नक्षत्र और आकाश कक्षा का प्रमाण और उसकी युक्ति, ग्रह नक्षत्रों का कर्ण परिमाण, वर्ष, मास, दिन और होरा के अधिपतियों का क्रम, शंकु की दृष्टि सीमा और सूर्य किरण की प्रसार सीमा कही गयी है ।

विंशे द्विधा गोलक यन्त्र कृप्ति गोलार्द्ध चक्र प्रभृति प्रभेदैः
कालस्य राश्यादि मितेश्च सिद्धिः स्वयं वहत्यौ पयिक प्रकारः । ८७ ।

वीसवें प्रकाश में दो प्रकार के गोल यन्त्रों की कल्पना, गोलार्द्ध, चक्र आदि यन्त्रों द्वारा समय और ग्रह राशि आदि निकालना तथा स्वयं वह यन्त्र बनाने की विधि कही गयी है ।

गोलेऽनुमुक्तिर्गदितेक विंशे देवादिमानस्यतनोः स्फुटादेः ।
विकल्प चक्राण्युततोऽक्षि सिद्धाः स्ववासना भर्घन मूलकर्म । ८८ ।

इक्कीसवें प्रकाश में युक्ति के साथ गोल में देव और दानवों की अहोरात्रि का मान, मेष आदि लग्नों की स्फुटता और उसकी अनुभूति, विकल्प ग्रह भगण, प्रत्यक्ष होते वसन्त आदि ऋतु और घन मूल निकालने की विधि कही गयी है ।

षड् भिः प्रकाशै रिति संगृहीतो गोलाधिकार स्त्रिभिरुच्यतेऽथ
कालः संहार्थाः किल वत्सराद्या द्वाविंश के मानभिदार्क चाराः । ८९ ।

इस प्रकार ६ प्रकाशों में गोलाधिकार समाप्त हुआ । अब अन्तिम तीन प्रकाशों के बारे में कहा जाता है । बाइस वें प्रकाश में अर्थ के साथ संवत्सर, मास, तिथि, सौर सावन और चान्द्र, नाक्षत्र वर्ष आदि का परिमाण भेद तथा सौर संक्रान्ति आदि के बारे में कहा गया है ।

प्रोक्ता त्रयोविंशतमेस्तवालिः कालात्मनः कालनगेन्द्र भर्तुः
सवेश्मनः सावरणस्य पारावारादि साम्येन च दोष हत्यैः । ९० ।

२३ वें प्रकाश में पाप नष्ट करने के लिए काल रूपी नीलाद्रि नाथ मन्दिर सहित आवरण (आकाश) और समुद्र आदि सहित उनकी समानता दिखा कर स्तोत्र वर्णन किया गया है । इसमें पुरी श्री जगन्नाथ मन्दिर का विशेष वर्णन है ।

अन्त्ये चतुर्विंश इह स्फुटीऽभूदनुक्रमः कौतुक पञ्जिकादिः
कालाधिकारोऽयमगात् परार्द्धं गोलादिशब्दं गणितं यदाहुः । ९१ ।

अन्तिम २४ वें प्रकाश में कौतुक पञ्चिका और ग्रन्थ के विषयों का संक्षेप में वर्णन है । इस प्रकार तीन प्रकाशों में कालाधिकार समाप्त हुआ । इस प्रकार गोल अर्थात् गोलार्द्ध समाप्त हुआ । गणित और गोल इन दो प्रधान खण्डों का यह ग्रन्थ समाप्त हुआ ।

केचित्पठिष्यन्त्युप संहृतिं तदुद्देशतो भूरिपदार्थ जातम्
मयोदितं राजकुमार कादेर्वेदांगपाठोत्थ फलाय सौख्यात् । ९२ ।

कोई कोई पूरा ग्रन्थ न पढ़कर केवल उपसंहार ही पढ़ते हैं । सुकुमार मति राजकुमार आदि धनाढ्य लोग सहज से ही वेद की आंख रुपी ज्योतिष तथा उसका फल जान पायें इसके लिये उपसंहार में सभी विषय संक्षेप में कहा गया है ।

दिग् देश कालावगतिः प्रकाशात् स्यात् सप्तमादेव तथापि धीरा
न लोक सिद्ध स्थल बोध हीना ग्रहादि संदर्शयितुं यदीशाः । ९३ ।

सप्तम प्रकाश में दिग्, स्थान और काल आदि के विषयों में विस्तार से कहा गया है । तथापि संसार में प्रसिद्ध सभी स्थानों को पण्डित लोग भी नहीं जान पाते हैं । अतः कहां पर कब ग्रहण आदि होगा यह बताने में वे असमर्थ हो जाते हैं ।

प्रधान नगरेष्वतो धरणि मध्य रेखा पुरः
परान्त रवि नाड़िकाः पल कलाश्च वच्मि क्रमात्
यतोविविध देशजां वदितुमेक देश स्थितः
प्रभूर्भवति पंजिकां चतुरिमाश्रयः साधकः । ९४ ।

अतः कल्पित भूमध्य रेखा (भारतीय ज्योतिष में उज्जैन से गुजरती देशान्तर रेखा को प्रधान या ०° माना जाता है। आजकल ग्रीनविचको ०° देशान्तर मानने से उज्जैन ७७° ५०' पूर्व देशान्तर पर होगा । भारतीय समय ८२° ३०' देशान्तर का माना जाता है जो ग्रीन विच (लण्डन) से ५ घंटा ३० मिनट अधिक है) से पूर्व और पश्चिम में स्थित प्रधान नगरों की देशान्तर कला और निरक्ष देश या विषुव वृत्त से उत्तर या दक्षिण अक्षांश कला क्रमशः कही जा रही है । इनके द्वारा चतुर गणक एक देश की पंजिका बनाकर उसमें थोड़ा अन्तर से दूसरे देश की पंजिका भी बना सकते हैं ।

भूमध्य रेखानुभव प्रसिद्धा अक्षांश लिप्ताः किल जिन दुर्गे (१)
तदुत्तरे मोर पुरे (२) ऽथ भोल्लपुरे (३) ततो रामगढ़े (४) ततश्च । ९५ ।

भूमध्य रेखा से अनुभव सिद्ध अक्षांश कला दूरी इन नगरों के बारे में कही जा रही है । (१) जिन दुर्ग या जूनागढ़ (२) उससे उत्तर में मोर पुर (३) भोलपुर (४) रामगढ

सौम्ये जलाबाद पुरे (५) क्रमेण
कृतांग सूर्याः (१२९४) कुनगाग्नि चन्द्राः (१३७१)
नागेक्षणेन्द्रा (१४२८) त्रिकृतांगचन्द्राः (१६४३)
शिलोच्चयांगाम्बर बाहवश्च (२०६७) । ९६ ।

तथा (५) जलालाबाद का उत्तर अक्षकला क्रमशः (१-१२९४), (२-१३७१), (३-१४२८), (४-१६४३), तथा (५-२०६७) है ।

आकेन्द्रमेतत् समसूत्र निष्ठ भूमौ न देशान्तर संस्कृति स्यात्
प्राग् भूविभागे खलु गुर्जराष्ट्रे (६) देशान्तरं बाण मिता विनाड्यः । ९७ ।

ये ५ स्थान पृथ्वी के केन्द्र से एक ही उत्तर दक्षिण वृत्त या देशान्तर रेखा पर स्थित है । अतः इन स्थानों का देशान्तर संस्कार नहीं किया जाता है । यहां पर उज्जैन के बदले जूनागढ आदि से गुजरती देशान्तर रेखा से दूरी कही गयी है) । इस रेखा के पूर्व भाग में गुजरात (६) का देशान्तर ५ कला है ।

तत्राक्षलिप्ता शरदन्त चन्द्राः (१३२५)
ऊनापुरे (७) ऽश्वाः (७) शरबाण सूर्याः (१२५५)
श्रीनर्मदा तोयधि संगमे (८) ऽक्षि
पक्षाः (२२) खशून्यज्वलनौषधीशाः (१३००) । ९८ ।

(६) गुजरात की अक्षकला उत्तर (१३२५) है । (७) उनापुर का देशान्तर (७) पूर्व तथा अक्षकला (१२५५) उत्तर है । (८) नर्मदा सागर संगम का देशान्तर (२२ कला पूर्व) तथा अक्षकला (१३०० उत्तर) है ।

बोम्बायिपुर्यां (९) त्रिभुजा (२३) नगाग्नी
शा (११३७) श्चोदया रूयानपुरे (१०) खरामाः (३०)
खाद्रयब्धि चन्द्रा (१४७०) अथ षट्क् रामा (३६)
लाहोर के (११) पूर्ण खनन्द चन्द्राः (१९००) । ९९ ।

(९) बम्बई का (२३ कलापूर्व) तथा ११३७ कला उत्तर है । (१०) उदयपुर का ३० कलापूर्व तथा १४७० कला उत्तर है (११) लाहौर का (३६ कला पूर्व) तथा १९०० कला उत्तर है ।

काश्मीरज श्रीनगरे (१२) त्रिवेदा (४३)
रामाशुगव्योम विलोचनानि (२०५३)
जम्बां (१३) त्रिवेदो (४३) द्विशरांकचन्द्रा (१९५२)
वस्वब्धयः (४८) खाक्षिनृपा (१६२०) जयादौ । १०० ।

(१२) काश्मीर के श्रीनगर का ४३ कला पूर्व तथा २०५३ कला उत्तर है । (१३) जम्मू का ४३ कला पूर्व तथा १९५२ कला उत्तर है । (१४) जयपुर का ४८ कला पूर्व तथा १६२० कला उत्तर है ।

पुर्यु (१४) ज्ञयिन्यां (१५) खशरा (५०) खनन्द
विश्वे (१३९०) ऽथ विन्ध्याचल मध्य देशे (१६)
द्युर्थाः (५२) खबाणाग्नि भुवः (१३५०) कुरुणां
क्षेत्रे (१७) रसार्थां (५६) खनवाद्रि चन्द्राः (१७९०) । १०१ ।

(१५) उज्जयिनी का ५० कलापूर्व तथा १३९० कला उत्तर है। (१६) मध्यदेश में विन्ध्याचल का ५२ कला पूर्व तथा १३५० कला उत्तर है। (१७) कुरुक्षेत्र का ५६ कला पूर्व तथा १७९० कला उत्तर है।

श्रीरंग के (१८) द्व्यंगमिता (६२) द्विवेदा
द्रयो (७४२)ऽर्थषट्का (६५) नगरामशैलाः (७३७)
कर्णाटके (१९) ऽथो गजसाह्वये (२०) ऽङ्ग
षट्का (६६) नगक्ष्माद्रि भुवः (१७१७) प्रदिष्टाः । १०२ ।

(१८) श्रीरंग (पट्टन) का ६२ कला पूर्व तथा ७४२ कला उत्तर है। (१९) कर्णाटक का ६५ कलापूर्व तथा ७३७ कला उत्तर है। (२०) गाजियाबाद का ६६ कला पूर्व तथा १७१७ कला उत्तर है। (दिल्ली के पास उत्तर प्रदेश में)

कुमारिका नामनि चान्तरीपे (२१)
गजर्त्तवो (६८) नाग भुजाब्धि (४२८) संख्याः
भूपालके (२२) नन्दशराः (६९) खखेन्द्राः (१४००)
ब्रजे (२३) खशैलाः (७०) खरसांग चन्द्राः (१६६०) । १०३ ।

(२१) कन्याकुमारी अन्तरीप का ६८ कला पूर्व तथा ४२८ कला उत्तर है। (२२) भोपाल का ६९ कला पूर्व तथा १४०० कला उत्तर है। (२३) ब्रज का ७० कला पूर्व तथा १६६० कला उत्तर है।

आग्रापुरे (२४) वेदनगः (७४) कुराम
भूपाश्च (१६३१) काञ्च्या (२५) त्रिगजाः (८३) खषट् षट् (६६०)
श्री वेंकटे (२६) खाष्ट (८०) नभोऽष्टशैला (७८०)
रामेश्वरे (२७)ऽगोष्ट (८७) रसार्थ बाणाः (५५६) । १०४ ।

(२४) आगरा का ७४ कला पूर्व तथा १६३१ कला उत्तर है। (२५) काञ्चीपुरी का ८३ कला पूर्व तथा ६६० कला उत्तर है। (२६) श्रीवेंकट (तिरुपति) का ८० कला पूर्व तथा ७८० कला उत्तर है। (२७) रामेश्वरम् का ८७ कला पूर्व तथा ५५६ कला उत्तर है।

तद्द्राविड़े (२८)ऽद्र्यष्ट (८७) खषट्क षट्काः (६६०)
बुन्देल के (२९)ऽगोष्ठ (८७) खखार्थ चन्द्राः (१५००)
श्रीनर्मदा सौम्यतटे जबल्लपुरे (३०) तथा भारतवर्ष मध्ये । १०५ ।

(२८) द्राविड़ मध्य का ८७ कला पूर्व तथा ६६० कला उत्तर है। (२९) बुन्देलखण्ड का ८७ कला पूर्व तथा १५०० कला उत्तर है। (३०) भारत वर्ष के मध्य में तथा श्रीनर्मदा के उत्तरी तट पर स्थित जबलपुर का

त्र्यंका (९३) शरांगाग्नि भुवो (१३९५)ऽथ चेन्न
(३१) पुर्यां नगांकाः (९७) कृतनागशैलाः (७८४)

कृष्णाब्धि संगे (३२) द्विदिशः (१०२) खबाण
नन्दा (९५०) अथो राय पुरे नवाशाः (१०९) । १०६ ।

(३०) जबलपुर का ९३ कला पूर्व तथा १३९५ कला उत्तर है। (३१) चेन्नपुर या चन्द्र पुर का ९७ कला पूर्व और ७८४ कला उत्तर है। (३२) कृष्णा सागर संगम का १०२ कला पूर्व तथा ९५० कला उत्तर है। (३३) रायपुर का १०९ कला पूर्व तथा

गोंऽगारुणा (१२६९) राजमहेन्द्र पूर्यां (३४)
रुद्रेन्दवो (१११) द्विद्विदशः (१०२२) प्रयागे (३५)
चन्द्रेश्वराः (१११) खाक्षिशरेन्दव (१५२०) श्चा
योध्यापुरे (३६) रत्नपुरे (३७) ऽर्थ रुद्राः (११५) । १०७ ।

१२६९ कला उत्तर है। (३४) राजमहेन्द्री का १११ कला पूर्व तथा १०२२ कला उत्तर है। (३५) प्रयाग १११ कला पूर्व तथा १५२० कला उत्तर है। (३६) अयोध्या का ११५ कलापूर्व तथा तथा (३७) रत्नपुर का भी ११५ कला पूर्व -

शराभ्रभूपा (१६०५) क्षकलाः षडंग
विश्वे (१३६६)ऽथ गोदावरी सिन्धुसंगे (३८)
घनेन्दवो (११७)ऽङ्गाभ्र दिशो (१००६)ऽथ काश्यां (३९)
सिद्धेन्दवो (१२४)ऽद्रीन्दुशरेन्दु (१५१७)संख्याः । १०८ ।

(३६) अयोध्या का अक्षकला १६०५ उत्तर तथा (३७) रत्नपुर का १३६६ कला उत्तर है। (३८) गोदावरी सागर संगम का ११७ कला पूर्व तथा १००६ कला उत्तर है। (३९) काशी का १२४ कला पूर्व तथा १५१७ कला उत्तर है।

अथोदिता रायगढ़े (४०)ऽद्रिसूर्या (१२७)
नागाभ्रविश्वे (१३०८)ऽथविशाख पुर्याम् । (४१)
नागारुणा (१२७) द्व्यंगदिशः (१०६२) समल्ल-
पुरे (४२) खविश्वे (१३०) त्रिगजाक्षि चन्द्राः (१२८३) । १०९ ।

(४०) रायगढ़ का १२७ कला पूर्व तथा १३०८ कला उत्तर है। (४१) विशाखापत्तन का १२७ कला पूर्व तथा १०६२ कला उत्तर है। (४२) सम्बलपुर का १३० कला पूर्व तथा १२८३ कला उत्तर है।

श्रीकाकुले (४३) रामगुणौ षधीशाः (१३३)
समुद्रनन्दाम्बर शीतभासः (१०९४)
नेपालमध्ये (४४) कृतरामरूपा (१३४)
स्यष्टाष्टभूपा (१६८८) श्च महेन्द्रशैले (४५) । ११० ।

(४३) श्रीकाकुलम का १३३ कला पूर्व तथा १०९४ कला उत्तर (४४) नेपाल मध्य का १३४ कलापूर्व तथा १६८८ कला उत्तर है। (४५) महेन्द्र गिरिका

गोविश्व के (१३९) खेन्द्रभुवो (११४०) गयायां (४६)
गुणाब्धि चन्द्रा (१४३) वसु अष्ट इन्द्राः (१४८८)
वरम्पुरे (४७) त्र्यब्धि भुवो (१४३) ऽब्धिबाण
रुद्राश्च (११५४) गञ्जाम (४८) इषुश्रुतिक्ष्माः (१४५) । १११ ।

१३९ कला पूर्व तथा ११४० कला उत्तर है । (४६) गया का १४३ कला पूर्व तथा १४८८ कला उत्तर है । (४७) ब्रह्मपुर का १४३ कला पूर्व तथा ११५४ कला उत्तर है । (४८) गंजाम का १४५ कला पूर्व तथा

वेदांगरुद्रा (११६४) [illegible]माधवस्य
क्षेत्रे (४९) रसेन्द्रा (१४६) द्विभुजा[illegible]
नीलाचले (५०) [illegible]तिथयो (१५२)ऽष्ट नाग
रुद्र (११८८) स्तथैकाम्रवने (५१) द्वितिथ्याः (१५२) । ११२ ।

११६४ कला उत्तर है । (४९) माधव क्षेत्र का १४६ कला पूर्व तथा १२२२ कला उत्तर है (५०) नीलाचल (पुरी) का १५२ कलापूर्व तथा ११८८ कला उत्तर है ।

(५१) एकाम्रवन भुवनेश्वर का १५२ कला पूर्व तथा

इन्द्रार्क लिप्ताः (१२१४) कटके (५२) तुसार्द्ध
दृग् बाण चन्द्रा (१५२ १/२) वसुदिग् द्विचन्द्राः (१२२८)
महानदी सागर संगमे (५३) भू
रसेन्दवो (१६१) विश्व भुजेन्दवश्च (१२१३) । ११३ ।

१२१४ कला उत्तर है । (५२) कटक का १५२ । ३० कला पूर्व तथा १२२८ कला उत्तर है । (५३) महानदी सागर संगम का १६१ कला पूर्व तथा १२१३ कला उत्तर है ।

बाले श्वरे (५४) रूपनृपा (१६१) द्विनन्द
पक्षेन्दव (१२९२) श्चैव जलेश्वरे (५५) तु ।
शरांगरुपाणि (१६५) च विश्वविश्वे (१३१३)
स्युमेदिनी (५६) तुर्यगषड्धरण्यः (१६७) । ११४ ।

(५४) बालेश्वर का १६१ कला पूर्व तथा १२९२ कला उत्तर है । (५५) चलेश्वर का १६५ कला पूर्व तथा १३१३ कला उत्तर है । (५६) मेदिनीपुर का १६७ कला पूर्व तथा

खार्थाग्निचन्द्रा (१३५०) अथवर्द्धमाने (५७)
द्र्व्यंगेन्दवः (१७२) खांकगुणेन्दवश्च (१३९०)
गंगाब्धि संगे (५८)ऽर्थघनाः (१७५) शराक्षि
विश्वे (१३२५) नवद्वीप पुरे (५९) द्र्यगक्ष्मा (१७७) । ११५ ।

१३५० कला उत्तर है। (५७) वर्द्धमान का १७२ कला पूर्व तथा १३९० कला उत्तर है। (५८) गंगा सागर संगम का १७५ कला पूर्व तथा १३२५ कला उत्तर है। (५९) नवद्वीप पुर (नदिया) का १७७ कला पूर्व तथा

कृताम्बरेन्द्राश्च (१४०४) कलिकतायां (६०)
कुभृद्घना (१७७) वेदशराग्नि चन्द्राः (१३४५)
बंगस्थ रंगाद्युपुरे (६१)ऽगनागः
चन्द्रा (१८६) रसाम्भोधि शरेन्दु संख्या (१५४६)। ११६।

१४४० कला उत्तर है। (६०) कलकत्ता का १७७ कलापूर्व तथा १३५४ कला उत्तर है। (६१) बंगाल के रंगपुर का १८६ कला पूर्व तथा १५४६ कला उत्तर है।

ढाकापुरे (६२) नन्द नवेन्दवश्च (१९९)
शरेक्षणाम्भः पति रात्रिनाथाः (१४२५)
श्रीहट्टके (६३) विश्वभुजाः (२१३ शरांक
वेदेन्दवो (१४९५) लोहित नाम नद्याम् (६४)। ११७।

(६२) ढाका का १९९ कलापूर्व तथा १४२५ कला उत्तर है। (६३) श्रीहट्ट (सिलहट) का २१३ कलापूर्व तथा १४९५ कला उत्तर है। (६४) लोहित नदी (अरुणाचल)

द्व्यब्धीक्षणा (२४२) न्यब्धिशरांग चन्द्रा (१६५४) इतीरिताभारतपूर्वभागे
कथ्यन्त एतत् पर भाग देशा भूमध्यरेखान्तिकतः क्रमेण। ११८।

का २४२ कलापूर्व तथा १६५४ कला उत्तर है। ये सब भारत के पूर्व क्षेत्र के स्थान हैं। अव भूमध्य रेखा (रामगढ़, जूनागढ़ आदि की देशान्तर रेखा) से पश्चिम के देशों का क्रम से अक्षांश देशान्तर कहा जाता है।

रणे (६५) भुजौ (२) खाम्बुधि वेद चन्द्राः (१४४०)
कचै (६६)ऽद्रयः (७) सर्पगजाग्नि चन्द्राः (१३८८)
सिन्धौ (६७) किलेन्द्राः (१४) खरसार्थ चन्द्राः (१५६०)
श्रीद्वारका (६८) काबुलयोः (६९) शरक्ष्माः (१५)। ११९।

(६५) रण (कच्छ प्रान्त में) का २ कला पश्चिम तथा १४४० कला उत्तर है। (६६) कच्छ का ७ कला पश्चिमम तथा (१३८८) कला उत्तर है। (६७) सिन्धु का १४ कला पश्चिम तथा १५६० कला उत्तर है। (६८) द्वारका तथा (६९) काबुल दोनों का १५ कला पश्चिम

गजामरक्ष्मा (१३३८) श्वरसानखाश्च (२०६७)
स्थानाफ गान्यां (७०) नवभूमयः (१९) स्युः।
शरोमहीभृद् वसु भूमयश्च (१८७५)
नद्यब्धि संगे (७१)ऽब्धि भुजा (२४) घनेन्द्राः (१४१७)। १२०।

तथा अक्षांश क्रमशः १३३८ (द्वारका) तथा २०६७ (काबुल) कला उत्तर है। (७०) अफगानिस्थान का १९ कला पश्चिम तथा १८७५ कला उत्तर है। (७१) सिन्धु और सागर संगम का २४ कलापश्चिम तथा १४१७ कलाउत्तर है।

स देह यज्ञस्य (७२) नगाग्न्य (३७) श्च
भुजंगमातंग नभो भुजाश्च (२०८८)
प्राग् भारतस्याप्यथ ब्रह्म देश
मध्ये (७३)ऽद्रितत्त्वानि (२५७) गुणाभ्ररुद्राः (११०३)। १२१।

(७२) देह यज्ञ का ३७ कला पश्चिम तथा २०८८ कला उत्तर है। (७३) भारत के पूर्व में ब्रह्मदेश (बर्मा या म्याम्मार) के मध्य का २५७ कला पूर्व तथा ११०३ कला उत्तर है।

(७४) इरावती सागर संगमेऽस्या याम्येऽष्टवेदांक
(९४८) मिताक्षलिप्ते पारस्यके (७५) भारत पश्चिमस्थे
नगार्थ चन्द्रा (१५७) नखनन्द चन्द्राः (१९२०)। १२२।

(७४) इरावती और सागर का संगम ब्रह्मदेश के दक्षिण अर्थात् उतना ही २५७ कला पूर्व और ९४८ कला उत्तर है। (७५) भारत के पश्चिम में स्थित पारस्य (ईरान) का १५७ कला पश्चिम तथा १९२० कला उत्तर है।

आरव्यमध्ये (७५)ऽद्रिगुणे क्षणानि (२३७)
दिग् वासवा (१४१०) श्चाथ तुरुष्क भूमौ (७७)
नगाग्नि रामाः (३३७) खनगेन्दु पक्षा (२१९०)
याम्यस्थ लंकापुरी (७८) खाभ्रचन्द्राः (१००)। १२३।

(७६) अरब मध्य का २३७ कला पश्चिम तथा १४१० कला उत्तर है। (७७) तुरुष्क भूमि (तुर्की) का ३३७ कला पश्चिम तथा २१९० कला उत्तर है। (७८) दक्षिण में स्थित लंकापुरी (श्रीलंका) का (१००) कला पूर्व

प्राच्या विषष्योऽष्ट गजाब्धि (४८८) लिप्ता
वर्षोत्तरे हिन्दुकुशाद्रि मध्यो (७९)
नृपाः (१६) शरार्काक्षिमिता (२१२५) हिमाद्रोः (८०)
परेऽष्टरामाः (३८) कृतदिग् दृशों (२१०४)ऽशे। १२४।

तथा ४८८ कला उत्तर हैं। (७९) हिन्दुकुश पर्वत का मध्य १६ कला पूर्व तथा २१२५ कला उत्तर है। (८०) हिमालय का पश्चिमी भाग ३८ कला पूर्व तथा २१०४ कला उत्तर है।

पूर्वे (८१)ऽग्निसिद्धा (२४३) नगनाग भूपा (१६८७)
मध्ये (८२) शशीन्द्रा (१४१) स्त्रिगुणाद्रि चन्द्राः (१७३३)

श्रृंगस्य गौर्यादिकं शंकरस्या (८३)
षाब्ध्यग्नि गोचन्द्र (१९३४८) करोच्चयस्य। १२५।

(८१) हिमालय का पूर्व भाग २४३ कला पूर्व तथा १६८७ कला उत्तर है। (८२) हिमालय का मध्य भाग १४१ कला पूर्व तथा १७३३ कला उत्तर है। (८३) इसकी चोटी गौरीशंकर (एवरेस्ट) की ऊंचाई (१९३४८) हाथ है।

खार्थेन्दवः (१५०) खाभ्रघना (१७००) नगेश
सौम्येह्रदे मानस नामधेये (८३)
षट्खेन्दवः (१०६) खाब्धि नाग चन्द्राः (१८४०)
सप्तांग षड् जिष्णु (१४६६७) करोन्नतेस्तु। १२६।

तथा स्थिति १५० कला पूर्व और १७०० कला उत्तर है। (८४) पर्वतराज के उत्तर में मानस नामक सरोवर १०६ कला पूर्व तथा १८४० कला उत्तर में स्थित है। इसकी ऊंचाई (१४,६६७) हाथ है।

कैलाश शैलस्य (८५) दिगिन्दवो (११०)ऽर्थ
शैलाष्ट चन्द्रा (१८७५) श्चतदुत्तरस्थे।
देशे पुर स्तिब्बत नाम्नि (८६) राम
गोब्ज्याः (१९३) खबाणां क भुवो (१९५०)ऽथ चीने (८७)। १२७।

(८५) कैलाश चोटी का ११० कला पूर्व तथा १८७ कला उत्तर है। (८६) इसके पूर्व तिब्बत देश १९३ कला पूर्व तथा १९५० कला उत्तर है। (८७) चीन का मध्यभाग

त्रिनन्दरामाः (३९३) खरसाष्ट चन्द्रा (१८६०)
सौम्ये स्थितः तस्य चराजधानी (८८)
शून्याभ्रसिद्धा (२४००) अथ रूष मध्ये (८९)
त्र्यंकाब्धयः (४९३) पूर्णनवांकरामाः (३९९०)। १२८।

३९३ कला पूर्व तथा १८६० कला उत्तर है। (८८) इसकी राजधानी और उत्तर में अर्थात् ३९३ कला पूर्व तथा २४०० कला उत्तर है। (८९) रूस का मध्य भाग ४९३ कला पूर्व तथा ३९९, कला उत्तर है।

इत्येशियानाम महीमहांश
स्थानानि पश्चादि यूरोप नाम्नः
भागस्य मध्य (९०) परदिग् विधष्यः
सप्ताभ्र बाणाः (५०७) खधृतित्रि (३१८०) लिप्ताः। १२९।

ये सब एशिया महादेश के स्थानों का वर्णन है। इसके पश्चिम में यूरोप है। (९०) यूरोप के मध्य भाग की स्थिति ५०७ कलापश्चिम तथा ३१८० कला उत्तर है।

तत् पश्चिमे द्वीप मुदन्वदन्तरीं लङनामास्ति तदन्तरस्थे

पुरोत्तमे लण्डन नाम्न्य (९१) गाभ्र
शैलाः (७०७) खनन्दाभ्रगुणः (३०९०) प्रदिष्टाः । १३० ।

उसके पश्चिम में अति प्रसिद्ध इंगलैण्ड द्वीप है जिसमें लण्डन नाम का श्रेष्ठ नगर है । (९१) लण्डन ७०७ कला पश्चिम कथा ३०९० कला उत्तर है ।

तद् याम्यगेखण्ड इहीफ्रि काख्ये (९२)
सप्ताभ्रबाणाश्च (५०७) निरक्ष मन्ता ।
त्रयः कुभागा उदिताहि जम्बू
द्वीपस्य याम्यांशतयाः प्रसिद्धं । १३१ ।

उसके दक्षिण के खण्ड का नाम अफ्रीका है । (९२) अफ्रीका तट विषुव से ५०७ कला उत्तर है । इस प्रकार तीन महोदेशों के बारे में कहा गया । अफ्रीका जम्बू द्वीप के दक्षिण में प्रसिद्ध है ।

अमेरिका धो द्विविधोत्तरास्य
सौम्यांश (९३) भक्ता परदिग् विधष्यः
तन्मध्य एवाद्रि ख सप्त चन्द्राः (१७०७)
खखाभ्रामा (३०००) अथदक्षिणस्याः । १३२ ।

पश्चिम दिशा में अमेरिका उत्तर और दक्षिण दो भागों में बंटा हुआ है । (९३) उत्तर अमेरिका का मध्य भाग १७०७ कला पश्चिम तथा ३००० कला उत्तर है । (९४) दक्षिण अमेरिका का

मध्ये (९४)ऽद्रि नागाक्षि भुवो (१२८७)ऽक्षलिप्ताः
सौम्य खदन्तेन्दव (१३२०) आसुराशेः
आष्ट्रेलियान्त (९५) स्त्रिभुजांग संख्याः (६२३)
प्राच्य खखार्थाक्षितयश्च (१५००) याम्याः । १३३ ।

मंध्य भाग १२८७ लिप्ता पश्चिम तथा १३२० कला दक्षिण है । (९५) आस्ट्रेलिया ६२३ कला पूर्व तथा १५०० कला दक्षिण है ।

अथार्क सूक्ष्म ग्रहणानुभूत्यै-
रसन्निकृष्टेषु पुरेषु भूयः
लिखामि ताः सप्तगुणौषधीश (१३७)
बौद्धे (९६) खबाणेक्षणशीतभासः (१२५०) । १३४ ।

अब सूर्य ग्रहण का सूक्ष्म विचार करने के लिए निकटवर्ती (उड़ीसा के) प्रमुख स्थानों की भारतीय, रेखा से पूर्व तथा विषुव रेखा से उत्तर की दूरी कला में लिख रहा हूँ ।

(९६) बौद्ध का १३७ कला पूर्व तथा १२५० कला उत्तर है।

मञ्जूषिकायां (९७) खकृतेन्दवो (१४०)ऽर्थ
विश्वेन्दवो (११३५)ऽथानुगुले (९८) कृतेन्द्रा (१४४)
सप्ताब्धि सूर्या (१२४७) नवदुर्गके (९९)ऽर्थ
शक्रा (१४५) नगाप्रेक्षण रूप (१२०७) संख्याः । १३५ ।

(९७) मंजूषा (१४०) कला पूर्व तथा ११३५ कला उत्तर है। (९८) अनुगुल १४४ कला पूर्व तथा १२४७ कला उत्तर है। (९९) नयागढ़ (नवदुर्ग) १४५ कला पूर्व तथा १२०७ कला उत्तर है।

खण्डादिसत्पत्तनके (१००)ऽङ्गशक्रा (१४६)
नृपाक्षिचन्द्रा (१२१६) अथ तालचेरे (१०१)
षड्जिष्णवो (१४६)ऽष्टेषु रुणाश्च (१२५८)
पारि द्वीपे (१०२)ऽद्रिशक्रा (१४७) विधुनागरुद्राः (११८१) । १३६ ।

(१००) खण्डपड़ा १४६ कला पूर्व तथा १२१६ कला उत्तर है। (१०१) तालचेर १४६ कला पूर्व तथा १२५८ कला उत्तर है। (१०२) पारीकुद (१४७) कला पूर्व तथा ११८१ कला उत्तर है।

पुरेरणाद्ये (१०३)ऽद्रिकृतेन्दवो (१४७)ऽर्थ
पूर्णाक्षि चन्द्राः (१२०५) वृहदम्बिकायाम् । (१०४)
शैलाब्धि चन्द्राः (१४७) कृतनेत्र सूर्या (१२२४)
ढेकादिनाले (१०५) खशरेन्दवः (१५०) स्युः । १३७ ।

(१०३) रणपुर १४७ कलापूर्व तथा १२०५ कला उत्तर है। (१०४) बड़म्बा १४७ कला पूर्व तथा १२२४ कला उत्तर है। (१०५) ढेकानाल (१५०) कला पूर्व

वसुत्रि सूर्याः (१२३८) शरतद् भुवस्तु (१५५)
कोणार्क (१०६) एवाग्नि नवेश्वराश्च (११९३)
सुनिश्चिता याजपुरे (१०७)ऽष्टबाण ।
चन्द्रा (१५८) महीबाण भुजा धरित्र्यः (१२५१) । १३८ ।

तथा १२३८ कला उत्तर है। (१०६) कोणार्क का १५५ कला पूर्व तथा ११९३ कला उत्तर है। (१०७) याजपुर का (१५८) कला पूर्व तथा १२५१ कला उत्तर है

मयूर भञ्जे (१०८) ऽष्टशरेन्दवो (१५८)ऽर्क
रामेन्दवो (१३१२) नीलगिरौ (१०९) खभूपाः (१६०)
नगाष्टसूर्य (१२८७) इतिसत्सुखार्थम्
नवाधिकं स्थान शतं मयोक्तम् । १३९ ।

(१०८) मयूर भञ्ज का १५८ कला पूर्व तथा १३१२ कलाउत्तर है । (१०९) नीलगिरि का १६० कला पूर्व तथा १२८७ कला उत्तर है । इस प्रकार सज्जनों की सुविधा के लिए मैंने १०९ स्थानों के बारे में कहा ।

अत्रेप्सितस्थल युगान्तर मार्ग मान मानेन्दु
मक्ष कलिका विवरं विनिघ्नम् ।
भूवेष्टनेन महता (५०२६) हृत मृक्षचक्र
लिप्ताचयेन (२१६००) फलामात्महतं पृथक् स्तम् । १४० ।

दो स्थानों की अक्ष कला के अन्तर को ५०२६ से गुणा कर २१६० से भाग देकर फल को वर्ग करेंगे ।

प्राक् प्रत्यगन्तर हत क्षिति वृत्त (५०२६) मभ्र
खांगाग्नि (३६०) हृद् विपद मध्य जयाहतं तत्
लम्बज्यया त्रिगुण (३४३८) हृत् स्वहतं द्विवर्ग
योगात् पदं हि पदयो ऋजुमध्यमार्गः । १४१ ।

पुनः दोनों स्थानों के पूर्व पश्चिम अन्तर कला को ५०२६ से गुणाकर ३६० से भाग देंगे । फल को दोनों स्थानों की लम्बज्या के योगार्द्ध से गुणा कर त्रिज्या (३४३८) से भाग देंगे । फल को वर्ग करेंगे । इस वर्ग को पिछले वर्ग के साथ जोड़कर मूल निकालेगें । वह उन दोनों स्थानों के बीच की सीधी दूरी होगी ।

ज्योतिस्तत्वविदो वदन्ति परम क्रान्तेश्वरानेहसा
यत्किञ्चित्तनुतो ऋते परम विक्षेपस्य खेटावलेः
याम्योदग् ध्रुव पश्चिम भ्रमपथस्यात्रानु भूत्यागम
प्राणाण्येन विनाव्यलेखिनमया तत्तत् कलानिर्णयः । १४२ ।

प्राचीन काल से ज्योतिषियों ने ग्रहों का परमशर, दक्षिण तथा उत्तर ध्रुव का पूर्व पश्चिम मार्ग अर्थात् अयन चलन आदि के बारे में जो कुछ लिखा है, उसमें किसी को भी बिना प्रमाण के मैंने स्वीकार नहीं किया है । सभी बातें प्रत्यक्ष (वेध द्वारा) देखकर ही लिखी हैं ।

ऊर्ध्वोद्धर्वाम्बर सूत्रगो दिनमणिः स्याद्यद्दिनार्द्धे तदा
सद् भार्द्धेव स्थिरन्ध्रग क्षिति पतत्तद् भानुनिष्ठाजवलात्
उद् गच्छत् किरणस्य रन्ध्र समतां दृष्ट्वा तदा त्वार्कजा
क्रान्ति स्वाक्षतयो दितैव मखिलं देशेष वेद्यं बुधैः । १४३ ।

मध्याह्न में खस्वस्तिक में रवि को देखकर (रवि के सबसे ऊपर विन्दु पर) अन्धेरे कमरे में एक छोटा छेद करते हैं । छेद से आती किरण के नीचे एक पानी का बर्तन रखते हैं । किरण दूसरी स्थान पर वापस होगी । सूर्य से आती किरण का भूमि से जो कोण होगा वही कोण लौटती किरण का भी होगा । यह कोण

अपने स्थान से सूर्य की स्पष्ट क्रान्ति होगी। उसमें उत्तर क्रान्ति जोड़ने या दक्षिण क्रान्ति घटाने से अपने स्थान का अक्षांश आयेगा।

दृष्टा दृष्टि विरुद्ध मन्यगणितं त्राणाय धर्मस्यवा
भ्रान्तिं तथ्यतया भुवः प्रवदतां वाग् भंगिभांगायवा
विद्वत्सं सदिमत् प्रलायज परीहास प्रकाशायवा
येनाहं हदितिष्टता मुखरितः कस्मै चिदस्मै नमः। १४४।

आचार्यों ने कई प्रकार से यह ग्रन्थ बनाने की प्रेरणा दी है- प्राचीन ग्रह गणित दृक् सिद्ध नहीं होना, धर्म की रक्षा के लिए, पृथ्वी का भ्रमण स्वीकार करने वालों के खण्डन के लिये या मेरे प्रलाप्त का पण्डित सभा में परिहास द्वारा इन प्रेरणाओं के लिए मैं उन्हें नमस्कार करता हूं।

आसीत् पासीन्द्र काशीश्वर मिहिर तनु जन्मराजाधिराज
स्वराट् प्रत्यार्थे पृथ्युधव दहन पक्षत् पत्र मात्रोत्थ गात्रः
प्राप्तशीमर्दराज भ्रमरवर पदः सत्तमात् सार्वभौमा
धीमान् वैरागी नाम स्फुटत महिमा मण्डलः खण्डपुर्याः। १४५।

वरुणा, इन्द्र, रुद्र, यम कुबेर, नैऋति, अग्नि और पवन इन आठ लोक पालों के अंश से उत्पन्न वैरागी नामक एक राजा खण्ड पड़ा में हुए। उनकी उपलब्धियों के कारण स्वयं पुरी राजा ने उन्हें मर्दराज और भ्रमरवर की उपाधि दी थी। वह खण्डपड़ा में चन्द्र के समान शासन करते थे। उनकी बुद्धि और महिमा चारों तरफ फैली हुई थी।

तस्मात् कृष्णाप्त तृष्णा दजनि शुभजनिर्गांग भंगा वगाही
भीष्मानुष्मार कोष्मा ज्मत पर विजयः श्रील नीलाद्रि सिंह
तत्सानुः शुभ्र भानु द्युमणि परिभवोद्दाम कीर्त्ति प्रतापः
प्राप प्राक् श्री नृसिंहः पदमजित पदध्यान नीलत्रिपातः। १४६।

इन कृष्ण भक्त वैरागी की इच्छा भगवान कृष्ण ने पूर्ण की और उनके औरस पुत्र श्री नीलाद्रि सिंह उत्पन्न हुए जो गंगा पुत्र भीष्म के समान भंयकर तेज से शत्रुओं को पराजित करने वाले थे। उनके पुत्र श्री नृसिंह अपने कीर्ति और प्रताप में चन्द्र और सूर्य से भी अधिक थे। उन्होंने अपने वंश की उपाधि (मंर्दराज तथा भ्रमरवर) प्राप्त की तथा अपराजित (विष्णु) के चरणों का ध्यान कर तीन ताप (दैहिक, दैविक और भौतिक कष्ट) दूर किये।

क्षत्राधिश्री वघेलान्वय पय उदधि प्रोद्यता पूर्णचन्द्रा
ज्योतिः सन्धान सिन्धुस्तत उदय मगच्छत् बुधः श्यामबन्धुः
स्वान्तोद्य द्दीन बन्धु प्रपद नख महः संहता हस्तमिस्रः
श्रीमान् सिंहान्त नामोत्कल निलय भरद्वाज गोत्राब्ज मित्रः। १४७।

बघेल क्षत्रिय वंश क्षीर समुद्र के समान शुभ्र है जिसमें लक्ष्मी का निवास है। इसी में पूर्ण चन्द्र के समान नृसिंह का उदय हुआ था। उनके औरस पुत्र श्रीश्यामबन्धु अत्यन्त विद्वान्, दीनबन्धु के चरण नखों में अपना अज्ञान एवं अंधकार दूर करने वाले थे। उन्होंने उड़ीसा में निवास किया, सिंह उपाधि धारण की तथा भरद्वाज कुल कमल के लिये सूर्य के समान थे।

तज्मः श्रीमधुसूदनाभिध महापात्रोद् गुरोदीक्षितो
विद्यामुद्यत खंगराय सुपदादानन्द मिश्राद् गतः
सोऽहं ब्रह्म गिरीश माधवपदावासः स्वधर्माधमः
सिद्धान्त ग्रथनं चकार यदिदं स्यात्कृष्ण पादार्पितम्। १४८।

मैं इन्हीं श्यामबन्धु सिंह का पूत्र हूँ। अपने गुरु की श्री मधुसूदन महापात्र से मैंने दीक्षा ली है। खडंगा (खङ्गराय) आनन्द मिश्र के पास मैं ने शिक्षा ली है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश का चरण ही मेरा आश्रय है। अपने कालधर्म का पालन करने में मैने बराबर त्रुटि की है। तथापि प्रभु की दया से सिद्धान् पूर्ण कर पाया, यह उन्हीं भगवान के चरणों में अर्पण कर रहा हूँ।

यातांग त्रिनवाब्धि (४९३६) वत्सर कलौ जन्मोभवन्मामकं
वेदोषर्बुध (३४) वर्ष केण च मया गन्थोऽप्यमाविष्कृत
सन्तः सन्ततमत्रसन्त गणिते सन्तोष वन्तो गुणं
गृह्णान्तः परिहृत्य दोष गणका नास्ते न यत् सर्ववित्। १४९।

कलि वर्ष ४९३६ में मेरा जन्म हुआ। ३४ वर्ष की अवधि में मैंने ग्रन्थ रचना समाप्त की। मेरे इस गणित ग्रन्थ के दोषों में छोड़कर केवल गुणों को ही पण्डित ग्रहण करें। क्योकि कोई भी मनुष्य सर्वज्ञ नही होता है।

सिद्धान्तानुदिता अपिह गदिता ये ये विशेषा मया
ते हेया नव कल्पना इति सति माभृत् प्रभूणां क्वचित्
दृक् सिद्धये किल लल्ल भास्कर शतानन्दाच भट्टादिभिः
स्वग्रन्थेषु यदीरिता बहुमता ईदृक् विशेषा नवाः। १५०।

विद्वानों से मेरी प्रार्थना है कि इस ग्रन्थ की कई नयी बातों को केवल नया होने के कारण तिरस्कार नहीं करें। दृक् सिद्धि के लिये लल्ल, भास्कर, शतानन्द तथा आर्यभट्ट आदि ने भी अपने ग्रन्थों में कई नयी बातें लिखी हैं। और लोग उन्हें मानते हैं। मैंने यदि ऐसा किया उसमें क्या दोष है ?

सिद्धान्ताध्ययनं विनापि गगनाभागो न भोगोडुभिः
सार्द्धवासनया यदीयहृदयेऽनत्यत्तदाविष्कृते
सिद्धान्त प्रमुखे प्रकाशनवल स्पष्टाधिकार द्वयो
युक्तं दर्पण केऽत्र गोलगणित ख्यात्योत्तरार्द्ध गतम्। १५१।

सिद्धान्त ग्रन्थ पढ़े बिना (पढ़ने के पहले भी) ही आकाश सीमा, ग्रह, नक्षत्र और उनकी युक्ति ने मेरे हृदय को व्याकुल किया है । अतः मैं उनके आविष्कार में लगा । इस सिद्धान्त दर्पण के नौ प्रकाशों में दो अधिकार (गोलाधिकार तथा कालाधिकार)स्पष्ट रूप से समाप्त हुये । गोल गणित के नाम से विख्यात उत्तारार्द्ध समाप्त हुआ । अपि च

इति श्री सिद्धान्त प्रथम पद युग् दर्पण इति
प्रसिद्धः संशुद्धो वचन नमनै क्याधिगमनात्
प्रकाशैर्द्धिः सूर्ये (२४) रिषुभि (५) रधिकारे रुपचितः
समाप्तोऽयं ग्रन्थः स्फुरतु चिरमन्तः क्षितितलम् । १५२ ।

गणित के अनुसार प्रत्यक्ष ग्रह होने के कारण सिद्धान्त दर्पण विशेष भाव से शुद्ध और प्रसिद्ध है । इसके २४ प्रकाश ५ अधिकारों में है । यह ग्रन्त समाप्त हुआ । बहुत दिन तक उपयोगी रहे यह मेरी इच्छा है ।

त्रुट्यादि प्रलयान्त काल कलनात् प्रेतेशितुः शासना
न्नील द्रव्यचयाधिका सितरुचः कालेसुखादानतः
नीलस्या चलनायकस्य शिरसोऽलंकार भावाद् स्वतः ।
स प्रोक्तः किल काल काल इति यः कृष्णाय तस्मै नमः । १५३ ।

त्रुटि से प्रलय अन्त तक के समय का हिसाब करने वाले, सभी काले पदार्थों से भी अधिक प्रेतराज यम का शासन करने वाले, सभी समय में सुख भोग करने वाले, नीलाचल की चोटी के अंलकार स्वरूप् तथा काल के भी काल भगवान् कृष्ण को प्रणाम करता हूँ ।

आत्मादेश श्रुति स्मृत्युदित बहुविधा चार वारं प्रजाभिः
काले कालेऽनुतिष्ठन् गगन गणितं सार्थयत्यात्म जाभिः
विश्वं यः पाति मादृक् पतति तति समुद्धारणोन्नद्ध बाहुः
सोऽयं देवः शितिक्ष्मा भृत् जयति तमामिन्द्र नीलोज्ज्वल श्रीः । १५४ ।

अपने आदेश रूप वेद तथा स्मृति में लिखे वर्णाश्रम धर्म का अपनी प्रजा द्वारा समय पर पालन करने के लिये ग्रह गणित को जो सार्थक करते हैं, जो चर और अचर पूरे विश्व का पालन करते हैं, मेरे जैसे पतितों की रक्षा के लिये अपने दोनों हाथ ऊपर कर अपने गोद में लेने के लिए तैयार रहते हैं, जिनका नील वर्ण इन्द्रनील मणि के समान प्रकाशित है, वह मेरे हृदय के देवता सदा नीलाचल में विराजमान रहें ।

इत्युत्कलो ज्वल नृपाल कुल प्रसूत
श्रीचन्द्र शेखर कृतौ गणितेऽक्षि सिद्धे
सिद्दान्त दर्पण उपाहित बाल बोधे
मानक्रमे व्यरचि सिद्ध (२४) मितः प्रकाशः (१०५)

इस प्रकार उड़ीसा के प्रसिद्ध राजकुल में उत्पन्न श्री चन्द्रशेखर द्वारा गणना और दृष्टि में समानता तथा छात्रों की शिक्षा के लिए लिखे सिद्धान्त दर्पण का उपसंहार रूप २४ वां प्रकाश समाप्त हुआ।

श्लोकाः स्वकृप्ता इह वेद नाग
पक्षाक्षि संख्य (२२८४) अथ भूपपक्षाः (२१६)
ग्रन्थान्त रोत्थाः खख बाण पक्षाः (२५००)
सम्भूय भव्याय भवन्तु दक्षाः । १५६ ।

इस ग्रन्थ में मेरे लिखे २२८४ तथा दूसरे ग्रन्थों के २१६ श्लोक इस प्रकार कुल २५०० श्लोक हैं। यह अति सुन्दर भाव से लिखे शुभ श्लोक सुन्दर फल दें।

भीमस्यापि पराजयोयुधि भवेद् बुद्धि भ्रमः स्यान्मुनेः
वादाचित् कतयाप्यतोऽल्प विदुषा मा सादृशां का कथा
तस्माद् यद् यद शुद्ध मत्र गणितं यद्वा सहार्थं पदं
तत् सर्वं परिशोधयन्तु कृतिनः कृत्वानुकंपां मयि । १५७ ।

कभी कभी युद्ध में भीम भी पराजित होते हैं। तथा मुनियों का भी बुद्धिभ्रम हो जाता है। फिर मेरे जैसे कम बुद्धि वाले पण्डित का क्या कहना है। अतः जहां गणित में अशुद्धि है या जहां पुनरावृत्ति है उसे विद्वान् लोग स्वंय संशोधन कर लें।

ब्रह्माण्ड खण्ड भण्ड स्थिरतर धरणी मण्डल भ्रान्ति सौण्ड
प्रौदण्डे लण्डदन्ता वल बल दलना कुण्ठ कण्ठीरवः श्रीः
सोऽयं नीलाद्रि सिहान्वय वदन दरी निर्गतः प्राप्त दुर्गः
स्फीत स्वस्यातिरस्तु प्रथम विगणित स्कन्ध सारः प्रबन्धः । १५८ ।

सिद्धान्त दर्पण एक प्रबन्ध या ग्रन्थ हैं। ज्योतिष के तीन स्कन्धों में गणित का यह स्कन्ध सार है। इसका तत्व समझना बहुत कठिन है। नीलाद्रि सिंह के वंश की मुख रूपी गुहा से यह ग्रन्थ सिंह के रूप में बाहर निकला है। अखण्ड ब्रह्माण्ड में पृथ्वी स्थिर है, उसका भ्रमण अस्वीकार करने वाले इंगलैण्ड के पण्डितों के हाथी समान दोतों का बल सिंह के समान दलन करे।

वेलोद्य दसित गोत्रे सूत्रामादि स्तवावली पात्रे
गात्रंमम सुपवित्रे निपततु पुरुषोत्तम क्षेत्रे । १५९ ।

तीर्थ राज समुः के तट पर नीताचल खड़ा है। इन्द्र और देवताओं का स्तोत्र पात्र के रूप रखकर जगन्नाथ की उससे पूजा होती है। उसी पुरुषोत्तम क्षेत्र में मेरा देहावसान हो।

मुकुन्द देवस्य चतुर्दशां के कालेवृषाष्टेन्दु (१८१४) समेच शाके
वारेशने मार्ग पुरोनवम्या मिदं मया पुस्तक मासपूर्णम् । १६० ।

मुकुन्द देवराजा के वें वर्ष अर्थात् शकाब्द १८१४ के मार्गशीर्ष मास कृष्ण नवमी तिथि शनिवार को इस पुस्तक की रचना समाप्त हुयी ।
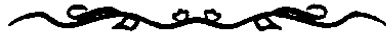
परिशिष्ट

पदक तालिकायें (मध्यमाधिकार)
चतुर्थ प्रकाश-५४ श्लोक
(१) प्रथम सूची- १ से आरम्भ कर सौर वर्षों में अहर्गण

वर्ष	दिन	वर्ष	दिन
१	३६५	५.	१८२, ६२९
२.	७३१	६.	२१,९,१,५५
३.	१०९६	७.	२५५,६८१
४.	१४६१	८.	२९२, २०७
५.	१८२६	९.	३२८,७३३
६.	२१९२	१ हजार	३६५,२५९
७.	२५५७	२.	७३०, ५१७
८.	२९२२	३.	१०,९५,७७६
.९	३२८७	४.	१४,६१,०३५
१०.	३६५३	५.	१८,२६,२९४
२०.	७३०५	६.	२१,९१,५५२
३०.	१०,९५८	७.	२५,५६,८११
४०.	१४,६२०	८ हजार	२९,२२, ० ७०
५०.	१८,२६३	९ हजार	३२, ८७, ३२९
६०.	२१,९१६	१ अयुत (दस हजार)	३६, ५२, ५८८
७०.	२५,५६८	२.	७३,०५, १७५
८०.	२९,२२१	३.	१०,९,५७,७६३
९०.	३२,६७३	४.	१४६, १०, ३५०
१ सौ	३६,५२६	५.	१८२,६२,९३८
२.	७३,०५२	६.	२१९, १५, ५२५
३.	१०९, ५७८	७.	२५५,६८, ११३
४.	१४६, १०३	८.	२९२, २०, ७०१

वर्ष	दिन	वर्ष	दिन
९.	३२८,७३,२८८	३	१०,९५,७७,६२,६९४
१ लाख	३६५, २५, ८७६	४	१४,६१,०३,५०,२५९
२	७३०,५१, ७५१	५	१८,२६,२९,३७,८२४
३.	१०,९५,७७,६२७	६	२१,९१,५५,२५,३८९
४.	१४,६१,०३,५०३	७	२५,५६,८१,१२,९५४
५.	१८,२६,२९,३७८	८	२९,२२,०७,००,५१९
६	२१,९१,५५,२५४	९	३२,८७,३२,८८,०८३
७	२५,५६,८१,१३०	१ अर्बुद	३६,५२,५८,७५,६४८
८	२९,२२,०७,००५	२ (१० कोटि)	७३,०५,१७,५१,२९६
९	३२, ८७,३२,८८१	३	१,०९,५७,७६,२६,९४४
१ नियुत (दस लाख)	३६,५२,५८,७५६	४	१,४६,१०,३५,०२,५९३
२	७३,०५,१७,५१३	५	१,८२,६२,९३,७८,२४१
३	१०९,,५७,७६,२६९	६	२,१९,१५,५२,५३,८८९
४	१४६,१०,३५,०२६	७	२,५५,६८,११,२९,५३७
५.	१८२,६२,९३,७८२	८	२,९२,२०,७०,०५,१८५
६.	२१९,१५,५२,५३९	९	३,२८,७३,२८,८०,८३३
७.	२५५,६८,११,२९५	१ पद्म	३,६५,२५,८७,५६,४८१
८.	२९२,२०,७०,०५२	२ (अरब)	७,३०,५१,७५,१२,९६३
९.	३२८,७३,२८,८०८	३	१०,९५,६७,६२,६९,४४४
१ कोटि(करोड़)	३६५,२५,८७,५६५	४	१४,६१,०३,५०,२५,९२६
२	७३०,५१,७५,१३०	५	१८,२६,२९,३७,८२,४०७

करणाब्द मुखगता हर्गणः सृष्ट्यादे (करणाब्द आरम्भ का अहर्गण -सृष्टि आरम्भ से) - ७, १४, ४०, ४१, ११, ९६२

कलि आरम्भ से - १८, १५, ३३५

ग्रहध्रुवाहर्गणः (ग्रह ध्रुव का अहर्गण) १८, १५, ३३५

एकोनाहर्गणाद्ध्रुवा दिनगति युताः पाञ्जि मुखदिने मध्याः स्युः । (करणाब्द १८६८ ई.) की पञ्जिका के प्रथम दिन का मध्यम ग्रह निकालने के लिये अहर्गण से एक दिन कम कर उतने दिनों की मध्यम ग्रह गति निकाल कर उसमें ग्रह का ध्रुव (सृष्टि या कलि आरम्भ की स्थिति) जो देते हैं।

(२) द्वितीय तालिका-मध्यम रवि के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।० ।५९ ।८ ।१०	१ हजार	८ ।२५ ।३६ ।९ ।३३
२	० ।१ ।५८ ।१६ ।२०	२	५ ।२१ ।१२ ।१९ ।७
३	० ।२ ।५७ ।२४ ।३१	३	२ ।१६ ।४८ ।२८ ।४०
४	० ।३ ।५६ ।३२ ।४१	४	११ ।१२ ।२४ ।३८ ।१४
५	० ।४ ।५५ ।४० ।५१	५	८ ।८ ।० ।४७ ।४७
६	० ।५ ।५४ ।४९ ।१	६	५ ।३ ।३६ ।५७ ।२०
७	० ।६ ।५३ ।५७ ।११	७	१ ।२९ ।१३ ।६ ।५४
८	० ।७ ।५३ ।५ ।२१	८	१० ।२४ ।४९ ।१६ ।२८
९	० ।८ ।५२ ।१३ ।३२	९	७ ।२० ।२५ ।२६ ।१
१०	० ।९ ।५१ ।२१ ।४२	१ अयुत	४ ।१६ ।१ ।३५ ।३४
२०	० ।१९ ।४२ ।४३ ।२३	२ (दस हजार)	९ ।२ ।३ ।११ ।८
३०	० ।२९ ।३४ ।५ ।५	३	१ ।१८ ।४ ।४६ ।४२
४०	१ ।९ ।२५ ।२६ ।४७	४	६ ।४ ।६ ।२२ ।१६
५०	१ ।१९ ।१६ ।४८ ।२९	५	१० ।२० ।७ ।५७ ।५०
६०	१ ।२९ ।८ ।१० ।१०	६	३ ।६ ।९ ।३३ ।२३
७०	२ ।८ ।५९ ।३१ ।५२	७	७ ।२२ ।११ ।८ ।५७
८०	२ ।१८ ।५१ ।५३ ।३४	८	० ।८ ।१२ ।४४ ।३१
९०	२ ।२८ ।४२ ।१५ ।१६	९	४ ।२६ ।१४ ।२० ।५
१ सौ	३ ।८ ।३३ ।३६ ।५७	१ लाख	९ ।१० ।१५ ।५५ ।३९
२	६ ।१७ ।७ ।१३ ।५५	२	६ ।२० ।३१ ।५१ ।१८
३	९ ।२५ ।४० ।५० ।५२	३	४ ।० ।४७ ।४६ ।५७
४	१ ।४ ।१४ ।२७ ।४९	४	१ ।११ ।३ ।४२ ।३६
५	४ ।१२ ।४८ ।४ ।४७	५	१० ।२१ ।१९ ।३८ ।१६
६	७ ।२१ ।२१ ।४१ ।४४	६	८ ।१ ।३५ ।३३ ।५५
७	१० ।२९ ।५५ ।१८ ।४१	७	५ ।११ ।५१ ।२९ ।३४
८	२ ।८ ।२८ ।५५ ।३९	८	२ ।२२ ।७ ।२५ ।१३
९	५ ।१७ ।२ ।३२ ।३६	९	० ।२ ।२३ ।२० ।५२

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१ नियुत	९ ।१२ ।३९ ।१६ ।३१	१ करोड	१० ।६ ।३२ ।४५ ।१२
२ (दस लाख)	६ ।२५ ।१८ ।३३ ।२	२	८ ।१३ ।५ ।३० ।२४
३	४ ।७ ।५७ ।४९ ।३४	३	६ ।१९ ।३८ ।१५ ।३६
४	१ ।२० ।३७ ।६ ।५	४	४ ।२६ ।११ ।० ।४८
५	११ ।३ ।१६ ।२२ ।३६	५	३ ।२ ।४३ ।४६ ।०
६	८ ।१५ ।५५ ।३९ ।७	६	१ ।९ ।१६ ।३१ ।१३
७	५ ।२८ ।३४ ।५५ ।३८	७	११ ।१५ ।४९ ।१६ ।२५
८	३ ।११ ।१४ ।१२ ।१०	८	९ ।२२ ।२२ ।१ ।३७
९	० ।२३ ।५३ ।२८ ।४१	९	२ ।२८ ।५४ ।४६ ।४९
		१ अर्बुद	६ ।५ ।२७ ।३२ ।१

रवि के ध्रुव (राशि अदि)

द्वापर के अन्त में ० ।० ।० ।० ।०

करणाब्द आरम्भ में - ११ ।२८ ।१५ ।२० ।४६

गति की लिप्ता आदि - ५९ ।८ ।१० ।१० ।२४ ।१२

द्वापर के अन्त में मन्दोच्च - २ ।१८ ।३९ ।३६

करणाब्द आरम्भ में मन्दोच्च - २ ।१८ ।४७ ।५६

हार - ५९९

भुजफल का छेद - ३६५ ।१६

श्री पुरुषोत्तम पुरी) का देशान्तर लिप्ता आदि २ ।३० ।६

खण्ड क्षेप - ० ।७ ।५३ ।५ ।२१

(३) सारणी ३- मध्यम चन्द्र के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।१३ ।१० ।३४ ।५२	१ हजार	७ ।६ ।२१ ।७ ।४४
२	० ।२६ ।२१ ।९ ।४४	२	२ ।१२ ।४२ ।१५ ।२७
३	१ ।९ ।३१ ।४४ ।३६	३	९ ।१९ ।३ ।२३ ।११
४	१ ।२२ ।४२ ।१९ ।२८	४	४ ।२५ ।२४ ।३० ।५५
५	२ ।५ ।५२ ।५४ ।२०	५	० ।१ ।४५ ।३८ ।३८
६	२ ।१९ ।३ ।२९ ।१२	६	७ ।८ ।६ ।४६ ।२२
७	३ ।२ ।१४ ।४ ।४	७	२ ।१४ ।२७ ।५४ ।६
८	३ ।१५ ।२४ ।३८ ।५७	८	९ ।२० ।४९ ।१ ।४९
९	३ ।२८ ।३५ ।१३ ।४९	९	४ ।२७ ।१० ।९ ।३३
१०	४ ।११ ।४५ ।४८ ।४१	१ अयुत	० ।३ ।३१ ।१७ ।१६
२०	८ ।२३ ।३१ ।३७ ।२१	२ (दस हजार)	० ।७ ।२ ।३४ ।३३
३०	१ ।५ ।१७ ।२६ ।२	३	० ।१० ।३३ ।५१ ।४९
४०	५ ।१७ ।३ ।१४ ।४३	४	० ।१४ ।५ ।९ ।५
५०	९ ।२८ ।४९ ।३ ।२३	५	० ।१७ ।३६ ।२६ ।२२
६०	२ ।१० ।३४ ।५२ ।४	६	० ।२१ ।७ ।४३ ।३९
७०	६ ।२२ ।२० ।४० ।४४	७	० ।२४ ।३९ ।० ।५५
८०	११ ।४ ।६ ।२९ ।२५	८	० ।२८ ।१० ।१८ ।११
९०	३ ।१५ ।५२ ।१८ ।६	९	१ ।१ ।४१ ।३५ ।२८
१ सौ	७ ।२७ ।३८ ।६ ।४६	१ लाख	१ ।५ ।१२ ।५२ ।४५
२	३ ।२५ ।१६ ।१३ ।३३	२	२ ।१० ।२५ ।४५ ।३०
३	११ ।२२ ।५४ ।२० ।१९	३	३ ।१५ ।३८ ।३८ ।१४
४	७ ।२० ।३२ ।२७ ।५	४	४ ।२० ।५१ ।३० ।५९
५	३ ।१८ ।१० ।३३ ।५२	५	५ ।२६ ।४ ।२३ ।४४
६	११ ।१५ ।४८ ।४० ।३८	६	७ ।१ ।१७ ।१६ ।२९
७	७ ।१३ ।२६ ।४७ ।२५	७	८ ।६ ।३० ।९ ।१४
८	३ ।११ ।४ ।५४ ।११	८	९ ।११ ।४३ ।१ ।५९
९	११ ।८ ।४३ ।० ।५६	९	१० ।१६ ।५५ ।५४ ।४३

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१ नियुत	११ ।२२ ।८ ।४७ ।२८	१ कोटि	९ ।११ ।२७ ।५४ ।४३
२ (दस	११ ।१४ ।१७ ।३४ ।५७	२	६ ।२२ ।५५ ।४९ ।२६
३ लाख)	११ ।६ ।२६ ।२२ ।२५	३	४ ।४ ।२३ ।४४ ।१०
४	१० ।२८ ।३५ ।९ ।५३	४	१ ।१५ ।५१ ।३८ ।५३
५	१० ।२० ।४३ ।५७ ।२२	५	१० ।२७ ।१९ ।३३ ।३६
६	१० ।१२ ।५२ ।४४ ।५०	६	८ ।८ ।४७ ।२८ ।१९
७	१० ।५ ।१ ।३२ ।१८	७	५ ।२० ।१५ ।२३ ।३
८	९ ।२७ ।१० ।१९ ।४७	८	३ ।१ ।४३ ।१७ ।४६
९	९ ।१९ ।१९ ।७ ।१५	९	० ।१३ ।११ ।१२ ।२९
		१ अर्बुद	९ ।२४ ।३९ ।७ ।१२

द्वापर अन्त में चन्द्र का ध्रुव ० ।० ।० ।० ।०
करण आरम्भ में ,, ० ।३ ।२० ।२९ ।५३
गति लिप्ता आदि ७९० ।३४ ।५२ ।३ ।४९
भुजछेद २७ ।१९
देशान्तर लिप्ता आदि ३३ ।२६ ।४५
खण्ड क्षेप राशि आदि ३ ।१४ ।३१ ।११ ।३७

(४) चतुर्थ सारणी - चन्द्र मन्दोच्च के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि-आदि
१	० ।० ।६ ।४० ।५५	१ हजार	३ ।११ ।२१ ।४८ ।३७
२	० ।० ।१३ ।२१ ।४९	२	७ ।१२ ।४३ ।३६ ।१४
३	० ।० ।२० ।२ ।४४	३	११ ।४ ।५ ।२५ ।५१
४	० ।० ।२९ ।४३ ।३८	४	२ ।२५ ।२७ ।१४ ।२७
५	० ।० ।३३ ।२४ ।३३	५	६ ।१६ ।४९ ।३ ।४
६	० ।० ।४० ।५ ।२७	६	१० ।८ ।१० ।५१ ।४१
७	० ।० ।४६ ।४६ ।२२	७	१ ।२९ ।३२ ।४० ।१८
८	० ।० ।५३ ।२७ ।१६	८	५ ।२० ।५४ ।२८ ।५५
९	० ।१ ।० ।८ ।११	९	९ ।१२ ।१६ ।१७ ।३२
१०	० ।१ ।६ ।४९ ।५	१ अयुत	१ ।३ ।३८ ।६ ।९
२०	० ।२ ।१३ ।३८ ।१०	२ (दस हजार)	२ ।७ ।१६ ।१२ ।१७
३०	० ।३ ।२० ।२७ ।१६	३	३ ।१० ।५४ ।१८ ।२६
४०	० ।४ ।२७ ।१६ ।२१	४	४ ।१४ ।३२ ।२४ ।३५
५०	० ।५ ।३४ ।५ ।२६	५	५ ।१८ ।१० ।३० ।४४
६०	० ।६ ।४० ।५४ ।३१	६	६ ।२१ ।४८ ।३६ ।५१
७०	० ।७ ।४७ ।४३ ।३६	७	७ ।२५ ।२६ ।४३ ।१
८०	० ।८ ।५४ ।३२ ।४१	८	८ ।२९ ।४ ।४९ ।१०
९०	० ।१० ।१ ।२१ ।४७	९	१० ।२ ।४२ ।५५ ।१८
१ सौ	० ।११ ।८ ।१० ।५२	१ लाख	११ ।६ ।२१ ।१ ।२७
२	० ।२२ ।१६ ।२१ ।४३	२	१० ।१२ ।४२ ।२ ।५४
३	१ ।३ ।२४ ।३२ ।३५	३	९ ।१९ ।३ ।४ ।२१
४	१ ।१४ ।३२ ।४३ ।२७	४	८ ।२५ ।२४ ।५ ।४८
५	१ ।२५ ।४० ।५४ ।१८	५	८ ।१ ।४५ ।७ ।१५
६	२ ।६ ।४९ ।५ ।१०	६	७ ।८ ।६ ।८ ।४२
७	२ ।१७ ।५७ ।१६ ।२	७	६ ।१४ ।२७ ।१० ।१०
८	२ ।२९ ।५ ।२६ ।५३	८	५ ।२० ।४८ ।११ ।३७
९	३ ।१० ।१३ ।३७ ।४५	९	४ ।२७ ।९ ।१३ ।४

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१ नियुत	४ ।३ ।३० ।१४ ।३१	१ करोड़	५ ।५ ।२ ।२५ ।८
२ (दस लाख)	८ ।७ ।० ।२९ ।२	२	१० ।१० ।४ ।५० ।१६
३	३ ।१० ।३० ।१३ ।३२	३	३ ।१५ ।७ ।१५ ।२५
४	४ ।१४ ।० ।५८ ।३	४	८ ।२० ।९ ।४० ।३३
५	८ ।१७ ।३१ ।१२ ।३४	५	१ ।२५ ।१२ ।५ ।४१
६	० ।२१ ।१ ।२७ ।५	६	७ ।० ।१४ ।३० ।४९
७	४ ।२४ ।३१ ।४१ ।३६	७	० ।५ ।१६ ।५५ ।५८
८	८ ।२८ ।१ ।५६ ।७	८	५ ।१० ।९ ।२१ ।६
९	१ ।१ ।३२ ।१० ।३७	९	१० ।१५ ।२१ ।४६ ।१४
		१० करोड़	३ ।२० ।२३ ।११ ।२२

चन्द्रमन्दोच्च का द्वापर के अन्त में ध्रुव राशि आदि ४ ।० ।३६ ।० ।० करणाब्द का ध्रुव १० ।२२ ।३४ ।५९ ।४ गति लिप्ता ० ।६ ।४० ।५४ ।३१ ।१ छेद ३२ ।३३ देशान्तर लिप्ता ० ।१६ ।५८

(५) मध्यम मंगल के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।० ।३१ ।१६ ।३०	१ हजार	५ ।१४ ।१ ।४१ ।५३
२	० ।१ ।२ ।५३ ।०	२	१० ।२८ ।३ ।२३ ।४७
३	० ।१ ।३४ ।१९ ।३०	३	५ ।१२ ।५ ।५ ।४०
४	० ।२ ।५ ।४७ ।०	४	९ ।२६ ।६ ।४७ ।३३ ।
५	० ।२ ।३७ ।१२ ।३०	५	३ ।१० ।८ ।२९ ।२६
६	० ।३ ।८ ।३९ ।१	६	८ ।२४ ।१० ।११ ।२०
७	० ।३ ।४० ।५ ।३१	७	२ ।८ ।११ ।५३ ।१३
८	० ।४ ।११ ।३२ ।१	८	७ ।२२ ।१३ ।३५ ।६
९	० ।४ ।४२ ।५८ ।३१	९	१ ।६ ।१५ ।१६ ।५९
१०	० ।५ ।१४ ।२५ ।१	१ अयुत	६ ।२० ।१६ ।५८ ।५३
२०	० ।१० ।२८ ।५० ।२	२ (दस हजार)	१ ।१० ।३३ ।५७ ।४५
३०	० ।१५ ।४३ ।१५ ।३	३	८ ।० ।५० ।५६ ।३८
४०	० ।२० ।५७ ।४० ।५	४	२ ।२१ ।७ ।५५ ।३०
५०	० ।२६ ।१२ ।५ ।६	५	९ ।११ ।२४ ।५४ ।२३
६०	१ ।१ ।२६ ।३० ।७	६	४ ।१ ।४१ ।५३ ।१६
७०	१ ।६ ।४० ।५५ ।८	७	१० ।२१ ।५८ ।५२ ।८
८०	१ ।११ ।५५ ।२० ।९	८	५ ।१२ ।१५ ।५१ ।१
९०	१ ।१७ ।९ ।४५ ।१०	९	० ।२ ।३२ ।४९ ।५४
१ सौ	१ ।२२ ।२४ ।१० ।११	१ लाख	६ ।२२ ।४९ ।४८ ।४६
२	३ ।१४ ।४८ ।२० ।२३	२	१ ।१५ ।३९ ।३७ ।३२
३	५ ।७ ।१२ ।३० ।३४	३	८ ।८ ।२९ ।२६ ।१९
४	६ ।२९ ।३६ ।४० ।४५	४	३ ।१ ।१९ ।१५ ।५
५	८ ।२२ ।० ।५० ।५७	५	९ ।२४ ।९ ।३ ।५१
६	१० ।१४ ।२५ ।१ ।८	६	४ ।१६ ।५८ ।५२ ।३७
७	० ।६ ।४९ ।११ ।१९	७	११ ।९ ।४८ ।४१ ।२३
८	१ ।२९ ।१३ ।२१ ।३१	८	६ ।२ ।३८ ।३० ।९
९	३ ।२१ ।३७ ।३१ ।४२	९	० ।२५ ।२८ ।८ ।५६

दिन	राशि आदि
१ नियुत	७ ।१८ ।१८ ।७ ।४२
२ (दस लाख)	३ ।६ ।३६ ।१५ ।१४
३	१० ।२४ ।५४ ।२३ ।५
४	६ ।१३ ।१२ ।३० ।४७
५	२ ।१ ।३० ।३८ ।२९
६	९ ।१९ ।४८ ।४७ ।११
७	५ ।८ ।६ ।५३ ।५३
८	० ।२६ ।२५ ।१ ।३४
९	८ ।१४ ।४३ ।९ ।१६

दिन	राशि आदि
१ करोड़	४ ।३ ।१ ।१६ ।४८
२	८ ।६ ।२ ।३३ ।५६
३	० ।९ ।३ ।५० ।५४
४	४ ।१२ ।५ ।७ ।५२
५	८ ।१५ ।६ ।२४ ।५०
६	० ।१८ ।७ ।४१ ।४७
७	४ ।२१ ।८ ।५८ ।४५
८	८ ।२४ ।१० ।१५ ।४३
९	० ।२७ ।११ ।३२ ।४१
१० करोड़	५ ।0 ।१२ ।४९ ।३९

मंगल की ध्रुव राशि आदि-

द्वापर अन्त में - ११ ।१४ ।५२ ।४८ ।0

करणाब्द प्रारम्भ में ५ ।१ ।२४ ।१७ ।२५

मंगल की दैनिक गति लिप्ता आदि में - ३१ ।२६ ।३० ।६ ।४८

द्वापर अन्त में मंगल का मन्दोच्च ४ ।६ ।५४ ।0

द्वापर अन्त में मंगल का पात ० ।२८ ।५८ ।४८

करणाब्द में मंगल का मन्दोच्च - ४ ।७ ।१ ।४२ ।१३ पात

० ।२८ ।५१ ।२३ ।४१

मन्द हार ६४५

भुज छेद ६८७

पातहार ६७१

देशान्तर कला आदि १ ।१९ ।४९

(६) बुध शीघ्र के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।४ ।५ ।३२ ।१६	१ हजार	४ ।२ ।१७ ।४८ ।४१
२	० ।८ ।११ ।४ ।३२	२	८ ।२४ ।३५ ।३७ ।२३
३	० ।१२ ।१६ ।३६ ।४८	३	१ ।६ ।५३ ।२६ ।४
४	० ।१६ ।२२ ।९ ।४	४	५ ।९ ।११ ।१४ ।४६
५	० ।२० ।२७ ।४१ ।२१	५	१० ।१ ।२९ ।३ ।२७
६	० ।२४ ।३३ ।१३ ।३७	६	२ ।१३ ।४६ ।५२ ।९
७	० ।२८ ।३८ ।४५ ।५३	७	६ ।२६ ।४ ।४० ।५०
८	१ ।२ ।४४ ।१८ ।९	८	११ ।८ ।२२ ।२९ ।३२
९	१ ।६ ।४९ ।५० ।२५	९	३ ।२० ।४० ।१८ ।१३
१०	१ ।१० ।५५ ।२२ ।४१	१० हजार	८ ।२ ।५८ ।६ ।५५
२०	२ ।२१ ।५० ।४५ ।२२	२०	४ ।५ ।५६ ।१३ ।४९
३०	४ ।.२ ।४६ ।८ ।४	३०	० ।८ ।५४ ।२० ।४४
४०	५ ।१३ ।४१ ।३० ।४५	४०	८ ।११ ।५२ ।२७ ।३९
५०	६ ।२४ ।३६ ।५३ ।२६	५०	४ ।१४ ।५० ।३४ ।३४
६०	८ ।५ ।३२ ।१६ ।७	६०	० ।१७ ।४८ ।४१ ।२८
७०	९ ।१६ ।२७ ।३८ ।४८	७०	८ ।२० ।४६ ।४८ ।२३
८०	१० ।२७ ।२३ ।१ ।३०	८०	४ ।२३ ।४४ ।५५ ।१८
९०	० ।८ ।१८ ।२४ ।११	९०	० ।२६ ।४३ ।२ ।१२
१ सौ	१ ।१९ ।१३ ।४६ ।५२	१ लाख	८ ।२९ ।४१ ।९ ।७
२	३ ।८ ।२७ ।३३ ।४४	२	५ ।२९ ।२२ ।१८ ।१४
३	४ ।२७ ।४१ ।२० ।३६	३	२ ।२९ ।३ ।२७ ।२२
४	६ ।१६ ।५५ ।७ ।२९	४	११ ।२८ ।४४ ।३६ ।२९
५	८ ।६ ।८ ।५४ ।२१	५	८ ।२८ ।२५ ।४५ ।३६
६	९ ।२५ ।२२ ।४१ ।१३	६	५ ।२८ ।६ ।५४ ।४३
७	११ ।१४ ।३६ ।२८ ।५	७	२ ।२७ ।४८ ।३ ।५१
८	१ ।३ ।५० ।१४ ।५७	८	११ ।२७ ।२९ ।१२ ।५८
९	२ ।२३ ।४ ।१ ।४९	९	८ ।२७ ।१० ।२२ ।५

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१०	५ ।२६ ।५१ ।३१ ।१२	१ करोड़	१० ।२८ ।३५ ।१२ ।२
२०	११ ।२३ ।४३ ।२ ।२४	२	९ ।२७ ।१० ।२४ ।४
३०	५ ।२० ।३४ ।३३ ।३७	३	८ ।२५ ।४५ ।३६ ।६
४०	११ ।१७ ।२६ ।४ ।४९	४	७ ।२४ ।२० ।४८ ।८
५०	५ ।१४ ।१७ ।३६ ।१	५	६ ।२२ ।५६ ।० ।१०
६०	११ ।११ ।९ ।७ ।१३	६	५ ।२१ ।३१ ।१२ ।१२
७०	५ ।८ ।० ।३८ ।२५	७	४ ।२० ।६ ।२४ ।१४
८०	११ ।४ ।५२ ।९ ।३८	८	३ ।३ ।१८ ।४१ ।३६ ।१६
९०	५ ।१ ।४३ ।४० ।५०	९	१ ।१७ ।१६ ।४८ ।१८
		१०	१ ।१५ ।५२ ।० ।२०

बुध शीघ्र का द्वापर के अन्त में ध्रुव - १ ।१ ।३५ ।२४ ।०

,, करणाब्द का ध्रुव १० ।१८ ।१४ ।१९ ।२१

शीघ्र बुध की दैनिक गति लिप्ता आदि में - २४५ ।३२ ।१६ ।७ ।१७

द्वापर के अन्त में मन्द ७ ।१५ ।५४ ।० द्वापर अन्त में पात ० ।२९ ।३१ ।१२ ।०

करणाब्द का मन्द ७ ।१६ ।४ ।१० ।१६ करणाब्द का पात

० ।२९ ।१७ ।२८ ।५८

मन्दहार ४८८ पात हार ३६२ छेद ८८

देशान्तर कला आदि - १० ।२३ ।१५

(७) मध्यम गुरू के पदक

<table>
<tr><th>दिन</th><th>राशि आदि</th><th>दिन</th><th>राशि आदि</th></tr>
<tr><td>१</td><td>० |० |४ |५९ |६</td><td>१ हजार</td><td>२ |२३ |४ |५३ |३७</td></tr>
<tr><td>२</td><td>० |० |९ |५८ |११</td><td>२</td><td>५ |६ |१६ |९ |४७ |१४</td></tr>
<tr><td>३</td><td>० |० |१४ |५७ |१६</td><td>३</td><td>८ |९ |१४ |४० |५१</td></tr>
<tr><td>४</td><td>० |० |१९ |५६ |२२</td><td>४</td><td>११ |२ |१९ |३४ |२७</td></tr>
<tr><td>५</td><td>० |० |२४ |५५ |२८</td><td>५</td><td>१ |२५ |२४ |२८ |४</td></tr>
<tr><td>६</td><td>० |० |२९ |५४ |३४</td><td>६</td><td>४ |१८ |२९ |२१ |४१</td></tr>
<tr><td>७</td><td>० |० |३४ |५३ |३९</td><td>७</td><td>७ |११ |३४ |१५ |१८</td></tr>
<tr><td>८</td><td>० |० |३९ |५२ |४५</td><td>८</td><td>१० |४ |३९ |८ |५५</td></tr>
<tr><td>९</td><td>० |० |४४ |५१ |५१</td><td>९</td><td>० |२७ |४४ |२ |३२</td></tr>
<tr><td>१०</td><td>० |० |४९ |५० |५६</td><td>१०</td><td>३ |२० |४८ |५६ |८</td></tr>
<tr><td>२०</td><td>० |१ |३९ |४१ |५२</td><td>२०</td><td>७ |११ |३७ |५२ |१७</td></tr>
<tr><td>३०</td><td>० |२ |२९ ||३२ |४९</td><td>३०</td><td>११ |२ |२६ |४८ |२५</td></tr>
<tr><td>४०</td><td>० |३ |१९ |२३ |४५</td><td>४०</td><td>२ |२३ |१५ |४४ |३३</td></tr>
<tr><td>५०</td><td>० |४ |९ |१४ |४१</td><td>५०</td><td>६ |१४ |४ |४० |४२</td></tr>
<tr><td>६०</td><td>० |४ |५९ |५ |३७</td><td>६०</td><td>१० |४ |५३ |३६ |५०</td></tr>
<tr><td>७०</td><td>० |५ |४८ ||५६ |३३</td><td>७०</td><td>१ |२५ |४२ |३२ |५९</td></tr>
<tr><td>८०</td><td>० |६ |३८ |४७ |२९</td><td>८०</td><td>५ |१६ |३१ |२९ |७</td></tr>
<tr><td>९०</td><td>० |७ |२८ |३८ |२६</td><td>९०</td><td>९ |७ |२० |२५ |१५</td></tr>
<tr><td>१ सौ</td><td>० |८ |१८ |२९ |२२</td><td>१ लाख</td><td>० |२८ |९ |२१ |२४</td></tr>
<tr><td>२</td><td>० |१६ |३६ |५८ |४३</td><td>२</td><td>१ |२६ |१८ |४२ |४७</td></tr>
<tr><td>३</td><td>० |२४ |५५ |२८ |५</td><td>३</td><td>२ |२४ |२८ |४ |११</td></tr>
<tr><td>४</td><td>१ |३ |१३ |५७ |२७</td><td>४</td><td>३ |२२ |३७ |२५ |३५</td></tr>
<tr><td>५</td><td>१ |११ |३२ |२६ |४८</td><td>५</td><td>४ |२० |४६ |४६ |५८</td></tr>
<tr><td>६</td><td>१ |१९ |५० |५६ |०</td><td>६</td><td>५ |१८ |५६ |८ |२२</td></tr>
<tr><td>७</td><td>१ |२८ |९ |२५ |३२</td><td>७</td><td>६ |१७ |५ |२९ |४६</td></tr>
<tr><td>८</td><td>२ |६ |२६ |५४ |५३</td><td>८</td><td>७ |१५ |१४ |५१ |९</td></tr>
<tr><td>९</td><td>२ |१४ |४६ |२४ |१५</td><td>९</td><td>८ |१३ |१४ |१२ |३३</td></tr>
</table>

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१०	९ ।११ ।३३ ।३३ ।५७	१ करोड़	९ ।२५ ।३५ ।३९ ।२५
२०	६ ।२३ ।७ ।७ ।५३	२	७ ।२१ ।११ ।१८ ।५०
३०	४ ।४ ।४० ।४१ ।४९	३	५ ।१६ ।४६ ।५८ ।१६
४०	१ ।१६ ।१४ ।१५ ।४६	४	३ ।१२ ।२२ ।३७ ।४१
५०	१० ।२७ ।४७ ।४९ ।४३	५	१ ।७ ।५८ ।१७ ।६
६०	८ ।९ ।२१ ।२३ ।३९	६	११ ।३ ।३३ ।५६ ।३१
७०	५ ।२० ।५४ ।५७ ।३६	७	८ ।२९ ।९ ।३५ ।५६
८०	३ ।२ ।२८ ।३१ ।३२	८	६ ।२४ ।४५ ।१५ ।२२
९०	० ।१४ ।२ ।५ ।२९	९	४ ।२० ।२० ।५४ ।४७
		१०	२ ।१५ ।५६ ।३४ ।१२

द्वापर अन्त में गुरु का ध्रुव ० ।२२ ।५७ ।० ।०

करणाब्द में गुरु का ध्रुव ० ।३ ।४५ ।१ ।२१

गुरु की दैनिक मध्य गति लिप्ता आदि ४ ।५९ ।५ ।३७ ।१

द्वापर अन्त में गुरू का मन्द ५ ।१६ ।५७ पात २ ।११ ।६

करणाब्द में गुरु का मन्द ५ ।१७ ।१७ ।० ।१५ पात २ ।११ ।३ ।१५ ।९

मन्दहार २४८ पात हार १८१८

छेद ४३३३ देशान्तर कला आदि ० ।१२ ।३९

(८) गुरु मध्य के वैकल्पिक पदक
(२१ वां प्रकाश ७८ वां श्लोक)

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।० ।४ ।५९ ।६	९	२ ।१४ ।४६ ।२६ ।१२
२	० ।० ।९ ।५८ ।११	१ हजार	२ ।२३ ।४ ।५५ ।४७
३	० ।० ।१४ ।५७ ।१७	२	५ ।१६ ।९ ।५१ ।३३
४	० ।० ।१९ ।५६ ।२३	३	८ ।९ ।१४ ।४७ ।२०
५	० ।० ।२४ ।५५ ।२९	४	११ ।२ ।१९ ।४३ ।७
६	० ।० ।२९ ।५४ ।३४	५	१ ।२५ ।२४ ।३८ ।५३
७	० ।० ।३४ ।५३ ।४०	६	४ ।१८ ।२९ ।३४ ।४०
८	० ।० ।३९ ।५२ ।४६	७	७ ।११ ।३४ ।३० ।२७
९	० ।० ।४४ ।५१ ।५२	८	१० ।४ ।३९ ।२६ ।१४
१०	० ।० ।४९ ।५० ।५७	९	० ।२७ ।४४ ।२२ ।०
२०	० ।१ ।३९ ।४१ ।५५	१०	३ ।२० ।४९ ।१७ ।४७
३०	० ।२ ।२९ ।३२ ।५२	२०	७ ।११ ।३८ ।३५ ।३४
४०	० ।३ ।१९ ।२३ ।५०	३०	११ ।२ ।२७ ।५३ ।२१
५०	० ।४ ।९ ।१४ ।४७	४०	२ ।२३ ।१७ ।११ ।८
६०	० ।४ ।५९ ।५ ।४५	५०	६ ।२४ ।६ ।२८ ।५४
७०	० ।५ ।४८ ।५६ ।४२	६०	१० ।४ ।५५ ।४६ ।४१
८०	० ।६ ।३८ ।४७ ।४०	७०	१ ।२५ ।४५ ।४ ।२८
९०	० ।७ ।२८ ।३८ ।३७	८०	५ ।१६ ।३४ ।२२ ।१५
१ सौ	० ।८ ।१८ ।२९ ।३५	९०	९ ।७ ।२३ ।४० ।२०
२	० ।१६ ।३६ ।५९ ।९	१ लाख	० ।२८ ।१२ ।५७ ।४९
३	० ।२४ ।५५ ।२८ ।४४	२	१ ।२६ ।२५ ।५५ ।३८
४	१ ।३ ।१३ ।५८ ।१९	३	२ ।२४ ।३८ ।५३ ।२७
५	१ ।११ ।३२ ।२७ ।५३	४	३ ।२२ ।५१ ।५१ ।१६
६	१ ।१९ ।५० ।५७ ।२८	५	४ ।२१ ।४ ।४९ ।५
७	१ ।२८ ।९ ।२७ ।३	६	५ ।१९ ।१७ ।४६ ।१७
८	२ ।६ ।२७ ।५६ ।३७	७	६ ।१७ ।३० ।४४ ।४३

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
८	७ ।१५ ।४३ ।४२ ।३२	९०	० ।१९ ।२६ ।४३ ।२७
९	८ ।१३ ।५६ ।४० ।२१	१ करोड़	१० ।१ ।३६ ।२१ ।३७
१०	९ ।१२ ।९ ।३८ ।१०	२	८ ।३ ।१२ ।४३ ।१३
२०	६ ।२४ ।१९ ।१६ ।१९	३	६ ।४ ।४९ ।४ ।५०
३०	४ ।६ ।२८ ।५४ ।२९	४	४ ।६ ।२५ ।२६ ।२७
४०	१ ।१८ ।३८ ।३२ ।३९	५	२ ।८ ।१ ।४८ ।३
५०	११ ।० ।४८ ।१० ।४८	६	० ।९ ।३८ ।९ ।४०
६०	८ ।१२ ।५७ ।४८ ।५८	७	१० ।११ ।१४ ।३१ ।१७
७०	५ ।२५ ।७ ।२७ ।४९	८	८ ।१२ ।५० ।५२ ।५३
८०	३ ।७ ।१७ ।५ ।१७	९	६ ।१४ ।२७ ।२४ ।३०
		१० करोड़	४ ।१६ ।३ ।३६ ।७

द्वापर अन्त में गुरु का ध्रुव ० ।२१ ।३६

करणाब्द आरम्भ में गुरू का ध्रुव ० ।३ ।२९ ।३० ।७

गुरु की दैनिक गति लिप्ता आदि ४ ।५९ ।५ ।४४ ।४८

द्वापर के अन्त में मन्द का ध्रुव ५ ।१९ ।२८ ।१२

करणाब्द में गुरु मन्दोच्च का ध्रुव ५ ।१९ ।५१ ।५२ ।५५

हार २१० छेद ४३३३

देशान्तर कला आदि ० ।११ ।४१

(९) शुक्र शीघ्रोच्च के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।१ ।३६ ।७ ।३८	१ हजार	५ ।१२ ।७ ।९ ।५९
२	० ।३ ।२ ।१५ ।१६	२	१० ।२४ ।१४ ।१९ ।५९
३	० ।४ ।४८ ।२२ ।५३	३	४ ।६ ।२१ ।२९ ।५८
४	० ।६ ।२४ ।३० ।३१	४	९ ।१८ ।२८ ।३९ ।५८
५	० ।८ ।० ।३८ ।९	५	३ ।० ।३५ ।४९ ।५७
६	० ।९ ।३६ ।४५ ।४७	६	८ ।१२ ।४२ ।५९ ।५६
७	० ।११ ।१२ ।५३ ।२५	७	१ ।२४ ।५० ।९ ।५६
८	० ।१२ ।४९ ।१ ।२	८	७ ।६ ।५७ ।१९ ।५५
९	० ।१४ ।२५ ।८ ।४०	९	० ।१९ ।४ ।२९ ।५५
१०	० ।१६ ।१ ।१६ ।१८	१०	६ ।१ ।११ ।३९ ।५४
२०	१ ।२ ।२ ।३२ ।३६	२०	० ।२ ।२३ ।१९ ।४८
३०	१ ।१८ ।३ ।४८ ।५४	३०	६ ।३ ।३४ ।५९ ।४२
४०	२ ।४ ।५ ।५ ।१२	४०	० ।४ ।४६ ।३९ ।३६
५०	२ ।२० ।६ ।२१ ।३०	५०	६ ।५ ।५८ ।१९ ।३०
६०	३ ।६ ।७ ।३७ ।४८	६०	० ।७ ।९ ।५९ ।२४
७०	३ ।२२ ।८ ।५४ ।६	७०	६ ।८ ।२१ ।३९ ।१८
८०	४ ।८ ।१० ।१० ।२४	८०	० ।९ ।३३ ।१९ ।१२
९०	४ ।२४ ।११ ।२६ ।४२	९०	६ ।१० ।४४ ।५९ ।६
१ सौ	५ ।१० ।१२ ।४३ ।०	१ लाख	० ।११ ।५६ ।३९ ।०
२	१० ।२० ।२५ ।२६ ।०	२	० ।२३ ।५३ ।१८ ।०
३	४ ।० ।३८ ।९ ।०	३	१ ।५ ।४९ ।५७ ।०
४	९ ।१० ।५० ।५२ ।०	४	१ ।१७ ।४६ ।३७ ।०
५	२ ।२१ ।३ ।३५ ।०	५	५ ।२९ ।४३ ।१५ ।१
६	८ ।१ ।१६ ।१८ ।०	६	२ ।११ ।३९ ।५४ ।१
७	१ ।११ ।२९ ।१ ।०	७	२ ।२३ ।३६ ।३३ ।१
८	६ ।२१ ।४१ ।४४ ।०	८	३ ।५ ।३३ ।१२ ।१
९	१ ।० ।५४ ।२६ ।५९	९	३ ।१७ ।२९ ।५१ ।१

दिन	राशि आदि
१०	३ ।२९ ।३६ ।३० ।१
२०	७ ।२८ ।५३ ।० ।२
३०	११ ।२८ ।१९ ।३० ।४
४०	३ ।२७ ।१२ ।३० ।६
५०	७ ।२७ ।१२ ।३० ।६
६०	११ ।२६ ।३९ ।० ।७
७०	३ ।२६ ।५ ।३० ।८
८०	७ ।२५ ।३२ ।० ।१०
९०	११ ।२४ ।५८ ।३० ।११

दिन	राशि आदि
१ करोड़	३ ।२४ ।२५ ।० ।१२
२	७ ।१८ ।५० ।० ।२४
३	११ ।१३ ।१५ ।० ।३६
४	३ ।७ ।४० ।० ।४
५	७ ।२ ।५ ।१ ।०
६	१० ।२६ ।३० ।१ ।१२
७	२ ।२० ।५५ ।१ ।२४
८	६ ।१५ ।२० ।१ ।३६
९	१० ।९ ।४५ ।१ ।४८
१०	२ ।४ ।१० ।२ ।०

द्वापर के अन्त में शुक्र शीघ्र का ध्रुव १ ।११ ।२४ ।० ।० ।

करणाब्द आरम्भ में शुक्र शीघ्र का ध्रुव ११ ।१३ ।४१ ।४२ ।१२

शुक्र की दैनिक गति लिप्ता आदि ९६ ।७ ।३७ ।४७ ।५८

द्वापरान्त में शुक्र का मन्द २ ।५ ।२५ ।४८ पात १ ।२४ ।२७ ।०

करणाब्द में शुक्र का मन्द २ ।५ ।३९ ।३८ ।२९ पात १ ।२४ ।३ ।३१ ।०

मन्द हार ३५९ पात हार २१२

छेद २२५ देशान्तर कला आदि ४ ।४ ।०

(१०) मध्यम शनि के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।० ।२ ।० ।२७	१ हजार	१ ।३ ।२७ ।२८ ।३७
२	० ।० ।४ ।० ।५४	२	२ ।६ ।५४ ।५७ ।१५
३	० ।० ।६ ।१ ।२१	३	३ ।१० ।२२ ।२५ ।५२
४	० ।० ।८ ।१ ।४८	४	४ ।१३ ।४९ ।५४ ।३०
५	० ।० ।१० ।२ ।१५	५	५ ।१७ ।१७ ।२३ ।७
६	० ।० ।१२ ।२ ।४२	६	६ ।२० ।४४ ।५१ ।४५
७	० ।० ।१४ ।३ ।८	७	७ ।२४ ।१२ ।२० ।२२
८	० ।० ।१६ ।३ ।३५	८	८ ।२७ ।३९ ।४९ ।०
९	० ।० ।१८ ।४ ।२	९	१० ।१ ।७ ।१७ ।३७
१०	० ।० ।२० ।४ ।२९	१०	११ ।४ ।३४ ।४६ ।१५
२०	० ।० ।४० ।८ ।५८	२०	१० ।९ ।९ ।३२ ।२९
३०	० ।१ ।० ।१३ ।२८	३०	९ ।१३ ।४४ ।१८ ।४४
४०	० ।१ ।२० ।१७ ।५७	४०	८ ।१८ ।१९ ।४ ।५९
५५	० ।१ ।४० ।२२ ।२६	५०	७ ।२२ ।५३ ।५१ ।१३
६०	० ।२ ।० ।२६ ।५५	६०	७ ।२७ ।२८ ।३७ ।२८
७०	० ।२ ।२० ।३२ ।२४	७०	६ ।२ ।३ ।२३ ।४३
८०	० ।२ ।४० ।३५ ।५३	८०	५ ।६ ।३८ ।९ ।५८
९०	० ।३ ।० ।४० ।२३	९०	४ ।११ ।१२ ।५६ ।१२
१ सौ	० ।३ ।२० ।४४ ।५२	१ लाख	३ ।१५ ।४७ ।४२ ।२७
२	० ।६ ।४१ ।२९ ।४३	२	७ ।१ ।३५ ।२४ ।५४
३	० ।१० ।२ ।१४ ।३५	३	१० ।१७ ।२३ ।७ ।२१
४	० ।१३ ।२२ ।५९ ।२७	४	२ ।३ ।१० ।४९ ।४८
५	० ।१६ ।४३ ।४४ ।१९	५	५ ।१८ ।५८ ।३२ ।१५
६	० ।२० ।४ ।२९ ।१०	६	९ ।४ ।४६ ।१४ ।४२
७	० ।२३ ।२५ ।१४ ।२	७	० ।२० ।३३ ।५७ ।८
८	० ।२६ ।४५ ।५८ ।५४	८	४ ।६ ।२१ ।३९ ।३७
९	१ ।० ।६ ।४३ ।४६	९	६ ।२२ ।९ ।२२ ।२

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१०	११ ।७ ।५७ ।४ ।२९	१ करोड़	४ ।१९ ।३० ।४४ ।५२
२०	१० ।१५ ।५४ ।८ ।५८	२	९ ।९ ।० ।२९ ।४४
३०	९ ।२३ ।५१ ।१३ ।२८	३	१ ।२८ ।३२ ।१४ ।३६
४०	९ ।१ ।४८ ।१७ ।५७	४	६ ।१८ ।२ ।५९ ।२९
५०	८ ।९ ।४५ ।२२ ।२६	५	११ ।७ ।३३ ।४४ ।२१
६०	७ ।१७ ।४२ ।२६ ।५५	६	३ ।२७ ।४ ।२९ ।१३
७०	६ ।२५ ।३९ ।३१ ।२५	७	८ ।१६ ।३५ ।१४ ।५
८०	६ ।३ ।३६ ।३५ ।५४	८	१ ।६ ।५ ।५८ ।५७
९०	५ ।११ ।३३ ।४० ।२३	९	५ ।२५ ।३६ ।४३ ।४९
		१०	१० ।१५ ।७ ।२८ ।४२

द्वापर के अन्त में शनि का ध्रुव ११ ।० ।५० ।२४ ।०

करणाब्द में शनि का ध्रुव ७ ।१८ ।१२ ।१७ ।२४

शनि की दैनिक गति लिप्ता आदि २ ।० ।२६ ।५५ ।३

द्वापर के अन्त में शनि का मन्द ८ ।९ ।१८ ।० ।०

करणाब्द में शनि का मन्द ८ ।९ ।१९ ।४४ ।१०

द्वापर के अन्त में शनि का पात ३० ।० ।२७ ।० ।०

करणाब्द ३ ।० ।१३ ।२७ ।२४

मन्द हार २८५७ पात हार ३६७

छेद १०७६० देशान्तर कला आदि० ।५ ।६

(११) चन्द्र पात (राहु) के पदक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।० ।३ ।१० ।४८	१ हजार	१ ।२२ ।५९ ।५४ ।३८
२	० ।० ।६ ।२१ ।३५	२	३ ।१५ ।५९ ।४९ ।१६
३	० ।० ।९ ।३२ ।३२	३	५ ।८ ।५९ ।४३ ।५४
४	० ।० ।१२ ।४३ ।११	४	७ ।१ ।५९ ।३८ ।३२
५	० ।० ।१५ ।५३ ।५८	५	८ ।२४ ।५९ ।३३ ।९
६	० ।० ।१९ ।४ ।४६	६	१० ।१७ ।५९ ।२७ ।४७
७	० ।० ।२२ ।१५ ।३४	७	० ।१० ।५९ ।२२ ।२५
८	० ।० ।२५ ।२६ ।२१	८	२ ।३ ।५९ ।१७ ।३
९	० ।० ।२८ ।३७ ।९	९	३ ।२६ ।५९ ।११ ।४१
१०	० ।० ।३१ ।४७ ।५७	१०	५ ।१९ ।५९ ।५४ ।३८
२०	० ।१ ।३ ।३५ ।५४	२०	११ ।९ ।५८ ।१२ ।३८
३०	० ।१ ।३५ ।२३ ।५०	३०	४ ।२९ ।५७ ।१८ ।५७
४०	० ।२ ।७ ।११ ।४७	४०	१० ।१९ ।५६ ।२५ ।१६
५०	० ।२ ।३८ ।५९ ।४४	५०	४ ।९ ।५५ ।३१ ।३५
६०	० ।३ ।१० ।४७ ।४१	६०	९ ।२९ ।५४ ।३७ ।५४
७०	० ।३ ।४२ ।३५ ।३७	७०	३ ।१९ ।५३ ।४४ ।१३
८०	० ।४ ।१४ ।२३ ।३४	८०	९ ।९ ।५२ ।५० ।३१
९०	० ।४ ।४६ ।११ ।३१	९०	२ ।२९ ।५१ ।५६ ।५१
१ सौ	० ।५ ।१७ ।५९ ।२८	१ लाख	८ ।१९ ।५१ ।३ ।१०
२	० ।१० ।३५ ।४८ ।५६	२	५ ।९ ।४२ ।६ ।२०
३	० ।१५ ।५३ ।५८ ।२३	३	१ ।२९ ।३३ ।९ ।३०
४	० ।२१ ।११ ।५७ ।५१	४	१० ।१९ ।२४ ।१२ ।४०
५	० ।२६ ।२९ ।५९ ।१९	५	७ ।९ ।१५ ।१५ ।४९
६	१ ।१ ।४७ ।५६ ।४८	६	३ ।२९ ।६ ।१८ ।५९
७	१ ।७ ।५ ।५६ ।१५	७	० ।१८ ।५७ ।२२ ।९
८	१ ।१२ ।२३ ।५५ ।४२	८	९ ।८ ।४८ ।२५ ।१९
९	१ ।१७ ।४१ ।५५ ।१०	९	५ ।२८ ।३९ ।२८ ।२९

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१०	२ ।१८ ।३० ।३१ ।३९	१ करोड़	२ ।५ ।५ ।१६ ।३०
२०	५ ।७ ।१ ।३ ।१८	२	५ ।१० ।१० ।३३ ।१
३०	७ ।२५ ।३१ ।३४ ।५७	३	६ ।१५ ।१५ ।४९ ।३१
४०	१० ।१४ ।२ ।६ ।३६	४	८ ।२० ।२१ ।६ ।१
५०	१ ।२ ।३२ ।३८ ।१५	५	१० ।२५ ।२६ ।२२ ।३
६०	३ ।.२१ ।३ ।९ ।५४	६	१ ।१० ।३१ ।३९ ।२
७०	६ ।९ ।३३ ।४१ ।३३	७	३ ।५ ।३६ । ५५ ।३२
८०	८ ।२८ ।४ ।१३ ।१२	८	५ ।१० ।४२ ।१२ ।२
९०	११ ।१६ ।३४ ।४४ ।५१	९	७ ।१५ ।५७ ।२८ ।३३
		१०	९ ।२० ।५२ ।४५ ।३

विशेष द्रष्टव्य - इसी प्रकार अरब वर्ष तक मंगल, गुरु और शनि का मध्य तथा बुध शुक्र के शीघ्र की गणना हो सकती है।

द्वापर के अन्त में राहु का ध्रुव ६ ।२१ ।१९ ।४८ ।0

करणाब्द में राहु का ध्रुव ३ ।२१ ।१९ ।१८ ।२८

गति लिप्ता आदि (राहु की दैनिक गति) ३ ।१० ।४७ ।४० ।४०

छेद ६७९३ देशान्तर कला आदि ० ।८ ।४

स्फुटाधिकार के पदक

ग्रह स्फुट करने के लिये खण्डफलों की सारणी प्रथम मन्द के चल केन्द्र गति, उदयास्त केन्द्र, क्षेत्रांश आदि)

(१२) रति के बढ़ते हुए स्थूल मन्द खण्ड

(पञ्चम प्रकाश १९४ श्लोक)

खण्ड	स्थूल फलांश आदि	अन्तर लिप्ता आदि	ऋण गतिफल लिप्ता
०	० |० |०	८ |१६	२ |१०
१	० |८ |१६	८ |१४	२ |१०
२	० |१६ |३०	८ |९	२ |९
३	० |२४ |३९	८ |३	२ |८
४	० |३२ |४२	७ |५४	२ |६
५	० |४० |३६	७ |४४	२ |३
६	० |४८ |२०	७ |३३	२ |०
७	० |५५ |५३	७ |२०	१ |५७
८	१ |३ |१३	७ |३	१ |५३
९	१ |१० |१६	६ |४६	१ |४९
१०	१ |१७ |२	६ |२७	१ |४४
११	१ |२३ |२९	६ |५	१ |३८
१२	१ |२९ |३४	५ |४४	१ |३२
१३	१ |३५ |१८	५ |२१	१ |२६
१४	१ |४० |३९	४ |५५	१ |२०
१५	१ |४५ |३४	४ |३०	१ |१३
१६	१ |५० |४	४ |२	१ |६
१७	१ |५४ |६	३ |३४	० |५८
१८	१ |५७ |४०	३ |४	० |५०
१९	२ |० |४४	२ |३४	० |४२
२०	२ |३ |१८	२ |४	० |३४
२१	२ |५ |२२	१ |३३	० |२६
२२	२ |६ |५५	१ |१	० |१७
२३	२ |७ |५६	० |२८	० |९
२४	२ |८ |२४ (ह्रास क्रम)	० |३	० |०

खण्ड	स्थूल फलांश आदि	अन्तर लिप्ता आदि	ऋण गतिफल लिप्ता
२५	२ ।८ ।२१	० ।३७ (बढ़ना)	० ।९
२६	२ ।७ ।४४	१ ।९	० ।१७
२७	२ ।६ ।३५	१ ।४२	० ।२६
२८	२ ।४ ।५३	२ ।१३	० ।३५
२९	२ ।२ ।४०	२ ।४५	० ।४३
३०	१ ।५९ ।५५	३ ।१८	० ।५१
३१	१ ।५६ ।३७	३ ।४८	० ।५९
३२	१ ।५२ ।४९	४ ।१८	१ ।७
३३	१ ।४८ ।३१	४ ।४७	१ ।१५
३४	१ ।४३ ।४४	५ ।१६	१ ।२२
३५	१ ।३८ ।२८	५ ।४३	१ ।२९
३६	१ ।३२ ।४५	६ ।७	१ ।३६
३७	१ ।२६ ।३८	६ ।३२	१ ।४२
३८	१ ।२० ।६	६ ।५३	१ ।४८
३९	१ ।१३ ।१३	७ ।१५	१ ।५३
४०	१ ।५ ।४८	७ ।३४	१ ।५८
४१	० ।५८ ।२४	७ ।४९	२ ।२
४२	० ।५० ।३५	८ ।२	२ ।६
४३	० ।४२ ।३३	८ ।१६	२ ।९
४४	० ।३४ ।१७	८ ।२५	२ ।१२
४५	० ।२५ ।५२	८ ।३३	२ ।१४
४६	० ।१७ ।१९	८ ।३८	२ ।१६
४७	० ।८ ।४१	८ ।४१	२ ।१७
४८	० ।० ।०	० ।०	२ ।१७

(१३) रवि के सूक्ष्म मन्दफल खण्ड

खण्ड	सूक्ष्म फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	ऋणगति फल लिप्ता
०	० ।० ।०	७ ।२६	१ ।५७
१	० ।७ ।२६	७ ।२५	१ ।५७
२	० ।१४ ।५१	७ ।२०	१ ।५६
३	० ।२२ ।११	७ ।१५	१ ।५५
४	० ।२९ ।२६	७ ।७	१ ।५३
५	० ।३६ ।३३	६ ।५७	१ ।५१

खण्ड	सूक्ष्म फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	ऋणगति फल लिप्ता
६	० ।४३ ।३०	६ ।४८	१ ।४८
७	० ।५० ।१८	६ ।३६	१ ।४५
८	० ।५६ ।५४	६ ।२०	१ ।४२
९	१ ।३ ।१४	६ ।६	१ ।३८
१०	१ ।९ ।२०	५ ।४८	१ ।३३
११	१ ।१५ ।८	५ ।२९	१ ।२८
१२	१ ।२० ।३७	५ ।१०	१ ।२३
१३	१ ।२५ ।४७	४ ।४८	१ ।१८
१४	१ ।३० ।३५	४ ।२६	१ ।१२
१५	१ ।३५ ।१	४ ।३	१ ।६
१६	१ ।३९ ।४	३ ।३७	० ।५९
१७	१ ।४२ ।४१	३ ।१३	० ।५२
१८	१ ।४५ ।५४	२ ।४६	० ।४५
१९	१ ।४८ ।४०	२ ।१८	० ।३८
२०	१ ।५० ।२८	१ ।५१	० ।३१
२१	१ ।५२ ।४९	१ ।२४	० ।२३
२२	१ ।५४ ।१३	० ।५५	० ।१६
२३	१ ।५५ ।८	० ।२५	० ।८
२४	१ ।५५ ।३३ (घटता हुआ)	० ।२	० ।०
२५	१ ।५५ ।३ १	० ।३३ (धन)	० ।८
२६	१ ।५४ ।५८	१ ।३	० ।१६
२७	१ ।५३ ।५५	१ ।३१	० ।२३
२८	१ ।५२ ।२४	२ ।०	० ।३१
२९	१ ।५० ।२४	२ ।२९	० ।३९
३०	१ ।४७ ।५५	२ ।५७	० ।४६
३१	१ ।४४ ।५८	३ ।२६	० ।५३
३२	१ ।४१ ।३२	३ ।५२	१ ।०
३३	१ ।३७ ।४०	४ ।१९	१ ।७
३४	१ ।३३ ।२१	४ ।४४	१ ।१४
३५	१ ।२८ ।३७	५ ।८	१ ।२०
३६	१ ।२३ ।२९	५ ।३१	१ ।२६
३७	१ ।१७ ।५८	५ ।५२	१ ।३२

खण्ड	सूक्ष्म फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	ऋणगति फल लिप्ता
३८	१ ।१२ ।६	६ ।१३	१ ।३७
३९	१ ।५ ।३५	६ ।३०	१ ।४२
४०	० ।५९ ।२३	६ ।५९	१ ।४५
४१	० ।५२ ।३४	७ ।३	१ ।५०
४२	० ।४५ ।३१	७ ।१४	१ ।५३
४३	० ।३८ ।१७	७ ।२५	१ ।५६
४४	० ।३० ।५२	७ ।५३	१ ।५९
४५	० ।२३ ।१७	७ ।४२	२ ।१
४६	० ।१५ ।५३	७ ।४६	२ ।२
४७	० ।७ ।४९	७ ।४९	२ ।३
४८	० ।० ।०	० ।०	२ ।३

रवि की मन्द केन्द्र गति ५९ ।८ ।१०

खण्ड क्षेप राशि आदि ० ।७ ।५३ ।५ ।२१

(१४) चन्द्र के मन्द खण्ड

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	ऋण गतिफल लिप्ता
०	० ।० ।०	१९ ।२३	६७ ।३०
१	० ।१९ ।२३	१९ ।१७	६७ ।२२
२	० ।३८ ।४०	१९ ।८	६६ ।५७
३	० ।५७ ।४८	१८ ।५३	६६ ।१४
४	१ ।१६ ।४१	१८ ।३३	६५ ।१४
५	१ ।३५ ।१४	१८ ।९	६३ ।५९
६	१ ।५३ ।२३	१७ ।४३	६२ ।२७
७	२ ।२२ ।६	१७ ।१५	६० ।३९
८	२ ।२८ ।२१	१६ ।३४	५८ ।३६
९	२ ।४४ ।५५	१५ ।५५	५६ ।१७
१०	३ ।० ।५०	१५ ।१०	५३ ।४४
११	३ ।१६ ।०	१४ ।१९	५० ।५७
१२	३ ।३० ।१९	१३ ।३०	४७ ।५७
१३	३ ।४३ ।४९	१२ ।३८	४४ ।४५
१४	३ ।५६ ।२७	११ ।३७	४१ ।२१
१५	४ ।८ ।४	१० ।३५	३७ ।४६
१६	४ ।१८ ।३९	९ ।३०	३४ ।१

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	ऋण गतिफल लिप्ता
१७	४ ।२८ ।९९	८ ।२३	३० ।७
१८	४ ।३६ ।३२	७ ।१०	२६ ।५
१९	४ ।४३ ।४२	५ ।५९	२१ ।५६
२०	४ ।४९ ।४१	४ ।४६	१७ ।४१
२१	४ ।५४ ।२७	३ ।३३	१३ ।२१
२२	४ ।५८ ।०	२ ।१४	८ ।५६
२३	५ ।० ।१४	० ।५६	४ ।२९
२४	५ ।१ ।१० (घटना शुरू)	० ।१८	० ।०
२५	५ ।० ।५२	१ ।३८ (बढ़ना)	४ ।३०
२६	४ ।५९ ।१४	२ ।५७	८ ।५९
२७	४ ।५६ ।१७	४ ।१२	१३ ।२६
२८	४ ।५२ ।५	५ ।२७	१७ ।५०
२९	४ ।४६ ।३८	६ ।४३	२२ ।१०
३०	४ ।३९ ।५५	७ ।५५	२६ ।२४
३१	४ ।३२ ।०	९ ।११	३० ।३२
३२	४ ।२२ ।४९	१० ।२०	३४ ।३४
३३	४ ।१२ ।२९	११ ।२४	३८ ।२७
३४	४ ।१ ।५	१२ ।३२	४२ ।१०
३५	३ ।४८ ।३४	१३ ।२८	४५ ।४२
३६	३ ।३५ ।६	१४ ।२२	४९ ।१
३७	३ ।२० ।४४	१५ ।१७	५२ ।११
३८	३ ।५ ।१७	१६ ।७	५५ ।७
३९	२ ।४९ ।२०	१६ ।५१	५७ ।४८
४०	२ ।३२ ।२९	१७ ।३५	६० ।१४
४१	२ ।१४ ।५४	१८ ।९	६२ ।२४
४२	१ ।५६ ।४५	१८ ।१७	६४ ।१९
४३	१ ।३८ ।८	१९ ।४	६५ ।५६
४४	१ ।१९ ।४	१९ ।२६	६७ ।१६
४५	० ।५९ ।३८	१९ ।४४	६८ ।१९
४६	० ।३९ ।५४	१९ ।५४	६९ ।५

खंण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	ऋण गतिफल लिप्ता
४७	० ।२० ।०	२० ।०	६९ ।३२
४८	० ।० ।०	० ।०	६९ ।४१

चन्द्र की मन्द केन्द्र गति ७८३ ।५४
खण्ड क्षेप ३ ।१४ ।३१ ।११ ।३७
सूर्य से पश्चिम उदयांश ११
पूर्व में अस्त अंश ३४९

(१५) मंगल के परोच्च खण्ड कर्क से आरम्भ कर ३ राशि में)

खण्ड	फल लिप्ता आदि	अन्तर लिप्ता आदि
०	० ।०	२९ ।२७
१	२९ ।२७	२९ ।१९
२	४८ ।४६	२९ ।४
३	८७ ।५०	२८ ।४०
४	११६ ।३०	२८ ।८
५	१४४ ।३८	२७ ।२९
६	१७२ ।७	२६ ।५०
७	१९८ ।५७	२६ ।३
८	२२५ ।०	२५ ।०
९	२५० ।०	२३ ।५७
१०	२७३ ।५७	२२ ।४७
११	२९६ ।४४	२१ ।२८
१२	३१८ ।१२	२० ।९
१३	३३८ ।२१	१८ ।४३
१४	३५७ ।४	१७ ।९
१५	३७४ ।१३	१५ ।३४
१६	३९८ ।४७	१३ ।५३
१७	४०३ ।४०	१२ ।१०
१८	४१५ ।५०	१० ।२१
१९	४२६ ।११	८ ।३०
२०	४४३ ।४१	६ ।४१
२१	४४१ ।२२	४ ।५०
२२	४४६ ।१२	२ ।५३

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	ऋण गतिफल लिप्ता
२३		४४९ ।१५	० ।५५
२४		४५० ।०	० ।०

(१६) मंगल के मन्द खण्ड

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	कोटिफल
०	० ।० ।०	४३ ।२१	६५८ ।५७
१	० ।४३ ।२१	४३ ।३७	६५८ ।५७
२	२ ।२६ ।५८	४३ ।४२	६५८ ।५७
३	२ ।१० ।४०	४३ ।३३	६५६ ।३३
४	२ ।५४ ।१३	४३ ।९	६५० ।३
५	३ ।३७ ।२२	४२ ।४५	६४० ।३०
६	४ ।२० ।७	४२ ।७	६२८ ।३
७	५ ।२ ।१४	४१ ।१८	६ ।१२ ।३१
८	५ ।४३ ।३२	३९ ।५८	५९४ ।१३
९	६ ।२३ ।३०	३८ ।३६	५७२ ।५९
१०	७ ।२ ।६	३७ ।२	५४९ ।१
११	७ ।३९ ।८	३५ ।२५	५२२ ।१६
१२	८ ।१४ ।३३	२९ ।४२	४९२ ।५७
१३	८ ।४४ ।१५	२७ ।७	४५८ ।१
१४	९ ।११ ।२२	२४ ।१८	४२१ ।१३
१५	९ ।३५ ।४०	२१ ।३१	३८२ ।४८
१६	९ ।५७ ।११	१८ ।३३	३४३ ।०
१७	१० ।१५ ।४४	१५ ।४४	३०१ ।५३
१८	१० ।३१ ।२८	१२ ।३७	२५९ ।५८
१९	१० ।४४ ।५	९ ।४१	२१७ ।२२
२०	१० ।५३ ।४६	६ ।३९	१७४ ।१३
२१	११ ।० ।२५	२ ।२२	१३० ।४०
२२	११ ।२ ।४७	० ।०	८६ ।५८
२३	११ ।२ ।४७	० ।०	४३ ।२१
२४	११ ।२ ।४७	० ।०	० ।०
२५	११ ।२ ।४७	० ।०	४३ ।३५
२६	११ ।२ ।४७	० ।०	८७ ।२५
२७	११ ।२ ।४७	० ।०	१३२ ।४७

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	कोटिफल
२८	११ ।२ ।४७ (ह्रास)	२ ।.३	१ ७७ ।५०
२९	११ ।० ।४४	९ ।५३	२२२ ।५७
३०	१० ।५० ।५१	१३ ।२५	२६७ ।५२
३१	१० ।३७ ।२६	१६ ।३८	३१२ ।२७
३२	१० ।२० ।४८	१९ ।५६	३५६ ।२७
३३	१० ।० ।५२	२३ ।८	३९९ ।२५
३४	९ ।३७ ।४४	२६ ।१८	४४१ ।२१
३५	९ ।११ ।२६	२९ ।३१	४८१ ।३२
३६	८ ।४१ ।५५	३८ ।५७	५१९ ।५८
३७	८ ।२ ।५८	४० ।४९	५४९ ।४
३८	७ ।२२ ।९	४१ ।५७	५७५ ।२
३९	६ ।४० ।१२	४३ ।१०	५९७ ।५१
४०	५ ।५७ ।२	४४ ।१२	६१७ ।३१
४१	४ ।१२ ।५०	४४ ।४६	६३३ ।५६
४२	४ ।२८ ।४	४५ ।७	६४७ ।१०
४३	३ ।४२ ।५७	४५ ।७	६५६ ।५६
४४	२ ।५७ ।५०	४५ ।७	६५८ ।५७
४५	२ ।१२ ।४३	४४ ।४८	६५८ ।५७
४६	१ ।२७ ।५५	४४ ।२०	६५८ ।५७
४७	० ।४३ ।३५	४३ ।३५	६५८ ।५७
४८	० ।० ।०	० ।०	६५८ ।५७

मन्दभुक्ति ० ।०

मन्द केन्द्र भुक्ति ३१ ।२६

शीघ्र भुक्ति (रवि मध्य भुक्ति) ५९ ।८ शीघ्रकेन्द्र भुक्ति २७ ।४२

(१७) मंगल के शीघ्र खण्ड

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण
०	० ।० ।०	८९ ।४६	५७१० ।५४
१	१ ।२९ ।४६	८९ ।३१	५७०८ ।५०
२	२ ।५९ ।७	८९ ।३०	५७०० ।३४
३	४ ।२८ ।३७	८९ ।१९	५६८६ ।२०
४	५ ।५७ ।५६	८९ ।०	५६६६ ।२१
५	७ ।२६ ।४७	८८ ।५०	५६४० ।५४

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण
६	८।५५।४७	८८।४९	५६०९।३४
७	१०।२४।२८	८८।४०	५५७२।१७
८	११।५३।८	८८।१२	५५२९।२८
९	१३।२१।२०	८७।३८	५४८०।४६
१०	१४।४८।५८	८७।२४	५४२४।४९
११	१६।१६।२२	८६।३५	५३६६।५७
१२	१७।४२।५७	८५।५१	५३०१।४५
१३	१९।८।४८	८६।२२	५२३१।२२
१४	२०।३५।१०	८३।५४	५१५४।६
१५	२१।५९।४	८४।२४	५०७४।४७
१६	२३।२३।२८	८२।१६	४९८७।२
१७	२४।५४।४४	८०।४७	४८९७।३१
१८	२६।६।३१	८०।२४	४८०१।४२
१९	२७।२६।५५	७८।०	४७०१।२२
२०	२८।४४।५५	७६।२२	४५९६।५१
२१	३०।१।१७	७६।३६	४४८६।३६
२२	३१।१७।५३	७३।३७	४३७२।४२
२३	३२।३१।३०	७०।५	४२५४।११
२४	३३।४१।३५	६८।१९	४१३१।५८
२५	३४।४९।५४	६४।६	४००४।३१
२६	३५।५४।०	५९।४५	३८७४।१
२७	३६।५३।४५	५६।१९	३७३९।५३
२८	३७।५०।४	५३।५	३६०२।५९
२९	३८।४३।९	४७।१०	३४६३।३२
३०	३९।३०।१९	४०।५१	३३२१।४४
३१	४०।११।१०	३४।४	३१७२।१५
३२	४०।४५।१४	२५।४७	३०३०।४४
३३	४१।११।१	१७।२४	२८८३।०
३४	४१।२८।२५	६।०	२७३४।१७
३५	४१।३४।२५ (ह्रास)	६।५०	२५८४।५१
३६	४१।२७।३५	२१।७	२४३५।४१
३७	४१।६।२८	४०।४७	२२८६।२२

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण
३८	४० ।२५ ।४१	६४ ।३९	२१४० ।१
३९	३९ ।२१ ।२	८९ ।८	१९९६ ।१
४०	३७ ।५१ ।५४	१२२ ।८	१८५५ ।३९
४१	३५ ।४९ ।४६	१६१ ।३६	१७२० ।४०
४२	३३ ।८ ।१०	२०६ ।१४	१५९३ ।२१
४३	२९ ।४१ ।५६	२५६ ।३७	२४६७ ।३७
४४	२५ ।२५ ।१९	३१२ ।४० वक्री आरम्भ)	१३७३ ।२
४५	२० ।१२ ।३९	३६७ ।६	१२८६ ।४
४६	१४ ।५ ।३३	४१० ।३४	१२१९ ।५२
४७	७ ।१४ ।५९	४३४ ।५९	११७८ ।३२
४८	० ।० ।०	० ।०	११६५ ।६

वक्र केन्द्र अंश १६३, वक्री के बाद ऋतु केन्द्र १९७ पश्चिम में अस्त केन्द्र ३३२, पूर्व में उदय केन्द्र २८, सूर्य से अस्त या उदय अंश १६

(१८) बुध के मन्द शीघ्र के परस्पर परोच्च खण्ड

खण्ड	फल लिप्ता	अन्तर लिप्ता	गति लिप्ता
०	० ।०	४४ ।३०	४८ ।३४
१	४४ ।३०	४८ ।१८	४८ ।२८
२	८८ ।४८	४३ ।५५	४८ ।९
३	१३२ ।४३	४३ ।१९	४७ ।३८
४	१७६ ।२	४२ ।२८	४६ ।५५
५	२१८ ।३०	४१ ।३६	४६ ।०
६	२६० ।६	४० ।३२	४४ ।५३
७	३०० ।३८	३९ ।२२	४३ ।३४
८	३४० ।०	३७ ।४७	४२ ।४
९	३७७ ।४७	३६ ।११	४० ।३०
१०	४१३ ।५८	३४ ।२५	३८ ।३२
११	४४८ ।२३	३२ ।२७	३६ ।३१
१२	४८० ।५०	३० ।२७	३४ ।२०
१३	५११ ।१७	२८ ।१७	३२ ।१
१४	५३९ ।३४	२५ ।५५	२९ ।३४
१५	५६५ ।२९	२३ ।३२	२६ ।५९
१६	५८९ ।१	२० ।५८	२४ ।१७

खण्ड	फल लिप्ता	अन्तर लिप्ता	गति लिप्ता
१७	६०९ ।५९	१८ ।२४	२१ ।२८
१८	६२८ ।२३	१५ ।३७	१८ ।३६
१९	६४४ ।०	१२ ।५२	१५ ।३७
२०	६५६ ।५२	१० ।५	१२ ।३४
२१	६६६ ।५७	७ ।१९	९ ।२९
२२	६७४ ।१६	४ ।२१	६ ।२१
२३	६७८ ।३७	१ ।२३	३ ।११
२४	६८० ।०	० ।०	० ।०

(१९) बुध के मन्द खण्ड

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता आदि	कोटिफल
०	० ।० ।०	१६ ।३७	२५७ ।५१
१	० ।१६ ।३७	१६ ।१	२५३ ।२१
२	० ।३२ ।३८	१५ ।२२	२४७ ।४७
३	० ।४८ ।०	१४ ।४०	२४१ ।११
४	१ ।२ ।४०	१३ ।५५	२३३ ।५१
५	१ ।१६ ।३५	१३ ।९	२२५ ।४०
६	१ ।२५ ।४४	१२ ।२२	२१६ ।४८
७	१ ।४२ ।६	११ ।३७	२०७ ।१०
८	१ ।५३ ।४३	१० ।४७	१९७ ।१
९	२ ।४ ।३०	१० ।०	१८६ ।२२
१०	२ ।१४ ।३०	९ ।५	१५७ ।१८
११	२ ।२३ ।३५	८ ।२१	१६३ ।४३
१२	२ ।३१ ।५६	११ ।४७	१५१ ।५६
१३	२ ।४३ ।४३	११ ।३५	१४३ ।४५
१४	२ ।५५ ।१८	११ ।४४	१३४ ।३०
१५	३ ।६ ।२२	१० ।३९	१२४ ।३०
१६	३ ।१७ ।१	१० ।९	११३ ।४३
१७	३ ।२७ ।१०	९ ।३८	१०२ ।६
१८	३ ।३६ ।४८	८ ।५२	८९ ।४४
१९	३ ।४५ ।४०	८ ।१४	७६ ।३५
२०	३ ।५३ ।५४	७ ।२२	६२ ।४०
२१	४ ।१ ।१६	६ ।३७	४८ ।०

खण्ड	फलांश आदि	अन्तर लिप्ता आदि	कोटिफल
२२	४ ।७ ।५३	५ ।३६	३२ ।३८
२३	४ ।१३ ।२९	४ ।३१	१६ ।१७
२४	४ ।१८ ।०	० ।०	० ।०

मन्द भुक्ति ० ।० ।०, शीघ्र भुक्ति २४५ ।३२

मन्द केन्द्र भुक्ति (मध्यम रवि) ५९ ।८, शीघ्र केन्द्र भुक्ति १८६ ।२४

(२०) बुध के शीघ्र खण्ड

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
०	० ।० ।०	६२ ।४३	४७६५ ।२७
१	१ ।२ ।४३	६२ ।३९	४७६४ ।११
२	२ ।५ ।२२	६२ ।२८	४७५८ ।४२
३	३ ।७ ।५०	६२ ।१५	४७४८ ।५६
४	४ ।१० ।५	६१ ।५७	४७३५ ।१६
५	४ ।१२ ।२	६१ ।२३	४७१७ ।२८
६	६ ।१३ ।२५	६० ।५९	४६९५ ।४४
७	७ ।१४ ।२४	६० ।४५	४६६९ ।५३
८	८ ।१५ ।९	५९ ।५२	४६४० ।२
९	९ ।१५ ।१	५९ ।०	४६०६ ।१०
१०	१० ।१४ ।१	५७ ।५२	४५६८ ।४०
११	११ ।११ ।५३	५७ ।१३	४५२७ ।८
१२	१२ ।९ ।६	५६ ।४	४४८१ ।४७
१३	१३ ।५ ।१०	५४ ।३७	४४३३ ।६
१४	१३ ।५९ ।४७	५२ ।४८	४३८० ।४६
१५	१४ ।५२ ।३५	५१ ।५३	४३२४ ।५४
१६	१५ ।४४ ।२८	५० ।२	४२६५ ।४६
१७	१६ ।३४ ।३०	४७ ।४९	४२०० ।१०
१८	१७ ।२२ ।१९	४५ ।२३	४१३७ ।३७
१९	१८ ।७ ।४२	४२ ।५७	४०६९ ।२६
२०	१८ ।५० ।३९	४१ ।८	३९९८ ।१६
२१	१९ ।३१ ।४२	३८ ।१५	३९२४ ।२६
२२	२० ।१० ।२	३४ ।५३	३८४८ ।९
२३	२० ।४४ ।५५	३१ ।१५	३७६९ ।३३
२४	२१ ।१६ ।१०	२७ ।४४	३६८८ ।४९

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
२५	२१ ।४३ ।५४	२३ ।२९	३६०६ ।२४
२६	२२ ।७ ।२३	१८ ।५६	३५२२ ।२३
२७	२२ ।२६ ।१९	१४ ।२५	३४३७ ।१
२८	२२ ।४० ।४४	९ ।२२	३३५० ।५२
२९	२२ ।५० ।६	३ ।१८	३२६३ ।५०
३०	२२ ।५३ ।२४ (ह्रास)	२ ।४८	३१७६ ।४३
३१	२२ ।५० ।३६	९ ।३६	३०८९ ।१६
३२	२२ ।४१ ।०	१७ ।१	३००२ ।३
३३	२२ ।२३ ।५९	२४ ।२९	२९१५ ।५१
३४	२१ ।५९ ।३०	३३ ।११	२८३० ।५६
३५	२१ ।२६ ।१९	४२ ।१९	२७५७ ।४५
३६	२० ।४४ ।०	५१ ।५७	२६६७ ।३
३७	१९ ।५२ ।२३	६२ ।१६	२५८९ ।५
३८	१८ ।५० ।७	७१ ।४९	२५१४ ।३८
३९	१७ ।३८ ।१८	८२ ।२२	२४४४ ।३३
४०	१६ ।१५ ।५६	९३ ।३९	२३७९ ।११
४१	१४ ।४२ ।१७	१०३ ।०	२३१९ ।२२
४२	१२ ।५९ ।१७	११३ ।२	२२६५ ।५३
४३	११ ।६ ।१२	१२१ ।९	२२ ।१९ ।३२
४४	९ ।५ ।६	१२९ ।२१	२१८० ।३७
४५	६ ।५५ ।४५	१३५ ।५	२१४९ ।५३
४६	४ ।४० ।४०	१३९ ।२०	२१२७ ।३४
४७	२ ।२१ ।२०	१४१ ।२०	२११४ ।२४
४८	० ।० ।०	० ।०	२११० ।३३

चल केन्द्र १४६, ऋजुकेन्द्र २१४

पूर्व में अस्त होने का केन्द्र ३१० पश्चिम उदय का केन्द्र ५० पश्चिम में अस्त का केन्द्र १५९ पूर्व उदय का केन्द्र २०१ सूर्य से अस्त का केन्द्र-१२

(२१) बुध शीघ्र खण्ड के वैकल्पिक मान

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
०	० ।० ।०	६१ ।४	४७१७ ।४२
१	१ ।१ ।४	६१ ।१	४७१६ ।२८
२	२ ।२ ।५	६० ।४९	४७११ ।८

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
३	३ ।२ ।५४	६० ।३५	४७०१ ।४०
४	४ ।३ ।२९	६० ।१९	४६८८ ।२३
५	५ ।३ ।४८	५९ ।४५	४६७१ ।३
६	६ ।३ ।३३	५९ ।२०	४६४९ ।५५
७	७ ।२ ।५३	५८ ।५९	४६२४ ।४५
८	८ ।१ ।५२	५८ ।१४	४५९५ ।४३
९	९ ।० ।६	५७ ।२१	४५६२ ।४४
१०	९ ।५७ ।२७	५६ ।१२	४५२६ ।१७
११	१० ।५३ ।३९	५५ ।१८	४४८५ ।५२
१२	११ ।४८ ।५७	५४ ।२४	४४४१ ।४४
१३	१२ ।४३ ।२१	५३ ।०	४३९४ ।२४
१४	१३ ।३६ ।२१	५१ ।५	४३४३ ।१३
१५	१४ ।२७ ।२६	४९ ।४४	४२८९ ।११
१६	१५ ।१७ ।१०	४८ ।२०	४२३१ ।४२
१७	१६ ।५ ।३०	४६ ।७	४१७० ।५३
१८	१६ ।५१ ।३७	४३ ।४३	४१०७ ।११
१९	१७ ।३५ ।२०	४१ ।७	४०४० ।५७
२०	१८ ।१६ ।२७	३८ ।४६	३९७१ ।५२
२१	१८ ।५५ ।१३	३५ ।३५	३९०० ।१३
२२	१९ ।३० ।४८	३४ ।६	३८२८ ।४७
२३	२० ।४ ।५४	२९ ।३४	३७५० ।०
२४	२० ।३४ ।२८	२६ ।२	३६७१ ।४७
२५	२१ ।० ।३०	२१ ।४६	३५९१ ।५८
२६	२१ ।२२ ।१६	१७ ।२४	३५१० ।३७
२७	२१ ।३९ ।४०	१२ ।३६	३४२८ ।५
२८	२१ ।५२ ।१६	७ ।३५	३३४४ ।४३
२९	२१ ।५९ ।५१	१ ।४९	३२६० ।५०
३०	२२ ।१ ।४० (ह्रास)	४ ।३	३१७६ ।४५
३१	२१ ।५७ ।३७	१० ।३४	३०९२ ।२
३२	२१ ।४७ ।३	१७ ।४६	३००८ ।३१
३३	२१ ।२९ ।१७	२५ ।१२	२९२५ ।३८
३४	२१ ।४ ।५	३३ ।४०	२८४४ ।३

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
३५	२० ।३० ।२५	४२ ।२४	२७६४ ।१९
३६	१९ ।४८ ।१	५१ ।१४	२६८७ ।२
३७	१८ ।५६ ।४७	६० ।१०	२६१२ ।२९
३८	१७ ।५६ ।३७	७० ।७	२५४१ ।२५
३९	१६ ।४६ ।३०	८० ।५	२४७४ ।३९
४०	१५ ।२६ ।२५	८९ ।३६	२४१२ ।२६
४१	१३ ।५६ ।४९	९७ ।२९	२३५५ ।३८
४२	१२ ।१९ ।२०	१०९ ।७	२३०४ ।५६
४३	१० ।३० ।१७	११५ ।२२	२२६१ ।५
४४	८ ।३४ ।५५	१२२ ।२६	२२२४ ।१७
४५	६ ।३२ ।२९	१२७ ।४६	२१९५ ।१८
४६	४ ।२४ ।४३	१३१ ।२८	२१७४ ।१७
४७	२ ।१३ ।१५	१३३ ।१५	२१६१ ।४९
४८	० ।० ।०	० ।०	२१५८ ।१८

(२२) गुरु के मन्द खण्ड

	फल लिप्ता	अन्तर लिप्ता	कोटिफल लिप्ता
०	० ।० ।०	२१ ।३३	३२९ ।२९
१	१ ।२१ ।३३	२१ ।२८	३२८ ।४८
२	० ।४३ ।१	२१ ।१७	३२४ ।४१
३	१ ।४ ।१८	२१ ।०	३२३ ।९
४	१ ।२५ ।१८	२० ।३५	३१८ ।१६
५	१ ।४५ ।५३	२० ।८	३१२ ।२
६	२ ।६ ।१	१९ ।३९	३०४ ।२७
७	२ ।२५ ।४०	१९ ।४	२९५ ।३३
८	२ ।४४ ।४४	१८ ।१९	२८५ ।२४
९	३ ।३ ।३	१७ ।३१	२७३ ।५९
१०	३ ।२० ।३४	१६ ।४१	२६१ ।२६
११	३ ।३७ ।१५	१५ ।४५	२४७ ।४३
१२	३ ।५३ ।०	१४ ।४९	२३२ ।५८
१३	४ ।७ ।४९	१३ ।४७	२१७ ।१५
१४	४ ।२१ ।३६	१२ ।३६	२०० ।३४
१५	४ ।३४ ।१२	११ ।२८	१८३ ।३

	फल लिप्ता	अन्तर लिप्ता	कोटिफल लिप्ता
* १६	४ ।४५ ।४०	१० ।१२	१६४ ।४४
१७	४ ।५५ ।५२	८ ।५६	१४५ ।४४
१८	५ ।४ ।४८	७ ।३७	१२६ ।१
१९	५ ।१२ ।२५	६ ।१५	१०५ ।५३
२०	५ ।१८ ।४०	४ ।५५	८५ ।१८
२१	५ ।२३ ।३५	३ ।३३	६४ ।१८
२२	५ ।२७ ।८	२ ।८	४३ ।१
२३	५ ।२९ ।१६	० ।४०	२१ ।३३
२४	५ ।२९ ।५६	० ।०	० ।०

मन्द भुक्ति ।० ।, शीघ्र भुक्ति (मध्य रवि) ५९ ।८,
मन्द केन्द्र भुक्ति ४ ।५९, शीघ्र केन्द्र भुक्ति ५४ ।९

(२३) गुरु के शीघ्र खण्ड

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण लिप्ता
०	० ।० ।०	३६ ।३७	४१०६ ।३०
१	० ।३६ ।३७	३६ ।२६	४१०४ ।४४
२	१ ।१३ ।३	३६ ।१२	४१०० ।३२
३	१ ।४९ ।१५	३५ ।५१	४०९३ ।५१
४	२ ।२५ ।६	३५ ।२४	४०८४ ।५५
५	३ ।० ।३०	३४ ।४९	४०७३ ।५२
६	३ ।३५ ।१९	३४ ।२५	४०६० ।२०
७	४ ।० ।४४	३३ ।५३	४०४४ ।२९
८	४ ।४३ ।३७	३२ ।५८	४०२६ ।३७
९	५ ।१६ ।३५	३२ ।३	४००६ ।३२
१०	५ ।४८ ।३८	३१ ।६	३९८४ ।१४
११	६ ।१९ ।४४	३० ।४	३९६० ।०
१२	६ ।४९ ।४८	२८ ।५०	३९३३ ।५४
१३	७ ।१८ ।३८	२७ ।४३	३९०५ ।५२
१४	७ ।४६ ।२१	२६ ।२७	३८७५ ।५७
१५	८ ।१२ ।४८	२४ ।५९	३८४४ ।२५
१६	८ ।३७ ।४७	२३ ।२०	३८११ ।१६
१७	९ ।१ ।७	२१ ।४६	३७७६ ।२६
१८	९ ।२२ ।५३	१९ ।५२	३७४० ।२२

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण लिप्ता
१९	९ ।४२ ।४५	१७ ।४४	३७०३ ।०
२०	१० ।० ।२९	१५ ।५३	३६६४ ।२४
२१	१० ।१६ ।२२	१३ ।५६	३६२४ ।४५
२२	१० ।३० ।१८	११ ।२६	३५८४ ।१०
२३	१० ।४१ ।४४	९ ।७	३५४२ ।४२
२४	१० ।५० ।५१	६ ।४४	३५०० ।३५
२५	१० ।५७ ।३५	४ ।११	३४५७ ।५८
२६	११ ।१ ।४६	१ ।११	३४१५ ।२
२७	११ ।२ ।५७ (ह्रास)	१ ।१५	३३७१ ।५५
२८	११ ।१ ।३२	४ ।२१	३३२८ ।४९
२९	१० ।५७ ।११	७ ।१७	३२८५ ।५७
३०	१० ।४९ ।५४	१० ।४१	३२४३ ।२८
३१	१० ।३९ ।१३	१३ ।४२	३२०१ ।२१
३२	१० ।२५ ।३१	१७ ।४	३१६० ।४०
३३	१० ।८ ।२८	२० ।२४	३११९ ।४६
३४	९ ।४८ ।३	२३ ।४२	३०८० ।३८
३५	९ ।२४ ।२१	२७ ।५	३०४२ ।४९
३६	८ ।५७ ।१६	३० ।३१	३००६ ।४०
३७	८ ।२६ ।४५	३३ ।४५	२९७२ ।२३
३८	७ ।५३ ।०	३६ ।४३	२९४० ।२
३९	७ ।१६ ।१७	३९ ।४०	२९०९ ।५२
४०	६ ।३६ ।३७	४२ ।४३	२८८२ ।१५
४१	५ ।५३ ।५४	४५ ।९	२८५७ ।१९
४२	५ ।८ ।४५	४७ ।२७	२८३५ ।४
४३	४ ।२१ ।१८	४९ ।३७	२८१५ ।५३
४४	३ ।३१ ।४१	५१ ।२२	२८०० ।२
४५	२ ।४० ।२९	५२ ।३८	२७८६ ।१४
४६	१ ।४७ ।५१	५३ ।३८	२७७७ ।४६
४७	० ।५४ ।१३	५४ ।१३	२७७२ ।२
४८	० ।० ।०	० ।०	२७६९ ।३०

वक्र केन्द्र १२६, वक्र गति के बाद ऋजु केन्द्र २३४, पश्चिम में अस्त केन्द्र ३४६, पूर्व में उदय केन्द्र १४, सूर्य द्वारा अस्त केन्द्र १०

(२४) शुक्र के मन्द खण्ड

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	ऋण गतिफल लिप्ता
०	० ।० ।०	७ ।२५	११४ ।३६
१	० ।७ ।२५	७ ।१३	११३ ।६
२	० ।१४ ।३८	७ ।१	१११ ।६
३	० ।२१ ।३९	६ ।४४	१०८ ।४९
४	० ।२८ ।२३	६ ।२७	१०५ ।५६
५	० ।३४ ।५०	६ ।१२	१०२ ।३९
६	० ।४१ ।२	५ ।५८	९९ ।८
७	० ।४६ ।५६	५ ।३५	९५ ।१४
८	० ।५२ ।३१	५ ।१४	९१ ।०
९	० ।५७ ।५४	४ ।५७	८६ ।२६
१०	१ ।२ ।४२	४ ।३५	८१ ।४३
११	१ ।७ ।१७	४ ।११	७६ ।४३
१२	१ ।११ ।२८	३ ।५६	७१ ।२८
१३	१ ।१५ ।२४	३ ।३२	६६ ।७
१४	१ ।१८ ।५६	३ ।८	६० ।३४
१५	१ ।२१ ।२४	२ ।५२	५४ ।४९
१६	१ ।२४ ।५६	२ ।२७	४९ ।१
१७	१ ।२७ ।२३	२ ।११	४३ ।४
१८	१ ।२९ ।३४	१ ।४७	३५ ।५
१९	१ ।३१ ।२१	१ ।३१	३१ ।०
२०	१ ।३२ ।५२	१ ।७	२४ ।५३
२१	१ ।३३ ।५९	० ।५२	१८ ।४२
२२	१ ।३४ ।५१	० ।२७	१२ ।३०
२३	१ ।३५ ।१८	० ।१२	६ ।१५
२४	१ ।३५ ।३०	० ।०	० ।०

मन्द भुक्ति ० ।० मन्द केन्द्र भुक्ति (मध्य रवि)
५९ ।८ शीघ्र भुक्ति ९६ ।८ शीघ्र केन्द्र भुक्ति ३७ ।०

(२५) शुक्र के वैकल्पिक मन्द खण्ड

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	कोटिफल
०	० ।० ।०	६ ।५६	१०७ ।२६
१	० ।६ ।५६	६ ।४३	१०५ ।४७
२	० ।१३ ।३९	६ ।३१	१०३ ।४१
३	० ।२० ।१०	६ ।१२	१०१ ।१९
४	० ।२६ ।२२	५ ।५८	९८ ।२४
५	० ।३२ ।२०	५ ।३६	९५ ।१६
६	० ।३७ ।५६	५ ।२१	९१ ।३८
७	० ।४३ ।१७	५ ।१	८७ ।४८
८	० ।४८ ।१८	४ ।४५	८३ ।४१
९	० ।५३ ।३	४ ।२५	७९ ।२५
१०	० ।५७ ।२८	४ ।२	७४ ।२४
११	१ ।१ ।३०	३ ।४७	७० ।८
१२	१ ।५ ।१७	३ ।२५	६५ ।१७
१३	१ ।८ ।४२	३ ।२	६० ।१५
१४	१ ।११ ।४४	२ ।४७	५५ ।२
१५	१ ।१४ ।३१	२ ।२५	४९ ।४७
१६	१ ।१६ ।५६	२ ।१०	४४ ।२४
१७	१ ।१९ ।६	१ ।४८	३८ ।५९
१८	१ ।२० ।५४	१ ।३३	३३ ।२९
१९	१ ।२२ ।२७	१ ।२१	२७ ।५९
२०	१ ।२३ ।४८	० ।५८	२२ ।२७
२१	१ ।२४ ।४६	० ।३७	१६ ।५२
२२	१ ।२५ ।२३	० ।२३	११ ।१५
२३	१ ।२५ ।४६	० ।११	५ ।३७
२४	१ ।२५ ।५७	० ।०	० ।०

(२६) शुक्र के शीघ्र खण्ड

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण लिप्ता
०	० ।० ।०	९४ ।३७	५९३० ।३३
१	१ ।३४ ।३७	९४ ।३२	५९२८ ।२२
२	३ ।९ ।९	९४ ।३५	५९१९ ।४६
३	४ ।४३ ।४४	९४ ।१३	५९०४ ।३८

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण लिप्ता
४	६ ।१७ ।५७	१४ ।१२	५८८३ ।४६
५	७ ।५२ ।९	१४ ।४	५८५६ ।३८
६	९ ।२६ ।१३	१३ ।४४	५८८३ ।३०
७	१० ।५९ ।५७	१४ ।१४	५७८४ ।३
८	१२ ।३४ ।११	१३ ।२१	५७३८ ।४१
९	१४ ।७ ।३२	१३ ।६	५६८७ ।३
१०	१५ ।५० ।३८	१३ ।०	५६२९ ।५८
११	१७ ।१३ ।३८	११ ।३९	५५६६ ।२८
१२	१८ ।४५ ।१७	१२ ।३५	५४९६ ।५९
१३	२० ।१७ ।५२	११ ।५	५४२२ ।२४
१४	२१ ।४८ ।५७	१० ।३७	५३४२ ।२४
१५	२३ ।१९ ।३४	८९ ।५१	५२५५ ।५९
१६	२४ ।४९ ।२५	८८ ।१	५१६४ ।३७
१७	२६ ।१७ ।१६	८८ ।२७	५०६७ ।३३
१८	२७ ।४५ ।५३	८५ ।५७	४९६५ ।२९
१९	२९ ।११ ।५०	८५ ।२१	४८५८ ।४८
२०	३० ।३७ ।११	८४ ।१९	४७४६ ।८
२१	३२ ।१ ।३०	८२ ।१४	६४३० ।४
२२	३३ ।२३ ।४४	८१ ।१६	४५०८ ।०
२३	३४ ।४५ ।०	७९ ।०	४३८२ ।३७
२४	३६ ।४ ।०	७६ ।५६	४२५२ ।६
२५	३७ ।१९ ।५६	७५ ।१२	४११७ ।४४
२६	३८ ।३५ ।८	७१ ।३९	३९७९ ।१८
२७	३९ ।४६ ।४७	६७ ।२०	३८३६ ।५६
२८	४० ।५४ ।७	६५ ।१	३६९१ ।१४
२९	४१ ।५९ ।८	६० ।४४	३५४२ ।४३
३०	४२ ।५९ ।५२	५४ ।५२	३३९१ ।२
३१	४३ ।५४ ।४४	४८ ।५५	३२३६ ।१९
३२	४४ ।४३ ।३९	४२ ।३६	३०७८ ।३८
३३	४५ ।२६ ।१५	३५ ।२०	२९१९ ।११
३४	४६ ।१ ।३५	२४ ।२०	२७५७ ।५४
३५	४६ ।२५ ।५५	१२ ।२०	२५९५ ।१८

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण लिप्ता
३६	४६ ।३८ ।१५ (ह्रास)	१ ।३	२४३१ ।५९
३७	४६ ।३७ ।१२	१९ ।३३	२२६८ ।१५
३८	४६ ।१७ ।३९	४३ ।१७	२१०५ ।३
३९	४५ ।३४ ।२२	६८ ।५८	१९४३ ।४१
४०	४४ ।२५ ।२४	१०५ ।२६	१७८४ ।२५
४१	४२ ।३९ ।५८	१४७ ।४७	१६२९ ।२५
४२	४० ।१२ ।११	२०६ ।५६	१४७९ ।३९
४३	३६ ।४५ ।१५	२७५ ।१४	१३४० ।५२
४४	३२ ।१० ।१	३६० ।१	१२१३ ।५२
४५	२६ ।१० ।०	४५१ ।४	११०४ ।२९
४६	१८ ।३८ ।५६	४३४ ।५	१०१८ ।३९
४७	९ ।४४ ।५१	५८४ ।५१	९६३ ।४७
४८	० ।० ।०	० ।०	९४५ ।२७

वक्र केन्द्र १६७ वक्र के बाद ऋजु केन्द्र १९३ पूर्व में अस्त का केन्द्र ३३६ पश्चिम में उदय का केन्द्र २४ पश्चिम अस्त केन्द्र १७६ पूर्व उदय का केन्द्र १८३ सूर्य के कारण पूर्व अस्त या पश्चिम उदय का केन्द्र ९ सूर्य के कारण पश्चिम अस्त या पूर्व उदय का केन्द्र ७

(२७) शुक्र के वैकल्पिक शीघ्र खण्ड

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
०	० ।० ।०	९४ ।२५	५९२१ ।०
१	१ ।३४ ।२५	९४ ।१९	५९१८ ।४९
२	३ ।८ ।४४	९४ ।२२	५९१० ।१४
३	४ ।४३ ।६	९४ ।९	५८९५ ।११
४	६ ।१७ ।१५	९३ ।५०	५८७४ ।१९
५	७ ।५१ ।५	९३ ।५१	५८४७ ।१६
६	९ ।२४ ।५६	९३ ।२२	५८१४ ।२२
७	१० ।५८ ।२८	९३ ।५९	५७७४ ।५१
८	१२ ।३२ ।२७	९३ ।६	५७२९ ।३४
९	१४ ।५ ।३३	९२ ।५५	५६७८ ।३
१०	१५ ।३८ ।२८	९२ ।३८	५६२० ।५८
११	१७ ।११ ।१६	९१ ।२३	५५५७ ।४०

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
१२	१८ ।४२ ।३९	९१ ।१८	५४८८ ।२७
१३	२० ।१४ ।५७	९० ।५६	५४१४ ।४
१४	२१ ।४५ ।५३	९० ।१४	५३३३ ।५४
१५	२३ ।१६ ।७	८९ ।३७	५२४७ ।५९
१६	२४ ।४५ ।४४	८७ ।४४	५१५६ ।५१
१७	२६ ।१३ ।२८	८८ ।९	५०५९ ।५८
१८	२७ ।४१ ।३७	८५ ।४४	४९५८ ।१०
१९	२९ ।७ ।२१	८४ ।३६	४९५१ ।४३
२०	३० ।३१ ।५७	८४ ।२४	४७४० ।२
२१	३१ ।५६ ।१९	८१ ।४७	४६२३ ।३२
२२	३३ ।१८ ।६	८० ।५७	४५०२ ।२७
२३	३४ ।३९ ।३	७८ ।४४	४३७६ ।४२
२४	३५ ।५७ ।४७	७५ ।३८	४२४६ ।२९
२५	३७ ।१३ ।२५	७४ ।४०	४११२ ।२८
२६	३८ ।२८ ।५	७१ ।११	३९७४ ।२२
२७	३९ ।३९ ।२६	६६ ।५४	३८३२ ।२५
२८	४० ।४६ ।१०	६४ ।१५	३६८७ ।१३
२९	४१ ।५० ।२५	६० ।१७	३५३८ ।५८
३०	४२ ।५० ।४२	५४ ।३५	३३८७ ।४८
३१	४३ ।४५ ।१७	४८ ।१६	३२३३ ।१९
३२	४४ ।३३ ।३३	४२ ।२७	३०७६ ।१४
३३	४५ ।१५ ।५६	३३ ।२८	२९१६ ।३४
३४	४५ ।४९ ।२४	२३ ।३७	२७५६ ।३५
३५	४६ ।१३ ।१	११ ।३८	२५९४ ।२८
३६	४६ ।२८ ।३९ (ह्रास)	२ ।१९	२४३१ ।४४
३७	४६ ।२२ ।२०	२० ।४२	२२६८ ।५१
३८	४६ ।१ ।३८	४४ ।८	२१०६ ।१८
३९	४५ ।१७ ।३०	७० ।५८	१९४५ ।२५
४०	४४ ।६ ।३२	१०४ ।५४	१७८७ ।३
४१	४२ ।२१ ।३८	१५० ।१४	१६३२ ।४२
४२	३९ ।५२ ।२४	२०६ ।३	१४८४ ।४४
४३	३६ ।२५ ।२१	२७५ ।७	१३४६ ।२०

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चलकर्ण लिप्ता
४४	३१ ।५० ।१४	३५७ ।५९	१२२० ।२६
४५	२५ ।५२ ।१५	४४७ ।१७	११२२ ।७
४६	१८ ।२४ ।५८	५२८ ।२	१०२७ ।१६
४७	९ ।२६ ।५६	५७६ ।५६	९७३ ।५
४८	० ।० ।०	० ।०	९५५ ।०

(२८) शनि के परोच्च खण्ड

खण्ड	फल लिप्ता	अन्तर लिप्ता	गति लिप्ता
०	० ।०	१९ ।३८	० ।१०
१	१९ ।३८	१९ ।३३	० ।१०
२	३९ ।११	१९ ।२२	० ।१०
३	५८ ।३३	१९ ।७	० ।१०
४	७७ ।४०	१८ ।४५	० ।१०
५	९७ ।२५	१८ ।२०	० ।१०
६	११४ ।४५	१७ ।५३	० ।१०
७	१३२ ।३८	१७ ।२२	० ।९
८	१५० ।०	१६ ।४०	० ।९
९	१६६ ।४०	१५ ।५८	० ।९
१०	१८२ ।३८	१५ ।११	० ।८
११	१९७ ।४९	१४ ।१९	० ।८
१२	२१२ ।८	१३ ।२६	० ।७
१३	२२५ ।३५	१२ ।२९	० ।७
१४	२३८ ।३	११ ।२६	० ।६
१५	२४९ ।२९	१० ।२३	० ।६
१६	२५९ ।५२	९ ।१५	० ।५
१७	२६९ ।७	८ ।७	० ।४
१८	२७७ ।१४	६ ।५३	० ।४
१९	२८४ ।७	५ ।४०	० ।४
२०	२८९ ।४७	४ ।२७	० ।२
२१	२९४ ।१४	३ ।१४	० ।२
२२	२९७ ।२८	१ ।५५	० ।१२
२३	२९९ ।२३	० ।३७	० ।०
२४	३०० ।०	० ।०	० ।०

(२९) शनि का मन्द खण्ड

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	कोटिफल
०	० ।० ।०	२४ ।२२	३७२ ।२७
१	० ।२४ ।२२	२४ ।१६	३७१ ।४१
२	० ।४८ ।३८	२४ ।३	३६९ ।१८
३	१ ।१२ ।४१	२३ ।४४	३६५ ।१८
४	१ ।३६ ।२५	२३ ।१७	३५९ ।४६
५	१ ।५९ ।४२	२२ ।४५	३५२ ।४४
६	२ ।२२ ।२७	२२ ।१३	३४४ ।१०
७	२ ।४४ ।४०	२१ ।३३	३३४ ।६
८	३ ।६ ।१३	२० ।४२	३२० ।७
९	३ ।२६ ।५५	१९ ।५०	३०९ ।४३
१०	३ ।४६ ।४५	१८ ।५६	२९५ ।३२
११	४ ।५ ।४१	१७ ।५१	२८० ।२
१२	४ ।३३ ।३२	१६ ।४५	२६३ ।२२
१३	४ ।४० ।१७	१५ ।३४	२४५ ।३५
१४	४ ।५५ ।५१	१४ ।१५	२२६ ।४४
१५	५ ।१० ।६	१२ ।५७	२०६ ।५५
१६	५ ।२३ ।३	११ ।३२	१८६ ।१३
१७	५ ।३४ ।३५	१० ।७	१६४ ।४०
१८	५ ।४४ ।४२	८ ।३६	१४२ ।२७
१९	५ ।५३ ।१८	७ ।५	११९ ।४२
२०	६ ।० ।२३	५ ।३३	९६ ।२५
२१	६ ।५ ।५६	४ ।१	७२ ।४१
२२	६ ।९ ।५७	२ ।२४	४८ ।३८
२३	६ ।१२ ।२१	० ।४५	२४ ।२२
२४	६ ।१३ ।६	० ।०	० ।०

मन्द भुक्ति ० ।० ।० मन्द केन्द्र भुक्ति २ ।०

शीघ्र भुक्ति ५९ ।८ शीघ्र केन्द्र भुक्ति ५७ ।८

(रवि मध्य भुक्ति)

(३०) शनि के शीघ्र खण्ड

खण्ड	फलंश	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण लिप्ता
०	० ।० ।०	२१ ।५८	३८१० ।२७
१	० ।२१ ।५८	२१ ।४८	३८०९ ।८
२	० ।४३ ।४७	२१ ।३६	३८०६ ।२२
३	१ ।५ ।२३	२१ ।१९	३८०२ ।७
४	१ ।२६ ।४२	२१ ।१	३७९६ ।३१
५	१ ।४७ ।४३	२० ।३२	३७८९ ।४४
६	२ ।८ ।१५	२० ।७	३७८१ ।२०
७	२ ।२८ ।२२	१९ ।४१	३७७१ ।४६
८	२ ।४८ ।३	१९ ।२	३७६० ।५९
९	३ ।७ ।५	१८ ।१८	३७४९ ।५४
१०	३ ।२५ ।२३	१७ ।३९	३७३५ ।३२
११	३ ।४३ ।२	१६ ।५९	३७२१ ।५
१२	४ ।० ।१	१६ ।५	३७०५ ।४०
१३	४ ।१६ ।६	१५ ।१०	३६८९ ।६
१४	४ ।३१ ।१६	१४ ।१५	३६७१ ।३१
१५	४ ।४५ ।३१	१३ ।१६	३६५३ ।८
१६	४ ।५८ ।४७	१२ ।७	३६३३ ।४८
१७	५ ।१० ।५४	११ ।८	३६१३ ।३८
१८	५ ।२२ ।२	९ ।४३	३५९२ ।५२
१९	५ ।३१ ।४५	८ ।३६	३५७० ।२५
२०	५ ।४० ।२१	७ ।१८	३५४९ ।२५
२१	५ ।४७ ।३९	६ ।९	३५२६ ।५३
२२	५ ।५३ ।४८	४ ।३१	३५०३ ।५८
२३	५ ।५८ ।१९	३ ।११	३४८० ।३९
२४	६ ।१ ।३०	१ ।४६	३४५७ ।६
२५	६ ।३ ।१६	० ।२१	३४३३ ।३४
२६	६ ।३ ।३७ (ह्रास)	१ ।२७	३४०९ ।३८
२७	६ ।२ ।१०	२ ।४९	३३८५ ।५५
२८	५ ।५९ ।२१	४ ।२६	३३६२ ।१९

खण्ड	फलांश	अन्तर लिप्ता	चल कर्ण लिप्ता
२९	५ ।५४ ।५५	५ ।५५	३३३८ ।५९
३०	५ ।४९ ।०	७ ।४६	३३१५ ।५८
३१	५ ।४१ ।१४	९ ।१३	३२९३ ।२१
३२	५ ।३२ ।१	१० ।५५	३२७१ ।१०
३३	५ ।२१ ।६	१२ ।३१	३२४९ ।४०
३४	५ ।८ ।३५	१४ ।१	३२२८ ।५५
३५	४ ।५४ ।३४	१५ ।३१	३२०८ ।५५
३६	४ ।३९ ।३	१७ ।१४	३१८९ ।१५
३७	४ ।२१ ।४९	१८ ।३४	३१७१ ।५७
३८	४ ।७ ।१५	१९ ।५०	३१५५ ।२
३९	३ ।४३ ।२५	२१ ।१०	३१३९ ।१७
४०	३ ।२२ ।१५	२२ ।२६	३१२४ ।५६
४१	२ ।५९ ।४९	२३ ।२४	३११२ ।१
४२	२ ।३६ ।२५	२४ ।२०	३१०० ।२५
४३	२ ।१२ ।५	२५ ।१७	३०९० ।२५
४४	१ ।४६ ।४८	२५ ।५७	३०८१ ।१०
४५	१ ।२० ।५१	२६ ।३४	३०७५ ।२५
४६	० ।५४ ।१७	२७ ।०	३०७० ।२०
४७	० ।२७ ।१७	२७ ।७७	३०६७ ।३
४८	० ।० ।०	० ।०	३०६५ ।३३

वक्र केन्द्र ११५ ऋजु केन्द्र (वक्र गति के बाद) २४५ पश्चिम में अस्त का केन्द्र ३४३ पूर्व में उदय का केन्द्र १७ सूर्य से अस्त या उदय का अंश-१४

(३१) नक्षत्र ध्रुव षष्ठ प्रकाश १५७ श्लोक

नक्षत्र संख्या	स्थूल ध्रुव कला	सूक्ष्म ध्रुव राशि आदि
१	८००	० ।१३ ।१० ।३४ ।५२
२	१६००	० ।१९ ।४५ ।५२ ।१८
३	२४००	१ ।२ ।५६ ।२७ ।१०
४	३२००	१ ।२२ ।४२ ।१९ ।२८
५	४०००	२ ।५ ।५२ ।५४ ।२०
६	४८००	२ ।१२ ।२८ ।११ ।४६

नक्षत्र संख्या	स्थूल ध्रुव कला	सूक्ष्म ध्रुव राशि आदि
७	५६००	३ ।२ ।२४ ।४ ।४
८	६४००	३ ।२५ ।२४ ।३८ ।५७
९	७२००	३ ।२१ ।५९ ।५६ ।२३
१०	८०००	४ ।५ ।२० ।३१ ।२५
११	८८००	४ ।२८ ।२२ ।६ ।७
१२	९६००	५ ।८ ।६ ।५८ ।२५
१३	१०४००	५ ।२१ ।२७ ।३३ ।२७
१४	११२००	६ ।४ ।२८ ।८ ।९
१५	१२०००	६ ।११ ।३ ।२५ ।३५
१६	१२८००	७ ।० ।४९ ।२७ ।५३
१७	१३६००	७ ।१३ ।५९ ।५२ ।४५
१८	१४४००	७ ।२० ।३५ ।१० ।११
१९	१५२००	८ ।३ ।४५ ।४५ ।३
२०	१६०००	८ ।१६ ।५६ ।१० ।५५
२१	१६८००	९ ।६ ।४२ ।१२ ।१३
२२	१६८०४	९ ।१० ।५६ ।३० ।४८
२३	१७६००	९ ।२४ ।७ ।५ ।४०
२४	१८४००	१० ।७ ।१७ ।४० ।३२
२५	१९२००	१० ।१३ ।५२ ।५७ ।५८
२६	२००००	१० ।२७ ।३ ।३२ ।५०
२७	२०८००	११ ।१६ ।४९ ।२५ ।८
२८	२१६००	१२ ।० ।० ।०

(३२) क्रान्ति पात के पदक षष्ठ प्रकाश १७८ श्लोक

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१	० ।० ।० ।० ।३२	१ हजार	० ।० ।८ ।४५ ।४८
२	० ।० ।० ।१ ।३	२	० ।० ।१७ ।३१ ।३५
३	० ।० ।० ।१ ।३५	३	० ।० ।२६ ।१७ ।२३
४	० ।० ।० ।२ ।६	४	० ।० ।३५ ।३ ।११
५	० ।० ।० ।२ ।३८	५	० ।० ।४३ ।४८ ।५८
६	० ।० ।० ।३ ।९	६	० ।० ।५२ ।३४ ।५६
७	० ।० ।० ।३ ।४१	७	० ।१ ।१ ।२० ।३४
८	० ।० ।० ।४ ।१२	८	० ।१ ।१० ।६ ।२१
९	० ।० ।० ।४ ।४४	९	० ।१ ।१८ ।५२ ।९
१०	० ।० ।० ।५ ।१५	१०	० ।१ ।२७ ।३६ ।५७
११	० ।० ।० ।१७ ।२०	२०	० ।२ ।५५ ।१५ ।५३
३०	० ।० ।० ।१५ ।४६	३०	० ।४ ।२२ ।५३ ।५०
४०	० ।० ।० ।२१ ।४२	४०	० ।५ ।५० ।३१ ।४७
५०	० ।० ।० ।२६ ।१७	५०	० ।७ ।१८ ।९ ।४३
६०	० ।० ।० ।३१ ।३३	६०	० ।८ ।५५ ।४७ ।४०
७०	० ।० ।० ।३६ ।४८	७०	० ।१० ।१३ ।२५ ।३६
८०	० ।० ।० ।४२ ।४	८०	० ।११ ।४१ ।३ ।३३
९०	० ।० ।० ।४७ ।१९	९०	० ।१३ ।८ ।४१ ।३०
१ सौ	० ।० ।० ।५२ ।३५	१ लाख	० ।१४ ।३६ ।१९ ।२६
२	० ।० ।१ ।४५ ।१०	२	० ।२९ ।१२ ।३८ ।५३
३	० ।० ।१ ।३७ ।४४	३	१ ।३३ ।४८ ।५८ ।१९
४	० ।० ।३ ।३० ।१९	४	१ ।२८ ।२५ ।१७ ।४५
५	० ।० ।४ ।२२ ।५४	५	२ ।१३ ।१ ।३७ ।११
६	० ।० ।५ ।१५ ।२९	६	२ ।२७ ।३७ ।५६ ।३८
७	० ।० ।६ ।८ ।३	७	३ ।१२ ।१४ ।१६ ।४
८	० ।० ।७ ।० ।३८	८	३ ।२६ ।५० ।३५ ।३०
९	० ।० ।७ ।५३ ।१३	९	४ ।११ ।२६ ।५४ ।५६

दिन	राशि आदि	दिन	राशि आदि
१०	४ ।२६ ।३ ।१४ ।२३	१ करोड़	० ।२० ।३२ ।३३ ।४६
२०	९ ।२२ ।६ ।२८ ।४१	२	१ ।११ ।४ ।४७ ।३१
३०	२ ।१८ ।९ ।४३ ।८	३	२ ।१ ।३७ ।११ ।१७
४०	७ ।१४ ।१२ ।५७ ।३०	४	२ ।२२ ।९ ।३५ ।३
५०	० ।१० ।१६ ।११ ।५३	५	३ ।१२ ।४१ ।५८ ।४८
६०	५ ।६ ।१९ ।२६ ।१५	६	४ ।३ ।१४ ।२२ ।३४
७०	१० ।२ ।२२ ।४० ।४८	७	४ ।२३ ।४६ ।४६ ।२०
८०	२ ।२८ ।२५ ।५५ ।१	८	५ ।१४ ।१९ ।१० ।६
९०	७ ।२४ ।२९ ।९ ।२३	९	६ ।४ ।५१ ।३३ ।५१
		१०	६ ।२५ ।२३ ।५७ ।३७

क्रान्ति पात का चन्द्र शुद्ध द्वापर के अन्त में ध्रुव ० ।११ ।४२ करणाब्द ध्रुव राशि आदि ३ ।१६ ।३३ ।४७ ।२७ ।४० गति लिप्ताआदि ० ।० ।३१ ।३२ ।५१ ।३५ चलांश ध्रुव २२ ।१ ।५१ ।४५ ।४२ दैनिक गति (परा में) ९ ।२८

(३३) सायन सूर्य क्रान्ति आदि के पदक षष्ठ प्रकाश १६० श्लोक

सायन सूर्य के भुज खण्ड	क्रान्ति कला	अपने अहो रात्र का अर्धकर्ण	उतकल मध्य के चरप्राण	श्री पुरु- षोत्तम के चर प्राण	निरक्षोदय के प्राण	उदयान्तर के प्राण
१	८९ ।३८	३४३८	३३ ।१५	३२ ।१५	२०६ ।२७	१८ ।३३
२	१७८ ।५३	३४३३	६६ ।२६	६४ ।२४	४१३ ।१६	३६ ।४४
३	२६७ ।३०	३४२८	९९ ।२५	९६ ।२२	६२० ।३१	५४ ।२९
४	३५५ ।१०	३४२०	१३२ ।१२	१२८ ।९	८२८ ।४३	७१ ।१७
५	४४१ ।११	३४१५	१६४ ।३५	१५९ ।३३	१०३९ ।१४	८५ ।४६
६	५२५ ।५४	३३९८	१९६ ।३४	१९० ।३३	१२४८ ।२५	१०१ ।३५
७	६०८ ।४०	३३८४	२२८ ।९	२२१ ।९	१४६१ ।६	११३ ।५४
८	६८९ ।१३	३३६९	२५९ ।१९	२५१ ।२३	१६७५ ।२३	१२४ ।३७
९	७६७ ।२३	३३५३	२८९ ।३६	२८० ।४३	१८९० ।४७	१३४ ।१३
१०	८४२ ।१७	३३३५	३१९ ।२५	३०९ ।२५	२१०९ ।३४	१४० ।२६
११	९१३ ।४८	३३१७	३४७ ।४२	३३७ ।३	२३३० ।४	१४४ ।५६
१२	९८२ ।९	३२९९	३७५ ।५७	३६३ ।२८	२५५२ ।२४	१४७ ।३६
१३	१०४६ ।२०	३२८०	४०१ ।२	३८८ ।४५	२७७८ ।३७	१४६ ।१४
१४	११०५ ।५८	३२६२	४२५ ।४१	४१२ ।३९	३००७ ।३५	१४३ ।२५
१५	११६१ ।२६	३२४४	४४८ ।३८	४३४ ।५३	३२३७ ।१५	१३७ ।४५
१६	१२१२ ।१४	३२२७	४७० ।०	४५५ ।३६	३४७० ।५४	१२९ ।६
१७	१२५७ ।२८	३२११	४८९ ।२१	४७४ ।२१	३७०६ ।४६	११८ ।१४
१८	१२९७ ।१३	३१९७	५०६ ।३६	४९१ ।५	३९८५ ।२४	१०४ ।३६
१९	१३३० ।५४	३१८४	५२१ ।२१	५०५ ।२३	४१८४ ।४३	९० ।१७
२०	१३५८ ।५०	३१७३	५३३ ।४४	५१७ ।२३	४४२३ ।१३	७६ ।४७
२१	१३८१ ।९	३१६५	५४३ ।२३	५२६ ।४४	४६६८ ।३६	५६ ।२४
२२	१३९७ ।१९	३१५८	५५० ।३७	५३३ ।४५	४९१३ ।२३	३६ ।३७
२३	१४०६ ।५८	३१५४	५५४ ।५९	५३७ ।५९	५१६१ ।४२	१३ ।१८
२४	१४१० ।०	३१५३	५५६ ।१५	५३९ ।१३	५४००	० ।०

(३४) प्राचीन तथा ग्रन्थकार द्वारा दृक् सिद्ध मान

पूर्व आचार्यों के मत से	उतकल मध्य का मान	दृक् सिद्ध पुरुषोत्तम क्षेत्र में
पलभा	४ ।२७	४ ।१९
अक्षकर्ण	१२ ।४७ ।५४ ।४४	१२ ।४५ ।१०
अक्षज्या	११९५ ।२३	११६३ ।४४
अक्षांश	२० ।२१ ।५०	१९ ।४८
लम्बज्या	३२२३ ।३०	३२३५ ।४
लम्बांश	६९ ।३८ ।१०	७० ।१२
प्राग् देशान्तर	१८४	२००
पूर्व आचार्यों के मत से	उतकल मध्य का मान	दृक् सिद्ध पुरुषोत्तम क्षेत्र में
उत्तर देशान्तर	२८४	२७६ ।३०
स्फुट भू परिधि	४७१२ ।३५	४७२९ ।२९
देशान्तर नाड़ी	२ ।२० ।३४	२ ।३२ ।१४

(३५) चन्द्र का विक्षेप खण्ड आठवां प्रकाश ३७ वां श्लोक

चन्द्र पात अन्तर का भुज खण्ड	विक्षेप अंश आदि	अन्तर लिप्ता आदि	कोटिफल
०	० ।० ।०	१९ ।१५	२९४ ।२
१	० ।१९ ।१५	१९ ।९	२९३ ।२६
२	० ।३८ ।२४	१९ ।५	२९१ ।३४
३	० ।५७ ।२९	१८ ।४९	२८८ ।२४
४	१ ।१६ ।१८	१८ ।३८	२८४ ।२
५	१ ।३४ ।५६	१८ ।१३	२७८ ।२८
६	१ ।५३ ।९	१८ ।१	२७१ ।४३
७	२ ।११ ।१०	१७ ।२९	२६३ ।४६
८	२ ।२८ ।३९	१७ ।४	२५४ ।४२
९	२ ।४५ ।४३	१६ ।२३	२४४ ।३१
१०	३ ।२ ।६	१५ ।४९	२३३ ।१९
११	३ ।१७ ।५५	१५ ।२	२२१ ।५
१२	३ ।३२ ।५७	१४ ।९	२०७ ।५५
१३	३ ।४७ ।६	१३ ।२६	१९३ ।५३
१४	४ ।० ।३२	१२ ।१८	१७९ ।०

चन्द्र पात अन्तर का भुज खण्ड	विक्षेप अंश आदि	अन्तर लिप्ता आदि	कोटिफल
१५	४ ।१२ ।५०	११ ।१३	१६३ ।२१
१६	४ ।२४ ।३	१० ।१४	१४७ ।१
१७	४ ।३४ ।१७	९ ।०	१३० ।०
१८	४ ।४३ ।१७	७ ।३९	११२ ।२८
१९	४ ।५० ।५६	६ ।१७	९४ ।३०
२०	४ ।५७ ।१३	५ ।१	७६ ।७
२१	५ ।२ ।१४	३ ।४४	५७ ।२३
२२	५ ।५ ।५८	२ ।१३	३८ ।२४
२३	५ ।८ ।११	० ।४२	१९ ।१५
२४	५ ।८ ।५३	० ।०	० ।०